THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
247
*****

THE

# MĀLATĪMĀDHAVA

OF

MAHĀKAVI BHAVABHŪTI

WITH

*The Chandrakalā Sanskrit & Hindī Commentaries.*

BY

SĀHITYASUDHĀKARA
PT. ŚRĪŚEṢARĀJA ŚARMĀ ŚĀSTRĪ
KĀVYATĪRTHA

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1971

Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 ( India )
1971
Phone : 63145

Second Edition
1971
Price : Rs. 8-00

*Also can be had of*
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 ( India )
Phone : 63076

# उपोद्धात

संस्कृत वाङ्मयमें काव्यके दो भेद हैं–दृश्य और श्रव्य। जो देखा जाता है अथवा जिसको अभिनय करके दिखाया जाता है उसे 'दृश्य' काव्य कहते हैं जैसे अभिज्ञान शाकुन्तल और उत्तररामचरित आदि। जो सुना जाता है उसे 'श्रव्य' काव्य कहते हैं जैसे रघुवंश, मेघदूत, किरातार्जुनीय और कादम्बरी आदि।

दृश्य काव्यके दो भेद होते हैं—रूपक और उपरूपक। अभिनेता (नट) से दुष्यन्त पात्रके रूपका आरोप होनेसे 'रूपक' पद अन्वर्थ है।

रूपकके दश भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन। इसी प्रकारसे उपरूपकके भी नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक और नाट्यरासक आदि अठारह भेद होते हैं। लोकमें सामान्यतः नाटक आदि रूपकोंमें और नाटिका आदि उपरूपकोंमें भी नटोंसे रूपका आरोप होनेसे उन्हें 'रूपक' और 'नाटक' भी कहनेकी चाल है।

रूपककी उत्पत्तिके विषय में विद्वानोंका कुछ मतभेद देखनेमें आता है। बहुतेरे पाश्चात्त्य विद्वान् और उनके कुछ अनुयायी प्राच्य विद्वान् भी 'रूपकका प्रादुर्भाव पहले ग्रीस (यूनान) में हुआ। अनन्तर वहाँसे भारतीय आर्योंने उसका निर्माण और अभिनय सीख लिया है' ऐसा मानते हैं। इस मत को पुष्ट करनेके लिए वे लोग भारतीय रूपकोंमें प्रयोग किये जानेवाले 'यवनिका' शब्दका उदाहरण देते हैं। परन्तु रूपकका अस्तित्व वेदके संहिता और ब्राह्मण आदि भाग, पाणिनिकी अष्टाध्यायी, पातञ्जल महाभाष्य और प्राचीन महाकाव्य आदि ग्रन्थोंमें बहुत जगह मिलता है। इसी तरहसे रामायणमें 'व्यामिश्रक' शब्द संस्कृत और प्राकृत नाटकके लिए प्रयुक्त हुआ है।

अष्टाध्यायी में **'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः'** (४।३।११०) और **'कर्मन्द-कृशाश्वादिनिः'** (४।३।१११) इन दो सूत्रोंमें महामुनि पाणिनिने शिलालि और कृशाश्वके नटसूत्रका उल्लेख किया है। इसी प्रकारसे महाभाष्यमें भी शौभिक, शौभिका और शोभनिका इत्यादि शब्दोंसे पतञ्जलि मुनिने भारतमें नाट्यरङ्गकी सत्ता दिखलाई है। वहींपर बालिवध और कंसवध आदि नाटकवाचक पदोंका प्रयोग भी देखा जाता है। 'मगधराज बिम्बसारने नागराजके सम्मानके लिए नाटकका अभिनय कराया था' ? यह बात भी सुननेमें आती है। बुद्धदेवने भी अपने अनुशासनमें नाट्याभिनयका निषेध किया है।

इस प्रकार अनिर्दिष्ट वा अति प्राचीन समयसे आरम्भ कर इस सयम तक भारतमें नाटकका प्रचार यत्र-तत्र उपलब्ध होनेसे नवीन विद्वानोंका पूर्वोक्त मत असङ्गत है।

अब बाकी रहा 'यवनिका' शब्द, जिससे कि नाटकके लिए 'यूनान' भारतवर्षका गुरु माना जाता है। वास्तवमें यवनिका शब्द ही अशुद्ध है। शुद्ध शब्द 'जवनिका' वा 'यमनिका' है। उन्हींके अपभ्रंश रूपमें 'यवनिका' शब्दने रज्जुमें सर्पकी तरह स्थान लाभ किया है। इसलिए 'यवनिका' शब्दसे भी आधुनिक विद्वानोंकी साध्यसिद्धि नहीं हो सकती है। संस्कृत वाङ्मयमें रूपकका स्थान बहुत ही उन्नत है। प्रसिद्ध प्रकरण दो ही माने गये हैं, उनमें पहला शूद्रक कविका मृच्छकटिक और दूसरा महाकवि भवभूतिका मालतीमाधव।

भवभूतिने मालतीमाधवकी रचना उत्तररामचरितके पूर्व ही की है इस बातमें दोनों रूपकोंका परिशीलन करनेवालोंको सन्देह नहीं हो सकता है। परन्तु महावीरचरितके पूर्व प्रस्तुत रूपककी रचना होनेका निश्चय नहीं किया जा सकता है।

महाकविने मालतीमाधवके मूल उपाख्यानको बृहत् कथासे ग्रहण किया है, किन्तु उन्होंने इसमें अपना असाधारण कृति-कौशल दिखलाया है।

नाटकसे प्रकरणमें विशेषता यह है कि जहाँ नाटकमें ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्रोंके चरित वर्णित होते हैं वहाँ प्रकरणमें लौकिक तथा कवि-कल्पित चरित्रों का वर्णन किया जाता है। नाटकमें जहाँ पाँचसे लेकर दश अङ्क तक होते हैं। वहाँ प्रकरणमें दश ही अङ्क अपेक्षित हैं। इत्यादि कुछ विषयोंको छोड़ कर प्रकरणमें सब विषय नाटकके अनुसार ही होते हैं।

**मालतीमाधवका संक्षिप्त कथानक इस प्रकारसे है**—पद्मावतीके राजमन्त्री भूरिवसु और विदर्भेश्वरके अमात्य देवरात बाल्यबन्धु और सहाध्यायी थे। अध्ययन-समयमें वे दोनों 'हम दोनोंमें एकको कन्या और दूसरे को पुत्र उत्पन्न होगा तो उनका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करना होगा' ऐसे प्रतिज्ञासूत्रमें बद्ध हुए। कालान्तरमें भूरिवसुको मालती नामकी कन्या और देवरातको माधव नामके पुत्र उत्पन्न हुए। पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार भूरिवसु माधवके साथ अपनी पुत्री मालतीका विवाह करना चाहते थे; परन्तु राजाके नर्मसचिव नन्दन मालतीके साथ विवाह करना चाहते थे। वे राजाके प्रीतिपात्र थे अतः उन्होंने राजाके द्वारा भूरिवसुसे मालतीकी याचना की। अब मन्त्री भूरिवसु बड़े असमञ्जसमें पड़े, परन्तु उन्होंने वाक्यकौशलसे श्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग कर राजाके प्रस्तावपर अपनी सम्मति दे दी।

माधवका मित्र मकरन्द था और नन्दनकी बहन मदयन्तिकाके साथ मालतीका सखीभाव था। भूरिवसु और देवरातकी सहाध्यायनी बौद्धसंन्यासिनी योगिनी कामन्दकीके युक्ति-कौशलसे मालती और माधवका परस्परमें साक्षात्कार हुआ, इतना ही नहीं वे दोनों एक दूसरेके प्रणयपाशमें आबद्ध भी हो गये। इसी बीचमें पिंजड़ेसे छूटा हुआ एक सिंह

मदयन्तिका पर आक्रमण करनेको उद्यत था उसी समय मकरन्दने अपने प्राणोंकी परवाह न कर बड़ी वीरतासे सिंहको मार कर मदयन्तिकाको बचाया। इस प्रकारसे उन दोनोंमें परस्पर प्रणयका सञ्चार हुआ। कापालिक अघोरघण्ट और उसकी शिष्या कपालकुण्डला ये दोनों अभीष्टसिद्धिके लिए मालतीका अपहरण करके उन्हें करालादेवीके सामने बलिदान करनेकी आयोजना कर रहे थे; उसी समय मालतीकी प्राप्तिमें निराश होकर श्मशानमें नरमांस बेचनेको तत्पर होनेवाले माधवने अघोरघण्टको मारकर अपनी प्रणयिनीका परित्राण किया। कपालकुण्डलाने गुरुवधका प्रतिशोध ( बदला ) लेनेके लिए प्रतिज्ञा की। तदनन्तर मालतीके साथ नन्दनके विवाहका दिन नियत हुआ। मालती विवाहके पहले पूजा करनेके लिए शिवमन्दिरमें गई वहींसे वह माधवके साथ पलायन कर किसी उद्यानमें चली गई और उन दोनोंका वहींपर विवाह हो गया।

मकरन्दने मालतीका वेश धारण किया और उनके साथ नन्दनका विवाह हुआ। नववधूने कामातुर वृद्धपति नन्दनका अनादर किया। अपने भाईके तिरस्कारसे क्षुभित होकर ननद मदयन्तिका भौजाईकी भर्त्सना करने चली और अपने प्रणयीको पहचानकर जिस उद्यानमें मालती और माधव अवस्थित थे उसी ओर उनके साथ प्रस्थान करने लगी। आधीरातमें पहरा देनेवाले राजपुरुषोंने उन्हें रोका जिसपर उनके साथ मकरन्दकी खुलकर लड़ाई होने लगी। माधव भी इस वृत्तान्तको जानकर अपने मित्रको बचानेके लिए वहां आ गये इसप्रकार लड़ाईका बाज़ार खूब गरम हो गया। राजासाहबने छतपरसे मकरन्द और माधवका अनुपम पराक्रम देखकर उदारतासे उनके अपराधोंको क्षमा कर मालतीके साथ माधवके विवाहकी स्वीकृति दे दी।

इसी बीचमें अकेली पाकर वैरप्रतीकार करनेके लिए कपालकुण्डला फिर मालतीका अपहरण कर उन्हें श्रीपर्वतपर ले गई। बेचारे माधव उनको ढूंढ़ते अप्रसन्न हो गये; यहाँ तक कि वे कपालकुण्डलासे अनिष्ट आशङ्का कर विक्षिप्त भी हुए। इस आपत्तिके समयमें भी मकरन्दने अपने मित्रका साथ न छोड़ा और उनको प्रकृतिस्थ करनेके लिए पर्याप्त प्रयत्न किया। जब उन्होंने मित्ररक्षाका कोई उपाय न देखा तब उनका अनिष्ट देखनेके पूर्व ही स्वदेहविसर्जन करनेके लिए आत्महत्याके लिए तत्पर हुए। इसी समय कपालकुण्डलाके पञ्जेसे मालतीका उद्धार करनेवाली योगिनी सौदामिनी उनको आत्महत्यासे रोक कर मालतीके जीवनका प्रत्यय करानेके लिए माधवको ले गई। इस प्रकारसे मालतीका माधवके साथ और मदयन्तिकाका मकरन्दके साथ शुभ मिलन होकर प्रस्तुत प्रकरण संयोगान्त हो गया है।

प्रणयियुगलका अभीष्ट पूर्ण होनेमें आदिसे अन्त तक बौद्धभिक्षुकी योगिनी कामन्दकीका उपाय-कौशल ही कारण रूपमें परिलक्षित होता है।

यद्यपि मालतीमाधवकी रचना मृच्छकटिकके पीछे हुई है तथापि इन दोनों प्रकरणोंमें

लेशमात्र भी उपजीव्योपजीवक भाव नहीं दिखाई देता है। जहाँ मृच्छकटिकमें शृङ्गारके साथ हास्यरसका समावेश है वहाँ मालतीमाधवमें शृङ्गारके साथ रौद्र और भयानक रसका भी परिपाक है। हाँ अलबत्ता इसके नवम अङ्कमें अदर्शनको प्राप्त अपनी प्रियतमा मालतीके पास सन्देश देनेके लिए माधवसे प्रार्थित मेघ मेघदूतकी और चतुर्थअङ्क विक्रमोर्वशीकी याद दिलाता है।

संस्कृतके रूपकोंमें कालिदास और भवभूति ये दोनों ही अनुपम कवि हैं। जहां कालिदास अपने कमनीय कल्पनाकौशलसे सत्य, शिव और सुन्दर पदार्थको चित्रित करनेमें सफल हुए हैं वहां भवभूति अपनी प्रौढ और मनोहर प्रतिभासे पूर्वोक्त विषयमें वैशिष्ट्यके साथ अलौकिक अद्भुत और भयानक पदार्थकी भी अवतारणा कर विद्वज्जनके चित्तको आकृष्ट करनेमें सफल हो गये हैं। प्रकृतिके सुकुमार अङ्गका प्रदर्शन करनेमें भी हमारे महाकवि अपना सानी नहीं रखते हैं, मालतीमाधवके सप्तम अङ्कका अर्धरात्रवर्णन किस सहृदयके हृदयका अपहरण नहीं करता है?

भवभूतिके तीन रूपक उपलब्ध हैं। उनमें महावीरचरित, उत्तररामचरित नाटक और मालतीमाधव प्रकरण हैं। पूर्ववर्णित दोनोंमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम के पूर्वचरित और उत्तरचरितका प्रदर्शन किया गया है।

महाकविने महावीरचरितमें प्रधानरूपमें वीररसका, उत्तररामचरितमें करुणरसका और मालतीमाधवमें शृंगाररसका समावेश किया है। अङ्गके रूपमें अन्यान्य रसोंका भी यथास्थान निपुणतापूर्वक उद्भावन किया है।

इस प्रकारसे भवभूतिने अनेक रूपकोंमें ही अनेक रसोंका प्रदर्शन नहीं किया है बल्कि एक रूपकमें भी अनेक रसोंको उद्भासित किया है। जैसे कि प्रस्तुत मालतीमाधवमें भी तृतीय अङ्कमें वीर और रौद्र, पञ्चममें बीभत्स और भयानक, सप्तममें वीर, नवममें करुण और अद्भुत और दशममें अद्भुत रस अतिशय मनोहर प्रकारसे प्रकाशित किये गये हैं।

महाकवि यत्र-तत्र वहिर्जगत् और अन्तर्जगत् के विविध भावपूर्ण चित्रोंको अङ्कित करनेमें वैचित्र्यरूपसे सफल हुए हैं। इनकी रचनामें प्रौढिके साथ प्राञ्जलता भी विमल प्रकारसे देखी जाती है। अत एव उत्तररामचरितका—

'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवाऽन्ववर्तत।'

यह कथन पूर्णरूपसे सत्य प्रतीत होता है। कविकुलगुरु कालिदासके समान महाकवि भवभूतिने अपना परिचय देनेमें कार्पण्यका प्रदर्शन नहीं किया है। इनके ग्रन्थोंसे निम्नलिखित इनका कुछ परिचय पाया जाता है।

महाकवि भवभूति विदर्भ (वरार) की पद्मावती (पद्मपुर) के रहनेवाले थे। ये काश्यपगोत्री और कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाऽध्यायी थे। इनका नाम श्रीकण्ठ था।

इनकी माताका नाम जातुकर्णी, पिताका नीलकण्ठ, पितामहका भट्टगोपाल और गुरुका ज्ञाननिधि था।

'साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इनकी इस रचनासे प्रसन्न होकर राजाने इन्हें 'भवभूति' इस पदवीसे अलङ्कृत किया है, कोई ऐसा कहते हैं। किसीका ऐसा कहना है कि—

'तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताऽऽननौ॥'

इनके इस पद्यसे प्रसन्न होकर विद्वज्जनोंने इनको 'भवभूति' पदसे विभूषित किया। अस्तु, आगे जाकर प्रसिद्धि-बहुलताके कारण उपाधिने ही नामका रूप ले लिया जिससे सर्वसाधारण महाकवि श्रीकण्ठको 'भवभूति' कहने लगे। संभवतः 'उदुम्बर" महाकविका प्रवर था। इनके पूर्वज पङ्क्तिपावन, अग्निहोत्री, व्रत करनेवाले, सोमपायी और ब्रह्मवादी थे।

कविमूर्धन्य स्वनामधन्य भवभूति सुप्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् कुमारिलभट्टके शिष्य थे और उनका 'उम्बेक' यह दूसरा नाम था। इन्होंने श्लोकवार्तिककी टीका भी बनाई है। मालतीमाधवकी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकमें 'प्रकरणमिदं कुमारिलशिष्यस्योम्बेकाचार्यस्य' ऐसा लेख देखनेसे एवम् चित्सुखाचार्यकी तत्त्वप्रदीपिकाके टीकाकारके कथनसे भी भवभूति और उम्बेकाचार्यकी एकव्यक्तिताका समर्थन होता है। इस स्थितिमें 'ज्ञाननिधि' कुमारिलभट्टका ही दूसरा नाम था अथवा 'ज्ञाननिधि' भवभूतिके वेदान्तशास्त्रके गुरु थे। यह बात भवभूतिके 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' इस विशेषणसे समर्थित हो सकती है।

षड्दर्शनसमुच्चयके टीकाकार विक्रमकी पन्द्रहवी शताब्दीमें उत्पन्न गुणरत्नने—

'उम्बेकः कारिकां वेत्ति तन्त्रं वेत्ति प्रभाकरः।
वामनस्तूभयं वेत्ति न किञ्चिदपि रेवणः॥'

ऐसा लिखकर भवभूति उपमान उम्बेकाचार्यजीको कारिकावेत्ताके रूपमें स्मरण किया है।

यद्यपि द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित आदि वृत्त भी इनकी रचनाओंमें पाये जाते हैं परन्तु शिखरिणी वृत्तमें महाकवि भवभूति असाधारण सिद्धहस्त माने गये हैं।

इस प्रकारसे महाकवि श्रीकण्ठ वा भवभूति अथवा उम्बेकाचार्य ग्रन्थोंमें रूपकमें तीन और मीमांसामें दो-उनमें एक भट्टपादके श्लोकवार्तिककी टीका और दूसरा मण्डनमिश्रके भावनाविवेक पर टीका कुल पांच ग्रन्थ पाये जाते हैं। परन्तु उनके रचित फुटकर पद्योंको देखनेसे उनकी अन्य कृति होनेकी भी संभावना होती है।

अब भवभूतिका समयनिरूपण करना आवश्यक है। विक्रमकी सातवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें वर्तमान महाकवि बाणभट्टने हर्षचरितके प्रारम्भमें अन्यकवियोंके कीर्तनप्रसङ्गमें इनकी चर्चा नहीं की है, इसलिए भवभूति बाणभट्टके पीछे हुए हैं इसमें सन्देह नहीं, विक्रमके नवमशतकके उत्तरार्द्धमें आविर्भूत आलङ्कारिक विद्वान् वामनने इनकी कृतिका उल्लेख किया है। इसी तरह विक्रमकी दशमशताब्दीके उत्तरार्द्धमें विराजमान कविराज राजशेखर अपनी कृति बालरामायण में—

'बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥'

इस श्लोकमें अपनेको भवभूतिकी रेखासे वर्तमान उद्घोषित कर रहे हैं। इस प्रकार भवभूति विक्रमकी नवम शताब्दीसे पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। भारतके विचक्षण ऐतिहासिक कह्लणने अपनी राजतरङ्गिणीमें—

'कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥'

इस श्लोकको काश्मीराऽधीश्वर मुक्तापीड ललितादित्यके उत्कर्षवर्णनमें कहा है। इससे पता चलता है कि विक्रमके लगभग ७९२ सालमें काश्मीराऽधीश्वर ललितादित्यसे जीते गये कान्यकुब्जनरेश यशोवर्माकी सभामें कविवर भवभूति उज्ज्वल रत्न थे, अतः विक्रमकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें महाकवि भवभूति हुए थे इसमें सन्देह नहीं हो सकता है।

महाकवि भवभूतिके विषयमें अन्यान्य बातें हम उत्तररामचरितकी टीकामें लिख चुके हैं, अतः उन्हें यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है; इस कारणसे अब विश्राम लेते हैं।

पाशुपतक्षेत्र,
नक्साल, नेपाल सं० २०१०

आश्रव
शेषराज शर्मा

# कथासार

## प्रथम अङ्क

नान्दीके अन्तमें सूत्रधार अपने सहायक नटको मालतीमाधव नामके प्रकरणके कर्ता महाकवि भवभूतिका परिचय देता है।

( इति प्रस्तावना )

पूर्वकालमें भूरिवसु और देवरात नामके दो ब्राह्मणकुमारोंकी छात्रावस्थामें घनिष्ठ मित्रता हुई।

'हम दोनोंमें एकको कन्या और दूसरेको पुत्र उत्पन्न हो तो उन दोनोंको वैवाहिक सूत्रमें आबद्ध करना होगा' उन दोनों में ऐसा परामर्श हो गया। उनका यह परामर्श बौद्ध-संन्यासिन योगिनी कामन्दकी और उनकी शिष्या सौदामिनीको भी विदित था।

कालान्तरमें भूरिवसु पद्मावतीपतिके मन्त्री हुए और इसी तरह देवरातको भी विदर्भ राजका मन्त्रिपद प्राप्त हुआ। अनन्तर भूरिवसुको मालती नामकी पुत्री और देवरातको माधव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

माधव अतिशय सुन्दर और सच्चरित्रसे अलङ्कृत हो गये। उन्होंने बहुत शीघ्र विद्याओंमें तथा चित्रलेखन आदि कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। मकरन्द नामके एक सत्कुलप्रसूत युवकसे उनकी परम मित्रता हो गई।

इसी तरह मालती भी परमसुन्दरी, मितभाषिणी, माता-पिता आदि गुरुजनों की आज्ञा-कारिणी हुई। एवं वह भी विद्या-कला आदि में निपुण बनी।

जब दोनों मन्त्रियोंको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका अवसर आया उस समय एक प्रबल प्रतिबन्ध उपस्थित हुआ। पद्मावतीके महाराजके नन्दन नामके एक नर्मसचिव थे उन्होंने राजाको अनुकूल बनाकर मालतीके साथ अपना विवाह करनेके लिए राजाके द्वारा भूरिवसुसे याचना की।

अब भूरिवसुको अपना प्रण पूर्ण करनेके लिए बड़ी अड़चन आ पड़ी। कुसुम-कलीके सदृश सुकुमारी और रति समान अतिशय मनोहारिणी युवती अपनी पुत्री मालती-का कर्कश स्वभाव, कुरूप और अधिक उम्रवाले नन्दन के साथ विवाहकी स्वीकृति देनेमें उनको अतिशय क्लेशका सामना करना पड़ा। अन्ततोगत्वा विवश होकर उन्होंने वचनकौशलसे श्लिष्ट शब्दोंका प्रयोगकर राजाके प्रस्तावपर अपनी स्वीकृति दे दी।

यह सब वृत्तान्त बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकीको भी विदित हुआ और वे अपने दोनों मित्रोंकी प्रतिज्ञापूर्तिके लिए चोरीसे मालती और माधवका विवाह कराने के लिए अपनी शिष्या अवलोकिता के साथ मन्त्रणा करने लगीं।

कुछ समय बीतने के अनन्तर विदर्भराज के मन्त्री देवरात ने अपने मित्र भूरिवसुको पूर्व प्रतिज्ञा की याद दिलाने के लिए अपने पुत्र माधव को न्यायशास्त्र के अध्ययनार्थ पद्मा-वती में भेजा।

और उनके अञ्चलमें माधवका चित्र और उन्हींके हाथसे गुम्फित बकुल ( मौलसिरी ) पुष्पों-की माला भी दिखलाई।

इसी अवसरपर पिंजड़ा तोड़कर एक भयानक सिंह निकल पड़ा और उसने देखते-देखते कई मनुष्य, बैल और घोड़ोंको मार डाला! चारो ओर कोलाहल होने लगा और भगदड़ मच गई! दैवयोगसे मदयन्तिका वहीं पासमें थी, सिंह उन्हींकी ओर झपट पड़ा। इस भयानक अवसरपर उनके सब परिजन भाग खड़े हुए और उनको बचानेवाला कोई पुरुष नहीं दिखाई पड़ा।

सौभाग्यवश वीर युवा मकरन्द हाथमें तलवार लेकर सिंहसे लड़ पड़े और उन्होंने बड़ा साहस दिखला कर उसे मारकर मदयन्तिकाके प्राणोंकी रक्षा की। परन्तु इस युद्ध-प्रसङ्गमें सिंहका एक भीषण प्रहार लगनेसे अपरिमित रक्त बहाकर वे भी मूर्च्छित हो गये।

उस कोलाहलको सुनकर माधव भी उसी ओर गये और अपने प्रिय मकरन्दको सिंहसे लड़नेको उद्यत देखकर उनकी जान बचानेके लिए दौड़ पड़े; परन्तु उनके वहां पहुंचनेके पहले ही मकरन्दने सिंहका काम तमाम कर दिया था। परन्तु सिंहके प्रहारसे मूर्च्छित अपने मित्रको देखकर माधव भी संज्ञाशून्य हो गये।

## चतुर्थ अङ्क

कामन्दकीने पुत्रतुल्य उन दोनोंपर जलसेचन और वातवीजन आदि मूर्च्छा निवारणके लिए उपयुक्त उपचारका प्रयोग किया। अन्तमें मदयन्तिकाके प्रयत्नसे मालतीके उपचारसे मकरन्द और माधव दोनों होशमें आगये। उस समय मदयन्तिका और मकरन्दने एक दूसरेको अच्छी तरहसे देख लिया और देखनेके साथ ही दोनोंमें परस्पर प्रणयका सञ्चार हो गया।

नियतिकी गति भी अनुल्लङ्घनीय है। ऐसे समयमें जब कि दो प्रणयियुगलमें जिनमें एकका पारस्परिक प्रणय घनिष्ठ हुआ था और एकका अङ्कुरित हो रहा था, उसी समय एक पुरुषने आकर बतलाया कि—'राजाकी आज्ञासे नन्दनके साथ मालती के विवाहकी बात ठीक हो गई, इस कारण वैवाहिक कार्यका संपादन करनेके लिए नन्दनने अपनी बहनको बुलाया है'। इस बातको सुनकर अब मेरी सखी मालती भोजाई होकर मेरे साथ एक ही घरमें रहेगी यह विचार कर मदयन्तिका बहुत प्रसन्न हुई। परन्तु इस समाचारसे मालती और माधवको असीम दुःखका अनुभव हुआ और उन्हें अपनी आशापूर्ण होनेमें असंभवसा प्रतीत होने लगा। कामन्दकीने उन दोनों को सन्त्वना दे दी। जब माधवपर सान्त्वनासे भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ा तब कामन्दकीने उन्हें अनेक प्रकारसे प्रबोध देनेका प्रयत्न किया। जब वैवाहिक वेशभूषासे सुसज्जित करनेके लिए मालतीको भी बुलवाया, तब दोनों प्रणयी मालती और माधव अगाध नैराश्यसमुद्रमें गोता मारने लगे। किं बहुना, उनको अपना जीवन भी दुःसह प्रतीत होने लगा।

अनन्तर कामन्दकीके साथ मालती, मदयन्तिका और लवङ्गिका चली गई।

माधव कामन्दकीके आश्वासनको निःसार समझने लगे। अब उन्हें वामाचारके अनुसार श्मशानमें पिशाचोंको महामांसके विक्रयमें अपनी आशा पूरी होनेकी संभावना होने लगी। मकरन्दने माधवसे मदयन्तिकाके प्रति अपनी प्रगाढ उत्कण्ठाको द्योतित किया। अनन्तर दोनो मित्रोंने साथ-साथ नगरीकी ओर प्रस्थान किया।

## पञ्चम अङ्क

भयङ्कर वेशवाली कापालिकी कपालकुण्डला अपने गुरु अघोरघण्टके पुरश्चरणसाफल्यके लिए किये जाने वाले बलिपात्रके अन्वेषणके लिए आकाशमार्गसे भ्रमण करने लगी। उस समय उसने श्मशानमें एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें नरमांस लिए हुए माधवको देखा।

( इति विष्कम्भक )

आधीरातके समय करालादेवीके मन्दिरके पासवाले श्मशानमें माधव नरमांस बेचनेके लिए पर्यटन कर रहे थे। उस समय उनको रह-रह कर मालतीके प्रेमकी याद हो रही थी। उनको अभीष्टपूर्णताके लिए और कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं आ रहा था। उस समय उनको भयङ्कर आकारवाले रक्त और मांसका उपभोग करते हुए अगणित पिशाच और शृगाल आदि दृष्टिगोचर हुए। सारे श्मशानमें संचरण करने पर भी डरके मारे कोई भी पिशाच माधवके हाथ में अवस्थित महामांस खरीदनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। उसी समय उनको एक स्त्रीकी करुणरोदनध्वनि कर्णगोचर हुई। क्रमसे वह स्वर करालामन्दिरसे आता हुआ और कुछ परिचित-सा भी प्रतीत होने लगा। अनन्तर अपने पिताको उपालम्भ देती हुई वध्यचिह्नसे युक्त मालती, देवपूजनमें तत्पर कपालकुण्डला और अघोरघण्ट माधवके दर्शनपथमें अवस्थित हुए। पूजासमाप्तिके अनन्तर स्तुतिपाठ कर जब कापालिक अघोरघण्ट मालतीपर खड्गप्रहार करनेको तत्पर हुआ उसी समय माधव उस भीषण कार्यको रोकनेके लिए बीचमें कूद पड़े। मालती उनसे जीवनपरित्राणके लिए कातरभावसे प्रार्थना करने लगी। कपालकुण्डलाने अपने गुरुको माधवका परिचय दिया। तब कोपाक्रान्त कापालिक और माधवकी कहा सुनी होने लगी। आखिर दोनोंमें लड़ाई ठन गई।

## षष्ठ अङ्क

कपालकुण्डलाने माधवसे अपने गुरु अघोरघण्टका वध देखकर बहुत दुःखित होकर बदला लेनेकी प्रतिज्ञा की। ( इति विष्कम्भक )

विवाहके अवसरमें मालतीके खो जानेसे उनका अन्वेषण होने लगा। कामन्दकीके परामर्शसे भूरिवसुकी आज्ञासे करालादेवीका मन्दिर सिपाहियोंसे घेर लिया गया। आखिर माधवसे बचाई गई मालती मिल गई।

अनन्तर मालतीके विवाहकी तैयारी होने लगी। अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका संग्रह होने लगा। जहाँ-तहाँ उल्लासका प्रकाश आविर्भूत हो रहा था, परन्तु वधू मालतीकी

दुरवस्था सभीको ज्ञात नहीं थी। मालती और माधव दोनोंको ही अपने आशाकमलपर तुषारपात होनेका लक्षण दीख रहा था। कामन्दकीने उनको इस विपत्तिसमुद्रसे उबारनेका एक उपाय सोचा। उन्होंने माधव और मकरन्दको देवीमन्दिरके भीतर कहीं पर छिपा रखा और वधूवेशसे सुसज्जित मालतीको सौभाग्यकी वृद्धिके लिए उनकी माताकी अनुमति लेकर देवीमन्दिरमें जानेको कहा। उसी समय राजाने वधू मालतीके लिए विवाहके उपयुक्त वस्त्र और भूषण आदि उपकरणोंको भेजा। कामन्दकीने मन्दिरके भीतर मालतीको वस्त्र पहनानेके लिए लवङ्गिकाको आज्ञा दे दी। जब लवङ्गिकाने मालतीको वस्त्र पहनाना चाहा तब उन्होंने स्वीकार न किया और हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना की—'तुम मेरा अनुवर्तन करना चाहती हो तो प्राणेश्वर माधवका मुझे एकबार दर्शन करा दो, तदनन्तर उनका स्मरण कर मैं अपने जीवनका विसर्जन कर दूंगी'। ऐसा कह जब वे लवङ्गिकाके पैरोंपर पड़ीं तब उसने आनेके लिए माधवको संकेत किया। माधव भी उसी समय लवङ्गिकाके स्थानपर खड़े हुए और वह अन्तर्हित हो गई। मालतीने उठकर लवङ्गिका जानकर माधवको गाढ आलिङ्गन किया और माधवसे गुम्फित बकुलमालाको अपने कण्ठसे उतार कर उनके कण्ठमें पहनानेका उपक्रम किया। इसी बीचमें वे माधवको पहचान कर लज्जासे संकुचित हो कुछ दूर हट गईं। उस समय माधवने अनेक प्रणयपूर्ण बातें सुनाकर अपनी दुरवस्थाको मालतीसे कहा।

इतनेपर भी भारतीय-कुमारीसुलभ-शालीनताके कारण मालती अपने पिताकी आज्ञाको लाँघनेमें असमर्थ थीं। उसी समय कामन्दकीने आकर अवस्थाके अनुकूल कार्य करनेके लिए उन दोनोंको समझाया। इस प्रकार कामन्दकीने मालती और माधवका गान्धर्व-विवाह करानेका उपक्रम किया।

## सप्तम अङ्क

अब नन्दनके विवाहकी कठिनता हुई। कामन्दकीने मकरन्दको मालतीकी वेशभूषासे सुसज्जित कर स्त्रीके सदृश बनाकर नन्दनके पास भेजा। उन्होंने मालती और माधवको उद्यानमें रखा और वहीं पर उन दोनोंका विवाह भी हो गया। उधर नन्दनकी भी शादी मालतीका रूप धारण करनेवाले मकरन्दके साथ हो गई।

नन्दन सुहागरातमें नवपरिणीता वधू समझकर मकरन्दके पास गये, परन्तु मकरन्दने उन्हें फटकार दिया। इसपर भी जब नन्दन बलात्कार करनेको प्रस्तुत हुए तब मकरन्दने उन्हें ताडन किया। अनन्तर वे क्रोधवश 'कौमारबन्धकी' आदि दो-चार कठोर शब्दोंसे मकरन्दकी भर्त्सना कर उस कमरेसे बाहर निकल पड़े। कुछ समयके अनन्तर मकरन्द भी वहाँसे बाहर चले गये।

जब नन्दनकी इस अप्रतिष्ठाको सब लोग जान गये तब अपनी भाभी मालतीको उपालम्भ देनेकेलिए बुद्धरक्षिताको साथमें लेकर मदयन्तिका वहाँ आई। परन्तु वार्तालापप्रसङ्गमें मलतीकी सखी लवङ्गिकाने उनके सामने नन्दनके दोषोंका मर्मोद्घाटन किया। कुछ समय

तक वार्तालाप होनेके अनन्तर लवङ्गिकाने वीरवर मकरन्दकी चर्चा की। जिस समय उन्होंने सिंहके आक्रमणसे अपनी रक्षा की थी उसी समयसे उनके प्रति मदयन्तिकाका असीम प्रणय और श्रद्धा थी। लवङ्गिकाने आलापके प्रसङ्गमें इस बातको जान लिया कि वे पूर्णरूपसे मकरन्दको आत्मसमर्पण करनेको उद्यत है।

अभीष्ट अवसर जानकर मकरन्द शय्यासे उतर पड़े और मदयन्तिका का करग्रहण कर प्रणयालाप छेड़ने लगे। तदनन्तर सब लोगोंने मालती और माधवके निवासस्थान उद्यानकी ओर प्रस्थान किया।

## अष्टम अङ्क

अवलोकिताने नन्दनभवनसे लौटी हुई कामन्दकीको अभिवादन कर नव परिणीत मालती और माधवके पास जानेका उपक्रम किया।

(इति प्रवेशक)

मालती और माधवका प्रेमपूर्ण वार्तालाप होने लगा उसके बीच-बीचमें अवलोकिता भी भाग लेने लगी।

उधर आधीरातमें मदयन्तिका और मकरन्द आदि जब उद्यानमें जा रहे थे तब पहरेदारोंने उनको बीचमें ही रोक रखा। उस समय कलहंसको आते देख मकरन्दने कौशलपूर्वक उसके साथ सब स्त्रियोंको भेज दिया और स्वयं उन सिपाहियोंसे बड़ी बहादुरीके साथ लड़ने लगे।

उद्यानमें मालती और माधव आदि पहलेसे ही मदयन्तिका और मकरन्द आदिकी बाट जोह रहे थे। मालती भी कई दिनोंसे प्रिय सखी लवङ्गिकाके अपने पास न होनेसे आकुल हो रही थी। उनके आनेमें विलम्ब देखकर समाचार पानेके लिए माधवने कलहंसको भेजा था। थोड़ी देरमें कलहंस मदयन्तिका आदि स्त्रियोंको लेकर आया और उसने सब वृत्तान्त ब्योरेवार सुनाया। अकेले अपने मित्रको सिपाहियोंसे लड़ते हुए जानकर माधव वहाँ ठहर न सके अतः अस्त्र-शस्त्र लेकर उसी समय कलहंसके साथ निकल पड़े।

कुछ समय बीतनेपर मालतीका चित्त घबड़ाने लगा और उन्होंने अवलोकिता और बुद्धरक्षिताको कामन्दकीके पास और लवङ्गिकाको माधवका वृत्तान्त जाननेके लिए भेज दिया। उस समय उद्यानमें केवल मदयन्तिका और मालती ही रह गई। मालती अतिशय अधीर होकर अकेली ही द्वारपर जाकर माधव और मकरन्दकी राह देखने लगीं। उसी समय अनुकूल अवसर पाकर कपालकुण्डला आई और भर्त्सना कर मालतीको श्रीपर्वतपर लेगई।

उधर माधव भी जब सहायताके लिए अपने मित्रके पास पहुंच गये तब माधव, मकरन्द और कलहंसके साथ राजभटोंकी विकट लड़ाई होने लगी। राजाने दोनों मन्त्रि-कुमारियोंके भवनसे बाहर निकलनेकी बात सुनी तो उनके अपहारक माधव और मकरन्दको पकड़नेके लिए कई सिपाहियोंको भेजा और वे स्वयं भवनकी छतसे लड़ाईके उस दृश्यको देखने लगे जिसमें एक ओर दो-तीन व्यक्ति और दूसरी ओर अपने सैकड़ों

सिपाही थे। उस युद्ध में दोनों मित्रोंने लोकोत्तर वीरताका प्रदर्शन किया और क्षणभरमें कई सिपाहियोंको क्षत-विक्षत, आहत और पलायित कर दिया। इस रोमाञ्चकारी दृश्य और उनकी प्राणाऽनपेक्षिणी शूरता को देखकर महाराज प्रभावाऽन्वित हुए और अक्षयदान देकर उन दोनों वीरोंको उन्होंने अपने पास बुलाया तथा प्रसन्न होकर उनका अपराध क्षमाकर अपनी गुणग्राहकताका प्रदर्शन किया।

महाराजकी सदाशयताकी प्रशंसा करते हुए जब दोनों वीर उद्यानमें पहुंचे, तब तक मालती लापता हो चुकी थीं। लवङ्गिका और मदयन्तिका उन्हें ढूढ़ रही थीं पर उनका कहीं पता न चला। इतनेमें माधवको कपालकुण्डलाकी भीषण प्रतिज्ञाका स्मरण हुआ। वे मालतीके जीवनसे हताश हो गये और मकरन्द उन्हें सान्त्वना देने लगे।

## नवम अङ्क

मालतीको न पानेसे माधव विक्षिप्त हो उठे वे विन्ध्यपर्वत पर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। उनके प्रिय मित्र मकरन्द पास ही थे। माधव बारम्बार मालतीको पुकारते तथा उनका गुणकीर्तन करने लगे। रह-रह कर वे विलाप करते थे और मूर्च्छित हो जाते थे। मकरन्द अथक प्रयत्न कर माधवको होशमें लानेकी चेष्टा कर रहे थे। देखते-देखते माधवका उन्माद बढ़ता ही जा रहा था। वे कभी मेघ से कभी बिजलीसे कभी कोयलसे और कभी वृक्षोंसे इस तरह स्थावर और जङ्गम अनेक पदार्थोंसे मालतीका वृत्तान्त पूछ रहे थे। उनकी अवस्था यहाँ तक पहुँच गई थी कि उन्हें अपने मित्र मकरन्दके अपने पास होनेका भी पता नहीं था। अपने प्राणप्रिय मित्रकी ऐसी अवस्था देखकर मकरन्दने उनका संरक्षण करनेके लिए तथा उन्माद मिटानेके लिए प्राणपणसे प्रयत्न किया; परन्तु उनका वह सब प्रयत्न विफलसा प्रतीत होने लगा, उनके धैर्यका बाँध टूटने लगा। वे भी कभी कामन्दकीको पुकारते, कभी विलाप करते और कभी संज्ञाको भी खोने लगे। आखिर मित्रके जीवनकी आशा न देखकर वे अपने नेत्रों से मित्रकी मृत्यु देखनेमें असमर्थ होकर आत्महत्या करनेके लिए पाटलावती नदीके ऊपर स्थित एक पर्वतके शिखरपर चढ़ गये और वे शिवजीका स्मरण कर 'जन्मान्तरमें भी मुझे इस मित्रका साहचर्य प्राप्त हो' ऐसी प्रार्थना कर जब कूदना चाहते थे उसी समय एक योगिनीसी महाभावसम्पन्ना स्त्रीने आकर उन्हें पकड़ा और माधवके करकमलोंसे गुम्फित वही बकुलमाला उन्हें दिखलाई, जिससे कि मालतीके जीवनका प्रमाण उन्हें मिल गया।

वह स्त्री कामन्दकीकी प्रथम शिष्या योगिनी सौदामिनी थी, जो कि मन्त्रसिद्धिके लिए श्रीपर्वतपर चली गई थी। जब कपालकुण्डला गुरुवधकी वैरशुद्धिके लिए मालतीको श्रीपर्वत पर ले गई थी तब सौदामिनीने उसे झिड़ककर उसके पंजेसे मालतीका परित्राण कर उन्हें अपनी कुटीमें रखकर मालतीके विरहसे माधवके अनिष्टकी आशङ्का कर अभिज्ञानरूप बकुलमाला लेकर माधवका अन्वेषण करती हुई सौदामिनी यहां आ गई थी।

शीतल समीरके संचरणसे माधवको चेतना-लाभ हुआ और वे हाथ जोड़कर 'हे वायुदेव ! आप मेरे प्राणोंको अपनेमें विलीनकर मालतीके पास ले चलिए' ऐसी प्रार्थना करने लगे। इसी समय उनके हाथोंमें सौदामिनीने मालतीकी माला दे दी। उसे देखकर माधव आश्चर्यान्वित हुए। दयावती सौदामिनीने मालतीकी खबर सुनाई और वे मकरन्दके देखते २ माधवको अपनी योगशक्तिसे श्रीपर्वतपर उड़ा ले गई। तब मकरन्द भी उसी वनमें अवस्थित कामन्दकीको वह सब वृत्तान्त सुनानेके लिए वहाँसे चले गये।

## दशम अङ्क

उधर कामन्दकी, लवङ्गिका और मदयन्तिका आदि स्त्रियाँ शोकसे आकुल होकर उसी वनमें पर्यटन कर रही थीं। पर मालतीका कहीं भी पता नहीं चला। सबने विचारकर लिया था कि मालतीके अभावमें हमारा जीवन व्यर्थ-प्राय है। अतः वे सब प्राण छोड़नेके लिए पहाड़की चोटीसे मधुमती नदीके प्रवाहमें कूदना चाहती थीं कि उसी समय सौदामिनीकी प्रशंसा करते हुए हर्ष और विस्मयके अतिरेकसे अभिभूत मकरन्द उनके सामने आ गये।

अमात्य भूरिवसु भी अपनी कन्या मालतीका वृत्तान्त सुनकर अपना सब कार्य छोड़कर राजाकी प्रार्थनाको भी ठुकराकर जब अग्निप्रवेश करनेको उद्यत हो रहे थे तब सौदामिनीने उनको बचा लिया। उसी समय मालतीको लेकर माधव वहाँ पहुंच गये। रास्तेमें ही मालती भी अपने पिताका वृत्तान्त सुनकर शोकाऽतिशयसे अधीर होकर बेहोश हो गई थी। कामन्दकी और लवङ्गिका भी मालतीकी इस अवस्थाको देखकर मूर्च्छित हो गई। कुछ समयके अनन्तर सब होशमें आ गये और अवर्णनीय हर्षके वशीभूत हुए।

सौदामिनीने इस प्रकारसे भूरिवसुको भी अग्निप्रवेशके उद्यमसे बचाया और अपनी आचार्या कामन्दकीको प्रणाम किया। उन्होंने भी अपनी पूर्व शिष्याको गले गलाया।

सौदामिनीने महाराजका एक पत्र भी दिखलाया जिसमें उन्होंने भूरिवसुके सम्मुख माधव को यह लिखा था कि—तुम्हारे सदृश महाकुल-प्रसूत गुणी पुरुषके ऊपर हम बहुत प्रसन्न हैं, इसलिए तुम्हारी प्रसन्नताके लिए तुम्हारे मित्र मकरन्दके साथ नन्दन-भगिनी मदयन्तिका का विवाह हम स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार योगिनी कामन्दकीका नीतिबीज अंकुरित; पुष्पित और फलित भी हो गया और सबके अभिलाष भी पूर्ण हो गये।

कामन्दकी ऐसी नीति नहीं करती तो भूरिवसु और देवरात की प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं होती, नन्दन और भूरिवसुका वैमनस्य होता और महाराज भी भूरिवसुसे क्रुद्ध होते इस तरह से अनिष्ट फल की आशङ्का होती।

इसके बाद हर्ष विभोर होकर अवलोकिता, बुद्धरक्षिता और कलहंस आदि सबके सब नृत्य और गीत आदिकेद्वारा परम उल्लास का प्रकाश करने लगे।

---

# पात्रपरिचय

## पुरुष-पत्र

सूत्रधार—प्रधान नट
नट—सूत्रधारका सहायक
देवरात—विदर्भपतिके मंत्री माधवके पिता
माधव—विदर्भराज-मंत्री देवरातके पुत्र, नायक
मकरन्द—माधवके मित्र
भूरिवसु—पद्मावतीश्वरके मंत्री
नन्दन—पद्मावतीश्वरके नर्मसचिव
कलहंस—माधव का भृत्य
अघोरघण्ट—एक वामाचारी कापालिक

## स्त्री-पात्र

मालती—पद्मावतीश्वर के मन्त्री भूरिवसुकी पुत्री, नायिक
मदयन्तिका—पद्मावतीश्वर के नर्मसचिव नन्दन की बहन
कामन्दकी—बौद्ध संन्यासिनी योगिनी
सौदामिनी—कामन्दकीकी पूर्वशिष्या योगिनी
कपालकुण्डला—अघोरघण्टकी शिष्या, कापालिकी
अवलोकिता—कामन्दकीकी परिचारिका
बुद्धरक्षिता—कामन्दकीकी सखी
लवङ्गिका—मालतीकी धायकी पुत्री, सखी
मन्दारिका—कलहंसकी प्रणयिनी
प्रतीहारी—द्वारपालिका



# मालतीमाधवम्

## 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दीटीकाद्वयोपेतम्



### प्रथमोऽङ्कः

चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयो
विद्युत्प्रायललाटलोचनशिखिज्वालाविमिश्रत्विषः ।

---

अशेषगुणभूषितं सहजशुभ्रकान्त्यन्वितं गिरीशतनयापतिं सुजनदुःखसंहारकम् ।
सदाचरणवर्द्धनं सुकृतकृत्यलभ्यं विभुं श्रुतिस्मृतिनुतं शिवं सुभगचन्द्रचूडं भजे ॥

अथ तत्र भवान् महागुणवान् विपश्चिदपश्चिमो महानुभूतिः कविवरो भवभूतिर्मालतीमाधवाऽभिधानं प्रकरणमारभमाणः शिष्टाचारमनुसरन् मङ्गलमारभते-चूडेति ।

चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयः, विद्युत्प्रायललाटलोचनशिखिज्वालाविमिश्रत्विषः, अकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवः भुजङ्गवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटाः, भूतेशस्य, जटाः, त्वां, पान्तु इत्यन्वयः ।

चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयः = चूडायां (शिखायाम्) य आपीडः तत्र स्थिताः ये कपालाः ( कर्परा शुष्कशिरोऽस्थिपिण्डा इति भावः ) तेषु सङ्कुलं ( व्याप्तम् ) गलत् ( अधःस्रवत् ) मन्दाकिनीवारि ( गङ्गाजलम् ) यासु, ताः । 'शिखा चूडा केशपाशी' इति 'शिखास्वापीडशेखरौ' इति चाऽमरः । अत्र आपीडपदेनैव चूडास्थमाल्यरूपाऽर्थबोधनेऽपि पुनश्चूडापदं तदारूढत्वद्योतनाऽर्थमतो न पौनरुक्त्यं यथाऽऽह साहित्यदर्पणकृत्—'धनुर्ज्यादिषु शब्देषु शब्दास्तु धनुरादयः । आरूढत्वादिबोधाय' इति । तथा च विद्युत्प्रायललाटलोचनशिखिज्वालाविमिश्र-

---

शिरमें स्थित मालामें विद्यमान नरकपालोंमें व्याप्त और गिरते हुए गङ्गाजलसे युक्त, बिजलीके सदृश भालस्थित लोचनानलकी ज्वालाओंसे मिश्रित कान्तिवाली,

पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवो
भूतेशस्य भुजङ्गवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटा जटाः ॥ १ ॥

एतच्च—

सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हि-

त्विषः=विद्युतं प्रैतीति विद्युत्प्रायः 'कर्मण्यण्' ( तडित्सदृश इत्यर्थः ) तादृशो यो ललाटलोचनशिखी ( भालस्थनयनाऽग्निः ) तस्य या ज्वाला ( शिखाः ) ताभिर्विमिश्राः ( मिलिताः ) त्विट् ( दीप्तिः ) यासां ताः । एवम् अकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवः=अकठोरा ( कोमल ) या केतकशिखा ( केतकी=कुसुमाऽऽग्रम् ) तया सन्दिग्धः ( 'केतकीकुसुमशिखेयमाहोस्विदिन्दुरेखे'ति संशयितः ) मुग्धः (सुन्दरः) इन्दुः ( चन्द्रः ) यासु ताः। एवं च भुजङ्गवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटाः = भुजङ्गाः ( सर्पाः ) एव वल्लयः (लताः) ता एव वलयस्रजः ( मण्डलाकारेण स्थिताः मालाः ) ताभिर्नद्धः ( बद्धः ) जूटः ( समूहः ) यासां ताः । भूतेशस्य = महादेवस्य, तादृश्यो जटाः = सटाः, त्वां = सभाप्रमुखं, पान्तु = रक्षन्तु ।

गङ्गाजलपरिपूता भालाऽनलशिखामिश्रितकान्तयः सर्पमालाबद्धसमूहाः शिवजटा यत्र स्थिते चन्द्रमसि जनानां केतकीकुसुमशिखेयमिति संशयो भवति, तास्त्वां सभाप्रमुखं रक्षन्त्विति भावाऽर्थः।

अत्र विद्युत्प्रायेति आर्थी समासगोपमा तृतीयचरणे शुद्धसन्देहः, सन्देहलक्षणं यथा—'सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः' इति । सन्देह एव पर्यवसानाच्छुद्धत्वम् । चतुर्थे च चरणे रूपकम् । स्वभावोक्तिश्चेति । इत्येतेषामर्थाऽलङ्काराणां परस्पराऽङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । महामहिमदेवतासम्बद्धत्वादचेतनानामपि जटानां रक्षकत्वमवसेयम् । इयं रङ्गविघ्नोपशान्त्यर्थं सूत्रधारप्रयुक्ताऽष्टपदा नान्दी । तल्लक्षणं यथा—'आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी । पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'सूर्याऽश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।' इति ॥ १ ॥

सानन्दमिति । शूलपाणेः ताण्डवे नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हि-

'क्या यह कोमल केतकीपुष्पका अग्रभाग है ?' ऐसे सन्देहका विषयीभूत सुन्दर चन्द्रसे सम्बद्ध और सर्पलतारूप मण्डलाकारसे विद्यमान मालाओंसे जिसका समुदाय बाँधा गया है महादेवकी ऐसी जटायें तुम्हारी रक्षा करें ॥ १ ॥

यह भी :—

शिवजीके ताण्डव नृत्यमें नन्दीके हाथोंमें ताडित पखावजके शब्दमें मेघध्वनिके

**त्रासान्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसङ्कोचभाजि ।**
**गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणे-**

त्रासात् भोगसङ्कोचभाजि फणिपतौ नासाऽग्ररन्ध्रं सानन्दं विशति गण्डोड्डीनाऽलिमालामुखरितककुभः चीत्कारवत्यो वैनायक्यो वदनविधुतयो वः चिरं पान्तु इत्यन्वयः।

शूलपाणेः = शूलं पाणौ यस्य तस्य महादेवस्य। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' इत्यत्र सप्तमीतिपदज्ञापितो व्यधिकरणबहुव्रीहिः। 'प्रहरणाऽर्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति सप्तम्यन्तपदस्य परनिपातः। ताण्डवे = नृत्ये 'ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने।' इत्यमरः। नन्दिहस्ताहतमुरजरवाऽऽहूतकौमारबर्हित्रासात् = नन्दिनः (महादेवप्रमथप्रमुखस्य) हस्तेन (करेण) आहतः (ताडितः) यो मुरजः (मृदङ्गः), तस्य रवेण (शब्देन, मेघगर्जनसमेनेति भावः) आहूतः (आकारितः, आकृष्ट इति भावः, मृदङ्गशब्दे घनगर्जनभ्रान्त्या हर्षपारवश्येनाऽभिमुख इति सन्दर्भतात्पर्यम्, मेघध्वाने हर्षप्रकर्षान्मयूरनृत्यं कविसमयप्रसिद्धम्)। एतादृशः कौमारः (कुमारसम्बन्धी, कार्तिकेयस्येति भावः) 'यस्येदम्' इत्यण्। यो बर्ही (मयूरः, 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्।' इत्यमरः), तस्मात् त्रासात् (भयात्), 'भीत्राऽर्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वं, ततः 'अपादाने पञ्चमी' इति पञ्चमी। 'पञ्चमी भयेने' त्यत्र 'पञ्चमी' तियोगविभागात्समास इति कैयटमतम्। भाष्यकारमते तु 'सहसुपे'ति समासः। भोगसङ्कोचभाजि = भोगस्य (स्वशरीरस्य, अहिशरीरस्येति भावः, 'अहेः शरीरं भोगः स्यात्' इत्यमरः) सङ्कोचः (सङ्कुचितत्वम्) तं भजतीति भोगसङ्कोचभाक्, तस्मिन्; स्वरक्षणहेतुकनासाप्रवेशसिद्ध्यर्थमिति भावः। 'भजो ण्विः' इति ण्विः। एतादृशे फणिपतौ = सर्पराजे, महादेवेनोपवीतीकृते वासुकाविति भावः। नासाऽग्ररन्ध्रं=नासाऽग्रस्य (नासिकाऽग्रस्य) रन्ध्रं (छिद्रम्), विनायकस्येति भावः, पुष्करविवरमिति तात्पर्यम्। सानन्दम् = आनन्दपूर्वकम्, आनन्देन सहितं यथा तथेति क्रियाविशेषणं, 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः, 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सभावः। विशति = प्रविशति सति 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सप्तमी। गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभः = गण्डाभ्याम् (कपोलाभ्याम्) उड्डीनाः (उत्पतिताः, विधूननाद्वदनमण्डले स्थातुमशक्त्येति भावः) एतादृश्यो या अलिमालाः (भ्रमरपङ्क्तयः), ताभिः मुखरिताः (सशब्दीकृताः) ककुभः (दिशः) याभिस्ताः, 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः।

भ्रान्तिसे आये हुए कुमारजीके मयूरके त्राससे शरीरको सिकोड़ने वाले सर्पराज वासुकीके अपनी रक्षाके लिए गणेशजीकी नासिकाके छिद्रमें आनन्दपूर्वक घुसनेपर कपोलोंसे उड़नेवाली भ्रमरपंक्तिसे दिशाओंको शब्दायमान करनेवाले, चीत्कार

वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः ॥ २ ॥*

एवं च चीत्कारवत्यः = चीत्करणं चीत्कारः, 'ची' दित्यव्यक्तध्वनेरनुकृतिः, चीत्कारोऽस्ति आसु ताश्चीत्कारवत्यः भीतिजन्यध्वनियुक्ता इति भावः। 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इति मतुप्, 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' इति मस्य वः। स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'उगितश्चे'ति ङीप्। ईदृश्यो वैनायक्यः=विनायकसम्बन्धिन्यः। विनयतीति विनायकः, 'ण्वुल्तृचौ' इति ण्वुल्। विनायकस्येमा वैनायक्यः, विनायकस्येति भावः। 'तस्येदम्' इत्यण्। 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' इति ङीप्। वदनविधुतयः = आननकम्पनानि, वः = युष्मान्, सभ्यानिति भावः। 'बहुवचनस्य वस्नसौ' इति वसादेशः। चिरं = बहुकालं, पान्तु = रक्षन्तु। वदनविधुतीनामचेतनत्वेऽपि विनायकसम्बन्धित्वाद्रक्षणसामर्थ्यमवसेयम्।

शिवताण्डवकाले नन्दिताडितमृदङ्गे घनगर्जितभ्रान्त्या कार्तिकेयमयूरे समुपयाते शिवोपवीतभूतो वासुकिर्यदा तत्त्रासात्स्वरक्षणार्थं गजाननपुष्कराऽग्रं प्राविशत्तदा चीत्कारशब्दयुक्तानि गजाननमुखकम्पनानि युष्मान् सर्वदा रक्षन्त्विति भावः।

अत्र फणिपतेर्वासुकेर्विनायकनासाग्ररन्ध्रप्रवेशाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्त्यलङ्कारः। तल्लक्षणं यथाः—

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्याऽतिशयोक्तिर्निगद्यते।
भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽसम्बन्धस्तद्विपर्ययौ॥
पौर्वापर्याऽत्ययः कार्यहेत्वोः सा पञ्चधा ततः॥' इति।

तथा बर्हिणो मुरजरवे घनगर्जितभ्रान्त्या भ्रान्तिमदलङ्कारश्च। तल्लक्षणं यथा—'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान्प्रतिभोत्थितः' इति। स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षणं

शब्दसे युक्त गणेशजीके मुखके कम्पन तुम्हें बहुत समय तक रक्षा करें॥ २॥

*अपि च—दन्तश्रेणिषु सङ्गलत्कलकलव्यावर्त्तनव्याकुला
नासालोचनकर्णकुञ्जरकुहरेपूद्गदद्ध्वानिनः।
गण्डग्रन्थ्यभिघातशीर्णकणिकाश्चूडालवन्त्यूर्मयः
शम्भोर्ब्रह्मकपालकन्दरपरिस्पन्दोल्वणाः पान्तु वः॥

अन्यच्च—पक्ष्मालीपिङ्गलिम्नः कण इव तडितां यस्य कृत्स्नः समूहो
यस्मिन्ब्रह्माण्डमीषद्विघटितमुकुले कालयज्वा जुहाव।
अर्चिर्निष्टप्तचूडाशशिगलितसुधासारशात्कारिकोणं
तार्तीयीकं पुरारेस्तदवतु मदनप्लोषणं लोचनं वः॥

इति श्लोकद्वयमपि 'सानन्दे'ति श्लोकानन्तरं कस्मिंश्चित्पुस्तके दृश्यते, तन्न मनोरमम्। 'नान्दीं पदद्वादशभिरष्टाभिर्वाऽप्यलङ्कृताम्' इति नान्दीलक्षणायोगात्।

( नान्द्यन्ते )

सूत्रधारः—अलमलम् । उदितभूयिष्ठ एव भगवानशेषभुवनद्वीपदीपः । तदुपतिष्ठे । ( प्रणम्य ) ।

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते !

---

यथाः—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति ।

कुत्रचिच्छ्लोऽयं पूर्वपठितः । तदनन्तरमपि चेति निवेश्य चूडापीडेत्याकारकश्लोको विन्यस्तः ॥ २ ॥

नान्द्यन्त इति । आशीः प्रतिपादनपरा देवस्तुतिर्नान्दी । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् । तथा चाऽत्र श्लोकद्वयात्मकत्वेनाऽष्टपदा नान्दी । सूत्रधारलक्षणमाह भरतः—

'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत्सूत्रधार उदीरितः ॥' इति ।

सूत्रं ( नाटकीयव्यवस्थां ) धारतीति सूत्रधारः, 'कर्मण्यण्' इत्यण् । सूत्रधारपदस्याऽयं व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थः । अलमिति । अलम् अलं=पर्याप्तं पर्याप्तं, संभ्रमे द्विरुक्तिः । एकेनैव श्लोकेन नान्दीनिर्वाहात्किमर्थं श्लोकद्वयेन विस्तर आचरित इति तात्पर्यम् । क्वचित्तु 'अलमतिविस्तरेण' इति पाठस्तत्र अतिविस्तरेण=शब्दबाहुल्येन, अलं=पर्याप्तं, 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिके'ति नयेनाऽतिविस्तरस्य करणत्वं ततस्तृतीया । अतिविस्तरेण साध्यं नाऽस्तीति भावः । उदितभूयिष्ठः= उदितं भूयिष्ठं ( बहु, मण्डलमिति शेषः ) यस्य सः । अस्य बहुतरभाग उदितः, स्वल्प एवांऽशोऽवशिष्ट इति भावः । भगवान्=षड्विधैश्वर्यसम्पन्नः । अशेषभुवनद्वीपदीपकः=अशेषाणि ( सम्पूर्णानि ) भुवनानि ( लोकाः ) द्वीपानि ( जम्बूप्रभृतीनि ) च दीपयतीति तादृशः सूर्य इति भावः । तत्=तस्माद्धेतोः । उपतिष्ठे= अभिमुखीभूय स्तुत्या पूजयामीति भावः । 'उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्' इत्यात्मनेपदम् । प्रणम्य=प्रणामं कृत्वा, स्वावधिकोत्कर्षबोधाऽनुकूलव्यापारः प्रणामः ।

कल्याणानामिति । विश्वमूर्ते ! त्वं कल्याणानां महसां भाजनम् असि । इह मयि धुर्यां लक्ष्मीं भृशं धेहि । हे देव ! प्रसीद । हे जगन्नाथ । नम्रस्य मे यद् यत् पापं तत् प्रतिजहि । हे भगवन् ! भूयसे मङ्गलाय भद्रं भद्रं वितर इत्यन्वयः ।

हे विश्वमूर्ते=विश्वं मूर्तिर्यस्य स विश्वमूर्तिस्तत्सम्बुद्धौ, हे सर्वाऽऽत्मक, 'सूर्य

---

( नान्दीके अन्तमें )

**सूत्रधार**—बस ! बस !! समस्त लोक और जम्बू आदि द्वीपोंके दीप सूर्य बहुत अंशोंमें उदित ही हो चुके हैं । इसलिए आराधना करता हूँ । ( प्रणाम कर ) हे विश्वमूर्ते ! सूर्यदेव ! आप मङ्गलरूप तेजोंके पात्र हैं, इस कारणसे यहां

धुर्यां लक्ष्मीमिह मयि भृशं धेहि देव ! प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ ! नम्रस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन्भूयसे मङ्गलाय ॥ ३ ॥

आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुतेः। त्वं, कल्याणानां=मङ्गलरूपाणां, महसां= तेजसां, भाजनं=पात्रं, स्थानमिति भावः। असि=वर्तसे। अतः इह=अस्मिन्, मयि मद्विषये, वैषयिकी सप्तमी। धुर्यां=धुरन्धरां, सकलसौख्यसम्पादनभारसमर्थामिति भावः। धुरं वहतीति धुर्या, तां 'धुरो यड्ढकौ' इति यत्। 'धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरन्धराः।' इत्यमरः। लक्ष्मीं=सम्पत्तिं, भृशम्=अत्यर्थं यथा तथा। धेहि= धारय, क्वचिद्देहीति पाठः। हे देव=हे भगवान्, प्रसीद=प्रसन्नो भव, अभीष्टाऽर्थ-वितरणेनाऽनुगृहाणेति भावः। हे जगन्नाथ=हे लोकनाथ, नम्रस्य=प्रणतस्य, भवत्येति शेषः। तादृशस्य मे=मम, यद् यत्=येन केनचिद्रूपेण स्थितं सर्वप्रकारं, पापं=प्रार्थितफलप्रतिबन्धकं दुरितं, तत्=सर्वमपि पापम्। अत्र यद्यदिति वीप्स-या यादृशोऽर्थ उक्तस्तस्यैव पूर्वपरामर्शकेन तच्छब्देनोपादानात् नाऽविमृष्टविधे-यांऽशो दोषः। तथा च तादृशं पापं प्रतिजहि=नाशय, हे भगवन्=हे देव, भूयसे= प्रचुराय, मङ्गलाय=कल्याणाय, भद्रं=कल्याणं, भद्रं=कल्याणं यथा तथा, वितर= देहि। प्रचुरकल्याणानुबन्धीनि कल्याणानि निर्विघ्नपूर्वकं प्रतिपादयेति भावः। 'इह हरिहरादीनपास्य भानोरुपस्थानेन प्रकरणनायकस्य ब्राह्मण्यं सूचितम्। अत एव देहीति ब्राह्मणोचिता प्रार्थना। सर्वक्षुद्रसत्त्वक्षयहेतोः प्रभातस्यादरेण प्रकरणकथा-बीजसूचनमपि। तथाहि—यद्यदिति वीप्सया शार्दूलाऽघोरघण्टविमर्दसूचनम्। पापप्रतिघाताऽनन्तरं च भद्रं भद्रमिति वीप्सया नायकस्य माधवस्य मालतीलाभेन तत्सखस्य मकरन्दस्य च मदयन्तिकालाभेनेष्टसिद्धिः सूचिता। भूयोमङ्गलपदेन कपालकुण्डलाऽपकृतमालतीलाभो विद्यालाभादिकं च सूचित' मिति टीककधुरन्धरो जगद्धरः। अत्र द्वितीयपादगतवाक्याऽर्थौ प्रति प्रथमपादगतवाक्याऽर्थस्य हेतुत्वा-त्काव्यलिङ्गाऽलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—'हेतोर्वाक्यपदाऽर्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।' इति। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद्गुरू चेत्।' इति तल्लक्षणम् ॥ ३ ॥

मुझमें सकल सौख्योंके सम्पादनमें समर्थ सम्पत्ति पर्याप्तरूपमें धारण करावें। हे देव ! आप प्रसन्न हों। हे जगन्नाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मेरा जो-जो पाप है उसे नष्ट कीजिए। हे भगवान् ! प्रचुर मङ्गलके लिए कल्याणको निर्विघ्न पूर्वक दे दें ॥ ३ ॥

( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ) मारिषु, सुविहितानि रङ्गमङ्गलानि । सन्निपतितश्च भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्राप्रसङ्गेन नानादिगन्तवास्तव्यो जनः । तत्किमित्युदासते भरताः । आदिष्टोऽस्मि विद्वत्परिषदा यथा— अद्य त्वयाऽपूर्ववस्तुप्रयोगेण वयं विनोदयितव्या इति । तत्परिषदं निर्दिष्ट-

नेपथ्याऽभिमुखमिति । नेपथ्यं नाम रङ्गस्थलस्य पश्चाज्जवनिकाव्यवहितं वेशपरिग्रहस्थानम् । 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थली नेपथ्य इष्यते ।' इति वचनात् । मारिष = आर्य, मर्षतीति मारिषस्तत्सम्बुद्धौ, सूत्रधारोक्तनिर्वाहसहिष्णुरिति भावः । नटः सूत्रधारेण 'मारिष' इति वाच्यः, 'सूत्री नटेन भावेति तेनाऽसौ मारिषेति च ।' इत्युक्तेः । रङ्गमङ्गलानि = रङ्गस्य ( नाटयस्थानस्य ) मङ्गलानि ( देवस्तुत्यादिरूपा आचाराः ) । सुविहितानि = समीचीनरूपेण सम्पादितानि । भगवतः = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नस्य, 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥' इत्युक्तेः । कालप्रियनाथस्य = उज्जयिनीस्थस्य महाकालस्य । यात्राप्रसङ्गेन = यात्रायाः ( देवाऽर्चनोत्सवस्य ) प्रसङ्गेन ( अवसरेण ), 'यात्रा तु यापनोपाये गतौ देवार्चनोत्सवे ।' इति विश्वः, 'प्रसङ्गः स्यादवसर' इत्यमरः । नानादिगन्तवास्तव्यः = अनेकदेशवासी । जनः = लोकः, संनिपतितः=समायातः । तत् = तस्माद्धेतोः । किमिति=केन प्रकारेण, भरताः = नटाः, अभिनेतार इति भावः । 'भरता इत्यपि नटाः' इत्यमरः । उदासते = उदासीना भवन्ति, किमर्थमभिनयं न प्रदर्शयन्तीति भावः । विद्वत्परिषदा=विदुषां ( विपश्चिताम् ) परिषदा ( सभया ), आदिष्टः = आज्ञप्तः । किमादिष्ट इति प्रतिपादयति—यथेति । अपूर्ववस्तुप्रयोगेण = अपूर्वस्य (नूतनस्य) वस्तुनः (इतिवृत्तस्य प्रयोगेण विधानेन, अभिनयेनेति भावः) । 'अपूर्वप्रकरणेने'ति पाठे प्रकरणेन = रूपकविशेषेणेत्यर्थः । प्रकरणलक्षणं यथा—

'भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथ वा वणिक् ॥
साऽपायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ॥
नायिका कुलजा क्वापि, वेश्या क्वाऽपि द्वयं क्वचित् ।

तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः । कितवद्यूतकारादिविटचेटकसङ्कुलः ॥' इति ।

वयं = सामाजिकाः, विनोदयितव्याः=विनोदयितुमर्हाः, अद्भुतरूपकाऽभिनयेनाऽ-

( नेपथ्यकी ओर देखकर )

आर्य ! नाट्यस्थानमें मङ्गल अच्छी तरहसे किये गये हैं । भगवान् महाकालके यात्रोत्सवप्रसङ्गसे अनेक दिगन्तवासी जन आये हुए हैं । इस कारण क्यों नट लोग उदासीन हो रहे हैं ? विद्वत्सभाने मुझे आज्ञा दी है कि—'आज तुम अपूर्व-इति-

गुणप्रबन्धेनोपतिष्ठावः।

नटः—( प्रविश्य ) भाव, कतमे ते गुणा यानुदाहरन्त्यार्यमिश्रा भगवन्तो भूमिदेवाः।

सूत्रधारः—

भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि।

स्माकं मनोविनोदः कर्तव्य इति भावः। तत्=तस्माद्धेतोः। तदिति सुबन्तप्रतिरूपकमव्ययम्। निर्दिष्टगुणप्रबन्धेन=निर्दिष्टा ( विद्वत्परिषदा कृतनिर्देशाः ) ये गुणाः, तत्प्रबन्धेन तत्सम्पादनेन उपतिष्ठावः=उपस्थिता भवावः। 'तत्किमित्युदासते भरताः' इति पाठान्तरं, तत्र किमिति=केन कारणेन, भरताः=नटाः, उदासते= उदासीना भवन्ति, किमर्थमेतावत्कालपर्यन्तमभिनयं न प्रयुञ्जन्तीति भावः।

नट इति। क्वचित् 'पारिपार्श्विक' इति पाठान्तरम्। सूत्रधारस्याऽनुचरः पारिपार्श्विकः, तस्मात्किंचिदूनो नट इति विवेकः। भाव=विद्वन्, उक्तिरियं 'सूत्रधारं वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्विकः। सूत्रधारो मारिषेति' साहित्यदर्पणाऽनुसारिणी। पारिपार्श्विकपदं नटस्याऽप्युपलक्षकम्। 'भावो विद्वान्' इत्यमरः। कतमे=कियन्तः, बहुवचनस्वारस्यादेषोऽर्थः। आर्यमिश्राः=आर्याश्च ते मिश्राः (पूज्या) इति, 'कर्तव्यमाचरन्कामकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स तु ह्यार्य इति स्मृतः॥' इति लक्षणलक्षित आर्यः। पुस्तकान्तरे तु सूत्रधारवक्तृकमिदं वाक्यं, तत्र 'आर्यविदग्धा मिश्रा' इति पाठान्तरं; ततश्च विदग्धाः=काव्यरसनिपुणा इत्यर्थोऽवसेयः। भगवन्तः=ऐश्वर्यसम्पन्नाः। भूमिदेवाः=ब्राह्मणाः, कारणिकप्राश्निकप्रधानेषु ब्राह्मणेषु छत्रिन्यायेनाऽन्येषामपि परामर्शः।

तान्गुणान्निर्दिशति—भूम्नेति। रसानां भूम्ना गहनाः प्रयोगाः, सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि, आयोजितकामसूत्रम् औद्धत्यं, चित्राः कथाः, वाचि विदग्धता च ( एते गुणाः ) इत्यन्वयः। रसानां=शृङ्गारादीनां, भूम्ना=प्राचुर्येण, बहोर्भावो भूमा, तेन 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इतीमनिचि 'बहोर्लोपो भू च बहोः' इति बहोर्भूरादेशः। गहनाः=गम्भीराः, विदग्धजनमात्रग्राह्या इति भावः, वसनावृतकामिनीकुच-

वृत्तके प्रयोगसे हम लोगोंका मनोरञ्जन करो'। इसलिए हम निर्दिष्ट गुणोंके प्रबन्धसे सभामें उपस्थित हो रहे हैं।

नट—( प्रवेश कर ) विद्वन्। वे गुण कितने हैं? जिन्हें महाकुलीन ऐश्वर्यसम्पन्न ब्राह्मण लोग बतलाते हैं।

शृङ्गार आदि रसोंकी प्रचुरतासे गम्भीर अभिनय, सौहार्दसे नायक और उनके

औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्राः कथा वाचि विदग्धता च ॥ ४ ॥
नटः—भाव ! कस्मिन्प्रकरणे ।

कलशवद्व्यञ्जनाव्यापारेणैव रसा ग्राह्या न त्वभिधाव्यापारमात्रप्रसाधनग्रहिलैः स्थूलमतिभिरिति तात्पर्यम् । यथाहुर्ध्वनिकृतः—

'शब्दाऽर्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते ।
वेद्यते स हि काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥' इति ।

प्रयोगाः = अभिनयाः, सौहार्दहृद्यानि=शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत् 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः' इति हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृदो भावः सौहार्दं, 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः । हृदयस्य प्रियाणि हृद्यानि, 'हृदयस्य प्रिय' इति यत्प्रत्ययः । 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदयस्य हृदादेशः । सौहार्देन ( निरुपाधिकप्रेम्णा ) हृद्यानि ( मनोहराणि ), विचेष्टितानि=नायकतन्मित्रादीनां व्यापाराः, आयोजितकामसूत्रम् = आयोजितं ( विहितम् ) कामसूत्रम् ( अनङ्गप्रयोगः ) यस्मिंस्तत् एतादृशमौद्धत्यम् = उद्धतस्य भावः कर्म वा औद्धत्यं, नायकस्य वीरबीभत्साऽद्भुतरौद्ररसावलम्बनत्वम् ।' 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ् । चित्राः = विस्मयरसोत्पादिकाः, कथाः = प्रकरणप्रबन्धकल्पनाः, वाचि = वचने, विदग्धता च=चातुर्यं च, एते गुणा वर्तन्त इति शेषः ।

अथ प्रकरणप्रकर्षप्रतिपादनरूपस्य कार्यस्य रसप्राचुर्यगहनप्रयोगरूप एकस्मिन्साधके सत्यपि सौहार्दहृद्यविचेष्टितादीनां बहूनां कारणानां सद्भावात्समुच्चयोऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'समुच्चयोऽयमेकस्मिन्सति कार्यस्य साधके ।
खले कपोतिकान्यायात्तत्करः स्यात्परोऽपि चेत् ।
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये ॥' इति ।

इन्द्रवज्रा वृत्तं, 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' इति तल्लक्षणात् । पद्यमिदं नटवक्तृकं पाठान्तरे ॥ ४ ॥

नट इति । कस्मिन्प्रकरणे = कतमस्मिन् रूपकविशेषे, नैतादृशः प्रबन्धः प्रायेण लक्ष्यत इति भावः ।

---

मित्रादिकोंकी मनोहर चेष्टायें, कामप्रयोगके विधानसे नायकका वीर, बीभत्स, अद्भुत और रौद्र रसका अवलम्बनत्व, अद्भुत रसको उत्पन्न करनेवाली कलायें और वचनमें चतुरता ये इतने गुण हैं ॥ ४ ॥

नट—विद्वन् ! किस प्रकरणमें ( इतने गुण हैं ) ?

सूत्रधारः—( विचिन्त्य ) स्मृतम् । अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम् । तत्र ब्राह्मणाः केचित्तैत्तिरीयाः पङ्क्तिपावनाः काश्यपाः पञ्चाग्नयः सोमपीथिनो धृतव्रता उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति ।

सूत्रधार इति—विचिन्त्य = विमृश्य । दक्षिणापथे दक्षिणदेशे । 'विदर्भेषु' इत्यधिकं पाठान्तरम् । पद्मपुरं=पद्मावती । तैत्तिरीयाः—तित्तिरिणा ( ऋषिविशेषेण ) प्रोक्तः तैत्तिरीयः ( शाखा भेदः ), 'तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्' इति छण्, 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' इति छस्येयः, 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धिश्च । तैत्तिरीयमधीयते विदन्ति वा तैत्तिरीयाः = कृष्णयजुर्वेदशाखाविशेषस्य अध्येतारो वेत्तारो वेत्यर्थः । 'तदधीते तद्वेद' इत्यण्, तस्य 'प्रोक्ताल्लुक्' इति लुक् । 'तैत्तिरीयिण' इति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः, व्युत्पत्तौ भेदः स यथा–तैत्तिरीयः ( शाखाभेदः ) अस्ति येषां ते तैत्तिरीयिणः, 'अत इनिठनौ' इतीनिः ।

पङ्क्तिपावनाः=पङ्क्तिंपावयन्तीति श्रेणीपवित्रकारक इत्यर्थः । पङ्क्तिपावनलक्षणं यथाऽऽह भगवान्मनुः—

'अग्रयाः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियाऽन्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाऽग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गविद् ।
ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ॥
वेदाऽर्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥(३।१८४–१८६) इति ।

काश्यपाः=काश्यपगोत्राः । क्वचिच्च 'चरणगुरव' इति विशिष्टः पाठः । चरणे ( वेदशाखायाम् ) गुरवः उपनयनसंस्काराऽऽधानाऽनन्तरं वेदाऽध्यापकाः, 'स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।' इति स्मृतेः । पञ्चाऽग्नयः=पञ्च ( पञ्चसंख्यका दक्षिणाऽग्निगार्हपत्याहवनीयसभ्याऽऽवसथ्यरूपाः ) अग्नयः ( अनलाः ) येषां ते सोमपीथिनः=सोमः (लताविशेषो हुतशेषो वा) तत्पीथिनः ( तत्पायिनः ) । धृतव्रताः=धृतं ( गृहीतम् ) व्रतं ( चान्द्रायणादिनियमः ) यैस्ते । उदुम्बरनामानः= उदुम्बराऽख्यकुलनामयुक्ताः, क्वचित् 'डम्बरम्'इति पाठः, तत्र डम्बरम् ( उत्कर्षसूचकं, प्रसिद्धं वा) नाम (कुलनाम) येषां ते इत्यर्थः 'प्रसिद्धौ डम्बरं विदुः' इति विश्वः ।

सूत्रधार—( विचार कर ) स्मरण हुआ ? दक्षिण देशमें पद्मपुर नामका नगर है । वहाँपर तैत्तिरीय शाखावाले पङ्क्तिपावन, काश्यपगोत्र, दक्षिणाग्नि आदि पाँच अग्नियोंका आधान करनेवाले, सोमपायी, चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले उदुम्बर नामवाले, वेद वा शुद्धचैतन्यरूप ब्रह्मतत्त्वको जानने वाले कुछ ब्राह्मण रहते हैं ।

**ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरि श्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते ।**
**इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः ॥ ५ ॥**

ब्रह्मवादिनः = ब्रह्म ( वेदं, शुद्धचैतन्यरूपं तत्त्वं वा ) विदन्तीति वेदज्ञा ब्रह्मतत्त्वाऽभिज्ञा वेत्यर्थः ।

त इति । ते श्रोत्रियाः तत्त्वविनिश्चयाय भूरि श्रुतं शाश्वतम् आद्रियन्ते । इष्टाय पूर्ताय च कर्मणे अर्थान् ( आद्रियन्ते ), अपत्याय दारान् ( आद्रियन्ते ) आयुश्च तपोऽर्थम् ( आद्रियन्ते ) इत्यन्वयः । ते = पूर्वोक्ताः, श्रोत्रियाः = वेदाध्यायिनः, छन्दोऽधीते इति विग्रहे, 'श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' इति सूत्रेण छन्दःशब्दस्य श्रोत्रादेशो घन्प्रत्ययश्च निपात्यते । एकां शाखामधीत्य श्रोत्रियो भवतीति धर्मशास्त्रम् । पद्मपुराणे तु श्रोत्रियलक्षणं यथा—

'जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्याभ्यासी भवेद्विप्रः श्रोत्रियस्त्रिभिरेव हि ॥' इति

तत्त्वविनिश्चयाय=तत्त्वस्य ( ब्रह्मरूपस्य, कुत्रचित्तत्त्वस्थाने धर्मपदपाठः ) विनिश्चयाय ( विनिर्णयाय, असंभावनाविपरीतभावनानिरसनपुरस्सरमवधारणायेति भावः ), 'तादर्थ्ये चतुर्थी' इति चतुर्थी, एवं परत्राऽपि । भूरि = अधिकं, श्रुतं=शास्त्रश्रवणं, शाश्वतं = नित्यम्, आद्रियन्ते = श्रद्दधति, न तु विवादे जयलाभायेति भावः । इष्टाय कर्मणे=यागाद्यनुष्ठानक्रियायै, पूर्ताय कर्मणे च=तडागादिनिर्माणकार्याय च, अर्थान्=धनानि, आद्रियन्ते=श्रद्दधति, न तु तत्तदिन्द्रियवृत्तिपूरणायेति तात्पर्यम् । अपत्याय = सन्तानाय, न पतत्यस्मादित्यपत्यमिति निरुक्ते यास्कः । 'अपत्यं तोकं तयोः समे ।' इत्यमरः । दारान् = पत्नीं, 'भार्या जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः' इत्यमरः । आद्रियन्ते = श्रद्दधति, न तूत्कटमदनवृत्तिपूरणायेत्यभिप्रायः । आयुश्च जीवनं च, तपोऽर्थं=तपश्चरणाऽर्थं, न तु जीवनलोलुपत्वेन मृतिभीत्या वेति हृदयम् । अत्राऽन्यव्यपोहस्य आर्थोत्वादार्थी परिसंख्याऽलङ्कारः, तल्लक्षणं यथा—

'प्रश्नादप्रश्नतो वाऽपि कथिताद्वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥ परिसंख्या'। इति ।

एवं चाऽत्र श्रुतादीनां कर्मणामाद्रियन्त इत्येकया क्रिययाऽभिसम्बधात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारः, तल्लक्षणं यथा—

'पदार्थानां प्रस्तुतत्तानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एकधर्माऽभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥' इति ।

---

श्रोत्रिय ब्राह्मण तत्त्वनिर्णयके लिए अधिक शास्त्रश्रवणका, यज्ञादि अनुष्ठान और तड़ाग आदिके निर्माण कार्यके लिए धनोंका, सन्तानके लिए पत्नीका और तपस्याके लिए आयुका नित्य आदर करते हैं ॥ ५ ॥

तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्य पुत्रः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्तमानः स्वकृतिमेवंगुणभूयसीमस्माकं हस्ते समर्पित-

तथा चाऽनयोः (परिसंख्यातुल्ययोगितयोः) एकाश्रमस्थितिरूपः सङ्करः। तल्लक्षणं च यथा—'अङ्गाऽङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।

सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः ॥' इति।

इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ५ ॥

तदामुष्यायणस्येति। आमुष्यायणस्य=अदःकुलप्रसूतस्य, अमुष्य (कुलस्य) अपत्यं पुमान् आमुष्यायणस्तस्य, 'नडादिभ्यः' फक् इति फक् तस्य आयन्नादेशः, 'आमुष्यायणाऽऽमुष्यपुत्रिकाऽऽमुष्यकुलिकेति च' षष्ठ्या अलुक्, नस्य णत्वं च। तत्र भवतः=पूज्यस्य। 'सुगृहीतनाम्नः' इति क्वचित्कोऽधिकः पाठः। सुगृहीतं (शोभनोच्चारितम्) नाम (अभिधानम्) यस्य तस्येत्यर्थः। भट्टगोपालस्य=भट्टस्य (शास्त्रचतुष्टयाऽभिज्ञस्य शाखाचतुष्टयाऽभिज्ञस्य वा) गोपालस्य। पौत्रः=नप्ता, पुत्रस्याऽनन्तराऽपत्यं पुमान्, 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' इत्यञ्। पवित्रकीर्तेः=पूतयशसः। पुत्रः=आत्मसम्भवः। श्रीकण्ठपदलाञ्छनः=श्रीकण्ठपदं (श्रीकण्ठशब्दः) लाञ्छनं (चिह्नम्) यस्य सः, श्रीकण्ठनामधेय इत्यर्थः। पदवाक्यप्रमाणज्ञः=पदं (व्याकरणशास्त्रम्) वाक्यं (मीमांसाशास्त्रम्) प्रमाणं (न्यायशास्त्रम्) पदवाक्यप्रमाणानि, तानि जानातीति, 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कः। भवभूतिर्नाम=प्रसिद्धः, 'तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव। गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ।' अस्य वा 'साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' एतस्य वा पद्यांशस्य निर्माणेन चमत्कृतविद्वत्परिषदः प्राप्तभवभूतिपदवीक इति भावः। महावीरचरितोत्तररामचरितमालतीमाधवाऽभिधानस्य रूपकत्रितयस्य कर्त्ता नाम्ना श्रीकण्ठ उपाधिना भवभूतिरासीदित्येषोऽऽर्थोऽस्माभिरुत्तररामचरितस्य व्याख्यायां प्रसाधितस्तत्रैव निध्यातव्यः। क्वचित् 'जातूकर्णीपुत्र' इत्यधिकः पाठस्तत्र 'जातूकर्णीति' कवेर्मातुर्नामाऽवसेयम्। भरतेषु=नटेषु। निसर्गसौहृदेन=स्वभावसौहार्देन, स्वाभाविकप्रेम्णेति भावः। वर्तमानः=विद्यमानः, एवंगुणभूयसीम्=एवंगुणैः (ईदृशैर्गुणै रसप्राचुर्यगहनप्रयोगप्रभृतिभिर्गुणैरिति भावः) भूयसीम् (अधि

अतः उस कुलमें उत्पन्न, पूजनीय भट्टगोपालके पौत्र, पवित्र कीर्तिवाले, नीलकण्ठके पुत्र, व्याकरण, मीमांसा और न्यायशास्त्रके विद्वान्, 'भवभूति' उपाधिवाले, श्रीकण्ठनामक कविने नटोंमें स्वाभाविक सौहार्दसे व्यवहार कर ऐसे गुणोंसे अधिक

वान्। यत्र खल्वियं वाचोयुक्तिः।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पस्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥ ६॥

काम्)। स्वकृतिम्=आत्मकृतिं, प्रकरणरूपामिति शेषः। यत्र=कृतौ, वाचोयुक्तिः=वचोभङ्गिः, 'वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु' इति षष्ठ्या अलुक्।

तां वाचोयुक्तिं प्रदर्शयति—य इति। ये नाम केचित् इह नः अवज्ञां प्रथयन्ति, ते किमपि जानन्ति, तान् प्रति एष यत्नो न। तु मम कोऽपि समानधर्मा उत्पत्स्यते; हि अयं कालो निरवधिः, पृथ्वी च विपुला इत्यन्वयः। ये नाम केचित्=अज्ञामत्सरिणश्च जनाः, इह=अस्यां, मत्कृताविति भावः। नः=अस्माकम्, 'अस्मदो द्वयोश्च' इति बहुवचनम्। अवज्ञाम्=अवहेलनं, 'रीढाऽवमाननाऽवज्ञाऽवहेलनमसूर्क्षणम्।' इत्यमरः। प्रथयन्ति=विस्तारयन्ति, ते=तादृशा जनाः, किमपि=अनिर्वाच्यं रहस्यमज्ञानकल्पितं मत्सररचितं वा, जानन्ति=विदन्ति, तान् प्रति=अज्ञान्मत्सरिणश्च प्रति, 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति प्रतियोगे द्वितीया। एषः=समीपतरवर्ती, यत्नः=प्रयत्नः, प्रकरणरूपा कृतिरिति भावः। न=न विद्यते। अबोधपरवशान्समत्सरांश्च जनाननूद्य नाऽयमस्मदीयः प्रयत्नः। तर्हि कस्य कृते यत्नोऽयमिति प्रतिपादयति—उत्पस्यत इति। तु=परन्तु, तादृशजनसमाराधनाय मद्यत्नोऽभावेऽपीति भावः। मम=यत्नकर्तुः, मालतीमाधवरूपायाः कृते रचयितुः कृतिन इति भावः। पूर्वार्द्धे स्वस्याऽनितरसाधारण्येन गर्वाऽविर्भावान्न इति बहुवचनमुत्तरार्द्धे तु स्वस्य समानधर्मणोऽप्युत्पत्तिसम्भावनया गर्वोपमर्दान्ममेत्येकवचनं हेतुगर्भत्वेन न दोषाधायकमित्यवधेयम्। कोऽपि=अनिर्वचनीयः, भविष्यगर्भस्थत्वादिति भावः। समानधर्मा=तुल्यगुणकः 'धर्मादनिच् केवलात्' इति समासाऽन्तोऽनिच्प्रत्ययः। उत्पत्स्यते=उत्पत्तिं लप्स्यते अत उत्तरं क्वचित् 'अस्ति' इत्यपि पाठस्तत्र विद्यते इत्यर्थः। स्वस्य समानधर्मण उत्पत्तौ हेतुं प्रदर्शयति—हि यतः, 'हि हेताववधारणे' इत्यमरः। अयं नित्यत्वेन सदा सन्निहितः, कालः=समयः,

अपनी कृति (मालतीमाधव—नामक प्रकरण) को हमारे हाथोंमें समर्पण किया। जिस (कृति) पर यह वचनकी युक्ति है—

जो कोई इस (कृति) पर हमारी अवज्ञाको प्रकाशित करते हैं वे अज्ञान वा मात्सर्यसे कल्पित कुछ अनिर्वाच्य रहस्यको जानते हैं, ऐसे अज्ञानी अथवा मत्सरी-

तदुच्यन्तां तत्प्रख्यापनाय सर्वे कुशीलवा यथा—स्वसङ्गीतप्रयोगे वर्णिकापरिग्रहे च त्वर्यतामिति। कविवर्णनां प्रति तेनैवमुक्तम्।

गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत्।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥ ७ ॥

---

निरवधिः=सीमारहितः, पृथ्वी च=भूमिश्च, विपुला=विस्तीर्णा सर्वाधारतासम्बन्धनियामकस्य कालस्य निःसीमत्वेन प्रायस्तादृश्या एव पृथिव्याश्च विस्तीर्णत्वेनाऽपि मत्सदृशजनस्याऽप्युत्पत्तेः सम्भावना वर्तते, तदर्थं एव मदीयोऽयं यत्नोऽतो न निष्फल इति भावः। अत्र तृतीयचरणाऽर्थं प्रति चतुर्थचरणरूपस्य वाक्यस्य हेतुत्वात्काव्यलिङ्गाऽलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।' इति। वसन्ततिलका वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।' इति ॥६॥

तदिति। तत्प्रख्यापनाय=तद्विस्तारणाय। कुशीलवाः=नटाः। वर्णिकापरिग्रहे=नेपथ्याधाने। त्वर्यतां=त्वरा क्रियताम्। 'जित्वरा संभ्रमे' भावे लोट्।

गुणैरिति। सतां गुणैः मम को गुणः प्रख्यापितो न भवेत्, तस्य यथाऽर्थनामा भगवान् ज्ञाननिधिः गुरुः इत्यन्वयः। सतां=सज्जनानाम्, अस्मद्गुरूणामिति भावः, गुणैः=ज्ञानविज्ञानादिभिः प्रख्याप्यमानैर्गुणैः, मम=भवभूतेः, तच्छिष्यस्येति भावः। को गुणः=कतमो गुणः, प्रख्यापितः प्रकटीकृतः, न भवेत्=न स्यात्। यस्य=मम, यथाऽर्थनामा=अर्थमनतिक्रम्य यथार्थं, तादृशं नाम यस्य सः, अन्वर्थाऽभिधान इत्यर्थः। भगवान्='उत्पत्तिं च स्थितिं चैव लोकानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानि'ति॥ इति लक्षणलक्षितः। ज्ञाननिधिः=तदाख्यः, गुरुः=आचार्यः, अस्तीति शेषः। अतस्तादृशगुरोः शिष्यस्य मे सर्वोऽपि गुणः प्रकाशितः स्यादेवेति भावः ॥ ७ ॥

---

जनोंके प्रति यह मेरी कृति नहीं है। परन्तु मेरा कोई समान गुणवाला पुरुष उत्पन्न होगा, क्योंकि यह काल सीमारहित है और पृथ्वी भी विस्तीर्ण है ॥ ६ ॥

इसलिए उसका अभिनय करनेके लिए नटोंको कहना चाहिये कि—'अपने सङ्गीतके अनुष्ठानमें और वेश बदलनेके लिए भी शीघ्रता करें'। कवि वर्णनके प्रति उन्होंने ऐसा कहा है :—

प्रकाशित किये जानेवाले सज्जनोंके गुणोंसे मेरा कौनसा गुण प्रकाशित न होगा, क्योंकि जिसके ( मेरे ) यथार्थ नामवाले भगवान् ज्ञाननिधि गुरु हैं ॥ ७ ॥

अपि च—

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः ॥ ८ ॥

'तदुच्यन्तामि' त्यत आरभ्य एतच्छ्लोकपर्यन्तभागो ग्रन्थान्तरेषु न लभ्यते।

आत्मगुणप्रख्यातौ हेत्वन्तरमाह—अपि चेति।

यदिति। यद् वेदाऽध्ययनं तथा उपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानं, तत्कथनेन किं? हि ततः नाटके कश्चिद् गुणो न। वचसां यत् प्रौढित्वम् उदारता च, यच्च अर्थतो गौरवं, तत् अस्ति चेत् तदेव पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः गमकमित्यन्वयः। यद् वेदाध्ययनं (वेदानाम्=ऋग्यजुःसामाऽथर्वणाम्, अध्ययनं=पठनम्) तथा=तेन प्रकारेण, उपनिषदाम्=अद्वैतप्रतिपादकानां वेदभागानां, सांख्यस्य=पञ्चविंशतितत्त्वप्रतिपादकस्य कापिलदर्शनस्य, योगस्य=षड्विंशतितमतत्त्वप्रतिपादकस्य पातञ्जलदर्शनस्य च, ज्ञानं=बोधः, तत्कथनेन किं=तयोः (तत्तच्छास्त्राऽध्ययनज्ञानयोः) कथनेन (अभिधानेन) किं=किं फलम्। तदेव फलाभावं प्रतिपादयति=न हीति। हि=यतः, ततः=तत्तच्छास्त्राऽध्ययनाज्ज्ञानाच्च, नाटके=रूपकविशेषे, प्रकरण इति भावः। अत्र नाटकपदं यौगिकं, न तु योगरूढं, योगरूढ्या प्रकरणाऽवाचकत्वात्। कश्चित्=कोऽपि, गुणः=वैशिष्ट्यं, न=न स्यात्, शास्त्राणामध्ययनज्ञानमात्रं कविकर्मणि नोत्कर्षाधायकं, तर्हि तत्र किमुत्कर्षाधायकमित्याह—यदिति। वचसां=वाक्यानां, यत्, प्रौढित्वं=विवक्षिताऽर्थनिर्वाहः, 'विवक्षिताऽर्थनिर्वाहः काव्ये प्रौढिरिति स्मृता।' इति वचनात्। यद्वा वाक्याऽर्थे पदस्य, पदाऽर्थे च वाक्यस्य योजना प्रौढिः, यथा=यः सत्कृत्याऽलङ्कृतां कन्यां ददाति स इति वाक्याऽर्थे 'कूकुद' इति पदस्य योजना, एवं च 'चन्द्र' इति पदाऽर्थे 'अत्रेर्नयन—समुत्थं ज्योतिः' इति वाक्यस्य योजना, यथाऽऽह मण्डितभणितिर्दण्डी—'पदाऽर्थे वाक्यवचनं वाक्यार्थे च पदाऽभिधा। प्रौढिर्व्यासमासौ च साऽभिप्रायत्वमस्य च॥' इति। उदारता=वैदग्ध्यं, तच्च ग्राम्यदोषाऽभावरूपं, यथाह पीयूषवर्षाऽपर-

फिर भी:—

जो वेदोंका अध्ययन तथा उपनिषत्, सांख्य और योगोंका ज्ञान है, उनके कथनसे क्या फल है? क्योंकि उनसे नाटकमें कुछ भी गुण नहीं है। वाक्योंकी जो प्रौढ़ता और उदारता है जो अर्थसे गुरुता है, वह है तो वही पाण्डित्य और कविकर्मनिर्वाहके नैपुण्यका ज्ञापक है॥ ८॥

नटः—तावद्भूमिकास्तथैव भावेन सर्वे वर्ग्याः पाठिताः। सौगतजरत्प्रव्राजिकायाः कामन्दक्यास्तु प्रथमां भूमिकां भाव एक एवाधीते। तदन्तेवासिन्यास्त्वहमवलोकितायाः।

पर्यायो जयदेवः—उदारता तु वैदग्ध्यमग्राम्यत्वात्पृथग्गता।' इति। यच्च अर्थतः=अभिधेयतः, गौरवं=गुरुत्वम्, अनर्घ्याऽर्थतेति भावः। तत्=पूर्वोक्तः प्रौढित्वादिर्गुणगणः, अस्ति चेत्=विद्यते यदि। तदेव=प्रौढित्वादिगुणगणभवनमेव, पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः=पाण्डित्यस्य (वेदादिशास्त्रव्युत्पत्तेः) वैदग्ध्यस्य (कविकर्मनिर्वहणनैपुण्यस्य) च, गमकं=ज्ञापकं, भवतीति शेषः। एतेन कवेः शास्त्रे कविकर्मणि च विलक्षणवैचक्षण्यं प्रतिपादितम्। अत्र श्लोके भारतीवृत्तेरङ्गविशेषः प्ररोचना सा च व्यङ्ग्या। भारतीवृत्तेर्लक्षणं यथा—'भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः।' इति तस्या अङ्गचतुष्टयं, तद्यथा—'तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे। अङ्गानि' इति। तत्र प्ररोचनालक्षणं यथा—'उन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना॥' इति। समुच्चयाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'सूर्याऽश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।' इति॥ ८॥

नट इति। तावत्=साकल्येन, 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे।' इत्यमरः। भूमिकाः=वेशाऽन्तरपरिग्रहाः, भूमिकालक्षणमाह भरतमुनिः—'अन्यरूपैर्यदन्यस्य प्रवेशः स तु भूमिका।' इति। वर्ग्याः=वर्गे भवा वर्ग्याः, नटवर्गस्था इति भावः। 'दिगादिभ्यो यत्' इति यत्प्रत्ययः। पाठिताः=शिक्षिताः। सौगतजरत्परिव्राजिकायाः=बौद्धवृद्धसंन्यासिन्याः, सुगतः (बुद्धः) देवता यस्याः सा सौगती, 'साऽस्य देवता' इत्यण्, 'टिड्ढाणञि' त्यादिना ङीप् च। जरन्ती चाऽसौ परिव्राजिका जरत्परिव्राजिका, 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति समासान्तस्य 'तत्पुरुषः समानाऽधिकरणः कर्मधारय' इति कर्मधारयसंज्ञा, ततः पूर्वपदस्य 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' इति पुंवद्भावः। सौगती चाऽसौ जरत्परिव्राजिका सौगतजरत्परिव्राजिका, तस्याः, पूर्वसूत्रैरेव समासादिप्रक्रिया। एतादृश्या एव दौत्ये प्राशस्त्यं, यदाह भरतमुनिः—'विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका।

प्रविश्य चाशु विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति॥' इति।

कामन्दक्याः=कामन्दकीनाम्न्याः (कामन्दककृतां नीतिं वेत्तीति कामन्दकी 'तदधीते तद्वेद' इत्यण्, 'टिड्ढाणञि' त्यादीना ङीप्।) भावः=विद्वान्, भवानिति शेषः। प्रथमाम्=आद्यां, भूमिकां=वेशभाषादिकम्, अधीते=अभ्यस्यति। 'इङ् अध्ययने' नित्योऽयमधिपूर्वः। तदन्तेवासिन्याः=तस्याः (कामन्दक्याः) अन्ते, वासिन्याः (शिष्यायाः)।

नट—विद्वान् आपने सम्पूर्ण रूपसे वेशविधान कराकर और उसी तरह सब

सूत्रधारः—ततः किम् ?

नटः—प्रकरणनायकस्य मालतीवल्लभस्य माधवस्य वर्णिकापरिग्रहः कथम् ।

सूत्रधारः—मकरन्दकलहंसयोः प्रवेशावसरे तत्सुविहितम् ।

नटः—तेन हि तत्प्रबन्धप्रयोगादेवात्रभवतः सामाजिकानुपास्महे ।

सूत्रधारः—बाढम् । एषोऽस्मि कामन्दकी संवृत्तः ।

---

सूत्रधार इति । ततः=तस्मात्, अनन्तरमिति शेषः ।

नट इति । वर्णिकापरिग्रहः=वेशग्रहणं, कथं=केन प्रकारेण, सम्पद्यत इति भावः ।

सूत्रधार इति । मकरन्दकलहंसयोः=मकरन्दस्य (माधवमित्रस्य) कलहंसस्य (माधवचेटस्य) च । प्रवेशाऽवसरे=प्रवेशस्य (रङ्गशालाप्रवेशस्य) अवसरे (प्रसङ्गे) 'प्रसङ्गः स्यादवसर' इत्यमरः । तत्=माधवभूमिकाग्रहणं, सुविहितं=सुष्ठु सम्पादितं, तन्न चिन्तनीयमिति भावः ।

नट इति । तेन=सर्वेषां प्रवेशादिकार्याणां विहितत्वेन, तत्प्रबन्धप्रयोगादेव=पूर्वोक्तप्रकरणाऽभिनयादेव, सामाजिकान्=सभ्यान्, उपास्महे=अनुरञ्जयामः ।

सूत्रधार इति । बाढम्=दृढम्, 'गाढबाढदृढानि च' इत्यमरः । यद्वा 'भृशप्रतिज्ञयोर्बाढम्' इत्यमराऽनुशासनात् तथैव विदध्मः इति प्रतिज्ञा । एषः=अयम्, अहमिति शेषः । कामन्दकी=कामन्दकीवेषधारी, संवृत्तः=सञ्जातः ।

---

नटवर्गमें स्थित पुरुषोंको पढ़ाया है । बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकीकी प्रथमभूमिका (वेश) का तो विद्वान् (आप) ही अभ्यास कर रहे हैं और मैं उनकी शिष्या अवलोकिताके वेशका अभ्यास कर रहा हूँ ।

**सूत्रधार**—उसके बाद क्या है ?

**नट**—प्रकरणके नायक और मालतीके प्रिय माधवका वेश-ग्रहण किस प्रकारसे सम्पन्न होगा ?

**सूत्रधार**—मकरन्द और कलहंसके प्रवेशके अवसरमें उसका अच्छी तरहसे विधान किया गया है ।

**नट**—तब तो पूर्वोक्त प्रकरणके अभिनयसे ही हमलोग माननीय सभ्यजनोंकी सेवा करें ।

**सूत्रधार**—अच्छी तरहसे करना चाहिए । यह मैं कामन्दकी हो गया हूं ।

नटः—अहमप्यवलोकिता ।

( इति निष्क्रान्तौ )

**इति प्रस्तावना**

( परिवृत्य रक्तपटिकानेपथ्य उभावुपविष्टौ प्रविशतः )

---

नट इति । अहम् = अहं नटोऽपि अवलोकिता = अवलोकितावेषधारी । संवृ इति शेषः ।

प्रस्तावनेति । प्रस्तावनालक्षणं यथा—

'नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥' इति ।

सा च प्रस्तावना पञ्चविधा, तन्नामानि यथा—

'उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगाऽतिशयस्तथा ।
प्रवर्तकाऽवलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥' इति ।

तत्र चेयं प्रयोगाऽतिशयाऽभिधाना प्रस्तावना । तल्लक्षणं—

'यदि प्रयोग एकस्मिन्भूयोऽप्यन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगाऽतिशयस्तदा ॥' इति ।

इति प्रस्तावना

परिवृत्य = पुनरागत्य । रक्तपटिकानेपथ्ये = रक्तपटिका ( लोहितवसनम् ) एव नेपथ्यं ( वेशः ), तस्मिन् । उपविष्टौ = विद्यमानौ, उभौ = द्वौ, कामन्दक्यवलोकितारूपधारिणौ सूत्रधारनटाविति भावः । प्रविशतः = प्रवेशं कुरुतः । पुस्तकान्तरेषु 'रक्तपटिकानेपथ्ये कामन्दक्यवलोकिते' इति पाठस्तत्र रक्तपटिका नेपथ्यं ययोस्ते एतादृश्यौ कामन्दक्यवलोकिते इत्यर्थः ।

---

नट—मैं भी अवलोकिता बन गया हूँ ।

( इस तरह दोनों निकलते हैं )

इति प्रस्तावना ।

( फिर आकर लाल कपड़ेके वेशमें कामन्दकी और अवलोकिताके वेशको धारण करने वाले दो नट-प्रवेश करते हैं )

कामन्दकी—वत्से ! अवलोकिते !

अवलोकिता—आज्ञापयतु भगवती। ( आँणवेदु भअवदी ।)

कामन्दकी—अपि नाम कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात् ?

---

कामन्दकीति। वदतीति शेषः। कामन्दक्याः संस्कृतभाषणं 'संस्कृतं सम्प्रयोक्तव्यं लिङ्गिनीषूत्तमासु चे' ति लक्षणग्रन्थमूलकं बोध्यम्।

अवलोकितेति। भगवती = ऐश्वर्यसम्पन्ना, आज्ञापयतु = आदिशतु, भवत्या आदेशं पालयामीति भावः।

कामन्दकीति। अधुना कामन्दकी समस्तप्रकरणोपयुक्तमुपक्षेपमाह—अपीत्यादि। उपक्षेपलक्षणं यथा—'काव्याऽर्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः।' इति।

इह तु मालतीमाधवयोर्विवाहनिर्वाहः काव्यार्थः। अपिः = प्रश्नार्थः। नाम = सम्भावनायाम्। कल्याणिनोः = कल्याणम् ( मङ्गलम्, मिथोऽनुरूपं वयोरूपभाग्यादिकम् ) अस्ति अनयोरिति कल्याणिनौ, तयोः कल्याणभाजनयोरिति भावः। 'अत इनिठनौ' इतीनिप्रत्ययः। अभिमतम् = अभीष्टम्। पाणिग्रहमङ्गलं = पाणिग्रहः (विवाहः) एव मङ्गलम् ( कल्याणम् ), 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति रूपकसमासः। स्यात् = भवेत्, सम्भावनायां लिङ्।

अनेन मालतीमाधवपरिणयरूपफलाऽर्थमौत्सुक्यप्रतीतेरारम्भो नाम प्रथमावस्था दर्शिता। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये।' इति।

एवं च मालतीमाधवयोः परिणयकारणभूतः मिथोऽनुरागो बीजं, तल्लक्षणं यथा—'स्वल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति। फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते॥' इति।

अत्र बीजाऽऽरम्भसत्त्वान्मुखसन्धिस्तल्लक्षणं यथा—

'यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानाऽर्थरससम्भवा।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम्॥' इति।

अस्योपक्षेपादीन्यङ्गानि भवन्ति।

---

कामन्दकी—बेटी अवलोकिते !

अवलोकिता—भगवती ! आज्ञा दें।

कामन्दकी—भूरिवसु और देवरातकी सन्तान कल्याणभाजन मालती और माधवका अभी पाणिग्रहणरूप मङ्गल कार्य होगा क्या ?

( सहर्षं वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा )

विवृण्वतेव कल्याणमान्तरज्ञेन चक्षुषा ।
स्फुरता वामकेनापि दाक्षिण्यमवलम्ब्यते ॥ ९ ॥

अवलोकिता--महान्खल्वेष भगवत्याश्चित्तावक्षेपः । आश्चर्यमाश्चर्यम् ! यदिदानीं चीरचीवरमात्रपरिच्छदां पिण्डपातमात्रप्राणवृत्तिमपि भगवतीमीदृशेष्वायासेष्वमात्यभूरिवसुर्नियोजयति तस्मिन्नुत्खण्डितसंसारावग्रहो

वामाऽक्षिस्पन्दनं=वामाक्षणः ( सव्यनेत्रस्य ) स्पन्दनम् ( किञ्चिच्चलनम् )। सहर्षं=हर्षपूर्वकम् ।

विवृण्वतेति । आन्तरज्ञेन इव कल्याणं विवृण्वता स्फुरता वामकेन अपि चक्षुषा दाक्षिण्यम् अवलम्ब्यत इत्यन्वयः । आन्तरज्ञेन इव=अभिप्रायवेदिना इव, मालतीमाधवपरिणये संशयरूपां मन्मनोवृत्तिं जानता इवेति भावः । कल्याणं= मङ्गलं, भाविविवाहरूपमिति भावः। विवृण्वता=सूचयता, स्फुरता=स्पन्दयुक्तेन वामकेन अपि=सव्येन अपि, अथ च प्रतिकूलेन अपि। स्वाऽर्थे कन्। 'वामं शरीरं सव्यं स्यात्' इत्यमरः। चक्षुषा=नेत्रेण । दाक्षिण्यं=दक्षिणत्वम्, अथ च अभीष्टकार्यसिद्धिसूचकत्वेन औदार्यम् । 'अवलम्ब्यते=आश्रीयते । स्त्रीणां वामाऽक्षिस्पन्दः शुभसूचक इति सामुद्रिकाः । मालतीमाधवपरिणये संशययुक्ताऽऽशयाया मम वामनयनं स्पन्दनेन मालतीमाधवयोः परिणयरूपं कल्याणं सूचयतीति तात्पर्याऽर्थः ।

अत्र श्लेषेण विरोधस्य परिहाराद्विरोधाभासाऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा चन्द्राऽऽलोके—'श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद्विरोधाभासता मता ।' इति ।

उत्प्रेक्षा च तयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । अत्राऽनुष्टुब्वृत्तं, तल्लक्षणं यथा छन्दोमञ्जर्याम्—'पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
गुरु षष्ठं तु पादानां शेषेष्वनियमो मतः ॥' इति ॥ ९ ॥

अवलोकितेति । चित्ताऽवक्षेपः=चित्तस्य ( मनसः ) अवक्षेपः ( चाञ्चल्यम् ) चीरचीवरमात्रपरिच्छदां=चीरेण ( जीर्णवस्त्रखण्डेन वृक्षत्वचा वा ) 'यत् चीवरं ( भिक्षुवस्त्रम् ), तदेव परिच्छदः ( आच्छादनम् ) यस्यास्ताम् । पिण्डपातमात्रप्राणवृत्तिं=पिण्डस्य ( भिक्षाऽन्नग्रासस्य ) पातः ( उदरे निक्षेपः ), तन्मात्रेण प्राणवृत्तिः ( प्राणधारणम् ) यस्यास्ताम् । ईदृशेषु=एतादृशेषु आयासेषु=परि-

( हर्षके साथ बाईं आँख फड़कनेका अभिनय कर )

अभिप्राय जानने वालेके सदृश, कल्याण की सूचना करने वाले वाम ( बांयां वा प्रतिकूल ) नेत्रसे भी दक्षिणता वा उदारता का अवलम्बन किया जाता है ॥९॥

अवलोकिता—भगवतीके चित्तका यह बड़ा चाञ्चल्य है। आश्चर्य है, आश्चर्य है।

युष्माभिरप्यात्मा निक्षिप्यते । ( महन्तो क्खु एसो भअवदीए चित्तावक्खेओ । अच्चरिअं अच्चरिअं । जं दाणिं चीरचीवरमेत्तपरिच्छदं पिण्डपाअमेत्तपाणउत्तिं वि भअवदीं ईरिसेसु आआसेसु अमच्चभूरिवसू णिओएदि । तस्सिं उक्खण्डिअसंसारा-वग्गहो तुम्हेहिं वि अप्पा णिक्खिविअदि । )

कामन्दकी--वत्से, मा मैवम् ।

**यन्मां विधेयविषये स भवान्नियुङ्क्ते स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः ।**
**प्राणैस्तपोभिरथवाभिमतं मदीयैः कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात् ॥**

---

श्रमेषु, मालतीमाधवयोर्विवाहसंघटनाय नैकविधप्रवृत्तिरूपपरिश्रमेष्विति भावः । तस्मिन् = नियोगे । युष्माभिरपि = भवादृशीभिरपि, परित्यक्तलौकिकाचाराभिरिति भावः । उत्खण्डितसंसाराऽवग्रहः = उत्खण्डितः ( उच्छिन्नः ) संसारः ( प्रपञ्चरूपः ) अवग्रहः ( प्रतिबन्धः, निःश्रेयसमार्गस्य प्रतिबन्ध इति भावः ) येन सः । एतादृश-आत्माऽपि, निक्षिप्यते = समर्प्यते । मालतीमाधवयोर्विवाहसंघटनात्मकं कार्यमेत-ल्लौकिकव्यापारप्रवणानां पुरन्ध्रीणामेव न तु गृहीतनिर्वाणमार्गाणां भवादृशीनां परिव्राजिकानामिति भावः ।

कामन्दकीति । मा मा एवम् = एवं न वक्तव्यमिति भावः ।

यदिति स भवान् मां विधेयविषये यत् नियुङ्क्ते तत् स्नेहस्य फलम्, असौ प्रण-यस्य सारः । मदीयैः प्राणैः अथवा तपोभिः सुहृदः अभिमतं कृत्यं घटेत यदि तत् कृतं स्यादित्यन्वयः । स भवान् = पूज्यः, भूरिवसुरिति भावः । मां=कामन्दकीम्, विधेय-विषये=कृत्यविषये, विवाहसंघटनरूपः इति भावः । नियुङ्क्ते=प्रेरयति । तत्=नियोजनं स्नेहस्य = प्रेम्णः, फलम् । असौ = नियोगः, प्रणयस्य=स्नेहस्य, सारः = स्थिरांऽशः, 'सारो बले स्थिरांऽशे च' इत्यमरः । स्नेहविश्वासभाजनं जनं विनैतादृशनियोगोऽ-न्यत्र न समर्प्यते इति भावः । ततः मदीयैः = मत्सम्बन्धिभिः, प्राणैः = असुभिः, अथवा = किं वा, तेभ्योऽपि प्रेमास्पदैः तपोभिः = शास्त्रप्रतिपादितनियमादिरूपै-राचरणैः । सुहृदः=सख्युः, भूरिवसोरिति भावः । अभिमतं = वाञ्छितं, मालती-माधवविवाहरूपमिति भावः । कृत्यं = कार्यं, घटेत यदि = सिद्ध्येच्चेत् । तत्=

---

जो कि इस समय जीर्ण भिक्षुवस्त्रको पहननेवाली, भिक्षाऽन्नमात्रसे प्राणधारण करनेवाली भगवती ( आप ) को भी मन्त्री भूरिवसुजी ऐसे परिश्रमोंमें लगाते हैं । ऐसे काममें आप भी साररूप प्रतिबन्धका परित्याग करनेवाली अपने आपको नियुक्त करती हैं ।

**कामन्दकी**—वत्से ! ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो । पूजनीय भूरिवसुजी मुझे मालती और माधवके विवाहरूप कर्तव्य कार्यमें जो नियुक्त करते हैं वह

किं न वेत्सि । यदैव नो विद्यापरिग्रहाय नानादिगन्तवाससाहचर्यमासीत्तदैवास्मत्सौदामिनीसमक्षमनयोर्भूरिवसुदेवरातयोः प्रवृत्तेयं प्रतिज्ञा अवश्यमावाभ्यामपत्यसम्बन्धः कर्तव्य इति । तदिदानीं विदर्भराजस्य मन्त्रिणा सता देवरातेन माधवं पुत्रमान्वीक्षिकीश्रवणाय कुण्डिनपुरादिमां पद्मावतीं प्रहिण्वता सुविहितम् ।

---

तर्हि, कृतं = विहितं, निःश्रेयसादप्यधिकं कार्यं कृतमिति भावः । स्यात् = भवेत् । परिव्राजिकाया अपि मम सुहृदः स्नेहं विश्वासं चाऽनुरुध्य विवाहसंघटनात्मकमेतत्कार्यं प्राणैस्तपोभिरपि संपादनीयमिति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १० ॥

माधवायैव मालती दातव्येति निर्बन्धः किमर्थं इत्याह—किमिति । यदा = यस्मिन्काले, 'सर्वैकाऽन्यकिंयत्तदः काले दा' इति दाप्रत्ययः । विद्यापरिग्रहाय = शास्त्राऽध्ययनाय, नानादिगन्तवाससाहचर्यं = नानादिगन्तवासेन ( बहुदेशवासेन ) साहचर्यम् ( सहचरभावः ), सहचरस्य भावः साहचर्यं, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्प्रत्ययः । तदा = तस्मिन्काले, अस्मत्सौदामिनीसमक्षम् = अस्माकं सौदामिनी अस्मत्सौदामिनी, 'अस्मदो द्वयोश्च' इति अस्मदो बहुवचनत्वम् । सौदामिनी नाम कामन्दक्याः प्रथमशिष्या । अस्मत्सौदामिन्याः समक्षं ( प्रत्यक्षम् ), अक्ष्णोर्योग्यं, यथार्थेऽव्ययीभावः । 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' इति टच् । प्रवृत्ता = सञ्जाता, अपत्यसम्बन्धः = अपत्ययोः ( कन्याकुमारयोः ) सम्बन्धः ( स्त्रीपुंरूपः, दाम्पत्यरूप इति यावत ), विवाह इति भावः । आन्वीक्षिकीश्रवणाय = न्यायशास्त्राध्ययनाय, प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानन्वीक्षा, यद्वा प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्याऽन्वीक्षणमन्वीक्षा इति वात्स्यायनमुनिः । अन्वीक्षया चरतीति आन्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् । 'चरती'ति ठञ्, 'टिड्ढाणञि' त्यादिना ङीप् । 'आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्तर्कविद्याऽर्थशास्त्रयोः ।' इत्यमरः । आन्वीक्षिक्याः श्रवणाय । कुण्डिनपुरात् = विदर्भराजधान्याः । पद्मावतीं = पद्मावत्याख्यां पुरीम्, प्रहिण्वता = प्रस्थापयता, सुविहितं = शोभनं कृतम् ।

---

स्नेहका फल है और प्रणयका सार है। मेरे प्राणोंसे अथवा तपस्याओंसे मित्रका अभीष्ट कार्य संपन्न हो तो यह श्रेष्ठ कार्य संपन्न होगा ॥ १० ॥

क्या नहीं जानती हो ? जिस समयसे ही विद्याके अध्ययनके लिए हम लोगों का अनेक दिगन्तोंमें वास और साहचर्य था उसी समय हमारे और सौदामिनीके समक्ष भूरिवसु और देवरातकी ऐसी प्रतिज्ञा हुई कि—'अवश्य हम दोनोंको अपत्य-

अपत्यसम्बन्धविधिप्रतिज्ञा प्रियस्य नीता सुहृदः स्मृतिं च ।
अलोकसामान्यगुणस्तनूजः प्ररोचनार्थं प्रकटीकृतश्च ॥ ११ ॥

अवलोकिता--किमिति मालतीममात्यो माधवस्यात्मना न प्रतिपादयति । येन चौर्यविवाहे भगवतीं त्वरयति । ( किति मालदिं अमच्चो माहवस्स अप्पणा ण प्पडिवादेइ । जेण चोरिअमिधाहे भअवदीं तुवरावेदि । )

---

सुविधाने युक्तिमाह—अपत्येति । अपत्यसम्बन्धविधिप्रतिज्ञा प्रियस्य सुहृदः स्मृतिं नीता च, अलोकसामान्यगुणः तनूजः प्ररोचनाऽर्थं प्रकटीकृतश्च इत्यन्वयः । अपत्यसम्बन्धविधिप्रतिज्ञा = अपत्ययोः ( स्वपुत्रमित्रदुहित्रोः ) यः सम्बन्धविधिः ( विवाहविधानम् ), तस्मिन्प्रतिज्ञा । प्रियस्य = प्रणयभाजनस्य, सुहृदः = मित्रस्य, भूरिवसोरिति भावः । स्मृतिं = स्मरणं, नीता च = प्रापिता च, देवरातेनेति शेषः । भूरिवसुः स्वकीयाऽपत्यसम्बन्धसंघटनरूपां प्रतिज्ञां विस्मरेदिति मनसिकृत्य तां प्रतिज्ञां सुहृदः स्मृतिपथं नीतवानिति भावः । एवं च—अलोकसामान्यगुणः = अलोकसामान्याः ( भुवने असाधारणाः ) गुणाः ( शास्त्रज्ञानसद्वृत्तादयः ) यस्य सः, एतादृशः तनूजः = पुत्रः, प्ररोचनाऽर्थं = रुचिजननाऽर्थं, प्रकटीकृतश्च = प्रकाशितश्च, मालत्या माधवस्य चाऽनुरागोत्पादनाऽर्थमनितरसाधारणगुणः स्वतनयो माधवोऽपि देवरातेन प्रेषित इति भावः । अत्र समुच्चयाऽलङ्कारः । अत्रोपेन्द्रवज्रा वृत्तम् । 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' इति तल्लक्षणम् ॥ ११ ॥

अवलोकितेति । किमिति = केन कारणेन, अमात्यः = मन्त्री, भूरिवसुरिति भावः । अमा ( सह ) वर्तत इति अमात्यः, 'अव्ययात्त्यप्' 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' इति त्यप् । आत्मना = स्वयम्, 'स्वयमात्मना' इत्यमरः । न प्रतिपादयति = न ददाति । चौर्यविवाहे = चौर्येण ( स्तेयेन ) विवाहे ( उद्वाहे ) चौर्यशब्दस्य निगूढत्वे लक्षणा । अतो निगूढभावेन विवाह इति भावाऽर्थः । त्वरयति = त्वरां करोति ।

---

सम्बन्ध करना चाहिए' । इसलिए अभी विदर्भराजके मन्त्री देवरातने पुत्र माधवको न्याय विद्याके श्रवणके लिए कुण्डिनपुरसे पद्मावतीमें भेजकर बहुत अच्छा किया है ।

देवरातजीने अपने पुत्र माधव और मित्र-कन्या मालतीके वैवाहिक सम्बन्धकी प्रतिज्ञाका प्रियमित्र भूरिवसुको स्मरण कराया और अलौकिक गुणवाले पुत्र माधवको रुचि उत्पन्न करनेके लिए प्रकाशित भी किया ॥ ११ ॥

अवलोकिता--मन्त्री भूरिवसुजी क्यों स्वयम् माधवको मालतीका दान नहीं करते हैं ? जिससे कि चोरीसे विवाहके लिए भगवतीको आतुर कर रहे हैं ।

कामन्दकी

तां याचते नरपतेर्नर्मसुहृन्नन्दनो नृपमुखेन ।
तत्साक्षात्प्रतिषेधः कोपाय शिवस्त्वयमुपायः ॥ १२ ॥

अवलोकिता—आश्चर्यमाश्चर्यम् । न खल्वमात्यो माधवस्य नामापि जानातीति निरपेक्षता लक्ष्यते । ( अच्चरिअं अच्चरिअं । ण क्खु अमच्चो माहवस्स णामं वि जाणादित्ति णिरवेक्खदा लक्खिअदि । )

---

अवलोकिताप्रश्नस्योत्तरमाह—कामन्दकी ।

तामिति । नरपतेः नर्मसुहृत् नन्दनो नृपमुखेन तां याचते । तत्साक्षात्प्रतिषेधः कोपाय, अयम् उपायस्तु शिव इत्यन्वयः । नरपतेः=राज्ञः, नर्मसुहृत्=नर्मणि ( क्रीडायाम् ) सुहृत् ( मित्रम् ) क्रीडासचिव इत्यर्थः । नन्दनः=नन्दननामकः, नन्दयतीति नन्दनः, णिजन्तात् 'टुनदि समृद्धौ' इति धातोः 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इति ल्युप्रत्ययः, अन्वर्थसंज्ञेयम् । नृपमुखेन=नृपः ( राजा ) एव मुखम् ( उपायः ) तेन राजद्वारेति भावः । तां=मालतीं, याचते=प्रार्थयति, 'नन्दनाय प्रयच्छे'ति राज्ञा याचयतीत्यर्थः । तत्साक्षात्प्रतिषेधः=तस्याः ( राजकर्तृकाया याचनायाः ) साक्षात्प्रतिषेधः ( प्रत्यक्षनिषेधः, 'नन्दनाय मालतीं न दास्यामी' त्येतद्रूप इति भावः )। कोपाय=क्रोधाय, राज्ञः कोपोत्पादनाय भविष्यतीति भावः । अयम्=एषः, चौर्यविवाहरूप इति भावः । उपायस्तु=अभीष्टफलजननसाधनं तु, शिवः=भद्ररूपः, परिणामसुखावह इति तात्पर्यम् । राजप्रार्थनायाः प्रत्यक्षनिषेधमपहाय निगूढरूपेण मालतीमाधवोद्वाहे संपादिते मिथः प्रणयेनैव रागिणोरनयोः परिणयः संवृत्तो नाऽत्र मामको व्यापार इति कथनेन भूरिवसोरपि राजकोपात्त्राणं भविष्यतीति हार्दोऽभिप्रायः । आर्या छन्दः ॥ १२ ॥

अवलोकितेति । अमात्यः=मन्त्री, भूरिवसुरिति भावः । इति=अत्र । निरपेक्षता=अपेक्षाराहित्यं, निर्गता अपेक्षा यस्य स निरपेक्षस्तस्य भावो निरपेक्षता । 'तस्य भावस्त्वतलौ' इति तल्प्रत्ययः, 'तलन्तं स्त्रियाम्' इति लिङ्गानुशासननयेन स्त्रीत्वम् ।

---

कामन्दकी–राजाके क्रीडा सहचर नन्दन, राजाके द्वारा मालतीको माँग रहे हैं। उस याचना का साक्षात् इन्कार करना राजाके कोपके लिए होगा और यह (चोरीसे विवाह ) उपाय तो परिणाममें सुखावह होगा ॥ १२ ॥

अवलोकिता—आश्चर्य है आश्चर्य है । मन्त्री भूरिवसुजी माधवका नाम भी नहीं जानते हैं ऐसी निरपेक्षता देखी जा रही है ।

कामन्दकी—वत्से, संवरणं तत्।

विशेषतस्तु बालत्वात्तयोर्विवृतभावयोः।
तेन माधवमालत्योः कार्यः स्वमतिनिह्नवः॥ १२॥

अपि च—

अनुरागप्रवादस्तु वत्सयोः सार्वलौकिकः।

---

कामन्दकीति। तत्=निरपेक्षत्वम्। संवरणं=संगोपनम्, राजभयेनाकारगोपनमिति भावः।

इतोऽपि हेतोः संवरणं कार्यमित्याह—विशेषत इति। तेन बालत्वाद् विवृतभावयोः तयोः माधवमालत्योः विशेषतः स्वमतिनिह्नवः कार्य इत्यन्वयः। तेन=अमात्येन, भूरिवसुनेति भावः। बालत्वात्=शैशवात्, अवस्थाया अल्पत्वेनाऽपरिपक्वबुद्धित्वादित्यर्थः। विवृतभावयोः=विवृतः (प्रकाशितः) भावः अभिप्रायः, अन्योन्यप्रणय इति भावः) याभ्यां, तयोः=तादृशोः, माधवमालत्योः विषये, स्वमतिनिह्नवः=स्वमतेः (मालतीमाधवप्रणयविषयस्य आत्मज्ञानस्य) निह्नवः (अपलापः, संवरणमिति भावः)। कार्यः=कर्तव्यः, अन्यथा अमात्येनाऽस्मत्प्रणयो ज्ञात एवं पित्राऽस्मदनुरागो विदित इति मत्वा माधवमालत्योर्लज्जया भीत्या वाऽनुरागभङ्गप्रसङ्गे सति प्रतिज्ञाच्युतिः स्यादिति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्। अत्र नायकयोर्मिथः प्रणयस्य बीजस्योपन्यासादुपक्षेपो नाम मुखसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा—'काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः।' इति॥ १२॥

अपि चेति। अपि च=अन्यदपि। मतिनिह्नवे हेत्वन्तरमपि वर्तते इति भावः।

तदेव प्रतिपादयति—अनुरागेति। वत्सयोः अनुरागप्रवादस्तु सार्वलौकिकः, हि राजनन्दनौ प्रतार्यौ एवम् अस्माकं श्रेय इत्यन्वयः। वत्सयोः=वात्सल्यभाजनयोः, मालतीमाधवयोरिति भावः। अनुरागप्रवादस्तु=प्रणयविषयकलोकवादस्तु, सार्वलौकिकः=सर्वलोकभवः, सर्वलोकेषु भवः सार्वलौकिकः, 'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' इति वार्तिकात् अध्यात्मादेराकृतिगणत्वाट्ठञ् प्रत्ययः। ततः 'अनुशतिकादीनां च' इत्युभयपदवृद्धिः। मालतीमाधवयोरनुरागवृत्तान्तः सर्वलोकप्रख्यातः, अतः स राज्ञाऽपि ज्ञातः स्यादिति सम्भावना। अनेन बीजस्य प्रणयस्य बहुलीकरणात्परिकरो नाम

---

कामन्दकी—वत्से! वह संवरण (आकारगोपन) है। अल्प वय होनेसे पारस्परिक प्रेम को प्रकाशित करनेवाले माधव और मालतीमें अमात्य भूरिवसुजी को उनके प्रेमकी जानकारी को छिपाना चाहिए॥ १२॥

और भी—वात्सल्य-पात्र मालती और माधवके प्रणयका प्रवाद तो सब लोगोंमें

श्रेयो ह्यस्माकमेवं हि प्रतार्यौ राजनन्दनौ ॥ १४ ॥

पश्य—

बहिः सर्वाकारप्रगुणरमणीयं व्यवहरन्-
पराभ्यूहस्थानान्यपि तनुतराणि स्थगयति ।

---

सन्ध्यङ्गम् । तल्लक्षणं यथा—'समुत्पन्नाऽर्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः' इति । हि = यतः, यस्मादनुरागविषयकलोकप्रवादादिति भावः। राजनन्दनौ = राजा तस्य नन्दननामधेयः क्रीडासचिवश्चेत्युभावपि, प्रतार्यौ = वञ्चनीयौ, एतयोर्मिथः प्रणयादेव गान्धर्वविधिना परिणयः संवृत्तो नाऽत्रास्मदीयो व्यापार इति कथनेन राजनन्दनौ प्रतारणीयाविति भावः । एवम्=इत्थम्, अस्माकं=मालतीमाधवयोर्हिताशंसूनामिति भावः । श्रेयः=कल्याणं, समीहितस्य मालतीमाधवविवाहस्य सिद्ध्या राजकोपपरिहारेण चेत्थमिष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहाराभ्यामिति भावः । भविष्यतीति शेषः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १४ ॥

मतिसम्पन्न इत्थं स्वीयसमीहितं साधयतीत्याह—पश्येति ।

बहिरिति । एको विद्वान् बहिः सर्वाकारप्रवणरमणीयं व्यवहरन् तनुतराणि अपि पराऽभ्यूहस्थानानि स्थगयति; कपटैः सकलं जनम् अतिसन्धाय तटस्थः स्वान् अर्थान् घटयति मौनं च भजत इत्यन्वयः । एकः=मुख्यः, अद्वितीयो वा, विद्वान्=विपश्चित्, कार्यवेदीति भावः । बहिः = बाह्यलोके, सर्वाकारप्रवणरमणीयं=सर्वस्य (सम्पूर्णस्य) आकारस्य ( वेषभाषाव्यवहरणादेरनुभावस्य ) प्रवणेन ( प्रावण्ये भावप्रधानोऽयं निर्देशः । अतः आयत्तत्वेनेत्यर्थः ) रमणीयं=सुन्दरं यथा तथा, प्रवणस्थाने 'प्रगुणे'-तिपाठेऽपि भावप्रधाननिर्देशात् प्रगुणत्वेन = प्रकृष्टगुणयुक्तत्वेनेत्यर्थः । 'प्रवणः क्रमनिम्नोर्व्यां प्रह्वे च स्याच्चतुष्पथे । आयत्ते च तथा क्षीणे प्रगुणे समुदाहृतः ।' इति धरणिः । व्यवहरन् = आचरन्, तनुतराणि अपि = अतिसूक्ष्माणि अपि, क्वचित् 'लघुतराणि' इति पाठः । पाराऽभ्यूहस्थानानि = परेषाम् ( अन्येषां शत्रूणां वा ) अभ्यूहस्य ( वितर्कस्य, रहस्योत्प्रेक्षणस्येति भावः ) स्थानानि ( स्थलानि ) स्थगयति=आच्छादयति, अन्ये जनाः शत्रवो वा यथा स्वकीयं छिद्रं न विद्युस्तथाऽऽचरतीत्यभिप्रायः । कपटैः = कैतवैः, वञ्चनव्यापारैरिति भावः 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोप-

---

फैल गया है, जिससे कि राजा और नन्दनको प्रतारित करना चाहिए । इस प्रकारसे हम लोगोंका कल्याण होगा ॥ १४ ॥

देखो—अद्वितीय विद्वान् बाहर संपूर्ण आकारकी अनुकूलतासे सुन्दर रूपसे व्यवहार करता हुआ दूसरेके अत्यन्त सूक्ष्म भी तर्क स्थानोंको छिपाता है; कपटोंसे सब

जनं विद्वानेकः सकलमतिसन्धाय कपटै-
स्तटस्थः स्वानर्थान्घटयति च मौनं च भजते ॥ १५ ॥

अवलोकिता--मयापि युष्मद्वचनात्तेन तेनोपन्यासेन भूरिवसुमन्दिरासन्नतरराजमार्गेण माधवः संचार्यते । ( मए वि तुम्ह वअणादो तेण तेणोवण्णासेण भूरिवसुमन्दिरासण्णतरराअमग्गेण माहवो सञ्चारीआदि । )

---

धयश्छद्मकैतवे ।, इत्यमरः । सकलं=सर्वम् । जनं=लोकम् । अतिसन्धाय=विश्वासोत्पादनेन वञ्चयित्वा, 'अभिसन्धाये'ति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः । तटस्थः=उदासीन इव सन् । स्वान्=स्वकीयान्,'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने ।' इत्यमरः । अर्थान्=प्रयोजनानि, 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।' इत्यमरः । घटयति=सम्पादयति, मौनं च=तूष्णीकत्वं च, भजति=आश्रयति, अभीष्टकार्यविषये वाङ्मात्रमपि बहिर्न प्रकाशयतीति भावः । अमात्यो भूरिवसुरेतादृश एवेति तात्पर्यम् । अत्राऽप्रस्तुताज्जनसामान्यात्प्रस्तुतस्य विशेषस्य भूरिवसोः गम्यमानत्वादप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा—

'क्वचिद्विशेषः सामान्यात्सामान्यं वा विशेषतः ।
कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्समम् ॥
अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद्गम्यते पञ्चधा ततः ।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्..............'इति ।

'तटस्थ' इत्यत्र इवशब्दाऽभावात्प्रतीयमानोत्प्रेक्षा । व्यवहरणस्थगनादीनामनेकक्रियाणमेककारकत्वाद्दीपकं च तथा चैतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । शिखरिणीवृत्तं॥१५॥

अवलोकितेति । युष्मद्वचनात्=युष्माकं (भवतीनाम) वचनात् (वचसः), आदरार्थकमिदं युष्माकमित्यत्र बहुवचनम् । तेन तेन=बहुविधेन । उपन्यासेन=उक्तिप्रयोगेण । भूरिवसुमन्दिराऽऽसन्नतराजमार्गेण=अतिशयेनाऽऽसन्न आसन्नतरः, 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इति तरप्प्रत्ययः। भूरिवसुमन्दिरस्य (भूरिवसुभवनस्य) आसन्नतरः (समीपतरः) यो राजमार्गः (राजपथः) तेन 'समीपे निकटाऽऽसन्नसंनिकृष्टसनीडवत् ।' इत्यमरः। संचार्यते=संचारणं कार्यते, यथा स मालतीलोचनगोचरी भवेत्तथा कृतमिति भावः । आसन्नत्वेन माधवनिष्टसर्वाऽवय-

---

लोगोंको प्रतारित कर स्वयम् उदासीन-सा होकर अपने प्रयोजनोंको सिद्ध करता है और साथ-साथ मौनका भी अवलम्बन करता है ॥ १५ ॥

अवलोकिता—मैं भी आपके वचनसे अनेक प्रकारके उक्तिप्रयोगसे भूरिवसुके भवनके अति निकट राजमार्गसे माधवका यातायात कराती हूं ।

कामन्दकी—कथितमेव नो मालतीधात्रेय्या लवङ्गिकया ।

भूयो भूयः सविधनगरीरथ्यया पर्यटन्तं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलभीतुङ्गवातायनस्था ।
साक्षात्कामं नवमिव रतिर्मालती माधवं यद्-
गाढोत्कण्ठा लुलितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीति ॥ १६ ॥

सौन्दर्यस्य सुदर्शनीयता सूच्यते । बहुशः सञ्चारणेनाऽपि अनाशङ्कनीयत्वं राजमार्ग-पदेन विभाव्यते ।

कामन्दकीति । नः = अस्माकं, 'बहुवचनस्य वस्नसौ' इति नसादेशः । मालती-धात्रेय्या = धात्र्या अपत्यं स्त्री धात्रेयी, 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक् 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' इत्येयः, स्त्रीत्वविवक्षायां 'टिड्ढाणञ्'—त्यादिना ङीप् । मालत्या धात्रेय्या ( धात्रीपुत्र्या ), 'धात्री जनन्यामलकी वसुमत्युपमातृषु ।' इत्य-मरः । धात्रेयीतिशब्देन तस्याः स्तन्यपानकालात्प्रवृत्तेन सख्येन मालतीहृदयगताऽ-भिप्रायवेत्तृत्वं ज्ञाप्यते ।

किं कथितमिति प्रतिपादयति—भूयो भूय इति । भवनवलभीतुङ्गवातायनस्था मालती रतिः नवं साक्षात् काममिव सविधनगरीरथ्यया भूयो भूयः पर्यटन्तं माधवं दृष्ट्वा गाढोत्कण्ठा लुलितलुलितैः अङ्गकैः ताम्यतीत्यन्वयः । भवनवलभीतुङ्गवातायन-स्था = भवनस्य ( सदनस्य ) वलभी (ऊर्ध्वगृहम्), ननु 'शुद्धान्ते वलभीचन्द्रशाले सौधोर्ध्ववेश्मनि ।' इति रभसाऽनुशासनात् 'वलभी' ति शब्देनैव भवनोर्ध्वगृहमित्य-र्थस्योपस्थितेर्भवनपदस्य पौनरुक्त्यमिति चेन्न, भवनपदेनोत्कृष्टभवनरूपाऽर्थप्रतीतेर्दो-षाऽभावात् । भवनवलभ्या यत्तुङ्गवातायनम् ( उन्नतगवाक्षः ) तत्स्था ( तत्र स्थिता सती ) मालती=भूरिवसुदुहिता, रतिः = कामप्रिया, नवं=नूतनं, हरनयनाऽनलदाह-समनन्तरमेवोत्पन्नमिति भावः । साक्षात्=प्रत्यक्षं, काममिव=मदनमिव, सविधनगरी-रथ्यया = सविधे ( समीपे, आत्मभवनसमीप इति भावः ) या नगरीरथ्या ( पुरीप्र-तोली ), तया, मालतीसदनसमीपस्थराजमार्गेणेति भावः । 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः । भूयोभूयः = पुनः पुनः, पर्यटन्तं = पर्यटनं कुर्वन्तं, गताऽऽगतं कुर्वन्तमिति भावः । एतादृशं माधवं = देवरातसुतं, दृष्ट्वा = विलोक्य, गाढोत्कण्ठा = दृढोत्सुक्य-युक्ता सती, लुलितलुलितैः=अतिशयान्दोलितैः, अङ्गकैः=अनुकम्पितैः शरीराऽवयवैः,

कामन्दकी—मुझे मालतिकी लड़की लवङ्गिकाने कहा ही है ।

भवनकी छतके ऊँचे झरोखेके निकट स्थित मालती, रति नूतन मूर्तिमान् कामदेवको जैसे देखती है उसी तरह निकटके नगरके रास्तासे बार बार पर्यटन

अवलोकिता—बाढम् । ततस्तयोद्वेगविनोदनं माधवप्रतिच्छन्दकमभिलिखितं लवङ्गिकया मन्दारिकाहस्तेऽद्य निक्षिप्तं तावत् । ( बाढम् । तदो ताए उव्वेअविणोअणं माहवपडिच्छन्दअं अभिलिहिअं लवङ्गिआए मन्दारिआहत्थे अज्ज णिक्खित्तं दाव । )

कामन्दकी—( विचिन्त्य ) सुविहितं लवङ्गिकया । माधवानुचरः कलहंसो नाम विहारदासीं मन्दारिकां कामयते । तदनेन तीर्थेन तत्प्रतिच्छन्दकमुपोद्घाताय माधवान्तिकमुपेयादित्यभिप्रायः ।

---

'अनुकम्पयाम्' इति कन् । ताम्यति = ग्लायति, इति कथितमिति सम्बन्धः । लवङ्गि० काया एतद्वाक्येन माधवे मालत्या अनुरागः प्रतिपाद्यते । अत्र काममिवेत्युत्प्रेक्षालङ्कारः । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ १६ ॥

अवलोकितेति । बाढम् = दृढम्, 'गाढबाढदृढानि च'त्यमरः । लवङ्गिकायाः कथनस्य दृढत्वे युक्त्यन्तरमाह—ततः इति । ततः = अनन्तरं, तस्मादिति ततः, 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल् । उद्वेगविनोदनम् = उद्वेगस्य ( विरहजन्यदुःखस्य ) विनोदनम् ( निवर्तनम् ) । 'उक्कण्ठाविणोदणिमित्तम्' ( उत्कण्ठाविनोदमित्तम् ) इति पुस्तकान्तरपाठः । माधवप्रतिच्छन्दकं = माधवस्य प्रतिच्छन्दकम् ( प्रतिमा, मूर्तिरित्यर्थः ) अभिलिखितं = चित्रितम् । निक्षिप्तं = निहितम् ।

कामन्दकीति । माधवाऽनुचरः = माधवस्य अनुचरः (सेवकः) । कलहंसो नाम = नाम्ना कलहंसः, नामेति लुप्ततृतीयाकं पदम् । विहारदासीं = विहारस्य ( बौद्धालयस्य ( दासीम् ) परिचारिकाम् । कामयते = इच्छति, स्वभार्यात्वेनेति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात्, तदिति तच्छब्दप्रतिरूपकमव्ययम् । तीर्थेन = द्वारा उपायेन वा । तीर्थमुपायद्वारमन्त्रिषु' इति विश्वः । उपोद्घाताय = प्रकृतसिद्ध्यर्थचिन्तायै, मालतीमाधवयोः प्रणयवृद्धिचिन्तायै इति भावः, 'चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थामुपोद्घातं विदुर्बुधाः ।' इति जगदीशः । माधवाऽन्तिकं = माधवस्य अन्तिकम् ( समीपम् ),

---

करते हुए माधवको देखकर गाढ उत्कण्ठासे युक्त होकर अतिशय कम्पित अङ्गोंसे ग्लान हो जाती है ॥ १६ ॥

अवलोकिता—ठीक है । उसके अनन्तर उससे ( मालतीसे ) विरहजन्य दुःखको हटानेके लिए चित्रित माधवकी मूर्तिको लवङ्गिकाने आज मन्दारिकाके हाथमें रक्खा है ।

कामन्दकी—( विचारकर ) लवङ्गिकाने बहुत अच्छा किया । माधवका कलहंस नामक सेवक विहार ( बौद्धमन्दिर ) की परिचारिका मन्दारिकासे प्रेम

कामन्दकी—अस्ति। या किल विविधजीवोपहारप्रियेति साहसिकानां प्रवादः।

अवलोकिता—तस्मिन्खलु श्रीपर्वतादागतस्येतो नातिदूरश्मशानवासिनः साधकस्य मुण्डधारिणोऽघोरघण्टनामधेयस्यान्तेवासिनी महाप्र-

कामन्दकीति। किलेति प्रसिद्धौ। विविधजीवोपहारप्रियेति = विविधानां (मनुष्य पशुप्रभृतीनाम्) जीवानाम् (प्राणिनाम्) उपहारः (उपायनं, वलिरूपमिति भावः) एव प्रियः (अभीष्टः) यस्याः सा। साहसिकानां = सहसि (वले) भवं साहसं, 'तत्र भव' इत्यण्। दुष्करकर्म इत्यर्थः। 'साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि। अविमृश्यकृतौ धाष्टर्ये' इति हैमः। साहसभेदानाह नारदो यथा—

'मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराऽभिमर्पणम्।
पारुष्यमनृतं चैव साहसं पञ्चधा स्मृतम्॥' इति।

साहसेन चरन्तीति साहसिकास्तेषां दुष्करकर्माचरणशीलानामित्यर्थः 'चरति' इति ठञ्।

अवलोकितेति। नाऽतिदूरश्मशानवासिनः = न अतिदूरं नातिदूरम् (नाऽतिविप्रकृष्टकम्), 'सहसुपा' इति समासः। नाऽतिदूरं यत् श्मशानं (पितृवनम्), तद्वासिनः=तन्निवासिनः, 'श्मशानं स्यात्पितृवनम्' इत्यमरः। 'नाऽतिदूराऽरण्यवासिन' इति पुस्तकान्तरपाठः। साधकस्य = तान्त्रिकसाधनाऽनुष्ठातुः। मुण्डधारिणः=नरकपालधारिणः, कापालिकस्येत्यर्थः। अघोरघण्टनामधेयस्य = अघोरस्य (हतावतारस्य भैरवस्य) घण्टाऽस्याऽस्तीति अघोरघण्टः 'अर्शआदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः। 'कापालिकास्तु घण्टाऽन्तनामानः समुदाहृताः' इति भरतः। नाम एव नामधेयं, 'वा भागरूपनामभ्यो धेय' इति स्वाऽर्थे धेयप्रत्ययः। 'आख्याऽऽह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च।' इत्यमरः। अघोरघण्टो नामधेयं यस्य तस्य अघोरघण्टनामकस्येत्यर्थः। अन्तेवासिनी = शिष्या, अन्ते (गुरुसमीपे) वसतीति तच्छीला, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति ताच्छील्ये णिनिः। 'शयवासवासिष्वकालात्' इत्यलुक्। कपालकुण्डला=कपालं (कर्परः) कुण्डलं (कर्णाऽलङ्कारो) यस्याः सेति योगाऽर्थः, कपालकुण्डलाऽऽख्येत्यर्थः। अनुसन्ध्यं=सन्ध्यायाम्, 'अव्ययं विभक्ती'

कामन्दकी—हाँ है। जो अनेक जीवोंके उपहारको पसन्द करनेवाली हैं ऐसा दुष्कर कर्म करनेवालों का प्रवाद है।

अवलोकिता—वहाँ पर श्रीपर्वतसे आये हुए और यहाँ से कुछ दूरमें स्थित श्मशानमें रहनेवाले साधक, अघोरघण्ट नामके कापालिक की शिष्या महान्

भावा कपालकुण्डला नामानुसन्ध्यमागच्छति । तत इयं प्रवृत्तिः । ( तस्सि क्खु सिरिपव्वदादो आअदस्स इदो णादिदूरमसाणवासिणो साधअस्स मुण्डधारिणो अघोरघण्टणामहेअस्स अन्देवासिणी महाप्पहावा कवालकुण्डला णाम अणुसंझं आअच्छइ । तदो इअं पउत्ति )

कामन्दकी—सर्वं हि सौदामिन्यां संभाव्यते ।

अवलोकिता—अलं तावदेतेन । भगवति, सोऽपि पार्श्वचरो माधवस्य बालमित्रं मकरन्दो नन्दनस्य भगिनीं मदयन्तिकां यदि समुद्वहति तदपि माधवस्य द्वितीयं प्रियं भवति । ( अलं दाव एदिणा । भअवदि, सो वि पासअरो माहवस्स बालमित्तं मअरन्दो णन्दणस्स भइणिं मदअन्तिअं जइ समुव्वहइ तं वि माहवस्स दुइअं पिअं होदि )

---

त्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । ततः=तस्याः, कपालकुण्डलाया इति भावः, 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल् । इयं=सौदामिनीसम्बद्धा, प्रवृत्तिः=वार्ता, 'वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः । ज्ञातेति शेषाऽर्थः ।

कामन्दकीति । सर्वं=सकलं, सामर्थ्यमिति शेषः । संभाव्यते=सम्भावनाविषयीक्रियते । अनेनोत्तरत्र सौदामिनीसाध्यान्यद्भुतानि सूचितानि ।

अवलोकितेति । एतेन=अनुपयुक्तेनाघोरघण्टवृत्तान्तकथनेनेति भावः, अलं=पर्याप्तम्, 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः । एतेनेत्यत्र अलंपदेन योगे 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिके'ति नियमेन तृतीया । अनुपयुक्ताऽघोरघण्टवृत्तान्तकथनेन साध्यं नाऽस्तीति भावः । बालमित्रम्=आ बाल्यात् सुहृत् । समुद्वहति=परिणयति । द्वितीयं=द्वयोः पूरणं, 'द्वेस्तीयः' इति तीयप्रत्ययः । प्रियम्=अभीष्टम् । मालत्या सहात्मन उद्वहनं माधवस्य प्रथममिदं च मदयन्तिकया सार्धं स्वमित्रस्य मकरन्दस्य परिणयनं द्वितीयं प्रियं भवतीति भावः । अनेनोपनायकस्य मकरन्दस्य गर्भसन्धौ पताकावृत्तान्तः सूचितो भवति ।

---

प्रभावसे सम्पन्न कपालकुण्डला सन्ध्याके समय आती है । उसी से यह खबर मिली है ।

कामन्दकी—सौदामिनीमें संपूर्ण सामर्थ्य की संभावना की जाती है ।

अवलोकिता—इस वृत्तान्तका प्रयोजन नहीं है । भगवती ! माधवका सहचर तथा बाल्यावस्थासे मित्र वह मकरन्द भी नन्दनकी बहन मदयन्तिकासे विवाह करे तो वह भी माधवका दूसरा प्रीतिकर कार्य हो जायगा ।

कामन्दकी—नियुक्तैव तत्र मया प्रियसखी बुद्धरक्षिता।

अवलोकिता—सुविहितं भगवत्या। ( सुविहिदं भअवदीए )

कामन्दकी—तदुत्तिष्ठ। माधवप्रवृत्तिमुपलभ्य मालतीमेव पश्यावः।

( इत्युत्तिष्ठतः )

कामन्दकी—( विचिन्त्य ) अत्युदारप्रकृतिर्मालती नाम। निपुणं निसृष्टार्थदूतीकल्पस्तन्त्रयितव्यः। सर्वथा—

कामन्दकीति। तत्र=तस्मिन्, विषये मदयन्तिकया समं मकरन्दस्योद्वाहव्यापार इति भावः। बुद्धरक्षिता=बुद्धरक्षिताऽऽख्या काचिद्बौद्धभिक्षुकीति भावः।

अवलोकितेति। भगवत्या=भवत्या। सुविहितं=शोभनं कृतं, बुद्धरक्षिताया नियोजनादिति भावः।

कामन्दकीति। माधवप्रवृत्तिं=माधववार्ताम्। उपलभ्य=ज्ञात्वा। मदनोद्याने तयोरन्योन्यदर्शनमभून्न वेति वार्तां विदित्वेत्यर्थः।

कामन्दकीति। विचिन्त्य=कीदृशं दूत्यमाचरणीयमिति विमृश्येत्यर्थः। निश्चिनोतीति शेषः। अत्युदारप्रकृतिः=अत्युदारा ( अतिगम्भीरा ) प्रकृतिः ( स्वभावः ) यस्याः सा, 'संसिद्धिप्रकृती त्विमे। स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चे'त्यमरः। गाम्भीर्यलक्षणं च—'यस्य प्रभावादाकारा हर्षक्रोधभयादिषु।

भावेषु नोपलक्ष्यन्ते तद् गाम्भीर्यं प्रकीर्तितम्॥',

इत्युक्तरूपं बोद्धव्यम्। निसृष्टाऽर्थदूतीकल्पः=निसृष्टार्था या दूती तस्याः कल्पः ( व्यापारपद्धतिः ) तन्त्रयितव्यः=प्रधानीकर्तव्यः। ( निसृष्टः निक्षिप्तः ) 'त्वमेव वेत्सि सर्वं कृत्यम्' इति समर्पितः अर्थः (प्रयोजनम्) यस्यां सा निसृष्टाऽर्थेति व्युत्पत्तिः

दूतभेदा यथा साहित्यदर्पणे—

'निसृष्टाऽर्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः।
कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चाऽपि तथाविधाः॥
उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम्।
सुश्लिष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टाऽर्थस्तु स स्मृतः॥

कामन्दकी—उस काममें मैंने प्रियसखी बुद्धरक्षिताको नियुक्त ही किया है।

अवलोकिता—भगवतीने बहुत अच्छा किया।

कामन्दकी—तब उठो। माधवके वृत्तान्तको जानकर मालतीको ही देखें।

( दोनों उठती हैं )

कामन्दकी—( विचारकर ) मालती अतिशय गम्भीर स्वभाव वाली है।

शरज्ज्योत्स्ना कान्तं कुमुदमिव तं नन्दयतु सा
सुजातं कल्याणी भवतु कृतकृत्यः स च युवा ।
गरीयानन्योन्यप्रगुणनिर्माणनिपुणो
विधातुर्व्यापारः फलतु च मनोज्ञश्च भवतु ॥ १७ ॥

मिताऽर्थभाषी कार्यस्य सिद्धिकारी मिताऽर्थकः ।
यावद्भाषितसन्देशहारः सन्देशहारकः ॥' इति ।

तत्र कार्यप्रेष्यत्वं दूतत्वमिति दूतसामान्यलक्षणम् । इदानीं स्वव्यापारसाफल्यमाशास्ते—सर्वथेति । सर्वैः प्रकारैरिति भावः । 'प्रकारवचने थाल्' इति थाल् ।

शरज्ज्योत्स्नेति । कल्याणी सा शरज्योत्स्ना कान्तं कुमुदम् इव सुजातं कान्तं तं नन्दयतु, स युवा च कृतकृत्यो भवतु । गरीयान् अन्योन्यप्रगुणगुणनिर्माणनिपुणो विधातुः व्यापारः फलतु मनोज्ञश्च भवतु इत्यन्वयः । कल्याणी = मनोहराकारानुगुणशीलसम्पन्ना । सा = मालती । शरज्ज्योत्स्ना = शारदचन्द्रिका, 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः । कान्तं = सुन्दरं, कुमुदम् इव = कैरवम् इव, 'सिते कुमुदकैरवे' इत्यमरः । सुजातं = शोभनजन्मानम्, उत्तमकुलप्रसूतमिति भावः । कान्तं = सुन्दरं, यद्वा अन्यस्त्रीभोगचिह्नशून्यं, यदाह भरतः—

'अन्यस्त्रीभोगसंभूतं चिह्नं यस्य न विद्यते ।
देहे वाऽप्यधरे वाऽपि स कान्त इति कीर्तितः ॥' इति

तं = माधवं, नन्दयतु = प्रीणातु । सः = पूर्वोक्तः, युवा च = तरुणश्च, माधव इति भावः, 'वयस्थस्तरुणो युवा' इत्यमरः । कृतकृत्यः = कृतार्थः, मालतीपरिणयनादिति भावः । भवतु = अस्तु । गरीयान् = गुरुतरः, अतिशयेन गुरुर्गरीयान्, गुरुशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इति ईयसुन्प्रत्ययः । 'प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः' इति गरादेशः । कुत्रचित्पुस्तके 'वरीयान्' इति पाठस्तत्र अतिशयेन उरुः ( महान् ) इति वरीयान् श्रेष्ठ इत्यर्थः । ईयसुन्प्रत्ययः, पूर्वसूत्रेणैव उरुशब्दस्य वरादेशः । अन्योन्यप्रगुणगुणनिर्माणनिपुणः = अन्योन्यस्य ( परस्परस्य ) प्रगुणाः ( ऋजवः, अनुकूला इति यावत् ) ये गुणाः ( चित्ताऽनुवर्तनादयः ) तेषां निर्माणे ( रचनायाम् ) निपुणः ( प्रवीणः ), 'प्रवीणे निपुणाऽभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः ।' इत्यमरः । विधातुः =

---

निसृष्टार्थ दूतोंकी कार्यपद्धतिको अच्छी तरहसे आलम्बन करना चाहिए । सब तरहसे—

शरद् ऋतुकी चाँदनी जैसे कुमुदको प्रसन्न करती है कल्याणी मालती उसी तरह सुन्दर और प्रिय माधवको प्रसन्न करे, वह जवान ( माधव ) भी कृतार्थ हो ।

( इति निष्क्रान्ते )

मिश्रविष्कम्भः ।



( ततः प्रविशति गृहीतचित्रफलकोपकरणः कलहंसः )

कलहंसः—क्वेदानीं तुलितमकरध्वजावलेपरूपविभ्रमाक्षिप्तमालतीहृदय-

ब्रह्मदेवस्य व्यापारः = क्रिया, फलतु = फलवान्भवतु, मणिकाञ्चनसमागमसदृशेन मालतीमाधवसंयोजनेनेति शेषः । मनोज्ञश्च = मनोहरश्च, भूपनन्दनाऽविरोधेन सर्वजनमनोरञ्जकश्चेति भावः । भवतु = अस्तु । अत्र परस्पराऽनुरागस्य बीजस्याऽनुरूपेण स्तुतेर्विलोभनं नामाऽङ्गम् । तल्लक्षणं यथा—'गुणाख्यानं विलोभनम्' इति । अत्रोपमाऽलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १७ ॥

निष्क्रान्ते = निर्गते, कामन्दक्यवलोकिते इति शेषः ॥

मिश्रविष्कम्भ इति । 'अर्थोपक्षेपकविशेषो विष्कम्भः । विष्कम्भलक्षणं यथा—

'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांऽशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्ताऽर्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥' इति ।

तस्याऽपि द्वौ भेदौ शुद्धः संकीर्णश्च । तावपि यथा—

'मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात्, स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥' इति ।

अत्र नीचमध्यमपात्राभ्यामवलोकिताकामन्दकीभ्यां प्रयोजितत्वात्सङ्कीर्णविष्कम्भकत्वम् । संकीर्णविष्कम्भको मिश्रविष्कम्भकश्चेत्यनर्थान्तरम् ।

तत इति । गृहीतचित्रफलकोपकरणः = गृहीतम् ( उपात्तम् ) चित्रफलकम् ( आलेख्यफलकम् ) एव उपकरणम् ( उपायनम् ) येन सः ।

कलहंस इति । तुलितमकरध्वजाऽवलेपरूपविभ्रमाक्षिप्तमालतीहृदयमाहात्म्यं = तुलितः ( उपमितः ) मकरध्वजस्य ( कामदेवस्य ) अवलेपः ( दर्पः ) येन सः, तादृशो यो रूपविभ्रमः ( सौन्दर्यविलासः ) तेन आक्षिप्तं ( तिरस्कृतम् ) मालती-हृदयस्य ( मालतीचित्तस्य ) माहात्म्यं ( महत्त्वं, गाम्भीर्यमिति यावत् ) येन

गुरुतर और परस्पर सरल गुणोंकी-रचनामें निपुण ब्रह्माजी की क्रिया सफल और सुन्दर हो ॥ १७ ॥ ( दोनों निकलती हैं )

इति मिश्रविष्कम्भः



( अनन्तर चित्ररूप उपहारको लिया हुआ कलहंस प्रवेश करता है )

कलहंस—इस समय कामदेवके सदृश सौन्दर्यगर्व और विलाससे मालतीके

माहात्म्यं नाथं माधवं पश्यामि। परिश्रान्तोऽस्मि। ( परिक्रम्य ) यावदिहोद्याने मुहूर्तं विश्रम्य मकरन्दसहचरं नाथं माधवं प्रेक्षिष्ये। (प्रविश्य उपविशति)। ( कहिं दाणि तुलिअमअरद्धआवलेवरूवविब्भमाक्खित्तमालदीहिअअमाहप्पं णाहं माहवं पेक्खिस्सं। परिस्सन्तो म्हि। जाव इव उज्जाणे मुहुत्तं विस्समिअ मअरन्दसहअरं णाहं माहवं पेक्खिस्सं )

( ततः प्रविशति मकरन्दः )

मकरन्दः—कथितमवलोकितया मदनोद्यानं गतो माधव इति। भवतु। गच्छामि। ( परिक्रम्यावलोक्य च ) दिष्ट्या वयस्य इत एवाभिवर्तते। ( निरूप्य ) अस्य तु—

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं

---

त्तम्। एतादृशं नाथं=प्रभुम्। परिश्रान्तः=जातपरिश्रमः। उद्याने=आक्रीडे, 'पुमानाक्रीड उद्यानम्' इत्यमरः। मुहूर्त्तं=कंचित्कालं यावत्, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। प्रेक्षिष्ये=द्रक्ष्यामि।

मकरन्द इति। परिक्रम्य=परिक्रमं कृत्वा, स्तोकं पादविक्षेपं कृत्वेत्यर्थः। दिष्ट्या=आनन्दद्योतकमव्ययमेतत्, 'दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः। वयस्यः=सवयाः, वयसा तुल्यो वयस्यः, 'नौवयोधर्म' इति यत्प्रत्ययः। 'वयस्यः स्निग्धः सवयाः' इत्यमरः। निरूप्य=दृष्ट्वा। अस्य=माधवस्य।

गमनमिति। गमनम् अलसं, दृष्टिः शून्या, शरीरम् असौष्ठवं, श्वसितम् अधिकम्, एतत् किं नु? अथवा अतः अन्यत् किं स्यात्? भुवने कन्दर्पाज्ञा भ्रमति; यौवनं च विकारि। ललितमधुराः ते ते भावाः धीरतां क्षिपन्ति इत्यन्वयः। गमनं=गतिः, अलसं=मन्दं, लज्जयाऽभावदनिच्छयेति शेषः। अनेन विप्रलम्भशृङ्गारस्याऽऽलस्याख्यो व्यभि-

---

हृदयका गाम्भीर्य हटानेवाले प्रभु माधवको कहाँ देखूं। मैं थक गया हूँ। तब तक इस बगीचेमें कुछ समय तक विश्राम कर मकरन्दके साथ विद्यमान स्वामी माधवका दर्शन करूंगा। ( प्रवेश कर बैठता है )

( तदनन्तर मकरन्द प्रवेश करता है )

मकरन्द—अवलोकिताने कहा है कि माधव मदनोद्यानमें गये हैं। जो हो। ( दो-चार कदम जाकर और देखकर भी ) भाग्यसे मित्र यहीं पर बैठे हुए हैं। ( देखकर ) इनका तो—

गमन आलस्य युक्त, दृष्टि शून्य, शरीर प्रसाधनके सौन्दर्यसे रहित और श्वास

श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथवा।
भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं
ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥ १८ ॥

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टरूपो माधवः )

चाराभावः सूचितः। दृष्टिः=दर्शनम्, शून्या=स्वविषयपरिच्छेदरहिता। अनेन चिन्ताऽऽख्यो व्यभिचारी व्यज्यते। शरीरं=देहः। असौष्ठवं=प्रसाधनसौन्दर्यरहितमित्यर्थः। श्वसितं=श्वासः, अधिकं=स्वाभाविकरूपादतिरिक्तम्। एतत्=अलसगमनादिकं, किं नु=कथमिति वितर्कः, केन हेतुनैतादृशो व्यतिकरः संवृत्त इति भावः। अथवा=पक्षान्तरे, इतः=अस्मात्, वक्ष्यमाणहेतोरित्यर्थः। अन्यत्=अपरं, किं=कारणं, स्यात्=भवेत्, न किमपीति भावः। तदेव कारणं प्रतिपादयति—भ्रमतीत्यादि। भुवने=लोके, कन्दर्पाज्ञा=कामादेशः, विषयनिचयसेवनरूप इति भावः। भ्रमति=अप्रतिहतरूपेण प्रचलति, अन्यच्च—यौवनं च=तारुण्यं च, विकारि=विकरोति—विकृतं करोतीति तच्छीलं विकारोत्पादनशीलमिति भावः। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति ताच्छील्ये णिनिः। न ग्राम एव नो नगरमात्रे नाऽपि देशे केवलं प्रत्युत भुवने=लोके, कन्दर्पाज्ञा=कामादेशः सोऽपि न सामान्यरूपेणाऽवतिष्ठते प्रत्युताऽप्रतिहतरूपेण भ्रमति=प्रचलति, अतः स्थविरत्वेऽपि तस्य प्रसरो यदि, तर्हि किं वक्तव्यं यौवन इति प्रतिपादयति—विकारीति। यौवनं च=तारुण्यं च, विकारि=विकारोऽस्याऽस्तीति, मनोविकाराऽधिकरणमित्यर्थः। 'अत इनिठनौ' इतीनिः। ललितमधुराः=ललिताः ( सुन्दराः ) मधुराः ( प्रियाः )। ते ते=प्रसिद्धा असकृदनुभूता वा, एतादृशव्याख्यया न विधेयाऽविमर्शदोषः। भावाः=पदार्थाः, चन्द्रचन्दनरोलम्बरुतप्रभृतय इति भावः। धीरतां=धैर्यं, धीरस्य भावो धीरता, तां 'तस्य भावस्त्वतलौ' इति तल्। 'तलन्तं स्त्रियाम्' इति लिङ्गाऽनुशासनसूत्रात् स्त्रीलिङ्गत्वम्। क्षिपन्ति=अपसारयन्ति। नूनमद्य मदनोद्याने मदनोत्सवदर्शनाऽवसरेऽसौ कस्यांचिदासक्तचित्तः सञ्जातोऽत एवाऽस्याऽलसगमनादिकं संवृत्तमिति भावः। अत्र समुच्चयाऽलङ्कारः। हरिणी वृत्तम् ॥ १८ ॥

तत इति। यथा निर्दिष्टरूपः=यथा निर्दिष्टम् ( अलसगमनादियुक्तम् ) रूपम् ( आकारः ) यस्य सः।

अधिक रूपसे चल रहा है। यह क्या है? अथवा इससे भिन्न क्या होगा? लोकमें कामदेवकी आज्ञा विचरण कर रही है और यौवन विकारपूर्ण है। सुन्दर और प्रिय वे वे चन्द्र आदि प्रसिद्ध पदार्थ धैर्य को हटा रहे हैं ॥ १८ ॥

( अनन्तर निर्देशके अनुसार रूपवाले माधव प्रवेश करते हैं )

माधवः ( स्वगतम् )—

तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथंकथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थरविवेकमकाण्ड एव ॥ १९ ॥

माधव इति । स्वगतम्=आत्मगतम्, अन्यैराश्राव्यमित्यर्थः । स्वगतलक्षणं यथा—
'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।' इति ।

तामिति । इन्दुसुन्दरमुखीं तां सुचिरं विभाव्य मे चेतः अकाण्ड एव मन्थरविवेकं लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्यम् उन्मथ्य कथं कथमपि व्यपवर्तत इत्यन्वयः । इन्दुसुन्दरमुखीम्=इन्दुः ( चन्द्रः ) इव सुन्दरं ( मनोहरम् ) मुखम् ( आननं ) यस्यास्तां चन्द्राऽधिकमनोहरतरामित्यर्थः । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीप् । तां=पूर्वक्षणे लोचनगोचरीकृतां मालतीमिति भावः । सुचिरं=बहुकालं, विभाव्य=विशेषेण भावयित्वा, विचिन्त्येति भावः । मे=मम, चेतः=मानसं कर्तृ, अकाण्ड एव=अनवसर एव, सहसैवेति भावः । मन्थरविवेकं=मन्थरः ( मन्दः ) विवेकः ( कार्याऽकार्यज्ञानम् ) यस्य तत् एतादृशं सदिति चेतसो विधेयविशेषणम् । लज्जां=त्रपां, मनःसङ्कोचनमिति यावत् । यदाहुः='मनःसङ्कोचनं लज्जा ह्यनौचित्यप्रवर्तनात् ।' इति । विजित्य=विशेषेण जित्वा, निरस्येति भावः । विनयं=विनीततां, कुमार्यां तत्पित्रनुमतिं विनाऽनुरागो न विधेय इति शिक्षितत्वमिति तात्पर्यम् । विनिवार्य=विशेषेण निवार्य, दूरीकृत्येति भावः । धैर्यं=धीरताम्, महाकुलप्रसूतत्वेन वैनयिकीं स्वाभाविकीं चेति शेषः । उन्मथ्य=उन्मूल्य, कथं कथमपि=केन केनाऽपि प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः । व्यपवर्तते=व्यावर्तते, मालत्यां मदीयं चित्तमनुरक्तमिति भावः । तत्र तामित्यनुस्मृतिः, इन्दुसुन्दरेति गुणकीर्तनं, विभाव्येति चक्षुःप्रीतिः, कथं कथमपीत्युद्वेगः । लज्जां विजित्येत्युन्मादः, मन्थरविवेकमिति जडतेत्यनेकावस्थोक्तेति जगद्धरः । अत्र इन्दुसुन्दरेति लुप्तोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १९ ॥

माधव—(आप ही आप) चन्द्र तुल्य सुन्दर मुखवाली उस ( मालती ) का बहुत समय तक चिन्तन करके मेरा चित्त अनवसरमें ही मन्द विवेकवाला होकर लज्जाको जीतकर विनयको हटाकर और धैर्यको उन्मूलित कर बड़े कष्टसे लौट आया है ॥ १९ ॥

आश्चर्यम् ।

यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभाव-
मानन्दमन्दममृतप्लवनादिवासीत्
तत्सन्निधौ तदधुना हृदयं मदीय-
मङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥ २० ॥

यदिति । यत् मदीयं, हृदयं तत्सन्निधौ विस्मयस्तिमितम् अस्तमिताऽन्यभावम् अमृतप्लवनात् इव आनन्दमन्दम् आसीत्; अधुना तत् हृदयम् अङ्गारचुम्बितम् इव व्यथमानम् आस्त इत्यन्वयः । यत् मदीयं=मम, 'त्यदादीनि च' इत्यस्मच्छब्दस्य वृद्धसंज्ञत्वात् 'वृद्धाच्छ' इति छप्रत्ययः । हृदयं=मनः, 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' । इत्यमरः । तत्सन्निधौ=तस्याः ( मालत्याः ) सन्निधौ ( सामीप्ये ) विस्मयस्तिमितम्=विस्मयेन ( आश्चर्येण, असाधारणसौन्दर्यनिरीक्षणजनितेनेति शेषः ) स्तिमितम् ( निश्चलम् ), एतेन स्तम्भ उक्तः । अत एव अस्तमिताऽन्यभावम्=अस्तम् ( तिरोधानम् ) इतः ( गतः ) अस्तमितः, अस्तमितमिति मान्तमव्ययम् । अस्तमितः ( तिरोहितः ) अन्यः ( अपरः, विस्मयाऽतिरिक्त इति भावः ) भावः ( धर्मः ) यस्मिंस्तत्, विगलितवेद्याऽन्तरमित्यर्थः । तथा च अमृतप्लवनात् इव=पीयूषनिमज्जनात् इव । आनन्दमन्दम्=आनन्देन (सुखेन) मालतीविलोकनजनितेनेति शेषः ) मन्दम् ( भावाऽन्तराऽनुभवाऽसमर्थम् ) आसीत्=अभूत् । अधुना=सम्प्रति मालत्या असन्निधावित्यर्थः । तत्=पूर्वाऽभिहितं, हृदयं=मानसम् । अङ्गारचुम्बितम् इव 'प्रदीप्तेन्धनशकलसंस्पृष्टम् इव । दग्धमिति वक्तव्ये मनोगतप्रेयसीदाहभिया चुम्बितमिति कोमलोक्तिरिति त्रिपुरारिसूरिः । व्यथमानं=पीडायुक्तम्, आस्ते=वर्तते, अत आश्चर्यमिति पूर्वस्थितेन पदेन सम्बन्धः । प्रियासन्निधानाऽसन्निधानयोः क्षणमात्रभेदेनाऽतीव मानसिकाऽवस्थावैलक्षण्यमिदमाश्चर्यमिति भावः । अत्र प्रियायाः संयोगे सुखं वियोगे च दुःखमिति स्वभावसिद्धं तथाऽपि प्रागननुभूतरसस्य माधवस्य कृते प्राथमिकाऽनुभववशादाश्चर्यप्रतीतिरिति भावः । अत्र विरूपयोरानन्दव्यथयोः सङ्घटनया विषमाऽलङ्कारः तल्लक्षणं यथा—

आश्चर्य है—

जो मेरा हृदय मालतीके समीप आश्चर्यसे निश्चल, अन्य भावसे रहित और अमृतमें डूबनेसे जीव जिस तरह आनन्दसे स्तब्ध होता है वैसा ही हुआ था; इस समय ( प्रियाके निकटमें न रहनेसे ) वह हृदय प्रदीप्त अङ्गारसे स्पृष्टके सदृश पीडायुक्त हो रहा है ॥ २० ॥

मकरन्दः—( उपसृत्य ) सखे माधव ! इत इतो ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः तदस्मिन्नुद्याने मुहूर्तमुपविशावः । ( उभौ परिक्रामतः )

कलहंसः—कथं मकरन्दसहचर इदमेव बालोद्यानमलङ्करोति माधवः । तद्दर्शयामि मदनवेदनाखिद्यमानमालतीलोचनसुखावहमात्मनोऽस्य प्रतिच्छन्दकम् । अथवा विश्रामसौख्यं तावदनुभवतु । (कहं मअरन्दसहअरो इमं

---

'गुणौ क्रिये वा यत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः ।
यदारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः ॥
विरूपयोः सङ्घटना या च तद्विषमं मतम् ।' इति ।

तथा च अमृतप्लवनादि वेति अङ्गारचुम्बितमिवेति चोत्प्रेक्षे इत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २० ॥

मकरन्दोऽन्यमनस्कतयाऽऽस्मानमपश्यन्तमपि माधवं स्वयमेव प्रज्ञापयन्नाकारयति—मकरन्द इति । इत इतः = इह इह, आगम्यतामिति शेषः । इत इत्यत्र 'आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तसिः । ललाटन्तपः = नभोमध्यवर्तीत्यर्थः । ललाटं तपतीति, 'असूर्यललाटयोर्दृशितपोः' इति खच्, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः । घर्मांऽशुः = सूर्यः । मुहूर्त्तं = कंचित्कालं, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया ।

कलहंस इति । मकरन्दसहचरः = मकरन्दसखः, मकरन्दः सहचरो यस्य सः, मकरन्दस्य सहचरो वा । परं माधवप्राधान्यद्योतनाऽर्थं बहुव्रीहिसमास एवोचिततरः । बालोद्यानं = बालम् ( नवीनम् ) क्वचि'द्वकुले'त्यधिकः पाठः । उद्यानम् = आक्रीडम् । अलङ्करोति = भूषयति, स्वाऽवस्थानेनेति शेषः । मदनवेदनाखिद्यमानमालतीलोचनसुखाऽऽवहं = मदनस्य ( कामदेवस्य ) वेदनया ( पीडया ) खिद्यमानायाः ( पीड्यमानायाः ) मालत्याः लोचनयोः ( नेत्रयोः ) सुखाऽऽवहम् ( आनन्दप्रदम् ) । अस्य = माधवस्य । आत्मनः = स्वस्य । प्रतिच्छन्दकं = चित्रम् ।

---

मकरन्द—( निकट जाकर ) मित्र माधव ! यहाँ आओ, यहाँ आओ । ललाटको तप्त करनेवाले सूर्य प्रखर हो रहे हैं । इस कारण इस बगीचेमें हम दोनों कुछ समय तक बैठें । ( दोनों परिक्रमण करते हैं )

कलहंस—माधव किस तरह मकरन्द को साथमें लेकर इसी नवीन उद्यानको अलङ्कृत कर रहे हैं । इस कारणसे कामदेव की पीडासे खिन्न होनेवाली मालतीके नेत्रोंको सुख देनेवाले इनके अपने चित्रको दिखलाता हूँ । अथवा ये कुछ कालतक विश्रामके सौख्यका अनुभव करें ।

एव्व वालुज्जाणं अलंकरेदि माहवो । ता दंसेमि मअणवेअणाक्खिज्जमाणमालदीलोअणसुहावहं अत्तणो से पडिच्छन्दअं । अहवा विस्सामसोक्खं दाव अणुहोदु )

मकरन्दः—तदस्यैवतावदुच्छ्वसितकुसुमकेसरकषायशीतलामोदवासितोद्यानस्य काञ्चनपादपस्याधस्तादुपविशावः ।

( उभौ तथा कुरुतः )

मकरन्दः—वयस्य माधव, सकलनगराङ्गनाप्रवर्तितमहोत्सवाभिरामकामदेवोद्यानयात्राप्रतिनिवृत्तमन्यादृशमिव भवन्तमवधारयामि । अपि त्वमवतीर्णोऽसि रतिरमणबाणगोचरताम् ।

---

अस्मिन्कंचित्कालं विश्रान्ते पश्चाच्चित्रं दर्शयिष्यामीति भावः । अत्र मकरन्देन = पुष्परसेन सहचरो माधवो ( वसन्तः ) वालवकुलमलङ्करोतीति ध्वनिरप्युन्मिषतीति जगद्धरः ।

मकरन्द इति । उच्छ्वसितकुसुमकेसरकषायतलामोदवासितोद्यानस्य = उच्छ्वसितानां ( विकसितानाम् ) कुसुमानां ( पुष्पाणाम् ) ये केसराः ( किञ्जल्काः ), तैः कषायः ( सुरभिः ) शीतलश्च ( शीतश्च ) य आमोदः ( दूरविसर्पणशील इष्टगन्धः ), तेन वासितम् (सुरभिकृतम्) उद्यानम् ( आक्रीडः ) येन तस्य । एतादृशस्य काञ्चनपादपस्य = चाम्पेयतरोः ।

उभाविति । तथा कुरुतः = तथा विधत्तः, उपविशत इत्यर्थः ।

मकरन्द इति । सकलनगराऽङ्गनाप्रवर्तितमहोत्सवाऽभिरामकामदेवोद्यानयात्राप्रतिनिवृत्तं = सकलाभिः ( समग्राभिः ) नगराऽङ्गनाभिः ( पुरसुन्दरीभिः ) प्रवर्तितेन ( प्रविहितेन ) महोत्सवेन ( महाक्षणेन ) अभिरामं ( सुन्दरम् ) यत् कामदेवोद्यानं ( मदनोपवनम् ) तस्मिन् या यात्रा ( गमनम् ) ततः प्रतिनिवृत्तम् ( आगच्छन्तम् )। भवन्तं = त्वाम् । अन्यादृशम् इव = विलक्षणाऽवस्थम् । अवधारयामि = विचारयामि । रतिरमणबाणगोचरतां = रतिरमणस्य ( रतिपतेः, कामदेवस्येत्यर्थः ) बाणगोचरताम् ( शरग्राह्यतां, शरलक्ष्यतामिति भावः )। अवतीर्णोऽसि अपि =

---

हि० मकरन्द—इस कारणसे खिले हुए फूलोंके किञ्जल्कोंसे खुशबूदार और शीतल तथा दूरतक फैलनेवाली सुगन्धिसे बगीचेको सौरभयुक्त करनेवाले इसी चम्पा वृक्षके नीचे हम दोनों बैठें ।

( दोनों वैसा ही करते हैं )

मकरन्द—मित्र माधव ! समस्त पुरसुंदरियोंसे किये गये महोत्सवसे

( माधवः सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति )

मकरन्दः—(विहस्य) किमवनम्रमुग्धमुखपुण्डरीकः स्थितोऽसि । पश्य—
अन्येषु जन्तुषु च यस्तमसावृतेषु विश्वस्य धातरि समः परमेश्वरेऽपि ।

गतोऽसि किम् । अपिशब्दोऽत्र प्रश्नार्थकः । 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि।' इत्यमरः ।

माधव इति । अधोमुखः=अवनताननः सन् । सलज्जं=लज्जया सहितं यथा तथेति क्रियाविशेषणं, 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः' 'वोपसर्जनस्ये'ति सहस्य सभावः ।

मकरन्द इति । माधववदनविकारदर्शनेन स्वसम्भावनां सत्यां मत्वा तल्लज्जां शिथिलयितुमाह—विहस्येति । विहस्य=विहसितं ( मधुरस्वरेण हास्यं ) कृत्वा, 'मधुरस्वरं विहसितम्' इति साहित्यदर्पणः । अवनम्रमुग्धमुखपुण्डरीकः=अवनम्रम् ( अवनतम् ) मुग्धं ( सुन्दरम् ) मुखपुण्डरीकं ( वदनश्वेतकमलम् ) यस्य सः । 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति 'पुण्डरीकं सिताऽम्भोजम्' इति चाऽमरः ।

अन्येष्विति । यः तमसा आवृतेषु अन्येषु जन्तुषु विश्वस्य धातरि परमेश्वरेऽपि समः । सोऽयं चित्तजन्मा प्रसिद्धविभवः खलु । लज्जया तव अपह्नुतिः कथञ्चित् मा भूत् इत्यन्वयः । यः=कामः, तमसा=तमोगुणेन, आवृतेषु=आच्छादितेषु, अज्ञानोपहतविवेकेष्विति भावः । अन्येषु=अपरेषु, जन्तुषु=प्राणिषु । मनुष्येषु पशुपक्ष्यादिषु चेति भावः । एवं च विश्वस्य=जगतः, 'धातरी'ति कृदन्तपदयोगे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी । धातरि=कर्तरि, रजोगुणाऽधिष्ठातरि ब्रह्मदेव इत्यर्थः । किं बहुना—परमेऽश्वरेऽपि=परा ( उत्कृष्टा ) मा ( लक्ष्मीः ) यस्य स परमः स चाऽसौ ईश्वरः परमेश्वरस्तस्मिन् विष्णौ, सत्त्वगुणाऽधिष्ठातरीति भावः । एवं तन्त्रेण परमः ( श्रेष्ठः ) ईश्वरः ( ईशिता ) परमेश्वरो महादेवस्तस्मिन्, तमोगुणाऽधिष्ठातरि महादेवे चेत्यर्थः । सृष्टिपालनाऽपेक्षया संहार एवैश्वर्यस्याऽतिशयितत्वात्परमत्वम् । तादृशे महेश्वरेऽपि समः=तुल्यः, अवैषम्येणाऽप्रतिहतव्यापार इति तात्पर्यम् ।

---

सुन्दर कामदेवके उपवनमें जाकर लौटे हुए आपको विलक्षण अवस्थासे युक्त विचार कर रहा हूं । क्या आप भी कामबाणके शिकार हो गये हैं ?

( माधव लज्जाके साथ अधोमुख होकर बैठता है । )

मकरन्द—( मधुर स्वरसे हँसकर ) तुम क्यों मुखरूप श्वेतकमलको झुकाकर बैठे हुए हो ? देखो—

जो कामदेव तमोगुणसे आच्छादित और जन्तुओंमें और और सृष्टिकर्ता

सोयं प्रसिद्धविभवः खलु चित्तजन्मा मा लज्जया तव कथंचिदपह्नुतिर्भूत्॥

माधवः--वयस्य, किं न कथयामि। श्रूयताम्। गतोऽहमवलोकिताजनितकौतुकः कामदेवायतनम्। इतस्ततः परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोदपरिमलाकृष्टसकलमिलदलिपटलसंकुलाकुलितमुकुलावलीमनो-

'अन्येषु जन्तुषु रजस्तमसावृतेषु' इति पाठे यच्छब्दाऽभावादुत्तरार्धस्य तच्छब्दस्याऽऽकाङ्क्षाऽनिवर्तकत्वाऽभावेन विधेयाऽविमर्शदोषः। अस्मदीयव्याख्यातो रजोगुणस्याऽपि संग्रहादत्रत्यपाठ एव वरतरः। सः=तादृशः, अयं=सन्निकृष्टस्थः, माधवे सद्य एव दर्शितविक्रमत्वाद्रूपाऽभावेऽपि चित्तजन्मनो बुद्धिस्थसन्निकृष्टत्वमवसेयम्। चित्तजन्मा=कामदेवः, चित्ताज्जन्म यस्य सः, 'अवय्यों बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति काव्यालङ्कारसूत्रेषु वामनः। प्रसिद्धविभवः=प्रख्यातप्रभावः। खलु=निश्चयेन। यस्य कामस्य विक्रमः तमःप्रधानेषु मनुष्येषु तिर्यग्जातिषु च का कथा गुणत्रितयाऽधिष्ठातरि ब्रह्मविष्णुशिवात्मके देवत्रयेऽप्यप्रतिहतः इति भावः। अतः, लज्जया=व्रीडया, तव=भवतः, अपह्नुतिः=अपह्नवः, स्वकीयदशाया अप्रकाश इति यावत्। कथंचित्=केनापि प्रकारेण। मा भूत्=न भवतु, एवमपह्नवेन त्वदीयचेतोविकारस्य प्रतीकारो न भविष्यतीति भावः। 'माङि लुङ्' इति माङुपपदे सर्वलकाराऽपवादको लुङ्। 'न माङ्योगे' इत्यडागमनिषेधः। अतो लज्जां त्यक्त्वा सर्वं कथयेति भावः। अत्र कामस्य प्रसिद्धविभवत्वे समत्वरूपस्य पदाऽर्थस्य हेतुत्वात्काव्यलिङ्गाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २१ ॥

माधव इति। श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्। अवलोकिताजनितकौतुकः=अवलोकितया (कामन्दकीशिष्यया) जनितम् (उत्पादितम्) कौतुकम् ('अद्य खलु महानुत्सवो मदनोद्याने नागरिकाणां, तत्र गन्तव्यम्' इत्याकारकं कौतूहलम्) यस्य सः। कामदेवायतनं=मदनोद्यानम्। उल्लसितमधुरमदिरामोदपरिमलाकृष्टसकलमिलदलिपटलसङ्कुलाकुलितमुकुलावलीमनोहराभरणस्य=उल्लसितः (विसृतः) यो मधुरः (मनोहरः) मदिराऽऽमोदतुल्यः (मद्यसौरभसदृशः) परिमलः (शुभगन्धः)

ब्रह्माजीमें, विष्णुमें और परमेश्वर (महेश्वर) में भी तुल्यरूपसे रहते हैं, ऐसे कामदेवजी प्रख्यात प्रभाववाले हैं। लज्जासे तुम्हारा आत्मगोपन किसी तरह भी नहीं हो ॥ २१ ॥

माधव--मित्र! क्यों नहीं कहूंगा? सुनो। अवलोकिताके कौतुक उत्पन्न करने से मैं मदनोद्यानमें गया था। वहाँ इधर-उधर घूमकर परिश्रमसे मैं फैली हुई मधुर मदिराकी सदृश खुशबूसे आकृष्ट संपूर्ण इकट्ठे हुए भ्रमरसमूहसे

हराभरणस्य रमणीयाङ्गणभुवो बालबकुलस्यालवालपरिसरे स्थितः। तस्य च यदृच्छया निरन्तरनिपतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय विदग्धरचनामनोहरां स्रजमभिनिर्मातुमारब्धवान्। अनन्तरं च देवस्य सञ्चारिणी मकरकेतनस्य जगद्विजयवैजयन्तिका निर्गत्य गर्भभवनादुज्ज्वलविदग्धमुग्धबालनेपथ्यविरचनाविभावितकुमारीभावा महानुभावप्रकृतिरत्युदारपरिजना कापि तत एवागतवती।

तेन आकृष्टम् ( कृताकर्षणम् ) सकलं (समग्रम्) मिलताम् ( संगतानाम् ) अलीनां ( भ्रमराणाम् ) यत् पटलं ( समूहः ), तेन सङ्कुला ( व्याप्ता ) आकुलिता ( आकुलीकृता ) या मुकुलाऽऽवली ( कुड्मलपङ्क्तिः ) सैव मनोहरम् (सुन्दरम्) आभरणं ( भूषणम् ) यस्य तस्येति बालवकुलस्येत्यस्य विशेषणम् 'स्याच्छुभगन्धे परिमलः' इति विश्वः। 'कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। रमणीयाऽङ्गणभुवः=रमणीयम् ( सुन्दरम् ) यत् अङ्गणं ( चत्वरम् ) तद्भुवः (तदुत्पन्नस्य)। 'अङ्गणं चत्वराऽजिरे' इत्यमरः। एतादृशस्य बालवकुलस्य=अभिनववकुलवृक्षस्य। आलवालपरिसरे= आलवालस्य ( आवापस्य, वृक्षमूलकृतजलाधारस्येति भावः ) परिसरे (पर्यन्तभुवि, समीप इति भावः )। स्थितः=उपविष्टः, विश्रामार्थमिति शेषः। यदृच्छया=स्वेच्छया, ऋच्छनमृच्छा, 'ऋच्छगतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु' इति धातोः 'गुरोश्च हल' इत्यप्रत्ययः ततः कर्मधारयसमासः। 'यदृच्छा स्वैरिता' इत्यमरः। निरन्तरनिपतितानि= निरन्तरम् ( अव्यवहितं यथा तथा ) निपतितानि ( स्रस्तानि ) निविडत्वेन विद्यमानानीति भावः। विदग्धरचनामनोहरां=विदग्धरचनया (निपुणगुम्फनेन) मनोहराम् ( मञ्जुलाम् )। एतादृशीं स्रजं=मालाम्। अभिनिर्मातुं=विरचयितुम्। सञ्चारिणी सञ्चरणशीला, ताच्छील्ये णिनिः। मकरकेतनस्य=मकरः ( जलजन्तुविशेषः ) केतनं ( ध्वजः ) यस्य तस्य कामदेवस्येत्यर्थः। 'मकरध्वज आत्मभूः' इति 'पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्।' इत्यमरः। जगद्विजयवैजयन्तिका=जगद्विजयस्य ( लोकजयस्य ) वैजयन्तिका ( पताकाभूता )। गर्भभवनात्=गर्भागारात् भवनमध्यभागादित्यर्थः। उज्ज्वलविदग्धमुग्धबालनेपथ्यविरचनाविभावितकुमारी-

व्याप्त और आकुलित मुकुलपङ्क्तिरूप मनोहर भूषणसे युक्त, सुन्दर अङ्गणमें उत्पन्न नये बकुल ( मौलसिरी ) वृक्षके आलवाल ( थवारी ) के समीपमें रहा। वहां पर अपनी इच्छासे अव्यवहितरूपसे, गिरे हुए फूलोंको लेकर सुन्दर रचनासे मनोहर मालाका निर्माण करने लगा। अनन्तर कोठरीसे निकलकर कामदेवकी संचारिणी जगद्विजयकी पताका उज्ज्वल, नैपुण्यपूर्ण सुन्दर शिशुयोग्य प्रसाधनसे कुमारी-

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा
तस्याः सखे ! नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥ २२ ॥

सावा = उज्ज्वलं ( निर्मलम् ) विदग्धं ( निपुणम् ) मुग्धम् (सुन्दरम्) यत् बालनेपथ्यं ( शिशुयोग्यप्रसाधनम् ), तस्य विरचनया (निर्माणेन) विभावितः (ज्ञापितः) कुमारीभावः ( कन्यात्वम् ) यस्याः सा । महानुभावप्रकृतिः=अतिगम्भीरस्वभावा । अत्युदारपरिजना = अत्युदारः ( अतिदक्षिणः ) परिजनः ( परिवारः ) यस्याः सा । काऽपि = अविज्ञातनामाऽऽदिपरिचया ।

तस्याः स्वरूपं वर्णयति—सेति । सा रामणीयकनिधेः अधिदेवता वा, सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा । हे सखे ! नियतम् इन्दुकलामृणालज्योत्स्नादि तस्याः कारणं, मदनश्च वेधा अभूत् इत्यन्वयः । सा = मद्विलोकिता कुमारी । रामणीयकनिधेः = रमणीयस्य भावो रामणीयकं, तस्य निधेः, सौन्दर्याकरस्येत्यर्थः । रामणीयकमित्यत्र 'योपधाद् गुरूपोत्तमाद्वुञ्' इति वुञ्, 'युवोरनाकौ' इति तस्याऽकादेशः । अधिदेवता वा = अधिका देवता अधिष्ठात्री देवी वेति भावः । 'कुगतिप्रादय' इति समासः । सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा=सौन्दर्यसाराणां ( लावण्यश्रेष्ठांऽशानां ) यः समुदायः ( समूहः ) तस्य निकेतनं वा ( गृहं वा ), निकेतनपदस्याऽजहल्लिङ्गतया सेत्यनेन सामानाधिकरण्यम् । अत एव—हे सखे ! हे मित्र !, नियतं = निश्चितम् । इन्दुकलामृणालज्योत्स्नाऽऽदि = चन्द्रकलाबिसचन्द्रिकाऽऽदि, क्वचित्कलायाः स्थाने 'सुधे'ति पाठः । तस्याः = मालत्याः, कारणं = हेतुः, एवं च मदनश्च = कामदेवश्च, वेधाः = स्रष्टा, निमित्तकारणमिति भावः । कामदेव एव विधातृकार्यमुररीकृत्येन्दुना मालत्या मुखं, कलयाऽधरं, मृणालद्वितयेन बाहुद्वयं, ज्योत्स्नया लावण्यमेवं चाऽऽदिपदेन पद्माभ्यां पादयुग्ममन्यैश्चाऽसाधारणैरुपादानैरवशिष्टमङ्गनिचयं निर्मितवान् । मालत्या ब्रह्मस्रष्टृत्वे ब्रह्मा तत्सदृशीरन्या अपि ललना रचयेत्परं तथाऽदर्शना-

---

भावको जतानेवाले', अतिगम्भीर स्वभावसे युक्त अतिशय उदार परिजनोंसे संपन्न कोई ललना वहाँ पर आगई ।

वह ( कुमारी ) सौन्दर्याकरकी अधिदेवता वा सौन्दर्यके श्रेष्ठ अंशोंके समुदायका भवनरूप है । हे मित्र ! निश्चितरूपसे चन्द्रकला, मृणाल (कमलकी डंडी) और चन्द्रिका आदि उसके कारण हैं और कामदेव उसके रचयिता हुए थे ॥ २२ ॥

अथ प्रणयिनीभिरनुचरीभिः कुसुमसंचयावचयलीलाभिलाषवतीभिरभ्यर्थ्यमाना तमेव बकुलपादपोद्देशमागतवती। तस्याश्च कस्मिंश्चिदपि महाभागधेयजन्मनि बहुदिवसापचीयमानमिव मन्मथव्यथाविकारमुपलक्षितवानस्मि। यतः—

न्मदन एव मालत्याः स्रष्टेति प्रतीयत इति भावः। एतत्पद्याऽर्थसंवादि पद्यान्तरं विक्रमोर्वश्यामपि दृश्यते—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः।
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाऽऽकरः॥
वेदाऽभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥ इति।

अत्र पूर्वार्द्धे शुद्धसन्देहद्वयमुत्तरार्धे च मदनस्य मालत्याः स्रष्टृत्वाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धकथनादतिशयोक्तिः। तथा चैतेषामलङ्काराणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ २२॥

अथेति। प्रणयिनीभिः=प्रणयवतीभिः। प्रणयोऽस्ति आसामिति प्रणयिन्यस्ताभिः, 'अत इनि ठनौ' इतीनिः 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप्। कुसुमसञ्चयाऽवचयलीलाऽभिलाषवतीभिः= अत्र कुसुमपदात्प्राक् 'अविरले'त्यधिकः पाठस्तत्र अविरलस्य=निरन्तरस्येत्यर्थः। कुसुमसञ्चयस्य ( पुष्पसमूहस्य ) अवचयः ( त्रोटनम् ) तस्य लीला ( केलिः ), तस्याम् अभिलाषवतीभिः (इच्छायुक्ताभिः)। 'अभिलाषवतीभि' रित्यत्र क्वचित् 'दोहदिनीभि'रिति पाठस्तत्राऽपि स एवाऽर्थः। दोहदमस्ति आसां ता दोहदिन्यस्ताभिः, इनिप्रत्ययः। 'अथ दोहदम्। कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' इत्यमरः। अभ्यर्थ्यमाना=प्रार्थ्यमाना, कुसुमाऽवचयाऽर्थमिति शेषः। अभ्युपसर्गपूर्वकात् 'अर्थ उपयाच्ञायाम्' इति धातोः कर्मणि लटि यकि शानचि 'आने मुक्' इति मुगागमः। आगतवती=आगता, 'निष्ठा' इति कर्तरि क्तवतुप्रत्ययस्ततः 'उगितश्चे'ति ङीप्। महाभागधेयजन्मनि=महाभाग्ययुक्तजन्मशालिनि। भाग एव भागधेयं, 'वा भागरूपनामभ्यो धेयः' इति स्वाऽर्थे धेयप्रत्ययः। 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः।' इत्यमरः। महद्भागधेयं यस्य तत् महाभागधेयम्, 'आन्महतः समानाऽधिकरणजातीययोः' इत्यात्वम्। महाभागधेयं जन्म यस्य सः, तस्मिन् पुरुष

अनन्तर वह प्रेम करनेवाली और पुष्पसमूहको तोड़नेकी क्रीडाके अभिलाषासे युक्त सहचरियोंसे प्रार्थित होकर उसी बकुलवृक्षके पास आई। उसका महाभाग्य सम्पन्न जन्मवाले किसी पुरुष पर बहुत दिनोंसे बढ़े हुएके सदृश कामव्यथाके विकारकी सम्भावना मैं करता हूं। क्योंकि—

परिमृदितमृणालीग्लानमङ्गं, प्रवृत्तिः
कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु ।
कलयति च हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मी-
मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलः ॥ २३ ॥

इति शेषः । एवं च समानाधिकरणबहुव्रीहित एव कार्यनिर्वाहे महाभागधेयेन जन्म यस्येति व्यधिकरणबहुव्रीहौ कृताश्रयं व्याख्यानं नादरणीयम् । महाभागधेयाज्जन्म यस्येति व्याख्यानं तु सत्यपि व्यधिकरणबहुव्रीहावालङ्कारिकसमयाऽनुगुणत्वान्नोपालम्भनीयम् । बहुदिवसोपचीयमानं = बहुदिवसात् ( अधिकदिनात ) उपचीयमानः ( प्रवर्द्धमानः ), तम् । मन्मथव्यथाविकारं = कामपीडाविकृतिम् । उपलक्षितवान् = दृष्टवान् । 'उपलब्धवान्' इति पाठे प्राप्तवानित्यर्थः । दर्शने लिङ्गमाह—यत इति ।

परिमृदितेति । अङ्गं परिमृदितमृणालीग्लानम्; क्रियासु परिवारप्रार्थनाभिः कथमपि प्रवृत्तिः, अभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलो निष्कलङ्कस्य हिमांशोः लक्ष्मीं च कलयतीत्यन्वयः । अङ्गं=हस्तपादाऽऽदिरवयवः, तस्या इति शेषः । परिमृदितमृणालीग्लानम् = परिमृदिता (मर्दनविपर्यीकृता) या मृणाली ( अल्पं बिसम् ), सेव ग्लानम् ( ग्लानिमापन्नम् ) 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासः मृणालीत्यत्र अल्पं मृणालं मृणाली, 'पिद्गौरादिभ्यश्चे'त्यवयवाऽपचयविवक्षायां ङीष् अत्र मृणालीपदेन वर्णनेन कार्श्यं नाम मदनाऽवस्था ग्लानपदेन च निद्राच्छेदः सूच्यते । क्रियासु = कर्मसु, भोजनपानादिष्विति भावः । परिवारप्रार्थनाभिः = परिजनाऽभ्यर्थनाभिः, कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण, कष्टेनेति भावः । प्रवृत्तिः = प्रयत्नः, अत्र कथमपीत्यनेन विषयनिवृत्तिर्ज्ञापिता । व्याधिवशादप्येतत्सम्भवादन्यदसाधारणं लिङ्गमाह—कलयतीति । अभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः = अभिनवः ( नूतनः, सद्यः कृत्तः इति यावत् ) यः करिदन्तच्छेदः ( हस्तिदशनखण्डः ), स इव कान्तः ( सुन्दरः ) ! क्वचित् 'कान्त'स्थाने 'पाण्डु'रिति पाठस्तस्य श्वेत इत्यर्थः । एतादृशः कपोलः = गण्डः, निष्कलङ्कस्य = कलङ्करहितस्य, हिमांशोः = चन्द्रस्य, लक्ष्मीं च = शोभां च, 'लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोः ।' ऋद्ध्यौषधौ च पद्मायां वृद्धिनामौषधेऽपि च ।' इति मेदिनी । कलयति=धारयति । एतानि लिङ्गानि मन्मथव्यथाज्ञापकानीति भावः। अत्र 'परिमृदितमृणालीग्लानम्'इत्यत्र 'अभिनवकरिदन्त-

( उसका ) हस्त-पाद आदि अवयव परिमर्दित छोटी कमलकी डंडीके सदृश म्लान है । भोजन आदि क्रियाओंमें परिजनोंको प्रार्थनाओंसे कष्टसे उसकी प्रवृत्ति है और तत्क्षण काटे गये हाथीदाँतके सदृश उसका सुन्दर कपोल कलङ्कसे रहित चन्द्रमाकी शोभाको धारण करता है ॥ २३ ॥

सा मम दर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिरिव चक्षुषे निरतिशयमानन्दमुत्पाद्यन्त्ययस्कान्तमणिशलाकेव लोहधातुमन्तःकरणमुपसंहृतवती। किं बहुना।

सन्तापसन्ततिमहाव्यसनाय तस्या-
मासक्तमेतदनपेक्षितहेतु चेतः।

च्छेदकान्त' इत्यत्र च उपमालङ्कारः एवमुत्तरार्द्धे कपोलो हिमांऽशोर्लक्ष्मीं कथं कलयेदिति वस्तुसम्बन्धस्याऽसम्भवत्वादुभयोर्बिम्बाऽनुबिम्बभावबोधनेनाऽसम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शना चेति त्रयाणामलङ्काराणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। मालिनी वृत्तम् ॥ २३ ॥

सेति। दर्शनात्=विलोकनात्, 'प्रभृति' पदयोगे 'अपादाने पञ्चमी'ति सूत्रे 'कार्तिक्याः प्रभृती'ति भाष्यप्रयोगात्प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी ज्ञापिता। प्रभृति=आरभ्य। अमृतवर्तिः=पीयूषमयनयनाञ्जनलेखा। निरतिशयं=निर्गतोऽतिशयो यस्मात्तं, यद्वा अतिशयान्निष्क्रान्तं निरतिशयं, 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति समासः, काष्ठामारूढमिति भावः। एतादृशमानन्दं=सुखम्। अयस्कान्तमणिशलाका=लोहकर्षकमणिशलाका। अयस्कान्तमणिर्भाषायां 'चुम्बके'ति नाम्ना ख्यातः। लोहधातुमिव=अयोधातुमिव। अन्तःकरणं=मनः, मदीयमिति शेषः। उपसंहृतवती=स्वसमीपमाकृष्टवती, क्वचित् 'आकृष्टवती'ति पाठः।

सन्तापेति। एतत् चेतः सन्तापसन्ततिमहाव्यसनाय अनपेक्षितहेतु (सत्) तस्याम् आसक्तम्; सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव प्रायः जन्तोः शुभम् अशुभं च विदधातीत्यन्वयः। एतत्=इदं, मदीयमित्यर्थः। चेतः=मनः, सन्तापसन्ततिमहाव्यसनाय=सन्तापसन्ततिः (मानसज्वरपरम्परा) एव महाव्यसनं (निरतिशयविपत्तिः) तस्मै 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्ये'ति चतुर्थी। अनपेक्षितहेतु=अनपेक्षितः (अविमृष्टः) हेतुः (कारणम्, आत्मनि तत्प्रणयदर्शनादिकं निमित्तमिति भावः) येन तत्, एतादृशं सत्। तस्यां=सुन्दर्याम्, आसक्तं=समन्ताल्लग्नम्। तदासक्तिः सन्तापसन्ततिमहाव्यसनहेतुश्चेच्चेतः कथं न निवारितमित्याह—प्राय इति। सर्वङ्कषा=सर्वान्कषतीति, सर्वेषां पीडयित्रीत्यर्थः। नियतिगतेरनुल्लङ्घनीयत्वाद्-

उसने मेरे देखनेके अनन्तर अमृतवर्तिकी तरह नेत्रोंमें अतिशय आनन्दको उत्पन्न कर जैसे चुम्बकमणि लोह धातुको आकृष्ट करती है उसी तरह मेरे अन्तःकरणको आकृष्ट किया। बहुत कहनेसे क्या?

यह (मेरा) चित्त सन्तापपरम्परारूप महाविपत्तिके लिए किसी कारणकी अपेक्षा (परवाह) नहीं करता हुआ उस (ललना) में आसक्त हो गया है। सबको

प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः
सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव ॥ २४ ॥

मकरन्दः—स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्चेति विप्रतिषिद्धमेतत् । पश्य—
व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-

ब्रह्मादयो देवा अपि पीडामनुभवन्तीति सर्वपदव्यङ्ग्योऽर्थः । सर्वङ्कषेत्यत्र सर्वोपपदाद्धिंसाऽर्थकषधातोः 'सर्वकूलाऽभ्रकरीषेषु कषः' इति खच्, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति खिदन्त उत्तरपदे पूर्वपदस्य मुम् । भगवती = माहात्म्यसम्पन्ना, ईश्वरस्याऽपि तत्सापेक्षत्वादन्यथा वैषम्यनैर्घृण्यदोषापातादिति भावः । भवितव्यता एव = नियतिरेव, प्रायः = बाहुल्येन, जन्तोः = प्राणिमात्रस्य, शुभम् = इष्टफलम्, अशुभं च = अनिष्टफलं च, विदधाति = करोति, उत्पादयतीति भावः । यथेष्टसाधने वयं न स्वतन्त्रास्तथाऽनिष्टप्रतीकारेऽपि । कर्मवशादुपनतं तदवश्यमनुभोक्तव्यमित्यर्थः । उक्तं च—'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् ।' इति । पुराऽनुष्ठिता कर्मसन्ततिरेव नियतिपदवाच्या । कर्ममहिमा गरुडपुराणे इत्थं प्रतिपादितः—

'ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशाऽवतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिरमरो भिक्षाऽटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥' इति ।

एवं च तस्यां मदीयाऽऽसक्तिर्विपन्निमित्तभूतेति जानन्नपि कर्मवशान्मनोऽन्यथाकर्तुं न शक्नोमि, त्वं तु यथोचितमाचरेति भावः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २४ ॥

मकरन्द इति । निमित्तसव्यपेक्षः = निमित्ते ( कारणे ) सव्यपेक्षः (विशिष्टाऽपेक्षया सहितः ) बाह्योपाधिसापेक्ष इति भावः । इति = एतादृशं जनकथनं विप्रतिषिद्धं = विरुद्धम्, अयुक्तमिति भावः । स्वाभाविकस्नेहस्य बाह्योपाध्यनपेक्षितामुपपादयति-पश्येति । पश्य = दृष्टान्तद्वारेसमर्थमवधारयेति भावः ।

व्यतिषजतीति । आन्तरः कोऽपि हेतुः पदार्थान् व्यतिषजति, प्रीतयः बहिरुपाधीन् न संश्रयन्ते खलु, हि पतङ्गस्य उदये पुण्डरीकं विकसति, हिमरश्मौ उद्गते चन्द्र-

पीडित करनेवाली भगवती भवितव्यता ( नियति ) ही प्रायः प्राणीका शुभ और अशुभका विधान करती है ॥ २४ ॥

मकरन्द—'स्नेह कारणकी अपेक्षा करता है ।' यह विरुद्ध बात है । देखो—भीतर रहा हुआ कोई कारण पदार्थोंको परस्पर मिलाता है । प्रेम बाहरके

न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ २५ ॥

ततस्ततः ।

माधवः—ततश्च तत्र—

सभ्रूविलासमथ सोऽयमितीव नाम

कान्तो द्रवति च इत्यन्वयः । आन्तरः = गूढः, कोऽपि = अनिर्वाच्यः, इदन्तया परिच्छेतुमशक्य इति भावः । हेतुः = कारणं, कार्यैकसमधिगम्यमिति शेषः । पदाऽर्थान् = भावान्, चेतनानचेतनांश्चेति भावः । व्यतिषजति = परस्परं संघटयति, मिथः संलग्नान्करोतीत्यर्थः । प्रीतयः=स्नेहाः, बहिरुपाधीन् = बाह्यकारणानि, न संश्रयन्ते= न अवलम्बन्ते । खलु = निश्चयेन । उक्तं सामान्यमर्थं विशेषद्वयेन द्रढयति—विकसतीति । हि = यतः । पतङ्गस्य = सूर्यस्य, 'पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च' इत्यमरः । उदये = उद्गमे, पुण्डरीकं = श्वेतकमलं, विकसति = प्रफुल्लति । एवं च—हिमरश्मौ = चन्द्रे, उद्गते=उदिते सति, चन्द्रकान्तः=चन्द्रकान्तनामा मणिः, द्रवति च=क्षरति च । दविष्ठप्रदेशस्थे तृष्णरश्मावुदिते भूतलस्थमृदुलकमलस्य विकासेन तथैव सुधांऽशोरुद्गमे पाषाणक्षरणेन च बाह्यकारणमन्तरेणाऽपि स्वाभाविकः स्नेह उत्पद्यत इत्ययमर्थः स्फुटीभवति इत्थमेव तवाऽपि तस्यां स्नेहः स्वाभाविक इति भावः । उत्तररामचरितस्य षष्ठाङ्केऽपि श्लोकोऽयं श्रीरामचन्द्रपठितो वर्तते । अत्राऽर्थाऽन्तरन्यासोऽलङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ २५ ॥

ततस्तत इति । अनन्तरं वृत्तान्तं ब्रूहीति भावः । वीप्सायां द्विरुक्तिः ।

माधव इति । ततः = तदनन्तरं 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल् । तत्र = तस्मिन् स्थाने, 'सप्तम्यास्त्रल्' इति त्रल् ।

सभ्रूविलासमिति । चतुरेण तस्याः सखीजनेन माम् अवलोक्य अथ सप्रत्यभिज्ञम् इव 'सः अयम्' इति ईरयित्वा तदा अन्योन्यमेव सभ्रूविलासं स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः मुक्ता इत्यन्वयः । चतुरेण=प्रवीणेन, आवयोः प्रणयज्ञानाऽभिज्ञेनेति भावः ।

कारणोंका आश्रय नहीं करता; क्योंकि—सूर्यका उदय होनेपर श्वेत कमल खिलता है और चन्द्रके उदित होनेपर चन्द्रकान्तमणि पिघलता है ॥ २५ ॥

उसके बाद ? उसके बाद ?

**माधव**—उसके बाद वहाँ—

उस ( ललना ) की चतुर सखी ने मुझे देखनेके अनन्तर प्रत्यभिज्ञा युक्तके

सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः ।
अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः ॥ २६ ॥

मकरन्दः—( स्वगतम् ) कथं प्रत्यभिज्ञापि नाम ।

माधवः—अथ ताः सलीलमुत्तालकरकमलतालिकातरलवलयावलीक-

क्वचित् 'अन्योन्यभावचतुरेणे'ति पाठः । तस्याः = सुन्दर्याः, मालत्या इति भावः । सखीजनेन = वयस्यागणेन, मां = माधवम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, अथ = अनन्तरं, दर्शनाऽनन्तरमिति भावः । सप्रत्यभिज्ञम् इव = तत्तेदन्ताऽवगाहिज्ञानं प्रत्यभिज्ञा तत्सहितम् इव, पूर्वदृष्टमिवेति भावः । अन्यानुभूतज्ञानस्य स्वप्रत्यक्षाऽभावादिव-शब्देन सम्भावना द्योत्यते प्रत्यभिज्ञायाः स्वरूपं निर्दिशति—सोऽयमिति = सः= पूर्वाऽनुभूतः, अयम् = सन्निकृष्टस्थः, अस्तीति शेषः । इति=इत्थम्, ईरयित्वा=कथयित्वा, क्वचित् 'सोऽयमितीव नामे'ति पाठान्तरं तत्र नामेति प्रसिद्धौ । तदा = तस्मिन्काले, 'सर्वैकाऽन्यकियत्तदः काले दा' इति तच्छब्दाद्दाप्रत्ययः । अन्योन्यमेव= परस्परमेव, 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्' इति द्वित्वे बहुलत्वादन्यस्य समासवत्त्वाऽभावे 'असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः' इति पूर्वपदस्थस्य सुपः सुत्वम् । सभ्रूविलासं=भ्रूविभ्रमसहितं यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । स्मितसुधामधुराः = स्मितम् ( मन्दहास्यम् ) एव सुधा ( अमृतम् ) 'ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताऽधरम् ।' इति साहित्यदर्पणस्थं स्मितलक्षणम् । स्मितसुधया मधुराः ( मनोहराः ) । एतादृशाः कटाक्षाः=अपाङ्गदर्शनानि । मुक्ताः= त्यक्ताः । अत्र सप्रत्यभिज्ञमिवेत्यत्रोत्प्रेक्षा, स्मितसुधेत्यत्र रूपकं चेतिद्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २६ ॥

मकरन्द इति । नामेति संभावनायाम् । माधवस्याऽदृष्टपूर्वत्वात्कथं तासां प्रत्यभिज्ञासंभव इति वितर्कः ।

माधव इति । अथ = अनन्तरं, ताः = मालतीसख्यः । सलीलं = सविलासं तथा तथेति क्रियाविशेषणम् । एवमन्यच्च पदद्वितयं क्रियाविशेषणम् । उत्तालकरकमलतालिकातरलवलयाऽवलीकम् = उत्ताला ( उन्नता ) या करकमलयोः (पाणिपद्मयोः) तालिका ( करतलद्वयपरस्पराघातः ), क्वचित् 'ललिते'ति तालिकाया अधिकं

सदृश 'यह है' ऐसा कहकर उस समय परस्परमें ही भ्रूविलासपूर्वक मन्दहास्यरूप सुधासे मनोहर कटाक्षोंको छोड़ा ॥ २६ ॥

मकरन्द—( मन ही मन ) कैसे प्रत्यभिज्ञा भी हो गई ?

माधव—तब उन लोगों ( सखियों ) ने लीलाके साथ करकमलों की ऊँची

मुत्त्रस्तकलहंसविभ्रमाभिरामचरणसञ्चरणरणरणायमानमञ्जुमञ्जीररणिता-नुविद्धमेखलाकलापकिङ्किणीरणरणत्कारमुखरं प्रतिनिवृत्त्य 'भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्धामहे । यदत्रैव कोऽपि कस्या अपि वल्लभस्तिष्ठति' इति माम-ङ्गुलीदलविलासेनाख्यातवत्यः ।

मकरन्दः—हन्त, महतः प्रथमानुरागस्योद्भेदः ।

---

विशेषणं, तत्र । ललिता = मधुरेत्यर्थः । तालिकया तरला ( चञ्चला ) वलयाऽऽवली (कङ्कणश्रेणिः) यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा । 'नद्यृतश्चे'ति समासाऽन्तः कप्प्रत्ययः । उत्त्रस्तकलहंसविभ्रमाऽभिरामचरणसंचारणरणरणायमानमञ्जुमञ्जीररणिताऽनुविद्ध-मेखलाकलापकिङ्किणीरणरणत्कारमुखरम् = उत्त्रस्तः ( उद्विग्नः ) कलहंसः ( हंस-विशेषः, कादम्ब इत्यर्थः,'कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्यमरः), तस्य विभ्रमः (विशिष्ट-भ्रमणम् ), स इव अभिरामं ( मनोहरम् ) यत् चरणसञ्चरणं ( पादप्रक्षेपः ), तेन रणरणायमानं ( रणरणेति ध्वनिं कुर्वत् ) मञ्जु ( मनोज्ञम् ) यत् मञ्जीरं (नूपुरम्), तस्य रणितेन (शिञ्जितेन) अनुविद्धः (सङ्गतः) यो मेखलाकलापस्य (रशनादाम्नः) किङ्किणीरणरणत्कारः ( किङ्किण्याः = क्षुद्रघण्टिकायाः रणरणत्कारः = रणरणदिति ध्वनिः ) तेन मुखरं ( सशब्दम् ) यथा स्यात्तथा । प्रतिनिवृत्त्य = भूयो मालतीसमीपं प्राप्य । भर्तृदारिके = हे प्रभुकुमारि, 'कुमारी भर्तृदारिके' त्यमरः । दिष्ट्या = भाग्येन, वल्लभः=प्रियः, 'अभीष्टेऽभीप्सितं हृद्यं दयितं वल्लभं प्रियम् ।' इत्यमरः । अङ्गुलीदल-विलासेन = अङ्गुल्यः ( करशाखाः ) एव दलानि ( पत्राणि ), तेषां विलासेन (विभ्र-मेण, सङ्केतेनेति भावः ) । अत्राऽङ्गुलीनां दलत्वरूपणेन करस्य कमलत्वं द्योत्यते । 'कस्य' इति सर्वनाम्ना मालतीरूपो जनो ध्वनितः । कुत्रचित् 'कस्य' इति पाठः ।

मकरन्द इति । हन्तेति हर्षद्योतकमव्ययम् । महतः = अतिप्ररूढस्येति भावः । प्रथमाऽनुरागस्य = पूर्वरागस्य, उद्भेदः = प्रकाशः ।

---

ताली बजानेसे कङ्कणपङ्क्ति को चञ्चलकर उद्विग्न कलहंसके विशिष्ट भ्रमणके सदृश सुन्दर चरण-संचरणसे 'रणरण' शब्द करनेवाले सुन्दर नूपुर ( पाजेब ) की आवाजसे संगत, मेखलासमुदायस्थित किङ्किणी ( छोटी घुंघरू ) के रणरण शब्दको फैलाकर लौटकर 'भर्तृदारिके ! भाग्यसे हमारी वृद्धि हो रही है । जो कि यहीं पर किसी ( स्त्री ) का कोई प्रिय विद्यमान है ।' अङ्गुलीदलके विलाससे मुझे सङ्केत कर ऐसा कहा ।

मकरन्द—हर्षकी बात है कि यह महान् पूर्वरागका प्रकाश है ।

कलहंसः—अनयोः सरसरमणीयानुबन्धिनी खलु स्त्रीकथा। (एदाणं सरसरमणिज्जाणुबन्धिणी क्खु इत्थिआकहा)

मकरन्दः—ततस्ततः।

माधवः—

अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः।
तद्भूरिसात्त्विकविकारमपास्तधैर्य-

कलहंस इति। सरसरमणीयाऽनुबन्धिनी = सरसरमणीयं (सानुरागमनोहरम्) यथा तथा अनुबध्नाति (अनुसरति) तच्छीला। एतादृशी स्त्रीकथा = ललनासम्बन्धिनी वार्ता, अस्तीति शेषः। स्वगतोक्तिरियं ज्ञेया।

अत्राऽन्तर इति। अत्र अन्तरे आयताक्ष्याः किमपि वाग्विभवाऽतिवृत्तवैचित्र्यम् उल्लसितविभ्रमं भूरिसात्त्विकविकारम् अपास्तधैर्यं विजयि तत् मान्मथम् आचार्यकम् आविरासीत् इत्यन्वयः। अत्र = अस्मिन्, अन्तरे = अवसरे, 'अन्तरमवकाशाऽवधिपरिधानाऽन्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्राऽऽत्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च।' इत्यमरः। आयताक्ष्याः = आयते (दीर्घे) अक्षिणी (नेत्रे) यस्यास्तस्या विशाललोचनाया इत्यर्थः। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति समासाऽन्तः षच्, षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीप्। क्वचित् 'उत्पलाक्ष्याः' इति पाठस्तत्र कमललोचनाया इत्यर्थः। किमपि = अनिर्वाच्यं, विशेषतो निर्देष्टुमशक्यमिति भावः। वाग्विभवाऽतिवृत्तवैचित्र्यं = वाग्विभवात् (वचनसम्पत्तेः) अतिवृत्तम् (अतिशयितम्) वैचित्र्यं (विचित्रभावः) यस्य तत् शब्दसम्पत्त्यगोचरविचित्रभावोपेतमित्यर्थः। उल्लसितविभ्रमम् = उल्लसितः (उद्भासितः) विभ्रमः (शृङ्गारचेष्टाविशेषः) यस्मिंस्तत्। विभ्रमलक्षणमाह भरतमुनिः—'यच्चित्तवृत्तेरनवस्थितत्वं शृङ्गारजो विभ्रम उच्यतेऽसौ। भेदास्त्रयस्तस्य मदाऽनुबन्धकार्कश्यसंज्ञाः कथिता विदग्धैः।' इति। भूरिसात्त्विकविकारं = भूरिः (प्रचुरः) सात्त्विकविकारः (स्तम्भस्वेदादिविकृतिः) यस्मिंस्तत्। 'विकाराः सत्त्वसम्भूताः सात्त्विकाः परिकीर्तिताः।'

कलहंस—इन दोनोंका अनुरागसे मनोहर प्रकारसे सम्बद्ध स्त्रीविषयक वार्तालाप हो रहा है।

मकरन्द—उसके बाद ! उसके बाद !

माधव—इस अवसरमें उस सुन्दरी का अनिर्वचनीय वचनसम्पत्तिको लङ्घन करनेवाले वैचित्र्यसे सम्पन्न, शृङ्गार चेष्टा विशेषसे उद्भासित, स्तम्भ, स्वेद आदि

माचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥ २७ ॥

ततश्च—

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम् ।

इति सात्त्विकभावलक्षणम् । सत्त्वं नाम स्वात्मविश्रामप्रकाशकारी कश्चनान्तरो धर्म इति साहित्यदर्पणकारः । सात्त्विकभावभेदा यथा—

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥' इति ।

एवं च अपास्तधैर्यम् = अपास्तं ( निरस्तं, दूरीकृतमित्यर्थः ) धैर्यं ( धीरत्वम् ) येन तत् । तस्माद्धेतोः विजयि = विजयशीलं, सर्वत्राऽकुण्ठितगतीति भावः । विशेषेण जयतीति तच्छीलं, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिः । तत्=प्रसिद्धम् । मान्मथं = कामस्य, मन्मथस्येदं मान्मथं, 'तस्येदम्' इत्यण् । 'आचार्यकम् = आचार्यभावः, विविधशृङ्गारचेष्टाया उपदेशकत्वमिति भावः । 'योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्' इति वुञ् । आविरासीत्=प्रादुरभूत । अत्र विलासाऽऽख्यो नायिकाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

स्तिमितेति । अहं स्तिमितविकसितानाम् उल्लसद्भ्रूलतानां मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजां प्रतिनयननिपाते किञ्चिद् आकुञ्चितानाम् आलोकितानां विविधं पात्रम् अभूवम् इत्यन्वयः । अहम् = माधवः, स्तिमितविकसितानां = प्राक् स्तिमितानि ( निश्चलानि, मद्रूपनिरूपणाऽर्थमिति शेषः ) पश्चात् विकसितानि ( प्रफुल्लानि, हर्षेणेति शेषः ), तेषाम्, सर्वाण्यपि विशेषणानि 'आलोकितानाम्' इत्यस्य ज्ञेयानि । 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन' इति पूर्वकालसमासः । स्तिमितलक्षणं यथा—

'स्वगोचरान्न चाल्येत यत्तत्स्तिमितमुच्यते ।' इति ।

विकसितलक्षणं च—'विकासितं यद्विषये विशेषमवगाहते ।' इति ।

उल्लसद्भ्रूलतानाम् = भ्रुवौ लते इवेति भ्रूलते, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः । उल्लसन्त्यौ ( उच्चलन्त्यौ ) भ्रूलते ( भ्रूवतती ) येषु तेषाम् । मसृणमुकुलितानां = मसृणानाम् ( अनुरागसुन्दराणाम् ) मुकुलितानाम् ( निमीलितानाम् ) अनिर्वाच्यसुखाऽनुभूतेरिति शेषः । मसृणलक्षणं यथा—

प्रचुर सात्त्विक विकारोंसे युक्त, धैर्य को दूर करनेवाला और विजय शील प्रसिद्ध कामदेव का आचार्यभाव आविर्भूत हो गया ॥ २७ ॥

तदनन्तर—मैं निश्चल और विकसित, ऊपर चलने वाली भ्रूलताओंसे युक्त,

प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चितानां
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥ २८ ॥

ततश्च—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै-

'मसृणं तत्तु विज्ञेयमनुरागकषायितम् ।' इति ।

मुकुलितलक्षणं यथा—

'स्फुरिताऽऽश्लिष्टपक्ष्माऽग्रानुकूलोर्ध्वपुटोच्छ्रिता ।
सुखोन्मीलिततारा च मुकुला दृष्टिरिष्यते ॥' इति ।

एवं च—प्रान्तविस्तारभाजां = विस्तारं भजन्तीति विस्तारभाञ्जि, 'भजो ण्विः' इति ण्विप्रत्ययः। प्रान्ते ( अपाङ्गदेशे ) विस्तारभाञ्जि ( प्रसारयुक्तानि ), तेषां, सम्यगाश्लिष्टदृश्यविषयाणामिति भावः। अनेन विस्तारी सस्पृहश्चेति दृग्विकारद्वयमुक्तम् । यथा—'येनाश्लिष्टो हि विषयस्तद्विस्तारीति कथ्यते ।
भूयो भूयः स्पृहा यत्र दृष्टेस्तत्सस्पृहं भवेत् ॥' इति ।

प्रतिनयननिपाते = प्रतिनयनस्य ( तदवलोकनार्थमुद्यतस्य मन्नेत्रस्य ) निपाते ( सङ्गमे ) आवयोर्नयनसमापत्तौ सत्यामिति भावः। किंचित् = ईषत्, आकुञ्चितानाम् ( सङ्कुचितानां लज्जयेति शेषः ) । संकुचितलक्षणं यथा—

'अपाङ्गभागसङ्कोचो यत्र तत्कुञ्चितं भवेत् ।' इति ।

एतादृशानामालोकितानां = मालत्याः सहसा दर्शनानाम् । आलोकितलक्षणमाह भरतमुनिः—'सहसा दर्शनं यत्स्यात्तदालोकितमुच्यते ।' इति । विविधं = नानाप्रकारं, पात्रं = भाजनम्, आश्रय इति भावः । अभूवम् = आसम् । अत्र परिकराऽलङ्कार इति त्रिपुरारिः । तल्लक्षणं यथा—'उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः ।' इति । *मालिनी वृत्तम्* ॥ २८ ॥

अलसेति । अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दैः अधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैः मे अशरणं हृदयम् अपहृतम् अपविद्धं पीतम् उन्मूलितं च इत्यन्वयः । अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दैः = अलसाः ( लज्जयेव

अनुरागसे सुन्दर और अनिर्वाच्य सुखाऽनुभूतिसे मुकुलित, अपाङ्ग देशमें विस्तारसे सम्पन्न और मेरे नेत्रोंके सङ्गम होनेपर लज्जासे सङ्कुचित मालतीके अवलोकनों का अनेक प्रकारसे आश्रय हो गया ॥ २८ ॥

उसके अनन्तर—

लज्जासे प्रतिनिवृत्त, फिर दर्शनकी इच्छासे तिरछे किये गये, सुन्दर, स्नेहपूर्ण,

रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै-
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च ॥ २६ ॥

प्रतिनिवृत्ताः ) वलिताः ( पुनर्दर्शनोत्कण्ठया तिर्यगुदञ्चिताः ) मुग्धाः ( छलाज्ञावगर्भा अपि स्वाभाविकाः ) स्निग्धाः ( स्नेहप्रायरतिभावसंयुक्ताः ) निष्पन्दाः ( विषयादन्यत्र न चलन्तः ) मन्दाः ( विषयान्तरगमनाऽतत्पराः ) तैः। त्रिपुरारिसूरलिखितमलसलक्षणं यथा—'अलसं तदभीष्टाऽर्थाद् व्रीडाद्यैर्यन्निवर्तते।' इति। वलितस्य—'वलितं तन्निवृत्तस्य भूयस्त्र्यस्राऽवलोकनम्।'

'त्र्यस्रं तिर्यगुदञ्चितम्' इति त्र्यस्रलक्षणम्।

मुग्धस्य—'स्वभावालोकितं मुग्धं भावगर्भमपिच्छलात्।' इति।
स्निग्धस्य—'स्निग्धं यद्रतिभावेन स्नेहप्रायेण संयुतम्।' इति।
निष्पन्दस्य—निष्पन्दं तद्यदन्यत्र दृष्टान्ते स्पन्दते क्वचित्। इति।
तथा मन्दाया दृष्टेः—'मन्थरा मन्दसञ्चरा।' इति।

अधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः = अधिकं ( प्रचुरं, यथा तथा ) विकसन् ( विस्तारं गच्छन् ) योऽन्तर्विस्मयः ( अन्तःकरणगतमाश्चर्यम् ) तेन स्मेरा ( प्रस्फुरिता ) तारा ( कनीनिका ) येषु तैः। स्मेरलक्षणं यथा—'प्रस्फुरत्पक्ष्मतारं यत्तत्स्मेरमिति कथ्यते।' इति। पक्ष्मलाक्ष्याः=पक्ष्मले ( प्रशस्तपक्ष्मयुक्ते ) अक्षिणी ( नेत्रे ) यस्यास्तस्याः, मालत्या इत्यर्थः। प्राग्वर्णितैः कटाक्षैः=अपाङ्गदर्शनैः, मे = मम, अशरणं = अविद्यमानं शरणं ( रक्षकः ) यस्य तत् रक्षकरहितमित्यर्थः। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। हृदयं = मानसम्। अपहृतं = बलाद्राच्छिद्य गृहीतम्। कटाक्षाणां मनोहरत्वात्तदा मनःशून्य इवाऽभवमिति भावः। अपविद्धं = तीक्ष्णः कटाक्षैर्विक्षतम्। एवं च पीतं = पानविषयीकृतं, यथा पीतं जलादिकं पानकर्तुरन्तर्विलीयते एवं कटाक्षेषु मन्मनो विलीनमिति भावः। उन्मूलितं च उत्खातमूलं च कृतम्, मन्मनसोऽन्यत्र प्ररोहो न भविष्यतीति भावः। तत्कटाक्षैः सर्वतोभावेन मन्मनसः स्वातन्त्र्यमपहृतमिति श्लोकतात्पर्याऽर्थः। अत्र चतुर्थचरणे 'अपहृतम्' 'अपविद्धम्' 'पीतम्' 'उन्मीलितं' चेत्यत्र इवादिपदाऽभावेन चतस्रः प्रतीयमानोत्प्रेक्षास्तासां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ २९ ॥

विषयसे अतिरिक्त स्थानमें नहीं जाते हुए, मन्द एवम् अतिशय विस्तार को प्राप्त होते हुए अन्तःकरणगत आश्चर्यसे प्रस्फुरित ताराओं ( आँखों की पुतलियों ) से युक्त सुन्दरीके कटाक्षोंने मेरे शरण ( रक्षक )से रहित हृदय का अपहरण किया, आघात किया, पान किया और उन्मूलित कर दिया ॥ २९ ॥

परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषयः
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथं यो न गतवान्।
विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च तनुते ॥ ३१ ॥

परिच्छेदाऽतीत इति। परिच्छेदाऽतीतः सकलवचनानाम् अविषयः पुनर्जन्मनि अस्मिन् यः अनुभवपथं न गतवान्, विवेकप्रध्वंसात् उपचितमहामोहगहनः, कोऽपि विकारः अन्तः जडयति तापं च तनुते इत्यन्वयः। परिच्छेदाऽतीतः = परिच्छेदं (निश्चयात्मकं ज्ञानम्) अतीतः (अतिक्रान्तः), स्वरूपेण परिमाणेन च निश्चेतुमशक्य इति भावः। 'द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति द्वितीयातत्पुरुषः। सकलवचनानाम् अभिधालक्षणाव्यञ्जनोपाधिकानां सर्वेषां शब्दानाम्। अविषयः=अग्राह्यः। अनेन विशेषणद्वयेन विकारस्य वाङ्मनसाभ्यामगम्यत्वमुक्तम्। पुनर्जन्मनि = जन्मान्तरे। अस्मिन्=अस्मिंश्च जन्मनि। यः=विकारः, अनुभवपथम् = अनुभूतिमार्गम्। अनुभूतेः पन्था इति अनुभूतिपथस्तम्। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इति समासाऽन्तोऽप्रत्ययः। न गतवान् = न प्राप्तः, येनाऽयमुपमीयेतेति भावः। विवेकप्रध्वंसात्=विवेकस्य (शास्त्रजन्यस्य परिच्छेदकज्ञानस्य) प्रध्वंसात् (अत्यन्तसमुच्छेदात्)। उपचितमहामोहगहनः = उपचितः (वृद्धिं गतो) यो महामोहः (दृढो भ्रमः, अविद्येत्यर्थः, यद्वा महामोहो रागः, क्लेशपञ्चकमध्ये रागस्यैव महामोह इति संज्ञा), तेन गहनः (विषमः)। एतादृशः कोऽपि = अनिर्वाच्यः शब्दव्यपदेशवर्जित इति भावः। विकारः = विकृतिः, मालतीवियोगजनितो भाव इत्यर्थः। अन्तः= अन्तःकरणं, मानसमित्यर्थः। जडयति = प्रतिपत्तिशून्यं करोति, मूर्च्छयतीति भावः। एवं च तापं च तनुते = सन्तापयति च। तनुते इत्यत्र क्वचित् 'कुरुते' इति पाठः। विकारः प्राङ्मोहयति पश्चाच्चैतन्याधानेन सन्तापयति चेत्युभयथाऽनिष्टमुत्पादयतीति भावः। अत्र जडीकरणे तापने चेति क्रियाद्वये विकाररूपस्यैकस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—

'अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ॥' इति। शिखरिणी वृत्तम् ॥३१॥

निश्चयात्मक ज्ञानको लङ्घन करनेवाला, समस्त वाक्यों का अगोचर, पुनर्जन्ममें और इस जन्ममें भी जो अनुभव मार्गमें नहीं प्राप्त हुआ है, विवेकके विनाशसे बढ़े हुए महामोहसे विषम कोई (अनिर्वाच्य) विकार अन्तःकरणको जड बनाता है और तापको भी उत्पन्न करता है ॥ ३१ ॥

अपि च—परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरःस्थेऽपि विषये
भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम् ।
न सन्तापच्छेदो हिमसरसि वा चन्द्रमसि वा
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥ ३२ ॥

कलहंसः—दृढं खल्वेष कयाप्यपहृतः। अपि नाम मालत्येव सा

परिच्छेदव्यक्तिरिति। पुरःस्थेऽपि विषये परिच्छेदव्यक्तिः न भवति। अभ्यस्तेऽपि अतथाभावविरसं स्मरणं भवति। हिमसरसि वा चन्द्रमसि वा सन्तापच्छेदो न। मनोनिष्ठाशून्यं (सत्) भ्रमति, किमपि आलिखति च इत्यन्वयः। पुरःस्थेऽपि = अग्रस्थितेऽपि, इन्द्रियसन्निकृष्टे ग्रहणयोग्येऽपीति भावः। विषये=पदार्थे, घटादाविति भावः। परिच्छेदव्यक्तिः = परिच्छेदस्य (निश्चयस्य, 'अयं घट' इत्याकारकस्य निश्चयस्येत्यर्थः) व्यक्तिः (अभिव्यक्तिः, प्राकट्यमित्यर्थः) न भवति = न विद्यते। अभ्यस्तेऽपि = वारंवारमनुभूतेऽपि पदार्थे। अतथाभावविरसम् = अतथाभावेन (अतथात्वेन, अनुभवाऽभावत्वेनेति यावत्) विरसं (विपर्यस्तम्) स्मरणं (स्मृतिः), भवति, पूर्वाऽनुभूतेऽपि विषये स्मरणं न भवतीति भावः। एवं च—हिमसरसि = तुषारवाप्यां वा = अथवा, चन्द्रमसि वा = हिमांऽशौ च, सन्तापच्छेदः = विरहताप-नाशः, न = न भवति। मनः = चित्तं, निष्ठाशून्यम् = निष्ठया (स्थित्या) शून्यं (रहितम्) सत्, कस्मिन्नपि विषयेऽनवस्थितं सदित्यर्थः। भ्रमति = नैरन्तर्येण संचलति। किमपि = अनिर्वाच्यं पदार्थम्, आलिखति = आश्रयति। अनेनोन्मादा-ऽवस्था सूच्यते। अत्र प्रथमे द्वितीये च चरणे विरोधाऽऽभासद्वयम्, तृतीये चरणे सन्तापच्छेदस्य हेतौ हिमसरसि चन्द्रमसि च विद्यमानेऽपि तदभावाद्विशेषोक्तिः, चतुर्थचरणे भ्रमणाऽऽलेखनक्रिययोर्मनोरूपस्यैककर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारस्येत्येतेषां मिथोऽनपेक्षया स्थितिः संसृष्टिः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३२ ॥

कलहंस इति। कयाऽपि=अविज्ञातनामधेयया कयाऽपि ललनयेत्यर्थः। अपहृतः= आकृष्टः। अपिरत्र संभावनायाम्। नाम प्रकाशे।

और भी—

संमुखस्थित विषयमें भी निश्चयकी अभिव्यक्ति नहीं होती है। बारंवार अनुभूत पदार्थमें भी अतथाभावसे विपर्यस्त स्मरण होता है। हिमवापीमें अथवा चन्द्रमामें भी सन्ताप का नाश नहीं होता है। मन स्थितिशून्य होता हुआ भ्रमण करता है और कुछ (अनिर्वाच्य पदार्थ) का आश्रय लेता है ॥ ३२ ॥

कलहंस—ये दृढतासे किसी स्त्रीसे आकृष्ट किये गये हैं। वह स्त्री मालती ही हो सकती है।

भवेत् । ( दिढं क्खु एसो कए वि अज्ज अवहरिदो । अवि णाम मालदी एव्व सा हवे )

मकरन्दः—( स्वगतम् ) अहो अभिषङ्गः । तत्किं निषेधयामि प्रियसुहृदम् । अथवा—

'मा मूमुहत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत् ।'
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्-
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च ॥ ३२ ॥

मकरन्द इति । अहो = आश्चर्यम् । अभिषङ्गः = आसक्तिः ।

मेति । 'अनन्यजन्मा भवन्तं मा मूमुहत् खलु, ते मतिः मलीमसविकारघना मा भूत्' । इत्यादि इह निरर्थकम् एव, ननु यस्मिन् कामो जृम्भितगुणो नवयौवनं च इत्यन्वयः । अनन्यजन्मा = न अन्यस्मात् ( मनोभिन्नात् ) जन्म ( उत्पत्तिः ) यस्य सः, काम इत्यर्थः । 'शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।' इत्यमरः । भवन्तं = त्वां, मा मूमुहत् = न मोहयतात्, 'माङि लुङ्' इति माङ्योगे आशिषि लुङ्, 'न माङ्योगे' इत्यडागमनिषेधः । खलु = निश्चयेन । एवं च—ते = तव, मतिः = बुद्धिः, मलीमसविकारघना = मलीमसः ( मलिनः, त्रिवर्गविरोधित्वान्निन्दित इति भावः ) यो विकारः ( विकृतिः, कामविकृतिरित्यर्थः ), तेन घना = निविडा, मा भूत् = न भवतात्, पूर्ववदाशिषि लुङ् अडागमनिषेधश्च । इत्यादि = एवमादि, उपदेशवाक्यमित्यर्थः । इह अस्मिन्, माधव इति भावः । निरर्थकमेव = व्यर्थमेव, ननु = निश्चयद्योतकमव्ययमेतत् । नैरर्थक्ये हेतुमाह—यस्मिन्निति । यस्मिन् = माधवे, कामः = मदनः, जृम्भितगुणः = जृम्भितः ( उपचितः ) गुणः ( उन्मादनादिशरनिपातव्यापार इत्यर्थः ) यस्य सः, इत्थमेव नवयौवनं = प्रत्यग्रतारुण्यम्, च = चपदमत्र जृम्भितगुणत्वाऽनुवर्तकं, क्लीबत्वेन लिङ्गविपरिणामः । नवयौवनं च = जृम्भितगुणम् = जृम्भिताः ( उपचिताः ) गुणाः ( अविमृश्यकारित्वाविवेकाऽभावप्रभृतय इत्यर्थः ) यस्मिंस्तत्, तादृशं वर्तते, ततोऽप्यत्र उपदेशो निष्फल इति भावः।

मकरन्द—आश्चर्य है । आसक्ति देखी जाती है । तब क्या प्रिय मित्रको निषेध करूँ ?

अथवा—'कामदेव आपको मोहित न करे और आपकी बुद्धि मलिन विकारसे निविड न हो ।' इत्यादि उपदेश वाक्य इनमें निरर्थक ही है, क्योंकि इनमें काम समृद्ध गुणों से युक्त है और नवीन यौवन विद्यमान है ॥ ३२ ॥

( प्रकाशम् ) वयस्य, अपि विदिते तदन्वयनामनी ।

माधवः—श्रूयताम् । अथः तस्याः करेणुकाधिरोहणसमय एव ततः सखीकदम्बकादन्यतमा वारयोषिद्विलम्ब्य कुसुमापचयक्रमेण नेदीयसी

लुण्ठकलुण्ठितसर्वस्वं पान्थं प्रति 'दस्युभूयिष्ठोऽयं पन्थास्तदनेन न गन्तव्यम्' इति वचनं, यथा निष्फलं तथैव बलवन्मन्मथमथितमानसं माधवं प्रति 'मदनाऽधीनो मा भूः' इति प्रतिपादनमपि निष्फलमिति तात्पर्यम् । अत्र निरर्थकमेवेति वाक्यार्थे कामस्य नवयौवनस्य च हेतुत्वाद्वाक्याऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । एवं च जृम्भितगुणत्वविशिष्टे कामरूपे एकस्मिन्हेतौ सत्यपि तादृश एव नवयौवनस्य च हेतुत्वात्समुच्चयश्चेत्येतयोरङ्गाङ्गित्वेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३२ ॥

प्रकाशमिति । प्रकाशं=सर्वश्राव्यं यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । 'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्' इति साहित्यदर्पणस्थं प्रकाशलक्षणम् । तदन्वयनामनी=तस्याः ( सुन्दर्याः ) अन्वयनामनी ( वंशाऽभिधाने ), विदिते अपि=ज्ञाते अपि । अपिरत्र प्रश्नाऽर्थकः । सा सुन्दरी कस्मिन्कुले प्रसूता, नीचकुलप्रसूताऽसवर्णक्षेत्रसंभवा चेन्न परिणेया भवेदिति भावः । एवं च सा किंनामधेया ? नक्षत्रवृक्षनद्यादिनामधेया चेन्नोद्वाह्या स्यादिति तात्पर्यम् । नक्षत्रादिनामधेयानां कन्यानामविवाह्यत्वमाह भगवान्मनुः—'नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नाऽन्त्यपर्वतनामिकाम् ।

न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषण-नामिकाम् ॥' ( ३-९ ) इति ।

माधव इति । माधवस्तदन्वयनामनी वक्तुमुपक्रमते—अथेति । करेणुकाधिरोहणसमये=करेणुकायाः ( हस्तिन्याः ) अधिरोहणसमये ( आरोहणकाले ) । 'करेणुरिभ्यां स्त्री' इत्यमरः । ततः=तस्मात्, 'महतः' इति पाठे विपुलमित्यर्थः । सखीकदम्बकात्=सहचरीसमूहात्, 'स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरावं कदम्बकम्' इत्यमरः । अन्यतमा=अन्या । वारयोषित्=गणिका । विलम्ब्य=विलम्बं कृत्वा, कुसुमाऽवचयव्याजेनेति शेषः । कुसुमापचयक्रमेण=पुष्पसञ्चयपरिपाट्या । नेदीयसी=अतिनिकटवर्तिनी, अन्तिकशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इतीयसुन्, 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इत्यन्तिकस्य नेदादेशः । कुसुमाऽऽपीडव्याजेन=कुसुमानाम्

( सुनकर ) वयस्य ! उस ( सुन्दरी ) के वंश और नाम को क्या आप जानते हैं ?

माधव—सुनो । अनन्तर उस सुन्दरीके हथिनीपर चढ़नेके समयमें ही उस सखी-समूहसे एक वेश्याने विलम्बकर फूल तोड़नेके क्रमसे मेरी निकटवर्तिनी होकर और फूलों की मालाको शिरमें धारण करनेके छलसे मुझे प्रणाम कर ऐसा

भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्तवती—'महाभाग, सुश्लिष्टगुणतया रमणीय एष सन्निवेशः। कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिकास्मिन्वर्तते। तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषुव्यापारः। तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य।

(पुष्पाणाम्) य आपीडः (शिरसि न्यस्तमाल्यम्) तस्य व्याजेन (छलेन) शिरसि माल्यधारणच्छलेनेति भावः। प्रणम्य=नमस्कृत्य। गणिकावाक्यमनुवदति—महाभागेति। महाभाग=हे महाभाग्यशालिन्! सुश्लिष्टगुणतया=सम्यग्घटितसूत्रत्वेन। एषः=पुरःस्थितः, क्वचित् 'वः सुमनसाम्' इत्यधिकः पाठस्तत्र वः=युष्माकं, सुमनसां=पुष्पाणाम्। 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्।' इत्यमरः। यद्वा-सुमनसां=प्रशस्तचित्तानाम्, सन्निवेशः=रचनाप्रकारः। संयोग इति वा। ततः किमित्याकाङ्क्षां पूरयति—कुतूहलिनीत्यादि। अतः नः=अस्माकं, भर्तृदारिका=अमात्यकुमारी भूरिवसोरमात्यस्य विभवेन राजतुल्यत्वात्तत्सुतापि भर्तृदारिकेत्युच्यते। अस्मिन्=भवद्गुम्फिते पुष्पमाल्ये। भवता संयोगे वा कुतूहलिनी=कुतूहलोपेता युष्माकमिति भावः। तस्यां=भर्तृदारिकायाम्। अभिनवः=नवीनः, अन्यत्राऽदृष्टपूर्व इति भावः। विचित्रः=चमत्कारी, कुसुमेषु=पुष्पेषु विषये, वैषयिकी सप्तमीयम्। व्यापारः=माल्यगुम्फनक्रियेति भावः। यद्वा कुसुमेषुव्यापारः=कुसुमेषोः (कामस्य) व्यापारः (भवति आसक्तिजनरूपा क्रियेति भावः), इयं नो भर्तृदारिका त्वामुद्दिश्य स्मरेण बलवदभिभूयत इत्यर्थः। तत्=तस्माद्धेतोः। वैदग्ध्यस्य=त्वदीयस्य माल्यरचनाप्रावीण्यस्य, यद्वा सकलकलापरिज्ञानस्य, कृताऽर्थता=चरिताऽर्थता, त्वद्गुम्फितमाल्यं गुणग्राहिण्यै मालत्यै समर्पितं सत्कृतार्थं भवेदिति भावः। यद्वा मालतीसम्बन्धेन त्वदीयं वैदग्ध्यं मणिकाञ्चनसंयोगन्यायेन सफलं भवेदित्याशंसा। विधातुः=निर्मातुः, तवेति शेषः। यद्वा ब्रह्मदेवस्य। निर्माणरमणीयता=रचनामनोहरता, फलतु=फलिता भवतु, त्वद्गुम्फितमाल्यं मालत्या उपभोगेन सफलं भवत्विति भावः। यद्वा युवयोर्दाम्पत्यसम्बन्धेन विधातू रचनारमणीयता फलिता भवेदिति तात्पर्यम्। सरसः=अम्लानः, पक्षान्तरे साऽनुरागः। एषः=कुसुमकलापः, माल्यरूप इति भावः, यद्वा भवान्। भर्तृदारिकायाः=अस्मत्स्वामिदुहितुः, कण्ठाव-

कहा—'हे महाभाग! अच्छी तरहसे सूत्रसम्बन्ध होनेसे इस मालाका रचनाप्रकार सुन्दर है अथवा सुसम्बद्ध गुण होनेसे आप दोनों की यह मनोहर स्थिति है। हमारी स्वामिकन्या इसमें कुतूहलशालिनी है, क्योंकि उनमें फूलोंकी माला-रचनामें नई और विचित्र क्रिया है अथवा उनमें कामदेव की क्रिया (आपमें आसक्ति जननरूप) नूतन और विचित्र है। इसलिए आपकी माल्यरचनाप्रवीणताकी

फलतु निर्माणरमणीयता। समासादयतु सरस एष भर्तृदारिकायाः कण्ठा-वलम्बनमहार्घताम्' इति।

मकरन्दः—अहो वैदग्ध्यम्।

माधवः—तया मदनुयुक्तयाख्यातम्—'इयममात्यभूरिवसोः प्रसूतिर्मालती नाम। अहं च भर्तृदारिकायाः प्रसादभूमिर्धात्रेयिका लवङ्गिका नाम' इति।

---

लम्बनमहार्घताम् = कण्ठाऽवलम्बनेन (गलाश्रयणेन, कण्ठे धारणेनेति भावः, पक्षान्तरे आलिङ्गनेनेति तात्पर्यम्) महाऽर्घताम् = महामूल्यतां, हाराऽऽस्पदमृदुल-कण्ठप्राप्तेरिति शेषः, पक्षान्तरे ललनान्तराभिर्दुष्प्राप्यत्वादिति शेषः। समासादयतु= संप्राप्नोतु। इति = एवं निवेदितवतीत्यर्थः। अत्र माधवे मालत्यनुरागसूचनरूपस्य प्रधानस्याऽर्थान्तरस्य प्रतिपादनात्पताकास्थानं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
प्रधानाऽर्थान्तराऽऽक्षेपी पताकास्थानकं परम्॥ इति।

एवं च याच्ञा नाम नाट्याऽलङ्कारश्च तल्लक्षणमपि तत्रैव यथा—

'याच्ञा तु क्वापि याच्ञा या स्वयं दूतमुखेन वा।' इति।

मकरन्द इति। अहो = आश्चर्यम्। वैदग्ध्यं = नैपुण्यं, तत्परिचारिकाया अपीदृशं वचनकौशलं, चित्रमित्यर्थः।

माधव इति। मदनुयुक्तया = मया अनुयुक्तया (पृष्टया, केयमितीति शेषः), 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यर्थः। आख्यातं = कथितम्। प्रसूतिः = अपत्यम्, प्रसाद-भूमिः = अनुग्रहभाजनं, मयि विश्वस्तत्वादिति भावः। धात्रेयिका = धात्र्या अपत्यं स्त्री धात्रेयी, 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक्। धात्रीसुतेत्यर्थः। धात्रेयी एव धात्रेयिका, स्वार्थे कन्। टापि 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' इतीत्वम्। लवङ्गिकया एतस्या उक्तेः माधवं प्रत्यप्यात्मनः विश्वासपात्रत्वं सूच्यते।

---

अथवा सकलकलापरिज्ञानकी कृतार्थता हो। रचनाकी रमणीयता सफल हो। सरस यह पुष्पमाल्य (अथवा अनुरागपूर्ण आप) स्वामिकन्याके कण्ठाऽवलम्बन की महामूल्यताको प्राप्त करे।

मकरन्द—अहो! वचनकी निपुणता है।

माधव—मेरे पूछनेपर उसने कहा—'मन्त्री भूरिवसुकी ये मालती नामकी कन्या है। मैं भी स्वामिकन्या की विश्वासपात्र, धायकी पुत्री लवङ्गिका नाम की सखी हूँ'।

कलहंसः—(सहर्षम्) किं नाम मालतीति। दिष्ट्या विलसितं भगवता देवेन कुसुमायुधेन। जितमस्माभिः। ( किं णाम मालदित्ति। दिट्ठिआ विलसिदं भअवदा देवेण कुसुमाउहेण। जिदं अम्हेहिं )

मकरन्दः—( स्वगतम् ) अमात्यभूरिवसोरात्मजेत्यपर्याप्तिर्बहुमानस्य। अपि च। मालती मालतीति मोदते भगवती कामन्दकी। तां च राजा नन्दनाय याचत इति किंवदन्ती श्रूयते। ( प्रकाशम् ) ततः ?

माधवः—तया चानुबध्यमानस्तां बकुलमालामात्मनः कण्ठादवतार्य दत्तवान्। असौ पुनरभिनिविष्टया दृशा मालतीमुखावलोकनविहस्ततया विषमरचितैकभागामपि तामेव मुहुर्मुहुर्बहुमन्यमाना 'महानयं प्रसाद' इति

कलहंस इति। दिष्ट्या=भाग्येन। भगवता=ऐश्वर्यसम्पन्नेन। विलसितं=जृम्भितम्। जितं=सर्वोत्कर्षेण वृत्तम्, अस्माभिः=तद्दूत्यव्यापृतैः सर्वैरेवेत्यर्थः।

मकरन्द इति। इति=एतावन्मात्रम्। अपर्याप्तिः=अपर्याप्तता। सा मन्त्रिदुहितेत्येव बहुमानास्पदमिति न, किन्तु अनितरसामान्यलावण्यादिगुणयोगेनाऽपीति भावः। अपि च=अन्यच्च, तस्या बहुमानास्पदत्वे कारणान्तरमिदमपि वर्तत इति भावः। नन्दनाय=नन्दननामकाय स्वनर्मसचिवायेति भावः। याचते=प्रार्थयते, क्वचित् 'प्रार्थयत' इति पाठः। किंवदन्ती=जनश्रुतिः। ततः=तदनन्तरं, किं वृत्तमिति शेषः।

माधव इति। अनुबध्यमानः=अभ्यर्थ्यमानः, क्वचित् 'अनुरुध्यमानः' क्वचिच्च 'अभ्यर्थ्यमान' इति पाठान्तरे। स्वकण्ठे परिधाय ततोऽवतार्य देयमिति उपयाच्यमान इति भावः। प्रियोपयुक्तमुक्ततया मालतीं प्रति श्लाघ्यतां स्रजो दर्शयितुं याचनमेतदवसेयम्। असौ=लवङ्गिका। अभिनिविष्टया=अभिनिवेशयुक्तया, आग्रहपूर्णयेत्यर्थः। दृशा=दृष्टया मालतीमुखाऽवलोकनविहस्ततया=मालतीमुखाऽवलोकनेन ( मालतीवदननिरीक्षणेन ) विहस्ततया ( व्याकुलतया, ममेति शेषः )। अत एव-विषमरचितैकभागाम्=विषमं ( पूर्वरचितभागाऽपेक्षया विरूपम् ) यथा

कलहंस—( हर्षके साथ ) क्या मालती ? भाग्यसे भगवान् कामदेवने विलास किया। हम लोगोंने जीत लिया।

मकरन्द—( मन ही मन ) मन्त्री भूरिवसुकी कन्या इतनेसे ही बहुत संमान की पर्याप्तता नहीं है। और भी है। भगवती कामन्दकी 'मालती मालती' कहकर प्रसन्न होती हैं। राजा उस ( मालती ) को नन्दनके लिए मांग रहे हैं ऐसी किंवदन्ती सुनी जाती है। ( सुनाकर ) तब ?

माधव—उसके प्रार्थना करनेपर उस बकुलमालाको मैंने अपने गलेसे उतार

प्रतिगृहीतवती। अनन्तरं च यात्राभङ्गप्रचलितस्य महतः पौरनैगमजनस्य सङ्कुलेन विघटितायां तस्यामागतोऽस्मि।

मकरन्दः--वयस्य, मालत्या अपि स्नेहदर्शनात्सुश्लिष्टमेतत्। यो हि कपोलपाण्डुतादिचिह्नः सूचितः प्रागनुरागस्तस्याः कामाभिषङ्गः सोऽपि त्वन्निबन्धन इति व्यक्तमेतत्। एतत्तु न ज्ञायते क दृष्टपूर्वस्तया वयस्य इति। न खलु तादृश्यो महाभागधेयजन्मानोऽन्यत्रासक्तचेतसो भूत्वा परत्र चक्षूरागिण्यो भवन्ति।

---

तथा रचितः (निर्मितः) एकः (अन्यः) भागः (अंशः) यस्यास्ताम्। ताम् एव= मद्गुम्फितां स्रजमेव। प्रसादः=अनुग्रहः। यात्राभङ्गप्रचलितस्य=यात्राभङ्गेन (उत्सवसमाप्त्या) प्रचलितस्य (गतस्य)। पौरनैगमजनस्य=पौरेण (पुरवासिजनेन) सहितो यो नैगमजनः (वणिग्जनः), तस्य, 'जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्' इति जातावेकवचनम्। 'वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वाणिजो वणिक्।' इत्यमरः। सङ्कुलेन=संमर्दन। तस्यां=मालत्यां, विघटितायाम्=अतीतनयनसन्निकर्षायां, तिरोहितायामिति भावः। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्।' इति सप्तमी।

मकरन्द इति। एतत्=इदं, मालत्यास्तव च मिथोविलोकनमाल्ययाचनवितरणादिकं वृत्तमित्यर्थः। सुश्लिष्टं=साधु संघटितम्। कामाऽभिषङ्गः=मन्मथविकारः। त्वन्निबन्धनः=त्वं निबन्धनं (हेतुः) यस्य सः, त्वन्मूलक इत्यर्थः। व्यक्तं=स्फुटम्। तु=परन्तु, तस्याः=मालत्याः, क्वचित् 'तये'ति पाठः। दृष्टपूर्वः=अवलोकितपूर्वः, 'सह सुपा' इति समासः। अहमेव तत्र हेतुरिति कुतो निश्चय इत्यत आह--न खल्विति। तादृश्यः=मालतीसदृश्य इत्यर्थः। महाभागधेयजन्मानः=महाभागधेयात् (महाभाग्यात्) जन्म (उत्पत्तिः) यासां ताः, कुमार्य इति शेषः। क्वचित् 'कुमार्य' इत्यपि पाठः। 'मन' इति ङीब्निषेधः। चक्षूरागिण्यः=नयनप्रीतियुक्ताः। युक्तं च-

---

कर दे दिया। उस लवङ्गिका ने भी आग्रहपूर्ण दृष्टिसे मालतीके मुखको देखकर मेरे व्याकुल होनेसे एक भागकी विषमरचना होनेपर भी उसी माला को बहुत मानती हुई 'यह महान अनुग्रह हुआ' ऐसा कहकर उसे ले लिया। उसके बाद उत्सव की समाप्तिसे चलने वाले नागरिक और व्यापारियों की बड़ी भीड़ के कारण दृष्टिपथसे मालतीके दूर होनेपर मैं आया हूं।

**मकरन्द**--वयस्य! मालती का भी स्नेह देखनेसे यह सुसम्बद्ध है। जो कपोलपाण्डुता आदि चिह्नवाला उनका पूर्वानुराग सूचित हुआ और जो काम-

अपि च—

अन्योन्यसंभिन्नदृशां सखीनां
तस्यास्त्वयि प्रागनुरागचिह्नम् ।
कस्यापि कोऽपीति निवेदितं च

माधवः—किं चान्यत् ।

---

'कुलीना गुणवत्यश्च कुमार्यो भाग्यभूषणाः ।
ईदृशास्त्वयशोदोषभाजनं नैव जातुचित् ॥
यदन्यासक्तचित्ता सा न चक्षुस्त्वयि पातयेत् ।
मनोऽन्यत्र दृगन्यत्र चेटीनां नोत्तमस्त्रियाः ॥' इति ।

त्वयि पूर्वाऽनुरागे चिह्नान्तरमप्यस्तीत्याह—अपि चेति ।

अन्योन्येति । अन्योन्यसम्भिन्नदृशां तस्याः सखीनां 'कस्याऽपि कोऽपी'ति निवेदितं च त्वयि तस्याः प्रागनुरागचिह्नम् इत्यन्वयः । अन्योन्यसम्भिन्नदृशाम् = मिथः संगतदृष्टीनां, 'सोऽयम्' इति सप्रत्यभिज्ञमिव त्वां निश्चेतुं मिथो मुखाऽवलोकनेन संमिश्रदृष्टीनामिति भावः । तस्याः=मालत्याः सखीनां=वयस्यानां, 'कस्याऽपि कोऽपीति'= 'भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्धामहे । यदत्रैव कोऽपि कस्याऽपि वल्लभस्तिष्ठति' इति पूर्वाऽभिहितवाक्यप्रतीकं च, एतादृशं निवेदितं च=विज्ञापितं च, त्वयि=भवति विषये वैषयिकी सप्तमीयम् । तस्याः=मालत्याः, प्रागनुरागचिह्नं=प्रागनुरागस्य ( पूर्वरागस्य ), चिह्नम् ( लिङ्गम् ), क्वचित् 'लिङ्गम्' इति पाठः ।

माधव इति । उत्कण्ठाऽतिशयेन चरमचरणोच्चारणप्रतीक्षणमसहमानः चशब्देन किमन्यत्समुच्चितोपीति पृच्छति—किं चाऽन्यदिति । च = चशब्दः, अन्यत् = अपरं, मयि मालतीपूर्वरागद्योतकं चिह्नं, किम्, द्योतयतीत्यर्थः ।

मकरन्द इति । धात्रेयिकायाः=धात्रीनन्दिन्याः, लवङ्गिकाया इत्यर्थः । चतुरं =

---

विकार देखा गया उसके भी आप ही हेतु हैं यह स्पष्ट है । परन्तु यह नहीं जाना जाता है कि वयस्यको उन्होंने पहले कहाँ देखा था । महाभाग्यवान् से उत्पन्न ऐसी ललनायें एक पर आसक्त चित्तवाली होकर दूसरेमें नेत्ररागको दरसाने वाली नहीं होती हैं ।

और भी—

परस्पर दृष्टि मिलानेवाली मालतीकी सखियोंके—'किसीका कोई ( प्यारा यहाँ है)' इत्यादि निवेदित वचन भी आपमें उनका पूर्वानुरागका चिह्न देखा जाता है ।

माधव—फिर और क्या ?

मकरन्दः—

धात्रेयिकायाश्चतुरं वचश्च ॥ ३४ ॥

कलहंसः—( उपसृत्य ) एतच्च । ( एदं अ ) ( चित्रं दर्शयति ) ।

( उभौ पश्यतः )

मकरन्दः—कलहंसक, केनेदं माधवस्य रूपमभिलिखितम् ?

कलहंसः—येनैवास्य हृदयमपहृतम् । ( जेण एव्व से हिअअं अवहरिदं )

मकरन्दः—अपि नाम मालत्या ?

कलहंसः— अथ किम् ? ( अह इं ? )

---

निपुणं, श्लेषगर्भितमित्यर्थः, 'महाभाग ! सुश्लिष्टगुणतये' त्याद्याकारकवाक्यरूपमिति भावः। वचश्च=वचनं च, त्वयि मालत्याः पूर्वरागद्योतकं चिह्नमिति तात्पर्यम् । अत्र माधवे मालत्याः पूर्वरागद्योतके कस्याऽपीत्यादिनिवेदितरूप एकस्मिन्हेतौ विद्यमानेऽपि चतुर्थचरणेन हेत्वन्तरस्याऽपि समुच्चयात्समुच्चयाऽलङ्कारः। इन्द्रवज्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।' इति ॥ ३४ ॥

कलेति । एतच्च = इदं चित्रं च, प्रागनुरागचिह्नमस्तीति शेषः ।

मकरन्द इति । केन = जनेन । रूपं = स्वरूपम्, आकृतिरित्यर्थः । पुस्तकान्तरे तु 'प्रतिबिम्बम्' इति पाठस्तस्य प्रतिमूर्तिरित्यर्थः । अभिलिखितं = चित्रितम् ।

कलेति । येन = जनेन । अस्य = भर्तुः, माधवस्येत्यर्थः । हृदयं = चित्तम् ।

मकरन्द इति । अपि नाम = प्रश्नद्योतकमव्यययुगलम् । लिखितमिति शेषः ।

कलेति । अथ किम् = स्वीकारद्योतकमव्ययुग्मम् ।

---

मकरन्द—धायकी पुत्री लवङ्गिका का श्लेषगर्भित 'महाभाग ! सुश्लिष्ट गुण होनेसे' इत्यादि वचन भी आपमें मालतीका पूर्वानुरागद्योतक चिह्न है ॥ ३४ ॥

कलहंस—( समीप जाकर ) यह भी ( मालतीका अनुरागसूचक चिह्न ) है ( चित्र दिखलाता है । )

( दोनों देखते हैं । )

मकरन्द—कलहंसक ! माधवकी इस आकृतिको किसने लिखा ?

कलहंस—जिसने माधवके हृदयका अपहरण किया ।

मकरन्द—क्या मालती ने ?

कलहंस—और क्या ?

माधवः—वयस्य मकरन्द, प्रसन्नप्रायस्ते तर्कः।

मकरन्दः—कुतोऽस्याधिगमस्ते ?

कलहंसः—मम तावन्मन्दारिकाहस्तात्। तया अपि लवङ्गिकासकाशात्। ( मह दाव मन्दारिआहत्थादो। तए वि लवङ्गिआसआसादो )

मकरन्दः—कथय किमाह मन्दारिका माधवालेख्यप्रयोजनं मालत्याः।

कलहंसः—उत्कण्ठाविनोदनमिति। ( उक्कण्ठाविणोअणं त्ति )

मकरन्दः—वयस्य, समाश्वसिहि।

या कौमुदी नयनयोर्भवतः सुजन्मा

---

माधव इति। प्रसन्नप्रायः=प्रसन्नं ( प्रसादयुक्तं भावम् ) प्रैतीति प्रसन्नप्रायः, 'कर्मण्यण्' इत्यण्, सन्देहलक्षणकालुष्यापगमान्निर्मलीभूत इति भावः। तर्कः= ऊहः, त्वय्येव साऽनुरक्तेत्याकारक इति भावः, 'अध्याहारस्तर्क ऊह' इत्यमरः। अत्र सुखागमप्रतीतेः प्राप्तिर्नाम सन्ध्यङ्गं, तल्लक्षणं यथा—'प्राप्तिः सुखागम' इति।

मकरन्द इति। कुतः=कस्मात्, जनादिति शेषः 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्, 'कु तिहोः' किमः कुभावः। अस्य=चित्रस्य। अधिगमः=प्राप्तिः।

कलहंस इति। उत्कण्ठाविनोदनम्=उत्कण्ठायाः ( उत्कलिकायाः ) विनोदनम् ( अपनयनम् )।

मकरन्द इति। समाश्वसिहि—समाश्वस्तो भव। समाङ्पूर्वकात् 'श्वस प्राणने' इति धातोर्लोट्। 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' इतीट्।

येति। या भवतो नयनयोः कौमुदी, सुजन्मा भवान् अपि तस्या मनोरथवन्धबन्धुः। हे सखे ! तत्संगमं प्रति संशयः नहि अस्ति, यस्मिन् विधिः मदनश्च कृताऽभियोगः इत्यन्वयः। या=मालती, भवतः=तव, नयनयोः=नेत्रयोः, चकोररूपयो-

---

माधव—वयस्य मकरन्द ! आपका तर्क सन्देहरहितप्राय है।

मकरन्द—तुमने इसे किससे पाया ?

कलहंस—मन्दारिकाके हाथसे और उसने भी लवङ्गिकाके पाससे (पाया)।

मकरन्द—मालतीके माधवका चित्र लिखनेका प्रयोजन मन्दारिकाने क्या बतलाया ? कहो।

कलहंस—उत्कण्ठाको हटाना ( यही प्रयोजन है )।

मकरन्द—वयस्य ! आप अच्छी तरहसे आश्वस्त हों। जो ( मालती ) आपके नेत्रोंकी चन्द्रिका ( चाँदनी ) हैं सुन्दर जन्मवाले ( सुन्दर ) आप भी

तस्या भवानपि मनोरथबन्धबन्धुः ।
तत्संगमं प्रति सखे ! न हि संशयोऽस्ति
यस्मिन्विधिश्च मदनश्च कृताभियोगः ॥ ३५ ॥
द्रष्टव्यरूपा च भवतो विकारहेतुस्तदत्रैवालिख्यताम् ।

माधवः—यदभिरुचितं वयस्याय । ( लिखन् ) सखे मकरन्द,

---

रिति भावः । कौमुदी = चन्द्रिकारूपा, आनन्दजननादिति भावः । एवं च सुजन्मा= शोभनं जन्म यस्य सः, शोभनोत्पत्तिरित्यर्थः । भवान् अपि = त्वम् अपि, तस्याः = मालत्याः, मनोरथबन्धबन्धुः = मनोरथबन्धस्य ( अनुरागप्रबन्धस्य ) बन्धुः = आश्रयः । ततः हे सखे = हे मित्र !, तत्संगमं प्रति = तस्याः समागमं प्रति, संशयः= सन्देहः, नहि अस्ति नो वर्तते । माधवस्य मालतीसमागमे साधकान्तरमाह—यस्मिन्निति । यस्मिन् = मालतीसंगमे विषये, विधिः = ब्रह्मा, अनुरूपयोगजनक इति भावः । मदनश्च=कामश्च, अनुरूपयोर्मिथः प्रणयोत्पादक इति भावः । कृताऽभियोगः = कृतः ( विहितः ) अभियोगः ( अभिनिवेशः ) येन सः, मालतीमाधवयोर्मिथोयोगे विधिः, तयोर्मिथः प्रणयोत्पादने च मदनस्तथा चैतौ द्वावपि देवौ रचिताऽभिनिवेशौ वर्तेते अत एतयोर्द्वयोः संगमे न सन्देहाऽवकाश इति भावः । ततः समाश्वसिहीति तात्पर्यम् । अत्र तृतीयचरणस्थं वाक्याऽर्थं प्रति प्रथमद्वितीयचतुर्थचरणस्थानां वाक्याऽर्थानां हेतुत्वाद्वाक्याऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः, कौमुदीपदे निरङ्गं केवलरूपकं चेत्यनयोरङ्गाङ्गित्वात्संकरः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३५ ॥

द्रष्टव्येति । अतो भवतो विकारहेतुः=विकारस्य ( चेतोविकृतेः ) हेतुः ( कारणम् ) मालतीति भावः । मया च द्रष्टव्यरूपा = द्रष्टव्यं ( दर्शनाऽर्हम् ) रूपं यस्याः सा दर्शनीयाकृतिरिति भावः । अनेन माधवस्य संशयं निरस्य मिथोऽनुरागस्य बीजस्य स्थापनात्समाधानं नाम सन्ध्यङ्गमुक्तं भवति । तल्लक्षणं यथा—'बीजागमः समाधानम्' इति ।

माधव इति । वयस्याय = अभिरुचितमिति रुचधातोः प्रयोगे 'रुच्यर्थानां प्रीय-

---

उसके अनुराग प्रबन्धके आश्रय हैं । हे मित्र ! मालतीके समागमके प्रति सन्देह नहीं है, जिस ( समागम ) में ब्रह्मा और कामदेवने अभिनिवेश किया है ॥ ३५ ॥

आपके विकारकी हेतु मालतीके रूपको भी देखना चाहिए इसलिए उसके रूपको भी यहींपर लिखिए ।

माधव—वयस्यकी जैसी रुचि हुई ( वैसा ही ) करता हूँ । ( लिखते हुए ) मित्र मकरन्द !

वारं वारं तिरयति दृशावुद्गतो बाष्पपूर-
स्तत्संकल्पोपहितजडिम स्तम्भमभ्येति गात्रम् ।
सद्यः स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाङ्गुलीकः
पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्तते किं करोमि ॥ ३६ ॥

माण' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी। यदभिरुचितं, तत्करोमीति शेषः। अतः परं 'तदुपनय चित्रफलकं चित्रवर्तिकाश्चे'ति पुस्तकान्तरस्थः पाठस्तत्र चित्रवर्तिकाः=चित्रस्य (आलेख्यस्य) वर्तिकाः (कूर्चिकाः) उपनय = मत्समीपमानयेत्यर्थः।

वारं वारमिति। उद्गतो बाष्पपूरो दृशौ वारं वारं तिरयति। तत्सङ्कल्पोपहितजडिम गात्रं स्तम्भम् अभ्येति। अयं पाणिः लेखाविधिषु सद्यः स्विद्यन् अविरतोत्कम्पलोलाऽङ्गुलीको नितरां वर्तते किं करोमि? इत्यन्वयः। प्रियाया आलेख्यलेखनसमये—उद्गतः = उद्भूतः, बाष्पपूरः = अश्रुप्रवाहः, दृशौ = नेत्रे, वारं वारं = क्षणे क्षणे, तिरयति=आवृणोति, अनेन मालत्या भ्रूनेत्रादीनामङ्गानां मुहुर्मुहुः स्मृत्याऽश्रूद्गमनरूपः सात्त्विकभावोदयः प्रतिपादितो भवति। अनुभावस्यावान्तरभेदाः सात्त्विकभावाश्चाऽष्टविधास्ते यथा—

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥' इति।

जडस्य भावो जडिमा, 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इति इमनिच् प्रत्यय। एवं च तत्सङ्कल्पोपहितजडिम = तस्याः (मालत्याः) सङ्कल्पेन (चिन्तया) उपहितः (प्राप्तः) यो जडिमा (कार्याऽशक्तत्वम्) येन तत्। एतादृशं गात्रं=शरीरं, स्तम्भं = स्तब्धत्वं, निश्चलत्वमिति भावः। अभ्येति = प्राप्नोति, एतेन जाड्याख्यः स्तम्भाऽऽख्यश्च सात्त्विकभावः प्रतिपाद्यते। अयं = सन्निकृष्टस्थः, पाणिः = हस्तः, लेखाविधिषु = चित्रलेखनक्रियासु, सद्यः = तदुपस्मृतिक्षण एवेति भावः। स्विद्यन् = स्वेदयुक्तो भवन्, अविरतोत्कम्पलोलाऽङ्गुलीकः = अविरतोत्कम्पेन (अनवरतवेपथुना) लोलाः (चञ्चलाः) अङ्गुल्यः (करशाखाः) यस्य सः 'नद्यृतश्चे'ति कप्। तादृशः, नितरां = सुतरां, वर्तते = विद्यते, एतेन स्वेदवेपथुरूपौ सात्त्विकभावविशेषौ प्रतिपाद्येते, अतः किं करोमि = किमनुतिष्ठामि, इदानीमालेख्यलेखनेऽपि

---

उत्पन्न अश्रुप्रवाह नेत्रोंकोवारबार आवृतकर देता है। प्रियाकी चिन्तासे कार्यमें असामर्थ्यको प्राप्त करनेवाला शरीर स्तब्ध हो जाता है। यह हाथ चित्र लिखनेकी क्रियाओंमें तत्क्षण पसीना आनेसे और लगातार काँपनेसे चञ्चल अङ्गुलियोंसे युक्त हो जाता है। मैं क्या करूँ? ॥ ३६ ॥

तथाप्यवहितोऽस्मि । ( चिरादभिलिख्य दर्शयति )

मकरन्दः--( चित्रं निर्वर्ण्य ) उपपन्नस्तावदत्रभवतोऽभिषङ्गः । (सकौतुकम्) कथमचिरेणैव निर्माय लिखितः श्लोकः । ( वाचयति )

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः

---

दुष्करत्वं प्रतीयते किमुत वैदग्ध्यप्रकाशन इति भावः । अत्र रोमाञ्चादिकानि सात्त्विकभावान्तराणि न प्रकाशितानि तेषामालेख्यनिर्माणे तादृशप्रातिकूल्याऽभावादिति भावः । अत्राऽऽलेख्यालेखनाऽशक्तत्वं प्रत्यधिकहेतुप्रदर्शनात्समुच्चयाऽलङ्कारः, एवं च किं करोमीति वाक्याऽर्थं प्रति वाक्याऽर्थान्तराणां हेतुत्वाद्वाक्याऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गं च तथा चैतयोर्द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३६ ॥

तथाऽपीति । तथाऽपिएव=मन्तरायाऽऽपातेनाऽऽलेख्यलेखनाऽशक्तत्वेऽपीति भावः । अवहितोऽस्मि = अवधानयुक्तोऽस्मि, आलेख्यलेखन इति शेषः । 'व्यवसितोऽस्मीति' पुस्तकान्तरपाठस्तस्य आलेख्यलेखनव्यवसाययुक्तोऽस्मीत्यर्थः । चिरात् = बाहुकालात्, अनन्तरमिति शेषः । अभिलिख्य = आलेख्यं चित्रयित्वा ।

मकरन्द इति । निर्वर्ण्य = विलोक्य । 'निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनाऽऽलोकनेक्षणम्' इत्यमरः । अत्र = इह, मालत्यामिति भावः । अभिषङ्गः=आसक्तिः । उपपन्नः=युक्तः । ईदृशाऽलौकिकलावण्यवत्यां ललनायामासक्तिर्युक्तरूपेति भावः । अचिरेणैव = अल्पकालेनैव । निर्माय = रचयित्वा । श्लोकः = पद्यं, 'पद्ये यशसि च श्लोक' इत्यमरः ।

जगतीति । जगति ते ते नवेन्दुकलादयो भावाः जयिनः । प्रकृतिमधुरा अन्ये सन्ति एव ये मनो मदयन्ति । तु यत् इयं विलोचनचन्द्रिका लोके मम नयनविषयं याता जन्मनि एकः स एव महोत्सव इत्यन्वयः । जगति = लोके, ते ते = अतिशयप्रसिद्धाः, नवेन्दुकलाऽऽदयः = नूतनचन्द्रकलाप्रभृतयः, भावाः = पदार्थाः, जयिनः = जयशीलाः, मदनसाहाय्याचरणेन विरहिजनवशीकरणशीला इति भावः । अत्र 'ते ते' इत्यत्र यत्पदाऽभावेऽपि प्रसिद्धाऽर्थप्रतिपादकत्वेन न विधेयाऽविमर्शता, 'प्रक्रान्त-

---

तो भी चित्र लिखनेमें अवधानयुक्त हूं ( बहुत समयके अनन्तर लिखकर दिखलाता है । )

मकरन्द--( चित्र देखकर ) माननीय माधवजीका इस ( मालती ) में आसक्ति उचित है । ( कौतुकके साथ ) कैसे थोड़े ही समयमें बनाकर श्लोक भी लिख लिया । ( बाँचता है । )

लोकमें अतिशय प्रसिद्ध नवीन चन्द्रकला आदि पदार्थ जयशील हैं । स्वभावसे सुन्दर और भी पदार्थ हैं ही जो कि मनको प्रसन्न करते हैं । परन्तु जो यह नेत्र-

प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥ ३७ ॥

( प्रविश्य )

मन्दारिका--कलहंस कलहंस, चोर चोर, पदानुसारेण लब्धोऽसि। ( सलज्जम् ) कथं तावपि महानुभावावत्रैव। (उपसृत्य) पणमामि। (कलहंस कलहंस, चोर चोर, पआणुसारेण लद्धोसि। कहं दे वि महाणुभावा एत्थ एव्व। पणमामि )

---

प्रसिद्धाऽनुभूताऽर्थकस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नाऽपेक्षत इति हि आलङ्कारिकसिद्धान्तसरणिः। एवं च प्रकृतिमधुराः=प्रकृत्या ( स्वभावेन ) मधुराः ( मनोहराः, 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया, 'तृतीया तत्कृताऽर्थेन गुणवचनेन' इति सूत्रे 'तृतीये'ति योगविभागात्समास इति कैयटसिद्धान्तः। एतादृशस्थले भाष्यकरमते तु सुप्सुपासमासः ) अन्ये=मालतीव्यतिरिक्ता अपि पदाऽर्थाः, सन्ति एव=वर्तन्त एव, अत्र एवपदस्य क्रियासंगतत्वात् अत्यन्ताऽयोगव्यवच्छेदरूपोऽर्थः। ये=भावाः, मनः=चित्तम्, अदृष्टमालतीमुखकमलानामविवेकिनां वेति शेषः। मदयन्ति=प्रीणयन्ति। तु=परन्तु, यत् , इयम्=एषा, विलोचनचन्द्रिका=नयनकौमुदी, कौमुदीवदाह्लादकारिणी मालतीति भावः। लोके=जगति, मम=माधवस्य, नयनविषयं=भावप्राधान्यनिर्देशात् लोचनगोचरतामित्यर्थः। याता=प्राप्ता, जन्मनि=लक्षणया जन्मभाजि पदार्थे इत्यर्थः। एकः=अद्वितीयः, स एव=अनुभूतरूप एव, महोत्सवः सौख्यहेतुरित्यर्थः। नूतनचन्द्रकलादयस्तदतिरिक्ता वा कमलप्रभृतयः पदार्था रुचिभेदादन्येषां जनानां सौख्याधायका वर्तन्तां परं मत्कृते तु, मालत्येवाऽनिर्वचनीयचेतस्तोषहेतुरिति भावः। अत्रोपमानभूतेभ्यो नवेन्दुकलादिपदार्थेभ्यो मालत्या आधिक्यप्रतिपादनाद्व्यतिरेकाऽलङ्कारः 'विलोचनचन्द्रिके' त्यत्र रूपकं चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः। हरिणी वृत्तम् ॥ ३७ ॥

मन्दारिकेति। चोर चोर='संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः' इति नियमेन सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। चोरेति सम्बोधनं मद्भवनाच्चित्रफलकं त्वया चोरे-

---

चन्द्रिका ( मालती ) लोकमें मेरे नेत्रविषयको प्राप्त हो गई है जन्मशाली पदार्थमें एक वही सौख्यका कारण है ॥ ३७ ॥

( प्रवेश कर )

मन्दारिका--कलहंस। कलहंस॥ चोर। चोर॥ पादचिह्नका अनुसरणकर

उभौ--मन्दारिके, इत आगम्यताम् ।

मन्दारिका--कलहंसक, उपनय चित्रफलकम् । ( कलहंसक, उवणेहि चित्तफलअं )

कलहंसः--गृहाणेदम् । ( गिण्ह इमं )

मन्दारिका--केन किंनिमित्तं वाऽत्र मालत्यभिलिखिता । ( केन किं णिमित्तं वा एत्थ मालदी अहिलिहिदा )

कलहंसः--य एव यन्निमित्तं मालत्या । ( जो एव्व जंणिमित्तं मालदीए )

---

णाऽऽनीतमित्युपहासपरम् । पदाऽनुसारेण=पादचिह्नाऽनुसारणेन, लब्धोऽसि= प्राप्तोऽसि, चोरो हि पदन्यासलिङ्गाऽनुसरणेनैव गृह्यते । सलज्जं=लज्जासहितं यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । तत्स्वामिसमीपे तेन सहोपहसनाऽनौचित्याल्लज्जोत्पत्तिरिति अवधेयम् । महानुभावौ=महाननुभावः ( प्रभावः ) ययोस्तौ, महाप्रभावयुक्ताविस्यर्थः । 'आन्महतः समानाऽधिकरणजातीययोः' इत्यात्वम् ।

उभाविति । आगम्यताम्=आगमनं क्रियताम्, 'आस्यताम्' इति प्रणकान्तरपाठस्तस्योपविश्यतामित्यर्थः । मन्दारिकायाः सन्निहितकार्योपयोगादादरोऽयम् ।

कलहंस इति । गृहाण=आदत्स्व, 'ग्रह उपादाने' इति धातोर्लोट्, 'हलः श्नः शानज्झौ' इति श्नः शानजादेशः । 'ग्रहिज्यावयी'ति सम्प्रसारणम् ।

मन्दारिकेति । किंनिमित्तं=किं निमित्तं ( प्रयोजनम् ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । यद्वा किं निमित्तमिति व्यस्तं पदं, 'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' इति प्रथमान्तं पदम् ।

कलेति । मालत्या यन्निमित्तं, य एव=माधव एव, यथा मालत्या स्वोत्कण्ठाविनोदाऽर्थं माधव आलिखितः, तथैव माधवेनाऽपि मालत्यालिखितेति भावः ।

---

तुम पाये गये हो । (लज्जाके साथ) कैसे वे दो महानुभाव भी यहींपर हैं । (समीप जाकर ) मैं प्रणाम करती हूँ ।

दोनों--( माधव और मकरन्द )--मन्दारिके । इधर आओ ।

मन्दारिका--कलहंसक । चित्रफलक दे दो ।

कलहंस--इसे ले लो ।

मन्दारिका--किसने अथवा किस कारणसे यहाँ मालतीका चित्र लिख दिया ।

कलहंस--मालतीने जिसका जिस कारणसे ( चित्र लिख दिया, उसीने उस कारणसे ) ।

मन्दारिका--( सहर्षम् ) दिष्ट्या उपदर्शितफलं विज्ञानं प्रजापतेः । ( दिट्ठिआ उवदंसिदफलं विण्णाणं पआवइणो )

मकरन्दः--सखि मन्दारिके, यदत्र वस्तुन्येषु ते वल्लभः कथयति, अपि तत्तथा ।

मन्दारिका—महाभाग, तत्तथा । ( महाभाअ, तत्तहा )

मकरन्दः--क्व पुनर्मालती माधवं प्राग्दृष्टवती ।

'यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि वा समः ।
नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे ॥' इति नियमादिति तात्पर्यम् ।

मन्दारिकेति । दिष्ट्या = भाग्येन, आनन्दद्योतकमव्ययमिदम् 'दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः । कामन्दकीपरिजनानामस्माकं दूत्यव्यापारः फलोन्मुख इत्यानन्दहेतुः । प्रजापतेः = ब्रह्मदेवस्य । विज्ञानं = निर्माणकौशलं, निरतिशयलावण्यशालिनोर्मालतीमाधवयोरिति शेषः । उपदर्शितफलम् = उप (समीपे) दर्शितं ( विलोकितम् ) फलं ( परिणामः ) यस्य तत्, एतादृशमस्ति, मिथोऽनुरूपयोरेतयोः प्रणयोत्पादनेन ब्रह्मणो निर्माणकौशलं सफलमतःपरं परिणयरूपं चरमं फलमेवाऽवशिष्टमस्तीति भावः ।

मकरन्द इति । अत्र = अस्मिन्, वस्तुनि = पदार्थे, माधवचित्ररूप इति भावः । ते = तव, वल्लभः = प्रियः, कलहंस इत्यर्थः । यत् , कथयति = प्रतिपादयति, भर्तृदारिकया मालत्या स्वोत्कण्ठाविनोदार्थमत्र माधवदेवोऽभिलिखित इतीति भावः । तत्, कथनं तथा = तादृशम्, अपि=किं, तद्वचनं किं सत्यमिति भावः ।

मन्दारिकेति । महाभाग = महान् भागः ( भागधेयम् ) यस्य स तत्सम्बुद्धौ । तत्=कथनं, तथा=तादृशमेव, सत्यमिति तात्पर्यम् ।

मकरन्द इति । प्राक् = प्रथमं, क्व = कुत्र, स्थितेति शेषः ।

मन्दारिकेति । वातायनगता = वातायनं गतेति, गवाक्षस्थिता मालतीमाधवमपश्यदिति भावः । 'द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्ताऽऽपन्नैः' इति द्वितीयातत्पुरुषः ।

मन्दारिका--( हर्षके साथ ) भाग्यसे ब्रह्माजीके निर्माणकौशलका फल देखा गया ।

मकरन्द--सखि मन्दारिके ! इस चित्रमें तुम्हारे प्रिय जो कहते हैं, वह सत्य है क्या ?

मन्दारिका- महाभाग ! वह सत्य है ।

मकरन्द—मालतीने माधवको पहले कहाँ देखा ?

मन्दारिका—लवङ्गिका भणति वातायनगतेति। ( लवङ्गिआ भणादि वादाअणगदेत्ति )

मकरन्दः—नन्वमात्यभवनासन्नरथ्ययैव बहुशः संचरावहे। तदुपपन्न-मेतत्।

मन्दारिका—अनुमन्यतां महाभागः। यावदिदं भगवतो देवस्य मदनस्य सुचरितं प्रियसख्यै लवङ्गिकायै निवेदयिष्यामि। ( अणुमण्णादु महाभाओ। जाव एदं भअवदो देवस्स मअणस्स सुचरिअं पिअसहीए लवङ्गिआए णिवेदिस्सामि )

---

मकरन्द इति। ननु = अवधारणद्योतकमव्ययमेतत्, 'प्रश्नाऽवधारणाऽनुज्ञाऽनुनयाऽऽमन्त्रणे ननु।' इत्यमरः। अमात्यभवनाऽऽसन्नरथ्यया = अमा ( सह ) वर्तत इति अमात्यः, 'अव्ययात्त्यप्' 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' इति त्यप्। रथं वहतीति रथ्या प्रतोली 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इति यत्। 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः। अमात्यभवनस्य ( मन्त्रिसदनस्य ) आसन्ने ( निकटे ) या रथ्या ( प्रतोली ) तयैव। बहुशः = नैकवारं, 'बह्वल्पाऽर्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' इति शस्प्रत्ययः। सञ्चरावहे = सञ्चरणं कुर्वः, आवामिति शेषः, 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदम्। तत् = तस्माद्धेतोः, तदिति तच्छब्दप्रतिरूपकमव्ययम्। एतत् = इदं, वातायनगतमालतीकर्तृकं माधवदर्शनमिति भावः। उपपन्नं = युक्तम्।

मन्दारिकेति। अनुमन्यताम् = अनुमतिः प्रदीयताम्। भगवतः = ऐश्वर्यसम्पन्नस्य सुचरितम् = शोभनचरित्रम्, अन्योन्यांकृतिनिर्माणहेतुपरस्पराऽनुरागलक्षणमिति शेषः। लवङ्गिकायै = क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी। निवेदयिष्यामि = ज्ञापयिष्यामि, 'निवेदयामी'ति पुस्तकाऽन्तरपाठस्तत्र 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति वर्तमानसमीपे भविष्यति लट्। समीहितैतद्वृत्तज्ञानोत्तरं सा च लवङ्गिका यथोचितमाचरिष्यतीति भावः।

---

मन्दारिका—लवङ्गिका कहती है कि झरोंखेके पास रहती हुई मालतीने माधवको देखा।

मकरन्द—अमात्यभवनके निकटके रास्तेसे अधिकतर हमलोग चलते हैं। इसलिए यह कहना ठीक है।

मन्दारिका—महाभाग मुझे अनुमति दें, जो कि भगवान् कामदेवका यह सुचरित्र प्रियसखी लवङ्गिकाको निवेदन करती हूँ।

मकरन्दः—प्राप्तावसरमेतद्भवत्याः ।

( उत्थाय परिक्रामतः )

मकरन्दः—वयस्य, मध्याह्नोऽतिवर्तते । तदेहि । संस्त्यायमेव प्रविशावः ।

( उत्थाय परिक्रामतः )

माधवः—एवं हि मन्ये ।

घर्माम्भोविसरविवर्तनैरिदानीं
मुग्धाक्ष्याः परिजनवारसुन्दरीणाम् ।

---

मकरन्द इति । एतत् = निवेदनं, भवत्याः = लवङ्गिकाया इत्यर्थः । प्राप्ताऽवसरं = प्राप्तोऽवसरो यस्य तत् , अवसरोचितमित्यर्थः । अतस्त्वया गन्तुमुचितमेवेति भावः ।

उत्थायेति । परिक्रामतः = परितः क्रमणं ( पादविक्षेपम् ) कुरुतः, मन्दारिकाकलहंसाविति शेषः ।

मकरन्द इति । मध्याह्नः = अह्नो मध्यं, 'संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याऽहनन्यतरस्यां ङौ' इति ज्ञापकात्समासः 'राजाऽहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् 'अह्नोऽह्न एतेभ्य' इति अहन्छब्दस्य अह्नादेशः 'रात्राऽह्नाहाः पुंसि' इति पुंलिङ्गता । 'खरतरकिरणोऽयं भगवान् सहस्रदीधितिरलङ्करोति मध्यमह्न' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र खरतरकिरणः= तीक्ष्णतरांऽशुः, सहस्रदीधितिः = सूर्यः । संस्त्यायं = गृहम्, 'संस्त्यायो विस्तृतौ गृहे' इति हैमः ।

घर्माम्भ इति । इदानीं मुग्धाक्ष्याः परिजनवारसुन्दरीणां कपोलकुङ्कुमानि घर्माऽम्भोविसरविवर्तनैः तत् प्रातर्विहितविचित्रपत्त्ररेखावैदग्ध्यं जहतीत्यन्वयः । इदानीम्= अधुना, मुग्धाक्ष्याः = मुग्धे ( सुन्दरे ) अक्षिणी ( नेत्रे ) यस्याः सा मुग्धाक्षी, तस्याः मालत्या इत्यर्थः । 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति समासाऽन्तः षच्, षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति । ङीष् । परिजनवारसुन्दरीणां = वारस्य (जनसमूहस्य) सुन्दर्यो वारसुन्दर्यः । परिजनाः ( परिचारिकाः ) या वारसुन्दर्यः ( वेश्याः ) तासाम् । कपोलकुङ्कुमानि = कपोललिप्तानि कुङ्कुमानि, 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धय

---

मकरन्द—यह आपका अवसरोचित कर्तव्य है ।

( उठ कर मन्दारिका और कलहंस परिक्रमण करते हैं । )

मकरन्द—वयस्य ! मध्याह्न बीत रहा है । इस कारण आइए । भवनको ही प्रवेश करें ।

( उठकर मकरन्द और माधव परिक्रमण करते हैं । )

माधव—मैं ऐसा विचार करता हूँ । इस समय सुन्दरी ( मालती ) की

तत्प्रातर्विहितविचित्रपत्ररेखा-
वैदग्ध्यं जहति कपोलकुङ्कुमानि ॥ ३८ ॥

अपि च—

उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो ।
तामीषत्प्रचलविलोचनां नताङ्गीमालिङ्गन्पवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम् ॥ ३९ ॥

---

उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इति मध्यमपदलोपी समासः। गण्डलिप्तानुलेपनद्रव्याणीत्यर्थः। एतेनाऽनुलेपनविशेष उक्तः, यथा—'वैदग्ध्येनोपरचितं स्तनयोर्वा कपोलयोः। उन्मादनं नयनयोर्यत्तत्स्यादनुलेपनम् ।' इति। घर्माऽम्भोविसरविवर्तनैः= घर्माऽम्भसः (स्वेदजलस्य) विसरस्य (विन्दुसमूहस्य) विवर्तनैः (प्रसरणैः)। तत्=पूर्वस्थितं, प्रातर्विहितविचित्रपत्ररेखावैदग्ध्यं=प्रातः (प्रभाते) विहिता (कृता) विचित्रा (चमत्कारकारिणी) या पत्ररेखा (पत्ररचना) सा एव वैदग्ध्यं (नैपुण्यम्) जहति=त्यजन्ति, प्रक्षालनादिति शेषः। मालतीपरिजनानां वारनारीणां प्रातःकाले कपोलफलकविन्यस्तानि पत्ररेखारूपाणि कुङ्कुमानि मध्याह्ने श्रमजलप्रसरेणाऽवलुप्यन्त इति भावः। प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ३८ ॥

उन्मीलन्मुकुलेति। उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो हे पवन! ईषत्प्रचलविलोचनां नताऽङ्गीं ताम् आलिङ्गन् मम अङ्गम् अङ्गम् स्पृशेत्यन्वयः। उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो=उन्मीलद्भिः (विकासोन्मुखैः) मुकुलैः (कुड्मलैः) करालः (दन्तुरः) यः कुन्दकोशः (माघ्यकुसुमगुच्छः), तस्मात् प्रच्योतन्तः (क्षरन्तः) घनाः (निविडाः) ये मकरन्दाः (पुष्परसाः), तेषां गन्धस्य (सौरभस्य) वन्धुः (सहचरः) तत्सम्बुद्धौ। हे पवन=हे वायो!, ईषत्प्रचलविलोचनाम्=ईषत्प्रचले किंचिच्चपले, विलासवशादिति शेषः, अथवा चिन्ताहेतुकेनाऽनिमिषदर्शनेन सख्यो ज्ञास्यन्तीति भीत्या तद्गोपनाय किञ्चिच्चञ्चले विलोचने (नेत्रे) यस्यास्ताम्। एतादृशीं नताऽङ्गीं= नतम् (अवनतम्) पीवरपयोधरभरेणेति भावः। अङ्गं यस्यास्ताम्, 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति संयोगोपधत्वेनाऽप्राप्तेः 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' इति ङीप्। तां=मालतीम्, आलिङ्गन्=आश्लिष्यन्, न तु आश्लेषोत्तरमपि तु आश्लेष-

---

परिचारिका वेश्याओंके कपोलोंमें विद्यमान कुङ्कुम, स्वेदजलसमूह के फैलनेसे पूर्वस्थित प्रातःकालमें रचित पत्ररचनाकी निपुणताका परित्याग करते हैं ॥ ३८ ॥

और भी—

विकासोन्मुख मुकुलोंसे दन्तुर कुन्दपुष्पोंके गुच्छसे क्षरित होनेवाले निविड-

मकरन्दः--( स्वगतम् )

**अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकायमनवग्रहः स्मरः।**
**अचिरेण वैकृतविवर्तदारुणः कलभं कठोर इव कूटपाकलः ॥ ४०॥**

---

समकालमेवेति भावः। शतृप्रत्ययेनाऽयमर्थो द्योत्यते। मम = विरहतापपीडितस्य, अङ्गम् अङ्गम् = प्रत्यवयवं, स्पृश = आमृश, हे वायो! नताऽङ्गीसङ्गसमकालमेव मदीयं प्रत्यङ्गं संस्पृश, येन मे विरहतापाऽपनयः स्यादिति भावः। अत्र विषम-कुन्दकोशसञ्चरेण गतिप्रतिबन्धान्मान्द्यं, मकरन्दसङ्गाच्छैत्यं गन्धबन्धुतया सौरभ्यं चेति पवनस्येति स्पृहणीयत्वं द्योत्यते। प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ३९ ॥

अभिहन्तीति। अनवग्रहो वैकृतविवर्तदारुणः कठोर एष स्मरः सुकुमारकायं माधवम् अनवग्रहो वैकृतविवर्त्तदारुणः कठोरः कूटपाकलः सुकुमारकायं कलभम् इव कथम् अभिहन्ति, हन्त! इत्यन्वयः। अनवग्रहः = अवग्रहणमवग्रहः ( प्रतिबन्धः ), 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्चे'त्यप्। 'गजालिके वृष्टिरोधे प्रतिबन्धेऽप्यवग्रहः।' इति रुद्रः। अविद्यमानोऽवग्रहो यस्य सः, प्रतिबन्धरहितः, 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तर-पदलोपः' इति नञ्बहुव्रीहिः। वैकृतविवर्तदारुणः = विकृतिः विकारः, तस्याऽयं वैकृतः 'तस्येदम्' इत्यण्। वैकृतः ( विकारसम्बन्धी ) यो विवर्तः ( परिणामः ), तेन दारुणः ( भयङ्करः ), 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्।' इत्यमरः। अत एव कठोरः=परुषः, एषः = अयं, स्मरः = कामदेवः, सुकुमारकायं = कोमलशरीरं, माधवं = सचिवसूनुम्, अनवग्रहः = प्रतिबन्धरहितः, वैकृतविवर्तदारुणः = विकृतिः विकारः, वातपित्तकफाऽऽख्यदोषसमूहरूप इत्यर्थः। वैकृतः ( सान्निपातिकः ) यो विवर्तः ( परिणामः ) तेन दारुणः ( भयङ्करः )। अत एव कठोरः=कठिनः, दुर्निवार इति भावः। कूटपाकलः=कूटेन (कपटेन) आगत्य पातयतीति, यथोक्तं हस्त्यायुर्वेदे—

'यथाऽभिहन्यात्कूटेन मृगयूथं वनेचरः।
तथा पातात्मको नागं हन्ति वै कूटपाकलः॥
मृगः कूटेन शवरैर्हन्यते दारुणं यथा।
तथा तेन द्विपः सीदत्यतः स्यात्कूटपाकलः॥' इति।

सुकुमारकायम् = अतिकोमलशरीरं, कलभम् इव = करिशावकम् इव, कथं=केन प्रकारेण, अभिहन्ति = अभिप्रहरति, हन्तेति खेदद्योतकमव्ययम्। 'हन्त हर्षेऽनुक-

---

पुष्परसोंके सौरभके सहचर हे वायो! कुछ चपल नेत्रोंसे युक्त अवनत अङ्गवाली उस ( सुन्दरी ) को आलिङ्गन करते हुए मेरे प्रत्येक अङ्गका स्पर्श करो ॥ ३९ ॥

मकरन्द--( मन ही मन ) प्रतिबन्धरहित, विकारके परिणामसे भयङ्कर कठोर यह काम सुकुमार शरीरवाले माधवको प्रतिबन्धरहित सान्निपातिक परिणामसे

तदत्रभवती कामन्दकी नः शरणम् ।

माधवः— ( स्वगतम् )

पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम् ।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-
मासक्ततिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रम् ॥ ४१ ॥

---

ष्पायां वाक्याऽऽरम्भविषादयोः ।' इत्यमरः । सान्निपातिको विकारो मृदुलकलेवरं कलभमिव निष्ठुरतरः स्मरोऽयं कथं सुकुमारशरीरं माधवमभिहन्तीति भावः । अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः । मञ्जुभाषिणी वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'सजसा जगौ भवति मञ्जभाषिणी ।' इति ॥ ४० ॥

तदत्रेति । तत् = तस्मात्कारणात् । अत्रभवती=माननीया, 'इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति साधुत्वम् । पुस्तकान्तरे तु अत्र भगवतीति पाठान्तरं तत्र अत्र = अस्यां, विपत्ताविति शेषः । भगवती = ज्ञानसम्पन्ना । शरणं = रक्षिका, 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । नाऽन्या गतिरस्तीति भावः । इयमर्थसंप्रधारणरूपा युक्तिर्मुखसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा—'सम्प्रधारणमर्थानां युक्तिरित्यभिधीयते ।' इति ।

पश्यामीति । उद्बुद्धमुग्धकनकाऽब्जनिभम् आसक्ततिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रं वहन्तीं ताम् इतः इतः पुरतः पश्चात् अन्तः बहिः परित एव विवर्तमानां पश्यामि इत्यन्वयः । उद्बुद्धमुग्धकनकाऽब्जनिभम् = उद्बुद्धं ( विकसितम् ) मुग्धं ( सुन्दरम् ) यत् कनकाऽब्जं ( स्वर्णकमलम् ) तन्निभं ( तत्सदृशम् ), 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति, 'निभसङ्काशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः ।' इत्युभयत्राऽप्यमरः । आसक्ततिर्यगपवर्तितदृष्टि=आसक्तेन ( आसक्त्या, मयीति शेषः ) तिर्यगपवर्तिता ( तिर्यग्वलिता ) दृष्टिः ( नयनम् ) यस्य तत् । एतादृशं वक्त्रं = मुखं, वहन्तीं = धारयन्तीं, तां = मालतीम्, इत इतः = उभयपार्श्वे, दक्षिणवामपार्श्वयोरिति भावः । पुरतः = अग्रे, पश्चात् = पृष्ठे, अन्तः = मनसि, बहिः=बाह्यदेशे, एवं च —परित एव= सर्वत्र एव, 'पर्यभिभ्यां चे'ति तसिः । विवर्तमानां = स्फुरन्तीं, प्रतिभासशरीरतयेति

---

भयङ्कर कठोर कूटपाकल नामका रोग सुकुमार शरीरवाले हस्तिशावकको जिस तरह अभ्याहत करता है उसी तरह अभ्याहत कर रहा है ॥ ४० ॥

इस कारणसे माननीया कामन्दकी हमलोगोंकी रक्षा करनेवाली हैं ।

माधव—( मन ही मन ) विकसित और सुन्दर सुवर्णकमलके सदृश, आसक्तिसे तिरछी चलनेवाली दृष्टिसे युक्त मुखको धारण करती हुई उस ( मालती )

( प्रकाशम् ) वयस्य, मम हि संप्रति—

प्रसरति परिमाथी कोऽप्ययं देहदाह-
स्तिरयति करणानां ग्राहकत्वं प्रमोहः ।
रणरणकविवृद्धिं बिभ्रदावर्तमानं
ज्वलति हृदयमन्तस्तन्मयत्वं च धत्ते ॥ ४२ ॥

शेषः । पश्यामि = विलोकयामि, उद्भावनावलात्सर्वत्र तामेव पश्यामीति भावः । एतेनोन्मादाऽवस्था द्योत्यते । अत्रोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४१ ॥

प्रसरतीति । परिमाथी कोऽपि अय देहदाहः प्रसरति । प्रमोहः करणानां ग्राहकत्वं तिरयति । आवर्तमानं हृदयं रणरणकविवृद्धिं विभ्रत् अन्तः ज्वलति तन्मयत्वं धत्त इत्यन्वयः । परिमाथी=सर्वतो मथनशीलः, कोऽपि=अनिर्वाच्यः, अयं=साम्प्रतिकाऽनुभवविषयः, देहदाहः = तनुसन्तापः, मदनज्वर इति भावः । प्रसरति=व्याप्नोति । प्रमोहः = चित्तमूढता, 'सुखदुःखादिजनितो मोहश्चित्तस्य मूढता ।' इत्युक्तेः । करणानाम् = इन्द्रियाणां, श्रोत्रादीनामित्यर्थः, 'करणं साधकतमं क्षेत्रज्ञानेन्द्रियेष्वपि ।' इत्यमरः । ग्राहकत्वं=ग्रहीतृत्वं, स्वस्वविषयग्रहणशक्तिमिति भावः । तिरयति = आच्छादयति । आवर्तमानं = मदनाऽनलेन क्वाथ्यमानं, हृदयं = चित्तं, रणरणकविवृद्धिम् = उत्कण्ठाऽऽधिक्यं कामसमृद्धिं वा, 'मारो रणरणः कामो विषय' इत्युत्पलिनी । विभ्रत् = धारयत् सत, अन्तः = मध्ये, ज्वलति = सन्तप्तं भवति, तन्मयत्वं च = मालतीतादात्म्यं च, धत्ते = धारयति । हृदयस्य दाहेऽपि सञ्जीवनौषधरूपमालतीतादात्म्यादेव प्राणान्धारयामीति भावः । अत्र ज्वलनधानरूपयोरनेकक्रिययोर्हृदयस्यैकस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारः, 'अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ।' इति साहित्यदर्पणः । मालिनी वृत्तम् ॥ ४२ ॥

---

को दक्षिण और वाम पार्श्वमें आगे और पीछे, भीतर और बाहर इस तरह सब ओर ही स्फुरित होता देख रहा हूँ ॥ ४१ ॥

( सुनाकर ) वयस्य ! मेरा इस समय—

परिमथन करनेवाला अनिर्वाच्य यह शरीरदाह व्याप्त हो रहा है । चित्तकी मूढता इन्द्रियोंकी तत्तद्विषयग्राहक शक्तिको आच्छादित कर रही है । मदनाग्निसे क्वाथ किया गया हृदय, उत्कण्ठाकी अधिकता वा कामसमृद्धिको धारण करता हुआ भीतर जल रहा है और मालती-तादात्म्यको भी धारण कर रहा है ॥ ४२ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे प्रथमोऽङ्कः ।



इतीति । सर्वे = माधवमकरन्दकलहंसाः । निष्क्रान्ता इति । बीजाऽर्थं युक्तं कृत्वा निष्क्रमो भवति । तदुक्तं यथा—

'बीजाऽर्थं युक्तियुक्तं च कृत्वा कार्यं यथारसम् ।
निष्क्रमं तत्र कुर्वीत सर्वेषां रङ्गवर्तिनाम् ॥' इति ।

मालतीमाधवे = मालती च माधवश्च मालतीमाधवौ, तौ अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मालतीमाधवं, तस्मिन् । 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थ' इत्यण् । प्रकरणस्यैतस्यैतन्नामकरणं च—'नायिकानायकाऽऽख्यानात्संज्ञा प्रकरणादिषु ।'

इति साहित्यदर्पणोक्तिमूलकं बोद्धव्यम् । अङ्कः = 'प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।' इति 'अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः ॥' इत्युक्तलक्षणलक्षितः ।

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां प्रथमोऽङ्कः ।



( अनन्तर सब बाहर जाते हैं । )

इति प्रथम अङ्क ।

—o:—

# द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशतश्चेट्यौ )

एका—सखि, संगीतशालापरिसरेऽवलोकिताद्वितीया भगवती कामन्दकी किमपि मन्त्रयन्त्यासीत् । ( हला, संगीतसालापरिसरे अवलोइआदुईआ भअवदी कामन्दई कि वि मन्तअन्ती आसी )

द्वितीया—सखि, तेन किल माधवप्रियवयस्येन मकरन्देन सकलो मदनोद्यानवृत्तान्तो भगवत्यै निवेदितः । ततो भर्तृदारिकां द्रष्टुकामया प्रवृत्तिनिमित्तमवलोकितानुप्रेषिता । मयाऽपि तस्यै कथितं यथा लवङ्गिकाद्वितीया विविक्ते भर्तृदारिका वर्तत इति । ( सहि, तेण किल माहवप्पिअवअस्सेण मअरन्देण सअलो मअणुज्जाणउत्तन्तो भअवदिए णिवेदिदो । तदो भट्टिदारिअं दट्ठुकामाए पउत्तिणिमित्तं अवलोइदा अनुप्पेसिदा । मए वि ताए कहिदं जह लवङ्गिआदुईआ विवित्ते भट्टिदारिआ वट्टदित्ति )

---

एकेति । हला=सखीं प्रति सम्बोधनद्योतकमव्ययमिदं 'हण्डे हञ्जे हलाऽह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति ।' इत्यमरः । सङ्गीतशालापरिसरे=सङ्गीतशालायाः परिसरे ( पर्यन्तभुवि ), 'पर्यन्तभूः परिसर' इत्यमरः । मन्त्रयन्ती=गुप्तपरिभाषणं कुर्वती, 'मत्रि गुप्तपरिभाषणे' इति धातोर्लटः शत्रादेशस्ततः स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'उगितश्चे'ति ङीप् । आसीत्='अस भुवि' इति धातोः प्राकृते बहुलग्रहणादद्यतनभूतेऽपि लङ्प्रयोगः । पुस्तकान्तरे 'भगवती कामन्दकी'त्यत्र 'त्वम्' इति 'आसीत्' इत्यत्र च 'आसीः' इति पाठः । चेटीभाषा शौरसेनी यदाह—'नायिकायां च चेट्यां च शौरसेनी प्रयुज्यते ।' इति ।

द्वितीयेति । मदनोद्यानवृत्तान्तः=मिथोदर्शनमाल्यवितरणादिः । भगवत्यै='क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । भर्तृदारिकां=मालतीमित्यर्थः । द्रष्टुकामया=द्रष्टुं ( साक्षात्कर्तुम् ) कामः ( अभिलाषः ) यस्यास्तया, 'तुं काममनसोरपि' इति मलोपः । भगवत्येति शेषः । प्रवृत्तिनिमित्तं=क वा

---

( अनन्तर दो चेटियाँ प्रवेश करती हैं । )

पहली—सखि ! संगीतशालाके निकट प्रदेशमें अवलोकिताके साथ भगवती कामन्दकी कुछ गुप्त परिभाषण कर रही थीं ।

दूसरी—सखि ! माधवके प्रियमित्र मकरन्दने मदनोद्यानका सब वृत्तान्त भगवतीको कहा । तब स्वामिकन्या ( मालती ) को देखनेकी इच्छा करनेवाली

प्रथमा—सखि, लवङ्गिका खलु केसरकुसुमान्यवचिनोमीति गता मदनोद्यानं किं सांप्रतं निवृत्ता। ( सहि, लवङ्गिआ क्खु केसरकुसुमाइं अवइणुम्मि त्ति गआ मअणुज्जाणं किं संपदं णिउत्ता )

द्वितीया—अथ किम्। तां खल्वापतन्तीमेव हस्ते गृहीत्वाऽपरिजना भर्तृदारिकोपर्यलिन्दं समारूढा। ( अह इं। तं क्खु आपतन्तीं एव्व हत्थे घेत्तूण अपरिअणा भट्टिदारिआ उपरिअलिन्दं समारूढा )

प्रथमा—नूनं तस्य महानुभावस्य संकथयात्मानं विनोदयति। ( णूणं तस्स महाणुहावस्स संकहाए अत्ताणं विणोदेइ )

---

कथं वा वर्तते इत्यवस्थापरिज्ञानाऽर्थमित्यर्थः। विविक्ते = विजनस्थाने, 'विविक्तौ पूतविजनौ' इत्यमरः।

प्रथमेति। केसरकुसुमानि = वकुलपुष्पाणि, 'केसरो नागकेसरे। तुरङ्गसिंहयोः स्कन्धकेशेषु वकुलद्रुमे।' इति हैमः। अवचिनोमि = त्रोटयामि, अवपूर्वकात् 'चिञ् चयने' इति स्वादिस्थधातोर्लट्।

द्वितीयेति। अथ किं = वाढं संप्राप्तेति भावः। आपतन्तीम् एव = आगच्छन्तीम् एव, 'परावर्तमानाम् एवे'ति पुस्तकान्तरस्थः पाठस्तस्य निवर्तमानाम् एवेत्यर्थः। अपरिजना = परिजनरहिता, अविद्यमानाः परिजना यस्याः सा, 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इति नञ्बहुव्रीहिः। पुस्तकान्तरे 'प्रतिषिद्धपरिजने'ति पाठस्तस्य निषिद्धपरिजनेत्यर्थः। उपर्यलिन्दम् = गृहैकदेशस्योर्ध्वभागम्, उपरिवर्ती अलिन्द उपर्यलिन्दस्तम्।

प्रथमेति। तस्य = पूर्वोक्तस्य। महाऽनुभावस्य = माधवस्येत्यर्थः। सङ्कथया = चर्चया। विनोदयति=विनोदं करोति, त्वया किमुक्तं तेन च किमुक्तमिति तत्प्रसङ्गेनैवोत्कण्ठाविनोदं करोतीति भावः।

---

भगवतीने समाचार जाननेके लिए अवलोकिताको भेजा। मैंने भी उनको कहा कि 'मालती निर्जन स्थानमें लवङ्गिकाके साथ बैठी हुई हैं'।

पहली—सखि! लवङ्गिका 'वकुल पुष्पोंको तोड़ती हूँ' ऐसा कहकर मदनोद्यानमें गई हुई थी, क्या वह लौट गई है?

दूसरी—और क्या? आते ही उसको हाथसे पकड़कर और परिजनों को निषेध कर स्वामिकन्याभवनके ऊर्ध्वभागको चली गई हैं।

पहली—निश्चय ही उन्हीं महानुभाव ( माधव )-की चर्चासे मालती दिल बहला रही हैं।

द्वितीया—( निःश्वस्य ) कुतः खल्वस्या आश्वासः। एतेनाद्य सविशेषदर्शनेनातिभूमिं खलु तस्या अभिनिवेशो गमिष्यति। अन्यच्च। कल्य एव नन्दनस्य कारणान्महाराजो भर्तृदारिकां प्रार्थयमानोऽमात्येन विज्ञप्तः। ( कुदो क्खु से अस्सासो। एदिणा अज्ज सविसेसदंसणेण अदिभूमिं क्खु ताए अहिणिवेसो गमिस्सदि। अण्णं अ। कल्ले एव्व णन्दणस्स कारणादो महाराओ भट्टिदारिअं पत्थअन्तो अमच्चेण विण्णत्तो )

प्रथमा—किमिति। ( किं त्ति )

द्वितीया—प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज इति। अत आमरणं खलु मालत्या हृदयशल्यं माधवानुराग इति तर्कयामि। ( पहवइ णिअस्स कण्णआजणस्स महाराओ त्ति। अदो आमरणं क्खु मालदीए हिअअसल्लं माहवाणुराओ त्ति तक्केमि )

---

द्वितीयेति। निःश्वस्य=निःश्वासं कृत्वा। मालतीमनोरथे प्रत्यूहाऽधिगमान्निःश्वासो बोद्धव्यः। सविशेषदर्शनेन=मिथोविशिष्टाऽवलोकनेन। तस्याः=मालत्याः, अभिनिवेशः=आग्रहः, माधवेऽनुरक्तिरिति भावः। अतिभूमिं=परां काष्ठामित्यर्थः। कल्य एव=प्रातःकाल एव, 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषःप्रत्युषसी अपि। प्रभातं च' इत्यमरः। अमात्येन=मन्त्रिणा, भूरिवसुनेति भावः। विज्ञप्तः=निवेदितः।

प्रथमेति। किमिति=किं विज्ञप्तमिति भावः। कथयेति शेषः।

द्वितीयेति। निजस्य=स्वस्य। प्रभवति=प्रभुः ( समर्थः ) भवति महाराजो यस्मै कस्मा अपि मालतीं दातुं प्रभवतीति भावः। आमरणं=मरणं यावत्, मरणात् आ आमरणम्, 'आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इति समासः। हृदयशल्यं=वक्षःस्थलकीलकरूपम्, नन्दनहस्तपतनाऽऽशङ्कयेति भावः।

---

दूसरी—( निःश्वास लेकर ) उन ( मालती ) को कहांसे आश्वासन होगा। आज इस सविशेष दर्शनसे उनका माधवके प्रति आग्रह पराकाष्ठाको प्राप्त हो जायगा। और भी। प्रातःकालमें ही नन्दनके लिए मालतीको मांगनेवाले महाराज को मन्त्रीजीने निवेदन किया।

पहली—क्या ( निवेदन किया )?

दूसरी—'अपनी कन्याके विषयमें महाराजका प्रभुत्व है'। इस कारणसे माधवके प्रति मालतीका अनुराग मरणपर्यन्त हृदयका शल्यस्वरूप रहेगा ऐसा विचार करती हूँ।

प्रथमा—अपि नाम भगवत्यत्र किमपि भगवतीत्वं दर्शयिष्यति। (अवि णाम भअवदी एत्थ किं वि भअवदित्तणं दंसइस्सदि)

द्वितीया—अयि असंबद्धमनोरथे, एहि। (अइ असंबद्धमणोरहे, एहि)

(इति निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सोत्कण्ठा मालती लवङ्गिका च)

---

प्रथमेति। भगवती = ऐश्वर्यसम्पन्ना, कामन्दकीति भावः। अत्र = अस्मिन् विषये, मालत्यनुरागसफलीकरणरूप इति भावः। भगवतीत्वं = ज्ञानैश्वर्यादिवैभवम्। भगवतीकामन्दकी नन्दनस्य राज्ञो वा मतिपरिवर्तनेनोपायान्तरेण वा मालतीमनोरथं प्रपूर्य स्वकीयमैश्वर्यं दर्शयिष्यति किमिति भावः। अपिः प्रश्नाऽर्थकः। भगवतीत्वमित्यत्र 'त्वतलोर्गुणवचनस्ये'ति वार्तिके सञ्ज्ञाजातिकृदन्ततद्धिताऽन्तसमस्तसर्वनामसंख्याशब्दाऽतिरिक्तः शब्दो गुणवचन इत्युच्यते, अतः पुंवद्भावस्य अभावः।

द्वितीयेति। अयि = कोमलामन्त्रणेऽव्ययमिदं प्रयुज्यते। असम्बद्धमनोरथे = असम्बद्धः (सम्बन्धरहितः) मनोरथः (अभिलाषः) यस्यास्तत्सम्बुद्धौ, परिव्राजिकाया भगवत्या एतादृशकार्यनिर्वहणसम्भावनाऽभावादियमुक्तिः।

प्रवेशक इति। प्रवेशकलक्षणं यथा—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥' इति।

'शेषं विष्कम्भके यथा' इति कथनेन—

'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांऽशानां निदर्शकः।
'संक्षिप्ताऽर्थस्तु' एतादृशवैशिष्ट्यस्याऽपि समावेशोऽवसेयः।

तत इति। सोत्कण्ठा = उत्कण्ठिता, माधव इति शेषः। अत्रोपविष्टायाः प्रवेशः सामाजिकदर्शनीयत्वेनाऽवगन्तव्यः। नन्वत्र नायकप्रवेशाऽभावात् 'प्रत्यक्षनेतृचरित' इत्याद्यङ्कलक्षणस्य कथं नाम सङ्गतिरिति चेन्न। नेत्री च नेता चेत्येकशेषात् नामिकाया अपि समावेशात्।

---

पहली—भगवती इस विषयमें कुछ अपना ज्ञान और ऐश्वर्य आदिका वैभव दिखलाएंगी क्या?

दूसरी—अरी असम्बद्ध अभिलाष करनेवाली! आओ।

(दोनों निकलती हैं।)

(प्रवेशक।)

(अनन्तर बैठी हुई उत्कण्ठायुक्त मालती और लवङ्गिका प्रवेश करती हैं।)

मालती—सखि, ततस्ततः। ( सहि, तदो तदो )

लवङ्गिका—ततस्तेन महानुभावेनोपनीतेयं बकुलमाला। ( तदो तेण महाणुहावेण उवणीदा इअं बउलमाला )। ( इत्यर्पयति )

मालती—( मालां गृहीत्वा सहर्षं निर्वर्ण्य ) सखि, एकपार्श्वविषमप्रतिबद्धेयं विरचना। ( सहि, एक्कपासविसमपडिबद्धा इअं विरअणा )

लवङ्गिका—अत्रारमणीयत्वे त्वमेवापराद्धासि। ( एत्थ अरमणिज्जत्तणे तुमं एव्व अवरद्धासि )

मालती—कथमिव। ( कहं विअ )

लवङ्गिका—येन स दूर्वाश्यामलाङ्गस्तथा विहस्तीकृतः। ( जेण सो दुव्वासामलङ्गो तहा विहत्थीकिदो )

---

मालतीति। क्वचित् 'हुम्' इत्यधिकः पाठस्तेन प्रश्नो द्योत्यते। लवङ्गिकाकथितां बकुलमालाप्रार्थनां श्रुत्वा तदनन्तरभवां वार्तां पृच्छति मालती—ततस्ततः। उत्कण्ठाऽतिशयद्योतनाऽर्था वीप्सा ( द्विरुक्तिः )।

लवङ्गिकेति। तेन = माधवेन। उपनीता = समर्पिता, त्वदर्थमिति शेषः।

मालतीति। निर्वर्ण्य = दृष्ट्वा। एकपार्श्वविषमप्रतिबद्धा = एकपार्श्वे ( एकदेशे ) विषमं यथा तथा प्रतिबद्धा ( घटिता )।

लवङ्गिकेति। अपराद्धा = कृताऽपराधा।

मालतीति। कथमिव = केन प्रकारेण, माधवकर्तृकाया माल्यविरचनाया एकपार्श्ववैषम्ये कथमहं निमित्तं भवामीति भावः।

लवङ्गिकेति। दूर्वाश्यामलाऽङ्गः=दूर्वाः ( शतपर्विकाः ) इव श्यामलानि ( श्यामवर्णानि ) अङ्गानि ( अवयवाः ) यस्य सः। 'दूर्वा तु शतपर्विका' इत्यमरः। तथा =

---

मालती—सखि! तब तब?

लवङ्गिका—तब उन महानुभावने यह बकुलमाला मुझे सौंप दी। ( ऐसा कहकर उसे देती है। )

मालती—( माला लेकर हर्षके साथ देखकर ) सखि! एक ओर इसकी रचना विषमताके साथ की गई है।

लवङ्गिका—इस असुन्दरतामें आप ही अपराधिनी ( कसूरवार ) हैं।

मालती—कैसे!

लवङ्गिका—दूर्वाके सदृश श्यामल अङ्गवाले उनको उस तरहसे जो विह्वल किया।

मालती—सखि लवङ्गिके, सर्वथाश्वासनशीलासि । ( सहि लवङ्गिए, सव्वहा आसासणसीलासि )

लवङ्गिका—सखि, अत्र काश्वासनशीलता । ननु भणामि । सोऽपि प्रियसख्या मन्दमारुतप्रचलितप्रफुल्लपुण्डरीकविभ्रमाभ्यां प्रथमारब्धबकुलावलीविरचनापदेशसंयमनबलात्कारविस्तृताभ्यां लोचनाभ्यां विजृम्भमाणविस्मयस्तिमितदीर्घपर्यन्तपरियन्त्रणाविलासोल्लसितभ्रूलताविभाविता-

---

तेन प्रकारेण । विहस्तीकृतः = व्याकुलीकृतः, त्वमेव स्वसौन्दर्यसम्पदा तन्मनः समाकर्षन्ती माधवं प्रस्तुतक्रियाविकलहस्तं कृतवतीति भावः ।

मालतीति । आश्वासनशीला = सान्त्वनस्वभावा, आश्वासनं शीलं ( स्वभावः ) यस्याः सा । मत्समाश्वासनायैव त्वयेदमुच्यते, यस्य मय्यनुरागो न सम्भावित इति भावः ।

लवङ्गिकेति । का आश्वासनशीलता = प्रत्यक्षसिद्धेऽर्थे किं मय्यविश्वासेनेत्यर्थः । प्रियसख्या = वल्लभवयस्यया, त्वयेति भावः, प्रत्यक्षीकृत एवेत्यत्र सम्बन्धः । मन्दमारुतप्रचलितप्रफुल्लपुण्डरीकविभ्रमाभ्यां = मन्दमारुतेन ( अल्पवायुना ) प्रचलितं ( प्राप्तप्रचलनम् ), पुस्तकान्तरे तु 'उद्वेल्लत्' इति पाठस्तस्य प्रचलदित्यर्थः । एतादृशं प्रफुल्लं ( विकसितम् ) यत् पुण्डरीकं ( श्वेतकमलम् ) तस्येव विभ्रमः ( विलासः ) ययोस्ताभ्याम्, 'लोचनाभ्याम्' इत्यस्य विशेषणम्, एवं पदान्तरमपि । 'मन्दोऽतीक्ष्णे च मूर्खे च स्वैरे चाऽभाग्यरोगिणोः। अल्पे च त्रिषु पुंसि स्याद्धस्तिजात्यन्तरे शनौ ॥' इति मेदिनी । 'पुण्डरीकं सिताऽम्भोजम्' इत्यमरः । प्रथमाऽऽरब्धबकुलाऽऽवलीविरचनाऽपदेशसंयमनबलात्कारविस्तृताभ्यां = एवं प्रथमं ( प्राक् ) आरब्धा ( कृताऽऽरम्भा ) या बकुलाऽऽवलीविरचना ( बकुलकुसुममालानिर्मितिः ) तस्या अपदेशेन ( व्याजेन ) यत् संयमनं ( त्वद्विलोकनजनितमनोविकारसंवरणम् ) तस्मिन् यो बलात्कारः ( प्रसभाचरणम् ), तेन विस्तृताभ्याम् (विततात्भ्याम्), क्वचित् 'विस्तीर्यमाणाभ्याम्' इति पाठस्तस्य आयतीक्रियमाणाभ्यामित्यर्थः । एतादृशाभ्यां लोचनाभ्यां = नयनाभ्याम्, अवलोकयन्नित्यत्र सम्बन्धः । विजृम्भमाणविस्मयस्तिमित-

---

मालती—सखि लवङ्गिके ! तुम सब प्रकारसे आश्वासन देनेके लिये स्वभावसे युक्त हो ।

लवङ्गिका—सखि ! इसमें मेरी क्या आश्वासनशीलता है ? अरी ! मैं कहती हूं मन्दवायुसे प्रचलित श्वेतकमलके सदृश विलासवाले और पहले आरब्ध बकुलावलीरचनाके बहानेसे मनोविकारके संवरणमें बलात्कारसे विस्तृत नेत्रोंसे बढ़नेवाले आश्चर्यसे निश्चल, दीर्घ नेत्रप्रान्तोंके नियमनरूप विलाससे शोभित

नङ्गशरसंरम्भविभ्रमविदग्धमवलोकयन्प्रत्यक्षीकृत एव। ( सहि, एत्थ का आसासणसीलदा। णं भणामि। सो वि पिअसहीए मन्दमारुअप्पअलिअप्पफुल्ल-पुण्डरीअविब्भमेहिं पढमारद्धवउलावलीविरअणावदेससंभमणबलामोडिअवित्थरन्तेहिं लोअणेहिं विअम्भमाणविम्हअत्थिमिददीहपरेन्तपरिअन्तणाविलासुल्लसिअभूलदावि-हाविदाणङ्गसरसंरम्भविब्भमविअड्ढं ओलोअन्तो पच्चक्खीकिदो एव्व )

मालती--( लवङ्गिकां परिष्वज्य ) आम् प्रियसखि, किं तावत्तस्य स्वाभाविका एव ते मुहूर्तसन्निधायिनो जनस्य विप्रलम्भयितृका विलासाः, आहोस्वित्प्रियसखी यथा सम्भावयति। ( आम पिअसहि, किं दाव तस्स

---

दीर्घपर्यन्तपरियन्त्रणाविलासोल्लसितभ्रूलताविभाविताऽनङ्गशरसंरम्भविभ्रमविदग्धं= विजृम्भमाणः ( वर्द्धमानः ) यो विस्मयः ( आश्चर्यं, त्वद्विलोकनजन्यमिति शेषः ), तेन स्तिमितौ ( निश्चलौ ) दीर्घौ ( आयतौ ) यौ पर्यन्तौ ( लोचनप्रान्तौ ) तयोः परियन्त्रणा ( नियमनम् ), 'परिवर्तने'ति पाठे 'सञ्चालने'त्यर्थः, दर्शनाऽर्थमिति शेषः। परियन्त्रणा एव विलासः ( लीला ) तेन उल्लसिताभ्यां ( शोभिताभ्याम् ) 'ताराऽविताभ्याम्' इति पाठे नर्तिताभ्यामित्यर्थः। एतादृशाभ्यां भ्रूलताभ्यां ( भ्रूव-ल्लीभ्याम् ) विभावितः (तर्कितः), 'विडम्बित' पदपाठे विडम्बितः अनुकृत इत्यर्थः। एतादृशो योऽनङ्गशरसंरम्भः ( मदनमार्गणाऽऽटोपः ), स एव विभ्रमः ( विलासः ) तेन विदग्धं ( निपुणम् ) यथा स्यात्तथा। क्वचित्तु विडम्बितपदाऽनन्तरम् 'अनङ्ग-सारङ्गविभ्रमविदग्धम्' इति पाठस्तत्र विडम्बितो योऽनङ्गसारङ्गः ( मदनकार्मुकम् ) तस्य विभ्रमेण विदग्धं यथा तथा। 'सारङ्गः धनुः' इत्यनेकार्थकोषः। अवलोकयन् = पश्यन्। भवतीमेवेति शेषः। प्रत्यक्षीकृत एव = प्रियसख्या त्वया साक्षात्कृत एव। तस्य साऽभिलाषदर्शनैरेव त्वय्यनुरागो विभाव्यत इति भावः। 'बलामोडिए'ति बलात्कारोऽर्थे देशीपदम्।

मालतीति। परिष्वज्य = आलिङ्ग्य, आलिङ्गनं च लवङ्गिकाकृतमाधवाऽनुरागाऽऽ-वेदनेन बोद्धव्यम्। आं = स्वीकृतिद्योतकमव्ययमिदम्। मुहूर्त्तसन्निधायिनः = तत्क्षणमात्रसंनिहितस्य। विप्रलम्भयितृकाः = वञ्चयितारः, 'विप्रलम्भहेतुका' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य वञ्चनाहेतुभूता इत्यर्थः। विलासाः = विभ्रमाः। आहोस्वित् = अथवा। प्रियसखी = लवङ्गिका, यथा सम्भावयति = यथा तर्कयति, माधवस्येदं

---

भ्रूलताओंसे तर्कित कामबाणके संरम्भरूप विलाससे निपुणतापूर्वक देखते हुए उनका भी प्रियसखीने साक्षात्कार कर ही लिया है।

मालती--( लवङ्गिका को आलिङ्गन कर ) हाँ, प्रियसखि! कुछ समय तक

साहाविआ एव्व ते मुहुत्तसंणिहाइणो जणस्स विप्पलम्भइत्तआ विलासा, आदु पिअसही जहा संभावेदि )

लवङ्गिका—( विहस्य सासूयमिव ) त्वमपि स्वभावेनैव तस्मिन्नवसरेऽसङ्गीतकं नर्तितासि (तुमं वि सहावेण एव्व तस्सि अवसरे असंगीदअं णत्तिदासि)

मालती—( सलज्जं विहस्य ) हुं, ततस्ततः । ( हुं, तदो तदो )

लवङ्गिका—ततः प्रतिनिवर्तमानयात्राजनसङ्कुलेनान्तरिते तस्मिन्मन्दारिकागृहमुपगतास्मि । तस्याश्चित्रफलकं प्रभाते हस्तीकृतमासीत् । ( तदो पडिणिउत्तमाणजत्ताजणसंकुलेण अन्तरिदे तस्सि मन्दारिआघरं उवगदम्हि । ताए चित्रफलअं पहादे हत्थीकिदं आसी )

---

नयनविकारादिकं स्वाभाविकमथवा त्वदुक्तरीत्या मय्यनुरागसूचकमिति ज्ञातुं न शक्यत इति भावः ।

लवङ्गिकेति । तस्मिन् अवसरे=तस्मिन् क्षणे, मदनोद्याने माधवदर्शनकाल इति भावः । असंगीतकं=संगीतरहितं यथा तथा । नर्तिता असि=कारितनृत्या असि, 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भूते लट् । यदि माधवस्य सहजविलासैस्त्वं वञ्चिताऽसि तर्हि त्वदीया अपि विलासाः स्वाभाविकास्तद्वञ्चिका एव । न त्वनुरागोत्पन्ना इति भावः ।

मालतीति । सलज्जं=लज्जासहितं यथा तथा, सखी मदीयं विकारं ज्ञातवतीति हेतोर्लज्जाऽवगन्तव्या ।

लवङ्गिकेति । प्रतिनिवर्तमानयात्राजनसङ्कुलेन=प्रतिनिवर्तमानाः ( स्वस्वगृहं प्रति प्रत्यावर्तमानाः ) ये यात्राजनाः ( उत्सवाऽवलोकिजनाः ) तेषां संकुलेन (समुदायेन) । तस्मिन्=माधवे, अन्तरिते=व्यवहिते सति । हस्तीकृतं=न्यासीकृतम् ।

---

रहे हुए उनके प्रतारणा करनेवाले वे विलास स्वाभाविक हैं ? अथवा प्रियसखी जैसी संभावना करती है ( वैसे ही हैं ) ।

लवङ्गिका—( हँसकर असूयायुक्तकी तरह ) उस अवसरमें आपको भी स्वभावने ही विना संगीतके नचाया था ।

मालती—( लज्जाके साथ हँसकर ) हूं, तब तब ?

लवङ्गिका—उसके बाद लौटनेवाले यात्रिकजनों की भीड़से उन ( माधव ) के आंखोंसे ओट होनेपर मैं मन्दारिकाके घरमें चली गई । प्रातःकालमें मैंने चित्रको मन्दारिकाके हाथमें रख दिया था ।

मालती--किन्निमित्तम् । ( किंणिमित्तं )

लवङ्गिका--तां खलु माधवानुचरः कलहंसकः कामयते । सा तस्य दर्शयिष्यतीति । ततः प्रियनिवेदिका मन्दारिका संवृत्ता । ( तं क्खु माहवाणुअरो कलहंसओ कामेदि । सा तस्स दंसइस्सदित्ति तदो पिअणिवेदिआ मन्दारिआ संवुत्ता )

मालती—( स्वगतम् । सानन्दम् ) नूनं तेनापि कलहंसकेनैतत्प्रतिच्छन्दकमात्मनः प्रभोर्दर्शितं भविष्यति । ( प्रकाशम् ) सखि, किमिदानीं ते प्रियम् । ( णूणं देण वि कलहंसएण एदं पडिच्छन्दअं अत्तणो पहुणो दंसिदं हविस्सदि । सहि, किं दाणीं दे पिअं )

लवङ्गिका—एतत्खलु सन्तापितस्य तव सन्तापकारिणो दुर्लभमनोरथा-

---

मालतीति । किंनिमित्तं=किमर्थम्, त्वया मन्दारिकाया हस्ते चित्रफलकं किमर्थं न्यासीकृतमिति भावः ।

लवङ्गिकेति । तां=मन्दारिकाम् । कामयते=इच्छति । सा=मन्दारिका । तस्य=कलहंसस्य । इति=अस्माद्धेतोः, मन्दारिकायां तच्चित्रफलकं न्यासीकृतमिति भावः । ततः=अनन्तरम् ।

मालतीति । नूनम्=अवश्यम् । प्रतिच्छन्दकं=चित्रफलकम् । आत्मनः=स्वस्य । प्रभोः=स्वामिनः माधवस्येति भावः । किमिदानीं ते प्रियं=मन्दारिकया निवेदितमिति भावः ।

लवङ्गिकेति । सन्तापितस्य=त्वदप्राप्त्या जनितसन्तापस्येति भावः । तव=भवत्याः । सन्तापकारिणः=सन्तापकर्तुः । दुर्लभमनोरथाऽऽवेशदुःसहाऽऽयासदह्यमानचित्तस्य=दुर्लभः ( दुष्प्राप्यः ) यो मनोरथः ( त्वत्प्राप्तिरूपोऽभिलापः ) तस्य आवेशेन ( प्रवेशेन ) यो दुःसहः ( दुर्मर्षणीयः ) आयासः (प्रयासः) तेन दह्यमानं

---

मालती—किस लिए ?

लवङ्गिका—माधवका नौकर कलहंसक उस ( मन्दारिका ) को चाहता है । वह उसे दिखलायेगी । उसके अनन्तर मन्दारिका प्रिय निवेदन करनेवाली हो गई ।

मालती—( मन ही मन । आनन्दके साथ ) निश्चय उस कलहंसकने वह चित्र अपने स्वामी-( माधव ) को दिखलाया होगा । ( सुनाकर ) सखि ! इस समय तुम्हारा प्रिय विषय क्या है ?

लवङ्गिका—आपकी अप्राप्तिसे सन्तापित और आपको सन्तप्त करनेवाले,

वेशदुःसहायासदह्यमानचित्तस्य क्षणमात्रनिर्वापयितृकं तव प्रतिच्छन्दकम्। ( इति चित्रं दर्शयति ) ( एदं क्खु संदाविदस्स तुह संदावआरिणो दुल्लहमणोरहावेसदूसहाआसदज्झन्तचित्तस्स खणमेत्तणिव्वाइत्तअं तुहच्छन्दअं )।

मालती--( सहर्षोच्छ्वासं चिरं निर्वर्ण्य अहो, इदानीमपि हृदयस्य मेऽनाश्वासः। येनेदमप्याश्वासनं विप्रलम्भ इति सम्भाव्यते कथमक्षराण्यपि। ( 'जगति जयिनः' इत्यादि पठति। सानन्दम् ) महाभाग, सदृशं खलु ते निर्माणस्य वचनमधुरतया। दर्शनं पुनस्तत्कालमनोहरं परिणामदीर्घ-

---

( भस्मीक्रियमाणम् ) यत् चित्तं ( मनः ), तस्य। क्षणमात्रनिर्वापयितृकं=किञ्चित्कालपर्यन्तं शैत्योत्पादकम्। तव=भवत्याः। प्रतिच्छन्दकं=चित्रफलकं, ममेदानीं प्रियमिति शेषः। त्वया यथा विरहव्यथाऽपनोदकं माधवचित्रं लिखितं तथैव माधवेनाऽपि त्वच्चित्रं निर्मितमित्येतदेव मे प्रियमिति भावः।

मालतीति। अनाश्वासः=अनिर्वृतिः, 'आश्वासः पुंसि निर्वृतौ। आख्यायिकापरिच्छेदे चे'ति मेदिनी। अत्राऽनाश्वास आत्मनि माधवाऽनुरागाऽसम्भावनया बोध्यः। तत्र हेतुमुपस्थापयति—येनेति। इदमपि=सन्निकृष्टस्थितमपि। आश्वासनम्=आश्वासकरणं, मदालेख्यलेखनरूपमिति भावः। विप्रलम्भः=वञ्चनम्। स्वस्य तदनुरूपत्वाऽभावान्माधवाऽनुरागो न सम्भाव्यत इति भावः। अक्षराण्यपि=वर्णा अपि, दृश्यन्त इति शेषः। वचनमधुरतया=वाक्यमाधुर्येण, निर्माणे वचने च तुल्यैव मधुरतेत्यर्थः। 'सदृशी खलु ते निर्माणस्य विरचनामधुरते'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र ते निर्माणस्य सदृशी=अनुरूपा, विरचनामधुरता=वचनरचनामाधुर्यम्, यथा ते रूपं मनोहरं तथैव वाक्यरचनाऽपि सहृदयहृद्याऽऽकर्षिणीति भावः। दर्शनं=तवाऽवलोकनं, तत्कालमनोहरं=दर्शनसमयचेतोहारि। परिणामदीर्घसन्तापदारुणं च=परिणामे ( अदर्शनसमये ) दीर्घसन्तापदारुणं च ( दीर्घसन्तापेन=आयतपरितापेन, दारुणं=कठोरम् )। धन्याः=धनं लब्धाः, सुकृतिन्य इति भावः, 'धनगणं लब्धा'

---

दुष्प्राप्य अभिलापके प्रवेशसे दुःसह प्रयाससे जलाये जानेवाले चित्तसे युक्त माधव को कुछ समय तक ही ठण्डा करनेवाला आपका चित्र ( मेरा प्रिय विषय है )। ( ऐसा कहकर चित्र दिखलाती है। )

मालती—( हर्ष और दीर्घश्वासके साथ बहुत समयतक देखकर ) अहो! इस समय भी मेरे हृदयको सुख नहीं है। जिस लिए कि यह आश्वासन भी वञ्चना है ऐसी संभावना की जाती है। कैसे अक्षर भी हैं। ( 'जगति जयिनः' इत्यादि पढ़ती है। ) महाभाग! आपकी जैसी आकृति है वचन मधुरता भी वैसी है। आपका

सन्तापदारुणं च । धन्याः खलु ताः स्त्रियो यास्त्वां न प्रेक्षन्ते । प्रेक्ष्यात्मनो हृदयस्य वा प्रभवन्ति । ( अम्हो, दाणीं वि हिअअस्स मे अणासासो । जेण एदं वि आसासणं विप्पलम्भो त्ति संभावीअदि । कहं अक्खराइं पि । महाभाअ, सरिसं क्खु दे णिम्माणस्स वअणमहुरदाए । दंसणं उण तक्कालमणोहारि परिणामदीह-संदावदारुणं अ । धण्णाओ क्खु ताओ इत्थिआओ जाओ तुमं ण पेक्खन्दि । पेक्खिअ अत्तणो हिअअस्स वा पहवन्दि )

लवङ्गिका—सखि, एवमपि नास्ति ते आश्वासः । ( सहि, एवं वि णत्थि दे आसासो )

मालती—कथमिव । ( कहं विअ )

लवङ्गिका—यस्य कारणात्त्वमुत्खण्डितबन्धनं कङ्केल्लिपल्लवमिव हृदयं

---

इति यत्, 'सुकृती पुण्यवान्धन्य' इत्यमरः । आत्मनः=स्वस्य, हृदयस्य वा=चित्तस्य वा, धारणविषय इति शेषः । प्रभवन्ति=समर्था भवन्ति, याः स्त्रियस्तद्दर्शनेऽपि विकृतिभाजो न भवन्ति ता धन्या इति भावः । अत्र विपरीतलक्षणया—धन्याः= अधन्याः, त्वद्दर्शनाऽभावात् नयनजन्मसाफल्याऽनवाप्तेरिति तात्पर्यम् । एवमेव यास्त्वां दृष्ट्वाऽपि आत्मनो हृदयस्य वा प्रभवन्ति ता अपि गुणग्राहकत्वाऽपटुतया पशुकल्पा इति निगूढोऽर्थः ।

लवङ्गिकेति । एवमपि=इत्थमपि, माधवेन स्वचित्रसमीपे त्वदालेख्यलेखनेन आश्वासितेऽपीति भावः । नाऽस्ति ते आश्वासः='माधवो मय्यनुरक्त' इति मत्वा निर्वृतिर्नाऽस्ति ?

मालतीति । कथमिव=केन प्रकारेण निर्वृतिः स्यात् ? एतदर्थसाधकं हेत्वन्तरं ज्ञातुं मालती प्रश्नोऽयमवगन्तव्यः ।

लवङ्गिकेति । उत्खण्डितबन्धनम्=उच्छिन्नमूलं, कङ्केल्लिपल्लवमिव=अशोककिसलयमिव, 'कङ्केल्लिर्नटः कान्ताऽङ्घ्रिदोहदः । अशोकः' इति त्रिकाण्डशेषः । क्लाम्य-

---

दर्शन भी उस कालमें मनोहर परन्तु परिणाममें दीर्घ सन्तापसे दारुण है । वे स्त्रियां धन्य हैं जो आपको नहीं देखती हैं । देखकर अपनेको वा हृदयको सँभालनेमें समर्थ होती हैं ( वे भी धन्य हैं ) ।

लवङ्गिका—सखि ! इस प्रकारसे भी आपको आश्वासन नहीं है ?

मालती—कैसे ?

लवङ्गिका—जिसके कारणसे आप उच्छिन्न मूलवाले अशोक पल्लवके सदृश

धारयन्ती क्लाम्यन्नवमालिकाकुसुमनिःसहा कुसुमायुधेन परिहीयसे, सोऽपि ज्ञापितो भगवता मन्मथेन सन्तापस्य दुःसहत्वम्। ( जस्स कारणादो तुमं उक्खण्डिअबन्धणं कङ्केलिपल्लवं विअ हिअअं धरेन्दी किलन्दणोमालिआकुसुमणीसहा कुसुमाउहेण पडिहिज्जसि, सो वि जाणाविदो भअवदा मम्महेण संदावस्स दूसहत्तणम् )

मालती--सखि, कुशलमिदानीं तस्य महाप्रभावस्य भवतु। मम पुनः सुदुर्लभ आश्वासः। ( सास्रम्। संस्कृतमाश्रित्य ) ( सहि, कुसलं दाणीं तस्स महापहावस्स होदु। मह उण सुदुल्लहो आस्सासो )।

---

क्लाम्यन्नवमालिकाकुसुमनिःसहा = क्लाम्यत् ( ग्लानं भवत् ) यत् नवमालिकाकुसुमं ( सप्तलापुष्पम् ) तदिव निःसहा ( अतिसुकुमारा ), 'सप्तला नवमालिका।' इत्यमरः। कुसुमाऽऽयुधेन = कामेन, परिहीयसे = परिहानिं ( तनुताम् ) प्राप्यसे। सोऽपि = माधवोऽपि। भगवता = ऐश्वर्यादिशालिना। दुःसहत्वं = दुर्मर्षणीयत्वम्। ज्ञापितः = प्रबोधितः, तल्लिखितश्लोकदर्शनात्त्वत्या इव तस्याऽपि गाढाऽनुरागप्रतीतिरेवाऽऽश्वासननिमित्तमिति भावः।

मालतीति। महाप्रभावस्य = महाऽनुभावस्य, माधवस्येत्यर्थः। कुशलं = कल्याणं, भवतु = भवतात्। सुदुर्लभः=अतिशयदुष्प्राप्यः। मम तु चरमाऽवस्थैव सम्भाव्यते, विरहवेदनाया अतिशयदुःसहत्वादिति भावः। सास्रम् = अश्रुसहितं यथा तथा, अत्र सद्यो विपत्तिशङ्कया सास्रत्वमवगन्तव्यम्। संस्कृतमाश्रित्य = अत्र मालत्या संस्कृतभाषाश्रयणं—

'योषित्सखीबालवेश्याकितवाऽप्सरसां तथा।
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्यं संस्कृतं चाऽन्तराऽन्तरा॥'

साहित्यदर्पणीयैतदुक्तिमूलकं ज्ञेयम्—

---

हृदयको धारण करती हुई क्लान्त नवमालिका पुष्पके सदृश अतिसुकुमार होती हुई कामदेवसे कृश बनाई गई हैं, उसी तरह उनको भी भगवान् कामदेवने सन्तापकी दुःसहता का ज्ञान कराया।

मालती--सखि! इस समय उन महानुभावका कुशल हो। पर मुझे ही आश्वासन दुष्प्राप्य है। ( आँखोंमें आँसू भरकर। संस्कृतका आश्रयकर )

मनोरोगस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरतं
प्रमाथी निर्धूमो ज्वलति विधुतः पावक इव ।
हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानित इतो
न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ॥ १ ॥

लवङ्गिका—एवमेतत् । प्रत्यक्षसौख्यदायिनः परोक्षदुःखदुःसहाः सज्जन-

मनोरोग इति । तीव्रः प्रमाथी मनोरोगो विषम् इव अविरतं विसर्पति, निर्धूमो विधुतः पावक इव ज्वलति; गरीयान् ज्वर इव प्रत्यङ्गम् इत इतो हिनस्ति । मां त्रातुं तातः, अम्बा भवती च न प्रभवति इत्यन्वयः । तीव्रः=असह्यः, प्रमाथी=प्रमथनशीलः, मनोरोगः=चित्तोपतापः, मन्मथकथालक्षणो व्याधिरिति भावः । विषम् इव=गरलम् इव; अविरतं=निरन्तरं, विसर्पति=व्याप्नोति 'विसर्पन्' इति पुस्तकान्तरपाठः । निर्धूमः=धूमरहितः, 'निर्धूमम्' इति 'विधुत' इत्यस्य क्रियाविशेषणरूपः पुस्तकान्तरस्थः पाठः । विधुतः=कम्पितः, संधुक्षित इति भावः । एतादृशः, पावक इव=अग्निरिव । ज्वलति=दीप्यते । एवं च-गरीयान्=गुरुतरः, अतिशयेन दुर्वह इति भावः । ज्वर इव=रोगविशेष इव, प्रत्यङ्गं=प्रत्यवयवं, सर्वाण्यङ्गानि इति भावः । इत इतः=अन्तर्बहिश्च, हिनस्ति=पीडयति । अतो मां=मालतीं, त्रातुं=रक्षितुं, नन्दनादिति शेषः । तातः=पिता, अपत्यस्नेहपरवशोऽपीति भावः । अम्बा=माता, पुत्र्यामधिकस्नेहशीलाऽपि भर्तृपराऽधीनेति भावः । भवती च=अभिन्नहृदयत्वेन समदुःखसुखा सखी चेति भावः । न प्रभवति=न शक्नोति, किं तु स एवैकोऽमृतसञ्जीवनौषधिरिव माधव एव मां त्रातुं प्रभवतीति भावः । अत्र विसर्पणज्वलनहिंसनरूपाणामनेकक्रियाणां मनोरोगरूपस्यैकस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारः, उपमा एवं चतुर्थचरणस्थवाक्याऽर्थं प्रति प्रथमद्वितीयतृतीयचरणस्थानां वाक्याऽर्थानां हेतुत्वाद्वाक्याऽर्थरूपं काव्यलिङ्गं ताताऽम्बाभवतीरूपाणां पदार्थानां प्रभवतीत्येकक्रियारूपधर्माऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिता चेत्येतेषां मिथोऽङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १ ॥

लवङ्गिकेति । एवमेतत्=त्वया युक्तमुक्तमिति भावः । प्रत्यक्षसौख्यदायिनः=

असह्य और प्रमथनशील चित्तरोग विषके सदृश लगातार व्याप्त हो रहा है; धूआंसे रहित कम्पित अग्निके सदृश जल रहा है, और गुरुतर ज्वरके सदृश प्रत्येक अङ्गको भीतर और बाहर पीडित कर रहा है । मेरी रक्षा करनेके लिए न पिताजी, न माताजी और न आप ही समर्थ हैं ॥ १ ॥

लवङ्गिका--यह ऐसा ही है । सज्जनसमागम प्रत्यक्षमें सुख देनेवाले और

नसमागमा भवन्ति। अपि च प्रियसखि, यस्य वातायनान्तरमुहूर्त्तदर्शनेनापि सुसमिद्धहुतवहायमानपूर्णचन्द्रोदया निष्करुणकामव्यापारसंशयितजीविता ते शरीरावस्था, तस्यैव साम्प्रतं सविशेषदर्शनादद्य सन्तप्यस इति किमत्र भणितव्यम्। तदत्र प्रियसखि, श्लाघनीयं दुर्लभमनोरथफलं जीवलोकस्य यद्गुरुकानुरागसदृशा महाभागवल्लभसमागम इत्येतावज्जानीमः। ( एव्वं एदं। पच्चक्खसोक्खदाइणो परोक्खदुक्खदूसहा सज्जणसमाअमा होन्दि। अवि अ पिअसहि, जस्स वादाअणन्दरमुहुत्तदंसणेण वि सुसमिद्धहुदवहाअन्तपुण्णचन्दोदया णिक्करुणकामव्वावारसंसइदजीविदा दे सरीरावत्था, तस्स एव्व संपदं सविसेसदंसणादो अज्ज संतप्पसि त्ति किं एत्थ भणिदव्वम्। ता एत्थ पिअसहि, सला-

---

प्रत्यक्षे सुखोत्पादकस्येति भावः। परोक्षदुःखदुःसहा = परोक्षे ( अप्रत्यक्षे ) यद्दुःखं (पीडा), तेन दुःसहाः (दुर्मर्षणीयाः), वियोगेनेति भावः। सज्जनसमागमाः संयोगकाले सुखप्रदा वियोगकाले चाऽसहनीयदुःखप्रदा भवन्तीति तात्पर्यम्। वातायनाऽन्तरमुहूर्त्तदर्शनेन = वातायनाऽन्तरात् (गवाक्षाऽवकाशात्), मुहूर्त्तदर्शनेन (स्तोकक्षणविलोकनेन), मुहूर्त्तं दर्शनं मुहूर्त्तदर्शनं, तेन 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया, 'अत्यन्तसंयोगे चे'ति द्वितीयातत्पुरुषः। सुसमिद्धहुतवहायमानपूर्णचन्द्रोदया = सुसमिद्धः ( अतिशयेन प्रदीप्तः ) 'सविशेषसमिद्ध' इति पाठेऽप्येवमेवाऽर्थः, हुतवहायमानः ( हुतवहवदाचरन् ) पूर्णचन्द्रोदयः = ( पूरितेन्दूद्गमः ) यस्याः सा, चन्द्रस्य कामोद्दीपकत्वादिति भावः। अत्र 'हुतवहायमान' इत्यत्र 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति क्यङन्ताल्लटः शानच्। निष्करुणकामव्यापारसंशयितजीविता = निष्करुणः ( दयारहितः ) यः कामः ( मदनः ), तस्य यो व्यापारः ( बाणवेधनरूपा क्रिया ) तेन संशयितं ( सञ्जातसन्देहम् ) जीवितं ( जीवनम् ) यस्याः सा। 'जीवितम्' इत्यत्र जीवनं जीवितं, 'नपुंसके भावे क्त' इति भावे क्तप्रत्ययः। एतादृशी, ते = तव, शरीराऽवस्था = देहदशा, भवतीति शेषः। तस्यैव = माधवस्यैव, अत्र = अस्मिन्विषये, किं भणितव्यं = किं वक्तव्यम्। जीवलोकस्य = प्राणिवर्गस्य, श्लाघनीयं = प्रशंसनीयम्, दुर्लभमनोरथफलं = दुर्लभे ( दुष्प्राप्ये विषये ) यो मनोरथः ( अभिलाषः ) तस्य फलम् ( सिद्धिरूपम् )। गुरुकाऽनुरागसदृशः = महाप्रणय-

---

परोक्षमें दुःख देनेसे दुःसह होते हैं। और भी प्रियसखि! जिसको खिडकीके भीतरसे कुछ कालतक देखनेसे भी जिसमें पूर्णचन्द्रका उदय भी अतिशय जलते हुए अग्निकी तरह आचरण करनेवाला प्रतीत होता है और निर्दय कामके व्यापारसे संशययुक्त जीवनवाली आपकी शरीरावस्था है। आज उन्हींके सविशेष दर्शनसे

हणिज्जं दुल्लहमणोरहफलं जीअलोअस्स जं गुरुआणुराअसरिसो महाभाअवल्लहसमाअमो त्ति एत्तिणं जाणीमो । )

मालती—सखि, दयितमालतीजीविते, साहसोपन्यासिनि, अपेहि। ( सास्रम् ) अथवा । अहमेव वारंवारं विलोकयन्ती पलायमानप्रतिष्ठापितधीरत्वावष्टम्भेनात्मनो हृदयेन दूरं विलीयमानलज्जत्वेन दुर्विनयल-

---

तुल्यः, महाभागवल्लभसमागमः = महानुभावप्रियसङ्गमः, जीवलोके प्रियसमागम एव श्लाघनीयं फलमिति भावः। मरणाऽनन्तरं तु कस्य किं फलमिति नैव कोऽपि जानातीति तात्पर्यम् । अतस्त्वया वल्लभसमागमसंपादनेन जीवनसुखमनुभूय जीवलोके स्वदेहसंरक्षणं कर्तव्यमिति निगूढोऽर्थः ।

मालतीति । दयितमालतीजीविते = दयितं ( प्रियम् ) मालतीजीवितं ( मालतीजीवनम् ) यस्यास्तत्सम्बुद्धौ, एतेन सम्बोधनेन मज्जीवनमेव त्वदभीष्टं न तु मदीयजनककुलगौरवादिकमित्यर्थो ध्वन्यते। अत एव साहसोपन्यासिनि = सहसाऽऽचरणोपस्थापिके, अपेहि = दूरे तिष्ठ, नैवमुपदेष्टव्यमिति भावः । नाऽहं कन्यकाजनविरुद्धाचरणेनाऽकलङ्कं मातापितृकुलं मलिनीकरिष्यामीति निगूढोऽर्थः । वारं वारं = बहुकृत्वः, विलोकयन्ती = पश्यन्ती, माधवमिति शेषः । पलायमानप्रतिष्ठापितधीरत्वाऽवष्टम्भेन = प्राक्पलायमानं ( नश्यत् सत ) पुनः प्रतिष्ठापितं ( निरुध्य स्थापितम् ) पलायमानप्रतिष्ठापितं, 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेने'ति पूर्वकालसमासः । 'पलायमानम्' इत्यत्र परापूर्वकात् 'अय गतौ' इति धातोर्लटः शानच्, 'उपसर्गस्याऽयतौ' इति रेफस्य लत्वम् । पलायमानप्रतिष्ठापितं यद्धीरत्वं ( धैर्यम् ) तस्याऽवष्टम्भः ( अवलम्बनम् ) यस्य तत् तादृशेन । आत्मनः = स्वस्य, हृदयेन = चित्तेन, दूरं=विप्रकृष्टं यथा तथा, विलीयमानलज्जत्वेन= विनश्यद्व्रीडत्वेन हेतुना, दुर्विनयलघ्वी = दुर्विनयेन ( अविनयेन ) लघ्वी ( लघुतां

---

आप इस समय सन्तप्त हो रही हैं इसमें क्या कहना है । इसलिए यहांपर हे प्रियसखि ! गुरुतर अनुरागके सदृश भाग्यवान प्रियका समागम, जीवलोकका दुष्प्राप्य विषयमें आदरणीय अभिलाषका फल है हम लोग इतना जानती हैं ।

मालती—मेरे जीवनको प्रिय माननेवाली और साहसाचरणको उपस्थापित करनेवाली सखि ! तुम दूर हो जाओ । ( आँखोंमें आँसू भरकर ) अथवा मैं ही उनको वारंवार देखती हुई पहले भागते हुए और पीछे प्रतिष्ठापित धैर्यके अवलम्बनसे युक्त हृदयसे लज्जाके दूर हो जानेसे अविनयके कारण लघुताको प्राप्त होती

ऽत्रापराध्यामि । तथापि प्रियसखि । ( संस्कृतमाश्रित्य ) ( सहि, दइदमालदीजीविदे, साहसोवण्णासिणि, अवेहि । अहवा । अहं एव्व वारंवारं विलोअअन्ती पलाअंतपडिट्ठ।विदधीरत्तणावट्ठम्भेण अत्तणो हिअएण दूरं विलीअन्तलज्जत्तेण दुव्विणअलहुआ एत्थ अवरद्धम्मि । तहावि पिअसहि ।

1963 ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी
दहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यतः ।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया

गता सती ) अत्र=विषये, अपराध्यामि=कृताऽपराधा भवामि, कुलकन्यकामर्यादोल्लङ्घनपुरःसरं बहुशो माधवाऽवलोकनरूपं मदीयं व्यसनं नैव श्रेयस्करमिति भावः । अत्र विलोकयन्तीति चक्षुःप्रीतिः, पलायमानेति चित्तासङ्गः, दूरं विलीयमानेति त्रपानाशश्च कथित इति त्रिपुरारिसूरिः ।

ज्वलत्विति । रात्रौ रात्रौ गगने अखण्डकलः शशी ज्वलतु, मदनो दहतु, मृत्योः परेण किं वा विधास्यतः? मम तु तातो दयितः श्लाघ्यः, जननी अमलाऽन्वया ( दयिता ), कुलम् अमलिनं ( दयितम् ), तु अयं जनो नैव जीवितं च नेत्यन्वयः । रात्रौ रात्रौ=प्रतिरात्रि, शुक्लकृष्णपक्षरात्रिष्विति भावः । गगने=आकाशे, अखण्डकलः=संपूर्णकलः, मद्वैरात्कालनियमं परिहाय षोडशकलोपेत इति भावः । शशी=शशधरः, विप्रयुक्तजनदाहपातकरूपेण शशाऽऽख्येन धूमेनाऽङ्कित इति भावः । ज्वलतु=दहतु, एवं च—मदनः=कामदेवः दहतु=ज्वलतु, शशिनैव उद्दीप्तो मदनोऽपि मां दहत्विति भावः । मृत्योः=मरणात् परेण=अधिकं, 'परेणे'ति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । किं वा=किं, विधास्यतः=करिष्यतः, षोडशकलाविलसितः शशधरस्तदुद्दीपितः कुसुमेषुश्च दाहतो विप्रयुक्ताया मम मरणादधिकं किं करिष्यतः, तच्च मरणं मयाऽङ्गीकृतमेवेति भावः । ननु साहससमाचरणेन मरणाशङ्का व्यपेयादित्याह—ममेति । मम तु=मालत्यास्तु, तातः=पिता, भूरिवसुरित्यर्थः । दयितः=प्रियः, श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः, सद्गुणगणाऽलङ्कृतत्वादिति भावः । तथैव—जननी=माता, अमलाऽन्वया=निर्मलकुलप्रसूता, दयिता चेति स्त्रीलिङ्गत्वेन विपरिणामः,

हुई इस विषयमें अपराधिनी हूँ । तो भी हे प्रियसखि । ( संस्कृत भाषाका आश्रय लेकर )-

प्रत्येक रात्रिको आकाशमें संपूर्ण कलाओंसे युक्त होकर चन्द्रमा प्रज्वलित हों और कामदेव दाह करें। ये लोग मृत्युसे अधिक क्या करेंगे ? मेरे तो पिताजी प्रिय और प्रशंसनीय हैं, माताजी निर्मलवंशमें उत्पन्न और प्रिय हैं, इसी तरह

कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥ २ ॥

लवङ्गिका—( स्वगतम् ) अत्रेदानीं क उपायः । (एत्थ दाणीं को उवाओ ।)

( नेपथ्यार्धप्रविष्टा )

प्रतिहारी—एषा भगवती कामन्दकी । ( एसा भअवदी कामन्दई । )

उभे—किं भगवती । ( किं भअवई । )

प्रतिहारी—भर्तृदारिकां द्रष्टुकामाऽऽगता । (भट्टिदारिअं दट्ठुआमा आअदा ।)

प्रिया चेत्यर्थः । एवम्—अमलिनं=मालिन्यरहितं, कलङ्कलेशेनाऽपि विवर्जितमिति भावः । दयितं चेति क्लीबलिङ्गत्वेन विपरिणामः, प्रियं चेत्यर्थः । मातापित्रोः कुलस्य च अश्लाघ्यत्वे सकलङ्कत्वे च अप्रियत्वे च कुलकन्यकाऽननुगुणं साहससमाचरणं मदीयं स्यादपि, परमत्र तद्वैपरीत्यान्मरणपणेनाऽपि तादृशं कार्यं नाऽनुतिष्ठामीति भावः । ननु मातापितृकुलेभ्यो माधवस्ते दयिततमः, अतस्तदर्थं साहसमनुष्ठेयमित्याह—न त्विति । तु=परन्तु, अयम् = एषः, सर्वदैव मनोमन्दिरे विराजमानत्वेन सन्निकृष्टस्थ इति भावः । जनः = मानवः, माधवाऽख्य इति भावः । नैव = नैव दयित इत्यर्थः, कुलकन्यकाजनाऽननुगुणसाहससमाश्रयणेनेति शेषः । न तु जीवितं तु सर्वेभ्योऽपि दयिततमम्, अत एतदर्थमपि साहसमनुष्ठेयमित्यत आह—न चेति । जीवितं च = मदीयं जीवनं च, न = नो दयितम्, अतः साहसं नाऽनुतिष्ठामीति भावः । अत्र शशिनो ज्वलनरूपस्य विरुद्धकार्यस्योत्पत्तेर्विषमाऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा—'गुणौ क्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः ।

यद्वाऽऽरब्धस्य वैकल्यमनर्थस्य च संभवः ॥

विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम् ॥' इति । हरिणी वृत्तम् ॥२॥

लवङ्गिकेति । अत्र=विषये, उपायः = अनुष्ठेय इति शेषः । मत्सूचितं साहसोपदेशमियं न गृहीतवती, अतोऽस्याश्चरमा दशा संभावनीया, किं कर्तव्यमधुनेति भावः ।

प्रतिहारीति । प्रतिहारी = दौवारिकी, कामन्दकी—द्वारदेशमध्यास्त इति शेषः ।

वंश भी निष्कलङ्क और प्रिय हैं; परन्तु ये जन ( माधवजी ) और अपना जीवन प्रिय नहीं हैं ( मैं कुलकन्याके प्रतिकूल साहस नहीं करूंगी । ) ।' २ ॥

लवङ्गिका—( मन ही मन ) यहाँ इस समय क्या उपाय है ?

( वेशरचनास्थानसे अर्ध प्रवेश करती हुई )

प्रतिहारी—( द्वारपालिका )—ये भगवती कामन्दकी ( दरवाजेमें ) हैं ।

दोनों ( मालती और लवङ्गिका )—क्या भगवती ?

प्रतिहारी—स्वामिकन्याको देखने की इच्छासे आई हुई हैं ।

उभे—ततः किं विलम्ब्यते। ( तदो किं विलम्बीअदि। )

( निष्क्रान्ता प्रतिहारी। मालती चित्रं छादयति )

लवङ्गिका—( स्वगतम्। ) सुसमाहितं खलु जातम्। ( सुसमाहिदं क्खु जादम्। )

( ततः प्रविशति कामन्दक्यवलोकिता च )

कामन्दकी—साधु सखे भूरिवसो, साधु। 'प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य देव' इत्युभयलोकाविरुद्धमुत्तरमुपन्यस्तम्। अपि च। अद्य मन्म-

---

उभे इति। ततः = तर्हि, किं = किमर्थं, विलम्ब्यते = विलम्बः क्रियते, प्रवेशयितुमिति शेषः।

लवङ्गिकेति। सुसमाहितं = सुनिष्पन्नं, जातम् = अभूत्, कार्यमिति शेषः। पुस्तकान्तरे तु 'सुसमीहितम्' इति पाठस्तस्य सम्यगभीष्टमित्यर्थः।

कामन्दकीति। साधु = समीचीनं, देवः = महाराजः, निजस्य = स्वस्य, प्रभवति= समर्थो भवति, 'सचिववर्य! स्वकीया कुमारी मालती नन्दनाय समर्प्यताम्' इति राजवाक्यस्योत्तरे इति भावः। इति = एतादृशम्, उभयलोकाऽविरुद्धम् = लोकद्वयविरोधरहितं, प्रभुवचनाऽनुल्लङ्घनेन, एतल्लोकाऽविरोधः, 'नन्दनाय जरते मालत्याः प्रदाने ताटस्थ्याऽऽचरणेन परलोकाऽविरोधश्चेति वोद्धव्यः। वस्तुतस्तु स्वकन्यकाजनस्यैव देवः प्रभवति न तु मद्दुहितुर्मालत्याः अतोऽहं कुसुमसुकुमारीं मालतीं गतवयसे नन्दनाय न समर्पयामीत्यभिप्रायः। राज्ञाऽऽदिष्टो यदि भूरिवसुः साज्ञाऽभ्युपगच्छेत्तदा महासङ्कटमापतेत् इत्येतल्लोकस्थितिविरोधः, स्वसंरक्षणमात्रं लक्ष्यीकृत्य नन्दनाय मालतीप्रदानमभ्युपगच्छेत्तर्हि स्वदुहितृविषये कर्तव्यच्युतेः देवराते कृतायाः प्रतिज्ञायाश्च्युतेरसत्यभाषित्वेन च परलोकस्थितिविरोधः, अत उभयलोकाऽविरुद्धं छलोक्तिरूपतया सत्याऽनृताऽऽत्मकमेतत्प्रतिवाक्यमवगन्तव्यम्। उत्तरं=प्रतिवाक्यम्, उपन्यस्तं = स्थापितम्, इष्टसामग्रीमुक्त्वा दैवाऽऽनुकूल्यमपि

---

दोनों—तब क्यों विलम्ब करती हो!

( प्रतिहारी जाती है। मालती चित्रको आच्छादित करती है। )

लवङ्गिका—( मन ही मन ) कार्य अच्छी तरहसे हो गया।

( अनन्तर कामन्दकी और अवलोकिता प्रवेश करती हैं। )

कामन्दकी—वाह! मित्र भूरिवसो! वाह! 'अपनी कन्याके विषयमें महाराजका प्रभुत्व है।' दोनों लोकोंके अविरुद्ध ऐसे उत्तरका उपन्यास किया।

थोद्यानवृत्तान्तेन भगवतो विधेरप्यनुकूलतामवगच्छामि। बकुलावली-चित्रफलकव्यतिकरस्तु कमप्यद्भुततमं प्रमोदमुल्लासयति। इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्मणि परार्ध्यं मङ्गलम्। गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिरिति।

अवलोकिता—एषा मालती। (एषा मालदी।)

कामन्दकी—(निर्वर्ण्य)

निकामं क्षामाङ्गी सरसकदलीगर्भसुभगा

---

प्रतिपादयति—अपि चेति। 'अनुकूलताम्=अनुगुणताम्, अवगच्छामि=जानामि, बकुलाऽऽवलीचित्रफलकव्यतिकरः=माधवग्रथितायाः बकुलावल्या मालतीकण्ठाभरणत्वं, मालतीलिखितस्य चित्रफलकस्य माधवेन दर्शनमित्येवं व्यतिकरः=परिवृत्तिः, कमपि=अनिर्वाच्यं, प्रमोदं=प्रकृष्टं हर्षम्, उल्लासयति=जनयति, हि=यतः, इतरेतराऽनुरागः=परस्परप्रणयः, परार्ध्यं=श्रेष्ठं, मङ्गलं=कल्याणम्, अङ्गिरसा=अङ्गिरोनामकेन सुरर्षिणा, यस्यां=कन्यायां, निर्बन्धः=आसक्तिः, चरित्रलावण्यादिभिरिति भावः। तस्यां=कन्यायां, परिणीतायां सत्यामिति शेषः। ऋद्धिः=उपचयः, अत्र बौद्धसंन्यासिन्या अवलोकितया अङ्गिरोवचनप्रमाणीकरणं तात्कालिकबौद्धानां सनातनधर्मिभिः सहाऽऽचारांशे भेदाऽभावेन दार्शनिकसिद्धान्त एव भिन्नत्वात्समीचीनमेव।

निकाममिति। सरसकदलीगर्भसुभगा क्षामाऽङ्गी कलाशेषा शशिनो मूर्तिरिव नेत्रोत्सवकरी कल्याणी इयं नो मनो नितरां रमयति मदनदहनोद्दाहविधुराम् अवस्थाम् आपन्ना (सती) मनः कम्पयति चेत्यन्वयः। सरसकदलीगर्भसुभगा=सरसः

---

और भी। आज मन्मथोद्यानके वृत्तान्तसे भगवान् विधाताकी भी अनुकूलता है' ऐसा जानती हूँ। माधवसे गुम्फित बकुलावली और मालतीसे लिखित चित्र इनका विनिमय भी अनिर्वाच्य और अतिशय अद्भुत हर्षको उत्पन्न कर रहा है। क्योंकि वधू और वरमें परस्परका अनुराग विवाहकर्ममें उत्तम मङ्गल है। 'जिस कन्यामें मन और नेत्रोंकी आसक्ति है उससे विवाह करनेसे समृद्धि है।' ऐसा कहकर अङ्गिरा ऋषिने इस अर्थकी पुष्टि की है।

अवलोकिता—ये मालती हैं।

कामन्दकी—(देखकर)

आर्द्र कदलीके भीतर भागकी तरह मनोहर कृश अङ्गवाली, कलामात्र अवशिष्ट

कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी ।
अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरा-
मियं नः कल्याणी रमयति मनः कम्पयति च ॥ ३ ॥

अपि च—

परिपाण्डुपांसुलकपोलमाननं दधती मनोहरतरत्वमागता ।

( आर्द्रः, अपर्युषित इति भावः ) यः कदलीगर्भः ( रम्भास्तम्भाऽभ्यन्तरभागः ) स इव सुभगा ( रम्या, क्षीणत्वपाण्डुत्वाभ्यामिति भावः ) । अतः क्षामाऽङ्गी= क्षामाणि ( कृशानि ) अङ्गानि ( अवयवाः ) यस्याः सा । 'क्षै क्षये' इति धातोर्निष्ठायां 'क्षायो मः' इति तस्य मत्वे क्षाममिति रूपम् । संयोगोपधत्वेन 'स्वाऽङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इत्यस्याऽप्राप्तेः 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' इति ङीष् । अत एव कलाशेषा=अवशिष्टैककला, शशिनः=चन्द्रमसः, कृष्णचतुर्दश्यामिति शेषः । मूर्तिरिव=प्रतिकृतिरिव, नेत्रोत्सवकरी=नयनानन्दकारिणी, नेत्रोत्सवं करोतीति 'कृञो हेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु' इति ताच्छील्ये टप्रत्ययः, टित्वात् 'टिड्ढाणञ्'-त्यादिना ङीप् । कल्याणी=मङ्गललक्षणोपेता, इयं=सन्निहिता, मालतीति भावः । नः=अस्माकं, मनः=चित्तं, नितरां=भृशं, रमयति=आह्लादयति, अस्मद्व्यापाराऽनुकूलमाधवानुरागप्रकर्षशालित्वादिति भावः । एवं च—मदनदहनोद्दाहविधुरां= कामाऽनलसंतापविह्वलाम्, अवस्थां=दशाम्, आपन्ना=प्राप्ता सती, मनः= अस्मच्चित्तं, कम्पयति च=उद्वेजयति च, मदनदाहस्य तीव्रतरत्वादस्याः सौकुमार्याऽतिशयत्वाच्चानिष्टाऽऽशङ्कयेति शेषः । अत्र प्रागुपमाऽलङ्कारः, उद्दिष्टयोः क्रमेणाऽनूद्देशाद्यथासंख्यालङ्कारः, रमणकम्पनरूपयोरनेकक्रिययोरियमित्येकस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारः, रमणकम्पनयोर्विरूपयोः संघटनया विषमाऽलङ्कारश्चेत्येतेषां सङ्करः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

परिपाण्ड्विति । परिपाण्डु पांसुलकपोलम् आननं दधती ( इयम् ) मनोहरतरत्वम् आगता । हि रमणीयजन्मनि जने परिभ्रमन् ललितो मान्मथो विधिः विजयत इत्यन्वयः । परिपाण्डुपांसुलकपोलं=परिपाण्डू ( अतिशयधवलौ ) पांसुलौ (रूक्षौ, संस्काराऽभावादिति भावः ) कपोलौ ( गण्डौ ) यस्मिंस्तत् । एतादृशम् आननं= मुखं दधती=धारयन्ती, इयमिति शेषः, मालतीति भावः । मनोहरतरत्वम्=अति-

चन्द्रमूर्तिकी सदृश नेत्रोंको उत्सव करनेवाली, कल्याणी यह मालती हमलोगोंके चित्तको अतिशय आह्लादित करती है और कामाऽग्निके उत्कट दाहसे विह्वल अवस्थाको प्राप्त होती हुई मनको कम्पित भी करती है ॥ ३ ॥

फिर भी—

अतिशय सफेद और रूक्ष कपोलोंसे युक्त मुखको धारण करती हुई यह

रमणीयजन्मनि जने परिभ्रमँल्ललितो विधिर्विजयते हि मान्मथः ॥ ४ ॥

नियतमनया संकल्पनिर्मितः प्रियसमागमोऽनुभूयते । तथा ह्यस्याः—

नीवीबन्धोच्छ्वसनमधरस्पन्दनं दोर्विषादः
स्वेदश्चक्षुर्मसृणमुकुलाकेकरस्निग्धमुग्धम् ।

शयसौन्दर्यम् आगता=प्राप्ता । ननु तादृशदशायां सत्यामपि कथं नाम मनोहरतरत्वमित्याह—रमणीयेति । हि=यतः । रमणीयजन्मनि=सौन्दर्यशालिनि, जने=व्यक्तिविशेषे, परिभ्रमन्=परिभ्रमणं कुर्वन्, ललितः=सुन्दरः, मान्मथः=मन्मथसम्बन्धी, मन्मथस्याऽयमिति 'तस्येदम्' इत्यण् । विधिः=व्यापारः, विजयते=सर्वोत्कर्षेण वर्तते, 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम् । सहजसौन्दर्यशालिनां कामविकारोऽपि शोभाऽतिशयं पुष्णातीति भावः । अत्राऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मञ्जुभाषिणी वृत्तं 'सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी'ति लक्षणम् ॥ ४ ॥

नियतमिति । अनया=मालत्या, नियतं=निश्चितं, सङ्कल्पनिर्मितः=मनोव्यापाररचितः, यतः सम्भोगाऽनुभावा दृश्यन्त इति भावः ।

तानेवाऽनुभावान्निर्दिशति—नीवीति । नीवीबन्धोच्छ्वसनम्, अधरस्पन्दनं, दोर्विषादः, स्वेदो मसृणमुकुलाऽऽकेकरस्निग्धमुग्धं चक्षुः, गात्रस्तम्भः, स्तनमुकुलयोः उत्प्रबन्धः प्रकम्पो गण्डाऽऽभोगे पुलकपटलं, मूर्च्छना चेतना चेत्यन्वयः । नीवीबन्धोच्छ्वसनं=नीव्याः (जघनवस्त्रबन्धस्य) बन्धस्य (ग्रन्थेः) उच्छ्वसनम् (शिथिलता) अस्या उपलभ्यत इति पदद्वितयमध्याहार्यम्, एवं परत्राऽपि । निधुवनाऽऽरम्भे कान्तकृतनीवीविस्रंसनभावनयेति भावः । अधरस्पन्दनम्=ओष्ठकम्पनं, स्फुरिताऽऽख्यचुम्बनभावनयेति तात्पर्यम् स्फुरितलक्षणं यथा—

'रदने विशन्तमोष्ठं ग्रहीतुं या समिच्छति ।
निजोष्ठः कम्पते यत्र स्फुरितं चुम्बनं मतम् ॥' इति ।

दोर्विषादः=बाहुलताशैथिल्यं कान्तकृताऽलिङ्गनभावनयेति भावः । स्वेदः=घर्मः, रतिश्रमचिन्तनवशादित्याशयः, स्वेदलक्षणं यथा—

'वपुर्जलोद्गमः स्वेदो रतिघर्मश्रमादिभिः ।' इति ।

---

(मालती) अतिशय सौन्दर्यको प्राप्त हो गई है । क्योंकि सौन्दर्यशाली जनमें परिभ्रमण करता हुआ सुन्दर कामदेवका व्यापार अतिशय उत्कर्षके साथ रहता है ॥४॥

निश्चय इससे सङ्कल्प (मनोव्यापार) से निर्मित प्रियसमागमका अनुभव किया जा रहा है । जैसे कि इस के—

नीवीग्रन्थिकी शिथिलता, ओष्ठकम्पन, बाहुलताओंका शैथिल्य, स्वेद (पसीना),

गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयोरुत्प्रबन्धः प्रकम्पो
गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च ॥ ५ ॥

( उपसर्पति )

( लवङ्गिका मालतीं चालयति । उभे उत्तिष्ठतः । )

मसृणमुकुलाऽऽकेकरस्निग्धमुग्धं = मसृणं ( कोमलं ) मुकुलं ( कुड्मलसदृशम् ), क्वचित्तु 'मधुर' पदपाठस्तत्र मधुरं सुन्दरम् इत्यर्थः, तादृशम् आकेकरम् ( आवलितम् ) स्निग्धं ( स्नेहपूर्णम् ) मुग्धं ( सुन्दरम् ), 'मुग्धम्' इत्यत्र 'तार' पदपाठे मसृणे मुकुले आकेकरे स्निग्धे तारे ( कनीनिके ) यस्य तदित्यर्थः । एतादृशं चक्षुः= नेत्रं, चिन्तितसमागमसुखपारवश्यादिति भावः । गात्रस्तम्भः=गात्रस्य (शरीरस्य) स्तम्भः (निश्चेष्टत्वं, सात्त्विकभावविशेषः), हर्षप्रकर्षादिति भावः । स्तनमुकुलयोः= स्तनौ मुकुलाविवेति स्तनमुकुलौ, तयोः, कुड्मलाऽऽकारपयोधरयोरित्यर्थः । 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः । उत्प्रबन्धः = उल्लङ्घितः प्रबन्धः ( स्थैर्यम् ) यस्मिन्सः, एतादृशः प्रकम्पः = प्रकृष्टो वेपथुः, सात्त्विकभावविशेषः । प्रियकर्तृकगाढाऽऽलिङ्गनभावनावशादिति तात्पर्यम् । गण्डाऽऽभोगे = विस्तीर्णे कपोलफलके, 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः । पुलकपटलं = रोमाञ्चसमूहः, कान्तकृतचुम्बनचिन्तनादित्यभिप्रायः । मूर्च्छना = मोहः, सर्वेन्द्रियव्यापारोपरम इति यावत्, निरतिशयानन्दभावनाबलादिति भावः । चेतना च = चैतन्यं च, पूर्वोक्तभावनोपरमाऽनन्तरं पुना रतिविलाससङ्कल्पेन चैतन्यं चेति निगूढोऽभिप्रायः । अत्र स्तनमुकुलयोरित्यत्रोपमा, मूर्च्छनाचेतनयोर्विरूपयोः सङ्घटनया विषमश्चेत्येतयोः सङ्कल्पनिर्मितप्रियसमागमरूपस्य साध्यस्य नीवीबन्धोच्छ्वसनादिसाधनेभ्यो विच्छित्त्या ज्ञानादनुमानालङ्कारस्याऽङ्गिनोऽङ्गत्वात्सङ्करः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ५ ॥

लवङ्गिकेति । मालतीं—चिन्ताऽऽभोगभावनया निश्चेष्टामिति भावः । उभे=मालतीलवङ्गिके इत्यर्थः । उत्तिष्ठतः=उत्थानं कुरुतः, कामन्दक्याः सत्काराऽर्थमिति भावः ।

'ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाऽभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥'

कोमल कुड्मलसदृश कुछ केकर ( आकुञ्चित ) स्निग्ध और सुन्दर नेत्र, शरीरकी निश्चेष्टता, मुकुलके सदृश स्तनोंकी स्थिरताको लङ्घन करनेवाला कम्प, परिपूर्ण कपोलोंमें रोमाञ्चसमूह, मूर्च्छा और चैतन्य (प्रियसमागमके अनुभवके ज्ञापक) हैं ॥५॥

( निकट जाती हैं । )

( लवङ्गिका मालतीको सञ्चालित करती है । दोनों उठती हैं । )

मालती—भगवति, वन्दे ( भअवदि, वन्दामि । )

कामन्दकी—महाभागधेयजन्मतायाः फलस्य भाजनं भूयाः ।

लवङ्गिका—भगवति, एतत्पवित्रमासनम् । ( भअवदि, एदं पवित्तं आसणम् । )

( सर्वा उपविशन्ति )

मालती—कुशलं भगवत्याः । ( कुसलं भअवदीए । )

कामन्दकी—( निःश्वस्य ) कुशलमिव ।

लवङ्गिका—( स्वगतम् ) प्रस्तावना खल्वेषा कपटनाटकस्य । ( प्रकाशम् ) गुरुकवाष्पभरस्तम्भमन्थरितकण्ठप्रतिलग्ननिर्गममन्यादृशमिवाद्य भगवत्या

एतादृशाचारे एवंविधा मनोक्तिः प्रमाणम् ।

कामन्दकीति । महाभागधेयजन्मतायाः = महाभाग्ययुक्तजननतायाः, फलस्य = परिणामस्य, भाजनं=पात्रं, भूयाः=भवतात्, त्वमिति शेषः । 'आशिषि लिङ्लोटौ' इत्याशीर्लिङ् । पुस्तकान्तरे तु अभिमतफलभाजनम् = अभिमतम् ( अभीष्टम् ) यत् फलं ( माधवसमागमरूपम् ) तद्भाजनं ( तत्पात्रम् ) इति पाठान्तरमर्थश्च ।

कामन्दकीति । कुशलम् इव—अत्र निःश्वासेन इवपदोच्चारणेन च कुशलाऽभावो भाव्यते ।

लवङ्गिकेति । कपटनाटकस्य = कपटम् ( छलम् ) एव नाटकं ( रूपकविशेषः ) तस्य, प्रस्तावना = आमुखम्, मालत्या अननुरूपवरप्रदाने वार्त्तोपन्यासच्छलेनोद्वेगमुत्पाद्य मालतीमनसि माधवपरिणयाऽध्यवसायदृढीकरणस्य प्रक्रमोऽयमिति भावः । निःश्वासेन इवशब्देन च द्योतितां कामन्दक्या व्याकुलतां स्फोरयितुं तां पृच्छति-गुरुकेति । गुरुकवाष्पभरस्तम्भमन्थरितकण्ठप्रतिलग्ननिर्गमं=गुरुकः (महान्) यो वाष्पभरः ( अश्रुसन्ततिः ), तस्य स्तम्भेन ( निवारणेन ) मन्थरितः ( मन्दी-

मालती—भगवति ! अभिवादन करती हूँ ।

कामन्दकी—महाभाग्ययुक्त जन्मताके फलका पात्र हो जाओ

लवङ्गिका—भगवति ! यह पवित्र आसन है ।

( सब बैठती हैं । )

मालती—भगवतीका कुशल है ?

कामन्दकी—( निःश्वास लेकर ) कुशलके तुल्य है ।

लवङ्गिका—( मन ही मन ) कपट नाटककी यह प्रस्तावना है । ( सुनाकर )

वचनम् । तत्किमिदानीमुद्वेगकरणं भविष्यति । ( पत्थावणा क्खु एसा कवडणाडअस्य । गुरुअबाहभरत्थम्भमन्थरिदकण्ठप्पडिलग्गणिग्गमं अण्णारिसं विअ अज्ज भअवदीए वअणम् । ता किं दाणीं उव्वेअकारणं हविस्सदि । )

कामन्दकी—नन्वयमेव चीरचीवरविरुद्धः परिचयः ।

लवङ्गिका—कथमिव । ( कहं विअ । )

कामन्दकी—अयि, त्वमपि किं न जानीषे ।

इदमिह मदनस्य जैत्रमस्त्रं
सहजविलासनिबन्धनं शरीरम् ।

---

कृतः ) कण्ठः ( गलः ) तस्मिन्, प्रतिलग्नः ( सम्बद्धः ) निर्गमः ( निर्गमनम् ), यस्य तत्, अन्यादृशमिव = अन्यप्रकारकमिव, वचनं = वचः ।

कामन्दकीति । ननु = सम्बोधनद्योतकमव्ययमिदम् । चीरचीवरविरुद्धः = चीरः ( जीर्णवस्त्रखण्डैः ) निर्मितं यच्चीवरं ( कन्था ), तद्विरुद्धः ( तत्प्रतिकूलः ), परिचयः=संस्तवः, 'संस्तवः स्यात्परिचय' इत्यमरः । युष्माभिः संसारिजनैःसममिति शेषः । इदमेव मदीयमुद्वेगकारणमिति भावः ।

लवङ्गिकेति । कथमिव = अस्मत्परिचयः कथं नाम तवोद्वेगकारणमिति भावः ।

कामन्दकीति । अयीति कोमलामन्त्रणे । त्वमपि = मालत्याः प्राणसमा सख्यपि, किं न जानीषे = कथं नाऽवगच्छसि, मालत्या अनिष्टमिति शेषः ।

नैजमुद्वेगकारणं प्रकाशयति–इदमिति । इह मदनस्य जैत्रम् अस्त्रं सहजविलासनिबन्धनम् इदं शरीरम् अनुचितवरसम्प्रदानशोच्यं विफलगुणाऽतिशयं ( च ) भविष्यतीत्यन्वयः । इह = अस्यां, मालत्यामित्यर्थः । मदनस्य = कामदेवस्य, जैत्रं = जयशीलं, जयतीति तच्छीलं जेतृ, 'तृन्' इति तृन् जेतृ एव जैत्रं 'प्रज्ञादिभ्यश्चे'ति स्वार्थे ( प्रकृत्यर्थे ) अण् । अस्त्रम् = आयुधरूपं, सहजविलासनिबन्धनं = सहजः ( स्वाभाविकः ) यो विलासः ( विभ्रमः ) तन्निबन्धनम् ( तदास्पदम् ), इदं =

---

महान् बाष्पसमूहके रोकनेसे मन्दीकृत कण्ठसे निकलनेवाला भगवतीका वचन दूसरे ही प्रकारका है । इस समय उद्वेगका कारण क्या होगा ?

कामन्दकी—अरी ! जीर्ण वस्त्रखण्डोंसे निर्मित कन्थाके विरुद्ध यह तुमलोगोंका परिचय ही है ।

लवङ्गिका—किस प्रकार ?

कामन्दकी—अरी ! तुम भी क्या नहीं जानती हो ?

इस ( मालती ) में कामदेवका जयशील अस्त्र, स्वाभाविक विलासका स्थान यह

अनुचितवरसंप्रदानशोच्यं
विफलगुणातिशयं भविष्यतीति ॥ ६ ॥

( मालती वैचित्र्यं नाटयति )

लवङ्गिका—अस्त्येतद्यन्नरेन्द्रवचनानुरोधेन नन्दनस्य प्रतिपन्ना मालतीति सकलो जनोऽमात्यं जुगुप्सते। ( अत्थि एदं जं णरेन्दवअणाणुरोहेण णन्दणस्स पडिवण्णा मालदित्ति सअलो जणो अमच्चं जुउच्छइ। )

मालती—( स्वगतम् ) कथमुपहारीकृतास्मि राज्ञस्तातेन। (कहं उवहारीकिदम्हि राइणो तादेण। )

---

निकटवर्ति, शरीरं=देहः, मालत्या इति शेषः। अनुचितवरसम्प्रदानशोच्यम्=अनुचितः ( अयोग्यः, वयःसौन्दर्याऽऽदिनेति भावः ) यो वरः ( उपनेता, नन्दन इत्यर्थः ) तस्मै यत् सम्प्रदानं ( प्रतिपादनम् ), तेन शोच्यं ( शोचनीयम् ) यथा च—विफलगुणाऽतिशयं च=विफलः ( निष्फलः ) गुणाऽतिशयः (शीलसौन्दर्यादिगुणप्रकर्षः ) यस्मिंस्तत्, अनुरूपभर्तृगामित्वादिति भावः। भविष्यति=भविता, इति=अनेन हेतुना, मदीय उद्वेग इति भावः। अत्र मालतीशरीरे मदनाऽस्त्रस्याऽऽरोपाद्रूपकाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।' इति ॥ ६ ॥

मालतीति। वैचित्र्यं=वैलक्षण्यं, मुखविवर्णतामिति भावः। नाटयति=करोति।

लवङ्गिकेति। नरेन्द्रवचनाऽनुरोधेन=राजवाक्याऽनुसरणेन, प्रतिपन्ना=अभिमता, प्रदातुमिति शेषः। इति=अनेन हेतुना, अमात्यं=मन्त्रिणम्, अमा ( सह ) वर्तत इति अमात्यस्तम्, 'अव्ययात्त्यप्' अमेहक्वतसित्रेभ्य एवे'ति त्यप्। जुगुप्सते=निन्दति, 'गुप गोपने' इति धातोः 'गुपेर्निन्दायाम्' इति निन्दाऽर्थे 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' इति सन्, तदन्ताल्लट्।

मालतीति। उपहारीकृता=उपायनीकृता, अनुपहार उपहारो यथा सम्पद्यते तथा कृता, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इति च्विः 'अस्य च्वौ' इत्यवर्णस्य ईत्वम्।

---

शरीर अयोग्य वर (नन्दन) को प्रतिपादनसे शोचनीय और इसमें गुणोंका उत्कर्ष निष्फल भी होगा ( यही मेरे उद्वेगका कारण है। ) ॥ ६ ॥

( मालती वैचित्र्यका अभिनय करती है )

लवङ्गिका—यह बात है कि मन्त्रीजी राजाके वचनका अनुसरण कर नन्दन को मालतीका दान करेंगे इसलिए सब लोग उनकी निन्दा कर रहे हैं।

मालती—(मन ही मन) पिताजीने राजाके लिए कैसे मुझको उपहार बनाया!

कामन्दकी—आश्चर्यम् ।

गुणापेक्षाशून्यं कथमिदमुपक्रान्तमथवा
कुतोऽपत्यस्नेहः कुटिलनयनिष्णातमनसाम् ।
इदं त्वैदम्पर्यं यदुत नृपतेर्नर्मसचिवः
सुतादानान्मित्रं भवतु स भवान्नन्दन इति ॥ ७ ॥

रुद्राय पशूपहारं दत्त्वा यथा जनाः स्वसमीहितं सम्पादयन्ति तथैव पित्राऽपि मदीयं विनाशमनाशङ्क्यैव राजाऽनुरोधादहं नन्दनाय उपहारीकृतेति भावः ।

गुणाऽपेक्षेति । गुणाऽपेक्षाशून्यम् इदं कथम् उपक्रान्तम् ? अथवा कुटिलनयनिष्णातमनसाम् अपत्यस्नेहः कुतः ? इदं तु ऐदम्पर्यं यत् उत नृपतेः नर्मसचिवः स भवान् नन्दनः सुतादानात् मित्रं भवतु इत्यन्वयः । गुणाऽपेक्षाशून्यं=रूपवयःप्रभृतिवरगुणनिरपेक्षम्, इदं=नन्दनाय मालतीप्रदानरूपं कर्म, कथं=केन प्रकारेण, उपक्रान्तम्=आरब्धम्, अमात्येनेति शेषः । अथवा=पक्षाऽन्तरे, कुटिलनयनिष्णातमनसां=कुटिलः (वक्रः) यो नयः (नीतिः) तत्र निष्णातं (कुशलम्) मनः (चित्तम्) येषां ते कुटिलनयनिष्णातमनसस्तेषाम् । 'निष्णातम्' इत्यत्र 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति मूर्धन्यषकारः । अपत्यस्नेहः=सन्ततिप्रणयः, कुतः=कस्मात् हेतोः भवति, नैव भवतीति भवः । अपत्यव्ययेनाऽपि कार्यं साधयतस्तस्य कोऽभिप्राय इत्यत आह—इदमिति । इदं तु=एतत्तु,ऐदम्पर्यम्=तात्पर्यम्, अस्मिन्पर इदम्परः (तत्परः), इदम्परस्य भावः, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चे'ति ष्यञ् । यत्, उतेति वितर्के । नृपतेः=राज्ञः, नर्मसचिवः=क्रीडासहचरः, सभवान्=पूज्यः, नन्दनः=नन्दननामा मन्त्री, सुतादानात्=सुतायाः (पुत्र्याः, मालत्या इत्यर्थः) दानात् (वितरणात्), मित्रं=सुहृत् भवतु=भवेत्, नन्दनाय मालतीदानेन छन्दाऽनुरोधेन नृपाऽऽनुकूल्यं, नन्दनेन समं सख्यं चेत्यतः सर्वतो भावेन राज्ये स्वस्य प्राबल्यसम्पादनमेव भूरिवसोर्मन्त्रिणस्तात्पर्यमिति भावः । अत्र द्वितीयचरणे कैमुतिकन्यायेनाऽर्थापत्तिरलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ७ ॥

कामन्दकी—आश्चर्य है ।

रूप और वय आदि वरगुणोंकी अपेक्षा नहीं रखनेवाला यह कर्म ( नन्दनको मालतीका दान करना ) मन्त्रीजीने कैसे आरम्भ किया ? अथवा कुटिल नीतिमें कुशल चित्तवालोंको सन्तानस्नेह कैसे होगा ? यह तात्पर्य है कि राजाके क्रीडासहचर माननीय नन्दनजी कन्यादानसे मित्र हों ॥ ७ ॥

मालती—( स्वगतम् ) राजाराधनं खलु तातस्य गुरुकम्, न पुनर्मालती। ( राश्राराहणं क्खु तादस्स गुरुश्रं, ण उण मालदी। )

लवङ्गिका—यथा भगवत्याज्ञापयति न तत्तथैव। अन्यथा तस्मिन्वरे दुर्दर्शनेऽतिक्रान्तयौवने किमिति न विचारितममात्येन। ( जहा भश्रवदी श्राणवेदि तं तह जेव्व। श्रण्णहा तस्सिं वरे दुद्दंसणे श्रदिक्कन्दजोव्वणे किं ति ण विश्रारिदं श्रमच्चेण। (

मालती—( स्वगतम् ) हा, हतास्मि समुपस्थितानर्थवज्रपतना मन्दभागिनी। ( हा, हदम्हि समुपत्थिदाणत्थवज्जपडणा मन्दभाइणी। )

---

मालतीति। राजाऽऽराधनं=राज्ञः ( नृपस्य ) आराधनं ( प्रीतिसंसाधनम् )। तातस्य=पितुः, गुरुकं=महत्, मालती=स्वकुमारी, न=न गुरुका, नो चेन्मदुपहारेण कथं राजप्रीतिः संसाध्येतेति भावः।

लवङ्गिकेति। यथा भगवती आज्ञापयति=प्रतिपादयति, 'कुतोऽपत्यस्नेह' इत्यादीति भावः। तत्=आज्ञापनं, तथैव=सत्यमेव। अन्यथा=एतदभावश्चेत्तर्हि। अतिक्रान्तयौवने=व्यतीततारुण्ये, यूनां भावो यौवनं, 'हायनाऽन्तयुवादिभ्योऽण्' इत्यण्। 'अन्' इति अनः प्रकृतिभावत्वाट्टिलोपो न। अतिक्रान्तं यौवनं यस्य, तस्मिन्। अतिक्रान्तयौवनात् दुर्दर्शने=कुरूपे, दुष्टं ( दोषयुक्तम् ) दर्शनं यस्य, तस्मिन्। तस्मिन्=नन्दनरूपे, वरे=उपनेतरि। न विचारितं=नो विमृष्टम्।

मालतीति। समुपस्थिताऽनर्थवज्रपतना=समुपस्थितम् ( संप्राप्तम् ) अनर्थवज्रपतनम् ( अनिष्टकुलिशपातः, नन्दनपरिणयरूप इति भावः ) यस्याः सा। अत एव मन्दभागिनी=मन्दभाग्ययुक्ता, अहमिति शेषः। हताऽस्मि=नष्टप्रायाऽस्मि, मन्दभागिनीत्यत्र मन्दश्चाऽसौ भागः ( भाग्यम् ) मन्दभागः, सोऽस्या अस्तीति 'अत इनिठनौ' इतीनिस्तदन्तात् स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप्। अत्र 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रपत्तिकर' इत्यनुशासनबलात् 'मन्दभागा' इत्यस्य प्राप्तौ कर्मधारयान्मत्वर्थीयाश्रयणं नन्दनपाणिग्रहणाऽनन्तरं स्वमन्दभाग्यस्य नित्यत्वद्योतनाऽर्थमवधेयम्।

---

मालती—( मन ही मन ) राजाका आराधन ही पिताजीको अधिक है, मालती नहीं।

लवङ्गिका—भगवती जो आज्ञा करती हैं, वही है। नहीं तो जवानीके बीतनेसे दुर्दर्शन ( कुरूप ) उस वरमें मन्त्रीजीने क्यों विचार नहीं किया?

मालती—( मन ही मन ) हाय? अनिष्ट वज्रपातके उपस्थित होनेसे मन्दभाग्यवाली मैं, नष्टप्राय हो गई हूँ।

लवङ्गिका—तत्प्रसीद । भगवति, परित्रायस्वास्माज्जीवन्मरणात्प्रियसखीम् । तवाऽप्येषा दुहितैव । ( ता पसीद । भअवदि, परित्ताहि एत्तो जीवन्दमरणादो पिअसहिं । तुह वि एसा दुहिदा जेव्व । )

कामन्दकी—अयि सरले, किमत्र भगवत्या शक्यम् । प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवं च । यच्च किल कौशिकी शकुन्तला दुष्यन्तमप्सराः पुरूरवसं चकमे उर्वशीत्याख्यानविद आचक्षते, वासवदत्ता च

लवङ्गिकेति । प्रसीद=अनुगृहाण, जीवन्मरणात्=जीवन्मरणसदृशात्, नन्दनपाणिग्रहणादिति भावः । परित्रायस्व = परिपालय, परिपूर्वकात् 'त्रैङ् पालन' इति धातोर्लोट्, 'सवाभ्यां वाऽमौ' इत्यतो वभावः । तवाऽपि = भवत्या अपि, एषा = मालती, दुहितैव = पुत्र्येव, मातृसदृशत्वात्त्वमपि एतामभीष्टाय वराय दातुमीशिष इति भावः ।

कामन्दकीति । सरले = ऋजुस्वभावे !, अत्र = अस्मिन्विषये, भगवत्या=त्वत्प्रार्थितया मयेति शेषः । किं शक्यं=कर्तुमिति शेषः । 'किमत्रभवत्या मया शक्यं कर्तुम्' इति पाठे अत्रभवत्याः = लावण्यगुणगणादिना पूज्यायाः, मालत्या इत्यर्थः । मालतीविषय आत्मशक्त्यभावं प्रतिपादयति—प्रभवतीति । कुमारीणां = कन्यानां, जनयिता = पिता, दैवं च भाग्यं च प्रभवति = परिणयादिकं सम्पादयितुं शक्नोति, जनकमप्युल्लङ्घ्य कुमारीणां परिणयादिकं दैवमेव सम्पादयति नाऽन्यः कोऽपीति भावः । दैवाऽऽनुकूल्यमस्ति चेन्मया नोपेक्ष्यत इति निगूढं तात्पर्यम् । कौशिकी = कौशिकसुता, विश्वामित्रकुमारीति भावः । कुशिकस्याऽपत्यं पुमान् कौशिकः 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चे'त्यण्, 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धिः । कौशिकस्याऽपत्यं स्त्री कौशिकी 'तस्याऽपत्यम्' इत्यण्, 'टिड्ढाणञ्'त्यादिना ङीप् । मेनकायां विश्वामित्रेणोत्पादिता शकुन्तला तारुण्ये दुष्यन्तं पतित्वेन वृतवतीति महाभारतीया कथाऽनुसन्धेया । पुरूरवसं=पुरूरवोनामकंचन्द्रपौत्रं राजानम्, अप्सराः उर्वशी=उर्वशीनाम्नी देवाऽङ्गना । चकमे=इयेष, जनयितारमनपेक्ष्यैवाऽऽनुकूल्येनेति भावः । 'कमु कान्तौ' इति धातोः 'आयादय आर्धधातुके वा' इति आयादेशाऽभावपक्षे लिटि रूपम् ।

लवङ्गिका—इस कारणसे अनुग्रह कीजिए । भगवति ! इस जीवन्मरणसे प्रियसखीकी रक्षा कीजिए । यह आपकी भी पुत्री ही है ।

कामन्दकी—अरी सरल स्वभाववाली ! इसमें भगवतीसे क्या किया जा सकता है ? पिता और भाग्य ही प्रायः कुमारियोंका विवाह आदिका सम्पादन कर सकते हैं । जो कि विश्वामित्र-कुमारी शकुन्तलाने दुष्यन्तकी और उर्वशी नामकी अप्सराने पुरुरवाकी कामनाकी ऐसा वचन आख्यानके जानकर कहते हैं । वासव-

पिता संजयाय राज्ञे दत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि, तदपि साहसकल्पमित्यनुपदेष्टव्यमेव । सर्वथा ।

राज्ञः प्रियाय सुहृदे सचिवाय कार्या-

आख्यानविदः = पुरावृत्तवेत्तारः, आचक्षते = कथयन्ति, आङ्पूर्वात् 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' इति धातोर्लट् । इहाऽऽख्याननामा नाट्याऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—'आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः' इति । इत्थमेव निदर्शननामा नाट्यालङ्कारोऽपि । तदपि यथा—

'कथनादन्यचेष्टानां साध्यसिद्धिर्निदर्शनम् ।' इति ।

दत्तं = प्रतिपादितं, वाचेति शेषः । प्रायच्छत् = दत्तवती, इत्यादि = आख्यानविद आचक्षत इति शेषः । साहसकल्पं = दुष्करकर्मसदृशम्, स्वाभाविकरूपेण मातापित्रधीनायाः कुमार्याः कृते दुष्करमिति भावः । ईषदसमाप्तं 'साहसं साहसकल्पम्, 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इति कल्पप्प्रत्ययः । 'साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि । अविमृश्यकृतौ धार्ष्ट्ये' इति हैमः । 'साहसिक्यम्' इति पाठे साहसेन चरतीति साहसिकः, 'चरती'ति ठञ् 'ठस्येक' इति ठस्येकत्वम् । साहसिकस्य कर्म साहसिक्यं = साहसिककर्मेत्यर्थः । 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' तिष्यञ् । इति = अनेन कारणेन, अनुपदेष्टव्यम् = उपदेशाऽनर्हम्, शास्त्रलोकप्रसिद्ध्यादिभिर्यन्निवेदितं, तत्र स्वजीवितरक्षणाऽर्थं यदि मालत्या साहसिक्यार्थं प्रयत्यते तर्हि अस्माभिरपि साहाय्यं कर्तुं शक्यं, कर्तव्यत्वेनोपदेष्टुं तु अशक्यमिति भावः । अत्र कल्पप्प्रत्ययेन साहसिक्यमपि कर्तव्यमिति ध्वनितम् ।

राज्ञ इति । अमात्यो राज्ञः प्रियाय सुहृदे सचिवाय कार्यात् आत्मजां दत्त्वा निर्वृतिमान् भवतु । दुर्दर्शनेन धूमग्रहेण विमला शशिनः कला इव इयम् अपि (दुर्दर्शनेन) अनेन घटताम् इत्यन्वयः । अमात्यः = सचिवः, भूरिवसुरित्यर्थः । राज्ञः = नृपस्य, प्रियाय = वल्लभाय, प्रियलक्षणं यथा भावप्रकाशे—

'सत्यवागार्जवरतिरुपकुर्वन्प्रियं वदन् ।
भजते यः स्वयं प्रीतिं प्रियः स परिकीर्तितः ॥' इति ।

सुहृदे = सौहार्दशालिने, सुहृल्लक्षणं च तत्रैव यथा—

'दुःखे विपदि संमोहे कार्यकालाऽत्ययेऽपि च ।
हिताऽन्वेषी च हितकृद्यः सुहृत्सोऽभिधीयते ॥' इति ।

दत्ताने भी पितासे राजा संजयको वचनसे समर्पित अपनेको उदयनको सौंप दिया इत्यादि, वह भी साहसके सदृश है । उसका भी उपदेश नहीं देना चाहिए । सब प्रकारसे—

मन्त्रीजी ( भूरिवसु ) राजाके प्रिय मित्र मन्त्री ( नन्दन ) को कार्यके उद्देश्यसे

दत्त्वात्मजां भवतु निर्वृतिमानमात्यः ।
दुर्दर्शनेन घटतामियमध्यनेन
धूमग्रहेण विमला शशिनः कलेव ॥ ८ ॥

मालती—( स्वगतम् ) हा तात, त्वमपि मम नामैवमिति जितं भोगतृष्णया । ( हा ताद, तुमं वि मम णाम एव्वं त्ति जिदं भोगतिण्हाए । )

अवलोकिता—चिरायितं भगवत्या । ननु भणाम्यस्वस्थचित्तो महाभागो

---

शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत्, तस्मै 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः' इति हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सचिवाय = अमात्याय, नन्दनायेत्यर्थः । कार्यात् = किञ्चित्कार्यमुद्दिश्य, 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे चे'ति ल्यब्लोपे पञ्चमी । राज्ञः प्रीतिसम्पादनाऽर्थमिति भावः । आत्मजां = कन्यां, मालतीमिति भावः । दत्त्वा=वितीर्य, निर्वृतिमान्= सुखसम्पन्नः, भवतु = भवेत्, राज्ञः प्रतीतिजननान्मित्रोपार्जनाच्चेति भावः । दुर्दर्शनेन = दुष्टं ( दोषयुक्तम् ) दर्शनं ( विलोकनम् ) यस्य, तेन, पीडाकारित्वादिति भावः । धूमग्रहेण = धूमकेतुनाम्ना, उत्पातसूचकेन ग्रहेण धूमकेतुर्ग्रहो धूमग्रहस्तेन 'विनाऽपि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्य' इति न्यायेनोत्तरपदलोपः । विमला= निर्मला, शशिनः = चन्द्रमसः, कला इव = षोडशो भाग इव, इयम् अपि = मालती अपि, दुर्दर्शनेन = अनिष्टदर्शनेन, वार्धक्येन कुरूपत्वादिति भावः । अनेन=नन्दनेन सचिवेन, घटतां = संसृज्यताम्, नियतिगतेरलङ्घनीयत्वादिति भावः । अत्र क्रियासमुच्चयस्योपमायाश्चाऽङ्गाङ्गित्वेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

मालतीति । त्वमपि = अपत्यवत्सलो विवेकी चेति भावः । मम = प्रियदुहितुः । एवम् = एतादृशः, जीवितनिरपेक्ष इति भावः । भोगतृष्णया = सुखाऽनुभवस्पृहया, जितं = सर्वोत्कृष्टत्वेन स्थितमिति भावः । भवादृशोऽपत्यवत्सलो विवेकसम्पन्नश्च एतादृशं जघन्यं कर्माऽनुष्ठातुं व्यापृतो यदि तर्हि भोगतृष्णा कमपरं जनं स्वाऽधीनं न कुर्यादिति भावः ।

अवलोकितेति । चिरायितं = विलम्ब आचरितः । अस्वस्थचित्तः=असुस्थमानसः, अतस्त्वरितं गन्तव्यमिति शेषः ।

---

कन्यादान कर सुखी हों । दोषयुक्त दर्शनवाले धूमकेतु ग्रहसे निर्मल चन्द्रकलाके सदृश यह ( मालती ) भी अनिष्ट दर्शनवाले इन ( नन्दन ) से सम्बद्ध हों ॥ ८ ॥

मालती--( मन ही मन ) हा पिताजी ? आप भी इस प्रकारसे मेरे जीवनमें निरपेक्ष हैं, भोगतृष्णाने सब प्रकारसे जीत लिया ।

अवलोकिता—भगवतीने विलम्ब किया । मैं कहती हूं कि महाभाग्यसंपन्न माधवजी अस्वस्थचित्त हैं ।

माधव इति । ( चिराइदं भअवदीए । णं भणामि अस्सत्थचित्तो महाभाओ माहवो त्ति । )

कामन्दकी—इदं गम्यते । वत्से, अनुजानीहि माम् ।

लवङ्गिका—( जनान्तिकम् ) सखि मालति, सांप्रतं भगवत्याः सकाशात्तस्य महानुभावस्योद्गमं जानीमः । (सहि मालदि, संपदं भअवदीए सआसादो तस्स महाणुहावस्स उग्गमं जाणीमो । )

मालती—( जनान्तिकम् ) अस्ति मे कौतूहलम् । ( अत्थि मे कोदूहलम् । )

लवङ्गिका—( प्रकाशम् ) क एष माधवो नाम, यस्मिन्भगवत्येवं स्नेहगुरुकमात्मानं धारयति । ( को एसो माहवो णाम, जस्सिं भअवदी एव्वं सिणेहगुरुअं अत्ताणं धारेदि ।

---

कामन्दकीति । इदम् = एतत्, गमनक्रियाविशेषणमिदम् । वत्से = हे तनये, अनुजानीहि = अनुज्ञां कुरु, गमनायेति शेषः ।

लवङ्गिकेति । जनान्तिकं = यथाऽन्ये न शृणुयुस्तथेति वचनक्रियाविशेषणम् । जनान्तिकलक्षणं यथाऽऽह भरतमुनिः—

'उक्तस्याऽश्रवणं कार्यात्पार्श्वस्थैः स्याजनान्तिकम् ।' इति ॥

सकाशात्=समीपात् । उद्गमम्=उत्पत्तिम् । मालत्याकाङ्क्षोपशमनार्थमियमुक्तिः ।

मालतीति । अत्र 'जनाऽन्तिकम्' इत्यस्य स्थाने पुस्तकान्तरे 'अपवार्ये'ति पाठस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'तद्भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ।' इति ।

लवङ्गिकेति । प्रकाशं = सर्वश्राव्यं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । 'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्' इति तल्लक्षणम् । एवम् = इत्थम् । स्नेहगुरुकं=स्नेहेन ( वात्सल्येन ) गुरुकम् ( भारपूर्णम् ), आत्मानं = चित्तम् । 'आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभावे परमात्मनि । चित्ते धृतौ च बुद्धौ च परव्यावर्तनेऽपि च ॥' इति धरणिः ।

---

कामन्दकी—यह जाती हूं । वत्से ! मुझे आज्ञा दो ।

लवङ्गिका—( केवल मालतीको सुनाकर ) सखि मालति ! इस समय भगवतीसे उन महानुभाव ( माधव ) के जन्मवृत्तान्तको जान लें ।

मालती—( केवल लवङ्गिकाको सुनाकर ) मुझे कौतूहल है ।

लवङ्गिका—( सबको सुनाकर ) ये माधव कौन हैं ? जिनमें भगवती इस प्रकारसे वात्सल्यपूर्ण चित्तको धारण करती हैं ।

कामन्दकी—अप्रस्ताविनी महत्येषा कथा ।

लवङ्गिका—तथाप्याख्याय भगवती प्रसादं करोतु । (तह वि आअक्खिअ भअवदी पसादं करेदु । )

कामन्दकी—श्रूयताम् । अस्ति विदर्भराजस्यामात्यः समग्रपुरुषप्रकाण्डचक्रचूडामणिर्देवरातो नाम । यमशेषभुवनमहनीयपुण्यमहिमानमात्मनः सातीर्थ्यात्पितैव ते जानाति योऽसौ यादृशश्चेति । अपि च ।

व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः

---

कामन्दकीति । अप्रस्ताविनी=प्रस्तावनाऽनुपयुक्ता, पुस्तकान्तरे 'अप्रस्ताविकी'ति पाठस्तत्राऽप्ययमेवाऽर्थः । महती=वक्तव्यस्य बाहुल्याद्विस्तृतेत्यर्थः । अधुना तत्प्रतिपादनस्य प्रसङ्गो नेति भावः ।

लवङ्गिकेति । आख्याय=कथयित्वा, पुस्तकान्तरे 'आचक्खदु' 'आचष्टाम्' इति पाठस्तस्य कथयत्वित्यर्थः । प्रसादम्=अनुग्रहम् । तदाख्यानेनाऽहमनुगृहीता भवेयमिति भावः ।

कामन्दकीति । विदर्भराजस्य=कुण्डिननगरनृपस्य विदर्भदेशस्य हिन्दीभाषायाम् 'बरार' इति संज्ञा । 'विदर्भाऽधिपतेः' इति पुस्तकान्तरपाठः । समग्रपुरुषप्रकाण्डचक्रचूडामणिः=समग्रं ( संपूर्णम् ) यत् पुरुषप्रकाण्डचक्रं ( नरश्रेष्ठसमूहः ) तस्य चूडामणिः ( शिरोरत्नस्थानीयः ) । अत्र पुस्तकान्तरे समग्रपदोत्तरं 'धुर्य'पदपाठस्तस्य धुरन्धर इत्यर्थः । अशेषभुवनमहनीयपुण्यमहिमानं=अशेषभुवनेन ( सर्वलोकेन ) महनीयः ( पूजनीयः ) पुण्यमहिमा ( पवित्रमहत्त्वम् ) यस्य, तम् । आत्मनः=स्वस्य, सातीर्थ्यात्=एकगुरुत्वात्, समाने तीर्थे ( गुरौ ) वसतीति सतीर्थ्यः, 'समानतीर्थे वासी'ति यत्प्रत्ययः, 'तीर्थे ये' इति समानस्य सभावः । 'सतीर्थ्यास्त्वेकगुरवः' इत्यमरः । सतीर्थ्यस्य भावः सातीर्थ्यं, तस्मात् । एकस्मिन्गुरौ सहाऽध्येतृत्वादिति भावः । ते=तव ।

व्यतिकरितेति । श्वेतमानैः यशोभिः व्यतिकरितदिगन्ताः सुकृतविलसितानाम्

---

कामन्दकी— यह लम्बी कहानी है और अवसरके उपयुक्त नहीं है ।

लवङ्गिका—तो भी कह कर भगवती अनुग्रह करें ।

कामन्दकी—सुनो । विदर्भराजके मन्त्री संपूर्ण श्रेष्ठ मनुष्योंके शिरोभूषण स्वरूप देवरात नामके हैं । सब लोगोंसे पूजनीय पुण्य महिमावाले जिनको एक ही गुरुसे पढ़नेके कारण तुम्हारे पिताजी ही वे जो हैं और जैसे हैं जानते हैं । फिर भी—

सफेद यशोंसे दिग्भागको व्याप्त करनेवाले, धर्मविलासोंके और बलसम्पकेर्षों

सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अगणितमहिमानः केतनं मङ्गलानां
कथमिव भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति ॥ ९ ॥

मालती—( सहर्षम् ) सखि, तं खलु भगवत्या गृहीतनामधेयं सर्वथा तातः स्मरति । ( सहि, तं क्खु भअवदीए गहीदणामहेअं सव्वहा तादो सुमरेदि । )

---

ऊर्जस्वलानां ( च ) स्थानम् अगणितमहिमानो मङ्गलानां केतनं तादृशा अस्मिन् भुवने कथमिव संभवन्तीत्यन्वयः । श्वेतमानैः=श्वेतन्त इति श्वेतमानानि, तैः शुक्लीभवद्भिरित्यर्थः । 'श्विता वर्णे' इति धातोर्लटः शानच्, वर्तमाननिर्देशेन तेषामभिनवयशोयोगित्वमुक्तम् । यशोभिः=कीर्तिभिः, व्यतिकरितदिगन्ताः=व्यतिकरो व्याप्तिः, व्यतिकरः संजातो येषां ते व्यतिकरिताः, व्याप्ता इत्यर्थः, 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्प्रत्ययः । व्यतिकरिता दिगन्ता यैस्ते, शुभ्रयशोभिर्व्याप्तदिग्भागा इति भावः । सुकृतविलसितानां=धर्मविलासानाम्, ऊर्जस्वलानां च=अतिशयितम् ऊर्जोऽस्त्येषां ते ऊर्जस्वलास्तेषाम्, अतिशयबलयुक्तानां, माधवसदृशानां बलवतामिति भावः । 'ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः' इति ऊर्जसो वलच्प्रत्ययाऽन्तो निपातः । 'ऊर्जस्वलः स्यादूर्जस्वी य ऊर्जोऽतिशयाऽन्वितः ।' इत्यमरः । स्थानम्=उत्पत्तिस्थानम्, एतेन सहजशूरो माधव इति भावः । अगणितमहिमानः=अपरिमितमहत्त्वयुक्ताः । महतो भावो महिमा, 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इतीमनिच्प्रत्ययः । अगणितो महिमा येषां ते । 'अकलितमहिमान' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्राऽप्ययमेवार्थः । मङ्गलानाम्=अभ्युदयानां, केतनं=चिह्नं, तादृशाः=पूर्वोक्तगुणगणविशिष्टाः पुरुषाः, देवरातसदृशा इति भावः । अस्मिन्=एतस्मिन्, भुवने=नरलोके, इत्यर्थः । कथमिव=केन प्रकारेण, संभवन्ति=उत्पद्यन्ते, 'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।' इति नयात्, एतादृशपुरुषाणां दौर्लभ्यं प्रतीयते । बहुवचनं द्विवचनस्याऽप्युपलक्षणम्, अतोऽसाधारणोऽयं सचिवप्रवरो देवरात इति भावः । अत्र देवरातस्य प्राधान्यप्रतिपादनरूपस्य कार्यस्य बहूनां साधकानां सद्भावात्समुच्चयाऽलङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥

मालतीति । गृहीतनामधेयं=नामैव नामधेयं, 'वा भागरूपनामभ्यो धेय' इति

---

भी उत्पत्तिस्थान, अपरिमित महत्त्वसे संयुक्त और मङ्गलोंके चिह्नस्वरूप देवरातके सदृश मनुष्य इस लोकमें कैसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

मालती—( हर्षके साथ ) भगवतीसे नाम ग्रहण किये गये उन ( देवरात ) को पिताजी सर्वथा स्मरण करते हैं ।

लवङ्गिका—सखि, समं किल भगवत्या गुरुसकाशाद्विद्याधिगमः कृत इति तत्कालवेदिनो मन्त्रयन्ते। ( सहि, समं किल भअवदीए गुरुसआसादो विज्जाहिगमो किदो त्ति तक्कालवेदिणो मन्तअन्दि। )

कामन्दकी—

तत उदयगिरेरिवैक एष स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान्।
इह जगति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥१०॥

---

स्वाऽर्थे धेयप्रत्ययः। गृहीतं नामधेयं यस्य तम् उच्चारितनामानमित्यर्थः। तं=देवरातमिति भावः। मालत्या देवरातनामाऽग्रहणं च श्वशुरत्वेनाऽङ्गीकारात्, श्वशुरस्य च गुरुत्वात् तथा च स्मृतिवाक्यम्—

'आत्मनाम गुरोर्नाम नामाऽतिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठाऽपत्यकलत्रयोः॥' इति।

लवङ्गिकेति। समं=सह, देवरातभूरिवसुभ्यामिति शेषः। गुरुसकाशात=आचार्यसमीपात्, तत्कालवेदिनः=तत्समयज्ञातारः, मन्त्रयन्ते=कर्णाकर्णिकया वदन्ति, 'मन्त्रि—गुप्तपरिभाषण' इति धातोर्लट्।

प्रकृतसिद्ध्यर्थं पितृगुणानुक्त्वा नायकगुणानाह—तत इति।

उदयगिरेरिव ततः एकः स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान् इह जगति नयनवतां महोत्सवस्य हेतुः एष बालचन्द्र उदियायेत्यन्वयः। उदयगिरेरिव=उदयपर्वतादिव, ततः=तस्मात्, देवरातादिति भावः। 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्प्रत्ययः। एकः=अद्वितीयः, स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः=स्फुरिता (प्रकाशिता) गुणानां (दयादाक्षिण्यादीनाम्) द्युतिः (कान्तिः) यस्य सः, स चाऽसौ सुन्दरः (मनोरमः) कलावान्=नृत्यगीतवादित्रादिचतुःषष्टिकलासम्पन्नः, चन्द्रपक्षे षोडशकलोपेत इत्यर्थः। इह=अस्मिन्, जगति=लोके, नयनवतां=लोचनशालिनां, चक्षुष्मन्मात्रस्य सर्वस्याऽपि प्राणिजातस्येति भावः। महोत्सवस्य=महाक्षणस्य, हेतुः=कारणम्, एषः=बुद्ध्युपारूढत्वेन अतिसमीपतरवर्तित्वात् अयम्, कुत्रचित् 'एवे'ति पाठः। बालचन्द्रः=बालचन्द्र इव, शिशुशशी, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः। उदियाय=उत्पन्नः। अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥१०॥

---

लवङ्गिका—भगवतीने भूरिवसु और देवरातके साथ गुरुजनसे विद्याग्रहण किया ऐसा उस समयको जाननेवाले आपसमें कहते हैं।

कामन्दकी—उदयपर्वतके सदृश उनसे अद्वितीय गुणोंको प्रकाशित कान्तिसे सुन्दर कलासम्पन्न और इस लोकमें नेत्रसंपन्नोंके महोत्सवके कारण ये बालचन्द्र (चन्द्रतुल्य बाल, माधव) उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

लवङ्गिका—(अपवार्य) अपि नाम माधवो भवेत् । (अवि णाम माहवो हवे)

कामन्दकी—

असौ विद्याशाली शिशुरपि विनिर्गत्य भवना-
दिहायातः संप्रत्यविकलशरच्चन्द्रवदनः ।
यदालोकस्थाने भवति पुरमुन्मादतरलैः
कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव ॥ ११ ॥

---

लवङ्गिकेति । अपिः प्रश्नाऽर्थे । भवेत्=सम्भावनायां लिङ् । कामन्दकीकीर्तितो बालः किं माधवो भवेदिति भावः ।

कामन्दकीति । अविकलशरच्चन्द्रवदनः शिशुरपि विद्याशाली असौ भवनात् विनिर्गत्य सम्प्रति इह आयातः । यदालोकस्थाने पुरम् उन्मादतरलैः नारीणां कटाक्षैः कुवलयितवातायनम् इव भवतीत्यन्वयः । अविकलशरच्चन्द्रवदनः=अविकलः (पूर्णः) यः शरच्चन्द्रः (शारदेन्दुः) स इव वदनं (मुखम्) यस्य सः पूर्णमण्डलशारदेन्दुमुख इत्यर्थः । शिशुरपि=बालोऽपि, विद्याशाली=विद्याभिः (वेदादिभिः) शाडते डलयोरभेदात् शालते तच्छीलः, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति ताच्छील्ये णिनिः । क्वचित् 'विद्याधार' इति पाठस्तस्य वेदाऽऽदिविद्याऽऽश्रय इत्यर्थः । असौ=देवरातनन्दनः, भवनात्=गृहात्, विनिर्गत्य=बहिर्भूय, सम्प्रति=अधुना, इह=अस्मिन्, नगर इति शेषः । यदालोकस्थाने=यस्य (देवरातनन्दनस्य) आलोकस्थाने (दर्शनदेशे), यत्र स्थित्वा सोऽवलोक्यते तत्रेति भावः । 'आलोकौ दर्शनद्योतौ' इत्यमरः । पुरं=नगरम्, उन्मादतरलैः=कामाऽऽवेशचञ्चलैरिति भावः । नारीणां=योषितां, कटाक्षैः=अपाङ्गदर्शनैः, कुवलयितवातायनम् इव=कुवलयितानि (सञ्जातकुवलयानि) वातायनानि (गवाक्षाः) यस्मिंस्तत् इव, भवति=सम्पद्यते, यदाऽयं रथ्यायां निर्गच्छति तदा कामावेशचञ्चला युवतयो वातायनेनैनं पश्यन्ति वातायनं तन्नयनैः सञ्जातनीलकमलमिव लक्ष्यत इत्यभिप्रायः । अत्र 'अविकलशरच्चन्द्रवदन' इत्यत्र लुप्तोपमा 'कुवलयितवातायनमिवे' त्यत्रोत्प्रेक्षा चेत्यनयोर्द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ११ ॥

---

लवङ्गिका—(केवल मालतीको सुनाकर) ये क्या माधवजी होंगे ?

कामन्दकी—शरत् ऋतुके पूर्णचन्द्रतुल्य मुखवाले बाल्यावस्थामें भी विद्याशाली ये (माधव) भवनसे निकलकर इस समय यहां आये हुए हैं । जिनके दर्शनयोग्य स्थानमें नगर, उन्मादसे चञ्चल सुन्दरियोंके कटाक्षोंसे नीलकमलोंसे युक्त वातायनोंसे संपन्नके सदृश होता है ॥ ११ ॥

तदत्र च बालसुहृदा मकरन्देन सह विद्यामान्वीक्षिकीमधीते। स एष माधवो नाम।

मालती—( सानन्दं जनान्तिकम् )सखि लवङ्गिके, श्रुतं महाकुलप्रसूतो महाभाग इति! ( सहि लवङ्गिए, सुदं महाउलप्पसूदो महाभाओ त्ति। )

लवङ्गिका—( जनान्तिकम् ) सखि, कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गमः। ( सहि, कुदो वा महोदहिं वज्जिअ पारिजाअस्स उग्गमो। )

( नेपथ्ये शङ्खध्वनिः )

कामन्दकी—अहो कालातिपातः। संप्रति हि—

क्षिपन्निद्रामुद्रां मदनकलहच्छेदसुभगा-

---

तदत्रेति। आन्वीक्षिकीम्=अनु ( वेदार्थश्रवणोत्तरम् ) ईक्षणम् ( परीक्षणम् ) अन्वीक्षा। अन्वीक्षा प्रयोजनमस्याः सा आन्वीक्षिकी, 'प्रयोजनम्' इति ठक्। प्रत्यक्षाऽऽगमाऽऽश्रितमनुमानं साऽन्वीक्षा, यद्वा प्रत्यक्षाऽऽगमाभ्यामीक्षितस्याऽन्वीक्षणमन्वीक्षा; तया प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् इति वात्स्यायनः। 'आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्तर्कविद्याऽर्थशास्त्रयोः।' इत्यमरः।

लवङ्गिकेति। उद्गमः=आविर्भावः। यथा पारिजातो महोदधेः समुत्पन्नस्तथैव माधवोऽपि महाकुलादेवोत्पत्तुमर्हतीति भावः।

कामन्दकीति। कालाऽतिपातः=समयक्षेपः, वार्तालापव्यग्रत्वेनाऽतिक्रान्तः कालो नो विचारित इति भावः।

क्षिपन्निति। असौ अनिभृतः सन्ध्याशङ्खध्वनिः प्रथमतः उपात्तोत्कम्पानां विहगमिथुनानां मदनकलहच्छेदसुभगां निद्रामुद्रां क्षिपन् अलघुषु सौधानां निकुञ्जेषु घनतां दधानः खे विचरति इत्यन्वयः। असौ=श्रवणगोचरः, अनिभृतः=

---

इसलिए यहाँ पर बाल्यावस्थाके मित्र मकरन्दके साथ वे न्यायशास्त्रका अध्ययन कर रहे हैं। ये वही माधव हैं।

मालती—(आनन्दपूर्वक और केवल लवङ्गिकाको सुनाकर) सखि लवङ्गिके! सुना गया है कि महाभाग महाकुलमें उत्पन्न हुए हैं।

लवङ्गिका—( केवल मालतीको सुनाकर ) समुद्रको छोड़कर पारिजातकी कहाँसे उत्पत्ति हो सकती है?

कामन्दकी—अहो! समय बीत रहा है। इस समय यह अमन्द सन्ध्याकालकी शङ्खध्वनि पहले ही कम्पित होनेवाले चकवाकदम्पतियोंकी सुरतक्रीडाकी

अन्ध्या

सुपात्तोत्कम्पानां विहगमिथुनानां प्रथमतः ।
दधानः सौधानामलघुषु निकुञ्जेषु घनता-
मसौ संध्याशङ्खध्वनिरनिभृतः खे विचरति ॥ १२ ॥

वत्से, सुखं स्थीयताम् । ( इत्युत्तिष्ठति । )

मालती—( अपवार्य ) कथमुपहारीकृतास्मि राज्ञस्तातेन । राजाराधनं खलु तातस्य गुरुकम् , न पुनर्मालती । ( सास्रम् ) हा तात, त्वामपि मम नामैवमिति सर्वथा जितं भोगतृष्णया । ( सानन्दम् ) कथं महाकुलप्रसूतः स महाभागः । सुष्ठु भणितं प्रियसख्या कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गम इति । अपि नाम तं पुनरपि प्रेक्षिष्ये । (कहं उवहारीकि-

---

अमन्दः, सन्ध्याशङ्खध्वनिः = सन्ध्यासमयसूचकः कम्बुशब्दः, प्रथमतः = प्राक्, उपात्तोत्कम्पानां = प्राप्तवेपथूनां, रात्रौ जायमानस्य विरहस्य प्रतीतेरिति भावः । 'अवाप्तोत्कण्ठानाम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य प्राप्तौत्सुक्यानामित्यर्थः । विहगमिथुनानां = पक्षिद्वन्द्वानां, चक्रवाकदम्पतीनामिति भावः । मदनकलहच्छेदसुभगां = मदनकलहस्य ( सुरतक्रीडायाः ) छेदः ( निवृत्तिः ), तेन सुभगां ( मनोहराम् ), परिश्रमाऽतिशयनिवर्तकत्वेनेति भावः । क्वचित्तु 'सुभगाम्' इत्यत्र 'सुलभाम्' इति पाठस्तत्र मदनकलहच्छेदेन सुलभां, सुप्राप्याम् इत्यर्थः । निद्रामुद्रां = स्वापाऽवस्थां, क्षिपन् = अपसारयन् , अलघुषु = गुरुतरेषु, सौधानां = राजसदनानां, 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः । निकुञ्जेषु = गह्वरप्रदेशेषु, घनतां = निविडतां, दधानः = धारयन् सन् , खे = आकाशे, विचरति = प्रसरतीत्यर्थः । सायङ्कालिककृत्यस्यावश्यकतयाऽहमितो गमिष्यामीति भावः । अत्रैकस्य शङ्खध्वनेः क्रमेणाऽनेकगत्वात्पर्यायनामाऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—

'क्वचिदेकमनेकस्मिन्ननेकं चैकगं क्रमात् ।
भवति क्रियते वा चेत्तदा पर्याय इष्यते ॥' इति । शिखरिणी वृत्तम् ॥१२॥

मालतीति । अपिः = प्रश्नाऽर्थे । तं = माधवम् । प्रेक्षिष्ये = द्रक्ष्यामि । तस्य महाभागस्य पुनर्दर्शनेन कृताऽर्था भविष्यामीति उत्कण्ठाऽतिशयो व्यज्यते ।

---

निवृत्तिसे मनोहर निद्राकी मुद्राको हटाती हुई राजसदनोंके गुरुतर गह्वरप्रदेशोंमें घनताको धारण करती हुई आकाशमें फैल रही है ॥ १२ ॥

वत्से ! सुखपूर्वक रहो । ( ऐसा कहकर उठती है । )

मालती—( केवल लवङ्गिकाको सुनाकर ) पिताजीने राजाके लिए कैसे मुझको उपहार बनाया । राजाका आराधन ही पिताजीको अधिक है, मालती नहीं ।

दम्हि राइणो तादेण । राआराहणं क्खु तादस्स गुरुअं, ण उण मालदी । हा ताद, तुमं वि मह णाम एव्वं ति सव्वहा जिदं भोअतिण्हाए । कहं महाउलप्पसूदो सो महाभाओ । सुट्ठु भणिदं पिअसहीए कुदो वा महोअहिं वज्जिअ पारिजादस्स उग्गमो त्ति । अवि णाम तं उणो वि पेक्खिस्सं । )

लवङ्गिका—अवलोकिते, इत एतेन संजवनेनावतरावः । ( अवलोइदे, इदो एदिणा संजवणेण ओदरम्ह । )

कामन्दकी—( अपवार्य ) अवलोकिते, साधु संप्रति मया तटस्थयैव मालतीं प्रति निसृष्टार्थदूत्यस्य लघूकृतो भारः । कुतः—

वरेऽन्यस्मिन्दोषः पितरि विचिकित्सा च जनिता

लवङ्गिकेति । इतः = अस्मात् , स्थानादिति शेषः । सञ्जवनेन = चतुःशालेन, अन्योन्याऽभिमुखगृहचतुष्टयेनेति भावः । 'सञ्जवनं त्विदम् । चतुःशालम्' इत्यमरः । 'सोपानेने'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य आरोहणेनेत्यर्थः, 'आरोहणं स्यात्सोपानम्' इत्यमरः।

कामन्दकीति । तटस्थया एव = उदासीनया एव, न तु माधवपक्षपातेनेति भावः । निसृष्टाऽर्थदूत्यस्य=निसृष्टाऽर्थदूतीजनकृत्यस्य, दूतस्य भावो दूत्यं 'दूतवणिग्भ्यां चे'ति यप्रत्ययः । 'निसृष्टाऽर्थदूतीकल्पस्तन्त्रयितव्य' इति प्रयुक्तं प्राक् तथाविधदूत्यस्येति भावः । लघूकृतः अल्पीकृतः, माधवे मालत्या अनुरागाऽतिशयोत्पादनादिति शेषः । अधिकतरः कर्तव्यांऽशः साधित इति भावः ।

भारलघूकरणप्रकारमाह—वर इति । अन्यस्मिन् वरे दोषः, पितरि विचिकित्सा च जनिता । पुरावृत्तोद्गारैः अपि कार्यपदवी कथिता । प्रसङ्गात् वत्सस्य यत् अभिजनतो यच्च गुणतो माहाभाग्यं ( तत् ) स्तुतम् । अथ परिचयो विधेयः खल्विति अन्वयः । अन्यस्मिन् = इतरस्मिन्, वरे = उपनेतरि, नन्दन इत्यर्थः । दोषः = दूषणं,

( आँखोंमें आँसू भरकर ) हा पिताजी ! आप भी इस प्रकारसे मेरे जीवनमें निरपेक्ष हैं भोग-तृष्णाने सब प्रकारसे जीत लिया । ( आनन्दके साथ ) कैसे वे महाभाग महाकुलमें उत्पन्न हुए हैं । प्रियसखीने यह उत्तम कहा है कि 'समुद्रको छोड़कर पारिजातकी कहाँसे उत्पत्ति हो सकती है?' क्या मैं उनको फिर देखूंगी ?

लवङ्गिका—अवलोकिते ! इस स्थानसे परस्पर सम्मुख इन चार भवनोंसे हमलोग उतरें ।

कामन्दकी—( केवल अवलोकिताको सुनाकर ) अवलोकिते ! इस समय मैंने तटस्थ होकर ही मालतीके प्रति निसृष्टार्थ दूतीके कर्मका भार हलका कर दिया। क्योंकि—

दूसरे वर ( नन्दन ) में दोष और पिता ( भूरिवसु ) में सन्देह उत्पन्न किया।

पुरावृत्तोद्गारैरपि च कथिता कार्यपदवी।
स्तुतं माहाभाग्यं यदभिजनतो यच्च गुणतः
प्रसङ्गाद्वत्सस्येत्यथ खलु विधेयः परिचयः ॥ १२ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे द्वितीयोऽङ्कः।

---

जनित इति शेषः। 'द्वेष' इति पाठे अप्रीतिरित्यर्थः। पितरि=जनके, भूरिवसाविित्यर्थः। विचिकित्सा च=सन्देहश्च, 'विचिकित्सा तु संशयः' इत्यमरः। मत्पिता स्वहितं लक्ष्यीकृत्य मत्कल्याणमुपेक्ष्य राजाऽऽदेशाऽनुसरणेन मां नन्दनाय प्रतिपादयेदथवाऽपत्यवात्सल्येन मदीयहिताऽभिलाषमपेक्ष्य माधवाय मां दद्यादितीदृशी विचिकित्सेति भावः। जनिता=उत्पादिता, मयेति शेषः। पुरावृत्तोद्गारैरपि=शकुन्तलाद्युपाख्यानेतिहासोद्घाटनैरपि, कार्यपदवी=कृत्यसरणिः, कथिता=प्रतिपादिता, प्राप्ततारुण्याभिः कुमारीभिः स्वयमपि स्वाऽनुरूपो वरो वरणीय इति कार्यमार्गोऽप्यभिहित इति भावः। प्रसङ्गात्=अवसरात्, लवङ्गिकाजिज्ञासाऽवसरादिति भावः। वत्सस्य=वात्सल्यभाजनस्य, माधवस्येति भावः। यत् अभिजनतः=वंशात्, महामात्यदेवरातप्रसूतेरिति भावः। यच्च गुणतः=विद्यासौन्दर्यचरित्रादेरिति भावः। माहाभाग्यं=महाभागधेयत्वं, महान् भागः ( भाग्यम् ) यस्य स महाभागः, तस्य भावो माहाभाग्यं, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्। तदपीति शेषः, स्तुतं=प्रशंसितम्। अथ=अनन्तरम्, एकत्कार्यादिति शेषः। परिचयः=संस्तवः, मालतीमाधवयोर्मिथ इति शेषः। विधेयः=अनुष्ठेयः, अस्माभिरिति शेषः, एतावन्मात्रं कार्यमवशिष्टमिति भावः। अत्र श्लोके कामन्दक्या वात्स्यायनकामशास्त्राऽभिज्ञत्वं प्रतीयते। अत्र भारलघूकरणकार्ये बहूनां कारणानामुपस्थापनात्समुच्चयोऽलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ १२ ॥

इतीति। सर्वे=सकलाः, जना इति शेषः।

इति श्रीशेषराजशर्मकृतमालतीमाधवव्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः।



---

शकुन्तला आदियोंके इतिहासके उद्घाटनोंसे भी कार्यपद्धति बतलाई। प्रसङ्गसे वात्सल्यपात्र माधवके वंश और गुणोंसे महाभाग्यताकी भी प्रशंसा की। अब इन दोनों ( मालती और माधव ) में परिचय कराना बाकी रह गया है ॥ १२ ॥

( अनन्तर सब वहाँसे निकलते हैं। )

इति द्वितीय अङ्क।

# तृतीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति बुद्धरक्षिता )

बुद्धरक्षिता—( परिक्रम्य आकाशे ) अवलोकिते, अपि जानासि क भगवती। ( अवलोइदे, अवि जाणासि कहिं भअवदी। )

अवलोकिता—( प्रविश्य ) बुद्धरक्षिते, किं प्रमुग्धासि। यः कोऽपि कालो भगवत्याः पिण्डपारणवेलां विसृज्य मालतीमनुवर्तमानायाः। ( बुद्धरक्खिदे, किं पमुद्धासि। जो कोवि कालो भअवदीए पिण्डपारणवेलं विसज्जिअ मालदीं अणुवट्टमाणाए। )

बुद्धरक्षिता—हुं, त्वं पुनः क प्रस्थितासि। (हुं, तुमं उण कहिं पत्थिदासि।)

अवलोकिता—अहं खलु भगवत्या माधवसकाशमनुप्रेषिता। संदिष्टं

---

तृतीयाऽङ्कमारभमाणः कविस्तदर्थसूचनार्थं प्रवेशकं प्रस्तौति—तत इत्यादिना।

बुद्धेति। परिक्रम्य = परितः क्रमणं ( पादविक्षेपम् ) कृत्वा। आकाशे = अम्बरे, आकाशं लक्ष्यीकृत्य भाषत इत्यर्थः। आकाशभाषितलक्षणं यथा—

'अप्रविष्टैः सहाऽऽलापो भवेदाकाशभाषितम्।' इति।

अवलोकितेति। प्रमुग्धाऽसि = प्रमोहं प्राप्तवत्यसि। 'विस्मृताऽसी'ति पाठे विस्मृतवतीत्यर्थः, कर्तरि क्तप्रत्ययः। पिण्डपारणवेलां = भोजनसमयं, 'पिण्डपातवेलाम्' इति पुस्तकान्तरपाठेऽप्ययमेवाऽर्थः। विसृज्य = त्यक्त्वा, 'वर्जयित्वे'ति पाठान्तरेऽप्ययमेवाऽर्थः। अनुवर्तमानायाः = अनुसरन्त्याः, भैक्ष्यभोजनकालमपि विहाय मालतीमनुसरन्त्या भगवत्या बहुकालो जात इति भावः।

बुद्धेति। हुमिति स्मरणे।

अवलोकितेति। तस्य = माधवस्य। शङ्करपुरसम्बन्धि = शङ्करस्य ( शिवस्य ) पुरं

---

( तब बुद्धरक्षिता प्रवेश करती है। )

बुद्धरक्षिता—( कुछ पादविक्षेप कर आकाशमें ) अवलोकिते! भगवती कहाँ हैं? जानती हो क्या?

अवलोकिता—( प्रवेश कर ) बुद्धरक्षिते! तुम क्यों मोहको प्राप्त हो गई हो? भोजन समय छोड़कर मालतीका अनुसरण करनेवाली भगवतीका कितना समय बीत गया है।

बुद्धरक्षिता—हाँ, तुम कहाँ चली हो?

अवलोकिता—भगवतीने मुझे माधवके समीप भेजा है। भगवतीने उन्हें

च तस्य शंकरपुरसंबन्धि कुसुमाकरोद्यानं गत्वा कुञ्जनिकुञ्जपर्यन्तरक्ताशोकगहने तिष्ठेति। गतश्च तत्र माधवः। ( अहं खु भअवदीए माहवसआसं अणुप्पेसिदा। संदिट्ठं अ तस्स संकरउरसंबन्धि कुसुमाअरुज्जाणं गडुअ कुञ्जणिउञ्जपेरन्तरत्तासोअगहणे चिट्ठेत्ति। गदो अ तत्थ माहवो। )

वुद्धरक्षिता—अवलोकिते, किमिति माधवस्तत्रानुप्रेषितः। ( अवलोइदे, किं ति माहवो तत्थ अणुप्पेसिदो। )

अवलोकिता—अद्य कृष्णचतुर्दशीति जनन्या समं मालती शंकरपुरं गमिष्यति। तत्र एवं किल सौभाग्यं वर्धत इति देवताऽऽराधननिमित्तं स्वहस्तकुसुमावचयमुद्दिश्य लवङ्गिकाद्वितीयां मालतीं तदेव कुसुमाकरोद्यानमानेष्यति। ततोऽन्योन्यदर्शनं भविष्यतीति। त्वं पुनः क्व प्रस्थितासि। ( अज्ज किसणचउद्दसित्ति जणणीए समं मालदी संकरउरं गमिस्सदि। तदो एव्वं किल सोहग्गं वड्ढदि त्ति देवदाराहणणिमित्तं सहत्थकुसुमावअअं उद्दिसिअ लवङ्गिआदुदीअं मालदीं तं एव्व कुसुमाअरुज्जाणं आणइस्सदि। तदो अण्णोण्णदंसणं हविस्सदि त्ति। तुमं उण कहिं पत्थिदा सि। )

---

( गृहोपरिगृहम् ), तत्सम्बन्धि ( तत्सम्बद्धम् ), 'पुरं शरीरमित्याहुर्गृहोपरिगृहे पुरम्।' इति धरणिः। कुञ्जनिकुञ्जपर्यन्तरक्ताऽशोकगहने=कुञ्जानां ( मालाकुसुमानाम्) यो निकुञ्जः ( लताऽऽदिपिहितस्थानम् ) तस्य पर्यन्ते ( मध्ये ) ये रक्ताऽशोकाः ( अरुणवञ्जुलाः ) तेषां गहने ( वने ), 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्।' इत्यमरः। 'कुञ्ज' स्थाने कुत्रचित् 'कुब्जक' पदपाठस्तत्र कुब्जकाः पुष्पवृक्षविशेषा बोध्याः।

वुद्धेति। किमिति=किमर्थम्, तत्र=तस्मिन्, कुसुमाकरोद्यान इति भावः।

अवलोकितेति। कृष्णचतुर्दशी=कृष्णस्य ( पक्षस्य ) चतुर्दशी। जनन्या='समम्' इति सहाऽर्थकेन पदेन योगे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति तृतीया। स्वहस्तकुसुमाऽवचयम्=

---

सन्देश दिया है कि—'तुम शिवमन्दिरसे सम्बद्ध कुसुमाकर उद्यानमें जाकर मालाके पुष्पोंके लतादिसे आच्छादित स्थानके मध्यमें रक्त अशोकोंके वनमें ठहरो।' माधव भी वहाँ पर गये हुए हैं।

वुद्धरक्षिता—अवलोकिते! माधवजी वहां क्यों भेजे गये हैं?

अवलोकिता—आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है इस कारणसे माताके साथ मालती शिवमन्दिरमें जायेगी। तदनन्तर 'ऐसा करनेसे सौभाग्य बढ़ता है'

बुद्धरक्षिता—अहं खलु शंकरपुरमेव प्रस्थितया प्रियसख्या मदयन्तिकया आमन्त्रिता। अतो भगवत्याः पादवन्दनं कृत्वा तत्रैव गच्छामि। ( अहं क्खु संकरउरं जेव्व पत्थिदाए पिअसहीए मदअन्तिआए आमन्तिदा। अदो भअवदीए पादवन्दणं कदुअ तहिं जेव्व गच्छामि। )

अवलोकिता—त्वं खलु भगवत्या यस्मिन्प्रयोजने नियुक्ता तत्र को वृत्तान्तः। ( तुमं क्खु भअवदीए जस्सिं पओअणे णिउत्ता तत्थ को वुत्तन्तो। )

बुद्धरक्षिता—मया खलु भगवत्याः समादेशेन तासु तासु विस्रम्भकथास्वीदृशस्तादृश इति मकरन्दस्योपरि प्रियसख्या मदयन्तिकायाः परोक्षानुरागस्तथा दूरमारोपितो यथैवमस्या मनोरथोऽपि नाम तं पश्यामीति। ( मए क्खु भअवदीए समादेसेण तासु तासु विस्सम्भकहासु ईरिसो तारिसो त्ति मअरन्दस्स उवरि पिअसहीए मदअन्तिआए परोक्खाणुराओ तहा दूरं आरोविदो जहा से मणोरहो अवि णाम तं पेक्खामि त्ति। )

---

आत्मकरपुष्पाऽवचायम् । ततः=अनन्तरम् , अन्योन्यदर्शनं=परस्पराऽवलोकनं, मालतीमाधवयोरिति शेषः।

बुद्धरक्षितेति। आमन्त्रिता=आहूता।

अवलोकितेति। भगवत्या=कामन्दक्या, यस्मिन्प्रयोजने=यत्राऽर्थे, मदयन्तिकामकरन्दयोः संघटनरूप इति भावः।

बुद्धरक्षितेति। विस्रम्भकथासु=विश्वासयुक्ताऽऽलापेषु, ईदृशः=एतादृशः, शौर्योदार्यधैर्यादिसमन्वित इति भावः। तादृशः=तत्सदृशः, मन्मथसदृश इति तात्पर्यम्।

---

इसलिए देवताके आराधनके निमित्त अपने हाथसे फूल तोड़नेका उद्देश्यकर लवङ्गिकाके साथ मालतीको उसी कुसुमाकर उद्यानमें भगवती ले आयेंगी। तब उन लोगोंका ( मालती और माधवका ) परस्परमें दर्शन होगा। तुम कहाँ चली हो?

बुद्धरक्षिता—मुझे शिवमन्दिरमें ही जानेवाली प्रियसखी मदयन्तिकाने बुलाया है। इस कारणसे भगवतीका चरणवन्दन कर वहीं पर जारही हूं।

अवलोकिता—तुम्हें भगवती ( कामन्दकी ) ने जिस प्रयोजनमें नियुक्त किया, उसमें क्या खबर है?

बुद्धरक्षिता—मैंने भगवतीकी आज्ञासे उन उन विश्वासपूर्ण वार्तालापोंमें मकरन्दजी ऐसे हैं वैसे हैं इत्यादि कहकर उनपर प्रियसखी मदयन्तिका परोक्ष

अवलोकिता—साधु बुद्धरक्षिते साधु। एहि गच्छावः। ( साहु बुद्धरक्खिदे, साहु। एहि गच्छम्ह )।

( इति निष्क्रान्ते )

**प्रवेशकः।**

( प्रविश्य )

कामन्दकी—

**तथा विनयनम्राऽपि मया मालत्युपायतः।**
**नीता कतिपयाहोभिः सखीविस्रम्भसेव्यताम् ॥ १ ॥**

इति = एवम्, अस्याः = मदयन्तिकायाः, मनोरथः = अभिलाषः, तं = मकरन्दम्, पश्यामि = अवलोकयामि।

अवलोकितेति। साधु=समीचीनम्, आचरितमिति शेषः। इतीति। निष्क्रान्ते = निर्गते, द्वे अपीति शेषः। प्रवेशकलक्षणं प्रागेवोक्तम्।

तथेति। तथा विनयनम्रा अपि मालती मया उपायतः कतिपयाहोभिः सखीविस्रम्भसेव्यतां नीतेत्यन्वयः। तथा = तेन प्रकारेण, पुरातनाऽऽचारविधयेति भावः। विनयनम्रा अपि = विनयेन ( गुरुजनोचितभक्तिश्रद्धोपलक्षितेन कुलकुमारीजनोचितस्वभावेन) नम्रा ( अतिशयेनाऽऽवनता ) अपि, मालती=भूरिवसुदुहिता, मया= कामन्दक्या, उपायतः = साधनतः, ते च उपाया यथा—सततंतत्समीपाऽवस्थानं, विदग्धभङ्गया कुन्तलविरचनं, कुचकुड्मलकपोलफलकेषु चित्रपत्रलेखनं, सहाऽऽक्रीडानर्मालापैर्विनोदनम्, अपूर्ववस्तूपहरणम् इत्यादयः। एवमादिभिरुपायैरिति भावः। कतिपयाऽहोभिः = कियद्भिरेव दिनैः, अल्पदिनैरिति तात्पर्यम्। अत्र समासाऽन्तविधे-

अनुरागको उस प्रकारसे दूर तक आरोपिता किया है कि 'उनको मैं देखूंगी' ऐसी मदयन्तिकाकी इच्छा है।

अवलोकिता—वाह बुद्धरक्षिते! वाह!! आओ जायँ।

( दोनों निकलती हैं। )

इति प्रवेशक।

( प्रवेश कर )

कामन्दकी—उस प्रकारसे विनयसे नम्र मालतीको भी मैंने उपायोंसे कतिपय दिनोंसे लवङ्गिका आदि सखियोंके सदृश मेरे प्रति व्यवहार करनेका उपयुक्त बना डाला ॥ १ ॥

संप्रति हि—

व्रजति विरहे वैचित्त्यं नः, प्रसीदति संनिधौ,
रहसि रमते, प्रीत्या वाचं ददात्यनुवर्तते ।
गमनसमये कण्ठे लग्ना निरुध्य निरुध्य मां
सपदि शपथैः प्रत्यावृत्तिं प्रणम्य च याचते ॥ २ ॥

रनित्यत्वात् 'राजाऽहःसखिभ्यष्टच्' इत्यहन्छन्दस्य न टच्। सखीविस्रम्भसेव्यतां=सखीषु ( लवङ्गिकाऽऽदिषु वयस्यासु ) यो विस्रम्भः ( विश्वासः, भयलज्जाशङ्कापरित्यागेन स्वाऽभिप्रायप्रकाशनमिति भावः ), तेन सेव्यताम् ( अनुरञ्जनीयताम् )। नीता=प्रापिता, तेनेयं मदुक्तमाचरिष्यतीति भावः ॥ १ ॥

विस्रम्भमेव दर्शयति—व्रजतीति । ( मालती ) नो विरहे वैचित्त्यं व्रजति, संनिधौ प्रसीदति, रहसि रमते, प्रीत्या वाचं ददाति, अनुवर्तते, गमनसमये कण्ठे लग्ना मां निरुध्य निरुध्य प्रणम्य च शपथैः सपदि प्रत्यावृत्तिं च याचत इत्यन्वयः ( मालती ) नः=अस्माकं, 'अस्मदो द्वयोश्चे' त्येकत्वे विवक्षितेऽस्मदो वहुवचनम् । विरहे=वियोगे, वैचित्त्यं=चित्तवैकल्यं, मनःखेदमित्यर्थः । विगतं चित्तं यस्याः सा विचित्ता, विचित्ताया भावो वैचित्त्यं, ततः ष्यञ्प्रत्ययः । व्रजति=गच्छति, सन्निधौ=सामीप्ये, न इति शेषः । प्रसीदति=प्रसन्ना भवति । रहसि=एकान्ते, रमते=क्रीडति, नर्मरहस्यभाषणादिभिरिति शेषः । प्रीत्या=प्रेम्णा, वाचं=वचनं, ददाति=वितरति, प्रियमेव सर्वदा भाषते न तु अप्रियमिति भावः । 'वाचम्' इत्यत्र 'देयम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य कर्पूरादिकं दातव्यपदार्थमिति भावः । अनुवर्तते=अनुसरति, मदनुकूलाचरणेनेति शेषः । गमनसमये=मम मठाऽऽदौ प्रस्थानसमये, कण्ठे=गले, लग्ना=सक्ता सती, मां=कामन्दकीं, निरुध्य निरुध्य=पुनः पुनर्निरोधं कृत्वा, प्रणम्य च=नमस्कृत्य च शपथैः=यदि त्वं सत्वरं नायास्यसि तर्हि त्वं गुरुहत्यापापभाग्भविष्यसीत्याकारकैर्वचनैः, सपदि=तत्क्षणे, प्रत्यावृत्तिं च=पुनरागमनं च, याचते=प्रार्थयते । अत्र व्रजनाद्यनेकक्रियाणमेककर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारस्तया विस्रम्भं प्रति वहूनां कारणानां प्रतिपादनात्समुच्चयालङ्कारश्चेत्यनयोः सङ्करः । हरिणी वृत्तम् ॥

क्योंकि इस समय—

मालती हमारे विरहमें चित्तविकलताको प्राप्त होती है, सामीप्यमें प्रसन्न होती है, एकान्त में क्रीडा करती है, प्रीतिसे बोलती है, अनुसरण करती है, और गमनके समयमें गलेमें लगकर मुझे बारंबार रोककर प्रणाम करके भी शपथोंसे जल्दी लौटनेकी प्रार्थना भी करती है ॥ २ ॥

इदं च तत्र साधीयः प्रत्याशानिबन्धनम् ।
शाकुन्तलादीनितिहासवादान् प्रस्तावितानन्यपरैर्वचोभिः ।
श्रुत्वा मदुत्सङ्गनिवेशिताङ्गी चिराय चिन्तास्तिमितत्वमेति ॥ २ ॥

तदद्य माधवसमक्षमुपक्रमिष्ये । ( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य । ) वत्से, इत इतः ।

---

इदञ्चेति । इदञ्च = एतच्च, वक्ष्यमाणं चेति भावः । तत्र = तस्मिन् मालतीमाधवयोः सम्मेलनरूपे कार्ये इति भावः । साधीयः = दृढतरं, प्रत्याशानिबन्धनं=प्रत्याशायाः ( सर्वथेयं मदुक्तं करीष्यतीत्येवंरूपाया दीर्घाऽऽकाङ्क्षायाः ) निबन्धनम् ( कारणम् ), अस्तीति शेषः ।

तदेव कारणं प्रतिपादयति--शकुन्तलादीनिति । अन्यपरैः वचोभिः प्रस्तावितान् शाकुन्तलादीन् इतिहासवादान् श्रुत्वा मदुत्सङ्गनिवेशिताऽङ्गी ( मालती ) चिराय चिन्तास्तिमितत्वम् एतीत्यन्वयः । अन्यपरैः=अन्यः ( मालतीव्यतिरिक्तो जनः ) परः ( तात्पर्यगोचरः ) येषां तानि अन्यपराणि, तैः । मुखतोऽन्योद्देशेन प्रवृत्तवदवभासमानैर्वस्तुतः स्वोपदेशायैव प्रवृत्तैरिति भावः । एतादृशैः वचोभिः = वचनैः, प्रस्तावितान् = उपस्थापितान्, शाकुन्तलादीन् = शकुन्तलोपाख्यानप्रभृतीन्, इतिहासवादान् = पुरावृत्तवचनानि, श्रुत्वा = आकर्ण्य, मदुत्सङ्गनिवेशिताऽङ्गी = मम उत्सङ्गे ( अङ्के ) निवेशितानि ( स्थापितानि ) अङ्गानि ( अवयवाः ) यस्याः सा, एतादृशी मालतीति शेषः । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इत्यत्र 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' इति ङीप् । चिराय = बहुकालपर्यन्तं, चिन्तास्तिमितत्वं = चिन्तया ( 'कथं मया शकुन्तलाऽऽदिवत्कर्तव्यं, को वाऽत्रोपाय' इति विचारेण ) स्तिमितत्वम् ( निश्चेष्टताम् ) एति = प्राप्नोति, इत्येतत्साधीयः प्रत्याशानिबन्धनमित्यर्थः । अत्र पूर्वस्मिंश्चरणत्रय इन्द्रवज्रायाश्चतुर्थे चरणे उपेन्द्रवज्रायाः सम्मेलनादुपजातिवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥' इति ॥ २ ॥

तदद्येति । तत्=तस्मात्कारणात् । माधवसमक्षं=माधवस्य समक्षम् ( प्रत्यक्षम् ) ।

---

यह भी मालती और माधवके सम्मेलनरूप कार्यमें दृढतर प्रत्याशाका कारण है—

अन्यपर वचनोंसे उपस्थापित शाकुन्तल आदि इतिहास-वचनोंको सुनकर मेरी गोदमें अपने अङ्गोंको रखकर मालती चिन्तासे निश्चेष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

इसलिए आज माधवके समक्षमें अनन्तर कर्तव्यका आरम्भ करूंगी । (नेपथ्यके सम्मुख देखकर ) वत्से ! यहाँ आओ, यहाँ आओ ।

( ततः प्रविशति मालती लवङ्गिका च । )

मालती—( स्वगतम् ) कथमुपहारीकृतास्मि राज्ञस्तातेन । राजाराधनं खलु तातस्य गुरुकम्, न पुनर्मालती । ( सास्रम् ) हा तात, त्वमपि मम नामैवमिति सर्वथा जितं भोगतृष्णया । ( सानन्दम् ) कथं महाकुलप्रसूतः स महाभागः । सुष्ठु भणितं प्रियसख्या कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गम इति । अपि नाम तं पुनरपि प्रेक्षिष्ये । (कहं उवहारीकिदम्हि राइणो तादेण । राआराहणं क्खु तादस्स गुरुअं, ण उण मालदी । हा ताद, तुमं वि मह णाम एव्वं त्ति सव्वहा जिदं भोअतिण्हाए । कहं महाउलप्पसूदो सो महाभाओ । सुट्ठु भणिदं पिअसहीए कुदो वा महोअहिं वज्जिअ पारिजादस्स उग्गमो त्ति । अवि णाम तं उणो वि पेक्खिस्सं । )

लवङ्गिका—सखि, एष खलु मधुरमधुरसार्द्रमञ्जरीकवलनकेलिकलको-

---

उत्तरम् = अनन्तरकृत्यम्, उपक्रमिष्ये = आरप्स्ये, 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' इत्यात्मनेपदम् । अवलोक्य = दृष्ट्वा, मालतीदर्शनोत्तरमिति शेषः । वत्से = हे मालति, इतः= अत्र, आगच्छेति शेषः ।

लवङ्गिकेति । मधुरमधुरसाऽऽर्द्रेत्यादिः = मधुरेण ( स्वादुना ) मधुरसेन ( पुष्परसेन ) आर्द्राणां ( क्लिन्नानाम् ) मञ्जरीणां ( वल्लरीणाम् ) कवलनम् ( भक्षणम् ) एव केलिः ( क्रीडा ) तथा कलः ( मधुराऽस्फुटः ) यः कोकिलकुलस्य ( पिकसमुदायस्य ) कोलाहलः ( कलकलः ) तेन आकुलितात् ( व्याप्तात् ) सहकारशिखरात्

---

( अनन्तर मालती और लवङ्गिका प्रवेश करती हैं । )

मालती—( मन ही मन ) पिताजीने राजाके लिए कैसे मुझको उपहार बनाया । राजाका आराधन ही पिताजीको अधिक है, मालती नहीं । ( आँखोंमें आँसू भर कर ) हा पिताजी ! आप भी इस प्रकारसे मेरे जीवनमें निरपेक्ष हैं, भोगतृष्णाने सब प्रकारसे जीत लिया । ( आनन्दके साथ ) कैसे वे महाभाग महाकुलमें उत्पन्न हुए हैं । प्रियसखीने यह उत्तम कहा है कि—'समुद्रको छोड़कर पारिजातकी कहाँसे उत्पत्ति हो सकती है ?' क्या मैं उनको फिर देखूंगी ?

लवङ्गिका—सखि ! मधुर पुष्परससे आर्द्र मञ्जरियोंके भक्षणरूप क्रीडासे मधुर और अस्फुट कोकिलसमूहके कोलाहलसे व्याप्त सहकार ( खुशबूदार आमके

किलकुलकोलाहलाकुलितसहकारशिखरोड्डीनचटुलचञ्चरीकनिकरव्यतिकरोद्दलितदलकरालचम्पकाधिवासमनोहरो मरालजघनपरिणाहोद्वहनमन्थरोरुभरविसंस्थुलस्खलितचरणसंचरणोपनीतस्वेदशीकरसुधाबिन्दूज्ज्वलमुग्धमुखचन्द्रचन्दनायमानशीतलस्पर्शस्त्वां परिष्वजति कुसुमाकरोद्यानमारुतः। तत्प्रियसखि, इतः परिक्रमावः। ( सहि, एसो क्खु महुरमहुरसाहमञ्जरिकवलणकेलिकलकोइलउलकोलाहलाउलिदसहआरसिहरुड्डीणचडुलचञ्चरीअणिअरवइअरुद्दलिददलकरालचम्पआहिवासमणोहरो मरालजहणपरिणाहुव्वहणमन्थरोरुभरविसंठुलक्खल-

---

( अतिसुरभिचूताऽग्रभागात् ) उड्डीनस्य ( उत्पतितस्य, त्रासेनेति शेषः ) चटुलस्य ( चञ्चलस्य ) चञ्चरीकनिकरस्य ( भ्रमरसमूहस्य ) व्यतिकरेण ( विमर्देन ) उद्दलितानि ( विकसितानि ) दलानि ( पत्राणि ) येषां तानि, अत एव करालानि ( दन्तुराणि, उन्नतानतानीति भावः ) यानि चम्पकानि ( चाम्पेयकुसुमानि ) तेषाम् अधिवासेन ( गन्धेन ) मनोहरः ( चित्ताकर्षकः )। विशेषणमिदमपरञ्च कुसुमाकरोद्यानमारुतस्येत्यवधेयम्। एवं च—मरालजघनेत्यादिः = मरालः ( मसृणः ) अत्र 'मांसल' इति पुस्तकान्तरस्थोऽधिकः पाठस्तस्य पुष्ट इत्यर्थः। एतादृशो यो जघनपरिणाहः ( कटिपुरोभागविस्तारः ) तस्य उद्वहनेन (धारणेन) मन्थरम् ( मन्दम् ) ऊरुभरेण ( सक्थिभारेण ) विसंस्थुलं ( विषमम् ) 'विसंष्ठुलम्' इति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः। तथा च स्खलितं ( सञ्चलितम् ) यच्चरणसञ्चरणं ( पादगमनम् ) तेनोपनीताः ( संजनिताः ) ये स्वेदशीकराः ( घर्मजलकणाः ) त एव सुधाबिन्दवः ( अमृतपृषताः ) तैरुज्ज्वलः ( विशदः ) यो मुग्धमुखचन्द्रः ( सुन्दराऽऽननेन्दुः ) तवेति शेषः, तत्र चन्दनायमानः ( चन्दनवदाचरन्, चन्दनसदृश इति भावः ) शीतलः ( शीतः ) स्पर्शः ( आमर्शनम् ) यस्य सः। एतेन वायोर्मान्द्यं शैत्यं सौरभ्यमपि ध्वनितम्। एतादृशः कुसुमाकरोद्यानमारुतः = कुसुमाकरोपवनपवनः, परिष्वजति = आलिङ्गति। तत् = तस्मात्, इतः = अस्मिन् स्थाने, परिक्रमावः = चरणविक्षेपं कुर्वः।

---

पेड़ ) के अग्रभागसे उड़े हुए और चपल भ्रमरसमूहके विमर्दसे विकसित पत्रोंसे युक्त और उन्नत और अवनत चम्पा पुष्पोंकी गन्धसे चित्तको आकृष्ट करनेवाला, मसृण कटिपुरोभागके विस्तारके धारणसे मन्द ऊरुभारसे विषम सञ्चलित पादगमनसे उत्पन्न स्वेदसमूहरूप अमृतबिन्दुओंसे उज्ज्वल सुन्दर मुखचन्द्रमें चन्दनके सदृश आचरण करनेवाले शीतल स्पर्शसे युक्त कुसुमाकर उद्यानका यह वायु तुम्हें आलिङ्गन करता है। इस कारणसे हे प्रियसखि! इस स्थानमें परिक्रमण करें।

लिद्चलणसंचलणोवणोदसेअसीअरसुहाविन्दुब्बलमुद्धमुहचन्दचन्दणाअमाणसीअलफंसो तुमं परिस्सअदि कुसुमाअरुज्जाणमारुदो। ता पिअसहि, इदो परिक्कमावो।)

( परिक्रम्य प्रविशतः )

( ततः प्रविशति माधवः )

माधवः—हन्त, परागता भगवती। इयं हि मम-
आविर्भवन्ती प्रथमं प्रियायाः सोच्छ्वासमन्तःकरणं करोति।
निदाघसंतप्तशिखण्डियूनो वृष्टेः पुरस्तादचिरप्रभेव ॥ ४ ॥

---

माधव इति। हन्त=हर्षद्योतकमव्ययमिदम्। परागता=अभिमुखमागता। भगवती=कामन्दकी। इयं=भगवती।

आविर्भवन्तीति। प्रियायाः प्रथमम् आविर्भवन्ती (इयम्) निदाघसन्तप्तशिखण्डियूनो वृष्टेः पुरस्तात् अचिरप्रभा इव अन्तःकरणं सोच्छ्वासं करोतीत्यन्वयः। प्रियायाः=वल्लभायाः, मालत्या इति भावः। प्रथमं=प्राक्, आविर्भवन्ती=प्रकटीभवन्ती, (इय=भगवती, कामन्दकीति भावः) निदाघसन्तप्तशिखण्डियूनः=निदाघे (ग्रीष्मे) सन्तप्तः (सन्तापयुक्तः) यः शिखण्डियुवा (मयूरतरुणः) तस्य। 'सन्तापदग्धस्य शिखण्डियून' इति पुस्तकान्तरपाठः। वृष्टेः=वर्षात्, 'पुरस्तात्' इति पदेन योगे 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेने'ति षष्ठी। पुरस्तात्=पूर्वस्मिन्काले, 'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' इति अस्तातिः अस्ताति चे'ति पूर्वस्य पुरादेशः। 'प्राच्या पुरस्तात्प्रथमे पुराऽर्थेऽग्रत इत्यपि।' इत्यमरः। अचिरप्रभा इव=विद्युत् इव, अन्तःकरणं=चित्तं, सोच्छ्वासं=सजीवं, सविकासमित्यर्थः। करोति=विदधाति, दयिताऽऽगमनसूचकत्वेनेति भावः। भाविन्या वृष्टेः सूचनेन यथा विद्युन्निदाघतप्तस्य मयूरस्याऽन्तःकरणमुच्छ्वसितं विदधाति तथैव प्रियायाः पुरस्तादागच्छन्ती कामन्दक्यपि तदागमनसूचनेन मदीयं चित्तं विकसितं करोतीति भावः। अत्र माधवस्य मालतीदर्शनाऽभिलापे द्वितीयाङ्कस्थेन नन्दनवृत्ता-

---

( परिक्रमण कर प्रवेश करती हैं। )

( तब माधव प्रवेश करता है। )

माधव—खुशीकी बात है कि भगवती (कामन्दकी) संमुख आ गई हैं। ये मेरी प्रिया मालतीके पहले प्रकट होती हुई ग्रीष्ममें सन्तप्त तरुण मयूरके अन्तःकरणको वृष्टिके पहले जैसे बिजली सजीव बना देती है उसी तरह मेरे अन्तःकरणको विकासपूर्ण बना देती हैं ॥ ४ ॥

दिष्ट्या लवङ्गिकाद्वितीया मालत्यपि—

आश्चर्यमुत्पलदृशो वदनामलेन्दु-
सांनिध्यतो मम मुहुर्जडिमानमेत्य।
जात्येन चन्द्रमणिनेव महीधरस्य
संधार्यते द्रवमयो मनसा विकारः ॥ ५ ॥

न्तेन विच्छेदं प्राप्ते पुनर्दर्शनहेतुत्वेनाऽच्छेदकारणात्वाद्बिन्दुरर्थप्रकृतिः। तल्लक्षणं यथा—'अवान्तराऽर्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।' इति। अत्रोपमाऽलङ्कारः। इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ४ ॥

दिष्ट्येति। 'दिष्ट्ये'त्यत्र 'दृष्ट्वे'ति पुस्तकान्तरपाठः। आश्चर्यमिति। उत्पलदृशो वदनाऽमलेन्दुसान्निध्यतो मम मनसा महीधरस्य जात्येन चन्द्रमणिना इव मुहुः जडिमानम् एत्य द्रवमयो विकारः सन्धार्यते आश्चर्यम् इत्यन्वयः। उत्पलदृशः= उत्पले इव दृशौ यस्याः सा उत्पलदृक् तस्याः, कमललोचनायाः मालत्या इति भावः। वदनाऽमलेन्दुसान्निध्यतः=वदनम् (मुखम्) अमलेन्दुः (निर्मलचन्द्रः) इव वदनाऽमलेन्दुः। सन्निधिरेव सान्निध्यम्, 'चतुर्वर्णादीनां स्वाऽर्थे उपसंख्यानम्' इति ष्यञ्। सान्निध्यादिति सान्निध्यतः, 'अपादाने चाऽहीयरुहोः' इति तसिः। वदनाऽमलेन्दोः सान्निध्यात (सामीप्याद्धेतोः)। मम=माधवस्य, मनसा=चित्तेन, महीधरस्य=धारतीति धरः, पचाद्यच्, मह्या धरस्तस्य पर्वतस्येत्यर्थः। जात्येन=जातौ भवो जात्यस्तेन यत्प्रत्ययः; विशुद्धजात्युत्पन्नेनेति भावः। 'जाड्येने'ति पाठे जडिम्ना करणेनेत्यर्थः। चन्द्रमणिना इव=चन्द्रकान्तमणिना इव, मुहुः=वारं वारं, जडिमानं=जडस्य भावो जडिमा, तं 'पृथ्वीदिभ्य इमनिज्वे'ति इमनिच्प्रत्ययः, जाड्यमित्यर्थः। 'क्रियास्वपाटवं जाड्यम्' इत्युक्तरूपं भावमित्यर्थः। चन्द्रकातमणिपक्षे जलप्रकृतिकत्वमिति भावः। एत्य=प्राप्य, द्रवमयः=द्रवप्रचुरः, पक्षान्तरे जलमयः विकारः=विकृतिः, रूपान्तराऽऽपत्तिरिति भावः। सन्धार्यते=सन्धारणं क्रियते, तदेतत् आश्चर्यं=चित्रमित्यर्थः। चन्द्रोदये चन्द्रकान्तमणेरिव मालतीमुखचन्द्रोदये मन्मनसो द्रवमयो विकारः संपद्यत इति भावः। अत्रोत्पलदृश इत्यत्र

भाग्यसे लवङ्गिकाके साथ मालती भी—

कमललोचना मालतीके निर्मल चन्द्रके सदृश मुखके सामीप्यसे मेरे मनसे चन्द्रके सामीप्यसे पर्वतके विशुद्ध जातिमें उत्पन्न चन्द्रकान्तमणिके सदृश वारंवार जाड्य (वा जलप्रकृतिको) प्राप्तकर द्रवप्रचुर अथवा जलमय विकारका धारण किया जाता है, आश्चर्य है ॥ ५ ॥

संप्रति रमणीयतरा मालती—

ज्वलयति मनोभवाग्निं मदयति हृदयं कृतार्थयति चक्षुः ।
परिमृदितचम्पकावलिविलासलुलितालसैरङ्गैः ॥ ६ ॥

मालती—सखि, अमुष्मिन्कुब्जकनिकुञ्जे कुसुमान्यवचिनुवः । ( सहि, इमस्सिं कुज्जअणिउञ्जे कुसुमाइं अवचिणुम्ह । )

---

लुप्तोपमा, 'वदनाऽमलेन्दुसान्निध्यतः' इत्यत्र 'चन्द्रमणिनेवे'त्यत्र चोपमाद्वयमेवं च मनसो द्रवत्वाऽसम्बन्धेऽपि द्रवत्वसम्बन्धरूपकल्पनयाऽतिशयोक्तिश्चेत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५ ॥

सम्प्रतीति । रमणीयतरा=अतिशयेन रमणीया, पुरा कामवेगस्याऽङ्कुरितत्वाद्रमणीया साम्प्रतं तु तस्य पल्लवितत्वाद्रमणीयतरेति भावः । 'द्विवचनविभज्योपपदेतरबीयसुनौ' इति तरप्प्रत्ययः ।

ज्वलयतीति । ( मालती ) परिमृदितचम्पकाऽऽवलिविलासलुलिताऽलसैः अङ्गैः मनोभवाऽग्निं ज्वलयति, हृदयं मदयति, चक्षुः कृतार्थयतीत्यन्वयः । पूर्ववाक्यस्थं 'मालती'ति पदमध्याहार्यम् । परिमृदितचम्पकाऽऽवलिविलासलुलिताऽलसैः = परिमृदिता ( म्लानिमुपगता ) या चम्पकाऽऽवलिः ( चाम्पेयपुष्पमाला ), तस्या विलासाः ( लीला ) इव लुलितानि ( आन्दोलितानि ), 'ललितानि' इति पाठे सुकुमारतयाऽङ्गविन्यासा इत्यर्थः । एवं च अलसानि=आलस्योपेतानि, स्वस्वकार्यसामर्थ्यरहितानीति भावः, तैः । एतादृशैः अङ्गैः=शरीराऽवयवैः, मनोभवाऽग्निं= कामाऽनलं, ममेति शेष एवमुत्तरत्राऽपि । ज्वलयति=दीपयति । हृदयं=मनः, मदयति=मत्तं करोति, हर्षपरवशं करोतीति भावः । चक्षुः=नेत्रं, गोलकस्येन्द्रियाऽपेक्षयैकवचनम् । कृतार्थयति=कृतार्थं करोति, सौन्दर्यचरमाऽवधिदर्शनेन सफलं विदधातीति भावः, कृतार्थशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति ण्यन्ताल्लट् । मन्निमित्ततया विरहावस्थामनुभवन्तीयं मालती मदीयमन्तःकरणमाकुलीकरोतीति भावः । अत्र मालतीरूपस्यैककारकस्य ज्वलनादिरूपास्वनेकक्रियासु सम्बन्धाद्दीपकाऽलङ्कार एवं च मनोभवाऽग्निमित्यत्र रूपकमुत्तरार्द्धे च लुप्तोपमा चेत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । आर्या वृत्तम् ॥ ६ ॥

मालतीति । कुब्जकनिकुञ्जे=कुब्जकानां ( वृत्तपुष्पाऽपरपर्यायाणां वृक्षविशेषा-

---

इस समय अतिशय सुन्दरी होकर मालती—

म्लान चाम्पेयपुष्पमालाके विलासके सदृश आन्दोलित और आलस्यपूर्ण अङ्गोंसे कामाग्निको दीप्त, चित्तको मत्त और नेत्रोंको कृतार्थ कर देती है ॥ ६ ॥

मालती—सखि ! इस कुब्जक वृक्षोंके लतागृहमें फूल तोड़ें ।

माधवः—

प्रथमप्रियावचनसंश्रवस्फुर-
त्पुलकेन संप्रति मयाऽवलम्ब्यते ।
घनराजिनूतनपयःसमुक्षण-
क्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरः ॥ ७ ॥

लवङ्गिका—सखि, एवं कुर्वः । ( सहि, एव्वं करेम्ह । )

णाम् ) निकुञ्जे ( लतागृहे )। 'कुञ्जनिकुञ्जे' इति पाठस्तु पुनरुक्तदोषग्रस्तत्वादुपेक्षणीयः । 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे ।' इत्यमरः ।

प्रथमेति । सम्प्रति प्रथमप्रियावचनसंश्रवस्फुरत्पुलकेन मया घनराजिनूतनपयः-समुक्षणक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरः अवलम्ब्यत इत्यन्वयः । सम्प्रति—अधुना, प्रथमप्रियावचनसंश्रवस्फुरत्पुलकेन = प्रथमम्=( आदौ ) यत् प्रियायाः ( दयिताया मालत्या इत्यर्थः ) वचनं ('स ही'त्यादि वाक्यम् ) तस्य यः संश्रवः ( श्रवणम् ) 'संस्तव' पदपाठे संस्तवः परिचय इत्यर्थः । तेन स्फुरन्तः ( आविर्भवन्तः ) पुलकाः ( रोमाञ्चाः ) यस्य तेन । एतादृशेन मया = माधवेन, घनराजिनूतनपयःसमुक्षणक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरः = घनराजेः ( मेघपङ्क्तेः ) यानि नूतनपयांसि ( नवीनजलानि ), तैर्यत् समुक्षणं ( संसेचनम् ), तस्य क्षणे ( समये ) बद्धानि ( उत्पन्नानि ) कुड्मलानि ( मुकुलानि ) यस्य सः । एतादृशो यः कदम्बः ( नीपवृक्षः ) तस्य डम्बरः ( सादृश्यम् ), अवलम्ब्यते=आश्रीयते, 'विडम्ब्यते' इति पाठे अनुक्रियत इत्यर्थः । यथा जलधरनवजलसंसेचनेन नीपतरौ मुकुलाविर्भावो भवति तथैव प्रियावचनसंश्रवणेन ममाऽपि रोमाञ्चोद्गमः संजात इति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । अत्र माधवस्य रतिभोगाऽर्थायाः समीहायाः स्फुटत्वेन विलासो नाम-प्रतिमुखसन्धेरङ्गम् । तल्लक्षणं यथा—'समीहा रतिभोगाऽर्थं विलासः परिकीर्तितः ।' इति । मञ्जुभाषिणी वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ।' इति ॥ ७ ॥

माधव—इस समय प्रियतमाके प्रथम वाक्यश्रवणसे रोमाञ्च उत्पन्न होनेसे मैं मेघपङ्क्तिके नये जलके सेवनके समय मुकुल-धारण करनेवाले कदम्ववृक्षका सादृश्य धारण करता हूं ॥ ७ ॥

लवङ्गिका—सखि ! ऐसा ही करें ।

( पुष्पावचयं नाटयतः )

माधवः—अपरिमेयाश्चर्यमाचार्यकं भगवत्याः ।

मालती—सखि तेनेतोऽप्यपरस्मिन्नवचिनुवः । ( सहि, देण इदो वि अवरस्सिं अवचिणुम्ह । )

कामन्दकी—( मालतीं परिष्वज्य ) अयि, विरम विरम । निःसहा जातासि ।

---

पुष्पावचयं=कुसुमसञ्चयम् । अवचयनमवचयः, 'एरच्' इत्यच् । कुसुमानामवचयस्तम् ।

माधव इति । भगवत्याः=कामन्दक्याः, आचार्यकम्=आचार्यस्य भावः कर्म वा, उपदेशपाटवमित्यर्थः । 'योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्' इति वुञ्प्रत्ययः । अपरिमेयाश्चर्यम्=परिमातुं योग्यानि परिमेयानि 'अचो यत्' इति यत्, 'ईद्यति' इत्यात ईत्वम् । न परिमेयानि अपरिमेयानि ( अपरिच्छेद्यानि ) आश्चर्याणि ( अद्भुतानि ) यस्मिंस्तत् । यदनुग्रहादहं सख्या समं निःशङ्कं कुसुमावचयोद्यतां प्रियतमां विलोकयाऽऽनन्दामृतसागरे निमग्न इव भवामीति भावः । अनेन पूर्वाऽवलोकितायाः पश्चाद्व्यवहिताया मालत्याः पुनरनुसरणात्परिसर्पो नाम प्रतिमुखसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'इष्टनष्टाऽनुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते ।' इति ।

मालतीति । तेन=पुष्पावचयरूपकारणेन, इतोऽपि=अस्मादपि, स्थानात्, इदंशब्दात् 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्, 'इदम इश्' इति इदम इशादेशः । अपरस्मिन्=अन्यस्मिन् स्थाने, अवचिनुवः=अवचयं कुर्वः ।

अथ कामन्दकी प्रच्छन्नस्थितमाधवोपकण्ठं मालतीमानीय ततोऽन्यत्र जिगमिषन्तीं तां तत्रैव स्थापयितुमाह—कामन्दकी । परिष्वज्य=आलिङ्ग्य, 'परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम् ।' इत्यमरः ।

अयीति । विरम विरम=विरता भव, विरता भव, पुष्पाऽवचयादिति भावः । व्युपसर्गपूर्वकात् 'रमु-क्रीडायाम्' इति धातोः 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम् । पुष्पाऽवचयाद्विरामे हेतुमाह—निःसहेति । निःसहा=असमर्था, पुष्पाऽवचयाऽर्थं पर्यटन इति भावः । जाताऽसि=संवृत्ताऽसि, अतोऽत्रैवोपविशेति भावः ।

स्खलयतीति । हे सुभ्रु ! खेदः ते वचनं स्खलयति, अङ्गम् अङ्गं संश्रयति, मुख-

---

( दोनों फूल तोड़नेका अभिनय करती हैं । )

माधव—भगवतीका आचार्यकर्म अपरिच्छेद्य आश्चर्यवाला है ।

मालती—इस ( फूल तोड़नेके ) कारणसे इस स्थानसे दूसरे स्थानमें तोड़ें ।

कामन्दकी—( मालतीको आलिङ्गन कर ) अरी ! छोड़ो, छोड़ो, । असमर्थ हो गई हो ।

स्खलयति वचनं ते संश्रयत्यङ्गमङ्गं
जनयति मुखचन्द्रोद्भासिनः स्वेदबिन्दून् ।
मुकुलयति च नेत्रे सर्वथा सुभ्रु ! खेद-
स्त्वयि विलसति तुल्यं वल्लभालोकनेन ॥ ८ ॥

चन्द्रोद्भासिनः स्वेदबिन्दून् जनयति, नेत्रे च सर्वथा मुकुलयति, वल्लभाऽऽलोकनेन तुल्यं त्वयि विलसतीत्यन्वयः । हे सभ्रु=हे सुन्दरभ्रूयुक्ते, सुन्दरीति भावः । शोभने भ्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः, तत्सम्बुद्धौ । भ्रूशब्दोऽयं 'भ्रमेश्च डूः' इति डूप्रत्ययान्तः, तेन स्त्रीप्रत्ययान्तत्वाऽभावात् 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वत्वं न । एवमेव 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री'ति भ्रूशब्दस्य तदन्तस्य च विषेधान्नदीत्वं न, ततश्च 'अम्बाऽर्थनद्योर्ह्रस्व' इति ह्रस्वत्वं च न । अतः पाणिनिनयाऽनुसारिणां मते प्रमाद एवायमिति बोध्यम् । अत एव 'हापितः क्वाऽसि हे सुभ्रु !', 'विमानना सुभ्रु ! कुतः पितुर्गृहे' इत्यादयो महाकविप्रयोगा निरङ्कुशतापरिचायका इति बोध्यम् । काव्याऽलङ्कारसूत्रकृतो वामनास्तु 'उकारान्तादप्यूङ् प्रवृत्ते'रित्यलिखन् । व्याख्यातवन्तश्च—'उत ऊङ् विहित ऊकारान्तादपि क्वचिद्भवति । आचार्यप्रवृत्तेः । क्वाऽसौ प्रवृत्तिः ? 'अप्राणिजातेश्चाऽरज्ज्वादीनाम्' इति । हे सुन्दरि ! खेदः=पुष्पाऽवचयोत्पन्नः श्रमः, ते=तव, वचनं=वाचं, स्खलयति=स्खलितं करोति, अङ्गम् अङ्गम्=प्रतिशरीराऽवयवं, हस्तपादादिकमिति भावः । संश्रयति=अवलम्बते, 'स्रंसयति' इति पाठे शिथिलयतीत्यर्थः । मुखचन्द्रोद्भासिनः=मुखं चन्द्र इव मुखचन्द्रः, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः । मुखचन्द्रम् उद्भासयन्तीति तच्छीलास्तान् आननचन्द्रोद्भासनशीलान्, स्वेदबिन्दून्=घर्मजलकणान्, जनयति=उत्पादयति, 'बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः' इति परस्मैपदम् । एवं नेत्रे च=लोचने च, मुकुलयति=मुकुलिते करोति, निमीलयतीत्यर्थः । 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्ताल्लट् । वल्लभाऽऽलोकनेन=वल्लभस्य=प्रियस्य, माधवस्येति भावः । आलोकनेन=अवलोकनेन, तुल्यं=समानं, प्रियदर्शनमिवेति भावः । त्वयि=त्वद्विषये, विलसति=स्वव्यापारं करोति, वल्लभस्त्वामवलोकयन्वर्तत इति ध्वनिः । वल्लभमवलोकयन्त्या येऽनुभावास्ते श्रमवशात्त्वय्यपि दृश्यन्त इति भावः । तथा हि वल्लभालोकनमपि ललनाया वचनं गद्गदं करोति, प्रत्यङ्गं संश्रयति, सात्त्विकभावोदयेन

हे सुन्दरि ! फूल तोड़नेसे उत्पन्न परिश्रम तुम्हारे वचनको स्खलित करता है, प्रत्येक शरीरावयवका अवलम्ब करता है, मुखचन्द्रको उद्भासित करनेवाले स्वेदबिन्दुओंको उत्पन्न करता है और नेत्रोंको भी मुकुलित कर देता है अत एव वह प्रियदर्शनके तुल्य तुम्हारे प्रति व्यवहार करता है ॥ ८ ॥

( मालती लज्जां नाटयति )

लवङ्गिका—शोभनं भगवत्याऽऽज्ञप्तम् । ( सोहणं भअवदीए आणत्तं । )

माधवः—हृदयङ्गमः परिहासः ।

कामन्दकी—तदास्यताम् । किंचिदाख्येयमाख्यातुकामाऽस्मि ।

( सर्वा उपविशन्ति )

कामन्दकी—( मालत्याश्चिबुकमुन्नमय्य ) शृणु चित्रमिदं सुभगे !

---

मुखचन्द्रे स्वेदबिन्दूनुत्पादयति । हर्षप्रकर्षाविर्भावनान्नयने च निमीलयतीति भावः । ततः पुष्पाऽवचयाद्विरमेति तात्पर्यम् । अत्रोपमाऽलङ्कारः । स्खलनादीनामनेकक्रियाणां खेदरूपस्यैकस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारो वाक्याऽर्थहेतुककाव्यलिङ्गाऽलङ्कारश्चैतेषामेकाश्रयाऽनुप्रवेशात्सङ्करः । मालिनी वृत्तम् ॥ ८ ॥

लज्जां नाटयति = व्रीडामभिनयति, 'नट-नृत्तौ' इति धातोर्णिचि लट् । 'लज्जते' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य त्रपत इत्यर्थः ॥

लवङ्गिकेति । शोभनं = मनोरमम्, आज्ञप्तम्=आदिष्टम् । माधव इति । परिहासः= नर्मवचनं, स्खलयतीत्याकारकमिति भावः । हृदयङ्गमः = मनोहरः, हृदयं गच्छतीति, 'गमेः सुपि वाच्यः' इति खच्, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' । अनेन नर्माख्यमङ्गमुक्तं, तल्लक्षणं यथा—'परिहासवचो नर्मे'ति ।

कामन्दकीति । तत् = तस्मात्कारणात् । आस्यताम् = उपविश्यताम्, 'आस-उपवेशन' इति धातोर्भावे लोट् । किञ्चित्=अल्पम्, आख्येयं = वक्तव्यम्, आङुपसर्गपूर्वकात् 'ख्या-प्रकथने' इति धातोः 'अचो यत्' इति यत्, 'ईद्यति' इति आत ईत्वं, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणः । आख्यातुकामा = वक्तुकामा, आख्यातुं कामो यस्याः सा, 'तुंकाममनसोरपि' इति मकारलोपः ।

कामन्दकीति । चिबुकम्=अधरतलाऽवयवम्, उन्नमय्य=उत्तोल्य, सुभगे=हे सौभाग्यवति !; 'सुभगे' इत्यनेन माधवचित्ताकर्षणेनत्वमेव सौभाग्यवत्यसी'ति ध्वनितम् ।

---

( मालती लज्जा का अभिनय करती है । )

लवङ्गिका—भगवतीने ठीक कहा ।

माधव—परिहास ( दिल्लगी ) मनोहर है ।

कामन्दकी—इस कारणसे बैठो । कुछ वक्तव्य कहनेकी इच्छा करती हूं ।

( सब बैठ जाती हैं । )

कामन्दकी—( मालतीकी ठुड्डीको ऊंची कर ) हे भाग्यवति ! यह विचित्र वृत्तान्त सुनो ।

मालती—अवहितास्मि। ( अवहिदम्हि। )

कामन्दकी—अस्ति तावदेकदा प्रसङ्गतः कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारः, यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं बन्धनम्।

लवङ्गिका—स्मरामः ( सुमरामो। )

कामन्दकी—स खलु मदनोद्यानयात्रादिवसात्प्रभृति दुर्मनायमानः परवानिव शरीरोपतापेन। तथाहि—

---

मालतीति। अवहिता=सावधाना, श्रोतुमिति शेषः।

कामन्दकीति। प्रसङ्गतः=प्रसङ्गादिति, प्रसङ्गमनुसृत्येति भावः। 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इति पञ्चमी, 'अपादाने चाहीयरुहोः' इति तसिः। 'प्रसङ्गः स्यादवसर' इत्यमरः। माधवाऽभिधानः=माधवनामकः, माधवोऽभिधानं यस्य सः, 'आख्याऽऽह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च।' इत्यमरः। कुमारः=अविवाहितः, मामकीनस्य=मदीयस्य, ममेदं मामकीनं तस्य, 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्' इति खञ्, 'तवकममकावेकवचने' इति अस्मच्छब्दस्यैकवचने ममकादेशः। बन्धनं=बध्नाति अन्यत्र गमनं विरुध्य स्वैकायत्तं करोतीति विश्रान्तिस्थानं, स्नेहभाजनमिति भावः। 'निबन्धनम्' इति पाठे आलम्बनमित्यर्थः।

लवङ्गिकेति। स्मरामः—भवत्या उक्तं माधववर्णनमिति शेषः।

कामन्दकीति। 'मदनोद्यानयात्रादिवसात्—'कार्त्तिक्याः प्रभृती'ति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी। दुर्मनायमानः=दुःखितमना इव आचरन्, दुष्टं (दोपयुक्तम्) मनो यस्य स दुर्मनाः 'दुर्मना विमना अन्तर्मनाः स्यात्' इत्यमरः। दुर्मना इव आचरन्, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति सलोपसमन्वितक्यङन्ताद् दुर्मनःशब्दाल्लटः शानच् 'आने मुक्' इति मुगागमश्च। शरीरोपतापेन=देहोपतापेन, परवानिव=परतन्त्र इव, अस्तीति शेषः। मदनोद्यानयात्रेत्यनेन प्राथमिकमिथोदर्शनप्रतीतेश्चक्षुःप्रीतिरुक्ता, दुर्मनायमान इत्यनेन चित्तासङ्ग उक्तः। एवं च त्वामुद्दिश्य माधवो मदनेन तास्ता दशाः प्रापित इति सूचयितुं दशान्तराण्याह—

---

मालती—मैं तत्पर हूं।

कामन्दकी—एक वार प्रसङ्गसे मैंने माधवनामक कुमारको कहा है कि मेरे मनका तुम्हारे सदृश एक स्नेह-पात्र है।

लवङ्गिका—हम स्मरण ( याद ) करती हैं।

कामन्दकी—वह मदनोद्यानके यात्राके दिनमें दुःखित चित्तवालेके सदृश आचरण करता हुआ शरीरके तापसे पराधीनके तुल्य है। जैसे कि—

यदिन्दावानन्दं प्रणयिनि जने वा न भजते
व्यनक्त्यन्तस्तापं तदयमतिधीरोऽपि विषमम् ।
प्रियङ्गुश्यामाङ्गप्रकृतिरपि चापाण्डु मधुरं
वपुः क्षामं क्षामं वहति रमणीयश्च भवति ॥ ९ ॥

यदिन्दाविति । यत् इन्दौ प्रणयिजने वा आनन्दं न भजते, तत् अतिधीरोऽपि अयं विषमम् अन्तस्तापं व्यनक्ति; प्रियङ्गुश्यामाऽङ्गप्रकृतिरपि आपाण्डु मधुरं क्षामं क्षामं वपुर्वहति रमणीयश्च भवतीत्यन्वयः । यत् = यस्मात्, इन्दौ = सुधाकरे, प्रणयिजने वा = प्रणयभाजने जने वा, आनन्दं=हर्षं,न भजते = न प्राप्नोति, माधव इति शेषः । तत = तस्मात्कारणात्, अतिधीरोऽपि = अतिशयधैर्ययुक्तोऽपि, अयं = माधवः, विषमं = दुःसहम्, अन्तस्तापं = मनोवेदनां, व्यनक्ति = प्रकाशयति, चन्द्रे प्रणयिजने वा लोचनगोचरे सत्यपि माधवस्याऽऽनन्दाऽभावव्यञ्जनेन अरतिः संतापश्चेत्यवस्थाद्वयमुक्तम् । एवं च प्रियङ्गुश्यामाऽङ्गप्रकृतिरपि=प्रियङ्गुः ( फलिनी लता ) इव श्यामा ( श्यामवर्णा ) अङ्गप्रकृतिः ( शरीरकान्तिः ) यस्य स तादृशः सन्नपि, आपाण्डु = ईषत्पाण्डु, ईषत्पीतवर्णमिश्रशुक्लवर्णम्, 'कुगतिप्रादयः' इति समासः । मधुरं = सुन्दरं, क्षामं क्षामम् = अतिशयकृशम्, 'क्षै—क्षये' इति धातोर्निष्ठायां क्तप्रत्ययः 'क्षायो मः' इति मत्वम् । एतादृशं वपुः = शरीरं, वहति = धारयति, न चायं व्याधिजनितः कार्श्यपाण्डुताऽऽदिरित्याह—रमणीयश्चेति । रमणीयश्च=मनोहराकारश्च, भवति = वर्तते, अत्रानन्दहेत्वोरिन्दुप्रणयिजनयोः सतोरपि आनन्दरूपफलाऽभावाद्विशेषोक्तिरलङ्कारः, 'सति हेतौ फलाऽभावे विशेषोक्ति'रिति तल्लक्षणम् । एवं च 'श्यामा तु महिलाऽऽह्वया । लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली ।' इति कोषाऽनुशासनबलादापाततः प्रियङ्गुश्यामशब्दयोः पौनरुक्त्यावभासेऽपि प्रियङ्गुरिव श्यामेति तात्पर्यवशात्पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—

'आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्याऽवभासनम् ।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः ॥'

इति तल्लक्षणम् । इत्येतयोरलङ्कारयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ९ ॥

जो कि चन्द्रमें वा प्रीतिपात्र जनमें आनन्दित नहीं होता है इस कारणसे अत्यन्त धैर्ययुक्त होकर भी यह दुःसह मनोवेदनाको प्रकाशित करता है; फलिनी लताकी सदृश देहकान्तिसे युक्त होकर भी कुछ पीले और सफेद, सुन्दर अतिशय कृश शरीरको धारण करता है तथापि सुन्दर है ॥ ९ ॥

लवङ्गिका—एतदपि तस्मिन्नवसरे भगवतीं त्वरयन्त्यावलोकितयोदीरितमासीत्। यथाऽस्वस्थशरीरो माधव इति। (एदं वि तस्सि अवसरे भअवदिं तुवराअन्तीए अवलोइदाए उदीरिदं आसि। जह अस्सत्थसरीरो माहवो त्ति।)

कामन्दकी—यावदहमश्रृणवं मालत्येवास्य मन्मथोन्मादहेतुरिति। ममापि स एव निश्चयः। कुतः—

**अनुभवं वदनेन्दुरुपागमन्नियतमेष यदस्य महात्मनः।**
**क्षुभितमुत्कलिकातरलं मनः पय इव स्तिमितस्य महोदधेः॥ १०॥**

लवङ्गिकेति। उदीरितम्=उक्तम्।

कामन्दकीति। अश्रृणवम्=अश्रौषम्, कर्णाकर्णिकयेति शेषः। मन्मथोन्मादहेतुः=मन्मथकर्तृक उन्मादो मन्मथोन्मादः, 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इति मध्यमपदलोपी समासः। मन्मथोन्मादस्य हेतुः (कारणम्), कारणान्तरान्माधवधैर्यचलनाऽयोगादिति भावः। कुत इत्यनेन तदेव समर्थयते—

अनुभवमिति। एष वदनेन्दुः अस्य महात्मनः अनुभवम् उपागमत् नियतम्। (अतः) स्तिमितस्य महोदधेः उत्कलिकातरलं पय इव, अस्य मन उत्कलिकातरलं (सत्) क्षुभितमित्यन्वयः। एष इति। मालतीमुखं चिबुकदेशे गृहीत्वा निर्दिशति। वदनेन्दुः=मुखचन्द्रः, मालत्या इति शेषः। वदनम् इन्दुरिवेति वदनेन्दुः, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' इति समासः। अस्य=एतस्य, महात्मनः=महाऽनुभावस्य, धैर्यधुरन्धरस्य माधवस्येति भावः। अनुभवम्=अनुभूतिम्, दर्शनविषयतामिति भावः। उपागमत्=प्राप्तः, नियतं=निश्चितम्। उक्तेन हेतुना साध्यसिद्धिं निर्दिशति—क्षुभितमिति। (अतः=अस्माद्धेतोः) स्तिमितस्य=निस्तरङ्गस्य, महोदधेः=समुद्रस्य, उत्कलिकातरलम्=उत्कलिकाभिः (तरङ्गैः) तरलम् (चञ्चलम्) चन्द्रदर्शनादिति भावः। 'कथितोत्कलिकोत्कण्ठाहेलासलिलवीचिषु।' इति मेदिनी। पय इव=जलमिव, अस्य=धैर्येण निश्चलस्य, माधवस्येत्यर्थः। मनः=चित्तम्, उत्कलिकातरलम्=उत्कलिकया (उत्कण्ठया) तरलं=(चञ्चलं सत्), क्षुभितं=

लवङ्गिका—यह भी उस अवसरमें भगवतीको शीघ्रता कराती हुई अवलोकिताने कहा था कि—'माधवका शरीर अस्वस्थ है।'

कामन्दकी—मैंने सुना था कि मालती ही इन (माधव) के कामोन्माद को हेतु है? मेरा भी यही निश्चय है। क्योंकि—

यह (मालतीका) मुखचन्द्र उस महानुभाव (माधव) को दृष्टिगोचरताको प्राप्त हुआ, यह निश्चित है। इसीसे तरङ्गरहित (प्रशान्त) समुद्रके चन्द्रदर्शनसे

माधवः—अहो उपन्यासशुद्धिः । अहो मम च महत्त्वारोपणे यत्नः । अथवा—

शास्त्रे प्रतिष्ठा, सहजश्च बोधः
प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।
कालानुरोधः, प्रतिभानवत्त्व-

समुद्रपक्षे उद्वेलं, माधवपक्षे धैर्यरहितं, सञ्जातमिति शेषः । चन्द्रोदये यथा समुद्रजलं तरङ्गैरुद्वेलं भवति तथैव मालतीमुखचन्द्रदर्शनेन माधवमनोऽपि उत्कण्ठया चञ्चलं सद्धैर्यरहितं सञ्जातमिति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारजनितवैचित्र्येण मालतीमुखदर्शनरूपात् साधनान्माधवमनःक्षोभरूपस्य साध्यस्य ज्ञानादनुमानाऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'अनुमानं तु विच्छित्त्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात् ।' इति । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ १० ॥

माधव इति । उपन्यासशुद्धिः=उपन्यासस्य ( वाङ्मुखस्य, प्रतिपादनप्रकारस्येति भावः ) शुद्धिः ( पूर्वाऽपरविरोधादिदोषराहित्यम् ) । 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' इत्यमरः । महत्त्वाऽऽरोपणे=महत्त्वस्य ( अविद्यमानस्य समुद्रसमगाम्भीर्यस्येति भावः ) आरोपणे ( आरोपकरणे ) ।

शास्त्र इति । शास्त्रे प्रतिष्ठा, सहजो बोधश्च, प्रागल्भ्यम्, अभ्यस्तगुणा वाणी च, कालाऽनुरोधः, प्रतिभानवत्त्वं च एते गुणाः क्रियासु कामदुघा इत्यन्वयः ।

शास्त्रे=अनुशासनरूपे ग्रन्थविशेषे, प्रतिष्ठा=शङ्कारहिता सम्यक्प्रतिपत्तिः, क्वचित् 'शास्त्रेषु निष्ठे'ति पाठस्तत्र निष्ठा=इदमित्थमेवेति निर्णयः । सहजः=स्वाभाविकः, बोधः=ज्ञानम्, अनभ्यस्तविषयेऽपि बुद्धिप्रसार इति भावः । प्रागल्भ्यं=प्रौढोक्तिनैपुण्यं, प्रोपसर्गपूर्वकात् 'गल्भ धार्ष्ट्ये' इति धातोः प्रगल्भत इति प्रगल्भः, पचाद्यच् । प्रगल्भस्य भावः कर्म वेति 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चे'ति ष्यञ् । अभ्यस्तगुणा=अभ्यस्ताः ( मुहुर्मुहुः परिशीलिताः ) गुणाः ( प्रसादमाधुर्यादयः ) यस्यां सा, एतादृशी वाणी=वाक्यम्, कालाऽनुरोधः=कार्योचितसमयाऽनुसारणम् । क्वचित् 'कालाऽवबोध' इति पाठस्तत्र कार्योचितसमयज्ञानमित्यर्थः । एवं

तरङ्गोंसे चञ्चल जलके सदृश उसका मन उत्कण्ठाओंसे चञ्चल होता हुआ धैर्यरहित हो गया ॥ १० ॥

माधव—अहो ! प्रतिपादन प्रकारकी विशुद्धता । अहो ! मेरे भी महत्त्वके आरोप करनेमें प्रयत्न ( कोशिश ) है । अथवा—

शास्त्रमें प्रतिष्ठा ( शङ्कारहित ज्ञान ), स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणोंके

मतं गुणाः कामदुघाः क्रियासु ॥ ११ ॥

कामन्दकी—यतस्तेन जीवितादुद्विजमानेन दुष्करमपि न किंचिन्न क्रियते। तथा हि—

च प्रतिभानवत्वं=प्रतिभायाः (नवनवोन्मेषशालिन्याः प्रज्ञायाः) नवत्वम् (नूतनत्वम्), प्रतिभादीनां लक्षणान्युक्तानि रुद्रटाऽऽचार्येण यथा—

'बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामिगोचरा।
प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता॥' इति।

एते=पूर्वोक्ताः, गुणाः=धर्माः, क्रियासु=कर्मसु, आरब्धेष्विति शेषः। कामदुघाः=मनोरथपूरकाः, 'दुहेः कब्घश्चे'ति कप् घश्च। तेनैतादृशगुणगरिष्ठाया भगवत्या उपन्यासशुद्धौ किमाश्चर्यमिति भावः। अत्राऽप्रस्तुतकार्यसामान्यात्प्रस्तुतदूतीविशेषकार्यप्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः, तल्लक्षणं यथा—

'क्वचिद्विशेषः सामान्यात्सामान्यं वा विशेषतः।
कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्समम्॥
अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद्गम्यते पञ्चधा ततः।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्' इति............।

एवं च क्रियास्वेकस्य शास्त्रप्रतिष्ठादेर्गुणस्य कामदुघत्वरूपकार्यस्य साधकत्वेऽपि सहजबोधादीनां गुणानामपि सद्भावात्समुच्चयाऽलङ्कारश्च, तल्लक्षणं यथा—

'समुच्चयोऽयमेकस्मिन्सति कार्यस्य साधके।
खले कपोतिकान्यायात्तत्करः स्यात्परोऽपि चेत्॥
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये।' इति।

इत्थं चाऽत्राऽनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। इन्द्रवज्रा वृत्तम्॥ ११॥

कामन्दकीति। यतः=यस्मात्कारणात्, धैर्यराहित्याद्धेतोरिति भावः। 'अत' इति पुस्तकान्तरपाठः। जीवितात्=जीवनात्। जीवनं जीवितं, तस्माद् 'नपुंसके भावे क्त' इति भावे क्तप्रत्ययः। उद्विजमानेनेति पदेन योगे 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वात् पञ्चमी। उद्विजमानेन=उद्विभ्यता, उद्विजत इति उद्विजमानस्तेन, उदुपसर्गपूर्वकात् 'ओविजी भयचलनयोः' इति धातोर्लटः शत्रादेशः 'आने मुक्' इति मुगागमश्च। तेन=माधवेन, दुष्करमपि=दुःसम्पाद्यमपि, किञ्चिद्=किमपि कार्यं,

अभ्याससे समर्थ वाणी, कार्यके उचित समयका अनुसरण और प्रतिभाकी नवीनता ये गुण कार्योंमें मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं॥ ११॥

कामन्दकी—धैर्यरहित होनेसे जीवनसे डरता हुआ माधव कोई दुष्कर कर्म भी नहीं करता है यह बात नहीं (करता ही है)। जैसे कि—

धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते
मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायोः ।
दावप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीय-
स्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान् ॥१२॥

-न क्रियत इति न=अपि तु अधीरेण वियोगिना तेन जीवननिरपेक्षमपि कर्म क्रियत इति भावः। तदेव प्रतिपादयति—तथा हीति । पुस्तकान्तरे 'असौ ही'ति पाठः। तत्र हि=निश्चयेन, असौ=माधवः।

( असौ ) मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते मृत्यवे चक्षुर्धत्ते, बकुलाऽऽमोदगर्भस्य वायोर्मार्गे (मृत्यवे) गात्रं क्षिपति; सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीयः ताम्यन्मूर्तिः ( सन् ) दावप्रेम्णा ( मृत्यवे ) चन्द्रपादान् बहुशः श्रयतीत्यन्वयः।

( असौ=माधवः ) मुकुलिनि=कुड्मलयुक्ते, मुकुलाः सन्ति यस्मिन्स मुकुली, तस्मिन् 'अत इनिठनौ' इतीनि प्रत्ययः। 'कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, मुकुलानामेव तीक्ष्णाऽग्रस्मरबाणत्वादिति भावः। रणत्कोकिले=रणन्तः ( शब्दायमानाः ) कोकिलाः ( पिकाः ) यस्मिन्स तस्मिन्, कोकिलानां कालसैनिकत्वादिति भावः। एतादृशे बालचूते=कोमलरसालतरौ, मृत्यवे=मरणाय, 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति चतुर्थी। चक्षुः=नेत्रम्, चक्षुर्गोलकयोरेव द्वित्वादालोकसाधनस्येन्द्रियस्यैकत्वेनैकवचननिर्देशः। धत्ते=निदधाति, माधवः कुड्मलविलसिते शब्दायमानपरभृतमुखरिते मृदुलरसालसाले भवितव्यं सर्वत्विति दृष्टिं निपातयतीति भावः। एवं बकुलाऽऽमोदगर्भस्य=बकुलाऽऽमोदः ( बकुलपुष्पसौरभम् ) गर्भे ( अन्तर्भागे ) यस्य स तस्य, तादृशस्य वायोः=चन्दनाऽचलमन्थरसमीरणस्य, मदनोत्तेजकस्येति शेषः। मार्गे=सञ्चरणपथे, मृत्यवे=मरणाय, गात्रं=शरीरं, क्षिपति=प्रेरयति, स्थापयतीत्यर्थः। दुःखाऽनुभवैकभाजनेन किमनेन देहेनेति मत्वेति भावः। तथैव सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीयः=सरसम् (आर्द्रम्) यत् बिसिनीपात्रं (कमलिनीपत्रं परिजनैः सन्तापप्रशमनार्थं स्थापितमिति भावः) तदेव उत्तरीयं ( प्रावरणम् ) यस्य सः। उत्तरीयस्थाने क्वचित् 'अन्तराय' इति पाठस्तस्य विघ्न इत्यर्थः। ताम्यन्मूर्तिः=ताम्यन्ती ( ग्लानिमुपयान्ती ) मूर्तिः ( शरीरम् ) यस्य सः, 'मूर्तिः

---

( यह माधव ) मुकुलोंसे सम्पन्न, शब्द करते हुए कोकिलोंसे युक्त कोमल आमके पेड़में मृत्युके लिए दृष्टिपात करता है, बकुलपुष्पके सौरभसे सुवासित वायु बहनेके मार्गमें मृत्युके लिए, अपने शरीरको प्रेरित करता है; आर्द्र कमलिनीपत्रमात्रको उत्तरीयके तौरपर धारण करता हुआ ( माधव ) म्लान शरीरवाला

मालती—( स्वगतम् ) एवं दुष्करं करोति सः । (एव्वं दुक्करं करेदि सो ।)

कामन्दकी—तदेवं प्रकृत्या सुकुमारः कुमारः कदाचिदप्यन्यत्रापरिक्लिष्टपूर्वस्तपस्वी । यतः शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुम् ।

---

काठिन्यकाययोः' इत्यमरः । दावप्रेम्णा=दावाऽनलपक्षपातेन, 'इमे चन्द्रपादा दावाऽनला एवे'ति धियेति भावः । क्वचित् 'दाहप्रेम्णे'ति पाठान्तरम् । मृत्यवे=मरणार्थं, चन्द्रपादान्=इन्दुकिरणान्, 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशा' इत्यमरः । बहुशः=वारं वारं, 'बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' इति शस्प्रत्ययः । श्रयति=आश्रयति । अत्र बालचूतादीनां दामोद्दीपकतयाऽनर्थहेतुत्वेन विप्रलम्भशृङ्गारस्योत्कर्षः सूचितः । अत्रैकस्मिन्मृत्युलक्षणे कार्ये बालचूतदर्शनादीनां बहुक्रियाणां साधनत्वेन समुच्चितत्वात्समुच्चयाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १२ ॥

'धत्ते' इत्यादिश्लोपकस्याऽनन्तरं माधववक्तृत्वेन 'अन्य एवाऽक्षुण्णः कथाप्रकारो भगवत्या' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र अक्षुण्णः=अन्याऽननुभूतः, कथाप्रकारः=कथनक्रम इत्यर्थः ।

मालतीति । सः=माधवः । 'दुक्करम्' इत्यत्र क्वचित् 'अतिदुक्करम्'इति पाठान्तरम् ।

कामन्दकीति । प्रकृत्या=स्वभावेन, 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया । सुकुमारः=मृदुः, कुमारः=माधवः । कुमारपदेन जीवत्पितृकत्वमविवाहितत्वं चाऽभिव्यज्यते । कदाचिदपि=जातुचिदपि, अन्यत्र=अन्यस्यां, ललनायामिति भावः । 'सप्तम्यास्त्रल्' इति त्रल् 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव' इति नयेन पुंवद्भावः । अपरिक्लिष्टपूर्वः=पुरा अप्राप्तक्लेशः, पूर्वमपरिक्लिष्टः, अनेन त्वय्येव प्रथममनुरक्त इति ध्वनितम् । 'सह सुपा' इति समासः । अत एव तपस्वी=अनुकम्पनीयः, 'तपस्वी तापसे चाऽनुकम्प्ये चे'ति विश्वः । यतः=सौकुमार्याद्धेतोः, अतः 'अधुने'ति पुस्तकान्तरपाठः । अनेन=माधवेन । अतस्त्वय्यनुरागी युवकोऽयमनुरागिण्या त्वया रक्षणीय इति भावः ।

---

होकर दावानलकी प्रीतिसे मृत्यु ( मौत ) के लिए चन्द्रकिरणोंको बारम्बार आश्रय लेता है ॥ १२ ॥

मालती—( मन ही मन वे ( माधव ) इस प्रकारसे दुष्कर कर्म कर रहे हैं ।

कामन्दकी—इस कारणसे इस प्रकार स्वभावसे सुकुमार कुमार ( माधव ) कभी भी दूसरी स्त्रीमें क्लेशके अनुभवसे शून्य होनेसे कृपाका पात्र है । क्योंकि इससे ( ऐसी स्थितिमें ) मरणका भी अनुभव किया जा सकता है ।

मालती—सखि, आत्मनः करणान्मर्त्यलोकालंकारभूतस्य तस्य किमप्याशङ्कमाना भूताविष्टेव न जानामि किं प्रतिपद्यत इति ( सहि, अत्तणो कालणादो मच्चलोअलंकारभूदस्स तस्स कि वि आसंकमाणा भूदाविट्ठा विअ ण आणामि किं पडिवज्जदि त्ति )

माधवः—दिष्ट्या, अनुकम्पितोऽस्मि भगवत्या ।

लवङ्गिका—भगवत्येवंवादिनीत्याख्यायते । अस्माकमपि भर्तृदारिका

---

मालतीति । आत्मनः = स्वस्याः, किमपि = किञ्चिदपि, अमङ्गलत्वाद्वचनाऽनर्हं, मरणमिति भावः । अत्र सौकुमार्याऽभिधानो गुणस्तल्लक्षणं यथा चन्द्रालोके—

'सौकुमार्यमपारुष्यं पर्यायपरिवर्तनात् ।' इति ।

भूताविष्टा = भूतेन ( देवयोनिविशेषेण ) आविष्टा ( ग्रस्ता ), 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।' इत्यमरः । क्वचित् 'भीदाविदाह्मि' ( भीतायिताऽस्मि ) इति पाठान्तरं, तत्र भीतवत् आचरितेति । 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे' त्याचारे क्यङ् । किं प्रतिपद्यते = उपक्रम्यते, एतद्वाक्यस्योत्तरमिति शेषः । ज्ञानाऽभावादस्य वचनस्य प्रतिवचनोपक्रमेऽहं शक्ता नाऽस्मि त्वमेव मदवस्थोचितं ब्रूहीत्याशयः । 'उपक्रमज्ञानस्वीकारे प्रतिपद्यते ।' इत्याख्यातचन्द्रिकायां भट्टमल्लः । लवङ्गिकां प्रति जनान्तिकमिदम् ।

माधव इति । दिष्ट्या = भाग्यवशात्, अव्ययमेतत् । अनुकम्पितोऽस्मि = दयाऽऽस्पदीकृतोऽस्मि, लतामात्राऽन्तरितस्य श्रुतकामन्दकीवाक्यस्य माधवस्य हर्षवशत्वादियमुक्तिः ।

लवङ्गिकेति । एवंवादिनी = एतादृशभाषिणी, माधवमन्मथाऽवस्थाज्ञापिनीति भावः । इति = अस्माद्धेतोः, आख्यायते = कथ्यते, मयाऽपि मालत्यवस्थेति शेषः । गुरुजनाऽन्तिके लज्जापारवश्यान्मदनकदनजनितां स्वीयां दशां निवेदितुमसमर्थाया मालत्या माधवाऽनुरागज्ञापिकामवस्थामहं वर्णयामीति भावः । भर्तृदारिका = स्वामिकन्यका मालतीति भावः । भवनाऽऽसन्नरथ्यामुखमुहूर्तमण्डनस्य = भवनस्य ( मन्दिरस्य ) आसन्ने ( समीपे ) या रथ्या ( प्रतोली ), तस्या मुखे ( अग्रे ) मुहूर्तं ( कंचित्कालम् ) यथा तथा मण्डनस्य ( भूषणस्य ) तस्यैव = माधवस्यैव,

---

मालती—सखि ! अपने कारणसे मनुष्यलोकके अलङ्कारस्वरूप उन ( माधवजी ) का अनिर्वचनीय विपत्तिकी आशङ्का करती हुई भूतके आवेशसे युक्तके सदृश होकर मैं नहीं जानती हूँ कि कैसे उत्तरका उपक्रम दिया जाय ।

माधव—भाग्यसे मैं भगवतीसे अनुकम्पित हुआ हूँ ।

लवङ्गिका—भगवती माधवके विषयमें ऐसा कहनेवाली है इसलिए ( मुझसे

भवन। सन्नरथ्यामुखमुहूर्तमण्डनस्य तस्यैव बहुशोऽनुभूतदर्शना भूत्वा रविकराश्लिष्टमुग्धकमलिनीकन्दसुन्दरावयवशोभाविभाविताऽनङ्गवेदनाव्यतिकररमणीयापि परिजनं दूनयति। नाभिनन्दति कलाक्रीडाः। केवलं ग्लायमानकान्तहस्तपर्यस्तगण्डमण्डला दिवसान्गमयति। अपि च विकसितार-

बहुशः=अनेकशः, अनुभूतदर्शना=प्राप्तसाक्षात्कारा, चक्षुःप्रीतिरनेनोक्ता। रविकराश्लिष्टमुग्धकमलिनीकन्दसुन्दराऽवयवशोभाविभाविताऽनङ्गवेदनाव्यतिकररमणीया=रविकरैः (सूर्यकिरणैः) आश्लिष्टं (स्पृष्टम्) मुग्धं (सुन्दरम्) यत् कमलिनीकन्दं (नलिनीमूलम्) तदिव सुन्दरी (मनोरमा) या अवयवशोभा (अङ्गकान्तिः), तया विभाविता (ज्ञापिता) या अनङ्गवेदना (मन्मथपीडा) तस्या व्यतिकरः (सम्बन्धः), क्वचित् 'व्यतिकर' पदपाठाऽभावः। तेन रमणीया (मनोहरा) अपि, परिजनं=परिचारकजनं, मादृशमिति शेषः। दुनोति=पीडयति, अनेनाऽङ्गग्लानिः पाण्डिमा च ज्ञापितौ। कलाक्रीडाः=नृत्यगीतादिकाः कलाः, कन्दुकादिखेलाश्च, न अभिनन्दति=न प्रशंसति, एतेनाऽरतिः प्रतिपादिता। यद्येवं तर्हि कथं दिनं यापयतीत्याह—केवलमिति। ग्लायमानकान्तहस्तपर्यस्तगण्डमण्डला=ग्लायमानं (ग्लायमानम्) कान्तहस्ते (सुन्दरकरे) पर्यस्तं (न्यस्तम्) गण्डमण्डलं (कपोलफलकम्) यस्याः सा, इत्थं दिवसान् गमयति=यापयति। एतेन चेतसश्चिन्ताक्रान्तत्वं सूचितम्। क्वचिद् 'ग्लायमाना' पदस्थाने 'कमलायमान' पदपाठस्तत्र कमलायमानः=कमलवदाचरन् इति हस्तविशेषणत्वेन व्याख्या कार्या। विकसिताऽरविन्दमकरन्दविष्यन्दसुन्दरेण=विकसितस्य (प्रफुल्लस्य) अरविन्दस्य (कमलस्य) यो मकरन्दविष्यन्दः (पुष्परसप्रस्रवः) स इव सुन्दरः

भी (मालतीके विषयमें) कहा जाता है। हमलोगोंकी स्वामिकन्या (मालती) भी भवनके निकटवर्ती रास्ताके अग्रभागमें कुछ समय तक भूषणभूत उन्हीं (माधवजी) को बारम्बार देखती हुई सूर्यकिरणोंसे स्पृष्ट सुन्दर कमलिनीमूलकी सदृश मनोरम अवयवशोभासे ज्ञापित कामपीड़ाके सम्बन्धसे सुन्दरी होती हुई भी मेरे सदृश परिजनको पीड़ित करती है। नृत्य, गीत आदि कलाओंको और कन्दुकक्रीड़ा आदि खेलोंको भी नहीं चाहती हैं। केवल ग्लानिको प्राप्त होनेवाला सुन्दर हाथमें मुखमण्डलको रखती हुई दिनोंको बिताती हैं। और भी—विकसित (खिले हुए) कमलके पुष्परसके प्रस्रवके सदृश सुन्दर, कुछ विकसित कुन्द और रसालपुष्पके रसबिन्दुसमूहको धारण करनेवाले मन्त्रिभवनके उद्यानकी सीमाभूमिमें सञ्चरण

विन्दमकरन्दविष्यन्दसुन्दरेण दरदलितकुन्दमाकन्दमधुविन्दुसंदोहवाहिना भवनोद्यानपर्यन्तमारुतेनोत्ताम्यति। अन्यच्च यतः प्रभृति तस्मिन्दिवसे निजमहोत्सवाभ्युदयदर्शनार्थं प्रतिपन्नरूपस्य कामकाननालंकारिणो भगवतो मन्मथस्येव तस्य माधवस्य विविधविभ्रमानुरागानुबन्धमहर्धीकृत-

---

(मनोहरः) तेन। दरविदलितकुन्दमाकन्दमधुविन्दुसन्दोहवाहिना = दरम् (ईषत्, यथा तथा) विदलिते (विकसिते) ये कुन्दमाकन्दे (माध्यरसालपुष्पे) तयोः मधुविन्दुसन्दोहं (रसपृषतसमूहम्) वहतीति तच्छीलस्तेन, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिप्रत्ययः। 'ईषदर्थेऽव्ययं दरम्' इति क्षीरस्वामी। एतादृशेन सौरभसम्पन्नेन—भवनोद्यानपर्यन्तमारुतेन = भवनोद्यानस्य (अमात्यमन्दिरोपवनस्य) पर्यन्तमारुतेन (सीमाभूमिसञ्चारिवायुना)। उत्ताम्यति = उत्कण्ठिता भवति, उदुपसर्गपूर्वकात् 'तमु काङ्क्षायाम्' इति श्यन्विकरणदैवादिकाद्धातोर्लट्। एतेनोद्दीपनविभावजनिता वेदना निवेदिता। अन्यच्च = अपरं च, यतः = यस्मात्कालादिति 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्। 'कार्त्तिक्याः प्रभृती'ति भाष्यप्रयोगात् प्रभृतिपदेन योगे पञ्चमी। निजमहोत्सवाऽभ्युदयदर्शनाऽर्थं = निजः (आत्मीयः) महोत्सव एव अभ्युदयस्तस्य दर्शनाऽर्थं (विलोकनार्थम्), क्रियाविशेषणम्। प्रतिपन्नरूपस्य = प्रतिपन्नं (गृहीतम्) रूपं (शरीरम्) येन, तस्य, कामस्याऽनङ्गत्वात्पुरातनत्वाच्चेति भावः। कामकाननाऽलङ्कारिणः = कामकाननम् (मदनोपवनम्) अलङ्करोति (भूषयति) इति तच्छीलस्तस्य। स्वसौन्दर्याऽतिशयेनोपवनशोभाऽतिशयाधायकस्येति भावः। क्वचित् 'कामकाननाऽलङ्कारकारिण' इति पाठः। विविधविभ्रमाऽनुरागाऽनुबन्धमहर्द्धीकृतयौवनारम्भं = विविधैः (अनेकप्रकारैः) विभ्रमैः (विलासैः) अनुरागाऽनुबन्धेन च (प्रणयाऽनुसरणेन च) महर्द्धीकृतः (समृद्ध्यास्पदीकृतः) यौवनारम्भः (तारुण्योपक्रमः) येन तत्, 'परस्पराऽवलोकनसुखम्' इत्यस्य विशेषणमिदम्, एवमग्रेऽपि। पुस्तकान्तरे तु 'विविधविभ्रमाऽभिरामम् अनुरूपाऽनुरागाऽनुबन्धमहार्घीकृतयौवनारम्भम्' इति पाठस्तत्र विविध-

---

करनेवाले वायुसे उत्कण्ठित हो जाती हैं। और भी—जिस समयसे उस दिनमें अपने महोत्सवरूप अभ्युदयको देखनेके लिए रूपको धारण करनेवाले मदनोपवनको अलंकृत करनेवाले भगवान् कामदेवके तुल्य उन माधवके अनेक प्रकारके विलासोंसे और प्रेमके अनुसरणसे भी यौवनके आरम्भको समृद्धिका स्थान बनानेवाले, परस्पर नेत्रविनिपातमें वञ्चना (कारणवश दर्शनाभाव) के अवसरमें कामज्वरसे युक्त चित्तमें शीघ्रता करनेवाले कौतुकसे शोभित भीतिके कारण चेष्टाभावसे

यौवनारम्भमन्योन्यदृष्टिविनिपातवञ्चनावसरज्वरितचित्तत्वरत्कौतूहलोल्ल सितसाध्वसस्तम्भमन्थरावयवप्रतिलग्नस्वेदपुलककम्पानन्दितसखीजनं परस्परावलोकनसुखं समासादितम्। ततः प्रभृति सविशेषदुःसहायासविजृम्भणोद्दामदारुणं दशापरिणाममनुभवन्ती मुहूर्तसंप्राप्तपूर्णचन्द्रोदयेव बाल-

विभ्रमैरभिरामम् ( मनोहरम् ) तथा च अनुरूपस्य ( योग्यस्य ) अनुरागस्य अनुबन्धेन महार्घीकृतः ( बहुमूल्यीकृतः, श्लाघनीयः कृत इति भावः ) यौवनारम्भो येन तदित्यर्थः। तत्र महार्घीकृत इत्यत्र महान् अर्घः ( मूल्यम् ) यस्य स महार्घः, असहार्घो महार्घो यथा संपद्यते तथा कृतः, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इति च्विप्रत्ययः। अन्योन्यदृष्टिविनिपातवञ्चनाऽवसरज्वरितचित्तत्वरत्कौतूहलोल्लसितसाध्वसस्तम्भमन्थराऽवयवप्रतिलग्नस्वेदपुलककम्पाऽऽनन्दितसखीजनम् = अन्योन्ययोः ( परस्परयोः ) यो दृष्टिविनिपातः ( नेत्रविनिपातः ) तस्मिन् वञ्चना ( प्रतारणा, लक्षणया दर्शनाऽभावः प्रावपरस्परदर्शनेऽपि तदनु लज्जावशाद्व्यतिबन्धान्तरपाताद्वा जायमानो यो दर्शनाऽभाव इति भावः ), तस्या अवसरे ( समये ) ज्वरितं ( संजातकामज्वरम् ) यच्चित्तं ( मानसम् ), तस्मिंस्त्वरमाणेन ( त्वरां कुर्वता ) कौतूहलेन ( कौतुकेन ) उल्लसिताः ( शोभिताः ) साध्वसस्तम्भमन्थराऽवयवाः ( साध्वसस्तम्भात् = भीतिजनितचेष्टाऽभावात्, मन्थराः = मन्दाः, स्वस्वकार्यसम्पादनाऽसमर्था इति यावत्, एतादृशाः ये अवयवाः = हस्तपादाद्यङ्गानि ), तेषु प्रतिलग्नाः ( सञ्जाताः ) ये स्वेदपुलककम्पाः ( सात्त्विकभावरूपा घर्मरोमाञ्चवेपथवः ), तैः आनन्दिताः ( हर्षिताः ) सखीजनाः ( वयस्यागणाः ) येन तत्। एतादृशं परस्पराऽवलोकनसुखं मिथो ( दर्शनाऽऽनन्दः ) समासादितं=प्राप्तं, मालत्येति शेषः। ततः प्रभृति = तस्मात्कालादारभ्य, सविशेषदुःसहायासविजृम्भणोद्दामदारुणं = सविशेषः ( अतिशयाऽन्वितः ) दुःसहो ( दुर्मर्षणः ) य आयासः ( पीडा, कामजनितेति भावः ) तस्य विजृम्भणं ( वर्द्धनम् ) तेन उद्दामदारुणं ( महाभयङ्करम् ), पुस्तकान्तरे तु '......विजृम्भमाणोद्दामदेहदाहदारुणम्' इति पाठभेदस्तत्र आयासेन विजृम्भमाणः ( वर्द्धमानः ) उद्दामः ( महान् ) यो देहदाहः ( शरीरतापः ), तेन दारुणमित्यर्थः कार्यः। एतादृशं दशापरिणामम् = अवस्थापरिपाकम्, कामजनितमिति भावः। मुहूर्तसम्प्राप्तपूर्णचन्द्रोदया = मुहूर्तेन ( अल्पकालेन, 'अपवर्गे तृतीया' इति तृतीया, ततस्तृतीयातत्पुरुषः ) सम्प्राप्तः ( समासादितः, लोचनगोचरीकृत इति भावः ) पूर्णचन्द्रोदयः ( पूरितेन्दूद्गमः ) यया सा।

मन्द अवयवोंमें उत्पन्न स्वेद ( पसीना ) रोमाञ्च और कम्पसे सखीजनोंको आनन्दित करनेवाला परस्परमें दर्शनका सुख उन्होंने पा लिया। उस समयसे

कमलिनी परिम्लायति। तथापि मुहूर्तमात्रहृदयविनिहितनिर्मीयमाणवल्लभसमागमा निर्भरसलिलासारसिच्यमानेव मेदिनी शीतलायत इति जानामि। येन प्रस्फुरितरदनच्छदोज्ज्वलदन्तमौक्तिकपङ्क्तिकान्तिसविशेषशोभितं निरन्तरोल्लसितपुलकपक्ष्मलकपोलघूर्णमानसंततानन्दबाष्पस्तबक-

---

एतादृशी बालकमलिनीव = प्रत्यग्रपद्मिनीव, परिम्लायति = परिम्लाना भवति, यथा पूर्णचन्द्रोदयेन बालकमलिनी सङ्कुचिता भवति तथैव मालत्यपि मदनोद्दीपनेन म्लाना भवतीत्युपमाऽलङ्कारः। मुहूर्तमात्रहृदयविनिहितनिर्मीयमाणवल्लभसमागमा = मुहूर्तमात्रेण (अल्पकालमात्रेण, 'अपवर्गे तृतीया' इति तृतीया) हृदये (मानसे) विनिहितः (स्थापितः) निर्मीयमाणः (रच्यमानः, सङ्कल्पेनोपस्थाप्यमान इति भावः, पुस्तकान्तरे तु 'निर्मीयमाण' पदं नाऽस्ति) वल्लभसमागमः (वल्लभस्य = प्रियस्य, माधवस्येति भावः, समागमः = संगमः) यया सा। अत एव—निर्भरसलिलाऽऽसारसिच्यमाना = निर्भरः (निःशेषः भरः = भारो यस्मिन्स साऽतिशय इत्यर्थः) यः सलिलासारः सलिलस्य = जलस्य, आसारः = धारासम्पातः) तेन सिच्यमाना (उक्ष्यमाणा), मेदिनी इव=पृथिवी इव, शीतलायते = शीतलावदाचरति, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति क्यङ् ङित्वात् 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' इत्यात्मनेपदम्। सङ्कल्पोपनतकान्तसमागमेन मालती कंचित्कालं यावन्मदनकदनजनितां वेदनां नाऽनुभवतीति तात्पर्यम्। इति = एवं, जानामि = अवगच्छामि। एतादृशज्ञानज्ञापकं हेतुमाह-येनेति। येन=हृदयस्थकान्तसमागमरूपकारणेन, प्रस्फुरितरदनच्छदोज्ज्वलदन्तमौक्तिकपङ्क्तिकान्तिसविशेषशोभितं=प्रस्फुरितः (संचलितः, भवनाऽर्पितप्रियचुम्बनेनेति भावः) यो रदनच्छदः (अधरोष्ठः, अधरोष्ठस्यैव चुम्बनास्पदत्वादेकवचनेन निर्देशः) तेन उज्ज्वलन्ती (प्रकाशमाना) या दन्तमौक्तिकपङ्क्तिः (दशनमुक्ताऽऽवलिः, दन्ता मौक्तिकानीवेति दन्तमौक्तिकानि, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः, दन्तमौक्तिकानां पङ्क्तिः) तया सविशेषं (साऽतिशयं यथा तथा) शोभितं (शोभासम्पन्नम्) मुग्धमुखपुण्डरीकमित्यस्य विशेषणमिदमेवं परत्राऽपि, एवं च निरन्तरोल्लसितपुलकपक्ष्मलकपोलघूर्ण-

---

अतिशय दुःसह पीड़ाके बढ़नेसे महाभयङ्कर अवस्था-परिणामका अनुभव करती हुई मुहूर्तमात्र पूर्णचन्द्रोदयको प्राप्त करनेवाली बालकमलिनीकी तरह परिम्लान होती हैं। तो भी अल्पकालमात्रसे हृदयमें कान्तसमागमका अनुभव कर अतिशय वृष्टिधारासे सिक्त पृथिवीकी तरह शीतल हो जाती हैं मैं ऐसा समझती हूं। जिस कारणसे कि संचलित अधरसे प्रकाशमान मोतीके सदृश दाँतोंकी कान्तिसे

मीषद्विषमनिष्पन्दमन्थरतारोत्तानमसृणमुकुलायमाननेत्रनीलोत्पलमविर-लोद्भिन्नस्वेदजलबिन्दुसुन्दरनिटिलचन्द्रलेखामनोहरं मुग्धमुखपुण्डरीक-मुद्वहन्ती विदग्धसहचरीचित्तसंशयितकौमारभावा भवति। किं च उद्दा-

मानसन्तताऽऽनन्दबाष्पस्तवकं = निरन्तरम् (निविडं यथा तथा) उल्लसिताः (उत्पन्नाः) ये पुलकाः (रोमाञ्चाः) तैः पक्ष्मलौ (सञ्जातकिञ्जल्काविव, कण्टकिता-विति भावः) एतादृशौ यो कपोलौ, तयोः घूर्णमानः (भ्रमन्, प्राप्तप्रसर इति भावः) अत एव सन्ततः (व्याप्तः) आनन्दबाष्पस्तवकः (हर्षाऽश्रुसमूहः) यस्मि-स्तत्, कल्पनाभावितचुम्बनाऽनुभवादिति भावः। ईषद्विषमनिष्पन्दमन्थरतारो-त्तानमसृणमुकुलायमाननेत्रनीलोत्पलम् = ईषत् (स्तोकं, यथा स्यात्तथा) विषमे (वैषम्ययुक्ते, संकल्पोपनीतप्रियदर्शनबलादसाधारणे विषमस्थाने क्वचित् 'विकसित' पदस्य पाठः। निष्पन्दे (निश्चले, मौग्ध्यादिति भावः) मन्थरतारे (मन्दकनीनिके, मन्थरे तारे ययोस्ते, मन्थरतारता च संकल्पजनितया नखदशनक्षतभावनया प्रियं प्रति सासूयत्वादवसेया) उत्ताने (उन्नते, उन्नतकान्तमुखदर्शनायेति भावः) मसृणे (कोमले, स्नेहभावनयेति भावः) मुकुलायमाने (कुड्मलायमाने, रताऽ-वसानभावनयेति भावः, मुकुलवदाचरती इति, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति क्यङ्) नेत्रनीलोत्पले (नयनेन्दीवरे, नेत्रे, एव नीलोत्पले) यस्मिंस्तत्। अविरलोद्भिन्न-स्वेदजलबिन्दुसुन्दरनिटिलचन्द्रलेखामनोहरम्=अविरलम् (निविडं यथा स्यात्तथा) उद्भिन्नाः (उद्भूताः) ये स्वेदजलबिन्दवः (घर्माऽम्बुपृषताः, सङ्कल्पभावितरति-श्रमादिति भावः) तैः सुन्दरी (मनोहरा) या निटिलचन्द्रलेखा (ललाटेन्दुरेखा, निटिलमेव चन्द्रलेखा, तया मनोहरं = सुन्दरं, 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति रूपक-समासः, पुस्तकान्तरे तु '......सुन्दरललाटपट्टं नवचन्द्रलेखामनोहरम्' इति पाठा-न्तरम्)। एतादृशं मुग्धमुखपुण्डरीकं = मुग्धं (सुन्दरम्) मुखपुण्डरीकम् (वदन-श्वेतकमलम्, मुखं पुण्डरीकमिवेति 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः), उद्वहन्ती = धारयन्ती, विदग्धसहचरीचित्तसंशयितकौमारभावा =

सविशेष शोभित, घनभावसे उत्पन्न रोमाञ्चोंसे कण्टकित कपोलोंमें प्राप्तप्रसर और व्याप्त हर्षाश्रुसमूहसे युक्त, कुछ विषम और निश्चल मन्द तारा-(आँखकी पुतलिओं) से युक्त एवम् उन्नत, कोमल, मुकुलोंके सदृश नीलकमलोंके तुल्य नेत्रोंसे सम्पन्न, निबिड भावसे उत्पन्न स्वेदजलकी बिन्दुओंसे मनोहर ललाटचन्द्ररेखासे सुन्दर, श्वेतकमलके सदृश मनोहर मुखको धारण करती हुई वे निपुण सहचारियोंके चित्तमें कुमारीभावमें सन्देह पैदा करनेवाली होती हैं। और भी—चन्द्रकिरणोंके निबिड

मशशिमयूखनिकुरम्बचुम्बितप्रवृत्तनिष्यन्दचन्द्रमणिहारधारिणी प्रचुरकपूरसविशेषशिशिरचन्दनरसच्छटासारनिकरदन्तुरितबालकदलीपत्रशयना पादसंवाहनादिव्यापारत्वमाणसहचरीसार्थविरचितापनीतकमलिनीदलज-

विदग्धसहचरीणां ( निपुणसखीनां, कामकेलिकलास्विति भावः ) चित्ते ( मानसे ) संशयितः ( आशङ्काविषयीकृतः, इयं कान्तसंगमं न जानीयाच्चेत्तर्हि कथमधरस्पन्दादिमती स्यादित्याकाररूपैरिति भावः ) कौमारभावः ( कुमारीभावः ) यस्याः सा, तादृशी भवति। एवं च—उद्दामशशिमयूखनिकुरम्बचुम्बितप्रवृत्तनिष्यन्दचन्द्रमणिहारधारिणी = उद्दामं ( महत् ) शशिमयूखानां ( चन्द्रकिरणानाम् ) यत् निकुरम्बं ( समूहः ) तेन प्राक् चुम्बितः ( संसृष्टः ) पश्चात् प्रवृत्तः ( संजातः ), 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेने'ति पूर्वकालसमासः। एतादृशो निष्यन्दो (द्रवः) यस्य तादृशो यश्चन्द्रमणिहारः (चन्द्रकान्तमाल्यम्, हारपदस्य मुक्तामालावाचकत्वेऽपि चन्द्रमणिपदसम्बन्धेनाऽयमर्थो बोद्धव्यः, यद्वा चन्द्रकान्तमणिप्रचुरमौक्तिकमाल्यम् ), तं धारयतीति तच्छीला। एवं च प्रचुरकपूरसविशेषशिशिरचन्दनरसच्छटासारनिकरदन्तुरितबालकदलीपत्रशयना=प्रचुरकपूरेण (अधिकघनसारेण ) सविशेषं ( साऽतिशयं, यथा तथा ) शिशिरा ( शीतला ) या चन्दनरसच्छटा ( श्रीखण्डद्रवसमूहः ) तस्याः सारनिकरेण ( स्थिरांऽशसमूहेन ) दन्तुरितं ( विषमीकृतम् ) यत् बालकदलीपत्रं ( मृदुलरम्भादलम् ), तदेव शयनं ( संवेशस्थानम् ) यस्याः सा, मदनदाहनिवारणाऽर्थमिति भावः। तथा च पादसंवाहनादिव्यापारत्वरमाणसहचरीसार्थविरचितोपनीतकमलिनीदलजलार्द्रतालवृन्ता = पादसंवाहनम् ( चरणमर्दनम् ) आदिः येषां ते एतादृशा ये व्यापाराः ( कर्माणि ) तेषु त्वरमाणः ( त्वरां कुर्वन् ) यः सहचरीसार्थः ( सखीसमूहः ) तेन प्राक् विरचितम् ( निर्मितम् ) पश्चात् उपनीतं ( समीपप्रापितम् ) तादृशं यत् कमलिनीदलं ( पद्मिनीपत्रम् ) तदेव जलार्द्रं ( सलिलक्लिन्नम् ) तालवृन्तं ( व्यजनम् ) यस्याः सा। सखीगणेन तापापनोदार्थं क्रियमाणेन पादसंवाहनादिव्यापारेण जलार्द्रकमलिनीपत्रवातसंचारणेनापीयं भर्तृदारिका मालती—उन्निद्रा एव = जाग-

समूहसे सम्पर्क होनेसे द्रवयुक्त चन्द्रकान्तमणिमालाको धारण कर प्रचुर कर्पूरसे सविशेष शीतलचन्दनरससमूहके सारसमूहसे विषम किये गये कोमल कदलीपत्रमें सोती हुई चरणसंवाहन आदि कर्मोंमें शीघ्रता करनेवाले सखीसमूहसे निर्मित और समीप लाये गये कमलिनीपत्रको ही जलसे आर्द्र पंखा बनाती हुई ( मालती ) बिना निद्राके ही रातोंको बिता देती हैं। (स्वामिकन्या) किसी प्रकारसे निद्रासुखको

लार्द्रतालवृन्तोन्निद्रैव रजनीर्गमयति। कथमप्युपलब्धनिद्रासुखा प्रक्षालित-पादपल्लवोद्वमत्पिण्डालक्तकरसा थरथरायमानपीवरोरुमूलपार्श्वविसंवादि-तनीवीबन्धनोत्क्षुभ्यमानहृदयान्तरोत्तरङ्गनिःश्वासविषमोच्छ्वसत्पुलकपक्ष्मल-

रिता सत्येव, उद्गता निद्रा यस्याः सा। रजनीः = रात्रीः, ( 'कालाऽध्वनोरत्यन्त-संयोगे' इति कालाऽत्यन्तसंयोगे द्वितीया ), गमयति = यापयति, एतेन निद्राच्छेदः प्रतिपादितः। जातुचिच्च = कथमपि = केनापि प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः। उपलब्धनिद्रासुखा = उपलब्धं ( प्राप्तम् ) निद्रासुखं ( संवेशाऽऽनन्दः ) यया सा। प्रक्षालितपादपल्लवोद्वमत्पिण्डालक्तकरसा = प्रक्षालिते ( अविरलस्वेदजलक्षालिते ) ये पादपल्लवे ( चरणकिसलये ) ताभ्याम् उद्वमन् ( उद्गिरन् ) पिण्डालक्तकरसः ( पिण्डीभूतलाक्षारसः ) यस्याः सा। पुस्तकान्तरे तु—'स्वेदप्रसृतपादपल्लवोद्भ्रान्त-पिण्डालक्तकरस' इति पाठान्तरम्। तत्र स्वेदेन ( घर्मजलेन, प्रियसमागमसङ्कल्प-जनितेनेति भावः ) प्रसृतः ( विस्तृतः ) पादपल्लवाभ्यामुद्भ्रान्तः पिण्डाऽलक्तकरसो यस्याः सा इत्यर्थः कार्यः। लाक्षारसच्छलेनाऽनुरागमिवोद्वमतीति भावः। अति-घनत्वद्योतनाय पिण्डपदं चरितार्थम्। थरथरायमानपीवरोरुमूलपार्श्वविसंवादितनी-वीबन्धना = थरथरायमानं ( कम्पमानं, थरथरवदाचरत्, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च'ेति क्यङन्ताल्लटः शानच्, थरथरेत्यव्यक्तशब्दाऽनुकारकं देशीयपदम् ) पीवरं (पुष्टम्) यत् ऊरुमूलं ( सक्थिमूलम् ) तस्य पार्श्वात् ( समीपात् ) विसंवादितं (विगलितम्, क्वचिद्विसंवादीति पाठान्तरम् ) नीवीबन्धनं ( वसनग्रन्थिबन्धः ) यस्याः सा। तत्र च प्रियस्योर्वाक्रमणभावनया कम्पः, प्रियाकर्षणभावनया नीवीस्खलनं चेति यथायथं बोध्यम्। एतेन सङ्कल्पजनितः कान्तसमागमः प्रदर्शितः। उत्क्षुभ्यमाणहृदयान्तरो-त्तरङ्गनिःश्वासविषमोच्छ्वसत्पुलकपक्ष्मलपयोधरोपरिविक्षिप्तवेपमानभुजलतावेष्टनबन्ध-ना = उत्क्षुभ्यमाणं = ( जायमानोत्क्षोभम् ) यत् हृदयं ( चित्तम् ), तस्य अन्तरे ( मध्ये, क्वचिदन्तरिति पाठान्तरम् ) उत्तरङ्गाः ( उद्गततरङ्गाः, याताऽऽयातवन्त इति भावः ) एतादृशा ये निःश्वासाः ( निःश्वसितवाताः ) तैर्विषमम् ( अनेकप्रकारं यथा स्यात्तथा ) उच्छ्वसन्तः ( संजायमानाः ) ये पुलकाः ( रोमाञ्चाः ) तैः पक्ष्मलौ ( सरोमाञ्चौ ) यौ पयोधरौ ( स्तनौ ) तयोरुपरि ( ऊर्ध्वभागे ) विक्षिप्ता ( प्रेरिता, निहितेति पाठे निहिता = स्थापिता ) वेपमाना ( कम्पमाना ) या भुजलता ( बाहुवल्ली, संकल्पभावितकान्तस्येति भावः ) तया यत् आवेष्टनं ( परिवेष्टनम् ) तदेव बन्धनं ( बन्धः ) यस्याः सा। मालत्याः प्रबोधोत्तरकालाऽवस्थामाह—

पाती हैं, अविरल स्वेदजलसे उनके चरणपल्लवासे पिण्डीभूत लाक्षारस प्रक्षालित हो जाता है। थर-थर काँपते हुए पुष्ट ऊरुमूलके समीपसे वस्त्रग्रन्थि विगलित हो जाती

लपयोधरोपरिविक्षिप्तवेपमानभुजलतावेष्टनबन्धना झटिति प्रतिबोधवेलाविसर्जितापाङ्गदृष्टिविनिपातविज्ञानशून्यशयनीयसंजातमोहमीलल्लोचना ससंभ्रमसखीजनप्रयत्नप्रतिपन्नमूर्च्छाविच्छेदसमयसंगलितदीर्घनिःश्वासजनितजीविताशा किंकर्तव्यतामूढ प्रथमं प्रार्थितनिजजीवितावसानं दुर्वारदैवदुर्विलसितोपालम्भमात्रव्यापारं सखीजनं करोति। तत्पश्यतु भगवती।

झटितीति। झटिति=सत्वरम्, प्रतिबोधवेलाविसर्जिताऽपाङ्गदृष्टिविनिपातविज्ञानशून्यशयनीयसंजातमोहमीलल्लोचना=प्रतिबोधस्य (जागरणस्य) या वेला (कालः) तत्र विसर्जिता (त्यक्ता) या अपाङ्गदृष्टिः (कटाक्षः नयनान्तदर्शनमित्यर्थः, कुत्रचिदपाङ्गस्थाने 'उद्विग्न' पदपाठस्तत्र उद्विग्ना=भीता, दृष्टिः=नयनमित्यर्थः। प्रियदर्शनाऽभावशङ्कयेति भावः) तद्विनिपातेन (तद्व्यापारेण) यद्विज्ञानम् (अनुभवयुक्तं ज्ञानं, कान्ताऽभावरूपमिति भावः, 'विज्ञातम्' इति पाठे अवगतमित्यर्थः) तदवगतं शून्यं (कान्तरहितम्) यत् शयनीयं (शय्यास्थानम्) तस्मिन् संजातः (समुत्पन्नः) यः मोहः (मूर्च्छा) तेन मीलती (सङ्कुचती) लोचने (नेत्रे) यस्याः। सा ससंभ्रमसखीजनप्रयत्नप्रतिपन्नमूर्च्छाविच्छेदसमयसंगलितदीर्घनिःश्वासजनितजीविताशा=ससम्भ्रमाः (सत्वराः, मोहप्रतीकारायेति भावः) ये सखीजनाः (वयस्याजनाः) तेषां प्रयत्नेन (प्रयासेन, व्यजनवीजनाऽऽदिरूपेणेति भावः) प्रतिपन्नः (प्राप्तः) यो मूर्च्छाविच्छेदः (मोहाऽपगमः) तस्य समये (काले) संगलितः (सञ्जातः) यो दीर्घनिःश्वासः (आयतनिःश्वसितम्) तेन जनिता (उत्पादिता) जीविताऽऽशा (जीवनाऽऽशा) यस्याः सा, एतादृश्यस्माकं भर्तृदारिका मालती सखीजनं=वयस्याजनम्, 'अस्मादृशं जनम्' इति पाठान्तरम्—

है। उत्क्षुब्ध होनेवाले हृदयके भीतर जाने आनेवाले निःश्वासवायुसे अनेक प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले रोमाञ्चोंसे रोमाञ्चयुक्त स्तनोंके ऊपर प्रेरित और काँपती हुई बाहुलतासे आवेष्टनरूप बन्धनसे युक्त, शीघ्र जागरणके समय छोड़े गये कटाक्षव्यापारसे विज्ञान (अनुभवयुक्त ज्ञान) से शून्य (कान्तरहित) शय्यास्थानमें मूर्च्छा उत्पन्न होनेसे नेत्रोंको मूंदती हुई, मूर्च्छा हटानेके लिए शीघ्रता करनेवाली सखियोंके प्रयत्नसे मूर्च्छा हटनेके समयमें उत्पन्न दीर्घ निःश्वाससे जीवनकी आशाको प्रकाशित करती हुई, सखीगणको कर्तव्यनिर्द्धारणमें असमर्थ, पहले अपने जीवनकी समाप्ति चाहनेवाली और दुर्निवार भाग्यदुर्विलासको दोषमात्र देनेके कार्यसे युक्त बना डालती हैं। इस कारणसे भगवती देखें। लावण्यसे प्रचुर रचनासे सुकुमार

एषु तावल्लावण्यभूयिष्ठनिर्माणपरिपेशलेष्वङ्गेषु दारुणविजृम्भितस्य कियच्चिरं कुशलावसानता मन्मथस्य । कथं चेमानि रमणकेलिकलहोपरागपल्लवितकेरलीकपोलकोमलकोमलोद्वेल्लद्विमलचन्द्रिकोद्दामदलिततिमिराव-

किंकर्तव्यतामूढं = किं विधेयतेतिमुग्धं, तादृशे विषमे समये कर्तव्यनिर्धारणाऽसमर्थमिति भावः । अत एव प्रथमं = प्राक्, प्रार्थितनिजजीविताऽवसानं = प्रार्थितं ( प्रयाचितम् ) निजजीवितस्य ( स्वजीवनस्य ) अवसानं ( समाप्तिः ) येन, तम्, 'वयमेव प्रथमं क्रियामहे' इत्याशंसापरमिति भावः । एवं च दुर्वारदैवदुर्विलसितोपालम्भमात्रव्यापारं = दुर्वारं ( दुर्निवारणीयम् ) यत् दैवदुर्विलसितं ( भाग्यदुर्विलासः ) तस्योपालम्भमात्रं ( दूषणमात्रम् ) व्यापारः ( कार्यम् ) यस्य, तम् । तादृशं करोति = विदधाति । तत् = तस्मात्कारणात् । पश्यतु = विलोकयतु, लावण्यभूयिष्ठनिर्माणपरिपेशलेषु = लावण्येन ( सौन्दर्यविशेषेण 'मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते' इत्युक्तलक्षणलक्षितेनेति भावः । भूयिष्ठं ( प्रचुरम् ) यन्निर्माणं (रचना), तेन परिपेशलेषु (सुकुमारेषु), अङ्गेषु ( शरीराऽवयवेषु ) मालत्या इति शेषः, दारुणविजृम्भितस्य = दारुणं ( कठोरं यथा तथा ) विजृम्भितस्य ( वृद्धिप्राप्तस्य ) मन्मथस्य = कामदेवस्य, कियच्चिरं = कियन्तं समयं व्याप्य, कुशलाऽवसानता = कुशले ( क्षेमे ) अवसानता ( पर्यवसायिता ), इदानीं मालत्यङ्गेषु कामस्य भयङ्कररूपेणोपचयः, अतः परं कदाऽस्य प्रियसंघटनरूपेण समीहितफलेन कुशलकारित्वं भविष्यतीति भावः । इमानि = एतानि, रमणकेलिकलहकोपरागपल्लवितकेरलीकपोलकोमलोद्वेल्लद्विमलचन्द्रिकोद्दामदलिततिमिराऽऽवरणानि = रमणेन ( कान्तेन सह ) यः केलिकलहः ( क्रीडाविवादः ) तेनोपनीतो यः कोपरागः ( क्रोधलौहित्यम् ) तेन पल्लवितः ( सञ्जातपल्लवः, पल्लवसमलोहित इति भावः ) केरलीकपोलः ( केरलदेशललनागण्डः ) स इव कोमला ( मृदुला ) उद्वेल्लन्ती (उच्चलन्ती,प्रसरन्तीति भावः) एतादृशी विमला ( निर्मला ) या चन्द्रिका ( ज्योत्स्ना ), तया उद्दामं ( प्रगल्भं यथा तथा ) दलितानि ( विशीर्णानि ) तिमिराऽऽवरणानि ( अन्धकारावरणानि ) येषु तानि, एतादृशानि विभावरीमुखानि ( रात्र्यारम्भसमयाः, प्रदोषा इति भावः ), मदनोद्दीपकाः प्रदोषा अस्मद्भर्तृदारिकया मालत्या कथं यापयिष्यन्त इति भावः । अत्र स्पष्टकेरलीकपोलसादृश्येनोदितचन्द्रेण तिमिरावरणनाशे रात्रेरारम्भः कथितस्तथ्चन्द्रदुःखसहता मालत्या

इन अङ्गोंमें कठोरता के साथ वृद्धिको प्राप्त करनेवाले कामदेवकी कब तक क्षेममें पर्यवसायिता होगी । प्रियके साथ क्रीडाकलहसे उत्पन्न कोपके लौहित्यसे पल्लवके सदृश लाल केरलस्त्रीके कपोलके सदृश कोमल और फैलती हुई निर्मल चाँदनीसे

रणानि विभावरीमुखानि । इमे चोल्लसितदुग्धधारापूरधव
प्रक्षालितनभोङ्गणाः परिमलितपाटलीमुकुलनिर्मथनबहुलप
कलनमसृणमांसलमलयमारुतोद्धूमायितदशदिङ्मुखा अनथ
न्ति रजनीपरिणाहाश्च प्रियसख्याः ।( भअवदी एव्वंवादिणी त्ति श्र ...श्राद-
अम्हाणं वि भट्टिदारिश्रा भवणासण्णरज्झामुहमुहुत्तमण्डणस्स तस्स जेव्व बहुसो
अणुहूददंसणा भविश्र रविअरासिलिट्ठमुद्धकमलिनीकन्दसुन्दरावअवसोहाविहाविदा-
णङ्गवेअणावइअररमणिज्जा वि परिजणं दूणेदि । णाहिणन्दइ कलाकीलाओ । केवलं

ध्वनिता । इमे=सन्निकृष्टवर्तिनः, उल्लसितदुग्धधारापूरधवलोज्ज्वलज्योत्स्नाप्रक्षालितनभोऽङ्गणाः=उल्लसिता ( उद्दीप्ता ) या दुग्धधारा ( क्षीरधारा ) तस्याः पूरः ( प्रवाहः ) स इव धवला (अवदाता) उज्ज्वला (निर्मला) या ज्योत्स्ना (चन्द्रिका), तया प्रक्षालितं ( निर्धौतम् ) नभोऽङ्गणम् ( आकाशाऽजिरम्, आकाशाऽवकाश इति भावः ) येषु ते । एवं च परिमलितपाटलीमुकुलनिर्मथनबहुलपरिमलोत्पीडसंकलनमसृणमांसलमलयमारुतोद्धूमायितदशदिङ्मुखाः=परिमलितम् (संजातपरिमलम् ) यत् पाटलीमुकुलं (पाटलपुष्पकुड्मलं, क्वचित्कुलपदस्याऽपि पाठः ) तस्य निर्मथनं ( मर्दनम् ) तेन यो बहुलपरिमलः ( प्रचुरसौरभम् ) तस्योत्पीडेन ( उद्गारेण ) यत्सङ्कलनं ( मिश्रीभावः, 'संवलनम्' इति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः ) तेन मसृणः ( कोमलः ) मांसलः ( पुष्टः, 'मांसलायमान' इति पाठे मांसलवदाचरन्नित्यर्थः ) यो मलयमारुतः ( दक्षिणवातः ), तेनोद्धूमायितानि ( उद्गतधूमेनेवाकुलीकृतानि ) दश ( दशसंख्यकानि ) दिङ्मुखानि ( दिशाभागाः ) येषु ते, एतादृशाः रजनीपरिणाहाः ( रात्रिविशालताः, क्वचित् 'वसन्तरजनीपरिणाहा' इति पाठः, क्वचिच्च 'रजनीपरिणामा' इत्यपि पाठान्तरम् ), प्रियसख्याः=दयितवयस्यायाः मालत्या इति भावः । अनर्थकारिणः=अनिष्टाऽऽचरणशीलाः भवन्ति, मदनोद्दीपनेनेति भावः । एतदपि भगवती पश्यत्विति पूर्वस्थवाक्येन सम्बन्धः ।

प्रगल्भतापूर्वक अन्धकारके आवरणको दूर करनेवाले कैसे ये रात्रिके आरम्भ समय ( प्रदोषकाल ) हैं । जिनमें उद्दीप्त दुग्धधाराके प्रवाहके सदृश सफेद और निर्मल चन्द्रिका ( चांदनी ) से आकाशरूप अङ्गण प्रक्षालित हो जाता है, एवम् परिमलसे युक्त पाटल (गुलाब) पुष्पके मुकुलके मर्दनसे प्रचुर सौरभ ( खुशबू ) के उद्गारसे संमिश्रण होनेसे कोमल और पुष्ट उद्गत धूमके सदृश दक्षिणवायुसे जिनमें दश दिग्भाग ही आकुल किये गये हैं ऐसी ये रात्रियोंकी विशालतायें ( दीर्घतायें ) प्रियसखीका अनर्थ करनेवाली हो जाती हैं ।

मिलाअन्तकन्तहत्थपल्लत्थगण्डमण्डला दिअहो गमेदि । अवि अ विअसिदारविन्दमअरन्दविस्सन्दसुन्दरेण दरदलिदकुन्दमाअन्दमहुबिन्दुसंदोहवाहिणा भवणुज्जाणपेरन्तमारुदेण उत्तम्मिअदि । अण्णं अ जदो प्पहुदि तस्सिं दिअहे णिअमहूसवब्भुदअदंसणत्थं पडिलण्णरूवस्स कामकाणणालंकारिणो भअवदो मम्महस्स विअ तस्स माहवस्स विविहविब्भमाणुराआणुबन्धमहद्घोक्किदजोव्वणारम्भं अण्णोण्णदिट्ठिविणिवाअवघणावसरजुवरिदचित्तुवरन्तकोदूहलुल्लसिदसद्धसत्थम्भमन्थरावअवपडिलग्गसेदपुलअकम्पाणन्दिअमहीजणं परस्परावलोअणसुहं समासादिदं । तदो प्पहुदि सविसेसदूसहाआसविअम्भणुद्दामदारुणं दसापरिणामं अणुहोन्ती मुहुत्तअंपत्तपुण्णचन्दोदआ विअ बालकमलिणी परिमिलाअदि । तह वि मुहुत्तमेत्तहिअअविणिहिदणिम्माअन्तवल्लहसमाअमा णिब्भरसलिलासारसिच्चमाणा विअ मेदिणी सीअलाअदि त्ति जाणामि । जेण पप्फुरिदरदणच्छदुज्जलन्तदन्तमोत्तिअपन्तिकान्तिसविसेससोहिदं णिरन्तरुल्लसिदपुलअपह्मलकवोलघोलन्तसंददाणन्दबाहत्थवअं ईसविसमणिप्पन्दमन्थरतारुत्ताणमसिणमुउलाअन्तणेत्तणीलुप्पलं अविरलुब्भिण्णसेअजलबिन्दुसुन्दरणिडलचन्दलेहामणोहरं मुद्धमुहपुण्डरीअं उव्वहन्ती विअडढसहअरीचित्तसंसइदकोमारभावा होइ । किं अ, उद्दामससिमऊहणिउरुम्बचुम्बिअपडत्तणिस्सन्दचन्दमणिहारधारिणी पउरकप्पूरसविसेससिसिरचन्दणरसच्छडासारणिअरदन्तुरिदबालकदलीपत्तसअणा पादसंवाहणादिवावारतुवरन्तसहअरीसत्थविरइदोवणीदकमलिणीदलजलद्दतालवन्ता उण्णिद्दा एव रअणीओ गमेइ । कहं वि उवलद्धणिद्दासुहा पक्खालिदपादपल्लवचुम्बमन्तपिण्डालत्तअरसा थरथराअन्तपीवरोरुमूलपासविसंवादिअणीविबन्धणा उक्खुम्भन्तहिअअन्तरुत्तरङ्गणिस्सासविसमऊससन्तपुलकपम्हलपओहरोवरिविक्खित्तवेवन्तभुअलदावेट्ठणबन्धणा झत्ति पडिबोधवेलाविसज्जिदापङ्गदिट्ठिविणिवादविण्णाणसुण्णसअणिज्जसंजादमोहमीलन्तलोअणा ससंभमसहीअणपअत्तपडिवण्णमुच्छाविच्छेअसमअसंगलिददीहणीसासजणिदजीविदासा किकादव्वदामूढं पढमं पत्थिअणिअजीविदावसाणं दुव्वारदेव्वदुव्विलसिदोवालम्भमेत्तवावारं सहीजणं करेदि । ता पेक्खदु भअवदी । इमेसु दाव लावण्णमुइट्ठणिम्माणपरिपेसलेसु अङ्गेसु दारुणविअम्भिअस्स किअचिरं कुसलावसाणदा मम्महस्स । कहं अ इमाइं रमणकेलिकलहकोवराअरल्लविदकेरलीकपोलकोमलुव्वेल्लविमलचन्दिओद्दामदलिदतिमिरावरणाइं विभावरीमुहाइं । इमे अ उल्लसिददुद्धधारापूरधवलुज्जलजोण्हापक्खालिददहोङ्गणा परिमलिअपाडलो-

मुउलणग्गहणबहुलपरिमलुप्पीडसंवलणमसिणं सलमल अमारुदुद्धूमायिददहदिसामुहा अणत्थआरिणो होन्ति रअणीपरिणाहा अ पिअसहीए । )

कामन्दकी—

यदि तद्विषयोऽनुरागबन्धः
स्फुटमेतद्धि फलं गुणज्ञतायाः ।
इति नन्दितमप्यवस्थयास्या
हृदयं दारुणया विदीर्यते मे ॥ १३ ॥

माधवः—अहो, स्थान एवाभ्युल्लासो भगवत्याः ।

---

कामन्दकीति । अतः परं पुस्तकान्तरे 'लवङ्गिके' इत्यधिकः पाठः ।

यदीति । अनुरागबन्धः तद्विषयो यदि, एतद्धि गुणज्ञतायाः स्फुटं फलम् । इति नन्दितमपि मे हृदयम् अस्या दारुणया अवस्थया विदीर्यते इत्यन्वयः । अनुरागबन्धः = गाढप्रणयः, मालत्या इति शेषः । तद्विषयः = तदालम्बनः, माधवलम्बन इति भावः, स विषयो यस्य सः । यदि—चेत्, तर्हि—एतद्धि=इदमेव, गुणज्ञतायाः = गुणाऽभिज्ञतायाः, स्फुटं=स्पष्टं, फलं = परिणामः, गुणगणभूषिते माधवे मालती प्रणयवती चेत्तर्हि एतस्या इदं गुणाऽनुग्राहकत्वमिति भावः । इति = अनेन हेतुना, नन्दितमपि = आनन्दितमपि, मे = मम, हृदयं = चित्तम्, अस्याः = मालत्याः, दारुणया = कठिनया, अवस्थया = दशया, त्वदुक्तयेति शेषः । विदीर्यते=स्वयमेव विदीर्णं भवति कर्मकर्तरि लट्, अस्या अतिसुकुमारतया चरमदशासम्भावनया मदीयं चित्तं विदीर्णं भवतीति भावः । 'विदार्यते' इति पुस्तकान्तरपाठः । अत्र भङ्गया माधवस्य गुणशालित्वरूपस्य गम्यस्याऽभिधानात्पर्यायोक्ताऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा—'पर्यायोक्तं यदा भङ्गया गम्यमेवाभिधीयते ।' इति । मालभारिणी वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'विषमे ससजा यदा गुरू चेत्सभरा येन तु मालभारिणीयम् ।' इति ॥ १३ ॥

माधव इति । भगवत्याः = कामन्दक्याः, अभ्युल्लासः = अनिष्टाशङ्कया हृदयोद्वेगः, 'हल्लास' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य हृदयशोष इत्यर्थः । स्थान एव = युक्त एव, मालत्यास्तादृश्यां देहदशायामनिष्टाऽऽशङ्कनमुचितमेवेति भावः ।

---

कामन्दकी— मालतीके गाढ प्रेमके आलम्बन माधवजो हैं तो यही गुणज्ञता का स्पष्ट फल है । इस कारणसे आनन्दित होता हुआ भी मेरा हृदय इस (मालती) की दारुण अवस्थासे स्वयम् विदीर्ण हो जाता है ॥ १३ ॥

माधव—अहो ! अनिष्टकी आशङ्कासे भगवतीके हृदयका उद्वेग उचित ही है ।

कामन्दकी—अहो, प्रमादः ।

प्रकृतिललितमेतत्सौकुमार्यैकसारं
वपुरयमपि सत्यं दारुणः पञ्चबाणः ।
चलितमलयवातोद्धूतचूतप्रसूनः
कथमयमपि कालश्चारुचन्द्रावतंसः ॥ १४ ॥

कामन्दकीति । प्रमादः = अनवधानता, अस्माकमिति शेषः, मालत्या एतादृश्यां दशायां सञ्जातायामपि तन्निराकरणार्थं प्रयत्नाऽनाचरणेनेति भावः ।

तमेव प्रमादमुपपादयति—प्रकृतीति । एतत् वपुः प्रकृतिललितं सौकुमार्यैकसारम्, अयमपि पञ्चबाणो दारुणः, सत्यम् । कथमयं कालोऽपि चलितमलयवातोद्धूतचूतप्रसूनः चारुचन्द्राऽवतंस इत्यन्वयः । एतत्=समीपतरवर्ति, वपुः=शरीरं, मालत्या इति शेषः । प्रकृतिललितं=प्रकृत्या ( स्वभावेन ) ललितं ( सुन्दरं, कोमलं वा ), 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया ततस्तत्पुरुषः । यद्वा 'सुकुमारतयाऽङ्गानां विन्यासो ललितं भवेत् ।' एतल्लक्षितललनाऽलङ्कारयोगि । तथा च सौकुमार्यैकसारं= सौकुमार्यम् ( सुकुमारत्वं, कोमलत्वमित्यर्थः ) एव एकः ( मुख्यः ) सारः ( स्थिरांऽशः ) यस्मिंस्तत् अतिशयकोमलमिति भावः । 'प्रसूनपल्लवस्पर्शाऽसहं यत्स्यात्तदुत्तमम् ।' इत्युक्तमुत्तमसौकुमार्यमत्र विवक्षितम् । एवं सत्यपि-अयमपि=एषोऽपि, सतिसन्निकृष्टत्वादिदंपदेन निर्देशः । पञ्चबाणः=पञ्चशरः, काम इत्यर्थः, दारुणः= भीषणः, एतत् सत्यं=तथ्यम् । एकबाणेनाऽपि साऽतिशयकोमलाया अस्यास्तनोः क्षतेराशङ्का किमुत पञ्चबाणेनेति भावः । तत्राऽपि-कथं=केन प्रकारेण, अयं=पुरो-विद्यमानः, कालोऽपि=समयोऽपि, वासन्तिक इति भावः । चलितमलयवातोद्धूतचूतप्रसूनः=चलितः ( प्रवहन् ) यो मलयवातः ( मलयाऽचलसमीरणः, दक्षिणमारुत इत्यर्थः, तेनाऽस्य मन्थरत्वं चन्दनसौरभवत्वं च व्यज्यते ) तेनोद्धूतानि ( ईषत्कम्पितानि ) चूतप्रसूनानि ( रसालकुसुमानि ) यस्मिन् सः । एवं च-चारुचन्द्राऽवतंसः=चारुः ( सुन्दरः, हिमादेरपगमाल्लोचनगोचर इति भावः ) चन्द्रः ( इन्दुः ) अवतंसः ( भूषणम् ) यस्मिन् सः, एतादृशो विरहिजनदुःसहः कालोऽस्तीति भावः ।

कामन्दकी—अहो ! प्रमाद ( अनवधानता ) है ।

यह ( मालतीका ) शरीर स्वभावसे सुन्दर अथवा कोमल और सुकुमारतारूप एक सारसे युक्त है, यह पञ्चबाण ( कामदेव ) भी भीषण है यह भी सत्य है । कैसे यह समय ( वसन्त ) भी चलनेवाले मलयवायुसे कम्पित रसालपुष्पसे युक्त एवम् सुन्दर चन्द्ररूप भूषणसे सम्पन्न है ॥ १४ ॥

लवङ्गिका—अन्यच्च ज्ञातं भवतु भगवत्या। एतच्च माधवप्रतिच्छन्दक सनाथं चित्रफलकम्। (मालत्याः स्तनांशुकमपनीय) एषापि तस्यैव स्वहस्तविरचितेति कण्ठावलम्बिता बकुलमाला संजीवनं प्रियसख्याः। (इति बकुलमालां दर्शयति) (अण्णं अ जाणिदं होदु भअवदीए। एदं अ माहवप्पडिच्छन्दअसहाणं चित्तफलअं। एसा वि तस्स जेव्व साहत्थविरइदेत्ति कण्ठावलम्बिदा बउलमाला संजीवणं पिअसहीए।)

माधवः— जितमिह भुवने त्वया यदस्याः

तदेतादृश्यनर्थपरम्परा मालत्याः कृते जीवनसंशयविधायिनी भविष्यतीत्यतः प्रमादो न कर्तव्य इति भावः। अत्र विषमाऽलङ्कारस्तथा च मालतीव्यथोत्पादने कार्ये पञ्चबाणस्य साधकत्वे नैकविधगुणविशिष्टस्य वासन्तिककालस्य च सत्त्वात्समुच्चयाऽलङ्कारश्च, तथा चाऽनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। समुच्चयाऽलङ्कारलक्षणं यथा—

'समुच्चयोऽयमेकस्मिन्सति कार्यस्य साधने।
खले कपोतिकान्यायात्तत्करः स्यात्परोऽपि चेत्॥
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये।' इति।

मालिनी वृत्तम्॥ १४॥

लवङ्गिकेति। ज्ञातं=विदितम्। माधवप्रतिच्छन्दकसनाथं=माधवस्य प्रतिच्छन्दकेन (प्रतिरूपेण) सनाथम् (युक्तम्), चित्रफलकम्=आलेख्यफलकम्, माधवाऽनुरागप्रकर्षद्योतकमिदमपि भगवत्या ज्ञातव्यमिति भावः। तस्यैव माधवस्यैव, स्वहस्तविरचिता=आत्मकरनिर्मिता, इति=अस्मात्कारणात्, कण्ठाऽवलम्बिता=गलाऽऽलम्बिता, स्तनांऽशुकाऽपनयनेनेति शेषः। संजीवनं=सञ्जीवनफलकत्वात्सञ्जीवनं, कार्यकारणयोरभेदोपचारात्। अतो भगवत्या माधवं प्रति मालत्यनुरागे संशयो न विधेयः, एतयोः संघटने त्वरा च कर्तव्येति भावः।

माधव इति। अत उत्तरं 'सस्पृहम्' इति पाठान्तरं तस्य साऽभिलाषं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणत्वेन योजना कर्तव्या। सस्पृहत्वं च प्रियाकण्ठावलम्बितबकुलमालादर्शनेन बोध्यम्।

जितमिति। हे सखि! हे बकुलावलि!! इह भुवने त्वया जितम्। यत् परिणत-

लवङ्गिका—और बात भी भगवतीसे विदित हो। माधवजी की प्रतिमूर्तिसे युक्त यह चित्रफलक भी है (मालतीके स्तनोंके वस्त्रको हटाकर) उन (माधवजी) के ही अपने हाथसे बनाई गई कण्ठमें अवलम्बित यह बकुलमाला भी प्रियसखी (मालती) का संजीवन है (ऐसा कहकर बकुलमाला दिखलाती है)।

माधव—हे सखि! बकुलावलि!! इस लोकमें तुमने जीत लिया। जो कि

सखि ! वकुलावलि !! वल्लभासि जाता ।
परिणतबिसदण्डकाण्डपाण्डु-
स्तनपरिणाहविलासवैजयन्ती ॥ १५ ॥

( नेपथ्ये जलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति )

रे रे शंकरपुरवासिजानपदाः, एष खलु यौवनारम्भभरितदुर्विषहामर्ष-

---

बिसदण्डकाण्डपाण्डुस्तनपरिणाहविलासवैजयन्ती ( त्वम् ) अस्या वल्लभा जाता असि इत्यन्वयः । हे सखि = हे वयस्ये, पूर्वमात्मकण्ठस्थितत्वात्तदनु मालत्या प्रणयपूर्वकं परिहितत्वाच्च सखीत्युक्तम् । हे वकुलावलि = हे वकुलमाले, इह = अस्मिन् , क्वचित् 'इवे'ति पाठः । भुवने = लोके, त्वया = भवत्या, जितं=लोकाऽतिशाय्युत्कर्षो लब्धः । 'जि जये' इति धातोर्भावे क्तः । जये हेतुं प्रतिपादयति—यदिति । यत् = यस्मात्कारणात् , परिणतबिसदण्डकाण्डपाण्डुस्तनपरिणाहविलासवैजयन्ती = परिणतः ( परिपक्वः, प्रौढ इति भावः ) यो बिसदण्डः (मृणालदण्डः, क्वचिद्दण्डस्थाने 'काण्ड' पदपाठः ) तस्य काण्डः ( पर्वदेशः ) स इव पाण्डुः ( शुक्लः ) यः स्तनपरिणाहः ( स्तनयोः=कुचयोः, परिणाहः=विशालता, 'परिणाहो विशालते' त्यमरः । ) तस्य यो विलासः ( विभ्रमः ), तस्य वैजयन्ती ( पताका, उत्कर्षद्योतिकेति भावः ) एतादृशी सती, मालत्या स्ववक्षःस्थलस्थापनेन तत्कुचपरिणाहप्रकाशने पताकाभूता सतीति भावः । तादृशी त्वम्, अस्याः = मालत्याः, वल्लभा = प्रिया, जाता = सम्पन्ना, असि-वर्तसे । यन्नाम मया प्रणयपुरःसरं मालत्या लोचनगोचरोऽहं भवेयं क्षणमप्यस्या आलिङ्गने कुचमण्डलमण्डनीभवनेन निर्वचनाऽविषयममन्दमानन्दं चानुभवेयमित्याशास्यते तत्त्वया मालतीकण्ठस्थितया विनाऽऽयासं लब्धमिति भावः । अत्र त्वया जितं, न तु मयेति प्रतीतेरार्थी परिसंख्याऽलङ्कारः ।

तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'प्रश्नादप्रश्नतो वाऽपि कथिताद्वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥ परिसंख्या' इति ।

उत्तरार्धे च रूपकाऽलङ्कारस्तया चाऽनयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १५ ॥

रे रे इति । शङ्करपुरवासिजानपदाः=शिवपुरनिवासिदेशवासिनः, जनपदे भवा

---

परिपक्व मृणालदण्डके पर्वदेशके सदृश शुक्ल मालतीके स्तनोंकी विशालताके विलासकी पताकास्वरूप तुम इनकी प्रिया हो गई हो ॥ १५ ॥

( नेपथ्यमें कोलाहल होता है । सब लोग सुनते हैं । )

रे रे शङ्करमन्दिरस्थो देशवासियो ! यौवनके आरम्भसे पूर्ण दुःसह असहन-

रोषव्यतिकरबलात्कारविघटितोद्घाटितलोहपञ्जरप्रतिलग्नसंकलितनिगलो निजलीलाविलासोद्वेल्लवल्लभतुङ्गलाङ्गूलविकटवैजयन्तिकाविषमडामरोद्दामशरीरसंनिवेशो मठादपक्रम्य तत्क्षणसतृष्णकवलितानेकदेहिदेहावयवमध्य-

जानपदाः, 'तत्र भव' इत्यण् । शङ्करपुरवासिनश्च ते जानपदा इति कर्मधारयः। यौवनाऽऽरम्भभरितदुर्विषहाऽमर्षरोषव्यतिकरबलात्कारविघटितोद्घाटितलोहपञ्जरप्रतिलग्नसंगलितनिगलः = यौवनाऽऽरम्भेण ( तारुण्योपक्रमेण ) भरितौ ( पूर्णौ ) दुर्विषहौ ( दुःसहौ ) यौ अमर्षरोषौ ( अक्षमाक्रोधौ, यद्वा स्थिरक्रोधतात्कालिककोपौ, यथाऽऽहुः—'क्रोधः कृताऽपराधेषु स्थिरोऽमर्षत्वमश्नुते । रोषस्तात्कालिकः कोपः ।' इति ), तयोर्व्यतिकरेण ( संमेलनेन ) यो बलात्कारः ( बलाचरणम् ) तेन विघटितोद्घाटितं ( प्राक् विघटितं = भञ्जितं, पश्चात् उद्घाटितम् = अपसारितद्वारबन्धनं, 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेने'ति पूर्वकालसमासः ) तादृशं यत् लोहपञ्जरम् ( अयःपञ्जरम् ) तस्मिन् प्रतिलग्नः ( संसक्तः ) संगलितः ( स्वचरणविगलितः ) निगलः ( शृङ्खला ) यस्य सः । निजलीलाविलासोद्वेल्लवल्लभतुङ्गलाङ्गूलविकटवैजयन्तिकाविषमडामरोद्दामशरीरसन्निवेशः = निजः ( आत्मीयः ) यो लीलाविलासः ( स्वच्छन्दाचारः, पञ्जरबन्धाऽपगमादिति भावः ) तेन उद्वेल्लम् ( ऊर्ध्वप्रसारितम् ) वल्लभं ( प्रियम् ) तुङ्गम् ( उन्नतम् ) यत् लाङ्गूलं ( पुच्छम् ) तदेव या विकटा ( भीषणाकारा ) वैजयन्तिका ( पताका ) तया विषमः ( दुर्दर्शः ) डामरः ( भयङ्करः ) उद्दामः ( बन्धरहितः ) शरीरसन्निवेशः ( कायसंस्थानम् ) यस्य सः । मठात् = स्वबन्धनगृहात्, अपक्रम्य = बहिरागत्य, तत्क्षणसतृष्णकवलिताऽनेकदेहिदेहाऽवयवमध्यनिष्ठुराऽस्थिखण्डखण्डनटङ्कारकटकटायमानकरपत्रकठिनदंष्ट्राकरालमुखकन्दरः = तत्क्षणं ( तत्कालम्, 'अत्यन्तसंयोगे चे'ति द्वितीया तत्पुरुषः ) सतृष्णं ( तृष्णासहितं, यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् ) कवलिताः ( ग्रस्ताः ) अनेके ( बहवः ) ये देहिदेहाऽवयवाः ( प्राणिशरी-

शीलता और क्रोधके सम्मेलनसे बलात्कार कर तोड़े और खोले गये लोहेके पिंजड़े में संसक्त शृङ्खलाको पांवसे विगलित करनेवाला, अपने स्वच्छन्द आचारसे उन्नत किया गया प्रिय और उन्नत पुच्छरूप भयङ्कर पताकासे दुर्दर्श, भयङ्कर और बन्धनरहित शरीरसंस्थानसे युक्त, अपने बन्धनगृहसे बाहर आकर उसी क्षण तृष्णाके साथ खाये गये अनेक प्राणियोंके शरीरावयवोंके बीचमें कठोर अस्थिखण्डोंके

निष्ठूरास्थिखण्डखण्डनटङ्कारकटकटायमानकरपत्रकठिनदंष्ट्राकरालमुखकन्दरो विकटविजृम्भणोद्दामदारुणचपेटामोटितपरिमिलितनरतुरङ्गजाङ्गलोद्गारभरितगलगुहागर्भगम्भीरघर्घरो रल्लिगल्लूरणशब्दसंदर्भपरिपूरितनभस्तलो

राऽङ्गानि ) तेषां मध्ये ( अन्तरे ) निष्ठुराः ( कठोराः ) ये अस्थिखण्डाः ( कीकसशकलानि ), तेषां खण्डनेन ( दन्तैश्चर्वणेन ) यः टङ्कारः ( टमित्याकारकोऽनुकृतिशब्दः ) तेन कटकटायमानाः ( कटकटाशब्दं कुर्वाणाः ) करपत्रकठिनाः ( क्रकचसमकठोराः, 'क्रकचोऽस्त्री करपत्रम्' इत्यमरः ) एतादृश्यो या दंष्ट्राः ( विशालदन्ताः ) ताभिः करालः ( भीषणः ) मुखकन्दरः ( वदनकुहरम् ) यस्य सः । विकटविजृम्भणोद्दामदारुणचपेटामोटितपरिमिलितनरतुरङ्गजाङ्गलोद्गारभरितगलगुहागर्भगम्भीरघर्घरः = विकटं ( विकृतम् ) यत् विजृम्भणं ( विहरणम् ) तेन उद्दामदारुणः ( प्रचुराऽभीषणः, पुस्तकान्तरे तु 'प्रचण्डवज्रनिर्घातदारुण' इति पाठस्तस्य प्रचण्डः= तीक्ष्णः, यो वज्रनिर्घातः = स्फूर्जथुः, स इव दारुण इत्यर्थः ) तादृशो यश्चपेटः ( पाणितलप्रहारः ) तेन आमोटितं ( मर्दितम् ) यत् नरतुरङ्गजाङ्गलं ( नरतुरङ्गाणां= मनुष्यहयानां, जाङ्गलं = मांसम् ) तस्य उद्गारेण ( वातोद्गमनशब्देन ) भरितः ( परिपूर्णः ) यो गलगुहागर्भः ( कण्ठगह्वरमध्यभागः ) तस्मिन् गम्भीरः ( गभीरः ) घर्घरः ( घर्घरेत्याकारकोऽव्यक्ताऽनुकृतिशब्दः ) यस्य सः । एवं च रल्लिगल्लूरणशब्दसन्दर्भपरिपूरितनभस्तलः = रल्लिः ( दीर्घमधुरः, देशीयपदमिदम्, 'उरल्लिः' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य गलगर्जितमित्यर्थः, 'उरल्लिर्गलगर्जितम्' इति रत्नकोशः ) यो गल्लूरणशब्दः ( कण्ठगर्जितशब्दः, मांसभक्षणसमयकुपितशार्दूलजातिप्रयुक्तो ध्वनिरिति भावः ) तस्य यः सन्दर्भः ( विस्तारः ) तेन परिपूरितं ( परिपूर्णम् ) नभस्तलम् ( आकाशतलम् ) तेन सः । निहतनिष्पेषितनष्टनिष्ठापिताऽशेषजननिवहः= निहताः ( व्यापादिताः, केचिदिति शेषः, एवं परत्राऽपि ) निष्पेषिताः ( चूर्णीकृताः ) नष्टाः ( अदर्शनं गमिताः ) निष्ठापिताः ( निष्ठां = नियतस्थानं, निर्भयस्थानमिति भावः, आपिताः = प्रापिताः ) अशेषजनानां ( समस्तमानवानाम् ) निवहाः ( समूहाः ) येन सः क्वचित् भीपितनष्टनिष्ठापिता इति पाठस्तत्र प्राग्भीपिताः

चबानेके टङ्कारसे 'कट कट' शब्द करनेवाले करपत्रके सदृश कठोर दाढोंसे भयङ्कर मुखकन्दरसे युक्त, विकारयुक्त विहारसे प्रचण्ड और भीषण चपेटा ( थप्पड़ ) से मर्दित मनुष्य और घोड़ोंके मांसके उद्गार ( डकार ) से परिपूर्ण कण्ठरूप गुहाके मध्यभागमें गम्भीर और 'घर्घर' शब्दवाला, दीर्घ और मधुर कण्ठगर्जित शब्दके विस्तारसे आकाशतलको पूर्ण करनेवाला, समस्त मानवसमूहमें किसीको मारनेवाला

निहतनिष्पेषितनष्टनिष्ठापिताशेषजननिवहः कठोरनखरकर्परदलिताकृष्टजन्तुगात्रावयवप्रवृत्तरक्तकर्दमितगतिपथो दुष्टशार्दूलः कृतान्तलीलायितं करोति। तत्परिरक्षत यथाशक्त्यात्मनो जीवितमिति। ( रे रे संकरउरवासिजाणपदा, एसो क्खु जोव्वणारम्भभरिददुव्विसहामरिसरोसवइअरबलामोडीअविघडिदुग्घडिअलोहपञ्जरपडिलग्गसंगलिअणिअलो णिअलीलाविलासुव्वेलिअवल्लहतुङ्गलङ्गूलविअव्वैजअन्तिआविसमडामरुद्दामसरीरसंणिवेसो मठाहो अवक्कमिअ तक्खणसत्तिण्णकवलिआणेअदेहिदेहावअवमज्झणिट्ठुरत्थिखण्डखण्डणटंकारकडकडाअन्तकरवत्तकठिणदाढाकरालमुहकन्दरो विअडविइंभणुद्दामदारुणचपेडामोडिअपरिमिलिअणरतुरङ्गजङ्गलुग्गालभरिअगलगुहागम्भगम्भीरघग्घरो रल्लिग्गल्लूरणसद्दसंदब्भपरिपूरिअणहाअलो णिहदणिप्पेसिदणट्ठणिट्ठाविदासेसजणणिवहो कठोरणहरकप्परदलिआकट्ठजन्तुगत्तावअवपउत्तरत्तकद्दमिअगइवहो दुट्ठसद्दूलो कअन्तलीलाइदं करेदि। ता पडिरक्खद जहासत्ति अत्तणो जीविदं त्ति )

---

पश्चान्नष्टा अनन्तरं निष्ठापिता इत्यर्थः। एवं च—कठोरनखरकर्परदलिताकृष्टजन्तुगात्राऽवयवप्रवृत्तरक्तकर्दमितगतिपथः = कठोराः ( परुषाः ) ये नखराः ( नखाः ) कर्पराः ( शस्त्रभेदाः, तीक्ष्णा इति भावः, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः, 'कर्परस्तु कटाहे स्याच्छस्त्रभेदकपालयोः।' इति हैमः ) इव, तैः दलिताः ( विदारिताः ) आकृष्टाः ( कृताऽऽकर्षणाः ) ये जन्तवः ( प्राणिनः ) तेषां गात्राऽवयवेभ्यः ( शरीरभागेभ्यः ) प्रवृत्तं ( संजातम् ) यत् रक्तं ( रुधिरम् ), तेन कर्दमितः ( संजातपङ्कः ) गतिपथः ( गमनमार्गः ) येन सः, एतादृशो दुष्टशार्दूलः = हिंस्रव्याघ्रः। कृताऽन्तलीलायितं = कृताऽन्तलीलावदाचरितं, करोति = विदधाति, सर्वभक्षणेन कुपितकालविकासं कुरुत इति भावः। तत् = तस्मात्कारणात्। जीवितं = जीवनं, 'नपुंसके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययः। अत्र चूलिकानामकोऽर्थोपक्षेपकस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनाऽर्थस्य चूलिका।' इति।

---

किसीको चूर चूर कर देनेवाला, किसीको भगानेवाला, और किसीको ( प्रमादसे ) निर्भयस्थानमें प्राप्त करानेवाला, कर्पर नामके शस्त्रके सदृश कठोर नाखूनोंसे विदारित और आकृष्ट प्राणियोंके शरीरभागोंसे उत्पन्न रुधिर (खून) से गमनमार्गको कीचड़से युक्त कर देनेवाला यह दुष्ट व्याघ्र यमराजकी लीलाके सदृश आचरण कर रहा है। इस कारणसे यथाशक्ति अपने जीवनकी रक्षा करो'।

( प्रविश्य संभ्रान्ता )

बुद्धरक्षिता—परित्रायध्वम् । एषा नः प्रियसख्यमात्यनन्दनस्य भगिनी मदयन्तिकैतेन दुष्टशार्दूलेन हतविद्रावितपरिजनाभिभूयते । ( परित्ताअध । एसा णो पिअसही अमच्चणन्दणस्स भइणी मदअन्तिआ एदिणा दुट्ठसद्दूलेण हद। विद्दाविदपरिअणा अभिभवीअदि )

मालती—सखि लवङ्गिके, अहो महान्प्रमादः । ( सहि लवङ्गिए, अहो महन्तो पमादो )

माधवः—बुद्धरक्षिते, क्वासौ ।

मालती—( सहर्षसाध्वसम् । स्वगतम् ) अहो, एषोऽप्यत्रैव । ( अम्हहे, एसो वि एत्थ एव्व )

---

प्रविश्येति । संभ्रान्ता = संभ्रमयुक्ता, त्वरायुक्तेत्यर्थः, त्रासाद्धेतोरिति शेषः । भगिनी = स्वसा । हतविद्रावितपरिजना = हताः ( व्यापादिताः, केचिदिति शेषः, एवं परत्रापि ) विद्राविताः ( पलायिताः ) परिजनाः ( परिचारकजनाः ) यस्याः सा । अत एव रक्षकाऽभावात्—अभिभूयते = आक्रम्यते, अतः परित्रायध्वं = रक्षतेति पूर्ववाक्येन सम्बन्धः ।

मालतीति । प्रमादः = अनवधानता, एतादृशे व्यतिकरे संजातेऽपि कोऽपि नगर-रक्षक एनं दुष्टव्याघ्रं वशीकर्तुं नोद्युङ्क्ते इति महानयं प्रमाद इति भावः ।

माधव इति । अतः 'ससम्भ्रममुत्थाये'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । असौ = व्याघ्रः, क्व = कुत्र, वर्तत इति शेषः, तं निहत्य मदयन्तिकां मोचयिष्यामीति भावः ।

मालतीति । सहर्षसाध्वसं=हर्षेण ( आनन्देन, लवङ्गिकानिवेदितां मद्विरहवेदनां ज्ञातवानयमिति भावनया प्रसूतेनेती भावः ) साध्वसेन च ( भयेन च, विजन-स्थाने मामेनं च दृष्ट्वा कश्चित्तातं सूचयिष्यतीति चिन्तया संजातेनेति भावः )

---

( प्रवेशकर शीघ्रताके साथ )

बुद्धरक्षिता—बचाओ । किन्हींके मारे जानेसे और किन्हींके भाग जानेसे रक्षक परिजनसे रहित, मन्त्री नन्दनकी बहन और हमारी प्रियसखी मदयन्तिकाको यह दुष्ट व्याघ्र आक्रमण कर रहा है ।

मालती—लवङ्गिके ! अहो ! प्रमाद है ।

माधव—बुद्धरक्षिते ! वह कहां है ?

मालती—( हर्ष और भयके साथ मन ही मन ) अहो ! ये भी यहीं पर हैं ।

माधवः—( स्वगतम् ) हन्त, पुण्यवानस्मि यदहमतर्कितोपनतदर्शनोल्लसितयाऽनया ।

अविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण नद्धः
स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्भरेण ।

---

सहितं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । अम्हहे=( अहो ) सप्रमादचिन्तासंसूचकमव्ययमिदं, तथोक्तं—

'चिन्तायां सप्रमादायामम्हहे इति कल्पितम् ।
शब्दरूपं विशेषेण प्रयोक्तव्यं प्रयोक्तृभिः ॥' इति ।

एषोऽपि=माधवोऽपि ।

माधव इति । हन्त=हर्षद्योतकमव्ययमिदमत्र, 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्याऽऽरम्भविषादयोः ।' इत्यमरः । पुण्यवान्=सुकृती । अतर्कितोपनतदर्शनोल्लसितया=अतर्कितम् एव ( पूर्वमचिन्तितमेव ) उपनतं ( प्राप्तम् ) यत् दर्शनं ( विलोकनं, ममेति शेषः ) तेन उल्लसितया ( प्राप्तहर्षया ), क्वचित् 'उल्लसितलोचनये'ति पाठान्तरं तत्र उल्लसिते ( विकसिते, हर्षादिति शेषः ) लोचने यस्याः सा इत्यर्थो बोध्यः । अनया=मालत्या ।

अविरलमिति । ( अहम् अनया ) पौण्डरीकेण दाम्ना अविरलं नद्ध इव, निर्भरेण दुग्धस्रोतसा स्नपित इव, स्फारितेन चक्षुषा कृत्स्नः कवलित इव, सान्द्रेण अमृतमेघेन प्रसभं सिक्त इव ( अत एव—पुण्यवानस्मीति पूर्वस्थपदाभ्यां सम्बन्धः )। पौण्डरीकेण=श्वेतकमलनिर्मितेन, पुण्डरीकस्येदं पौण्डरीकं, तेन । 'तस्येदम्' इत्यण्, 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धिश्च । 'पुण्डरीकं सिताऽम्भोजम्' इत्यमरः । दाम्ना=माल्येन, अविरलं=सततं, नद्ध इव=बद्ध इव, अनयाऽहमिति शेषः । 'णह बन्धने' इति धातोर्निष्ठायां क्तप्रत्ययः, 'नहो ध' इति हस्य धत्वम् । 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तस्याऽपि धत्वम्, ततो जश्त्वम् । अतः पुण्यवानस्मीति पूर्ववाक्यस्थपदद्वयेन सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि एतेन मालतीतारकातरलता द्योतिता । एवं च—निर्भरेण=अतिमात्रेण, दुग्धस्रोतसा=क्षीरप्रवाहेण, स्नपित इव=आप्लुत इव, एतेन गोलकचाञ्चल्यं सूचितम् । तथा च—स्फारितेन=विस्तारितेन, आकर्णविश्रान्तेनेति भावः । एतादृशेन चक्षुषा=नेत्रेण, इन्द्रियस्यैकत्वाद्गोलकद्वयस्याऽविवक्षा । कृत्स्नः=सम्पूर्णः

---

माधव—( मन ही मन ) हर्षकी बात है जो कि अतर्कितरूपसे मुझे देखकर हर्ष प्राप्त करनेवाली इनसे मैं धन्य हो गया हूं ।

इन्होंने मुझको जैसे श्वेत कमलोंकी मालासे बाँध लिया है, अतिशय दुग्ध-

कवलित इव कृत्स्नश्चक्षुषा स्फारितेन
प्रसभममृतमेघेनेव सान्द्रेण सिक्तः ॥ १६ ॥

बुद्धरक्षिता—महाभाग, एष खलूद्यानबाह्यरथ्यामुखे। ( महाभाअ, एसो क्खु उज्जाणबाहिअरत्थामुहे )

माधवः—( साटोपम् ) अप्रमत्तोऽस्मि।

मालती—लवङ्गिके, संशयः खलु जातः। ( लवङ्गिए, संसओ क्खु जादो )

माधवः ( सबीभत्सम् ) अहह।

---

अहं, कवलित इव=ग्रस्त इव, पीत इवेति भावः। विस्तारितनयनाभ्यां मम सर्वे देहाऽवयवाः प्रणयाऽतिशयेन साक्षात्कृता इति भावः। एतेन पुटविस्तारो विलासश्च ज्ञापितः। किं वहुना—सान्द्रेण=घनेन, अमृतमेघेन=अमृतवर्षिणा बलाहकेन। 'अमृतवर्षेणे'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य पीयूषवृष्ट्येत्यर्थः। प्रसभं=बलात्, सिक्त इव=उक्षित इव, अत एव पुण्यवानस्मीति पूर्ववाक्येन सम्बन्धः। अत्र चरणचतुष्टयेऽप्युत्प्रेक्षाचतुष्कस्य मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥१६॥

बुद्धरक्षितेति। 'काऽसौ ?' इति माधवप्रश्नं प्रत्युत्तरयति—महाभागेति। एषः= व्याघ्रः। उद्यानबाह्यरथ्यामुखे=उद्यानबाह्यम् ( उपवनबहिर्भूतम् ) यत् रथ्यामुखं ( प्रतोल्यग्रम् ), तस्मिन्।

माधव इति। साटोपम्=आटोपेन ( गर्वेण वेगेन वा ) सहितं यथा स्यात्तथा। 'परिक्रामती'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। अप्रमत्तः=साऽवधानः। पुस्तकान्तरे तु 'वत्स ! अप्रमत्तो भूत्वा विक्रमस्वे'त्यधिकः कामन्दकीवाक्यत्वेन निर्दिष्टः पाठस्तत्र पराक्रमं विस्तारयेत्यर्थः।

मालतीति। संशयः=सन्देहः, शार्दूलमुखान्मदयन्तिकात्राणं प्राप्स्यति न वेत्याकारक इति भावः। अत उत्तरं पुस्तकान्तरे 'सर्वास्त्वरितं परिक्रामन्ती'त्यधिकः पाठः।

माधव इति। अत उत्तरम् 'अग्रे दृष्टे' त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। सबीभत्सं=सघृणम्। अहह=पदमिदमद्भुतस्य खेदस्य वा द्योतकम्।

---

प्रवाहसे जैसे स्नान कराया है, विस्तारित लोचनोंसे जैसे कि समूचे मुझको ग्रास कर लिया है और गाढ अमृतवर्षी मेघसे जैसे जबर्दस्तीसे सेचन कर दिया है ॥ १७ ॥

बुद्धरक्षिता—महाभाग ! यह (व्याघ्र) उद्यानके बाहर रास्ताके अग्रभागमें है।

माधव—( गर्व अथवा वेगके साथ ) मैं अप्रमत्त ( होशियार ) हूँ।

मालती—लवङ्गिके ! संशय हो गया है।

माधव—( घृणाके साथ ) अहह !

संसक्तत्रुटितविवर्तितान्त्रजाल-
व्याकीर्णस्फुरदपवृत्तरुण्डखण्डः ।
कीलालव्यतिकरगुल्फदघ्नपङ्कः
प्राचण्ड्यं वहति नखायुधस्य मार्गः ॥ १७ ॥

अहो प्रमादः ।

वयं बत ! विदूरतः क्रमगता पशोः कन्यका

---

संसक्तेति । संसक्तत्रुटितविवर्तितान्त्रजालव्याकीर्णस्फुरदपवृत्तरुण्डखण्डः कीलालव्यतिकरगुल्फदघ्नपङ्को नखायुधस्य मार्गः प्राचण्ड्यं वहतीत्यन्वयः । संसक्तत्रुटितविवर्तिताऽन्त्रजालव्याकीर्णस्फुरदप्रवृत्तरुण्डखण्डः = संसक्तानि ( प्राक् क्वचिल्लग्नानि, पश्चात् ) त्रुटितानि ( छिन्नानि ) विवर्तितानि ( भूमौ लिप्तानि ) एतादृशानि यानि अन्त्रजालानि ( पुरीतत्समूहाः, 'अन्त्रं पुरीतत्' इत्यमरः ) तैर्व्याकीर्णाः ( व्याप्ताः ) स्फुरन्तः ( चलन्तः, सद्योहतत्वादिति शेषः ) अपवृत्ताः ( विपर्यस्ताः ) रुण्डखण्डाः ( कवन्धशकलानि ) यस्मिन् सः । एवं च कीलालव्यतिकरगुल्फदघ्नपङ्कः = कीलालानां (रुधिराणाम्) व्यतिकरेण (सम्पर्केण) गुल्फदघ्नः (घुटिकाप्रमाणः, गुल्फः प्रमाणमस्य, 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच' इति दघ्नच्प्रत्ययः 'तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ' इत्यमरः ) पङ्कः ( कर्दमः ) यस्य सः । नखायुधस्य = ( नखा एवाऽऽयुधानि यस्य, तस्य, व्याघ्रस्येत्यर्थः ) मार्गः = पन्थाः, प्राचण्ड्यं = प्रचण्डत्वम् अतिभयङ्करतामिति भावः । वहति = धारयति । अत्र । स्वभावोक्तिरलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'स्वभावोक्तिर्दुरूहाऽर्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।' इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ १७ ॥

अहो इति । प्रमादः=अनवधानता, मदयन्तिकापरिजनस्येति शेषः । यदियमशक्यप्रतीकारे सङ्कटे निपतितेति भावः ।

अशक्यप्रतीकारतामेवाह—वयमिति । बत ! वयं विदूरतः । कन्यका पशोः क्रमगतेत्येकचरणाऽन्वयः । बत = खेदद्योतकमव्ययमिदम् । वयं = मदयन्तिकारक्षण-

---

पहले कहीं लगे हुए और पीछे छिन्न, पृथ्वीमें फेंके गये अन्त्र ( अँतड़ी ) समूहसे व्याप्त, चलते हुए और विपर्यस्त कबन्धखण्डोंसे युक्त, रुधिरके सम्पर्कसे गुल्फतक फैले हुए कीचड़से सना हुआ व्याघ्रका मार्ग अतिशय भयङ्करताको धारण कर रहा है ॥ १७ ॥

अहो ! प्रमाद है ।

हाय ! हम दूर हैं, बेचारी कन्या पशु ( जानवर ) के क्रम ( एक ही पादविक्षेपस्थान ) को प्राप्त हो गई है ।

सर्वाः--हा मदयन्तिके ! ( हा मदअन्तिए ! )

कामन्दकीमाधवौ--( सहर्षाकूतम् )

कथं तदवपातितादधिगतायुधः संभ्रमात् ।
कुतोऽपि मकरन्द एत्य सहसैव मध्ये स्थितः

इतराः--साधु, महाभाग ! साधु । ( साहु, महाभाअ ! साहु । )

---

समर्था जना इति भावः । विदूरतः = विदूरे, विशेषदूर इति भावः । 'आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । वर्तामहे इति शेषः । परं—कन्यका = अनुकम्पिता कन्या, मदयन्तिकेति भावः । 'अनुकम्पायाम्' इति कन् । पशोः=व्याघ्रस्यति भावः, क्रमगता = क्रमम् ( एकमेव पादविक्षेपस्थानम् ) गता ( प्राप्ता ) 'द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति द्वितीयातत्पुरुषः । मदयन्तिका व्याघ्रेणैकपादविन्यासेनैव प्राप्स्यत इति भावः ।

सर्वा इति । हा=मदयन्तिकामिति शेषः, व्याघ्रकवलत्वमापन्नाया मदयन्तिकायाः शोच्यत इति भावः ।

कामन्दकीति । सहर्षाकूतं = हर्षेण ( मदयन्तिकारक्षणनिमित्तेनाऽनन्देन ) आकूतेन च (मदयन्तिकामकरन्दयोरनुरागज्ञानरूपेणाभिप्रायेण च) सहितं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् ।

कथमिति । कथं मकरन्दः सहसा एव सम्भ्रमात् एत्य तदवपातितात् ( आयुधहस्तात्पुरुषात् ) अधिगताऽऽयुधः ( सन् ) मध्ये स्थित इति द्वितीयतृतीयचरणयोरन्वयः । कथं = केन प्रकारेण, मकरन्दः=माधवसहचरः, सहसा एव=अतर्किते एव, सम्भ्रमात् = त्वरायाः, एत्य = आगत्य, तदवपातितात्=तेन (व्याघ्रेण), अवपातितात् ( निहतात्, आयुधहस्तात्पुरुषादिति शेषः, पुस्तकान्तरे तु 'सम्भ्रमात्' इत्यत्र 'पुरुषात्' इति पाठान्तरम् । अधिगताऽऽयुधः = अधिगतम् ( प्राप्तम् ) आयुधम् ( अस्त्रं, खड्ग इत्यर्थः ) येन स एतादृशः सन् । मध्ये = अन्तरे, व्याघ्रमदयन्तिकयोरिति शेषः । स्थितः = उपगतः । व्याघ्रहननेन मदयन्तिकां रक्षितुमिति शेषः ।

इतरा इति । साधु समीचीनं, महत् पौरुषमनुष्ठितमिति भावः ।

---

सब स्त्रियां—हा मदयन्तिके !

कामन्दकी और माधव—( हर्ष और अभिप्रायके साथ )

किस प्रकारसे मकरन्द अतर्कितरूपसे ही शीघ्रतासे आकर व्याघ्रसे मारे गये आयुधहस्त पुरुषसे आयुध प्राप्त करते हुए बीचमें स्थित हैं ।

और स्त्रियां—साधु ( शाबास ) ! महाभाग ! साधु ( शाबास ) !

कामन्दकीमाधवौ--

दृढं च पशुना हतो व्यसुरसौ कृतश्चामुना ॥ १८ ॥

इतराः---अत्याहितम् । ( अच्चाहिदं )

कामन्दकी--( साकूतम् ) कथं व्यालनखरप्रहारनिःसृतरक्तनिवहः क्षितितलविषक्तखड्गलतावष्टम्भनिश्चलः संभ्रान्तमदयन्तिकावलम्बितस्ताम्यति वत्सो मकरन्दः ।

---

कामन्दकीमाधवाविति । पशुना दृढं हतः । अमुना असौ च व्यसुः कृत इति चरमचरणाऽन्वयः । पशुना=चतुष्पदेन, व्याघ्रेणेति भावः । दृढं=कठोरं यथा तथा, हतः=अभिहतः, मकरन्द इति भावः । एवं च—अमुना=मकरन्देन, असौ च=व्याघ्रश्च, व्यसुः=विगता असवो यस्य सः, निष्प्राण इति भावः । कृतः=विहितः, व्याघ्रेणाऽऽहतो मकरन्दोऽपि व्याघ्रं खड्गेन हतवानिति भावः । 'प्रमथितश्च दंष्ट्रायुध' इति पाठान्तरम् । तत्र दंष्ट्रायुधः=व्याघ्रः, प्रमथितः=खण्डित इत्यर्थः । पृथ्वी वृत्तम् ॥१८॥

इतरा इति । अत्याहितं=महाभीतिः, जीवनाऽनपेक्षि कर्म वा, 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवाऽनपेक्षि च ।' इत्यमरः । अत्र—(सानन्दम्) 'दिट्ठिआ पडिहदं दुज्जादम्' ( दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम् ) इति पाठान्तरं तत्र दिष्ट्या=भाग्यवशात्, दुर्जातं=विपत्तिः, प्रतिहतं=विनाशितमित्यर्थः ।

कामन्दकीति । साकूतं=साऽभिप्रायम् । साकूतत्वे हेतुरुक्तः—कथमिति । व्यालनखरप्रहारनिःसृतरक्तनिवहः=व्यालस्य ( शार्दूलस्य, व्याघ्रे चौरे च व्याल' इति शाश्वतः ) यो नखरप्रहारः ( नखप्रहरणम् ) तेन निःसृतः ( निर्गतः ) रक्तनिवहः ( रुधिरसमूहः ) यस्य सः । पुस्तकान्तरे तु निवहस्थाने 'प्रवाह' पदस्य पाठः । क्षितितलविषक्तखड्गलताऽवष्टम्भनिश्चलः=क्षितितले ( भूतले ) विषक्ता ( संलग्ना ) या खड्गलता ( असिवल्ली ) तस्या अवष्टम्भेन ( अवलम्बनेन ) निश्चलः ( स्पन्दरहितः, व्याघ्रेण बलवत्प्रहृतोऽपि महाप्राणतया न पतित इति भावः ) एवं च सम्भ्रान्तमदयन्तिकाऽवलम्बितः=सम्भ्रान्ता ( त्वरायुक्ता, मकरन्दरक्षणायेति भावः ) या मदयन्तिका, तया अवलम्बितः ( आलम्बितः दत्तहस्ताऽवलम्ब इति भावः ) एतादृशः वत्सः=वात्सल्यभाजनम् । ताम्यति=म्लायति ।

---

कामन्दकी और माधव—पशु ( व्याघ्र ) ने मकरन्दको दृढ़ताके साथ आहत किया और मकरन्दने भी उसको निष्प्राण कर डाला ( मार डाला ) ॥ १८ ॥

और स्त्रियां—जीवनकी अपेक्षा न करनेवाला कर्म किया ।

कामन्दकी—( अभिप्रायके साथ ) व्याघ्रके नाखूनोंके प्रहारसे बहुत रुधिर ( खून ) निकल गया है, तो भी पृथ्वीतलमें लगे हुए खड्गके अवलम्बनसे निश्चल

इतराः—हा धिक्, गाढप्रहारतया क्लाम्यति महाभागः। ( हद्धि, गाढप्पहारदाए, किलम्मदि महाभाओ। )

माधवः—कथं प्रमुग्ध एव। भगवति ! परित्रायस्व माम्।

कामन्दकी—वत्स, अतिकातरोऽसि। नन्वेहि, पश्यावस्तावत्।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे तृतीयोऽङ्कः।



इतरा इति। गाढप्रहारतया = गाढः ( दृढः ) प्रहारो यस्य तस्य भावस्तत्ता, तया। क्लाम्यति = ग्लायति।

माधव इति। प्रमुग्धः = प्रमोहं प्राप्तः। परित्रायस्व = रक्ष, मित्रस्य मकरन्दस्य रक्षणादिति भावः।

कामन्दकीति। अतिकातरः = अतिशयाऽधीरः, किमर्थमेतावतैव बिभेषीति भावः। ननु = आमन्त्रणद्योतकमव्ययमिदम्।

अयमङ्काऽवतारोऽर्थोपक्षेपक उत्तराऽङ्काऽर्थस्य पूर्वाऽङ्काऽन्ते निपातनात्, अङ्कद्वयस्य संगताऽर्थत्वाच्च। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'अङ्काऽन्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याऽविभागतः।
यत्राऽङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्काऽवतार इति स्मृतः॥' इति।

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां तृतीयोऽङ्कः।



और त्वरा करनेवाली मदयन्तिकासे सहारा दिया गया वात्सल्यपात्र किस प्रकारसे ग्लानियुक्त हो रहा है।

और स्त्रियां— हा धिक् ! गाढ़ प्रहार होनेसे महाभाग ( मकरन्द ) ग्लानियुक्त हो रहे हैं।

माधव—कैसे मूर्च्छित हो गये हैं। भगवति ! मुझे बचाइये।

कामन्दकी—वत्स ! तुम अतिशय कातर हो गये हो ! माधव ! आओ ! हमलोग देखें।

( सब बाहर निकलते हैं। )

इति तृतीय अङ्क।



# चतुर्थोऽङ्कः

( ततः प्रविशतो मदयन्तिकामालतीभ्यामवलम्ब्यमानौ मुग्धौ मकरन्दमाधवौ संभ्रान्ता कामन्दकी बुद्धरक्षिता लवङ्गिका च )

मदयन्तिका—प्रसीद भगवति, परित्रायस्व मदयन्तिकानिमित्तं संशयितजीवितं विपन्नानुकम्पिनं महाभागम् । ( पसीद भअवदी, परित्ताहि मदअन्तिआणिमित्तं संसइदजीविदं विवण्णाणुकम्पिणं महाभाअं। )

इतराः—हा धिक् । किमिदानीमत्र प्रेक्षितव्यमस्माभिः । ( हद्धि । किं दाणिं एत्थ पेक्खिदव्वं अम्हेहिं । )

कामन्दकी—( उभौ कमण्डलूदकेन सिक्त्वा ) ननु भवत्यः ! पटाञ्चलैर्वीजयध्वम् ।

---

तत इति । अवलम्ब्यमानौ=क्रियमाणाऽवलम्बनौ । मदयन्तिकया मकरन्दो मालत्या माधवोऽवलम्ब्यमान इति यथासंख्यं बोध्यम् । मुग्धौ=मूर्च्छितौ, माधवोऽपि सुहृद्विपद्दर्शनेन मुग्धः सञ्जात इत्यवधेयम् ।

मदयन्तिकेति । प्रसीद=प्रसन्ना भव, अनुगृहाणेति भावः । मदयन्तिकानिमित्तमिति क्रियाविशेषणं बोध्यम् । संशयितजीवितं=संशयितं ( सञ्जातसंशयम् ) जीवितं ( जीवनम् ) यस्य, तम् । विपन्नाऽनुकम्पिनं=विपन्नम् ( विपत्प्राप्तं मदयन्तिकासदृशं जनम् ) अनुकम्पते ( दयते ) तच्छीलस्तम्, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिप्रत्ययः । महाभागं=महान् भागः ( भाग्यम् ) यस्य सः, तं मकरन्दमिति भावः ।

इतरा इति । हा धिक्=अस्मानिति शेषः । प्रेक्षितव्यं=दर्शनीयम्, मकरन्दजीवननराश्येनेयमुक्तिर्बोद्धव्या ।

कामन्दकीति । उभौ=मकरन्दमाधवौ । भवत्यः='त्यदादेः सम्बोधनं नाऽस्तीति'

---

( अनन्तर मदयन्तिका और मालतीसे सहारा दिये गये मूर्च्छित मकरन्द और माधव, त्वरा करनेवाली कामन्दकी, बुद्धिरक्षिता और लवङ्गिका प्रवेश करती हैं । )

मदयन्तिका—भगवति ! अनुग्रह कीजिए । मदयन्तिकाके लिए अपने जीवनको संशयापन्न करनेवाले और विपद्ग्रस्त जनपर दया करनेवाले महाभाग ( मकरन्द ) की रक्षा कीजिए ।

और स्त्रियां—हा धिक् ! इस समय यहां हमलोगोंसे क्या देखना होगा ।

कामन्दकी—( मकरन्द और माधव दोनोंको कमण्डलुके जलसे सेचन कर ) महाशयाओ ! वस्त्राञ्चलोंसे हवा करो ।

( मालत्यादयस्तथा कुर्वन्ति )

मकरन्दः-( समाश्वस्यावलोक्य च ) वयस्य, अतिकातरोऽसि। किमेतत् । ननु स्वस्थ एवास्मि ।

मदयन्तिका--अहो, इदानीं प्रतिबुद्धं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण । ( अम्हहे, दाणिं पडिबुद्धं मअरन्दपुण्णचन्देण । )

मालती—( माधवस्य ललाटे हस्तं दत्त्वा ) महाभाग, दिष्ट्या वर्धसे। ननु भणामि प्रतिपन्नचेतनो महाभाग इति । ( महाभाअ, दिट्ठिआ वड्ढसि । णं भणामि पडिवण्णचेदणो महाभाओ त्ति । )

माधवः—( समाश्वस्य ) वयस्य, साहसिक एह्येहि । ( इत्यालिङ्गति )

---

नयस्योत्सर्गत्वादत्राऽपवादरूपेण सम्बोधनेऽपि प्रयोगः । पटाञ्चलैः = वस्त्राऽञ्चलैः, वीजयध्वं = वीजनं कुरुत, वातमुत्पादयतेति भावः ।

मकरन्द इति । स्वस्थः = प्रकृतिस्थः ।

मदयन्तिकेति । प्रतिबुद्धं = चेतना लब्धेति भावः । मकरन्दे पूर्णचन्द्रत्वारोपणेन स्वचित्ताह्लादकत्वादनुरागप्रकर्षो द्योत्यते ।

मालतीति । ललाटे = अलिके, मूर्च्छामपसारयितुं ललाटे हस्तनिक्षेपो बोद्धव्यः । नैतेन मालत्याः शालीनत्वाऽभावो विपत्काल एतादृशव्यतिकरस्यैवौचित्यात् । प्रतिपन्नचेतनः=प्रतिपन्ना ( प्राप्ता ) चेतना ( संज्ञा ) येन सः, आसादितप्रबोध इत्यर्थः । महाभागः = मकरन्दः ।

माधव इति । समाश्वस्य = समाश्वस्तो भूत्वा, चेतनामासाद्येति भावः ।

---

( मालती आदि वैसा ही करती हैं । )

मकरन्द—( होशमें आकर और देखकर भी ) मित्र ! तुम बहुत कातर हो। यह क्या ? मैं स्वस्थ ही हूँ ।

मदयन्तिका—अहो ! इस समय मकरन्दरूप पूर्णचन्द्रने चैतन्यलाभ किया ।

मालती—( माधवके ललाटमें हाथ देकर ) महाभाग ! भाग्यसे आपकी वृद्धि हो गई है । मै कह रही हूँ कि महाभाग ( मकरन्द ) होशमें आ गये हैं ।

माधव—( होशमें आकर ) मित्र ! साहस करनेवाले ! आओ-आओ । ( ऐसा कहकर आलिङ्गन करता है । )

कामन्दकी—( उभौ शिरस्याघ्राय ) दिष्ट्या जीवद्वत्साऽस्मि ।

इतराः—प्रियं नः संवृत्तम् । ( पिअं णो संउत्तं । )

( सर्वा हर्षं नाटयन्ति )

बुद्धरक्षिता—( जनान्तिकम् ) सखि मदयन्तिके, एष एव सः । ( सहि मदअन्तिए, एसो जेव्व सो )

मदयन्तिका—सखि, ज्ञातमेव मया यथैव माधवोऽयमपि स जन इति । ( सहि जाणीदं जेव्व मए जह एसो माहवो अअं वि सो जणो त्ति । )

बुद्धरक्षिता—अपि सत्यवादिन्यहम् । ( अवि सच्चवादिणी अहं ) ?

---

कामन्दकीति । उभौ=मकरन्दमाधवौ, शिरस्याघ्राणं सन्तानसमहत्स्नेहद्योतनाऽर्थम् । जीवद्वत्सा=जीवन्तौ ( प्राणान्धारयन्तौ ) वत्सौ ( पुत्रौ, पुत्रसमाविति भावः ) यस्याः सा । पुस्तकान्तरे तु 'जीवितवत्से'ति पाठान्तरम् ।

इतरा इति । प्रियम्=अभीष्टं, माधवमकरन्दयोः संज्ञाप्राप्त्येति भावः । पुस्तकान्तरे तु 'प्रियं प्रियम्' इति हर्षद्योतिका द्विरुक्तिः ।

बुद्धरक्षितेति । एष एव=समीपतरवर्ती एव, यो मया पूर्वं निवेदितस्त्वयि निरतिशयाऽनुरागो मकरन्द इति भावः ।

मदयन्तिकेति । स जनः=मकरन्द इति भावः, पतित्वाऽध्यवसायान्नामाऽनुपादानं बोध्यम् । त्वदुक्तप्रकारेण माधवसाहचर्येण स्वजीवननैरपेक्ष्येण मत्प्राणत्राणप्रणवत्वेन च मया विज्ञातोऽयमेव मत्प्राणवल्लभो मकरन्द इति तात्पर्यम् ।

बुद्धरक्षितेति । अपि=प्रश्नद्योतकमव्ययमिदम् । अस्य मदुक्ताः सौन्दर्यधैर्यौदार्यादिगुणगणाः प्रत्यक्षतो दृष्टा न वेति भावः ।

---

कामन्दकी--( मकरन्द और माधव दोनोंको शिरमें सूंघकर ) भाग्यसे मेरे वत्स जीवित हुए हैं ।

और स्त्रियां--हमलोगोंका अभीष्ट हुआ ।

( सब हर्षका अभिनय करती हैं । )

बुद्धरक्षिता--( केवल मदयन्तिकाको सुनाकर ) सखि मदयन्तिके ! ये वही हैं ।

मदयन्तिका--सखि ! मैंने जान ही लिया है कि जैसे ये माधव हैं उसी तरह ये भी वही हैं ।

बुद्धरक्षिता--क्या मैं सत्यवादिनी हूँ ?

मदयन्तिका--न खल्वस्मादृशीषु युष्मादृश्यः पक्षपातिन्यो भवन्ति। ( माधवमवलोक्य ) सखि, मालत्या अपि रमणीयोऽस्मिन्महानुभावेऽनुराग-प्रवादः। ( इति मकरन्दमेव सस्पृहमवलोकयति ) ( ण क्खु अम्हारिसेसु तुम्हारि-सीओ पक्खवादिणीओ होन्ति। सहि, मालदीए वि रमणिज्जो इमस्सिं महाणुहावे अणुराअप्पवादो।

कामन्दकी—( स्वगतम् ) रमणीयोर्जितं हि मदयन्तिकामकरन्दयोर्दैवा-दद्य दर्शनम्। ( प्रकाशम् ) वत्स मकरन्द, कथं पुनरायुष्मानस्मिन्नवसरे-मदयन्तिकाजीवितपरित्राणहेतोर्भगवता दैवेन संनिधापितः।

---

मदयन्तिकेति। अस्मादृशीषु = अस्मत्सदृशीषु, सरलमनोवृत्तिष्विति भावः। युष्मा-दृश्यः = युष्मत्सदृश्यः, स्नेहसम्पन्नाः सखीजना इति भावः। पक्षपातिन्यः = पक्षपात-शीलाः, प्रतारणयाऽऽश्वासदायिन्य इति भावः। युष्मादृश्यः सख्यः सत्यवादिन्या एव, मकरन्दविषये त्वया यदुक्तं तत्सर्वं सत्यमेव, तत्राऽसत्यस्य लेशोऽपि नेति हृदयम्। अस्मिन् सन्निकृष्टस्थे, महानुभावे—माधव इति भावः। रमणीयः = मनोहरः, सौन्द-र्यादिगुणगणभूषितयोरनयोर्मालतीमाधवयोर्मिथोऽनुरागः सर्वथा समुचित इति भावः। एतेन मदयन्तिकया स्वभ्रातुर्नन्दनस्य मालतीविषयस्याऽनुरागस्य विफलता ध्वनिता।

कामन्दकीति। दैवात् = भाग्यात्, न त्वस्मादृशव्यापारादिति भावः। दर्शनं = विलोकनम्। रमणीयोर्जितं = रमणीयं च तत् ऊर्जितमिति कर्मधारयः। तत्र रमणीयं = मनोहरम्, अक्लेशोपनतत्वेन स्वाभाविकत्वादिति भावः। एवं च ऊर्जितं = बलसम्पन्नं, व्याघ्रव्यापादनेनेति भावः। दीर्घायुः = आयुष्मान्, त्वमिति शेषः। सन्निधापितः = सन्निहितीकृतः।

---

मदयन्तिका—हमारी ऐसी स्त्रियोंमें तुम्हारी सदृश सखियाँ पक्षपात करनेवाली ( प्रतारणासे आश्वासन देनेवाली ) नहीं होती हैं। ( माधवको देखकर ) मालतीका भी इन महानुभावमें मनोहर अनुरागप्रवाद है। ( ऐसा कहकर मकरन्दको ही अभिलाषके साथ देखती है। )

कामन्दकी—( मन ही मन ) आज भाग्यसे मदयन्तिका और मकरन्दका दर्शन मनोहर और बलसम्पन्न हो गया है। ( सुनाकर ) वत्स मकरन्द! किस प्रकारसे चिरञ्जीव ( तुम ) को इस अवसर में मदयन्तिकाके जीवनकी रक्षाके कारणसे भगवान् भाग्यने समीपमें रख दिया।

मकरन्दः —अद्याहमन्तर्नगरमेव कांचिद्वार्तामुपश्रुत्य माधवचित्तोद्वेगमधिकमाशङ्कमानस्त्वरितमवलोकितानिवेदितकुसुमाकरोद्यानवृत्तवृत्तान्तः परापतन्नेव शार्दूलावस्कन्दगोचरामिमामभिजातकन्यकामभ्युपपन्नवानस्मि।

( मालतीमाधवौ विमृशतः )

कामन्दकी—( स्वगतम् ) वृत्तान्तेन खलु मालतीप्रदानेन भवितव्यम्। ( प्रकाशम् ) वत्स ! माधव ! ! दिष्ट्या वर्धितोऽसि मालत्या। सोऽयमवसरः प्रीतिदानस्य।

---

मकरन्द इति। अन्तर्नगरम् = नगरस्य मध्ये, 'अव्ययं विभक्ती'त्यादिनाऽव्ययीभावसमासः। अवलोकितानिवेदितकुसुमाकरोद्यानवृत्तान्तः = अवलोकितया निवेदितः कुसुमाकरोद्यानवृत्तान्तः ( मालतीमाधवसान्निध्यादिरूप इति भावः ) यस्य सः। त्वरितं=शीघ्रं, परापतन्नेव=आगच्छन्नेव, अत्रेति शेषः। शार्दूलाऽवस्कन्दगोचरां= शार्दूलस्य (व्याघ्रस्य) अवस्कन्दः (आक्रमणम्) गोचरः (ग्राह्यः) यस्याः सा, ताम्। 'गोचरगताम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। अभिजातकन्यकां=कुलीनकुमारीम् , अभ्युपपन्नवान्=अनुगृहीतवान् , रक्षितवानिति भावः। 'अभ्युपपत्तिस्त्वनुग्रहः' इत्यमरः। मालतीमाधवाविति। विमृशतः = कीदृशी वार्ता स्यादिति भावयत इत्यर्थः।

कामन्दकीति। मालतीप्रदानेन = मालत्याः प्रदानेन, राजकर्तृकनन्दनसम्प्रदानकमालतीकर्मकवितरणविषयकेण वृत्तान्तेनेति भावः। राजा नन्दनाय मन्त्रिणे मालतीं दास्यतीत्याकारकेण वृत्तान्तेन भाव्यमिति हृदयम्। वृत्तान्तेनेत्यत्र पुस्तकान्तरे 'वृत्तेने'ति पाठान्तरम्। दिष्ट्या = भाग्यवशात्। 'सुहृद्वृद्धये' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। वर्द्धितोऽसि = एधितोऽसि, भालफलके करतलामर्शनेन प्रत्याहृतचैतन्योऽसीति भावः। प्रीतिदानस्य = प्रेमवितरणस्य पारितोषिकसमर्पणस्येति भावः। पुस्तकान्तरे तु 'प्रीतिदायस्य'ति पाठस्तस्य वर्धापकदानस्येत्यर्थः। तदीयतामिति शेषः।

---

मकरन्द—आज मैं नगरके भीतर कुछ वृत्तान्त ( खबर ) सुनकर माधवजीके चित्तके अधिक उद्वेगकी आशङ्का कर रहा था, उसी समय मुझे अवलोकिताने कुसुमाकर उद्यानका वृत्तान्त बतलाया। उसके अनन्तर यहाँ आ रहा था उसी बीचमें बाघके पञ्जेमें पड़नेवाली कुलीन कन्याकी मैंने रक्षा की।

( मालती और माधव विचार करते हैं। )

कामन्दकी—( मन ही मन ) मालतीप्रदानविषयक वृत्तान्त होगा। ( सुनाकर ) वत्स ! माधव !! भाग्यसे मालतीसे बढ़ाये गये हो ( ललाटमें करतलके स्पर्शसे होशमें लाये गये हो। ) प्रीतिदानका यह अवसर है।

माधवः—भगवति, इयं मालती

यद्व्यालव्रणितसुहृत्प्रमोहमुग्धं
कारुण्याद्विहितवती गतव्यथं माम् ।
तत्कामं प्रभवति पूर्णपात्रवृत्त्या
स्वीकर्तुं मम हृदयं च जीवितं च ॥ १ ॥

माधव इति । इयं = सन्निहितवर्तिनी, उत्तरं 'ही' ति पुस्तकान्तरपाठः ।

यदिति । यत् व्यालव्रणितसुहृत्प्रमोहमुग्धं मां कारुण्यात् गतव्यथं विहितवती । तत् कामं पूर्णपात्रवृत्त्या मम हृदयं जीवितं च स्वीकर्तुं प्रभवतीत्यन्वयः । यत् = यस्माद्धेतोः, व्यालव्रणितसुहृत्प्रमोहमुग्धं = व्यालेन ( व्याघ्रेणेत्यर्थः ) व्रणितः ( व्रणः संजातेऽस्य व्रणितः, विक्षतगात्र इति भावः । 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच् । यः सुहृत् ( मित्रं मकरन्द इत्यर्थः ), तस्य यः प्रमोहः ( मूर्च्छा ), तेन मुग्धं ( मूर्च्छितम् ), मां = माधवं कारुण्यात् = दयायाः, करुणा एव कारुण्यं, तस्मात् । स्वार्थे ष्यञ् 'कारुण्यं करुणा घृणा' इत्यमरः । गतव्यथं = यातक्लेशं, विहितवती = कृतवती, ललाटे हस्तस्पर्शेन सान्त्वनाऽऽधायकवाक्येन चेति भावः । तत् = तस्मात्, कारणात्, कामं = स्वेच्छया, विनैव ममाऽनुमतिमिति भावः । पूर्णपात्रवृत्त्या=पूर्णपात्रप्रकारेण, पूर्णपात्रं नाम प्रियनिवेदकेन बलादाकर्षणोत्तरं गृह्यमाणमलङ्कारवस्त्रादिकं कथ्यते । तद्यथा—हर्षादुत्सवकाले यदलङ्कारांऽशुकादिकम् । आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णालकं च तत् ॥' इति जटाधरः । मम = माधवस्य, हृदयं = चित्तं, जीवितं च = जीवनं च, 'जीव प्राणधारणे' इति धातोः 'नपुंसके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययः । स्वीकर्तुम् = अङ्गीकर्तुं, प्रभवति=समर्था भवति, इयं मालतीति पूर्वपदद्वयस्य कर्तृत्वेनाऽन्वयः । यतः सुहृदापन्निमित्तां मदीयमूर्च्छामियं मालती हस्तस्पर्शपुरःसरेणाऽऽश्वासवाक्येनाऽपहृतवती ततस्तत्पारितोषिकस्थाने पूर्णपात्रमिव समर्पितं मदीयं हृदयं जीवनं च स्वीकृत्य विनियोक्तुमीष्टे इति भावः । अत्र हिंस्रविशेषस्य शार्दूलस्य वक्तव्यत्वेऽपि सामान्यहिंस्रवाचकस्य व्यालपदस्याऽभिधानाद्-विशेषेऽविशेषाख्यदोष इति केषांचिन्मतम् । परं 'व्याघ्रे चौरे च व्याल' इति शाश्वतकोषस्य प्रामाण्यान्मतमिदमनादरणीयम् । अत्र युक्तोत्तरप्रदानात्प्रगमनं नाम प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं, तद्यथा-प्रगमनं वाक्यं स्यादुत्तरोत्तरम्' इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥१॥

माधव—भगवति ! इन मालतीने—

जो कि बाघसे विक्षत शरीरवाले मित्र (मकरन्द) की मूर्च्छासे मूर्च्छित मुझको करुणासे दुःखरहित बनाया । इस कारणसे ये अपनी इच्छासे पूर्णपात्रके प्रकारसे मेरे हृदय और जीवनको स्वीकार करनेके लिए समर्थ हैं ॥ १ ॥

लवङ्गिका—प्रतीष्टः खलु नः प्रियसख्याऽयं प्रसादः। ( पडिच्छिदो क्खु णो पिअसहीए अअं पसादो । )

मदयन्तिका—( स्वगतम् ) जानाति महानुभावोऽयं जनो रमणीयं मन्त्रयितुम्। ( जाणादि महाणुहावो अअं जणो रमणिज्जं मन्तेदुं । )

मालती—( स्वगतम् ) किं नाम मकरन्देनोद्वेगकारणं श्रुतं भविष्यति। ( किं णाम मअरन्देण उव्वेअकालणं सुदं हविस्सदि । )

( प्रविश्य )

पुरुषः—वत्से मदयन्तिके, भ्राता ते ज्यायानमात्यनन्दनः समादि-

---

लवङ्गिकेति । प्रियसख्या = दयितवयस्यया, मालत्येति भावः । प्रसादः=अनुग्रहः, मालत्यधीननिजहृदयजीवितत्वप्रतिपादनरूप इति भावः । प्रतीष्टः = स्वीकृतः ।

मदयन्तिकेति । रमणीयं=मनोहरम् । मन्त्रयितुं=परिभाषितुम् । पुस्तकान्तरे 'जानाति महाभागधेयो जनोऽवसरे गुरुकरमणीयं मन्त्रयितुम्' इति पाठान्तरम् । तत्र महाभागधेयः=भाग एव भागधेयं, 'वा भागरूपनामभ्यो धेय' इति स्वार्थे (प्रकृत्यर्थे) धेयप्रत्ययः, 'दैवं दिष्टं भागधेयम्' इत्यमरः । महत् भागधेयं यस्य सः, महाभाग्यशालीत्यर्थः, माधव इति भावः । अवसरे = उपयुक्तप्रसङ्ग इति भावः । गुरुकरमणीयम् = अतिशयमनोहरम् ।

मालतीति । उद्वेगकारणं = चित्तचाञ्चल्यहेतुः माधवस्येति शेषः । अत उत्तरं माधववक्तृत्वेन 'वयस्य ! का पुनर्ममाऽधिकोद्वेगहेतुर्वार्ता' इत्यधिकः पुस्तकाऽन्तरपाठस्तत्र यां वार्तामुपश्रुत्य त्वं त्वरितमिहायात इति शेषः ।

प्रविश्येति । पुरुषः = कोऽपि जन इति शेषः ।

ज्यायान् = अग्रजः, अतिशयेन वृद्ध इति विग्रहे 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इति ईयसुन्प्रत्ययः 'ज्य चे'ति वृद्धशब्दस्य ज्यादेशः । 'ज्यादादीयस' इत्यात्वम् । 'वृद्धप्रशस्ययोर्ज्यायान्' इत्यमरः । परमेश्वरेण=राज्ञा, अनतिक्रमणीयशासनेनेति

---

लवङ्गिका—हमारी प्रियसखीने इस अनुग्रहको स्वीकृत किया ।

मदयन्तिका—( मन ही मन ) महानुभाव ये महाशय मिष्टभाषण करना जानते हैं ।

मालती—( मन ही मन ) मकरन्दने माधवजीका कौन सा उद्वेग ( चित्तचाञ्चल्य ) का कारण सुना होगा ?

( प्रवेश कर )

पुरुष—वत्से मदयन्तिके ! आपके बड़े भाई मन्त्री नन्दनजी आज्ञा करते हैं ।

शति । अद्य परमेश्वरेणास्मद्भवनमागत्य भूरिवसोरुपरि परं विश्वासमस्मासु च प्रसादमाविष्कुर्वता स्वयमेव मालती प्रतिपादिता । तदेहि संभावयावः प्रसादमिति ।

मकरन्दः--वयस्य, इयं सा वार्ता ।

( मालतीमाधवौ वैवर्ण्यं नाटयतः )

मदयन्तिका--( सहर्षं मालतीमाश्लिष्य ) सखि मालति ! त्वं खल्वेकनगरनिवासेन पांसुक्रीडनात्प्रभृति प्रियसखी भगिनी च साम्प्रतं पुनरस्माकं गृहस्य मण्डनं जाताऽसि । (सहि मालदि ! तुमं क्खु एक्कणअरणिवासेण पंसुकीलणादो पहुदि पिअसही भइणी अ संपदं उण अम्हाणं घरस्स मण्डणं जादासि )

---

भावः । परम् = अतिमात्रम् । विश्वासं = विस्रम्भं, 'भूरिवसुर्न मदीयं नियोगमुल्लङ्घयिष्यती'त्याकारकमिति भावः । प्रसादम् = अनुग्रहम्, प्रतिपादिता = दत्ता, मह्यमिति शेषः । संभावयावः = हर्षेण बहु मन्यावहे इति भावः । पुस्तकान्तरे 'संभावयाम' इति पाठस्तस्य 'अस्मदो द्वयोश्चे'त्यनेन साधुत्वमाकलनीयम् ।

मकरन्द इति । इयम् = अधुनैव प्रतिपादिता, सा = पूर्वं श्रुता, वार्ता = प्रवृत्तिः, तवोद्वेगकारिणीं यामुपश्रुत्याऽहं त्वरितमत्रागत इति शेषः ।

मालतीमाधवाविति । वैवर्ण्यं = विवर्णत्वं, 'राज्ञा नन्दनाय मालती प्रतिपादिते'ति श्रुत्वा मुखमालिन्यमिति भावः । नाटयतः = अभिनयतः ।

मदयन्तिकेति । आश्लिष्य = आलिङ्ग्य, पांशुक्रीडनात् प्रभृति = धूलिक्रीडाया आरभ्य, शैशव इति शेषः । पांसुपदात्पूर्वं 'सहे'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । साम्प्रतम् = अधुना, मण्डनं = भूषणं, राजाऽनुग्रहान्मद्भ्रातृभार्यात्वेनेति भावः ।

---

'आज महाराजने हमारे भवनमें पधार कर भूरिवसुके ऊपर परम विश्वास और हमारे ऊपर अनुग्रह प्रकाशित कर हमको स्वयम् ही मालतीका दान किया । इस कारणसे आओ, महाराजके अनुग्रहको हर्षसे मनावें' ।

मकरन्द—मित्र ! यह वही खबर है ।

( मालती और माधव मुखमालिन्यका अभिनय करते हैं । )

मदयन्तिका—( हर्षपूर्वक मालतीको आलिङ्गन कर ) सखि मालति ! तुम एक नगर ( शहर ) में रहनेसे धूलिक्रीड़ासे आरम्भ ( शुरु ) कर प्रियसखी और बहन हो और इस समय हमारे घरकी भूषण हो गई हो ।

कामन्दकी—वत्से मदयन्तिके, वर्धसे भ्रातुर्मालतीलाभेन।

मदयन्तिका—युष्माकमाशिषां प्रसादेन। सखि लवङ्गिके, भरिता नो मनोरथा युष्माकं लाभेन। (तुम्हाणं आसिसाणं पसादेण। सहि लवङ्गिए, भरिआ णो मणोरहा तुम्हाणं लाहेण)

लवङ्गिका—सखि, अस्माकमप्येतन्मन्त्रयितव्यम्। (सहि, अम्हाणं वि एदं मन्तिदव्वम्)

मदयन्तिका—सखि बुद्धरक्षिते, एहि तावत्। महोत्सवं संभावयावः। (सहि बुद्धरक्खिदे, एहि दाव। महोसवं संभावेम्ह) (इत्युत्तिष्ठतः)

लवङ्गिका—(जनान्तिकम्) भगवति, यथा हृदयभरितोद्गमद्विस्मयानन्द-

कामन्दकीति। भ्रातुः=अग्रजस्य, नन्दनस्येति भावः। वर्धसे=एधसे, इयं सोल्लुण्ठनोक्तिः।

मदयन्तिकेति। प्रसादेन=अनुग्रहेण, 'पहावेण (प्रभावेण)' इति पाठान्तरं तत्र प्रभावेण=महत्त्वेनेत्यर्थः। मालतीलाभो जात इति शेषः। नः=अस्माकं, युष्माकं=मालतीसहिताया लवङ्गिकाया लाभमुद्दिश्य बहुवचननिर्देशः।

लवङ्गिकेति। मन्त्रयितव्यं=पूर्णा नो मनोरथाः श्लाघ्यसम्बन्धानां युष्माकं लाभेनेति वक्तव्यमिति भावः।

मदयन्तिकेति। महोत्सवं=मालतीमाधवयोरुद्वाहमहोत्सवमित्यर्थः। संभावयावः=कारयावः। अत उत्तरं बुद्धरक्षितावक्तृत्वेन 'सखि! एहि गच्छाव' इत्यधिकं पाठान्तरम्।

लवङ्गिकेति। हृदयभरितोद्गमद्विस्मयानन्दसुन्दरघूर्णितधीरपर्यन्तमनोहराः=हृदये (चित्ते) भरितौ (पूर्णौ) अत एव उद्गमन्तौ (उद्गिरन्तौ, पुस्तकान्तरे तु 'उद्वृत्तौ' इति पाठस्तस्य आधिक्याद्धेतोरमान्तौ इत्यर्थः) यौ विस्मयानन्दौ (आश्चर्यहर्षौ)

कामन्दकी—वत्से मदयन्तिके! बड़े भाई (नन्दन) की मालतीप्राप्तिसे तुम वृद्धिको प्राप्त कर रही हो।

मदयन्तिका—आपके आशीर्वादोंके अनुग्रहसे (बढ़ रही हूँ।) सखि लवङ्गिके! तुम लोगोंके लाभसे हमारे मनोरथ पूर्ण हो गये हैं।

लवङ्गिका—सखि! हमलोगोंको भी ऐसा कहना चाहिए।

मदयन्तिका—सखि बुद्धरक्षिते! आओ। महोत्सव मनावें। (तब दोनों उठती हैं।)

लवङ्गिका—(केवल कामन्दकीको सुनाकर) भगवति! जिस प्रकारसे

सुन्दरघूर्णितधीरपर्यन्तमनोहराः पर्यस्यन्ते मदयन्तिकामकरन्दयोर्दलितनीलोत्पलमांसलच्छवयो दृष्टिसंभेदाः, तथा मन्ये मनोरथनिर्वृत्तसमागमावेताविति। (भअवदि, जह हिअअभरिव्वमन्तविम्हआणन्दसुन्दरघोलाविदधीरपेरन्तमणोहरा पल्लत्थन्ति मदअन्तिआमअरन्दाणं दलिदनीलुप्पलमंसलच्छविआ दिट्ठिसंभेआ, तह मण्णे मणोरहणिव्वुत्तसमाअमा एदे त्ति )

कामन्दकी—( विहस्य ) नन्विमौ परस्परं मानसं मोहनमनुभवतः। तथाहि—

ताभ्यां सुन्दरं ( मनोहरम् ) यथा स्यात्तथा घूर्णिताः ( भ्रमिताः, पुस्तकान्तरे तु 'आन्दोलिता' इति पाठस्तस्य सञ्चालिता इत्यर्थः ) धीराः ( धैर्ययुक्ताः, आकारगोपनार्थमिति शेषः, पुस्तकान्तरे तु····'धीरत्वमनोहरा' इति पाठस्तत्र धीरत्वेन = स्थैर्येण, मनोहराः=सुन्दरा इत्यर्थः ), पर्यन्ते ( अपाङ्गदेशे ) मनोहराः ( सुन्दराः )। दलितनीलोत्पलमांसलच्छवयः = दलितानि ( विकसितानि, पुस्तकान्तरे 'दरदलितानी'ति पाठान्तरं, तत्र दरम् = ईषद्यथा तथा दलितानीत्यर्थः ) यानि नीलोत्पलानि ( नीलकमलानि ) तेषामिव मांसला ( पुष्टा ) छविः ( कान्तिः ) येषां ते। पुस्तकान्तरे तु······'नीलोत्पलदामसदृशा' इति पाठस्तत्र नीलोत्पलानां दाम = माल्यं, तत्सदृशाः = तत्तुल्या इत्यर्थः। एतादृशाः मदयन्तिकामकरन्दयोः दृष्टिसम्भेदाः = कटाक्षविक्षेपाः, सम्मुखप्रवृत्त्या मिश्रीभूता इति शेषः। पर्यस्यन्ते = परितः अस्यन्ते ( क्षिप्यन्ते, अलसवलितादिप्रकारवैचित्र्येण प्रवर्तन्ते इति भावः ) पुस्तकान्तरे 'प्रवर्तन्ते' इति पाठः। तथा = तेन प्रकारेण, मन्ये = विचारयामि, 'तर्कयामि' इति पाठान्तरं तस्य ऊहे इत्यर्थः। एतौ = मदयन्तिकामकरन्दौ, मनोरथनिर्वृत्तसमागमौ = मनोरथेन ( अभिलाषेण ) निर्वृत्तः ( निष्पन्नः ) समागमः ( संगमः ) ययोस्तौ।

कामन्दकीति। ननु—सम्बोधनद्योतकमव्ययमिदम्। इमौ=मदयन्तिकामकरन्दौ, मानसं = संकल्पनिमित्तं, मोहनं = मोहकरणं, संकल्पनिमित्तसम्भोगमित्यर्थः। अनुभवतः = निविशत इति भावः। तद्व्यञ्जकं हेतुमुपपादयति—तथा हीति।

हृदयमें पूर्ण और उद्गीर्ण होनेवाले आश्चर्य और हर्षसे मनोहरताके साथ घूर्णित और धैर्ययुक्त एवम् अपाङ्गदेशमें सुन्दर, विकसित नीलकमलोंके सदृश पुष्ट कान्तिसे युक्त, मदयन्तिका और मकरन्दके कटाक्षविक्षेप हैं, उस प्रकारसे मैं विचार (गौर) करती हूँ कि ये अभिलाषासे सम्पन्न समागमवाले हुए हैं।

कामन्दकी—( हँसकर ) लवङ्गिके। ये दोनों परस्परमें सङ्कल्पनिर्मित समागमका अनुभव कर रहे हैं। जैसे कि—

ईषत्तिर्यग्वलनविषमं कूणितप्रान्तमेत-
त्प्रेमोद्भेदस्तिमितललितं किंचिदाकुञ्चितभ्रु ।
अन्तर्मोदानुभवमसृणं स्रस्तनिष्कम्पपक्ष्म

ईषदिति । ईषत्तिर्यग्वलनविषमं कूणितप्रान्तं प्रेमोद्भेदस्तिमितललितं किञ्चिदा-कुञ्चितभ्रु अन्तर्मोदाऽनुभवमसृणं स्रस्तनिष्कम्पपक्ष्म एतत् अनयोः आकेकराऽक्षं दृष्टं व्यक्तम् अचिरम् ( मानसं मोहनम् ) शंसतीत्यन्वयः । ईषत्तिर्यग्वलनविषमम्=ईष-त्तिर्यग्वलनेन ( मनाक्तिर्यक्प्रसारणेन ) विषमम् ( वक्रम्, वक्राख्योऽयं शृङ्गारदृग्वि-कारः । यथा—'वलितोऽपाङ्गसञ्चारो यत्र तद्वक्रमुच्यते ।' इति ) । कूणितप्रान्तं= कूणितः ( भागत्रयसङ्कुचितः ) प्रान्तः ( अपाङ्गदेशः ) यस्मिंस्तत् , नेत्रे वर्जयित्वै-कदेशेऽपाङ्ग एव भागत्रयसङ्कुचित इति भावः । कूणितलक्षणं यथा—'पुरस्त्रिभाग-सङ्कोचे प्रेम्णा तत्कूणितं भवेत् ।' इति । 'कूण सङ्कोचने' इति चौरादिकाद्धातोः 'नपुं-सके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययेन कूणितपदसिद्धिः । कूणितमस्ति यस्मिन्स कूणितः, 'अर्शआदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः । इत्थमेव सति कार्ये प्रान्ते कूणितमिति विग्रहेण 'राजदन्तादिषु परम्' इत्यनेन राजदन्तादेराकृतिगणत्वेन परनिपात इति कष्टकल्पनां कुर्वन्तो विद्वांसोऽश्रद्धेयाः । पुस्तकान्तरे तु 'कुञ्चितप्रान्तम्' इति पाठस्तत्र कुञ्चितः ( मुद्रितः ) प्रान्तः ( प्रान्तभागः ) यस्मिंस्तदिति विग्रहाऽर्थौ ज्ञेयौ । एवं च—प्रेमो-द्भेदस्तिमितललितं=प्रेम्णः ( प्रणयस्य ) उद्भेदेन ( प्रकाशेन ) स्तिमितं ( निष्प-न्दम् ) ललितं च ( प्रेमार्द्रं च, कर्मधारयसमासः ), निष्पन्दललिते यथा—

'निष्पन्दं तद्यदन्यत्र दृष्टान्न स्पन्दते क्वचित् ।
प्रेमाऽऽर्द्रमन्तर्विकसत्तारं ललितमीरितम् ॥' इति ।

पुस्तकान्तरे तु······'ललितम्' इति पाठस्तस्य मनोहरमित्यर्थः । किञ्चिदाकुञ्चि-तभ्रु=किञ्चित् ( ईषत् , यथा तथा ) आकुञ्चिते ( उत्क्षिप्ते ) भ्रुवौ (नेत्रोपरिस्थित-रोमराजी ) यस्मिंस्तत् । पुस्तकान्तरे तु 'किञ्चिदारेचितभ्रु' इति पाठस्तत्र किञ्चित् आरेचिते ( एकैकशो विवर्तिते ) भ्रुवौ यस्मिंस्तत् , इत्यर्थः । अन्तर्मोदाऽनुभवम-सृणम्=अन्तर्मोदः ( आन्तरिकहर्षः ) तस्य योऽनुभवः ( अनुभूतिः ) तेन मसृणम् ( प्रणयाऽनुरञ्जितम् ), मसृणलक्षणं यथा—'मसृणं तत्तु विज्ञेयमनुरागकषायितम् ।' इति । स्रस्तनिष्कम्पपक्ष्म=स्रस्तानि ( अवसन्नानि, स्तम्भपदपाठे स्तम्भेन=स्त-म्भाख्यसात्त्विकभावेनेत्यर्थः ), निष्कम्पाणि ( निश्चलानि ) पक्ष्माणि ( नयनलोमा-नि ) यस्मिंस्तत् । एतादृशम् एतत्=पुरतो दृश्यमानम्, अनयोः=मदयन्तिकामक-

कुछ तिर्यक् प्रसारणसे वक्र, तीन भागोंमें सङ्कुचित अपाङ्गदेशसे युक्त, प्रेमके प्रकाशसे निश्चल और आर्द्र, उत्क्षिप्त भौंहोंसे सम्पन्न, आन्तरिक हर्षके अनुभवसे

व्यक्तं शंसत्यचिरमनयोर्दृष्टमाकेकराक्षम् ॥ २ ॥

पुरुषः—वत्से मदयन्तिके ! इत इतः ।

मदयन्तिका—(अपवार्य) सखि बुद्धरक्षिते, अपि पुनर्द्रक्ष्यत एष जीवितप्रदायी पुण्डरीकलोचनः । ( सहि बुद्धरक्खिदे, अवि पुणो दीसइ एसो जीविदप्पदाई पुण्डरीअलोअणो )

बुद्धरक्षिता—यदि दैवमनुकूलयिष्यति । ( जइ देव्वं अणुऊलइस्सदि ) ( इति निष्क्रान्ता )

---

रन्दयोः, आकेकराऽक्षम् = ईषत्केकरे आकेकरे, 'कुगतिप्रादय' इति समासः, किञ्चिद्वलिरे इत्यर्थः । आकेकरे अक्षिणी (नेत्रे) यस्मिंस्तत्, 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति समासाऽन्तः षच्प्रत्ययः । एतादृशं दृष्टं = परस्परदर्शनं, कर्तृभूतं सत् । व्यक्तं=स्पष्टं, यथा स्यात्तथा । अचिरम् = अचिरोत्पन्नं, श्लोकात्पूर्वस्थवाक्यस्य 'मानसं मोहनम्' इति पदद्वयस्याऽध्याहारः, मानसं मोहनं=सङ्कल्पनिर्मितं सम्भोगं, शंसति = कथयति, ज्ञापयतीति भावः । तादृशदृष्टिदर्शनात्साधनात्सङ्कल्पनिर्मितसम्भोगरूपस्य साध्यस्य ज्ञानं भवतीत्यभिप्रायः । अत एवाऽनुमानाऽलङ्कारः । आकेकरदृष्टिलक्षणं यथा—

'आकुञ्चितपुटा याऽङ्गसंगताऽर्धनिमीलिता ।
मुहुर्व्यावृत्ततारा च दृष्टिराकेकरा मता ॥' इति । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२॥

मदयन्तिकेति । अपि = प्रश्नाऽर्थकमव्ययमिदम् । अनेन प्रश्नेनौत्सुक्याऽतिशयो द्योत्यते । द्रक्ष्यते=विलोकयिष्यते, 'दृश्यत' इति पुस्तकान्तरपाठः । जीवितप्रदायी= जीवितं प्रददातीति, व्याघ्रघातेनेति शेषः । णिनिप्रत्ययः । 'आतो युक्चिण्कृतोः' इति युगागमः । 'जीवितप्रद' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र जीवितं प्रददातीति 'प्रे दाज्ञः' इति कप्रत्ययः । एषः = मकरन्दः, पुण्डरीकलोचनः=सिताऽम्भोजनयनः, पुण्डरीके इव लोचने यस्य सः ।

बुद्धरक्षितेति । अनुकूलयिष्यति=अनुकूलं करिष्यति, पुनरपि द्रक्ष्यत इति शेषः ।

---

प्रणयानुरञ्जित, अवसन्न और निश्चल नेत्रलोमोंसे उद्भासित, इन दोनोंका यह कुछ वलिर नेत्रोंवाला परस्परदर्शन, स्पष्टरूपसे सङ्कल्पनिर्मित समागमको ज्ञापित करता है ॥ २ ॥

पुरुष—वत्से मदयन्तिके ! इधर इधर ।

मदयन्तिका—( केवल बुद्धरक्षिताको सुनाकर ) सखि बुद्धरक्षिते ! जीवन देनेवाले, श्वेत कमलोंके सदृश नेत्रोंसे युक्त ये ( मकरन्द ) क्या फिर देखे जायँगे ?

बुद्धरक्षिता—यदि भाग्य अनुकूल करेगा ( ऐसा कहकर जाती है । ) ।

माधवः—( अपवार्य )

चिरादाशातन्तुस्त्रुटतु विसिनीसूत्रभिदुरो
महानाधिर्व्याधिर्निरवधिरिदानीं प्रसरतु ।
प्रतिष्ठामव्याजं व्रजतु मयि पारिप्लवधुरा
विधिः स्थैर्यं धत्तां भवतु कृतकृत्यश्च मदनः ॥ ३ ॥

'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्ताल्लृट्। पुस्तकान्तरे तु 'यदि दैवमनुकूलं भविष्यती' ति पाठः ।

चिरादिति । विसिनीसूत्रभिदुरः चिरात् आशातन्तुः त्रुटतु । इदानीं महान् आधिः व्याधिः निरवधिः प्रसरतु । पारिप्लवधुरा मयि अव्याजं प्रतिष्ठां व्रजतु । विधिः स्थैर्यं धत्ताम् । मदनश्च कृतकृत्यो भवत्वित्यन्वयः । विसिनीसूत्रभिदुरः = विसिनीसूत्रमिव ( मृणालिनीतन्तुरिव ) भिदुरः ( भेदनस्वभावः ), 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासः । एतादृशः चिरात् = बहुकालात्, अनुवृत्त इति शेषः । आशातन्तुः = मालतीप्राप्त्याशारूपं सूत्रं, त्रुटतु = छिन्नो भवतु, बहुकालादारब्धा या मालतीलाभाऽऽशा सा छिन्नेति भावः । इदानीं = सम्प्रति, महान् = विपुलः, आधिः = मानसी व्यथा, व्याधिः = रोगः, आधिरेव व्याधिरिति व्यस्तरूपकम् । निरवधिः = सीमारहितः सन्, प्रसरतु = प्रसृतो भवतु, व्याप्नोत्विति भावः । अद्य यावन्मालतीप्राप्त्याशयैव मनोव्यथा सोढा, साम्प्रतं तत्प्राप्त्यवधेरभावात् सा मनोव्यथा निर्मर्यादा सती विजृम्भत इति भावः । पारिप्लवधुरा = पारिप्लवस्य ( चित्तचाञ्चल्यस्य ) धूः ( भारः ), 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति समासाऽन्तः अप्रत्ययः । 'चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे ।' इत्यमरः । मयि = मद्विषये, अव्याजं = निष्कपटं यथा स्यात्तथा, विस्रम्भपूर्वकमिति भावः । प्रतिष्ठां = स्थितिं, व्रजतु = गच्छतु, प्राप्नोत्विति भावः । आधारभूताया मालतीप्राप्त्याशाया अपगमाद्वातप्रेरितकार्पासवदप्रतिष्ठां प्राप्नोत्विति भावः । विधिः = भाग्यं, स्थैर्यं = स्थिरतां, पुस्तकान्तरे तु 'स्वास्थ्यम्' इति पाठस्तस्य स्वस्थतां, विश्राममिति भावः । धत्तां = धारयतु, मत्पीडनतत्परं भाग्यं कृतकृत्यतया स्थिरं भवत्विति भावः । एवं च—मदनश्च = कामश्च, कृतकृत्यः = कृताऽर्थः भवतु = अस्तु, कान्तया वियुज्यमानं

माधव—( केवल कामन्दकीको सुनाकर )

मृणालिनी-तन्तुके सदृश भेदनस्वभाववाला और बहुत समयसे अनुवृत्त आशारूप सूत्र टूट जाय । इस समय महान् मनोव्यथारूप व्याधि सीमारहित होकर फैल जाय । चित्तकी चञ्चलताका भार मेरे विषयमें निष्कपटरूपसे स्थितिको प्राप्त

अथवा

समानप्रेमाणं जनमसुलभं प्रार्थितवतो
विधौ वामारम्भे मम समुचितैषा परिणतिः ।
तथाऽप्यस्मिन्दानश्रवणसमयेऽस्याः प्रविगल-
त्प्रभं प्रातश्चन्द्रद्युति वदनमन्तर्दहति माम् ॥ ४ ॥

मां चरमां दशां नीत्वा स्वकीयस्य मारनाम्नोऽन्वर्थत्वेन कृतार्थो भवत्विति भावः। इतः परं मज्जीवनं दुर्लभमिति तात्पर्यम्। अत्रैकस्मिन्गुरुतरदुःखप्रतिपादनकार्येऽनेककारणसमुच्चयात्समुच्चयाऽलङ्कारः। प्रथमचरणे 'आशातन्तु' रित्यत्र रूपकः 'बिसिनीसूत्रभिदुरः' इत्यत्रोपमाऽलङ्कारः। द्वितीयचरणे रूपकम्। तथा चैतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

स्वयमेव स्वं समाश्वासयति—अथवेति।

समानप्रेमाणमिति। समानप्रेमाणम् असुलभं जनं प्रार्थितवतो मम विधौ वामाऽऽरम्भे (सति) एषा परिणतिः समुचिता। तथाऽपि दानश्रवणसमये प्रविगलत्प्रभं प्रातश्चन्द्रद्युति अस्या वदनं माम् अन्तः दहतीत्यन्वयः। समानप्रेमाणं=समानः (तुल्यः, ममेति शेषः) प्रेमा (अनुरागः) यस्य सः, तम्। परन्तु-असुलभं=दुष्प्रापं, मातापित्राद्यधीनत्वेनेति भावः। जनं=मालतीरूपं ललनाजनं, प्रार्थितवता=उपयाचितवतः, मनसेति शेषः। एतादृशस्य, मम=माधवस्य, विधौ=भाग्ये, वामाऽऽरम्भे=वामः (वक्रः, प्रतिकूल इति भावः) आरम्भः (कर्म) यस्य सः, तस्मिन्, तादृशे सति, 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सप्तमी। एषा=इयं, समीपतरवर्तिनीति भावः। परिणतिः=दशापरिवृत्तिः, प्राक्तन्या आशया वैफल्यान्नैराश्यरूपेति भावः। समुचिता=युक्ता, विधौ प्रतिकूले सति सुलभोऽपि न लभ्यते किमुत मातापित्राद्यायत्तत्वेन दुर्लभः कन्यकाजन इति भावः। तथाऽपि=मयि तादृग्दशापीडितेऽपीति भावः। दानश्रवणसमये=वितरणाऽऽकर्णनकाले 'राजा स्वयं नन्दनाय मालतीं दास्यती'ति श्रवणवेलायामिति भावः। प्रविगलत्प्रभं=प्रविगलन्ती (प्रस्रवन्ती) प्रभा (कान्तिः) यस्मात्तत्। अत एव प्रातश्चन्द्रद्युति=प्रातश्चन्द्रस्येव (प्रभातेन्दोरिव) द्युतिः (कान्तिः) यस्य तत्। एतादृशम् अस्याः=

करे। भाग्य स्थिरताको धारण करे और कामदेव भी कृतकृत्य हो जाय ॥ ३ ॥

अथवा—

भाग्यके कुटिल आचरण करनेपर तुल्यप्रेमवाले दुर्लभ (मालतीरूप) जनको प्रार्थना करनेवाले मेरा यह दशापरिवर्तन समुचित है। तो भी नन्दन को देने की

कामन्दकी—( स्वगतम् ) एवं दुर्मनायमानः पीडयति मां वत्सो माधवो वत्सा मालती च। दुष्करं निराशा प्राणितीति। ( प्रकाशम् ) वत्स माधव, पृच्छामि तावदायुष्मन्, त्वाम्। अथ किं भवानमंस्त यथा भूरिवसुरेव मालतीमस्मभ्यं दास्यतीति।

माधवः—( सलज्जम् ) नहि नहि।

---

मालत्याः, वदनं=मुखं, मां=माधवं, प्रणयिनमिति भावः। अन्तः=अभ्यन्तरे, अन्तःकरण इति भावः। दहति=दाहं करोति। यथाऽस्या मालत्याः एतद्वृत्तान्त-श्रवणेन प्राभातिकचन्द्रोपमं मुखं दृष्ट्वा सन्तापमनुभवामि न तथा मालतीलाभा-शया समन्वितस्य मम नैराश्येन दुर्दशापरिणामेऽपीति भावः। प्रातश्चन्द्रद्युतीत्यत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४ ॥

कामन्दकीति। एवम्=इत्थम्, दुर्मनायमानः=दुर्मनस्कः, दुर्मनायते इति 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति आचारक्यङन्ताल्लटः शानच्। 'ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया' इति विभाषया सलोपः। निराशा=आशाऽभावः, लक्षणया निराशो जन इति भावः। दुष्करं=दुष्करं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। प्राणिति=जीवति। प्रोपसर्गपूर्वकात् 'अन प्राणने' इति धातोर्लट्, 'अनितेः' इति नस्य णत्वम्। आशाभङ्गेन तादृशं जीवनं वर्तते यन्मरणादपि दुःसहमिति भावः। आयुष्मन्=जैवातृक, आयुष्मन्निति सम्बोधनेन माधवं प्रति पुत्रसदृशं वात्सल्यं द्योत्यते। 'जैवातृकः स्यादायुष्मान्' इत्यमरः। अमंस्त= मन्यतेस्म। अस्मभ्यं=मह्यम्, 'अस्मदो द्वयोश्चे'ति बहुवचनम्। अद्ययावद्भूरिवसुरेव मह्यं मालतीं दास्यतीति मत्वा त्वया किं जीवनं धृतम्। तथा चेदिदानीं युक्तस्ता-पाऽतिशयः। तेनैवाऽन्यस्मै तस्याः प्रदानादिति भावः। माधव इति। नहि नहि= न न, संभ्रमे द्विरुक्तिः। भूरिवसुर्मह्यं मालतीं दास्यतीति मत्वाऽहमत्र नाऽऽयात इति भावः।

---

वार्ताके श्रवणके समयमें विगलित कान्तिवाला और प्रातः कालके चन्द्रके सदृश कान्तिसे युक्त मालतीका मुख मुझको अतःकरणमें जला रहा है ॥ ४ ॥

कामन्दकी—( मन ही मन ) इस प्रकार दुर्मनस्कके सदृश आचरण करनेवाले वात्सल्यभाजन माधव और मालती मुझे पीड़ित कर रहे हैं। निराश व्यक्ति दुष्कररूपसे प्राण धारण करता है। ( सुनकर ) वत्स माधव! चिरञ्जीव। मैं तुम्हें पूछती हूँ। क्या आप समझते थे कि 'भूरिवसु ही मुझे मालतीका समर्पण करेंगे?'

माधव—( लज्जित होकर ) नहीं, नहीं।

कामन्दकी—न तर्हि प्रागवस्थाया भूरिवसुः परिहीयते ।

मकरन्दः—दत्तपूर्वेत्याशङ्क्यते ।

कामन्दकी—जानामि तां वार्ताम् । इदं तावत्प्रसिद्धमेव यथा नन्दनाय मालतीं प्रार्थयमानं भूरिवसुर्नृपतिमुक्तवान् 'प्रभवति निजकन्यकाजनस्य महाराजः' इति ।

मकरन्दः—अस्त्येतत् ।

कामन्दकी—अद्य च राज्ञा स्वयमेव मालती दत्तेति संप्रत्येव पुरुषेणावे-

---

कामन्दकीति । तर्हि=एवं चेत्, प्रागवस्थायाः=प्राग्भवाऽवस्था प्रागवस्था, तस्याः पूर्वाऽवस्थाया इति भावः । न परिहीयते=न परिहीनो भवति । पूर्वमपि भूरिवसुर्दास्यतीति न तव प्रत्याशा, इदानीमपि सा नाऽस्ति, अतः किमिदानीमुद्वेगाऽतिशयः प्रदर्श्यते । यत्नविशेषेणैव युष्माकं मनोरथसंपत्तिः फलिष्यति स चाऽचिरादेव विधास्यत इति भावः । पुस्तकान्तरे तु 'न तर्हि प्रागवस्थायाः परिहीयसे' इति पाठस्तत्र यद्येवं भूरिवसुर्मह्यं दास्यतीति ते प्रत्याशा न, तर्हि किमर्थं साऽतिशयमुद्वेगः प्रदर्श्यत इति भावः ।

मकरन्द इति । दत्तपूर्वा=पूर्वं दत्ता, 'सह सुपा' इति समासः । राजाऽनुरोधेन भूरिवसुना नन्दनाय वाग्दानस्य प्रतिश्रुतिः कृता स्यादित्याशङ्क्यते । सेयमाशङ्का तापहेतुरिति भावः ।

कामन्दकीति । नन्दनाय—'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' इति चतुर्थी । प्रसिद्धमेव=प्रख्यातमेव । प्रभवति=समर्थो भवति, यस्मै कस्मैचिदपि दातुमिति भावः । उपचारमात्रमेतत्, नैतावता भेतव्यमिति भावः ।

मकरन्द इति । एतत्=वृत्तम्, अस्ति=वर्तते, मयाऽपि श्रुतमिति भावः ।

कामन्दकीति । राज्ञा=नृपतिना, स्वयमेव=आत्मनैव न तु मालतीजनकेन भूरि-

---

कामन्दकी—ऐसा हो तो पहलेकी अवस्थासे भूरिवसु परिहीन नहीं हो रहे हैं।

मकरन्द—'भूरिवसुने नन्दनको मालतीका वाग्दान किया' ऐसी आशङ्का की जाती है ।

कामन्दकी—मैं उस वार्ताको जानती हूँ । यह प्रसिद्ध ही है कि नन्दनके लिए मालतीको मांगनेवाले राजाको भूरिवसुने कहा—'अपनी कन्याके विषयमें महाराजका प्रभुत्व है' ।

मकरन्द—यह बात ठीक है ।

कामन्दकी—आज राजाने स्वयं ही मालतीका दान किया इस बातको

दितम् । तद्वत्स, वाक्प्रतिष्ठानि देहिनां व्यवहारतन्त्राणि । वाचि पुण्यापुण्यहेतवो व्यवस्थाः सर्वथा जनानामायतन्ते । सा च भूरिवसोर्वागनृतात्मिकैव । न खलु महाराजस्य निजकन्यका मालती । कन्यकाप्रदाने च नृपतयः प्रमाणमिति नैवंविधो धर्माचारसमयः । तस्मादवस्थितमेवैतत् । कथं च मामनवधानां मन्यसे । पश्य—

वसुनेति भावः । तत् = तस्मात्कारणात्, देहिनां = जनानां, व्यवहारतन्त्राणि=व्यवहाररूपाणि ( आचाररूपाणि ) तन्त्राणि ( कुटुम्बकृत्यानि ), 'तन्त्रं कुटुम्बकृत्ये स्यात्' इति हलायुधः । वाक्प्रतिष्ठानि = वाचि ( वचनविषये ) प्रतिष्ठा ( स्थितिः ) येषां तानि, वचनमात्रनिबन्धनानीति भावः । अत्राऽर्थे—'वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः । तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥' इति मनूक्तिरपि उपोद्वलिकेति तात्पर्यम् । पुण्याऽपुण्यहेतवः = धर्माऽधर्मकारणभूताः, व्यवस्थाः='सत्यं वदेन्नाऽनृतम्' इत्यादयः शास्त्रीया मर्यादा इति भावः । वाचि एव=वचन एव, आयतन्ते=अधीना भवन्ति । तथा च—भूरिवसोः = अमात्यस्य, सा च वाक्= पूर्वोक्ता वाणी, 'प्रभवति निजकन्यकाजनस्य महाराज' इत्याकारिकेति भावः । अनृताऽऽत्मिका = मिथ्याभूता, अनृतात्मिकां प्रतिपादयति—न खल्विति । सर्वाऽधिपतित्वात्तस्य परकीयकन्याप्रदानेऽपि प्रभुत्वमस्तीत्यत्राह=कन्यकेति । नृपतयः = राजानः, प्रमाणं = परिच्छेत्तारः, धर्माऽऽचारसमयः = धर्माऽऽचारयोः ( धर्मशास्त्रसदाचारयोः ) समयः ( सिद्धाऽन्तः ), 'समयाः शपथाऽऽचारकालसिद्धाऽन्तसंविदः ।' इत्यमरः ।

'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रदः पूर्वभावे प्रकृतिस्थः परः परः ॥'

इति याज्ञवल्क्यवचनात्पित्रादीनामेव कन्याप्रदानाऽधिकारादिति भावः । तस्मात् = कारणात्, एतत् = भूरिवसुवाक्यम्, अवस्थितं = सुस्थितम्, उपचारात्मकम्, अत एतत्सत्यमिति मत्वा युष्माभिर्न भेतव्यमिति भावः । 'तस्माद्विमर्शितव्यमेतत्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र विमर्शितव्यं = विचारणीयं, युष्माभिरिति

अभी ही पुरुषने कहा । इस कारणसे हे वत्स ! आचाररूप कुटुम्बकृत्य वचनमें प्रतिष्ठित हैं । मनुष्योंके धर्म और अधर्मके कारण शास्त्रीय मर्यादायें सब प्रकारसे वचनके अधीन होती हैं । भूरिवसुकी वह वाणी मिथ्याभूत ही है । मालती महाराजकी अपनी कन्या नहीं है । 'कन्यादानमें राजा प्रमाण हैं' ऐसा धर्मशास्त्र और सदाचारका सिद्धान्त नहीं है । इस कारणसे भूरिवसुका वाक्य उपचारात्मक है । कैसे तुम मुझको असावधान ( गाफिल ) समझते हो । देखो—

भगवति कामन्दकि, एषा भर्त्री विज्ञापयति यथा मालतीं गृहीत्वा त्वरितमागच्छेति। ( भअवइ कामन्दइ, एसा भट्टिणी विण्णावेदि जहा मालदिं घेत्तूण तुरिदं आअच्छेत्ति )

कामन्दकी--वत्से, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

( सर्वा उत्थाय परिक्रामन्ति )

( मालतीमाधवौ सकरुणानुरागमन्योन्यमवलोकयतः )

माधवः--कष्टम्, एतावती हि माधवस्य मालत्या समं लोकयात्रा। अहो नु खलु भोः--

---

भरतोऽप्याह—

'राजस्त्रियस्तु सम्भाष्याः सर्वाः परिजनेन तु।
भट्टिनी स्वामिनीत्येवं नाट्ये प्राहुर्विचक्षणाः॥' इति।

कामन्दकीति। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ=सम्भ्रमे द्विरुक्तिः।

मालतीमाधवाविति। सकरुणाऽनुरागं=सकरुणं ( सदयं, परस्पराऽनिष्टशङ्कयेति भावः ) साऽनुरागं च ( सप्रणयं च, अन्योन्यभावज्ञानादिति शेषः )।

माधव इति। 'स्वगतम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। मालत्या='समम्' इति सहाऽर्थकेन पदेन योगे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति तृतीया। लोकयात्रा=दर्शनादिलोकव्यवहारः, एतावती=इयती, एतत्परिमाणमस्ति यस्याः सा, 'किंयत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' इति वतुप्प्रत्ययः, 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशस्ततः स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'उगितश्चे'ति ङीप्। मालत्या सह मम दर्शनादिव्यतिकर एतत्कालपर्यन्तः सम्भाव्यते, तस्या नन्दनेन समं परिणये जाते दौर्लभ्यादिति भावः। अहो नु खलु भोः=अयमव्ययसमुदायो निर्वेदाऽतिशयद्योतकः।

---

भगवति कामन्दकि! ये महारानी आज्ञा करती हैं कि 'आप मालतीको लेकर शीघ्र आइये'।

कामन्दकी--वत्से! उठो, उठो।

( सब उठकर परिक्रमण करती हैं। )

( मालती और माधव शोक और प्रेमके साथ एक दूसरेको देखते हैं। )

माधव—कष्ट है। मालतीके साथ माधवका इतना ही लोकव्यवहार है। हाय! भाग्य।

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां
प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः
प्रविशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम् ॥ ७ ॥

मालती—( अपवार्य ) महानुभाव लोचनानन्दकर, एतावद् दृष्टोऽसि। ( महाणुहाअ लोअणाणन्दअर, एत्तिअं दिट्ठोसि )

---

सुहृदिवेति । विधिः प्रथमं सुहृत् इव सुखप्रदाम् एकरसाम् अनुकूलतां प्रकटय्य पुनः अकाण्डविवर्तनदारुणः ( सन् ) मनसो रुजं प्रविशिनष्टीत्यन्वयः । विधिः= भाग्यं, प्रथमं=पूर्वं, सुहृत् इव=मित्रम् इव, सुखप्रदाम् = आनन्दप्रदां, सुखं प्रददातीति सुखप्रदा, तां 'प्रे दाज्ञः' इति कप्रत्ययः। पुस्तकान्तरे तु 'सुखप्रद' इति विधिविशेषणत्वेन सम्मतः पाठः। एकरसाम्=एकः ( एककः, रसान्तरेणाऽमिश्र इति भावः ) रसः ( प्रेम ) यस्यां, ताम्, 'श‍ृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ।' इत्यमरः। अनुकूलताम् = आनुकूल्यं, योगक्षेमरूपमिति भावः। प्रकटय्य=प्रकाश्य, पुनः = अनन्तरम् , अकाण्डविवर्तनदारुणः = अकाण्डे ( अनवसरे ) यत् विवर्तनं ( परिवर्तनम् ), तेन दारुणः ( क्रूरः ) सन् , 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणाऽर्ववर्गाऽवसरवारिषु ।' इत्यमरः । मनसः = चेतसः, रुजं=पीडां, प्रविशिनष्टि=प्रविशिष्टां करोति, प्रयोजनं विघटय्य आधिमात्रमवशेषयतीति भावः। भाग्यं प्राक्सुहृदिवाऽनुकूलीभूय सुखमुत्पादयति, पश्चादकाण्डे दुःखानि जनयतीति भावः। उत्तररामचरितेऽपि चतुर्थाङ्के कञ्चुकिवक्तृकत्वेन निहितोऽयं श्लोकस्तत्र क्रियापदे 'परिशिनष्टी'ति पाठस्तस्य परिशिष्टां करोतीत्यर्थः। पुस्तकान्तरे तु चतुर्थचरणे—'विधिरहो ! विशिनष्टि मनोरुजम्' इति पाठस्तत्र अहो इति विषादद्योतकमव्ययम् । अत्र विषमोपमाऽलङ्कारयोः सङ्करः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

मालतीति। एतावत्=एतत्पर्यन्तं, दृष्टः = अवलोकितः, अतः परं न दृश्यसे, मम जीवनाऽभावादिति भावः। इदं च प्रत्यक्षनिष्ठुरत्वाद्वज्रं नाम प्रतिमुखसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'प्रत्यक्षनिष्ठुरं वज्रम्' इति।

---

पहले मित्रकी तरह सुख देनेवाली केवल प्रेमयुक्त अनुकूलताको प्रकाशित करके पीछेसे अनवसरमें परिवर्तन कर कठोर होता हुआ मनकी पीडाको अतिशय बढ़ाता है ॥ ७ ॥

मालती—( केवल माधवको सुनाकर ) नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले महानुभाव ! आप इतने ही समय तक देखे गये हैं ।

लवङ्गिका—हा धिक्। शरीरसंशयमेव नः प्रियसख्यारोपिताऽमात्येन।
( हद्धि। सरीरसंसअं जेव्व पिअसही आरोविदा अमच्चेण )

मालती—परिणतमिदानीं जीविततृष्णायाः फलम्। निर्व्यूढं च निष्करुणतया तातस्य कापालिकत्वम्। परिनिष्ठितो दैवहतकस्य दारुणसमारम्भपरिणामः। तत्कं वोपालभे मन्दभागिनी। कं वाऽशरणा शरणं प्रतिपद्ये। ( परिणदं दाणिं जीविदतिण्हाए फलम्। णिव्वूढं अ णिक्करुणदाए तादस्स कावालिअत्तणं। परिणिट्ठिदो देव्वहदअस्स दालुणसमारम्भपरिणामो। ता कं वा उवालभामि मन्दभाइणी। कं वा असरणा सरणं पडिवज्जामि )

---

लवङ्गिकेति। धिक्=भाग्यमिति शेषः। शरीरसंशयं=देहसन्देहम्। अमात्येन=मन्त्रिणा, भूरिवसुनेति शेषः।

मालतीति। परिणतं=परिपाकमापन्नम्। कापालिकत्वं=वामाचारितान्त्रिकविशेषत्वम्, कपालेन चरतीति कापालिकः, 'चरति' इति ठञ्, कापालिकस्य भावः इति विग्रहे त्वप्रत्ययः। निर्व्यूढं=निष्पन्नं, यथा कापालिकः स्त्रीबालादिवधेन निष्करुणस्तथैव तातोऽपि मदीयमरणहेतुना अनीप्सितवरसमर्पणेन निष्करुणस्ततोऽस्य नृशंसत्वात्कापालिकत्वं निष्पन्नमिति भावः। एतेन पञ्चमाऽङ्ककृत्यं च किञ्चित्सूचितम्। दैवहतकस्य=दुष्टभाग्यस्य, 'दुष्टदैवस्ये'ति पुस्तकान्तरपाठः। दारुणसमारम्भपरिणामः=भीषणकर्मपरिपाकः, 'दारुणसमारम्भसदृश' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य भीषणकर्मतुल्य इत्यर्थः। एतादृशः परिणामः। परिनिष्ठितः=परिसमाप्तिं गतः। 'प्रतिष्ठित' इति पुस्तकान्तरस्तस्य सम्पन्न इत्यर्थः। तत्=तस्माद्धेतोः, कं=जनम्, मन्दभागिनी=अल्पभाग्या, मन्दश्चाऽसौ भागो मन्दभागः, सोऽस्या अस्तीति, 'अत इनिठनौ' इति इन्नन्तात् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप्। अत्र 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर' इति न्यायेन 'मन्दभागे'ति बहुव्रीहिणैव कार्यनिर्वाहे मत्वर्थीयग्रहणं मन्दभागस्य नित्यत्वद्योतनाऽर्थम्। उपालभे=प्रतिभिनद्मि, दुर्वाक्यभाजनं करोमीति भावः। 'प्रतिभिन्ते प्रतिभिनत्त्युपालभत इत्यपि। उपालम्भे' इति भट्टमल्लः। अशरणा=रक्षकरहिता, अविद्यमानं शरणं ( रक्षिता ) यस्याः सा, 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप' इति नञ्बहुव्रीहिः। प्रतिपद्ये=लभे,

---

लवङ्गिका—हाय। धिक्कार है। मन्त्रीजीने हमारी प्रियसखीको शरीरसन्देहमें ही आरोपित कर दिया है ( इनका शरीर अब रहेगा या नहीं इनमें सन्देह है। )

मालती—इस समय जीवनकी तृष्णका फल समाप्त हो गया। निर्दय होनेसे पिताजीका कापालिकत्व निष्पन्न हुआ। दुष्ट भाग्यके भीषण कर्मका परिपाक सम्पन्न

लवङ्गिका—सखि, इत इतः। ( परिक्रामति ) ( सहि, इदो इदो )

माधवः—( स्वगतम् ) नूनमाश्वासनमात्रमेतन्माधवस्य सहजस्नेहमात्रकातरा भगवती करोति। (सोद्वेगम्) हन्त, सर्वथा संशयितजन्मसाफल्यः संवृत्तोऽस्मि। तत्किं कर्तव्यम्। (विचिन्त्य) न खलु महामांसविक्रयादन्यमुपायं पश्यामि। (प्रकाशम्) वयस्य मकरन्द, अपि भवानुत्कण्ठते मदयन्तिकायाम्।

शरणरूपः पितैव यदा मत्प्रतिकूलवर्ती संजातस्तदाऽन्यं कं शरणत्वेन प्राप्नुयामिति भावः।

लवङ्गिकेति। इत इतः=अत्र अत्र, आगम्यतामिति शेषः। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। परिक्रामतीत्यत्र 'इति कामन्दक्या सह निष्क्रान्ते' इति पाठान्तरम्।

माधव इति। सहजस्नेहमात्रकातरा=सहजस्नेहमात्रेण ( स्वाभाविकवात्सल्यमात्रेण ) कातरा ( अधीरा )। भगवती=कामन्दकी। आश्वासनमात्रं=सान्त्वनमात्रं, करोति=विदधाति। राज्ञि प्रतिकूलाचरणकारिणि सति भगवती कामन्दक्यपि किं विधातुं शक्नुयादिति भावः। संशयितजन्मसाफल्यः=संशयितं ( शङ्कास्पदम् ) जन्मसाफल्यं ( जननसफलत्वं, मालतीप्राप्तिरूपमिति भावः ) यस्य सः। अत्र मालतीप्राप्तिरेव जीवितसाफल्यमित्यनेन तदनुरागतद्गुणाऽतिशयख्यापनात् विशेषवचनरूपं पुष्पं नाम सन्ध्यङ्गं; तल्लक्षणं यथा—'पुष्पं विशेषवचनं मतम् इति'। महामांसविक्रयात्=महच्च तन्मासं महामांसं, 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' इति समासः, 'आन्महतः समानाऽधिकरणजातीययोः' इति महत आत्वम्। महामांसम् (अत्र नरमांसम्,) तस्य महत्त्वं च कौलागमाऽनुसारेण देवताप्रीतिकारकत्वात्तदुक्तं कौलाऽर्चनदीपिकायां—

'गोनरेभाऽश्वमहिषवराहोष्ट्रोरगोद्भवम्।
महामांसाऽष्टकं देवि! देवताप्रीतिकारकम्॥' इति।

महामांसस्य विक्रयात् ( द्रव्यविनिमयात् )। महदिति पदस्य शङ्खादिपदेन प्रयोगेऽर्थान्तरं भवतीत्युक्तं यथा—

हो गया। इस कारणसे मन्द भाग्यवाली मैं किसको उलाहना दूँ। रक्षक-रहित मैं रक्षकके तौरपर किसका आश्रय लूँ।

लवङ्गिका—सखि! इधर इधर ( परिक्रमण करती है )।

माधव—( मन ही मन ) भगवती निश्चय ही स्वाभाविक स्नेहमात्रसे कातर होकर माधवको यह सान्त्वनामात्र देती हैं। ( उद्वेगके साथ ) हाय! सब प्रकारसे शङ्कायुक्त जन्मसाफल्यवाला बन गया हूँ। इसलिए क्या करना चाहिये? (चिन्ताकर)

मकरन्दः—अथ किम् ।

**तन्मे मनः क्षिपति यत्सरसप्रहारमालोक्य मामगणितस्खलदुत्तरीया ।**
**त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टिराश्लिष्टवत्यमृतसंवलितैरिवाङ्गैः ॥ ८ ॥**

'शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्यौतिषिके द्विजे ।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥' इति ।

मालतीप्राप्त्यर्थं विधीयमाने महामांसविक्रये मकरन्दस्य विरोधकत्वं सन्दिह्य प्रकाशरूपेण तं ब्रूते—वयस्येति । अपिः प्रश्नार्थकः । मदयन्तिकायां—वैषयिकीयं सप्तमी । उत्कण्ठते अपि = उत्सुको भवति किम् । पुस्तकान्तरे तु 'मदयन्तिकाया' इति पाठान्तरं तत्र 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति कर्मणि षष्ठी ।

मकरन्द इति । अथ किम् = बाढमुत्कण्ठितोऽहमिति भावः ।

तदेव उत्कण्ठितत्वं प्रतिपादयति—तन्म इति । सरसप्रहारं माम् आलोक्य अगणितस्खलदुत्तरीया त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टिः ( मदयन्तिका ) अमृतसंवलितैः इव अङ्गैः माम् यत् आश्लिष्टवती तत् मे मनः क्षिपतीत्यन्वयः । सरसप्रहारं = सरसः ( आर्द्रः, शार्दूलनखरप्रहारेण सशोणित इति भावः ) प्रहारः ( आघातः ) यस्य सः, तम् । मां = मकरन्दम्, आलोक्य=दृष्ट्वा, अगणितस्खलदुत्तरीया = अगणितम् ( अविचारितम् ) स्खलत् ( विगलत् स्तनाभ्यामिति शेषः ), उत्तरीयम् (उपरिवस्त्रम्) यस्याः सा, संभ्रमादिति भावः । 'द्वौ प्रवारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । संव्यानमुत्तरीयं चे'त्यमरः । अत एव त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टिः=त्रस्तः ( भीतः ) एकहायनः ( एकवर्षः, एकं हायनं यस्य सः 'हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः ) यः कुरङ्गः ( मृगशावकः, लक्षणयाऽयमर्थः, लक्षणाऽभावे एकहायनपदेन समं सम्बन्धाऽनुपपत्तेः ) तस्येव विलोले ( अतिशयचञ्चले ) दृष्टी ( नेत्रे ) यस्याः सा, एतादृशी मदयन्तिकेति शेषः । अनेन तस्या अपि उद्वेगाऽतिशयप्रतीतेरनुरागोत्कर्षः प्रख्याप्यते । अमृतसंवलितैः इव=पीयूषमिश्रितैः इव, अङ्गैः = अवयवैः, अनेन तदङ्गस्पर्शस्य परमाह्लादकारकत्वमुक्तम् । मां = मकरन्दं, यत्, आश्लिष्टवती=आलिङ्गितवती, तत् = आश्लेषणं कर्तृ, मे = मम, मनः = चित्तं, क्षिपति = प्रेरयति, चञ्चलं करोतीति भावः । अत एवाऽहं तस्यां बाढमुत्कण्ठित इति शेषः । अत्र तृतीयाचरण

नरमांसके विक्रयसे भिन्न उपाय नहीं देख रहा हूँ । ( सुनाकर ) मित्र मकरन्द ! आप मदयन्तिकामें उत्कण्ठित हैं क्या ?

मकरन्द—और क्या ? ( उत्कण्ठित हूँ । )

आर्द्र प्रहारवाले मुझको देखकर अपने स्तनोंसे गिरते हुए उत्तरीयकी अपेक्षा (परवाह) न कर डरे हुए एक सालके मृगशावकके सदृश चञ्चलनेत्रोंसे युक्त

माधवः—न दुर्लभा बुद्धरक्षितायाः प्रियसखी । अपि च—

प्रमथ्य क्रव्यादं मरणसमये रक्षितवतः
परिष्वङ्गं लब्ध्वा तव कथमिवान्यत्र रमताम् ।
तथा च व्यापारः कमलनयनाया नयनयो-
स्त्वयि व्यक्तस्नेहः स्तिमितरमणीयश्चिरमभूत् ॥

उपमा, अमृतसंवलितैरिवेत्यत्रोत्प्रेक्षा चेति द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

माधव इति । बुद्धिरक्षितायाः प्रियसखी = अभीष्टवयस्या, मदयन्तिकेत्यर्थः । न दुर्लभा = न दुष्प्राप्या, बुद्धिरक्षितायाः प्रयासान्मदयन्तिका तव सुलभा भविष्यतीति भावः । पुस्तकान्तरे तु—'सुलभैव बुद्धरक्षिता प्रियसखी भवत' इति पाठः । अपि च = अन्यदपि तत्प्राप्तौ कारणमस्तीत्यर्थः ।

तदेव कारणं प्रतिपादयति—प्रमथ्येति । क्रव्यादं प्रमथ्य मरणसमये रक्षितवतः तव परिष्वङ्गं लब्ध्वा ( मदयन्तिका ) कथमिव अन्यत्र रमताम् । तथा च कमलनयनायाः नयनयोः व्यापारः त्वयि चिरं व्यक्तस्नेहः स्तिमितरमणीयश्च अभूदित्यन्वयः । क्रव्यादम् = आममांसभक्षकं, शार्दूलमिति भावः । क्रव्यम् ( आममांसम् ) अत्तीति क्रव्यात्, तम् । 'क्रव्ये च'ेति विट्, सर्वाऽपहारी लोपः । प्रमथ्य=हत्वा, मरणसमये = मृत्युकाले, रक्षितवतः = रक्षणं कृतवतः, तव = भवतः, परिष्वङ्गम् = आलिङ्गनं, लब्ध्वा = प्राप्य, कथमिव = केन प्रकारेण, अन्यत्र = अन्यस्मिञ्जने, त्वदिति शेषः । रमताम्=अनुरक्तचित्ता भवतु, मदयन्तिकेति शेषः । तादृशेन प्राणसङ्कटकाले रक्षितारं त्वामाश्लिष्य कृतज्ञा कुलललना च मदयन्तिका अन्यं पुरुषं कथं वृणुयादिति भावः । अत्र विषये बाह्यं हेत्वन्तरं चाह—तथा चेति । तथा च = तथा हि । कमलनयनायाः = पद्मलोचनायाः, मदयन्तिकाया इति भावः । नयनयोः= लोचनयोः, व्यापारः = निक्षेपरूपः, कटाक्षपात इति भावः । त्वयि = भवति विषये चिरं = बहुसमयपर्यन्तं, व्यक्तस्नेहः = स्फुटाऽनुरागः, व्यक्तस्नेहपदस्योत्तरपदेन समस्तत्वे व्यक्तस्नेहेन = स्फुटाऽनुरागेणेत्यर्थः । तथा स्तिमितरमणीयश्च = स्तिमितः ( निश्चलः, विषयान्तरपराङ्मुखत्वादिति भावः ) अत एव रमणीयश्च ( सुन्दरश्च )

मदयन्तिकाने अमृतसे मिश्रितके सदृश अवयवोंसे मुझे जो आलिङ्गन किया वह ( आलिङ्गन ) मेरे मनको चञ्चल कर रहा है ॥ ८ ॥

माधव—बुद्धरक्षिताकी प्रियसखी ( मदयन्तिका ) दुर्लभ नहीं है । और भी—

व्याघ्रको मारकर मरणके समयमें रक्षा करनेवाले आपका आलिङ्गन पाकर मदयन्तिका कैसे दूसरे पुरुषमें अनुरक्त चित्तवाली हो । उसी प्रकारसे कमललोचना

तदुत्तिष्ठ । वरदासिन्धुसंभेदमवगाह्य नगरीमेव प्रविशावः ।

( उत्थाय परिक्रामतः )

मकरन्दः—अयमसौ महानद्योर्व्यतिकरः । य एषः

जलनिबिडितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नताभिः
परिगततटभूमिः स्नानमात्रोत्थिताभिः ।

---

अभूत्=संजातः, तद्दृष्टिपातविलोकनादपि त्वय्येव साऽनुरक्ता इति स्फुटं प्रतीयत इति भावः । अत्र 'कमलनयनाया' इत्यत्रोपमाऽनुमानोऽलङ्कारश्चेत्यनयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । इदं चोपपत्त्या मदयन्तिकाया मकरन्दे प्रणयनिर्णयरूपमुपन्यासाख्यं प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं तल्लक्षणं यथा—'उपपत्तिकृतो योऽर्थः स उपन्यास इष्यते ।' इति । एतादृशोक्त्या मकरन्दस्य प्रसादोत्पादनात् साहित्यदर्पणकारमतेऽपि 'उपन्यास' एव । तथा च साहित्यदर्पणे—"उपन्यासः प्रसादनम्' इति । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ९ ॥

तदिति । वरदासिन्धुसंभेदं=वरदासिन्ध्वोः ( तदाख्यायोः कयोश्चिन्नद्योः ) संभेदम् (सङ्गमम्) । अत्र पूर्वनिपातशास्त्रस्याऽनित्यत्वादल्पाच्तरस्य सिन्धुपदस्य परप्रयोगः । वरदास्थाने कुत्रचिव 'पारे'ति पाठान्तरं तत्राऽपि पारा नाम काचिन्नदी । पुस्तकान्तर इदं वाक्यद्वयमपि मकरन्दकथितत्वेन विन्यस्तम् ।

मकरन्द इति । अयं=पुरो वर्तमानः । महानद्योः=वरदासिन्ध्वोः । व्यतिकरः=संभेदः समुद्रगामिनी नदी 'महानदी'त्युच्यते । य एषः=योऽयम्, तयोः संभेद इति भावः । पुस्तकान्तरे इदं वाक्यद्वयमुत्तरपद्यसंहितं मकरन्दवक्तृकत्वेनोपन्यस्तम् ।

जलेति । स्नानमात्रोत्थिताभिः जलनिबिडितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नताभिः रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्गस्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिः वधूभिः परिगततटभूमिरित्यन्वयः । स्नानमात्रोत्थिताभिः=स्नानमात्रात् (मज्जनमात्रात्) उत्थिताभिः ( निर्गताभिः ) स्नानं कृत्वा निर्गताभिरितिः भावः । अत एव जलनिबिडितवस्त्र-

---

( मदयन्तिका ) का कटाक्षपात आपमें बहुत समयतक स्फुट अनुरागवाला निश्चल और मनोहर भी हुआ था ॥ ९ ॥

इस कारणसे उठिए । वरदा और सिन्धुनदीके सङ्गममें अवगाहन कर पुरीमें ही प्रवेश करें ।

( दोनों उठकर पादविक्षेप करते हैं । )

मकरन्द—वरदा और सिन्धु महानदियोंका यह वह संगमस्थान है । जो यह—स्नान करनेके अनन्तर ही उठी हुई जलसे अत्यन्त संश्लिष्ट ( अतिशय सटे

रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्ग-
स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः ॥ १० ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे चतुर्थोऽङ्कः ।



व्यक्तनिम्नोन्नताभिः = जलेन ( अम्बुना ) निबिडितम् ( अत्यन्तसंश्लिष्टम् ) यत् वस्त्रं ( वसनम् ) तेन व्यक्ताः (स्फुटाः, सम्यग्विभाव्यमाना इति भावः) निम्नोन्नताः ( अधरोच्छ्रिताः अवयवाः, जघनकुचाऽऽदिप्रदेशा इति भावः ) यासां, ताभिः। तथा रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्गस्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिः = रुचिराः ( सुन्दराः ) ये कनककुम्भाः ( सुवर्णकलशाः ) ते इव श्रीमन्तः ( कान्तिसंपन्नाः ) तथा च अभोगेन ( परिपूर्णतया, 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः । ) तुङ्गाः ( उन्नताः ) ये स्तनाः ( कुचाः ) तेषु विनिहिताः ( स्थापिताः ) हस्ताः ( कराः ) एव स्वस्तिकाः ( चिह्नविशेषाः ) याभिस्ताभिः । एतादृशीभिः वधूभिः = स्त्रीभिः परिगततटभूमिः = परिगता ( व्याप्ता ) तटभूमिः ( तीरप्रदेशः ) यस्य सः, तादृशो वरदासिन्धुसंभेदो वर्तत इति शेषः । अत्र तृतीयचरणे 'रुचिरकनककुम्भश्रीम'दित्यत्रोपमा चतुर्थचरणे 'हस्तस्वस्तिके'त्यत्र रूपकमङ्गिरूपेण च स्वभावोक्तिरलङ्कारस्तथा चैतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । एवं च वधूभिरित्यनेन वर्णचतुष्टयस्त्रीणामुपगमनाद्वर्णसंहाराऽभिधानं प्रतिमुखसन्धेरङ्गम् । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे 'चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते' । इति । मालिनी वृत्तम् ॥ १० ॥

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां चतुर्थोऽङ्कः ।



हुए ) वस्त्रसे जिनके जघन और कुच आदि अवयव स्पष्टरूपसे देखे जाते हैं, ऐसी और सुन्दर सुवर्ण कलशोंके सदृश कान्तिसम्पन्न और परिपूर्णतासे ऊँचे स्तनोंमें कररूप स्वस्तिकचिह्नको रखनेवाली स्त्रियोंसे व्याप्त तीरभूमिसे युक्त यह वरदा और सिन्धुनदीका संगमस्थान है ॥ १० ॥

( अनन्तर सब निकलते हैं । )

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।



# पञ्चमोऽङ्कः

( ततः प्रविशत्याकाशयानेन भीषणोज्ज्वलवेषा कपालकुण्डला । )

कपालकुण्डला—

षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थितात्मा
हृदि विनिहितरूपः सिद्धिदस्तद्विदां यः ।

---

तत इति । आकाशयानेन = व्योमगमनेन, उपलक्षितेति शेषः । योगिनीत्वेन खेचरनमनादिसिद्धिसंपत्तेराकाशयानं बोध्यम् । भीषणोज्ज्वलवेषा=भीषणः (भयङ्करः, नरकपालाऽस्थिधारणादिति भावः ) उज्ज्वलः ( दीप्तः ) वेषः ( नेपथ्यम् ) यस्याः सा । एतादृशी, कपालकुण्डला = कपाले ( नरकर्परौ ) एव कुण्डले ( कर्णभूषणे ) यस्याः सेति अन्वर्थनामधेया काचित्कौलिकाचारसम्पन्ना ललना ।

षडधिकेति । यः षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थिताऽऽत्मा तद्विदां हृदि विनिहितरूपः सिद्धिदः अविचलितमनोभिः साधकैः मृग्यमाणः शक्तिभिः परिणद्धः, स शक्तिनाथो जयतीत्यन्वयः । यः, षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थिताऽऽत्मा = षडधिकाः ( षड्भिः अधिकाः = अतिरिक्ता ) या दश नाड्यः ( षोडश नाड्यः इत्यर्थः, नाडीनामनन्तत्वेऽपि प्रधाननाडीनामिडादीनां षोडशसंख्यकत्वात्षडधिकदशेत्युक्तिः संगच्छते ) तासां यत् चक्रं ( मण्डलम् ) तस्य मध्यं ( हृदयम् ) तत्र स्थितः ( सन्निहितः ) आत्मा ( स्वरूपम् ) यस्य सः । इडादीनां षोडशनाडीनां मण्डलस्य हृदये शङ्कररूपेणाऽवस्थित इति भावः । इडादयो नाड्यश्च ।

'इडा, च पिङ्गला चैव सुषुम्णा चाऽपरा स्मृता ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा वसुवशा तथा ।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥
तालुजिह्वेभजिह्वा च विजया कामदा परा ।
अमृता बहुला नाम नाड्यो वायुसमीरिताः ॥' इति ।

एवं तद्विदां = तज्ज्ञातॄणां, शङ्करसाक्षात्कारवतामिति भावः । हृदि = हृदये, विनिहितरूपः = विनिहितं ( स्थापितम् ) रूपं ( स्वाकारः ) येन सः । अत एव सिद्धिदः = अणिमाद्यैश्वर्यप्रदः, ताश्च योगसिद्धयो तथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यं, वशित्वम्, ईशित्वं चेति । तत्र योगिनो भूतजयेनाऽणिमा-

---

( अनन्तर आकाशगतिसे भयङ्कर और उज्ज्वल वेशवाली कपालकुण्डला प्रवेश करती है । )

कपालकुण्डला—जो सोलह इडा आदि नाडीमण्डलके मध्यमें सन्निहित स्वरूप होकर उनको जाननेवालोंके हृदयमें अपने आकारको स्थापित कर अणिमा आदि

अविचलितमनोभिः साधकैर्मृग्यमाणः
स जयति परिणद्धः शक्तिभिः शक्तिनाथः ॥ १ ॥

इयमिदानीमहम्—
नित्यं न्यस्तषडङ्गचक्रनिहितं हृत्पद्ममध्योदितं

---

अष्टसिद्धीः प्राप्नुवन्ति। तत्र अणिमा = परमाणुवत्सूक्ष्मरूपेणाऽवस्थानम्। महिमा= विभुत्वप्राप्तिः। लघिमा = कार्पासवल्लघुत्वभवनम्। गरिमा = मेरुपर्वतवद्गुरुत्वभवनम्। प्राप्तिः = अङ्गुल्या चन्द्रमण्डलस्पर्शनम्। प्राकाम्यं = सत्यसङ्कल्पत्वम्। वशित्वं = सर्वप्राणिनियन्तृत्वम्। ईशित्वं च सर्वभूतोत्पादनशक्तिमत्वम्। तथा अविचलितमनोभिः = अविचलितं (चाञ्चल्यरहितम्) मनः (चित्तम्) येषां तैः स्थिरचित्तैः, विषयान्तरपरित्यागेनेति शेषः। एतादृशैः साधकैः = स्वोपासकैः, योगिभिरित्यर्थः। मृग्यमाणः = अन्विष्यमाणः, साक्षात्कर्तुमिति शेषः। अनेन ध्यानाऽनुष्ठानमुक्तम्। एवं च शक्तिभिः = ज्ञानेच्छाक्रियारूपाभिः, यद्वा ब्राह्म्यादिभिरष्टाभिः, ता यथा—

'ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा।
कौमारीत्यपि चामुण्डा चण्डिकेत्यष्ट मातरः॥' इति।

तादृशीभिः शक्तिभिः, परिणद्धः = व्याप्तः, सः = पूर्वोक्तः, शक्तिनाथः = शक्तीनां (ज्ञानादीनां ब्राह्म्यादीनामणिमादीनां वा) नाथः (स्वामी), शङ्कर इत्यर्थः। जयति = कालत्रयेऽपि लोकोत्तरत्वेन वर्तत इति भावः। स एवाऽस्माकमुपास्य इति शेषः। अत्र योगशास्त्रमात्रप्रसिद्धानां नाड्यादीनां प्रयोगेऽपि तज्ज्ञानसंपन्नया कपालकुण्डलया स्वयं परामर्शान्नाऽप्रतीतत्वं दोषः प्रत्युत गुण एव। तदुक्तं साहित्यदर्पणे यथा—'गुणः स्यादप्रतीतत्वं ज्ञत्वं चेद्वक्तृवाच्ययोः। स्वयं वाऽपि परामर्शे' इति। मालिनी वृत्तम् ॥ १ ॥

नित्यमिति। नित्यं न्यस्तषडङ्गचक्रनिहितं हृत्पद्ममध्योदितं शिवरूपिणम् आत्मानं पश्यन्ती (इयम् अहम्) लयवशात् नाडीनाम् उदयक्रमेण जगतः पश्चाऽमृताऽऽकर्षणात् अप्राप्तोत्पतनश्रमा अग्रेनभः अम्भोमुचः विघटयन्ती (इदानीम् अभ्यागता)

---

योगसिद्धियोंको देनेवाले होकर स्थिरचित्तवाले अपने उपासकोंसे ढूँढे जाते हुए ज्ञान, इच्छा और क्रियारूप अथवा ब्राह्मी आदि आठ शक्तियोंसे व्याप्त हैं, वे शक्तिनाथ (शङ्करजी) कालत्रयमें लोकोत्तर प्रकारसे रहते हैं ॥ १ ॥

यही मैं अभी—

प्रतिदिन न्यस्त हृदय आदि छः अङ्गोंके समूहमें आरोपित, हृदयकमलकी कर्णिका

पश्यन्ती शिवरूपिणं लयवशादात्मानमभ्यागता ।
नाडीनामुदयक्रमेण जगतः पञ्चामृताकर्षणा-
दप्राप्तोत्पतनश्रमा विघटयन्त्यग्रेनभोऽम्भोमुचः ॥ २ ॥

इत्यन्वयः। नित्यं=प्रतिदिनं, जपोपक्रमसमय इति शेषः। न्यस्तषडङ्गचक्रनिहितं= न्यस्तं (विन्यस्तम्) षण्णाम् (षट्संख्याकानाम्) अङ्गानाम् (अवयवानां, हृदयशिरःशिखाकवचनेत्राऽस्त्ररूपाणामिति भावः) यत् चक्रं (समूहः) तस्मिन् निहितम् (आरोपितं, 'हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा' इत्यादिमन्त्रैरिति भावः)। यदाह—

'षडङ्गमेतत्कथितं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
न्यसेद्वा भक्तियुक्तात्मा साधको ज्ञानचिन्तकः ॥
त्रिकालमेककालं वा शरीरे विन्यसेद् बुधः ॥' इति ।

अनेनाऽङ्गावरणमुक्तम्। तथा हृत्पद्ममध्योदितं=हृत्पद्मस्य (हृदयकमलस्य, अनाहतनामकद्वादशदलस्येति शेषः) मध्ये (अन्तरे, कर्णिकायामित्यर्थः) उदितं (प्रकाशमानम्), शिवरूपिणम् (शिवात्मकम्) आत्मानं परमात्मानम्, पश्यन्ती= साक्षात्कुर्वती, तदुक्तं यथा—

'पद्मसङ्काशसंस्थानं हृदयं तत्र दृश्यते ।
सूक्ष्मो हि पुरुषो ज्ञेयः परमात्मा हृदि स्थितः ॥
अभ्यासात्पश्यते सूर्यं परमात्मानमात्मना ॥' इति ।

गद्यभागस्थस्य 'इयम् अहम्' इति पदद्वयस्य परामर्शः। इयं=तादृशयोगशक्ति-सम्पन्ना, अहं=कपालकुण्डला, लयवशात्=आत्मना सह बाह्येन्द्रियाणामेकीभावात्, नाडीनाम्=इडापिङ्गलादीनाम्, उदयक्रमेण, उदयसाम्याऽवस्थातिरोधानपरिपाट्या, जगतः=पञ्चभूतात्मकस्य शरीरस्य, पञ्चाऽमृताऽऽकर्षणात्=पञ्चानाम् (पञ्चसंख्यकानाम्) अमृतानाम् (नित्यानां, परमाणुविभुत्वरूपेणेति शेषः, पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानामिति भावः) आकर्षणाद् (आकर्षात्, वशीकरणादिति भावः); अप्राप्तोत्पतनश्रमा=अप्राप्तः (अनासादितः) उत्पतने (आकाशयाने) श्रमः (आयासः) यया सा, एतादृशी सती। अग्रेनभः=नभसीति अग्रेनभः अग्रेशब्दो विभक्तिप्रतिरूपको निपातः। 'अव्ययं विभक्ती'त्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। अम्भोमुचः=मेघान्, अम्भांसि मुञ्चन्तीति अम्भोमुचस्तान्। क्विप्प्रत्ययः। विघट-

(वाच) में प्रकाशमान शिवरूपी परमात्माका साक्षात्कार करती हुई यह मैं आत्माके साथ बाह्य इन्द्रियोंके एकीभावसे इडा, पिङ्गला आदि नाडियोंके उदय आदिके क्रमसे पञ्चभूतात्मक शरीरके पञ्चभूतोंके आकर्षणसे आकाशयानमें परिश्रमका अनुभव

उद्वृत्तस्खलितकपालकण्ठमाला-
संघट्टक्वणितकरालकिङ्किणीकः ।
पर्याप्तं मयि रमणीयडामरत्वं
संधत्ते गगनतलप्रयाणवेगः ॥ ३ ॥

यन्ती=अपसारयन्ती सती, इदानीमिति गद्यभागस्थस्य पदस्य परामर्शः । इदानीम्= अधुना, श्रीपर्वतात्करालायतनाख्यं प्रवेशं प्राप्तेति शेषः । अत्राऽपि स्वयं परामर्शान्नाऽ-प्रतीतत्वाऽभिधानो दोषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

उद्वृत्तेति । उद्वृत्तस्खलितकपालकण्ठमालासंघट्टक्वणितकरालकिङ्किणीको गगन-तलप्रयाणवेगो मयि पर्याप्तं रमणीयडामरत्वं संधत्त इत्यन्वयः। उद्वृत्तस्खलितकपाल-कण्ठमालासंघट्टक्वणितकरालकिङ्किणीकः = उद्वृत्ता (प्राक् उर्ध्वं विक्षिप्ता, 'उल्लोले' ति पाठे चञ्चला) स्खलिता (पश्चात् अवनता, 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेने'ति समासः) या कपालानां (कर्पराणां, 'स्यात्कर्परः कपालोऽस्त्री' त्यमरः) कण्ठमाला (ग्रीवाऽलङ्कारः) तस्यां संघट्टेन (परस्पराऽभिघातेन, कपाला-नामिति शेषः) क्वणिताः (सञ्जातक्वणाः, शब्दायमाना इत्यर्थः। 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्प्रत्ययः) करालाः (दन्तुराः, उन्नताऽऽनता इत्यर्थः। भीषणा वा) एतादृश्यः किङ्किण्यः (क्षुद्रघण्टिकाः, कण्ठमालास्थापिता इति शेषः) यस्मिन् सः । एतादृशो गगनतलप्रयाणवेगः=गगनतले (आकाशभागे) प्रयाणवेगः (उत्पतनजवः), मयि = कपालकुण्डलायां विषये, पर्याप्तं = यथेष्टं, रमणीयडामरत्वं= रमणीयत्वं (मनोहरत्वं, मादृश्या योगिन्याः पक्षे इति शेषः) डामरत्वं (भीषणत्वम्, अन्यजनानां पक्षे इति शेषः), संधत्ते = संपादयति । कुलयोगिजनानां किङ्किण्यादि-ध्वनिना सानन्दत्वं सूचितवान् जगद्धरो यथा—

'समुद्रघोषसंभारकिङ्किणीघण्टिकास्वनैः ।
सदानन्दो भवेद्योगी न निद्रा न क्षुधा तृषा ॥' इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥३॥

न करती हुई आकाशमें मेघोंको हटाती हुई इस समय श्रीपर्वतसे करालायतन नामक स्थानको प्राप्त हुई हूँ ॥ २ ॥

जिसमें पहले ऊपर उठती हुई और पीछे नीचे जाती हुई कपालोंकी कण्ठ-मालामें परस्पर अभिघातसे शब्द करनेवाली भीषण क्षुद्रघण्टिकायें दिखाई पड़ती हैं ऐसा मेरे आकाशगमनका वेग मुझपर पर्याप्त मनोहरत्व और भीषणत्वको सम्पादित करता है ॥ ३ ॥

तथा हि—

विष्वग्वृत्तिर्जटानां प्रचलति निबिडग्रन्थिबन्धोऽपि भारः
संस्कारक्वाणदीर्घं पटु रटति कृतावृत्ति खट्वाङ्गघण्टा ।
ऊर्ध्वं धूनोति वायुर्विवृतशवशिरःश्रेणिकुञ्जेषु गुञ्ज-
न्नुत्तालः किङ्किणीनामनवरतरणत्कारहेतुः पताकाम् ॥ ४ ॥

तदेव रमणीयडामरत्वं प्रकाशयितुमुपक्रमते—तथा हीति ।

विष्वगिति । विष्वग्वृत्तिः जटानां भारो निबिडग्रन्थिबन्धोऽपि प्रचलति । खट्वाङ्गघण्टा संस्कारक्वाणदीर्घं पटु कृताऽऽवृत्ति रटति । विवृतशवशिरःश्रेणिकुञ्जेषु गुञ्जन् उत्तालः किङ्किणीनाम् अनवरतरणत्कारहेतुः वायुः पताकाम् ऊर्ध्वं धूनोतीत्यन्वयः । विष्वग्वृत्तिः = विष्वक् ( सर्वतः ) वृत्तिः ( अवस्थानम् ) यस्य सः । एतादृशः—जटानां = सटानां, 'व्रतिनस्तु जटा सटे'त्यमरः । निबिडग्रन्थिबन्धः अपि = निबिडा ( दृढा ) ग्रन्थिरचना यस्य सः, ताहशोऽपि । '......बन्ध' इत्यत्र 'नद्ध' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र निबिडग्रन्थिना नद्धः = बद्ध इत्यर्थः । प्रचलति = कम्पते, गगनगमनवेगादिति भावः । खट्वाऽङ्गघण्टा = खट्वाङ्गे ( शिवशस्त्रविशेषे, नद्धेति शेषः ) घण्टा ( वाद्यविशेषः ), संस्कारक्वाणदीर्घं = संस्कारेण ( वेगाख्यसंस्कारेण ) यः क्वाणः ( रणरणध्वनिः ), तेन दीर्घम् ( आयतं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् ), पटु= निपुणं यथा तथा । तथा—कृताऽऽवृत्ति = कृता ( विहिता ) आवृत्तिः ( आवर्तनम्, अभ्यास इत्यर्थः ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा । रटति = ध्वनति । एवं च—विवृतशवशिरःश्रेणिकुञ्जेषु = विवृतानि ( स्फुटदृश्यानि, निर्मांसतयेति शेषः ) यानि शवशिरांसि ( कण्ठमालास्थमूर्धानः ), तेषां या श्रेणयः ( पङ्क्तयः ), एव कुञ्जाः ( लतागृहाः, लक्षणया तत्सदृशा इत्यर्थः ), तेषु । गुञ्जन् = शब्दायमानः, उत्तालः = उत्कटः, किङ्किणीनां = क्षुद्रघण्टिकानाम्, अनवरतरणत्कारहेतुः = अनवरतं ( निरन्तरं यथा स्यात्तथा ) यो रणत्कारः ( रणदित्याकारको ध्वनिः ) तस्य हेतुः ( कारणं, जनक इत्यर्थः ), एतादृशो वायुः = समीरणः, पताकां = वैजयन्तीं, खट्वाङ्गबद्धामिति शेषः । ऊर्ध्वम् = उपरि यथा स्यात्तथा, धूनोति = कम्पयति । एतादृशोऽयं व्यतिकरो

जैसे कि—

संपूर्ण दिशाओंसे फैला हुआ जटाभार दृढ ग्रन्थनरचनासे युक्त होता हुआ भी कम्पित हो रहा है । खट्वाङ्ग ( शिवजीके शस्त्रविशेष ) में बाँधी गई घण्टा वेग नामक संस्कारसे रणरण शब्दसे विस्तृत होकर निपुणतापूर्वक आवृत्त होती हुई ध्वनि कर रही है । स्पष्टरूपसे दृश्य कण्ठमालास्थित शिरोंकी पङ्क्तिरूप

( परिक्रम्यालोक्य च ) इदं च पुराणनिम्बतैलाक्तपरिभृज्यमानसोनकरसगन्धिभिश्चिताधूमैरस्ताद्विभावितस्य श्मशानवाटस्य नेदीयः करालायतनम् । यत्र पर्यवसितमन्त्रसाधनस्यास्मद्गुरोरघोरघण्टस्याज्ञया

मादृशयोगिन्याः कृते रमणीयः, अन्येषां कृत उद्वेगजनकत्वाद्भयङ्कर इति भावः। अत्र स्वभावोक्तिरूपकयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ४ ॥

परिक्रम्येति। परिक्रम्य = परितः क्रान्त्वा ( गत्वा )। 'गन्धमाघ्राय चे'ति पुस्तकान्तरस्थोऽधिकः पाठः।

इदमिति। 'तावत्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। पुराणनिम्बतैलाऽक्तपरिभृज्यमानरसोनकरसगन्धिभिः=पुराणं ( प्राचीनम् 'पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तनाः।' इत्यमरः ) यत् निम्बतैलम् ( पिचुमर्दस्नेहः, 'अरिष्टः सर्वतोभद्रहिङ्गुनिर्यासमालकाः। पिचुमर्दश्च निम्बे' इत्यमरः ) तेन भक्ताः ( म्रक्षिताः ) परिभृज्यमानाः ( क्रियमाणभर्जनाः, 'भ्रस्ज पाके' इति धातोः कर्मणि लटि शानच् ) एतादृशा ये रसोनकाः ( लशुनानि, रसेन = अम्लरसेनेत्यर्थः, ऊनाः=न्यूना रसोनाः, रसोना एव रसोनकाः, स्वाऽर्थे कन्। 'लशुनं गृञ्जनाऽरिष्टमहाकान्दरसोनकाः।' इत्यमरः। ) तेषां यो रसः ( निर्यासः, क्वचिद्रसपदस्य पाठो नाऽस्ति ) तस्य इव गन्धो येषां, तैः 'उपमानाच्चे'ति समासान्त इप्रत्ययः। अधस्तात् = निम्नस्थाने, भूतल इत्यर्थः। पुस्तकान्तरे तु 'पुरस्तात्' इति पाठस्तस्य अग्रत इत्यर्थः। विभावितस्य = अनुमितस्य। 'महत' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तस्य विशालस्येत्यर्थः। श्मशानवाटस्य=वट्यते (वेष्ट्यते) अनेनेति वाटः 'हलश्चे'ति घञ्। 'पन्था वाटः पथो माथ' इति भागुरिः। श्मशानस्य ( पितृवनस्य ) वाटस्य ( मार्गस्य, श्मशानगामिमार्गस्येति भावः )। नेदीयः= अतिनिकटस्थम्, अतिशयेन अन्तिकं नेदीयः, अन्तिकशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इति ईयसुन्प्रत्यये, 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति अन्तिकशब्दस्य नेदादेशः 'उपकण्ठाऽन्तिकाऽभ्यर्णाऽभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्।' इत्यमरः। इदम् = पुरतोऽवलोक्यमानं, करालाऽऽयतनं=करालायाः ( करालानाम्न्या भगवत्याः ), आयतनं ( स्थानं, मन्दिरमित्यर्थः ), अस्तीति शेषः। यत्र=यस्मिन्, करालायतन इति भावः। पर्यवसितमन्त्रसाधनस्य=पर्यवसितं ( समाप्तम् ) मन्त्रसाधनं ( पुर-

कुञ्जोंमें शब्द करता हुआ उद्भट क्षुद्रघण्टिका ( घुंघरुओं ) के लगातार 'रणत्' ऐसे शब्दका हेतु वायु पताकाको ऊपर कम्पित कर रहा है ॥ ४ ॥

( चारों तरफ पादक्षेपपूर्वक देखकर ) पुराने नीमके तैलसे संयोजित और भूने नये लशुन ( लहसुन ) के रसके सदृश गन्धवाले चिताके धूमोंसे भूतलके अनुमित श्मशानमार्गसे अतिनिकटस्थित करालाऽऽयतन ( कराला नामकी भग-

सविशेषमद्य मया पूजासंभारः संनिधापनीयः। कथितं हि मे गुरुणा—'वत्से कपालकुण्डले, भगवत्याः करालया यन्मया प्रागुपयाचितं स्त्रीरत्न-मुपहर्तव्यम्, तदत्रैव नगरे विदितमास्ते' इति। (सकौतुकमवलोक्य) तत्कोऽयमतिगम्भीरमधुराकृतिरुत्तम्भितकुटिलकुन्तलभारः कृपाणपाणिः श्मशानमवतरति। य एषः—

श्चरणम्) यस्य तस्य। सविशेषं=साऽतिशयं, यथा तथा, पूर्वाऽपेक्षयेति शेषः। पूजासंभारः=अर्चनोपकरणसमूहः। संनिधापनीयः=उपस्थापनीयः। गुरुणा=आचार्येण, अघोरघण्टेनेति भावः। प्राक्=पूर्वं, मन्त्रसाधनादिति शेषः। उपयाचितं=संकल्पितं, 'सिद्धेऽस्मिन्मन्त्रसाधने भगवत्यै स्त्रीरत्नमुपहारीकरिष्यामी'ति संकल्पितमिति भावः। स्त्रीरत्नं=स्त्रीषु (नागरीषु) रत्नं (श्रेष्ठम्), 'रत्नं स्वजातिश्रेष्ठे चे'त्यमरः। उत्कृष्टललनामिति भावः। उपहर्तव्यम्=उपहारीकर्तव्यम्, उपहाररूपेण समर्पणीयमिति भावः। उपयाचितलक्षणं यथा—

'यद्दीयते तु देवेभ्यो मनोराज्यस्य सिद्धये।
उपयाचितकं तत्तु दोहदं संप्रचक्षते॥' इति हारावली।

तत्=तादृशं स्त्रीरत्नम्। विदितं=ज्ञातं, सर्वजनप्रसिद्धमिति भावः। आस्ते=वर्तत इत्यर्थः। 'तद्विचिनोमी'ति अधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तत्र तत्=तस्मात्कारणात् विचिनोमि=अन्विष्यामि, स्त्रीरत्नमिति शेषः। सकौतुकं=कुतूहलसहितं यथा तथा, एतादृशसुकुमारमधुराकारस्य कथं निशायां निर्हेतुकं सञ्चरणमिति मनसि कृत्वा सकौतुकमिति भावः। अतिगम्भीरमधुराकृतिः=अतिगम्भीरा (अतिगाम्भीर्ययुक्ता, एतादृशे भयङ्करस्थानेऽपि निर्विकारेति भावः) मधुरा (मृदुला) आकृतिः (आकारः) यस्य सः। उत्तम्भितकुटिलकुन्तलभारः=उत्तम्भितः (जूटीकृत्यबद्धः) कुटिलः (वक्रः) कुन्तलभारः (केशकलापः) यस्य सः। 'चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः।' इत्यमरः। कृपाणपाणिः=खड्गहस्तः, कृपाणः पाणौ यस्य सः, 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' इति ज्ञापितो व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः। 'प्रहणाऽर्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति कृपाणपदस्य पूर्वनिपातः। श्मशानं=पितृवनं, 'श्मशानं स्यात्पितृवनम्'

वतीका मन्दिर) है। जहाँपर पुरश्चरण समाप्त करनेवाले हमारे गुरुजी अघोर-घण्टकी आज्ञासे आज मुझको सविशेष पूजासामग्री उपस्थापित करना चाहिए। मुझे गुरुजीने कहा है—'वत्से कपालकुण्डले! भगवती करालाके लिए मुझको पहले संकल्पित स्त्रीरत्नका उपहार करना चाहिए वह इसी शहरमें विदित होकर विद्यमान है' (कौतुकके साथ देखकर) अतिशय गम्भीर और कोमल आकारवाला

कुवलयदलश्यामोऽप्यङ्गं दधत्परिधूसरं
ललितविकटन्यासः श्रीमान्मृगाङ्कनिभाननः।
हरति विनयं वामो यस्य प्रकाशितसाहसः
प्रविगलदसृक्पङ्कः पाणिर्लसन्नरजाङ्गलः ॥ ५ ॥

इत्यमरः।' श्मशानवाटम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। तमेव निर्वर्णयति—य एष इति।

कुवलयेति। कुवलयदलश्यामोऽपि परिधूसरम् अङ्गं दधत् ललितविकटन्यासः श्रीमान् मृगाऽङ्कनिभाननः। लसन्नरजाङ्गलः प्रविगलदसृक्पङ्कः प्रकाशितसाहसो यस्य वामः पाणिः विनयं हरतीत्यन्वयः। कुवलयदलश्यामः=कुवलयदलम् इव (इन्दीवरपत्रम् इव) श्यामः (नीलः), अपि, परिधूसरं=धूसरवर्णम्, अङ्गं=हस्तपादादिकम् अवयवं, दधत्=धारयन्, 'उभे अभ्यस्तम्' इत्यभ्यस्तसंज्ञकत्वात् 'नाऽभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः। ललितविकटन्यासः=ललितः (सुन्दरः स्वभावत इति भावः) विकटः (विकृतः, रौद्रत्वादिति भावः) न्यासः (शरीरचालनम्) यस्य सः। 'ललितचरणन्यास' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र चरणन्यासः=पादक्षेप इत्यर्थः। श्रीमान्=शोभासम्पन्नः, मृगाऽङ्कनिभाऽऽननः=चन्द्रसममुखः, मृगाङ्केण (चन्द्रमसा) सदृशं मृगाङ्कनिभम्, अस्वपदविग्रहत्वान्नित्यसमासः। 'निभसङ्काशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः।' इत्यमरः। मृगाऽङ्कनिभम् आननं यस्य सः। य एष दृश्यत इति शेषः। लसन्नरजाङ्गलः=लसत् (विलसत्) नरजाङ्गलं (मनुष्यमांसम्) यस्मिन् सः। अत एव प्रविगलदसृक्पङ्कः=प्रविगलन्तः (प्रक्षरन्तः) असृक्पङ्काः (रुधिरकर्दमाः, छेदनाऽनन्तरं घनीभावात्कर्दमीभूतानि रुधिराणीति भावः) यस्मात्सः। प्रकाशितसाहसः=प्रकाशितं (प्रकटीकृतम्) साहसं (मांसकर्तनरूपोऽध्यवसायः) येन सः। यस्य=पूर्वोक्तस्य मनुष्यस्य। वामः=दक्षिणेतरः, पाणिः=करः, विनयं=विनीतवृत्तिं, हरति=निवारयति। न हि विनीतो जनो रक्तं महामांसं धारयतीति भावः। शुभलक्षणसम्पन्नोऽप्ययं जनो महामांसधारकत्वात्किमपि भयङ्करं कर्माऽनुष्ठातुमीहत इति तात्पर्यम्। अत्र 'कुवलयदलश्यामः' 'मृगाऽङ्कनिभाऽऽनन' इति पदद्वये लुप्तोपमाद्वयं, तथा च—विनय-

और कुटिल केशभारको जूड़ेके तौरपर बाँधनेवाला यह कौन हाथमें तलवार लेकर श्मशानमार्गमें अवतरण कर रहा है? जो यह—

नीलकमलके पत्रके सदृश श्यामवर्णवाला होता हुआ भी धूसरवर्णवाले अङ्गको धारण करता हुआ, सुन्दर और विकृत शरीरचालनसे युक्त, शोभासम्पन्न होकर चन्द्रतुल्य मुखसे भूषित है। मनुष्यमांस जिसके बाँयें हाथमें है, और जिससे

( निरूप्य ) स एष कामन्दकीसुहृत्पुत्रो महामांसस्य पणयिता माधवः। तत्किमनेन ? यथासमीहितं संपादयामि। विगलितप्रायश्च पश्चिमसंध्यासमयः। तथा हि—

व्योम्नस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्लरीभिर्व्रियन्ते

हरणरूपं कार्यं प्रति 'प्रविगलदसृक्पङ्कः' 'ललन्नरजाङ्गल' इति पदद्वितयस्य हेतुत्वात्पदाऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गद्वितयं तथा चैतेषां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। हरिणी वृत्तम् ॥ ५ ॥

निरूप्येति। निरूप्य = दृष्ट्वा। 'अये' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। कामन्दकीसुहृत्पुत्रः = कामन्दक्याः सुहृदः ( मित्रस्य, कुण्डिनेश्वरसचिवस्य देवरातस्येति भावः ) पुत्रः ( आत्मजः )। महामांसस्य = नरमांसस्य। पणयिता = व्यवहर्त्ता, श्मशाने विक्रेतेति भावः। 'पण व्यवहारे स्तुतौ चे'ति धातोः 'ण्वुल्तृचौ' इति तृच्प्रत्ययः। तत् = तर्हि अनेन = अस्यैतादृशाऽऽचारेण किं = किं प्रयोजनमस्माकं, 'सर्वः स्वार्थं समीहत' इति न्यायादयं स्वकृत्यं निर्वर्तयतु। अहमपि स्वेष्टं सम्पादयामीति भावः। यथासमीहितम् = इच्छाऽनुसारं, 'समीहितम्' इति पाठे अभीष्टं स्त्रीरत्नाऽन्वेषणरूपमिति भावः। पश्चिमसन्ध्यासमयः = सायंसन्ध्याकालः, विगलितप्रायः = व्यतीतप्रायः। तमेवोपपादयति-तथा हीति। इतः परं 'सम्प्रती'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः।

व्योम्न इति। व्योम्नः पर्यन्ताः तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्लरीभिः व्रियन्ते। वसुमतीप्रान्तवृत्त्या नूतने पयसि मज्जति इव। त्रियामा प्रारम्भे अपि वात्यासंवेगविष्वग्विततवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं निजं नीलिमानं वनेषु तरुणयतीत्यन्वयः। व्योम्नः = आकाशस्य, पर्यन्ताः = सीमानः, भूतलप्रान्तेषु तिरस्कारिणीवत्प्रतिभासमाना आकाशभागा इति भावः। तापिच्छगुच्छावलिभिः = तमालस्तवकपङ्क्तिभिः, इव, तमोवल्लरीभिः = अन्धकारलताभिः व्रियन्ते = आच्छाद्यन्ते। एवं वसुमती =

गाढ़ रक्त ( खून ) टपक रहा है। इस प्रकारसे साहसको प्रकाशित करनेवाला जिसका बायाँ हाथ विनीत वृत्तिका निवारण कर रहा है ॥ ५ ॥

( देखकर ) जो कि यह कामन्दकीके मित्र ( देवरात ) का पुत्र माधव नरमांसका विक्रेता हो रहा है। तो इससे क्या ? अभीष्ट विषयका सम्पादन करती हूँ। सायंसन्ध्याकाल बीत रहा है। जैसे कि—

आकाशकी सीमायें तमालके गुच्छोंकी पङ्क्तियोंकी सदृश अन्धकार-लताओंसे

पर्यन्ताः प्रान्तवृत्त्या पयसि वसुमती नूतने मज्जतीव।
वात्यासंवेगविष्वग्विततवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं
प्रारम्भेऽपि त्रियामा तरुणयति निजं नीलिमानं वनेषु ॥ ६ ॥

( इति निष्क्रान्ता । )

इति शुद्धविष्कम्भः ।

पृथिवी, प्रान्तवृत्त्या = परितः पर्यन्तदेशनिमज्जनक्रमेण, नूतने = नवे, पयसि = जले, मज्जति इव = निमग्ना इव प्रतीयत इति भावः। अन्धकाराऽऽवृता पृथिवी पयोराशिनिमग्नेव प्रतीयत इति भावः। तथा त्रियामा = रात्रिः, प्रारम्भे = स्वप्रवेशकाले, अपि, वात्यासंवेगविष्वग्विततवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं = वात्यायाः (वायुसमूहस्य, वातानां समूहो वात्या, तस्याः 'पाशादिभ्यो यः' इति यप्रत्ययः) संवेगेन (जवाऽतिशयेन) विष्वक् (सर्वतः) वितता (विस्तारिता), वलयिता (संजातमण्डलाऽऽकारा) स्फीता (प्रचुरा, 'स्फायी वृद्धौ' इति धातोः क्तप्रत्ययः 'स्फायः स्फी निष्ठायाम्' इति स्फीभावः) या धूम्या (धूमसमूहः, पूर्वसूत्रेण यप्रत्ययः, 'धूम्या धूमसमूहेऽपि नीहारेऽपि निगद्यते।' इति धरणिः), तस्या इव प्रकाशः (आविर्भावः) यस्य स तम्। एतादृशं निजम् = आत्मीयं, नीलिमानं=नीलत्वं, नीलस्य भावो नीलिमा, तं 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इतीमनिच्प्रत्ययः। वनेषु=अरण्येषु तरुणयति = तरुणं करोति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्ताल्लट्, रात्रिः प्रमुख एव प्रचुराऽन्धकारंनीलत्वं विस्तारयतीति भावः। मदभीष्टकार्याऽनुष्ठानस्योपयुक्तोऽयं काल इत्याकूतम्। अत्र प्रथमे चरणे उपमा, द्वितीये क्रियोत्प्रेक्षा, तृतीये च लुप्तोपमा चेत्येतासां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ६ ॥

शुद्धविष्कम्भक इति। मध्यमपात्ररूपया कपालकुण्डलया प्रयोजितत्वाच्छुद्धविष्कम्भकोऽयम्। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः। शुद्धः स्यात्।' इति।

आच्छादित की जाती हैं। पृथिवी चारों ओर पर्यन्त देशमें निमज्जनके क्रमसे नूतन जलमें निमग्नकी तरह प्रतीत हो रही है। रात प्रारम्भ ( शुरु ) में भी वायुसमूहके अतिशय वेगसे चारों तरफ विस्तारित मण्डलाकारसे युक्त प्रचुर धूमसमूहके सदृश प्रकाशवाली अपनी नीलिमाको वनोंमें बढ़ा रही है ॥ ६ ॥

( ऐसा कहकर निकलती है। )

इति शुद्धविष्कम्भकः ।

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो माधवः )

माधवः—( साशंसम् )

**प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदया-**
**स्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि ।**

तत इति । यथानिर्दिष्टः=कपालकुण्डलया निर्दिष्टरूपः, वामपाणिगृहीतार्द्रनरमांस इति भावः ।

माधव इति । साऽऽशंसम्=आशंसया (मालतीलाभाऽऽशया) सहितं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः 'वोपसर्जनस्ये'ति सहस्य सभावः ।

प्रेमार्द्रा इति । प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयात् उद्गाढरागोदयाः निसर्गमधुरा मुग्धदृशः ताः ताः चेष्टा मयि भवेयुः । आशंसापरिकल्पितासु अपि यासु क्षणात् बाह्यकरणव्यापाररोधी आनन्दसान्द्रः अन्तःकरणस्य लयो भवतीत्यन्वयः । प्रेमाऽऽर्द्राः=प्रेम्णा ( अनुरागेण ) आर्द्राः ( सरसाः ) । शृङ्गारस्य रतिरूपस्य स्थायिभावस्य प्रकृष्टाऽवस्थाविशेषः प्रेमेत्युच्यते । प्रेमलक्षणं यथाह भरतः—

'परस्पराश्रयघनं निरूढं भावबन्धनम् ।
यदेकायत्ततोपाधि तत्प्रेमेति निगद्यते ॥' इति ।

प्रणयस्पृशः=प्रणयम् ( उपचारैः प्रकृष्टं प्रेमविशेषम् ) स्पृशन्तीति, प्रकृष्टप्रेमाश्रयिण इत्यर्थः । 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' इति क्विन्प्रत्ययः । प्रणयलक्षणं यथाऽऽह भरतः—

'उपचारैर्मिथोः यूनोर्यद्बाह्याऽभ्यन्तराऽभिधः ।
प्रेम नीतं प्रकर्षं चेत्स एव प्रणयः स्मृतः ॥' इति ।

एवं परिचयात्=संस्तवात्, तस्यैव प्रणयस्य पुनःपुनर्दर्शनसंभाषणादिभिः परिपोषादिति भावः । उद्गाढरागोदयाः=उद्गाढः ( प्रौढः ) यः रागः ( अनुरागः ) तस्य उदयः ( आविर्भावः ) यासु ताः । निसर्गमधुराः=प्रकृतिमनोहराः, मुग्धदृशः=सुन्दरलोचनायाः, मालत्या इत्यर्थः । मुग्धे दृशौ यस्यास्तस्याः, 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः । तास्ताः=असकृत्पूर्वाऽनुभूताः, चेष्टाः=कटाक्षविक्षेपभ्रूचालनादीनि चेष्टनानि, मयि=प्रणयिनि, माधवे । भवेयुः=स्युः, आशंसायां लिङ् । आशंसा-

( अनन्तर पूर्वोक्तिके अनुसार माधव प्रवेश करता है । )

माधव—( मालतीलाभकी आशाके साथ ) अनुरागसे सरस, प्रकृष्ट प्रेमको आश्रय करनेवाले, परिचयसे प्रौढ़ अनुरागके आविर्भाववाले, स्वभावसे मनोहर

यास्वन्तःकरणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणा-
दाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥ ७ ॥

अपि च—

अतिमुक्तकग्रथितकेसरावली-
सतताधिवाससुभगार्पितस्तनम् ।

परिकल्पितासु = आशंसया ( कथमेतदीयकटाक्षादिगोचरो भवेयमित्याकारया आशया ) परिकल्पितासु ( रचितासु ), अपि, अपिपदेन किमुत यथार्थरूपास्वित्यर्थः संपद्यते । यासु = पूर्वोक्तासु कटाक्षवीक्षणादिषु चेष्टासु । क्षणात्=तत्कालात्, बाह्यकरणव्यापाररोधी = बाह्यकरणानां ( बहिरिन्द्रियाणां, चक्षुरादीनामित्यर्थः ) ये व्यापाराः ( दर्शनादयः ) तान् रुणद्धि ( निवारयति ) तच्छीलः 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति ताच्छील्ये णिनिप्रत्ययः । मूर्च्छादिलयव्यावृत्त्यर्थमाह— आनन्दसान्द्र इति । आनन्दसान्द्रः=आनन्देन ( प्रमोदेन, ब्रह्मास्वादसहोदरेणेति भावः ) सान्द्रः ( निरन्तरः, अव्यवहित इत्यर्थः ) अन्तःकरणस्य = चित्तस्य, लयः= विलीनता, तदेकनिमग्नत्वं, तप्तायःपिण्डजलन्यायेन तन्मयीभाव इति यावत् । भवति = वर्तते । एवं चित्तपरिकल्पितेषु मालत्याः कटाक्षवीक्षणादिव्यापारेषु अन्तःकरणस्य तन्मयीभावाद्बहिरिन्द्रियवृत्तिशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः हर्षप्रकर्षोऽतिशय आविर्भवतीति भावः । अत्र सत्यप्यर्थापत्त्यलङ्कारे तत्र तात्पर्याऽभवादभिलाषविप्रलम्भश्शृङ्गारः प्राधान्येन व्यज्यत इत्यभिधामूलसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो रसध्वनिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

इदानीं प्रियायाः सर्वास्वपि चेष्टासु प्रागभिमतामालिङ्गनरूपां चेष्टां प्रार्थयते— अतिमुक्तकेति । प्रियया कर्णजाहविनिवेशिताऽऽननः अतिमुक्तकग्रथितकेसराऽऽवली-सतताऽधिवाससुभगाऽर्पितस्तनं तदङ्गपरिवृत्तिम् अपि प्राप्नुयामित्यन्वयः । प्रियया = वल्लभया, मालत्याः इत्यर्थः । कर्णजाहविनिवेशिताऽऽननः = कर्णजाहे ( मदीयश्रोत्रमूले ) विनिवेशितं ( स्थापितम्, आलिङ्गनाऽर्थमिति शेषः ) आननं ( मुखम् ) यस्य सः, तादृशम् । कर्णस्य मूलं कर्णजाहं, 'तस्य पाकमूले पील्वादि-

सुन्दरी ( मालती ) को बारम्बार पूर्वानुभूत कटाक्ष आदि चेष्टायें मेरे ऊपर हों। आशासे रचित होनेपर भी जिनमें तत्कालसे ही नेत्र आदि बाह्य इन्द्रियोंके दर्शन आदि क्रियाओंको रोकनेवाला और आनन्दसे गाढ़ चित्तकी विलीनता (तन्मयता) हो जाती है ॥ ७ ॥

फिर भी— प्रिया(मालती)मेरे कर्णमूलमें मुखमण्डलको स्थापित करें और वासन्ती

अपि कर्णजाहविनिवेशिताननः
प्रियया तदङ्गपरिवृत्तिमाप्नुयाम् ॥ ८ ॥
अथवा दूरे तावदेतत । इदमेव तावत्प्रार्थये ।
संभूयेव सुखानि चेतसि परं भूमानमातन्वते

कर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ' इति जाहच्प्रत्ययः । 'कण्ठजाहम्' इति पाठोऽपपाठः, कर्णादिगणस्याकृतिगणत्वाभावात्तत्र च कण्ठशब्दपाठाभावाच्च । अतिमुक्तकग्रथितकेसरावलीसतताऽधिवाससुभगार्पितस्तनम् = अतिमुक्तकः ( वासन्तीपुष्पैः ) ग्रथिता ( गुम्फिता ) या केसरावली ( वकुलपुष्पमाला ) तस्याः सततं ( निरन्तरम् ) अधिवासेन ( अधिकस्थित्या ) सुभगौ ( सौरभेण सौभाग्ययुक्तौ मनोहरौ वा ) अर्पितौ ( स्थापितौ, ममोरसीति शेषः ) स्तनौ ( पयोधरौ ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । 'अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवीलता ।' इति अथ केसरे । वकुल' इति चाऽमरः । तदङ्गपरिवृत्तिं = तस्याः ( मालत्याः ) अङ्गेन ( अवयवेन ) परिवृत्तिम् ( विनिमयं, मदङ्गस्येति शेषः ) अपि, प्राप्नुयां = लभेय, आलिङ्गनकाले मालत्यङ्गं मदधीनं मदङ्गं च मालत्यधीनं भवेदिति भावः । 'अतिमुक्तमदि'त्यादि पाठे अतिमुक्ता ( मुक्तामालामतिक्रान्ता ) चाऽसौ मया ग्रथिता इत्यादि विग्रहः कार्यः । 'अविमुक्तके'ति पाठे अविमुक्तका = कदाचिदपि अपरित्यक्ता, मद्ग्रथितत्वेन आदरादिति भावः । अत्र समेन मालत्यङ्गेन समस्य माधवाऽङ्गस्य विनिमयात्परिवृत्तिरलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाऽधिकैर्भवेत् ।' इति । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ८ ॥

अथवेति । 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते' इति नयेन प्रार्थ्यते, साम्प्रतं तं मनोरथम सम्भवं विचिन्त्य पक्षान्तरमाह—अथवेति । एतत् = प्रार्थनं, दूरे = विप्रकृष्टे, आस्तामिति भावः । इदमेव = वक्ष्यमाणमेव, मुखदर्शनमेवेति भावः ।

तदेव प्रतिपादयति–सम्भूयेति । यत्र आलोकपथाऽवतारिणि ( सति ) सुखानि

पुष्पोंसे गुम्फितवकुलमालाके निरन्तर अधिवाससे सौरभसे सौभाग्ययुक्त अथवा मनोहर पयोधरोंको मेरी छातीमें स्थापित करें, इस प्रकारसे मैं उनके अङ्गसे अपने अङ्गका विनिमय भी प्राप्त कर लूं ॥ ८ ॥

अथवा यह प्रार्थना दूर ही रहे । मैं अभी यही प्रार्थना करता हूँ—

जिस ( प्रियमुख ) दृष्टिमार्गमें जानेपर सकल आनन्द इकट्ठे होनेके सदृश अतिशय बाहुल्यका विस्तार करते हैं, जिसके दर्शनसे उत्पन्न नेत्रोत्सव प्रियामें

यत्रालोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः ।
यद्बालेन्दुकलोच्चयादुपचितैः सारैरिवोत्पादितं
तत्पश्येयमनङ्गमङ्गलगृहं भूयोऽपि तस्या मुखम् ॥ ९ ॥

यत्सत्यमधुना संदर्शनं नेति स्वल्पोऽपि विशेषः । मम हि संप्रति

चेतसि सम्भूय इव परं भूमानम् आतन्वते, नेत्रोत्सवो रतिं प्रस्तौति; यत् बालेन्दुकलोच्चयात् उपचितैः सारैः उत्पादितम् इव अनङ्गमङ्गलगृहं तत् तस्या मुखं भूयोऽपि पश्येयमित्यन्वयः । यत्र = यस्मिन्, प्रियतमामुख इति भावः । आलोकपथाऽवतारिणि = दर्शनमार्गगामिनि, सति, सुखानि = सर्वानन्दाः, चेतसि = हृदये, सम्भूय इव = मिलित्वा इव, परं = निरतिशयं, भूमानं = बहुत्वं, बहोर्भावो भूमा, तं, बहुशब्दात् 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इति इमनिच्प्रत्यये 'बहोर्लोपो भू च बहोः' इति 'आदेः परस्य' इत्यनेन च इमनिच इकारलोपे बहुशब्दस्थाने भ्वादेशे भूमपदसिद्धिः । आतन्वते = विस्तारयन्ति । एवं च नेत्रोत्सवः = नयनोत्सवः, यद्दर्शनप्रसूत इति भावः । रतिं = मालत्यामभिलापरूपां चित्तवृत्तिमिति भावः, प्रस्तौति = उपस्थापयति, उत्पादयतीति भावः । यत् = मालतीमुखं, बालेन्दुकलोच्चयात् = बालेन्दोः ( बालचन्द्रस्य, सौकुमार्यसमन्वितस्य कलङ्करहितस्य च चन्द्रस्येति भावः ) कलोच्चयात् ( कलासमूहात् ) उपचितैः = संगृहीतैः, 'अवचितैः, इति पुस्तकान्तरपाठः । सारैः = श्रेष्ठांऽशैः, 'सारो बले स्थिरांऽशे च' इत्यमरः । उत्पादितम् इव = विरचितम् इव, अतः अनङ्गमङ्गलगृहम् = अनङ्गस्य ( मन्मथस्य ) मङ्गलगृहम् ( कल्याणनिकेतनम् ), निरतिशयाह्लादहेतुत्वेन नैर्मल्यप्रसादाऽऽदिगुणयोगेन च मालतीवदनं जगज्जेतुर्मदनस्याऽऽवासमङ्गलसदनमिव प्रतीयत इति भावः । तत् = तादृशं, तस्याः = वल्लभायाः, मालत्याः, मुखं = वदनं, भूयोऽपि = पुनरपि, पश्येयं = कदा विलोकयेयमित्याशंसा, पुण्यपरिपाकवशात्केवलं मालतीवदनदर्शनेनाऽपि कृताऽर्थो भवामीति भावः । अत्र प्रथमचरणे तृतीयचरणे चोत्प्रेक्षा, 'अनङ्गमङ्गलगृहम्' इत्यत्र रूपकं चेत्येतेषां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ९ ॥

ननु भावनावशात्सातत्येन लोचनगोचरीभूतायां प्रियां किमिति पुनर्दर्शनं त्वया प्रार्थ्यत इत्यत्राह—यत्सत्यमिति । यत् = यस्मात् 'अधुना = साम्प्रतं, सत्यं =

अभिलाषरूप चित्तवृत्तिको उत्पन्न करता है, जो बालचन्द्रके कलासमूहसे संगृहीत स्थिर अंशोंसे उत्पादितके सदृश है कामदेवका मङ्गलगृहस्वरूप प्रियाका वह मुख फिर भी देख लूँ ॥ ९ ॥

जिस कारणसे अभी सत्य ( वास्तविक ) प्रियादर्शन नहीं है इस कारणसे

सातिशयप्राक्तनोपलम्भसंभावितात्मनः संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतायमानस्तद्विसदृशैः प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृतप्रवाहः प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोति वृत्तिसारूप्यतश्चैतन्यम् । तथा हि—

---

तथ्यभूतं, संदर्शनं न = विलोकनं न, भावनावशादनुभूयमानं प्रियादर्शनं लौकिकपारमार्थिकचक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयो नेत्यर्थः । इति = अस्मात् कारणात्, स्वल्पोऽपि विशेषः = भावनागोचरीकृतात्प्रियादर्शनाद्वास्तविकप्रियादर्शनस्य स्तोकपरिमाणोऽपि भेदोऽस्तीति भावः, अत एव साम्प्रतं प्रियायाः सत्यं दर्शनं मया प्रार्थ्यत इत्याकूतम् । स्वोक्तमर्थमुपपादयति—ममेति । साऽतिशयप्राक्तनोपलम्भसम्भावितात्मनः = अतिशयेन ( दृढतरसंस्काराऽऽधानसामर्थ्यलक्षणेन ) सहितः साऽतिशयः, एतादृशः प्राक्तनः ( प्राचीनः ) य उपलम्भः ( अनुभवः, मदनोद्याने मालतीसाक्षात्कारात्मक इति भावः ) तेन सम्भावितः ( समुत्पादितः ) आत्मा ( स्वरूपम् ) यस्य । तादृशस्य = भावनारूपस्य, भावनालक्षणं यथा कारिकावल्यां—

'भावनाऽऽख्यस्तु संस्कारो जीववृत्तिरतीन्द्रियः ।
उपेक्षाऽनात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥'

तत्र प्रमाणमपि तत्रैव यथा—

'स्मरणे प्रत्यभिज्ञायामप्यसौ हेतुरुच्यते ।' इति ।

अनवरतप्रबोधात् = अनवरतं ( निरन्तरम् ) प्रबोधात् ( उद्बोधात्, स्वकार्यजननौन्मुख्यादिति भावः ) प्रतायमानः—दीर्घीभवन्, धारावाहिकरीत्या विस्तारमधिरोहन्निति भावः । तद्विसदृशैः = तद्विलक्षणैः, मालतीस्मृतिविजातीयैरिति भावः । प्रत्ययान्तरैः = ज्ञानान्तरैः, अन्ये प्रत्ययाः प्रत्ययान्तराणि, तैः 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति समासः । 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः । ज्ञानानां विभिन्नविषयाऽवगाहित्वमेवाऽन्योन्यं वैसादृश्यम् । अतिरस्कृतप्रवाहः = अतिरस्कृतः ( अनन्तरितः, अव्यवहित इत्यर्थः ) प्रवाहः ( धारावाहिकरूप प्रवृत्तिः ) यस्य सः, विजातीयप्रत्ययाऽसम्मिश्रित इति भावः । प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसन्तानः = प्रियतमायाः ( मालत्याः ) स्मृतयः ( स्मरणानि, संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिरिति तार्किकाः ) एव प्रत्ययाः ( ज्ञानानि ), तेषामुत्पत्तिसन्तानः ( उद्भवसमुदायः ) । वृत्तिसारूप्यतः = वृत्तेः ( अन्तःकरणवृत्तेः, मालतीगोचरायाः स्मृतिरूपाया इति

---

भावनादृष्ट प्रियादर्शनसे वास्तविक प्रियादर्शनका थोड़ा सा भी भेद है । सातिशय प्राचीन मालती साक्षात्कारात्मक अनुभवसे समुत्पादित स्वरूपवाले मेरे भावनारूप संस्कारके निरन्तर उद्बोधसे धारावाहिक रूपसे विस्तारको प्राप्त होता हुआ और मालतीस्मृतिके विजातीय अन्य ज्ञानोंसे अव्यवहित प्रवाहवाला, प्रियतम

लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च
प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च ।

शेषः ) सारूप्यतः ( समानरूपत्वात्, मालत्याकारकारितत्वादिति भावः ), समानं रूपं यस्य स सरूपः । 'ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु' इति समानस्य सभावः । सरूपस्य भावः सारूप्यं, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ् । वृत्तेः सारूप्यं वृत्तिसारूप्यं, तस्मादिति 'अपादाने चाहीयरुहोः' इति तसिप्रत्ययः । चैतन्यं = चिद्रूपमात्मानं, ममेति शेषः । तन्मयम् इव = मालतीमयम् इव, तत्तादात्म्यापन्नम् इव । स्वरूपाऽर्थे मयट्प्रत्ययः । करोति= विदधाति । दर्शनाऽनन्तरं नैरन्तर्येण मालत्याश्चिन्तनेन विषयान्तरतिरोधानेन मनोवृत्तेस्तन्मयत्वात् मदीयश्चिद्रूप आत्माऽपि मालतीमयो भवतीति भावः । वैदान्तिकाः सिद्धान्तमिमं प्रतिपादयन्ति यत् इन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षाऽनन्तरं परिणामिस्वभावमन्तःकरणं वृत्त्याकारेण परिणतं भवति । अन्तःकरणाऽवच्छिन्नं च प्रमातृचैतन्यं वृत्तावपि प्रतिफलति । तदेव वृत्तिप्रतिफलितं चैतन्यं प्रमाणमित्युच्यते । सा च वृत्तिविषयदेशं गत्वा विषयाकारकारिता भवन्ती विषयाऽधिष्ठानचैतन्यावरणकमज्ञानं विरोधित्वात्प्रदीपतमोन्यायेन निवारयति । तदुक्तं यथा—

'बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावपि व्याप्नुतो घटम् ।
तत्राऽज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घटः स्फुरेत् ॥' इति ( पञ्चदशी ७।९१ ) ।

ततश्च विषयाऽधिष्ठानचैतन्यं वृत्तिप्रतिफलितप्रमातृचैतन्याऽभेदेन तडागकुल्याऽऽलवालजलन्यायेनैकत्वमापन्नं स्फुरति । तथा च प्रकृतेऽपि स्मृतेर्मालत्याकारकारितत्वात्तत्प्रतिफलितचैतन्यं विषयचैतन्येनैक्यमापन्नं विषयाकारेण स्फुरतीति । एवं च भावनानैरन्तर्याच्चित्तवृत्तेर्मालत्याकारकारितत्वेऽपि यदा भावनानैरन्तर्याऽभावस्तदा चित्तवृत्तेर्मालत्याकारकारितत्वाऽभावेन पारमार्थिकमालतीदर्शनप्रार्थनं युक्तमेवेति भावः ।

स्वोक्तमेव प्रतिपादयति—लीनेवेति । सा प्रिया नः चेतसि लीना इव, प्रतिबिम्बिता इव, लिखिता इव, उत्कीर्णरूपा इव, प्रत्युप्ता इव 'वज्रलेपघटिता इव' अन्तः निखाता इव, पञ्चभिः चेतोभुवो विशिखैः कीलिता इव, चिन्तासन्ततितन्तुजालनिविडस्यूता इव लग्नेत्यन्वयः । सा = पूर्वोक्ता, प्रिया = वल्लभा, मालतीति भावः । नः = अस्माकं, चेतसि = चित्ते, लीना इव = लयं गता इव, जलराशौ लवणवदैक्यमापन्ना इव इति भावः । ननु तर्हि तस्याः स्फुरणमेव न स्यादित्याशङ्क्याह—प्रति-

( मालती ) के स्मरणरूप ज्ञानोंके उत्पत्तिका समुदाय, अन्तःकरणवृत्तिके सारूप्यके कारण मेरे चिद्रूप आत्माको मालतीमयके सदृश बनाता है । जैसे कि—

वह प्रिया ( मालती ) हमारे चित्तमें लीनकी तरह, प्रतिबिम्बितकी तरह,

सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-
श्चिन्तासंततितन्तुजालनिविडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥ १० ॥

विम्बिता इव = सञ्जातप्रतिविम्बा इव, ननु विम्बरूपाया मालत्या असन्निधौ कथं प्रतिविम्ब इत्यत आह—लिखिता इव = मच्चित्तभित्तौ मन्मथचित्रकारेण चिन्ता- तूलिकयाऽनुरागवर्णकेन लिपिविषयीकृता इवेति भावः। लिखितस्य जलादिपतनेन विनाशाच्च चिरस्थायित्वमत आह—उत्कीर्णरूपा इव=मन्मथशिल्पिना शिलादाविव मच्चित्ते शरैरेव टङ्कैः (पाषाणदारणैः) विन्यस्ताकृतिरिव। ननु उत्कीर्णस्याऽपि पदाऽ- र्थस्य कदाचिद्विनाशोऽपि सम्भाव्यते अत आह—प्रत्युप्ता इव = विरहेण द्रवीभूते मन्मनसि मन्मथसुवर्णकारेण घटिता इवेति भावः। ननु प्रत्युप्तस्याऽपि पदार्थस्य कदाचित् स्वस्थानाच्च्युतत्वमपि सम्भाव्यत इत्यत आह—वज्रलेपघटिता इव = वज्रलेपेन (गुडमाषरसादिद्रव्यभावितसुधालेपेन) घटिता (सम्पादिता) इव। ननु तर्हि मनसः प्रियायाश्च संस्पर्शो न स्यान्मनस उपरि वज्रलेपस्तदुपरि प्रियायाः घटितत्वादित्यत आह—अन्तः निखाता इव अन्तः = अन्तःकरणे, निखाता इव = कृतनिखनना इव, भूतले निधानवन्मनोगर्ते निखातेवेति भावः। निखातस्याऽपि पदार्थस्य उद्धर्तुं शक्यत्वादत आह—पञ्चभिरिति। पञ्चभिः=पञ्चसंख्यकैः, चेतोभुवः= कामदेवस्य, विशिखैः=बाणैः, अरविन्दाऽशोकचूतनवमल्लिकानीलोत्पलरूपैः शरैरिति भावः। कीलिता इव = विद्धा इव, ननु कीलितस्याऽपि पदाऽर्थस्य प्रतिकीलनेन उद्धार्यत्वादुन्मूलनं सम्भाव्यते अत आह—चिन्तेति, चिन्तासन्ततितन्तुजालनिविड- स्यूता इव = चिन्तासन्ततिध्यानपरम्परा 'कथं प्रियाप्राप्तिः स्या'दित्येवं रूपेति भावः' सैव तन्तुजालं (सूत्रसमूहः) तेन निविडं (घनं यथा स्यात्तथा) स्यूता (सीवनं प्राप्ता इव) लग्ना=सम्बद्धा। अत एव तन्मयत्वमिति पूर्ववाक्यसमर्थनम्। अत्र विशेषणानां साऽभिप्रायत्वात्परिकराऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे-'उक्ति- र्विशेषणैः साऽभिप्रायैः परिकरो मतः।' इति। नवसंख्यकाः क्रियोत्प्रेक्षाः, चतुर्थचरणे रूपकं चेत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन संकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

लिखी गई की तरह, शिला 'आदिमें उत्कीर्ण रूपवालीकी तरह, विरहसे द्रवीभूत मेरे मनमें कामदेवरूप सुवर्णकार (सुनार) से घटितकी तरह, वज्रलेपसे सम्पा- दितकी तरह, अन्तःकरणमें खोदी हुई की तरह, कामदेवके पाँच बाणोंसे विद्धकी तरह और ध्यानपरम्परारूप सूत्रसमूहसे निबिडतापूर्वक सीई गई की तरह सम्बद्ध है ॥ १० ॥

( नेपथ्ये कलकलः )

माधवः—( आकर्ण्य ) अहो, संप्रतीतस्ततः प्रवर्तमानकौणपनिकरस्य महती श्मशानवाटस्य रौद्रता। अत्र हि—

पर्यन्तप्रतिरोधिमेदुरघनस्त्यानं चिताज्योतिषा—
मौज्ज्वल्यं परभागतः प्रकटयत्याभोगभीमं तमः।
संसक्ताकुलकेलयः किलकिलाकोलाहलैः संमदा-

माधव इति। प्रवर्तमानकौणपनिकरस्य = प्रवर्तमानः ( चेष्टमानः ) कौणपनिकरः ( राक्षसमूहः ) यस्मिंस्तस्य। श्मशानवाटस्य = पितृवनप्रदेशस्य। रौद्रता = भयङ्करता। हि = यतः, 'हि हेताववधारणे' इत्यमरः। अत्र = अस्मिन्, श्मशानवाट इति भावः।

पर्यन्तेति। पर्यन्तप्रतिरोधिमेदुरघनस्त्यानम् आभोगभीमं तमः चिताज्योतिषाम् औज्ज्वल्यं परभागतः प्रकटयति। संसक्ताऽऽकुलकेलयः उत्तालाः कटपूतनाप्रभृतयः सम्मदात् किलकिलाकोलाहलैः सांराविणं कुर्वते इत्यन्वयः। पर्यन्तप्रतिरोधिमेदुरघनस्त्यानं = पर्यन्ते ( ज्योतिषां प्रान्तदेशे ) प्रतिरुणद्धि ( निवारयति ) दृष्टिमिति शेषः, तच्छीलमिति पर्यन्तप्रतिरोधि, ज्योतिःसमीपपर्यन्तमावृत्य वर्तमानमित्यर्थः। मेदुरं ( स्निग्धम् ), घनं ( निबिडम् ) स्त्यानं ( स्फीतम् )। अत्र स्त्यानमित्यत्र 'स्त्यै शब्दसंघातयोः' इति धातोर्निष्ठायां 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' इति नत्वम्। तथा आभोगभीमम् = आभोगेन ( परिपूर्णतया, विस्तारेणेति भावः, 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः ) भीमं = ( भयङ्करम् ), तादृशं तमः = अन्धकारं, चिताज्योतिषां = चिताऽग्नीनाम्, औज्ज्वल्यम् = उज्ज्वलतां, प्रकाशमिति भावः। परभागतः = गुणोत्कर्षात्, प्रकटयति = प्रकाशयति, घनाऽन्धकारे तेजोवैशिष्ट्यं स्फुटं भवतीति भावः। प्रकटयतीत्यत्र प्रोपसर्गात् 'संप्रोदश्च कटच्' इति सूत्रेण कटच्-प्रत्ययेन निष्पन्नात् प्रकटशब्दात् प्रकटं करोतीति विग्रहे 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्ताल्लट्। एवं च संसक्ताऽऽकुलकेलयः = संसक्ता ( अविच्छिन्ना ) आकुला

( नेपथ्यमें कोलाहल होता है। )

माधव—( सुनकर ) अहो! इस समय इधर-उधर राक्षससमुदाय चेष्टा कर रहा है, और श्मशानप्रदेशकी बड़ी भयङ्करता है। क्योंकि—

यहाँ पर प्रान्तभागमें दृष्टिको रोकनेवाला, स्निग्ध, गाढ और बढ़ा हुआ तथा परिपूर्णतासे भयङ्कर अन्धकार चिताके अग्नियोंकी उज्ज्वलताको गुणोंके उत्कर्षसे प्रकाशित कर रहा है। त्वरायुक्त क्रीडाको अविच्छिन्न करनेवाले भयङ्कर कटपूतना

उत्ताला: कटपूतनाप्रभृतयः सांराविणं कुर्वते ॥ ११ ॥

तदुच्चैराघोषयामि । भो भोः श्मशाननिकेतनाः कटपूतनाः ।

अशस्त्रपूतमव्याजं पुरुषाङ्गोपकल्पितम् ।

---

(त्वरायुक्ता (क्रीडा) येषां ते। उत्तालाः = भयङ्कराः, कटपूतनाप्रभृतयः = कटपूतनाः (श्मशानवासिनः पिशाचविशेषाः) तत्प्रभृतयः (तदादयः, अन्येऽपि आममांसभक्षकाः शृगालादय इति भावः)। सम्मदात् = हर्षात्, मांसादिलाभजनितादिति शेषः। किलकिलाकोलाहलैः = किलकिलेत्यव्यक्तशब्दयुक्तैः कलकलशब्दैः, सांराविणं = समन्ताच्छब्दं, कुर्वते = विदधति। अतः श्मशानवाटस्य रौद्रतेति भावः। सांराविणमित्यत्र समुपसर्गपूर्वकात् 'रु शब्दे' इति धातोः 'अभिविधौ भाव इनुण्' इति इनुणप्रत्ययः, तदन्तात् 'अणिनुणः' इत्यण् आदिवृद्धिः 'इनण्यनपत्ये' इति इनः प्रकृतिभावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

तदिति। तत् = तस्मात्कारणात्। उच्चैः = तारस्वरेण, घोषयामि = शब्दं करोमि, सर्वश्रावणाऽर्थमिति भावः। भो भोः = संभ्रमे द्विरुक्तिः। श्मशाननिकेतनाः=श्मशानं (पितृवनं) निकेतनं (सद्म) येषां ते।

अशस्त्रपूतमिति। अशस्त्रपूतम् अव्याजं पुरुषाऽङ्गोपकल्पितं महामांसं विक्रीयते। इति गृह्यतां गृह्यताम् इत्यन्वयः। अशस्त्रपूतं = शस्त्रेण अस्पष्टं, शस्त्रच्छेदरहितमिति भावः। शस्त्रच्छिन्नमांसं पवित्रत्वात्पिशाचैः स्प्रष्टुमशक्यमिति तद्ग्राह्यत्वद्योतनाय विशेषणमिदम्। अव्याजं = छलरहितं, वस्तुनो विक्रयाऽर्थमेवाऽऽनीतं न तु विक्रयच्छलेन प्रहरणाऽर्थमिति भावः। 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे।' इत्यमरः। पुरुषाऽङ्गोपकल्पितम् = पुरुषस्य (मृतस्य कस्यचित्पुंसः) अङ्गेन (केनचिदवयवेन) उपकल्पितं (सम्पादितम्) स्त्रीमांसाऽपेक्षया पुरुषमांसस्य प्राशस्त्यद्योतनाऽर्थं पुरुषग्रहणम्। उक्तं हि कापालिकागमे—

'अशस्त्रसंछिन्नमयोषिदीयं नृमांसमार्द्रंगलदस्रबिन्दु यत्।' इति।

अन्ये तु—'आत्मसिद्धिं पणीकृत्य सहसाद्यदुपार्जितम्।
अशस्त्रपूतमव्याजं नृमांसं परिकीर्तितम् ॥' इत्याहुः।

---

(श्मशानवासी पिशाचविशेष) आदि हर्षसे 'किलकिला' शब्दवाले कोलाहलोंसे चारों ओर शब्द कर रहे हैं ॥ १२ ॥

इस कारणसे ऊँचे स्वरसे घोषणा करता हूँ। अरे श्मशान में रहनेवाले कटपूतना (पिशाचविशेष)।

शस्त्रसे अस्पृष्ट छलरहित और मरे हुए किसी पुरुषके किसी अवयवसे सम्पादित

विक्रीयते महामांसं गृह्यतां गृह्यतामिति ॥ १२ ॥

( नेपथ्ये पुन. कलकलः )

माधवः—कथमाघोषणानन्तरमेव सर्वतः समुच्चलदुत्तालतुमुलव्यक्तकलकलाकुलः प्रचलित इवाविर्भवद्भूतसंकटः श्मशानवाटः। आश्चर्यम् ।

कर्णाभ्यर्णविदीर्णसृक्कविकटव्यादानदीप्ताग्निभि-

एतदेवमहामांसशब्देनोच्यत इति त्रिपुरारिसूरिः। एतादृशं महामांसं = नरमांसं, विक्रीयते = किमपि उपायनं गृहीत्वा समर्प्यते इति भावः। इति=अस्मात् पूर्वोक्तात्कारणात्, अशस्त्रपूतत्वादिरूपादिति भावः। 'इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु।' इत्यमरः। पुस्तकान्तरे तु 'इदम्' इति पाठः। गृह्यतां गृह्यताम् = स्वीक्रियतां स्वीक्रियताम्, वीप्सा आदराऽतिशयसूचनाऽर्था। अत्र विशेषणानां साऽभिप्रायत्वात्परिकराऽलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १२ ॥

माधव इति। समुच्चलदुत्तालतुमुलव्यक्तकलकलाऽऽकुलः = समुच्चलन् ( प्रचलन् ) उत्तालः ( भयङ्करः ) अस्मादनन्तरं 'वेतालयुक्त'पदपाठस्तत्पक्षे पूर्वोक्तं विशेषणद्वयं वेतालीयं कृत्वा बहुवचनान्तत्वेन परिणम्यताम्। तादृशैर्वेतालैः ( श्मशानदेवताकिङ्करैः ) मुक्तः ( त्यक्तः ) इत्यर्थः कार्यः। एवं च तुमुलः ( संकीर्णः ) व्यक्तः ( स्फुटः ) यः कलकलः ( कोलाहलः ), तेन आकुलः ( व्यस्तः )। एवम् आविर्भवद्भूतसंकटः = आविर्भवन्तः ( प्रकटीभवन्तः ) ये भूताः ( पिशाचविशेषाः ), तैः संकटः ( संकीर्णः ), श्मशानवाटः = श्मशानप्रदेशः प्रचलित इव = प्रकम्पित इव, वर्तत इति शेषः।

आश्चर्यं द्योतयति--कर्णाऽभ्यर्णेति। कर्णाऽभ्यर्णविदीर्णसृक्कविकटव्यादानदीप्ताग्निभिः दंष्ट्राकोटिविशङ्कटैः इत इतोधावद्भिः विद्युत्पुञ्जनिकाशकेशनयनभ्रूश्मश्रुजालैः लक्ष्याऽलक्ष्यविशुष्कदीर्घवपुषाम् उल्कामुखानां मुखैः नभ आकीर्यत इत्यन्वयः। कर्णाऽभ्यर्णविदीर्णसृक्कविकटव्यादानदीप्ताऽग्निभिः = कर्णयोः ( श्रोत्रयोः ) अभ्यर्णं ( समीपं यावत्, 'उपकण्ठाऽन्तिकाऽभ्यर्णाऽभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्।' इत्यमरः )

महामांस ( नरमांस ) बेचता हूँ, इस कारणसे ले लो, ले लो ॥ १२ ॥

( नेपथ्यमें फिर कोलाहल होता है। )

माधव—कैसे आघोषणके अनन्तर ही चारों ओरसे प्रचलित होते हुए, भयङ्कर संकीर्ण और स्फुट कोलाहलसे आकुल और प्रकट होनेवाले भूतोंसे सङ्कीर्ण श्मशानप्रदेश प्रकम्पितके सदृश मालूम हो रहा है। आश्चर्य है।

कर्णोंके समीपतक विदीर्ण ओष्ठप्रान्तोंसे विकट मुखच्छिद्रप्रकाशनसे दीप्त

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटैरित इतो धावद्भिराकीर्यते।
विद्युत्पुञ्जनिकाशकेशनयनभ्रूश्मश्रुजालैर्नभो
लक्ष्यालक्ष्यविशुष्कदीर्घवपुषामुल्कामुखानां मुखैः ॥ १२ ॥

अपि च--

एतत्पूतनचक्रमक्रमकृतग्रासार्धमुक्तैर्वृका-

विदीर्णे (विपाटिते) ये सृक्कणी (ओष्ठप्रान्तौ, 'प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी' इत्यमरः), ताभ्यां विकटं (भयङ्करम्) यत् व्यादानं (मुखछिद्रप्रकाशनम्) तेन दीप्तः (प्रकाशितः) अग्निः (अनलः) येषु तानि, तः। दंष्ट्राकोटिविशङ्कटैः = दंष्ट्राणां (दशनानां) कोटिभिः (अग्रैः) विशङ्कटानि (विशालानि, व्युपसर्गात् 'वेः शालच्छङ्कटचौ' इति शङ्कटच्प्रत्ययः, 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्। वड्रोरुविपुलम्' इत्यमरः), तैः। 'विशङ्कटैः' इति पाठे विशेषसङ्कीर्णैरित्यर्थः। इत इतो धावद्भिः = सर्वतः प्रसरद्भिः' विद्युत्पुञ्जनिकाशकेशनयनभ्रूश्मश्रुजालैः=विद्युत्पुञ्जैः (तडित्समूहैः) सदृशानि विद्युत्पुञ्जानिकाशानि, तादृशानि केशनयनभ्रूश्मश्रुजलानि (शिरोरुहनेत्रतल्लोममुखरोमसमूहाः) येषु' तैः। अत्राऽनित्यत्वात्पूर्वनिपातशास्त्रस्य यथायथमप्रवृत्तिर्बोध्या। लक्ष्याऽलक्ष्यविशुष्कदीर्घवपुषां = लक्ष्याणि (दृश्यानि, मुखगतोल्कादीप्तिवशादिति शेषः) अलक्ष्याणि (अदृश्यानि, मुखसङ्कोचेन उल्काप्रकाशाऽभावादुपनतेनाऽन्धकारेणेति शेषः) विशुष्काणि (अतिशयकृशानि) दीर्घाणि (आयतानि) वपूंषि (शरीराणि) येषां ते, तेषाम्। तादृशानाम् उल्कामुखानाम्=उल्का (निर्गतज्वाला) मुखे (आनने) येषां, ते, तेषाम् अन्वर्थनामधेयानां पिशाचविशेषाणाम्। केषांचिन्मते शृगालविशेषाणामित्यर्थः, शब्दकाले शृगालमुखादग्निज्वाला निःसरतीति प्रवादमनुसृत्य एवोऽर्थः। मुखैः—आस्यैः, नभः=श्मशानप्रदेशाऽवच्छिन्नमाकाशमित्यर्थः। आकीर्यते = व्याप्यते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारे विद्युत्पुञ्जनिकाशेत्यत्रोपमाऽलङ्कारश्चेत्येतयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥

एतदिति। अक्रमकृतग्रासाऽर्द्धमुक्तैः नृमांसविघसैः परित आदर्दुरं क्रन्दतः वृकान्

अग्नियोंसे युक्त दाढ़ोंके अग्रभागोंसे विशाल और सब ओर फैलते हुए बिजलियोंके समूहके सदृश केश, नेत्र, भ्रू और डाढ़ी मोछोंसे युक्त कभी दृश्य और कभी अदृश्य और अतिशय कृश और दीर्घ शरीरवाले उल्कामुख नामक पिशाचोंके मुखोंसे श्मशानप्रदेशाऽवच्छिन्न आकाश व्याप्त किया जा रहा है ॥ १२ ॥

फिर भी—

अतिशय तृष्णासे किये गये कौरसे जमीनपर आधा गिरे हुए नरमांसके खाकर

उत्पुष्णत्परितो नृमांसविघसैरादर्दरं क्रन्दतः ।
खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घमसितत्वङ्नद्धविष्वक्तत-
स्नायुग्रन्थिघनास्थिपञ्जरजरत्कङ्कालमालोक्यते ॥ १४॥

( समन्तादवलोक्य विहस्य च ) अहो प्रकारः पिशाचानाम् । ततः—

उत्पुष्णत् खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घम् असितत्वङ्नद्धविष्वक्ततस्नायुग्रन्थिघनाऽस्थिपञ्जरजरत्कङ्कालम् एतत् पूतनचक्रम् आलोक्यते इत्यन्वयः । अक्रमकृतग्रासाऽर्द्धमुक्तैः = अक्रमेण ( क्रमाऽभावेन, अतितृष्णया यौगपद्येनेति भावः ) कृतः ( विहितः ) यो ग्रासः ( कवलः ) तस्मात् अर्द्धमुक्तैः ( अर्द्धपतितैः, ग्रासस्य महत्त्वान्मुखे अमानात् भूमिपतितैरिति भावः ) नृमांसविघसैः = नराऽऽमिषभुक्तशेषैः, परितः = सर्वतः, आदर्दरम् = ईषद्दर्दरं ( ध्वन्यनुकृतिशब्दम् ) यथा स्यात्तथा 'आघर्घरम्' इति क्वचित्पाठः । क्रन्दतः = आक्रन्दनं कुर्वाणान् , 'क्रदि आह्वाने रोदने चे'ति धातोर्लटः शत्रादेशः । वृकान् = ईहामृगान् , उपलक्षणं चैतच्छृगालादीनामपि । 'कोकस्त्वीहामृगो वृकः' इत्यमरः । उत्पुष्णत् = उत्पुष्टान् कुर्वत् । खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घं = खर्जूरद्रुमदघ्ना ( खर्जूरवृक्षप्रमाणा, खर्जूरद्रुमः प्रमाणं यस्याः सा 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' इति दघ्नच्प्रत्ययः ) जङ्घा ( प्रसृता ) यस्य तत् । एवं च असितत्वङ्नद्धविष्वक्ततस्नायुग्रन्थिघनाऽस्थिपञ्जरजरत्कङ्कालम् = असिता ( कृष्णवर्णा ) या त्वक् ( चर्म ) तथा नद्धा ( बद्धा ) विष्वक् ( सर्वतः ) तताः ( व्याप्ताः ) याः स्नायवः ( वस्नसाः, 'अथ वस्नसा । स्नायुः स्त्रियाम्' इत्यमरः ) तासां ग्रन्थिषु (सन्धिभागेषु) घनानि ( निबिडानि ) अस्थिपञ्जराणि ( रक्तमांसादिभिर्हीनतया केवलं पञ्जरभूतानि कीकसानि ) येषां ते, तथा जरन्तः, ( जीर्णाः, चिरकालजीवनादिति शेषः ) कङ्कालाः ( शरीराऽस्थीनि ) यस्य तत् । 'स्याच्छरीराऽस्थ्नि कङ्काल' इत्यमरः । एतादृशम्, एतत् = समीपतरवर्ति, पूतनचक्रम् = पूतनानां ( पिशाचविशेषाणाम् ) चक्रम् ( समूहः ) आलोक्यते = दृश्यते । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः, 'खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घम्' इत्यत्रोपमा चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । शार्दूलविक्रिडितं वृत्तम् ॥ १४ ॥

समन्तादिति । विहस्य = विहसनं कृत्वा, व्युपसर्गपूर्वकात् 'हसे हसने' इति

बचे शेष भागोंसे चारों ओर कुछ 'दर्द' शब्दके साथ चिल्लाते हुए भेड़ियोंको पुष्ट करता हुआ खजूरके पेड़की जैसी लम्बी जाँघवाला, काले चमड़ेसे बाँधी गई और चारों तरफ व्याप्त नसोंके सन्धिभागोंमें निबिड अस्थिपञ्जरवाले जीर्ण कङ्कालोंसे युक्त यह पूतनों—पिशाचविशेषों ) का समूह देखा जा रहा है ॥ १४ ॥

( चारों ओर देखकर और हंसकर भी ) अहो ! यह पिशाचोंका भेद है ।

पृथुचलरसनोग्रमास्यगर्तं
दधति विदार्य विशीर्णशुष्कदेहाः ।
चलदजगरघोरकोटराणां
द्युतिमिह दग्धपुराणरोहिणानाम् ॥ १५ ॥

धातोः क्त्वा, तस्य 'समासेऽनपूर्वे क्त्वोल्यप्' इति ल्यबादेशः । आहेति शेषः । विहसनेन च तादृशभयङ्करदृश्यदर्शनेनाऽपि निर्भीकत्वान्माधवस्याऽतिमनस्विता द्योत्यते । प्रकारः = भेदः, 'प्रकारौ भेदसादृश्ये' इत्यमरः ।

पृथुचलेति । विशीर्णशुष्कदेहाः, पृथुचलरसनोग्रम् आस्यगर्तं विदार्य इह चलदजगरघोरकोटराणां दग्धपुराणरोहिणानां द्युतिं दधतीत्यन्वयः । विशीर्णशुष्कदेहाः = विशीर्णाः ( विशेषेण शीर्णाः = व्रणकिणादिबहूपद्रववशाद्विशकलिताः ) शुष्काः ( नीरसाः, रक्तमांसादिशून्यतयेति शेषः ), पुस्तकान्तरे तु 'विवर्णदीर्घे'ति पाठस्तत्र विवर्णाः ( मलिनाः ) दीर्घाः ( आयताः ) इत्यर्थः । तादृशाः देहाः ( शरीराणि ) येषां ते, पिशाचा इति शेषः । पृथुचलरसनोग्रं = पृथुः ( विशाला ) चला (चञ्चला) 'पृथुतरे'ति पाठे अतिविशालेत्यर्थः । एतादृशी या रसना ( जिह्वा ) तया उग्रः ( भयङ्करः ), तम् । एतादृशम् आगर्तं = मुखाऽवरं, गर्तं इव गर्तं इति लाक्षणिकोऽयं शब्दस्तेन मुखच्छिद्रमित्यर्थः । विदार्य=विदारणं कृत्वा, विपाट्येत्यर्थः । इह=अत्र, श्मशान इत्यर्थः । चलदजगरघोरकोटराणां = चलन्तः ( चञ्चलाः, प्रविश्येति शेषः ) 'जलदि'ति पाठे गलन्तः ( निर्गच्छन्तः, कोटरादिति शेषः ) एतादृशा ये अजगराः ( महासर्पाः ) तैः घोराणि ( भयङ्कराणि ) कोटराणि अवयवच्छिद्राणि 'निष्कुहः कोटरं वा ने'त्यमरः ) येषां ते, तेषाम् । दग्धपुराणरोहिणानां = दग्धाः ( कुत्रचित्स्थाने दवानलेन भस्मीकृताः, एतेन श्यामत्वं द्योत्यते ) पुराणाः ( प्राचीनाः, एतेन विशेषणेन जीर्णत्वं द्योत्यते ), ये रोहिणाः ( चन्दनवृक्षाः, 'रोहिणश्चन्दनद्रुम' इति विश्वः ), तेषां, द्युतिं = कान्तिं, दधति = धारयन्ति । अत्राऽन्येषां द्युतिमन्ये कथं दधतीति असम्भवद्वस्तुसम्बन्धा निदर्शनाऽलङ्कारः । बिम्बरोहिणकान्तिधारणात्पिशाचानां श्यामत्वं, जीर्णत्वं, शुष्कत्वं, सच्छिद्रत्वं च द्योत्यते । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥१५॥

इस कारणसे—विशीर्ण और शुष्क शरीरवाले पिशाच विशाल और चञ्चल जीभसे भयङ्कर गड्ढेके सदृश मुखका विदारण कर यहाँ प्रवेश कर चलते हुए अजगरसे भयङ्कर कोटरवाले दावानलसे किसी जगह जले हुए पुराने चन्दन वृक्षोंकी कान्तिको धारण कर रहे हैं ॥ १५ ॥

( परिक्रम्यावलोक्य च ) हन्त, अतिबीभत्समग्रतो वर्तते ।

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।

परिक्रम्येति । अतिबीभत्सम् = घृणाऽतिशयव्यञ्जकम् ।

तदेव प्रतिपादयति—उत्कृत्येति । आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः प्रथमं कृत्तिम् उत्कृत्य उत्कृत्य अथ पृथूत्सेधभूयांसि उग्रपूतीनि अंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभानि मांसानि जग्ध्वा अङ्कस्थात् करङ्कात् अस्थिसंस्थं स्थपुटगतम् अपि क्रव्यम् अव्यग्रम् अत्तीत्यन्वयः । आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः = आत्तं ( गृहीतम् ) स्नाय्वान्त्रनेत्रं ( वस्नसापुरीतन्नयनम् स्नाय्वादीनामादानं तदन्तर्गतमांसग्रहणार्थम् । ) अन्त्रम् एव आन्त्रम्, स्वार्थेऽण् । स्नायवश्च आन्त्राणि च नेत्रे चेति 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इति समाहारद्वन्द्वः । येन सः । पुस्तकान्तरे तु 'आर्तः पर्यस्तनेत्र' इति पाठस्तत्र आर्तः = पीडितः, क्षुधयेति शेषः । पर्यस्तनेत्रः = पर्यस्ते ( इतस्ततः क्षिप्ते, प्रेतान्तराऽऽगमनशङ्कयेति शेषः ) नेत्रे ( नयने ) यस्य सः । प्रकटितदशनः = प्रकटिताः ( प्रकाशिताः, विषमस्थानस्थितं मांसनिष्क्रष्टुमिति शेषः ) दशनाः ( दन्ताः ) येन सः । प्रेतरङ्कः = प्रेतेषु ( पिशाचेषु ) रङ्कः ( दरिद्रः ), कश्चिदिति शेषः । प्रथमं = प्राक् । कृत्तिं = चर्म, उत्कृत्य उत्कृत्य = छित्त्वा छित्त्वा, 'निभिद्योत्कृत्ये'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र निभिद्य = प्रविदार्य, पश्चात् उत्कृत्य = छित्त्वेत्यर्थः । अथ = अनन्तरं, पृथूत्सेधभूयांसि = पृथुः ( महान् ) च उत्सेधः ( शरीरोन्नतिः ) तेन भूयांसि ( प्रचुराणि ) 'उत्सेधः काय उन्नतिः' इत्यमरः । 'पृथुच्छोथभूयांसि' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र पृथुना ( महता ) उच्छोथेन ( उद्गतशोथरोगेण ) भूयांसीत्यर्थः । तथा उग्रपूतीनि = उग्रा ( उत्कटा, दुःसहेत्यर्थः ) पूतिः ( दुर्गन्धः ) येषां तानि । एवं च अंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभानि = अंसौ ( स्कन्धौ ) स्फिचौ ( कटिस्थमांसपिण्डौ ) पृष्ठं ( कायपश्चाद्भागः ) तदेव पीठं ( पीठ समं पीठं, विशालमित्यर्थः ) प्राण्यङ्गत्वात्समाहारद्वन्द्वः । तत् आदिः ( प्रकारः ) येषां ते । ते च ते

( कुछ कदम चलकर और देखकर भी ) हन्त ! आगे अति जुगुप्सित विषय वर्तमान है ।

स्नायु ( नसें ) अन्त्र ( अंतड़ियाँ ) और नेत्रोंको ग्रहणकर दाँतोंको दिखाकर कोई दरिद्र पिशाच पहले शवके चमड़ेको काट काटकर तदनन्तर शरीरकी बड़ी ऊँचाईसे प्रचुर उत्कट दुर्गन्ध ( बदबू ) वाले कंधे, कटिस्थ मांसपिण्ड, पीठ आदि विशाल अवयवोंमें सुलभ मांसोंको खाकर अपनी गोदमें रहे हुए शवके शिरसे

आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥ १६ ॥

अपि च—

निष्टापस्विद्यदस्नः क्वथनपरिगलन्मेदसः प्रेतकायान्

---

अवयवाः (अङ्गानि) तेषु सुलभानि (सुप्राप्याणि, स्थूलत्वात्सौलभ्येन अनायास-प्राप्तव्यानीति भावः)। एतादृशानि, मांसानि = पिशितानि, जग्ध्वा = भक्षयित्वा, 'अद भक्षणे' इति धातोः क्त्वाप्रत्यये 'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति' इति जग्ध्यादेशः। अङ्कस्थात् = उरसङ्गस्थितात्, करङ्कात् = शिरसः, शवस्येति शेषः। 'करङ्को मस्तकेऽपि स्यात्' इति धरणिः। अस्थिसंस्थम् = कीकसस्थितं। स्थपुटगतम् अपि = निम्नोन्नतविषमस्थानस्थितम् अपि, क्रव्यं = मांसम् 'पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमामिषम्।' इत्यमरः। अव्यग्रम्=अकुलतारहितं यथा तथा, धैर्यपूर्वकमिति भावः। अत्ति= भक्षयति। अत्र जुगुप्सायाः परिपोषाद्बीभत्सो रसः। तथा हि शवमांसमालम्बनं, तत्कर्तनं मांसाऽदनं चोद्दीपनं द्रष्टृनिष्ठीवनादयोऽनुभावाः, मोहादयो व्यभिचारिणो जुगुप्सा च स्थायिभावः। इत्थं चसामाजिकेषु बीभत्सरसप्रकाशः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥१६॥

इममेव रसं प्रकारान्तरेण वर्णयितुमुपक्रमते—अपि चेति।

निष्टापेति। एते कुणपभुजः भूयसीभ्यः चिताभ्यः निष्टापस्विद्यदस्नः क्वथनपरिगलन्मेदसः संसक्तधूमान् अपि प्रेतकायान् कृष्ट्वा उत्पक्वस्त्रंसिमांसं प्रचलत् उभयतः सन्धिनिर्मुक्तं जङ्घानलकम् आरात् निष्कृष्य उदयिनीः मज्जधारा पिबन्तीत्यन्वयः। एते = समीपतरवर्तिनः, कुणपभुजः = शवभक्षकाः पिशाचा इत्यर्थः। कुणपं भुञ्जन्तीति, क्विप्प्रत्ययः। 'कुणपः शवमस्त्रियाम्' इत्यमरः। भूयसीभ्यः = प्रभूताभ्यः, चिताभ्यः = शवदहनेन्धनराशिभ्यः, निष्टापस्विद्यदस्नः = निष्टापेन (सम्यक्सकृत् तापेन, निःशेषेण तापो निष्टापस्तेन, 'निसस्तपतावनासेवने' इति षत्वम्। आसेवनं पौनःपुन्यं, ततोऽन्यस्मिन्विषये) तेन स्विद्यन्ति (द्रवन्ति) असृञ्जि (रुधिराणि) येषां तान्। 'पद्दन्नोमास्हृन्निशस्न्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु' इति असृजः असन्नादेशः 'अल्लोपोऽनः' इत्यल्लोपः, एवं च निष्टापस्विद्यदस्थन' इति पुस्तकान्तरपाठोऽपाठः, 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' इति सूत्रेण

---

अस्थि (हड्डी) में विद्यमान और निम्न, उन्नत तथा विषमस्थानमें रहे हुए मांसको भी धैर्यपूर्वक खा रहा है ॥ १६ ॥

फिर भी—

शवको खानेवाले ये पिशाच प्रचुर चिताओंसे अच्छी तरह एक बार तापसे

स्फुष्ट्वा संसक्तधूमानपि कुणपभुजो भूयसीभ्यश्चिताभ्यः ।
उत्पक्कस्रंसिमांसं प्रचलदुभयतः संधिनिर्मुक्तमारा-
देते निष्कृष्य जङ्घानलकमुदयिनीर्मज्जधाराःपिबन्ति ॥१७॥

( विहस्य ) अहो, प्रादोषिकः प्रमोदः पिशाचानाम् ।

---

टादावच्येर अनङादेशविधानात् । 'रुधिराऽसृग्लोहिताऽस्त्ररक्तक्षतजशोणितम् ।' इत्यमरः । क्वथनपरिगलन्मेदसः = क्वथनेन ( निष्पचनेन ) परिगलन्ति ( विस्रंसमानानि मेदांसि ( मांसस्नेहाः ) येभ्यस्तान् । 'मेदस्तु वपा वसा' इत्यमरः । एवं संसक्तधूमान् अपि = संसक्ताः ( संबद्धः, दाहादिति शेषः ) धूमाः ( वह्निलिङ्गानि ) येषु, तान् । तथाऽपि प्रेतकायान् = शवशरीराणिकृष्ट्वा = आकृष्य, उत्पक्कस्रंसिमांसम् = उत्पक्कम् ( उत्कृष्टपाकयुक्तम् ) स्रंसि ( विगलत्, स्रंसतीति तच्छीलम्, ताच्छील्ये णिनिः ) मांसं ( क्रव्यम् ) यस्मात्तत् । प्रचलत् = प्रस्फुरत, तापवशादिति शेषः । उभयतः सन्धिनिर्मुक्तम् = उभयतः ( मूलाऽग्रभागयोः, उभशब्दात्समासवृत्तिविषये अयच् ) यौ सन्धी ( अस्थिसंयोगस्थाने ) ताभ्यां निर्मुक्तं पृथग्भूतम् ), जङ्घानलकं = प्रसृताकाण्डम्, आराम्, = समीपे, 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः । निष्कृष्य = शरीरात्पृथक्कृत्य, 'निश्चूष्ये'ति पाठे निश्चूषणं कृत्वेत्यर्थः । उदयिनीः = निःसरतीः, मज्जधराः = अस्तिसुषिरपूरकधातुविशेषधाराः, पिबन्ति = धयन्ति । पूर्वश्लोके मांसभक्षणसंयोक्तत्वादत्र पानक्रियावर्णनेनाऽत्राऽपि बीभत्सरसस्यैव परिपोषः स्रग्धरा वृत्तम् ॥ १७ ॥

विहस्येति । अहो=आश्चर्यद्योतकमव्ययम् । प्रादोषिकः=रजनीमुखोत्पन्नः, 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः । 'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते ।' इति देवलः । प्रमोदः = हर्षः, 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षप्रमोदामोदसम्मदाः ।' इत्यमरः । पिशाचानां निशाचरत्वाद्रजनीमुखे तेषां प्रमोदो युक्त इति भावः ।

---

जिनसे रुधिर गिर रहे हैं और अच्छी तरह पकानेसे जिनसे चरबी गिर रही है धूएँ से व्याप्त ऐसे शवके शरीरोंको भी खींचकर उत्कृष्ट पाकयुक्त और गिरनेवाले मांससे सम्बद्ध, तापवश हिलते हुए मूल और अग्रभागमें अस्थि संयोग स्थानोंसे पृथग्भूत जङ्घा ( जाँघ ) के काण्डको समीपमें शरीरसे अलगकर निकलती हुई मज्जा की धाराओंको पी रहे हैं ॥ १७ ॥

( हँसकर ) अहो ! प्रदोष ( रात्रिका आरम्भ ) काल में पिशाचोंको हर्ष हो रहा है ।

अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरक्तोत्पल-
व्यक्तोत्तंसभृतः पिनह्य सहसा हृत्पुण्डरीकस्रजः ।
एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः संभूय कान्तैः पिब-
न्त्यस्थिस्नेहसुरां कपालचषकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥१८॥

पूर्वं पिशाचवृत्तान्त इदानीं सपत्नीकानां येषां विजृम्भणमुच्यते—अन्त्रैरिति। अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरक्तोत्पलव्यक्तोत्तंसभृतः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः एताः पिशाचाऽङ्गनाः सहसा हृत्पुण्डरीकस्रजः पिनह्य कान्तैः संभूयः प्रीताः कपालचषकैः अस्थिस्नेहसुरां पिबन्तीत्यन्वयः। अन्त्रैः = पुरीतद्भिः, कल्पितमङ्गलप्रतिसराः = कल्पिताः ( रचिताः ) मङ्गलप्रतिसराः ( सौभाग्यद्योतकहस्तसूत्राणि ) याभिस्ताः । स्त्रीहस्तरक्तोत्पलव्यक्तोत्तंसभृतः = स्त्रीणां ( मृतनारीणां ) हस्ताः ( पाणयः ) एव रक्तोत्पलानि ( रक्तकमलानि ) तान्येव व्यक्ताः ( स्फुटाः ) ये उत्तंसाः ( कर्णभूषणानि ) तान् बिभ्रति ( धारयन्ति ) यास्ताः, क्विप्प्रत्ययः, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इति तुक्। शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः = शोणितपङ्काः ( घनीभूतत्वान्मृतानां रुधिरकर्दमाः ) एव कुङ्कुमानि ( काश्मीरोत्पन्ना गन्धद्रव्यविशेषाः ) तानि जुषन्ति ( सेवन्ते ) यास्ताः। एताः = पुरोवर्तिन्यः, पिशाचाऽङ्गनाः = प्रेतललना, सहसा = अतर्कितकाल एव, हृत्पुण्डरीकस्रजः = हृत्पुण्डरीकाणां ( हृदयस्थितश्वेतकमलाकारमांसविशेषाणां ) स्रजः ( माल्यानि, स्रज इव स्रजः, गुम्फितपुष्पमालनां सादृश्याल्लाक्षणिकोऽर्थः ), पिनह्य=परिधाय, कण्ठे धारयित्वेति भावः। अप्युपसर्गपूर्वकात् 'णह बन्धने' इति धातोः क्त्वो ल्यबादेशः । भागुरिमतेनाऽल्लोपस्तदुक्तं यथा—'वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।' इति । कान्तैः = भर्तृभिः, संभूय = मिलित्वा, प्रीताः = प्रसन्नाः सत्यः, भक्ष्याऽलङ्कारलाभादिति भावः। कपालचषकैः = पानपात्रभूतमृतकर्परैरित्यर्थः । अस्थिस्नेहसुरां = मज्जरूपां मदिरां, पिबन्ति = धयन्ति । अत्र साऽङ्गस्याऽङ्गीनो रूपणात्साङ्गरूपकाऽलङ्कारः, एवं च कान्तैः सह मधुपानप्रवृत्त स्रक्कुङ्कुमाद्यलङ्कृतनायिकाप्रतीतेः प्रतीयमानः सम्भोगश्रृङ्गाररसेऽत्र प्रधानभूतस्य बीभत्सरसस्याऽङ्गमितिरसवदलङ्कारश्चेत्येतयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । 'आद्यः करुणबीभत्सरौद्रवीरभयानकैः ।' इति वचनादत्र श्रृङ्गारबीभत्सयोर्विरोधो नाऽऽशङ्क्य श्रृङ्गारकरुणयोर्विरोधेऽपि 'अयं स रसनोत्कर्षीत्यत्र यथा श्रृङ्गारस्य करुणाङ्गत्वेन न विरोधः प्रत्युत करुणस्यैव

अन्त्रों ( अतड़ियों ) से सौभाग्यद्योतक हस्तसूत्रोंकी रचना करनेवाली, मरी हुई स्त्रियोंके हस्तरूप रक्तकमलोंको स्पष्टरूपसे कर्णभूषणके तौरपर धारण करनेवाली

( परिक्रम्य । पुनः 'अशस्त्रपूतम्-' इत्यादि पठित्वा ) कथं नामातिभीषणविभीषिकाविकारैर्झटित्यपक्रान्तं पिशाचैः । अहो ! निःसत्त्वाः सर्वे । ( सनिर्वेदम् ) विचितश्चैष सर्वः श्मशानवाटः । तथा खल्वियं पुरत एव,

---

परिपोषस्तथैवाऽत्रापि शृङ्गारस्य बीभत्साऽङ्गत्वान्न विरोधो बीभत्सस्यैव परिपोषः । यदाऽऽह ध्वनिकारः—

'विवक्षिते रसे लब्धप्रतिष्ठे तु विरोधिनाम् ।
बाध्यानामङ्गभावं वा प्राप्तानामुक्तिरच्छला ॥' इति ।

साहित्यदर्पणकारश्चाऽऽह—

'विरोधिनोऽपि स्मरणे साम्येन वचनेऽपि वा ।
भवेद्विरोधो नाऽन्योन्यमङ्गिन्यङ्गत्वमाप्तयोः ॥' इति ( ७-३० )

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । अत्र पिबन्त्यस्थीत्यादौ न यतिभङ्गः । सन्धिकृतपदविच्छेदे तस्य न दोषः । अत एव 'रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमां' महाकविकालिदासकृतः प्रयोगोऽपि संगच्छते ॥ १८ ॥

परिक्रम्येति । परिक्रम्य = परितः पादविक्षेपं कृत्वा । पुनरशस्त्रपूतमित्यादिपाठः पश्चादागतानामपि पिशाचानां प्रज्ञापनार्थः । अतिभीषणविभीषिकाविकारैः = अतिभीषणाः (अतिभयानकाः) विभीषिकाविकाराः ( भयोत्पादकविकृतयः ) येषां, तैः । झटिति = शीघ्रम् । अपक्रान्तं = पलायितं, भावे क्तः । अहो=आश्चर्यम् । सर्वे = सकलाः, पिशाचा इति शेषः । निःसत्त्वाः = पराक्रमरहिताः । सनिर्वेदं=वैराग्यसहितं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । भीतैः सर्वैरपि पिशाचैः पलायितं न तु साहसपूर्वकमत्करस्थितं मांसं क्रीतम् । अविक्रीते च मांसे न मे कार्यसिद्धिरित्यतो निर्वेदो बोद्धव्यः । विचितः=अन्विष्टः । श्मशानवाटः = पितृवनप्रदेशः ।

---

रुधिरपङ्कोंको केसरके तौरपर सेवन करनेवालीं ये पिशाचललनायें अतर्कितरूपसे हृदयस्थित श्वेतकमलके सदृश मांसोंकी मालाओंको कण्ठमें धारण कर पतिके साथ मिलकर प्रसन्न होती हुई नरकपालरूप पानपात्रों (प्यालों) से मज्जास्वरूप मदिराको पाती हैं ॥ १८ ॥

(चारोंओर पादविक्षेप कर । फिर 'अशस्त्रपूतम्' (पृ० २१६) इत्यादि पढ़कर) किस प्रकारसे अतिशय भयङ्कर भयके उत्पादक विकारोंसे युक्त पिशाच लोग भाग गये हैं । आश्चर्य है ! सबके सब पिशाच पराक्रमरहित हैं । ( वैराग्यपूर्वक ) इस सब श्मशान स्थानका अन्वेषण कर चुका हूँ। जैसे कि यह (नदी) सामने ही—

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारसंवेल्लित
क्रन्दत्फेरवचण्डधात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैस्तटैः ।
अन्तःकीर्णकरङ्ककर्परतरत्संरोधिकूलंकष-
स्रोतोनिर्गमघोरघर्घररवा पारेश्मशानं सरित् ॥ १९ ॥

गद्यवाक्ये 'इयम्' इति सर्वनाम्ना निर्दिष्टां श्मशानसरितं वर्णयति—गुञ्जदिति । गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारसंवेल्लितक्रन्दत्फेरवचण्डधात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैः तटैः अन्तःकीर्णकरङ्ककर्परतरत्संरोधि कूलङ्कषस्रोतोनिर्गमघोरघर्घररवा पारेश्मशानं सरित् इत्यन्वयः । गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारसंवेल्लितक्रन्दत्फेरवचण्डधात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैः='घूत्कारा'न्तो भाग उत्तररामचरितेऽपि वर्तते । गुञ्जन्तः ( कूजन्तः, अव्यक्तशब्दं कुर्वन्तः ) कुञ्जकुटीरेषु (लतादिपिहितोदररूपाऽल्पस्थानेषु) ये कौशिकाः ( उलूकाः ) तेषां या घटा ( पङ्क्तिः ) तस्या घूत्कारेण ( 'घूत्' इत्याकारेण अव्यक्तशब्देन ) संवेल्लिता ( संवलिता ) क्रन्दतां ( शब्दं कुर्वताम् ) फेरवाणां ( शृगालानाम् ) चण्डी ( भयङ्करी, चण्डत इति, पचाद्यच् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीप्, अतः 'चण्डा' इति लिखन्तः परास्ता इति बोध्यम् ) या धात्कृतिः ( धात्करणं, धात्' इत्यव्यक्तशब्दप्रसारणमिति भावः। पुस्तकान्तरे 'डात्' इति पाठः । तथा भृतः ( पूरितः ) यः प्राग्भारः ( तटाग्रभागः ), तेन भीमानि ( भयङ्कराणि ) तैः । तटैः=तीरैः, उपलक्षितेति शेषः । एवं च अन्तःकीर्णकरङ्ककर्परतरत्संरोधिकूलङ्कषस्रोतोनिर्गमघोरघर्घररवा=अन्तः ( अभ्यन्तरे कीर्णाः ( क्षिप्ताः, 'शीर्णा' इति पाठे क्षीणा इत्यर्थः ) तादृशा ये करङ्काः ( मस्तकाः ) तेषां कर्पराः ( कपालाऽस्थीनि ), तेषु तरत् ( प्लवनं कुर्वत् ) अत एव संरोधि ( अवरोधकम् ) कूलङ्कषं ( तटभेदकं, कूलं कषतीति, 'सर्वकूलाऽभ्रकरीषेषु कषः' इति खच्, अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुम् ) यत् स्रोतः ( प्रवाहः ) तस्य निर्गमेण ( निःसरणेन ) घोरः ( भीषणः ) घर्घररवः ( घर्घररूपः शब्दः ) यस्याः सा । पारेश्मशानं=पितृवनस्य पारे, श्मशानस्य पारे, इति 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावः, एदन्तत्वनिपातश्च । पक्षे श्मशानपारे, महाविभाषया वाक्यमपि । सरित्=नदी, अस्तीति शेषः । स्वकार्यसिद्ध्यर्थं श्मशानाऽन्तं यावन्महामांसविक्रयाऽर्थं समागच्छतोऽपि

कुञ्जकुटीरमें अव्यक्त शब्द करानेवाली उलूकपङ्क्तिके 'घूत्' शब्दसे संवलित और शब्द करनेवाले स्यारोंका 'धात्' शब्दके प्रसारणसे पूरित तटके अग्रभागसे भयङ्कर तटों ( किनारों ) से उपलक्षित, भीतर फेंके गये शवमस्तकोंके कपालोंकी अस्थियोंमें प्लवन करते हुए अतएव अवरोधक तटभेदकप्रवाहके निकलनेसे भयङ्कर

( नेपथ्ये )

हा तात निष्करुण, एष इदानीं ते नरेन्द्रचित्ताराधनोपकरणं जनो विपद्यते। ( हा ताद णिक्करुण, एसो दाणिं दे णरेन्दचिताराहणाअअरणं जणो विपज्जइ )

माधवः ( साकूतमाकर्ण्य )

नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतार-
श्चित्ताकर्षी परिचित इव श्रोत्रसंवादमेति।

मम प्रयासनैष्फल्यं संभाव्यत इति भावः। अत्र 'कुञ्जकुटीरे'त्यत्र रूपकाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १९ ॥

नेपथ्य इति। निष्करुण = निर्दय। नरेन्द्रचित्ताऽऽराधनोपकरणं = भूपालमनः-सन्तोषकारणभूतः, न तु स्नेहाऽऽस्पदीभूतः, राजचित्ताऽनुरोधेन नन्दनाय दीयमानत्वादिति भावः। जनः = अहमिति भावः। विपद्यते = विपन्नो भवति। मालत्या वचनमिदम्। माधव इति। साऽऽकूतं = साऽभिप्रायम्।

नाद इति। विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः परिचित इव चित्ताकर्षी नादः श्रोत्रसंवादम् एति। अन्तः भिन्नं हृदयं भ्रमति। अङ्गम् अङ्गं विह्वलति। गात्रस्तम्भः गतिं स्खलयति। प्रकारः कः? एतत् किमित्यन्वयः। विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः = विकला ( भयोद्विग्ना ) या कुररी ( उत्क्रोशी, कुररजायेत्यर्थः 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीष्। 'उत्क्रोशकुररौ समौ' इत्यमरः ) तस्याः कूजितम् ( रुतम् ) इव, स्निग्धः ( मधुरः ) तारश्च ( अत्युच्चैश्च, आर्तत्वद्योतक इति भावः ) परिचित इव ( संस्तुत इव, पूर्वमनुभूत इवेत्यर्थः ), अत एव—चित्ताकर्षी = हृदयाऽऽकर्षणशीलः, चित्तमाकर्षतीति तच्छीलः, ताच्छील्ये णिनिः। एतादृशः नादः = शब्दः, श्रोत्रसंवादं = कर्णप्रत्यभिज्ञागोचरत्वमित्यर्थः। एति = प्राप्नोति, शार्दूलाक्रमणसमये मकरन्दविपत्तिविह्वलाया वल्लभाया मालत्या आर्तत्वद्योतको यादृशो ध्वनि-

'घर्घर' शब्दवाली नदी श्मशानके प्रान्तभागमें ( बह रही है ) ॥ १९ ॥

( नेपथ्यमें )

हा! पिताजी! निर्दय! आपके राजाके चित्तके आराधनका कारणभूत यह जन अभी विपद्ग्रस्त हो रहा है।

**माधव**—( अभिप्रायके साथ सुनकर ( विह्वल कुररी पक्षिणीके शब्दके सदृश मधुर और अत्यन्त ऊँचा, परिचितके सदृश चित्तको आकृष्ट करनेवाला शब्द

अन्तर्भिन्नं भ्रमति हृदयं विह्वलत्यङ्गमङ्गं
गात्रस्तम्भः स्खलयति गतिं कः प्रकारः किमेतत् ॥२०॥

करालायतनाच्चायमुच्चरन्करुणध्वनिः।
विभाव्यते ननु स्थानमनिष्टानां तदीदृशाम् ॥ २१ ॥

मया पूर्वाऽनुभूतः साम्प्रतं तादृश एव ध्वनिर्मदनुभूतिविषयो भवतीति भावः। तस्माच्च मालतीविपत्तिशङ्कया—अन्तः = मध्ये, भिन्नं = विदीर्णं सत्, हृदयं = हृत्, मदीयमिति शेषः। भ्रमति = अनवस्थितं भवति 'भ्रमु अनवस्थाने' इति धातोः 'वा भ्राश'त्यादिना श्यनभावपक्षे रूपम्। अङ्गम् अङ्गं = सर्वोऽप्यवयवसमूहः, विह्वलति = संचलति, कम्पत इति भावः। एवं च गात्रस्तम्भः = शरीरनिश्चेष्टत्वं, गतिं = गमनं, स्खलयति = स्खलितां करोति, रुणद्धीति भावः। पुस्तकान्तरे तु 'देहस्तम्भः, स्खलति च गति'रिति पाठस्तत्र देहस्तम्भः = शरीरनिश्चेष्टता, भवतीति शेषः। अत एव—गतिश्च = गमनं च, स्खलति = स्खलिता भवति, प्रतिबद्धा वर्तत इत्यर्थः। प्रकारः = आर्तनादोत्पत्तिविशेषः, कः = भवेदिति शेषः। किं मालत्या एव कथंचिद्विपत्त्यैवमार्तनादः कृतः स्यादाहोस्विदन्यस्य कस्यचिन्मायाविना करालायै देव्या उपहारीकर्तुमानीतया कयाचिद्योषितेति वितर्कः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥

करालायतनादिति। अयं करुणध्वनिः करालाऽऽयतनात् उच्चरन् विभाव्यते। ननु तत् ईदृशाम् अनिष्टानां स्थानमित्यन्वयः। अयं = साम्प्रतं जायमानः, करुणध्वनिः=शोकशब्दः, करालाऽऽयतनात् = करालायाः (काल्याः) आयतनात् (स्थानात्, मन्दिरादित्यर्थः), उच्चरन् = उद्गच्छन्, विभाव्यते = अनुमीयते। कुत एतदिति प्रतिपादयति-नन्विति। नन्विति निश्चये। तत् = पूर्वोक्तं, करालाऽऽयतनमिति भावः। ईदृशाम् = एतादृशानाम्, इदमिव दृश्यन्ते, तेषाम्। इदं शब्दात् 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति क्विन्प्रत्ययः सर्वापहारीलोपश्च, ततः 'इदं किमोरीश्की' इति इदंशब्दस्य ईशादेशः। अनिष्टानाम् = अनभीप्सितानां, जीवोपहारादिविषयाणामिति भावः। स्थानम् = आयतनं, वर्तते इति शेषः ॥ २१ ॥

र्णकी प्रत्यभिज्ञाका गोचर हो रहा है। अतएव मध्यमें विदीर्ण होता हुआ मेरा हृदय घूम रहा है। प्रत्येक अङ्ग कम्पित हो रहा है। शरीरकी निश्चेष्टता गतिको स्खलित कर रही है। आर्तनादका उत्पत्तिविशेष क्या है? और यह क्या है। ॥२०॥

यह शोकशब्द कराला (देवी) के मन्दिरसे उत्पन्न हो रहा है ऐसा अनुमान करता हूँ। निश्चय ही वह (करालामन्दिर) ऐसे अनिष्टोंका उद्गमस्थान है ॥ २१ ॥

भवतु। पश्यामि। ( इति परिक्रामति )

( ततः प्रविशतो देवतार्चनाव्यग्रौ कपालकुण्डलाघोरघण्टौ कृतवध्यचिह्ना मालती च )

**मालती**—हा तात निष्करुण, एष इदानीं ते नरेन्द्रचित्ताराधनोपकरणं जनो विपद्यते। हा अम्ब, हृदये हतासि दुर्वारदैवदुर्विलसितेन। हा मालतीमयजीविते, मम कल्याणसाधनैकसुखसकलव्यापारे भगवति कामन्दकि, चिरस्य ज्ञापितासि दुःखं स्नेहेन। हा प्रियसखि लवङ्गिके स्वप्नावसरमात्रदर्शनाहं ते संवृत्ता। ( हा ताद णिक्करुण, एसो दाणिं दे णरेन्दाचित्ताराहणोवअरणं जणो विपज्जइ। हा अम्ब, हिअए हदासि दुव्वारदेव्वदुव्विलसिदेण। हा मालदीम-

---

एवं विमृश्य कर्तव्यं निश्चिनोति—भवत्विति। भवतु = अस्तु, मयाऽभ्यूहितमिति शेषः। पश्यामि = विलोकयामि, आर्तनादोद्भवस्थानमिति शेषः।

देवताऽर्चनव्यग्रहस्तौ = देवतायाः ( देव्याः ) अर्चने ( पूजने ) व्यग्रौ ( आकुलौ ) व्यग्रहस्तौ इति पाठे ( व्यापृतपाणी )। कृतवध्यचिह्ना = कृतं ( विहितम् ) वध्यचिह्नं ( हन्तव्यजनलक्षणं रक्तमाल्यादिकमिति भावः ) यस्याः सा।

मालतीति। अम्ब = मातः !, 'अम्बाऽर्थनयोर्ह्रस्व' इति सम्बुद्धौ ह्रस्वत्वम्। 'स्नेहमयहृदये त्वमपि' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तस्य स्नेहमयं ( प्रचुरवात्सल्ययुक्तम् ) हृदयं ( चित्तम् ) यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ इत्यर्थः। दुर्वारदैवदुर्विलसितेन = दुर्वारं ( दुर्निवारणीयम् ) यत् दैवस्य ( भाग्यस्य ) दुर्विलसितं ( दुर्व्यापारः ), तेन। निष्करुणत्वान्मन्मरणेनाऽपि पिता न शोचनीयः परं वात्सल्यमयी जननी शोकाऽतिशयाज्जीवनं लघयतीति भावः। मालतीमयजीविते = मालतीमयं ( मालतीस्वरूपं, स्वरूपाऽर्थे मयट् ) जीवितं ( जीवनम् ) यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ। कल्याणसाधनैकसुखसकलव्यापारे = कल्याणसाधनम् ( मङ्गलाऽनुष्ठानं, परिणयरूपमिति भावः ) एव एकम् ( मुख्यम् ) यत् सुखम् ( आनन्दः, अभीष्टत्वादिति भावः ) तस्मिन्

---

हो। मैं देखता हूँ। ( ऐसा कहकर पादक्षेप करता है )।

( तब देवताकी पूजामें व्यग्र कपालकुण्डला तथा अघोरघण्ट और रक्तमाल्य आदि वध्यचिह्नसे युक्त मालती ये सब प्रवेश करते हैं। )

**मालती**—हा पिताजी! निर्दय! आपके राजाके चित्तके आराधनका कारणभूत यह जन अभी विपत्तिग्रस्त हो रहा है। हा माताजी! दुःखसे निवारणीय भाग्यके दुर्विलाससे हृदयमें आप आहत हैं। हा मालतीमयजीवनवाली! मेरे कल्याणसाधन-

अजीविदे, मह कल्लाणसाहणेक्कसुहसअलव्वावारे भअवदि कामन्दइ, चिरस्स जाणाविदासि दुक्खं सिणेहेण । हा पिअसहि लवङ्गिए, सिविणअवसरमेत्तदंसणा अहं दे संवुत्ता )

माधवः—हन्त, संप्रति निरस्त एव मे संदेहः तदपि नाम जीवन्तीमेनां संभावयेयमिति । ( झटिति परिक्रामति )

कापालिकौ—देवि चामुण्डे भगवति, नमस्ते ।

---

सकलाः ( सम्पूर्णाः ) व्यापाराः ( कर्माणि ) यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । चिरस्य = बहुकालं, 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिराऽर्थकाः ।' इत्यमरः । स्नेहेन = वात्सल्येन, ज्ञापिताऽसि = बोधिताऽसि, मयि स्नेह एव तव दुःखहेतुर्जात इति भावः । स्वप्नाऽवसरमात्रदर्शना = स्वप्नाऽवसरमात्रे ( स्वप्नसमय एव ) दर्शनं ( विलोकनम् ) यस्याः सा, मरणाऽन्तरमहं स्वप्नकाल एव तव लोचनगोचरीभविष्यामीति भावः ।

माधव इति । हन्त = खेदद्योतकमव्ययमिदम् । निरस्तः=निवृत्तः, एषा विलपन्ती ललना मालती स्यादिति या सम्भावना कृता सा कामन्दकीलवङ्गिकादिसम्बोधनश्रवणेन निश्चयरूपे परिणतेति भावः । एनां = मालतीं, संभावयेयं = संभावितां कर्तुं शक्नुयाम्, 'शकि लिङ् च' इति शक्याऽर्थे लिङ् । जीवनकाल एव मालतीं दर्शनभाषणरक्षणप्रयत्नव्यापारैर्यदि संभावयामि तदा मज्जीवनसाफल्यं स्यादित्याशंसा । अपि नामेति निपाताभ्यामपि सम्भावनौत्सुक्यं द्योत्यते ।

कापालिकाविति । कपालेन चरतीति 'चरति' इति ठञ् । कपालिकी च कापालिकश्च, 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः, कपालकुण्डलाऽघोरघण्टावित्यर्थः । 'अघोरघण्टकपालकुण्डले' इति पुस्तकान्तरपाठः । तत्र 'अभ्यर्हितं चे'ति गुरुत्वेनाऽभ्यर्हितत्वादघोरघण्टस्य पूर्वनिपातः । चामुण्डे=चण्डमुण्डनाशिनि—

'यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि ! भविष्यसी'ति ।

---

रूप एक आनन्दमें सब कर्म करनेवाली भगवति कामन्दकि । स्नेहने आपको बहुत समयतक दुःखका अनुभव कराया । हा प्रियसखि लवङ्गिके ! मै तुम्हारे स्वप्नके अवसरमें मात्र देखे जानेवाली हो गई हूँ ।

**माधव**—हाय ! इस समय मेरा सन्देह दूर ही हो गया है । क्या मैं जीती जागती मालतीको सम्भावित कर सकूँगा ! (झटपट चारों ओर पादक्षेप करता है ।)

**कापालिकी ( कपालकुण्डला ) और कापालिक ( अघोरघण्ट )**—देवि चामुण्डे भगवति ! आपको नमस्कार है ।

साऽवष्टम्भनिशुम्भसंभ्रमनमद्भूगोलनिष्पीडन-
न्यञ्चत्कर्परकूर्मकम्पविगलद्ब्रह्माण्डखण्डस्थिति ।
पातालप्रतिमल्लगल्लविवरप्रक्षिप्तसप्तार्णवं
वन्दे नन्दितनीलकण्ठपरिषद्व्यक्तं तव क्रीडितम् ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयपुराणीया चामुण्डापदनिरुक्तिः । ते=तुभ्यं, 'नमः' पदेन योगे 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्चे'ति चतुर्थी ।

कापालिकाभ्यां भगवतीस्तुतिः प्रतिपाद्यते—साऽवष्टम्भेति । साऽवष्टम्भनिशुम्भसंभ्रमनमद्भूगोलनिष्पीडनन्यञ्चत्कर्परकूर्मकम्पविगलद्ब्रह्माण्डखण्डस्थिति पातालप्रतिमल्लगल्लविवरप्रक्षिप्तसप्तार्णवं नन्दितनीलकण्ठपरिषद्व्यक्तं तव क्रीडितं वन्द इत्यन्वयः । साऽवष्टम्भनिशुम्भसंभ्रमनमद्भूगोलनिष्पीडनन्यञ्चत्कर्परकूर्मकम्पविगलद्ब्रह्माण्डखण्डस्थिति=अवष्टम्भेन ( दर्पेण ) सहितः साऽवष्टम्भो यो निशुम्भः ( नृत्यविशेषः ), तस्मिन् संभ्रमेण ( त्वरया, 'निर्भरे'ति पाठे निर्भरम्=अतिमात्रं यथा ( स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् ) नमत् ( नीचैर्भवत् ) यत् भूगोलं ( पृथिवीमण्डलम् ) तस्य निष्पीडनेन ( अतिव्यथनेन ) न्यञ्चन् ( अवनमन् ) कर्परः ( पृष्ठाऽस्थिकटाहः ) यस्य तादृशस्य कूर्मस्य ( कच्छपस्य, भूगोलधारकस्येति शेषः ), कम्पेन ( वेपथुना ) विगलन्ती ( भ्रश्यन्ती ) ब्रह्माण्डखण्डस्य (भुवनकोषशकलस्य) स्थितिः ( संस्थानम् ) यस्मिंस्तत्, एतेन भूकम्पः उक्तः । पातालप्रतिमल्लविवरप्रक्षिप्तसप्ताऽर्णवं=पातालस्य ( रसातलस्य ) प्रतिमल्ले ( प्रतिभटे ) ये गल्लविवरे ( कपोलरन्ध्रे ) तयोः प्रक्षिप्ताः ( प्रेरिताः ) सप्त ( सप्तसंख्यकाः ) अर्णवाः (समुद्राः) यस्मिंस्तत् । एवं नन्दितनीलकण्ठपरिषद्व्यक्तं=नन्दितः ( आनन्दितः, तादृशनृत्यदर्शनेनेति शेषः ) यो नीलकण्ठः ( महादेवः ), तस्य परिषदि ( सभायाम् ) व्यक्तम् ( स्फुटं, प्रसिद्धमित्यर्थः ) । तादृशं तव=भवत्याः, क्रीडितं=क्रीडां, लास्यात्मकं नृत्यमिति भावः । वन्दे=अभिवादये । अत्र 'पातालप्रतिमल्ले'ति कथनादुपमाऽलङ्कारः । वाच्यस्य समुद्धतत्वान्न दुःश्रवत्वदोषः । गल्लपदस्य कपोलवाचकत्वेऽपि वेदविरोधिभ्यामधमाभ्यामुक्तत्वात् 'ग्राम्यत्वमधमोक्तिषु' इति साहित्यदर्पणाच्च ग्राम्यत्वदोषः । निशुम्भनृत्यलक्षणं यथाह भरताऽऽचार्यः—

'उत्क्षिप्ता तु भवेत्पार्ष्णिर्निशुम्भोऽयं निगद्यते ।

दर्पसे युक्त निशुम्भ नामक नृत्यविशेषमें शीघ्रतासे नीचे झुकनेवाले पृथिवीमण्डलके निष्पीडनसे जिसकी पीठको हड्डी अवनत हो रही है ऐसे कच्छप ( कछवे ) के कम्पसे जिसमें ब्रह्माण्डकी स्थिति भ्रष्ट होने जा रही है, पातालके सदृश कपोलच्छिद्रोंमें जिसमें सात समुद्र प्रेरित किये गये हैं, आनन्दित नीलकण्ठ

अपि च—

**प्रचलितकरिकृत्तिपर्यन्तचञ्चन्नखाघातभिन्नेन्दुनिष्यन्दमानामृत-**
**श्च्योतजीवत्कपालावलीमुक्तचण्डाट्टहासत्रसद्भूरिभूतप्रवृत्तस्तुति ।**

---

अङ्गुल्योऽप्राञ्चिताः सर्वाः पादाऽप्रतलसञ्चरे ॥' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २२ ॥

प्रचलितेति । हे देवि ! प्रचलितकरिकृत्तिपर्यन्तचञ्चलाघातभिन्नेदुनिष्यन्दमानाऽमृतश्च्योतजीवत्कपालाऽऽवलीमुक्तचण्डाट्टाहासत्रसद्भूरिभूतप्रवृत्तस्तुति । श्वसदसितभुजङ्गभोगाऽङ्गदग्रन्थिनिष्पीडनोत्फुल्लफुल्लत्फणापीठनिर्यद्विषज्योतिरुज्जृम्भणोड्डामरव्यस्तविस्तारिदोःखण्डपर्यासितक्ष्माधरं ज्वलदनलपिशङ्गनेत्रच्छटाभारभीमोच्चमाऽङ्गभ्रमिप्रस्तुताऽलातचक्रक्रियास्यूतदिग्भागम् उत्तुङ्गखट्वाङ्गध्वजोद्धूतिविक्षिप्ततारागणं प्रमुदितकटपूतनोत्तालवेतालतालस्फुटत्कर्णसंभ्रान्तगौरीघनाऽऽश्लेषहृष्यन्मनस्त्र्यम्बकानन्दि वः ताण्डवं नः अरिष्टयै हृष्टयै च भूयादित्यन्वयः। हे देवि=हे भगवति चामुण्डे !, प्रचलितेत्यादि=प्रचलिता ( विक्षिप्ता, अङ्गविक्षेपसंभ्रमवशादिति शेषः ) या करिकृत्तिः ( हस्तिचर्म, उत्तरीयभूतमिति शेषः ) तस्याः पर्यन्ते ( प्रान्तदेशे ) चञ्चन्तः ( चञ्चलाः ) ये नखाः ( नखराः ) तेषाम् आघातेन ( प्रहारेण ) भिन्नात् ( विदीर्णात् ) इन्दोः ( चन्द्रात् ) निष्पन्दमानम् ( प्रस्रवत्, निपूर्वकात्, 'स्यन्दू प्रस्रवणे' इति धातोर्लटः शानच् । 'अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु' इति सस्य षो वो ) यत् अमृतं ( पीयूषम् ) तस्य श्च्योतेन ( क्षरणेन ) जीवतां ( लब्धजीवनानाम् ) कपालानाम् ( कर्पराणां, मौलिमाल्यग्रथितानामिति शेषः ) या आवली ( पङ्क्तिः ) तया मुक्ताः ( त्यक्ताः ) चण्डाः ( भयङ्कराः ) ये अट्टहासाः ( अत्युच्चहसनानि, देवीनृत्यदर्शनादिति शेषः ) तेभ्यः त्रसद्भ्यः ( विभ्यद्भ्यः ) भूरिभूतेभ्यः ( प्रचुरप्रमथेभ्यः ) प्रवृत्ता ( आरब्धा ) स्तुतिः ( स्तवः ) यस्मिंस्तत्,

---

( महादेवजी ) की सभामें प्रसिद्ध ऐसी तुम्हारी क्रीड़ा ( लास्यात्मक नृत्य ) को अभिवादन करता हूँ ॥ २२ ॥

फिर भी—

हे देवि ! ( नृत्यमें ) अङ्गविक्षेप संभ्रमसे विक्षिप्त उत्तरीय हस्तिचर्मके प्रान्तदेशमें चञ्चल नाखूनोंके आघातसे विदीर्ण चन्द्रमासे चूते हुए अमृतके क्षरणसे जीवनको प्राप्त करनेवाले मुण्डमालामें ग्रथित कपालोंकी पङ्क्तिसे छोड़े गये अट्टहासोंसे डरनेवाले प्रचुर प्रमथोंकी स्तुतिका आरम्भ जिस ( नृत्य ) में हो रहा है ( प्रथम-

श्वसदसितभुजङ्गभोगाङ्गदग्रन्थिनिष्पीडनोत्फुल्लफुल्लत्फणापीठनि-
र्यद्विषज्योतिरुज्जृम्भणोड्डामरव्यस्तविस्तारिदोःखण्डपर्यासितक्ष्माधरम् ॥
ज्वलदनलपिशङ्गनेत्रच्छटाभारभीमोत्तमाङ्गभ्रमिप्रस्तुतालातचक्र-
क्रियास्यूतदिग्भागमुत्तुङ्गखट्वाङ्गशृङ्गध्वजोद्धूतिविक्षिप्ततारागणम् ।

ताण्डवविशेषणमेतत् । एवमुत्तरत्रापि । श्वसदसितेत्यादि = श्वसन्तः ( श्वासं मुञ्चन्तः, देवीताण्डवाऽऽडम्बराऽऽयासेनेति शेषः ) असिताः ( कृष्णवर्णाः ) ये भुजङ्गाः ( सर्पाः ) तेषां भोगैः ( शरीरैः ) ये अङ्गदग्रन्थयः ( केयूरबन्धनानि ) तेषां निष्पीडनेन ( उद्धर्षणेन, ताण्डवसंघर्षणादिति शेषः ), उत्फुल्लाः ( विशालाः, 'स्फारम्' इति पाठे विकटं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् ) फुल्लन्ति (विकसन्ति) यानि फणापीठानि = ( स्फटामण्डलानि ) तेभ्यो निर्यतः ( निर्गच्छतः ) विष-ज्योतिषः ( गरलतेजसः ) यत् उज्जृम्भणं ( उद्वर्धनम् ) तेन उड्डामराणां ( भयङ्करा-णाम् ) व्यस्तानां ( विक्षिप्तानाम्) विस्तारिणां ( प्रसारिणाम् ) दोष्णां ( बाहूनाम्, 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः ) खण्डेन ( समूहेन ) पर्यासिताः (परितो विक्षिप्ताः) क्ष्माधराः ( पर्वताः ) यस्मिंस्तत् । ज्वलदनलेत्यादि = ज्वलता ( ज्वलनं कुर्वता ) अनलेन ( अग्निना ) पिशङ्गं ( पिङ्गलम् ) यत् नेत्रं ( नयनं, ललाटलोचनमित्यर्थः ) तस्य छटाः ( रश्मिप्रवाहाः ) तासां भारेण ( समूहेन ) 'आच्छन्ने'ति पाठे छटाभिः आच्छन्नम् ( व्याप्तम् ), 'साटे'ति पाठे छटानां साटेन ( विस्तारेणेत्यर्थः, 'साटो निकुञ्जे विस्तारे' इति विश्वः ), भीमं ( भयङ्करम् ) यत् उत्तमाङ्गं ( शिरः ) तस्य भ्रमिः ( मण्डलाऽऽकारेण भ्रमणम् ) तया प्रस्तुता ( प्रवृत्ता ) या अलातचक्रक्रिया ( वह्निप्रज्वलितकाष्ठस्य चक्राऽऽकारकर्म ) तया स्यूताः ( ग्रथिताः, एकत्र प्रतिबद्धा इवेति भावः ) दिग्भागाः ( दिङ्मण्डलानि ) यस्मिंस्तत् । एवं च उत्तुङ्गखट्वाङ्ग-शृङ्गध्वजोद्धूतिविक्षिप्ततारागणम् = उत्तुङ्गस्य ( उन्नतस्य ) खट्वाङ्गस्य ( आयुध-विशेषस्य ) शृङ्गं ( शिखरम् अग्रमित्यर्थः ) ध्वजः (वैजयन्ती) इव, तस्य उद्धूत्या

चरण ) ताण्डवके आडम्बरके आयाससे श्वास छोड़नेवाले कृष्णवर्णवाले सर्पोंके शरीरोंसे केयूरबन्धनोंके निष्पीडनसे विशाल और विकसित होनेवाले फणापीठोंसे निकलते हुए विषतेजके उद्वर्धनसे भयङ्कर, व्यस्त और फैलनेवाला भुजाओंके समूहसे पर्वत चारों ओर फेंके गये हैं ( द्वि० च० ) जलते हुए अग्निसे पीले नेत्रके किरणप्रवाहोंके समूहसे भयङ्कर शिरके मण्डलाकारवाला भ्रमण अग्निप्रज्वलित काष्ठकी चक्राकार क्रियाके सदृश मालूम हो रहा है उससे दिङ्मण्डल गुम्फितकी तरह विदित हो रहे हैं, ध्वजके सदृश उन्नत खट्वाङ्ग (आयुधविशेष) के अग्रभागके

प्रमुदितकटपूतनोत्तालवेतालतालस्फुटत्कर्णसंभ्रान्तगौरीघना-
श्लेषहृष्यन्मनस्त्र्यम्बकानन्दि वस्ताण्डवं देवि भूयादरिष्ट्यै च हृष्ट्यै च नः ॥

( इत्यभिनयतः )

माधवः--( विलोक्य ) हा ! धिक् प्रमादम् ।

---

( उद्धूननेन ) विक्षिप्ताः ( विशीर्णाः ) तारागणाः ( नक्षत्रसमूहाः ) यस्मिंस्तत् । प्रमुदितेत्यादि = एवं च—प्रमुदिताः ( हर्षयुक्ताः, तादृशताण्डवदर्शनेनेति शेषः ) ये कटपूतनाः ( पिशाचविशेषाः ) तथा उत्तालाः ( प्रचण्डाः ) ये वेतालाश्च ( पिशाचभेदाश्च ) तेषां तालैः ( करतलद्वयास्फालनैः, कालक्रियामानार्थमिति भावः ) स्फुटन्तौ ( विदीर्यमाणौ ) कर्णौ ( श्रोत्रे ) यस्याः सा, अत एव सम्भ्रान्ता ( त्रसन्ती सत्वरा वा ) या गौरी ( पार्वती ) तस्याः घनाऽऽश्लेषेण ( गाढालिङ्गनेन ) हृष्यत् ( प्रसीदत् ) मनः ( चित्तम् ) यस्य सः, एतादृशो यः त्र्यम्बकः ( महादेवः ) तम् आनन्दयतीति = प्रसादयतीति, एतादृशं, वः = युष्माकम्, आदरार्थं बहुवचनम् । ताण्डवम् = उद्धतनृत्यं, न अस्माकम्, अरिष्ट्यै = अशुभाऽभावाय, अनेन भाव्यनिष्टार्थसूचकदण्डोऽप्युक्तः । यदाह—

'आकस्मिकमसम्बद्धं समर्थमिव यद्भवेत् ।
वाचामन्ते स दण्डः स्याद्भाव्यनिष्टार्थसूचकः ॥' इति ।

'अभीष्ट्यै' इति पाठान्तरं तस्य अभीष्टसिद्ध्यै इत्यर्थः । एवं च—हृष्ट्यै च = हर्षाय च, भूयात् = भवतादित्याशीर्वचनम् । अत्राऽलातचक्रक्रियेत्यत्र खट्वाङ्गश्रृङ्गध्वजेत्यत्र चोपमा । वाच्यस्य समुद्धतत्वाद्दुःश्रवत्वस्य दूषकत्वं न भूषकत्वमेव ॥

माधव इति । मालतीमेव वधाऽर्थमानीतां दृष्ट्वा खेदं प्रकाशयति—हा धिगिति । हा = मालतीमिति शेषः । मालत्याः शोच्यत इति भावः । प्रमादं धिक् = अनवधानताया निन्दा इत्यर्थः । मालतीरक्षणे पित्रादीनामिति शेषः । धिग्योगे प्रमादपदात्—

'उभयसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्राऽपि दृश्यते ॥' इति द्वितीया ।

---

उत्कम्पसे तारागण विशीर्ण हो गये हैं ( तृ० च० ) ( नृत्यमें ) हर्षयुत कटपूतना नामके पिशाचविशेष और प्रचण्ड वेतालके तालोंसे विदीर्ण होनेवाले कर्णोंसे युक्त अतएव डरनेवाली वा शीघ्रता करनेवाली पार्वती गाढ़ आलिङ्गनसे प्रसन्न चित्तवाले महादेवको आनन्दित करनेवाला ऐसा आपका ताण्डव हे देवि ! हम लोगोंके अशुभके अभावके लिए और हर्षके लिए हो ( च० च० ) ॥ २३ ॥

( इस प्रकार स्तोत्र-पाठकर अभिनय करते हैं । )

माधव--( देखकर ) हाय ! प्रमादको धिक्कार है ।

न्यस्तालक्तकरक्तमाल्यवसना पाषण्डचण्डालयोः
पापारम्भवतोर्मृगीव वृकयोर्भीरुर्गता गोचरम् ।

खेदं द्योतयति—न्यस्तालक्तकेति । न्यस्ताऽलक्तकरक्तमाल्यवसना वसोरिव भूरिवसोः सुता भीरुः सा इयं वृकयोः मृगी इव पापाऽऽरम्भवतोः पाषण्डचण्डालयोः गोचरं गता ( सती ) मृत्योः मुखे वर्तते । हा धिक् ! कष्टम्, अनिष्टम् । अशरणशरणः विधेः कः अयं क्रमः इत्यन्वयः । न्यस्ताऽलक्तकरक्तमाल्यवसना = न्यस्ते ( अर्पिते, अघोरघण्टकपालकुण्डलाभ्यामिति शेषः ) अलक्तकरक्ते ( लाक्षारागरञ्जिते ) माल्यवसने ( मालावस्त्रे ) यस्याः सा । 'राक्षा लाक्षा जतु क्लीबे यावोऽलक्तो द्रुमाऽऽमयः ।' इत्यमरः । वसोरिव = ध्रुवादेरिव, वसवश्च गणदेवताविशेषाः । ते चाऽष्टसंख्यकाः, यथाऽऽह भरतः—

'धरो ध्रुवश्च सोमश्च विष्णुश्चैवाऽनिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ क्रमात्स्मृताः ॥' इति ।

यद्वा वसोरिव = अग्नेरिव, तेजस्विन इति भावः । भूरिवसोः = भूरिवसुनामधेयस्य मन्त्रिणः, सुता = तनया, भीरुः = भयशीला, स्वभावत एवेति शेषः । 'भियः क्रुक्लुकनौ' इति क्रुप्रत्ययः । सा = पूर्वदृष्टा, इयं = संनिकृष्टस्था, मालतीति भावः । वृकयोः = ईहामृगयोः, वृकी च वृकश्च वृकौ, तयोः । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः । 'कोकस्त्वीहामृगो वृक' इत्यमरः । मृगी इव = हरिणी इव, पापारम्भवतोः = अधर्माऽऽचारोपक्रमकारिणोः, पापारम्भोऽस्ति अनयोः इति पापाऽऽरम्भवन्तौ, तयोः । 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इति मतुप् मस्य 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य' इति वः । अत्र पाप आरम्भो ययोस्तौ पापाऽऽरम्भौ तयोः, इति बहुव्रीहिणैव 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर' इति न्यायादर्थसिद्धावपि षष्ठीतत्पुरुषान्तान्मतुब्विधानं पापाऽऽरम्भस्य नित्ययोगद्योतनाऽर्थमवधेयम् । 'प्रक्रमः स्यादुपक्रमः । स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः' इत्यमरः । पाषण्डचण्डालयोः = पाषण्डौ ( वेदधर्मखण्डकौ, अवध्यास्तु समाख्याताः सर्वयोनिगताः स्त्रियः ।' इति वचनमुल्लङ्घ्य वामाऽऽचारपरायणत्वादिति भावः ) अत एव चण्डालौ ( चण्डालसदृशौ, क्रूरकर्मत्वादिति भावः ), तयोः । ( ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातश्चण्डालः । क्वचिद् 'चाण्डाल' इति पाठस्तत्र 'चाण्डालोऽपि च चाण्डाल' इति द्विरूपकोशः प्रमाणम् ।

अलक्तक (लाक्षाराग)से रक्त (लाल) माला और वस्त्र पहनाई गई ध्रुव आदि वसुके सदृश भूरिवसुकी कन्या डरपोक यह वह ( मालती ), मादा और नर दो

सेयं भूरिवसोर्वसोरिव सुता मृत्योर्मुखे वर्तते
हा धिक्कष्टमनिष्टमस्तकरुणः कोऽयं विधेः प्रक्रमः ॥ २४ ॥

कपालकुण्डला—

तं भद्रे ! स्मर दयितोऽत्र यस्तवाभू-
दद्य त्वां त्वरयति दारुणः कृतान्तः ।

गोचरं=विषयं, गता ( प्राप्ता ) सती, मृत्योः=यमस्य, 'मृत्युर्ना मरणे यमे' इति मेदिनी। मुखे=आनने, वर्तते=विद्यते। हा=मालतीम् इति शेषः। मालत्याः शोच्यत इत्यर्थः। धिक्=मृत्युमिति शेषः, यमस्य निन्देत्यर्थः। कष्टं=दुःखम्, आपतितमिति शेषः। कष्टं=दुःखम्, आपतितमिति शेषः। अनिष्टम्=अनभीप्सितं सहृदयानामिति शेषः। अस्तकरुणः=दयारहितः, विधेः=भाग्यस्य कः, अयं=निकटस्थः, प्रक्रमः=आरम्भः, कुसुमकोमलाया मालत्या हननात्मकः कोऽयं करुणाविवर्जितो दैवप्रक्रम इति भावः। अत्र विशेषणानां सोऽभिप्रायत्वात्परिकराऽलङ्कारः। 'मृगीव' 'वसोरिवे'त्यत्र स्थानद्वये उपमाद्वयं तथा चैतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। अत्र हा धिक् कष्टमनिष्टमिति पदानामवतीवाऽर्थभेदाऽभावेऽपि अनुकम्पाखेदाऽतिशयद्योतनाऽर्थं प्रयुज्यमानत्वान्न पौनरुक्त्यं प्रत्युत गुण एवेत्यवधेयम् ॥ २४ ॥

कपालकुण्डलेति। हे भद्रे! तव यो दयितः अभूत्। अत्र तं स्मर। अद्य दारुणः कृतान्तः त्वां त्वरयति इति पूर्वार्द्धाऽन्वयः। हे भद्र=हे कल्याणि, तव=भवत्याः यः, दयितः=वल्लभः, अभूत्=आसीत्। अत्र=अस्मिन् समये, मरणकाल इति भावः, तं=दयितं स्मर=चिन्तय, मदुपहरणाद्धेतोर्यस्य वल्लभस्य प्राप्तिर्न जाता मरणकाले तस्य स्मरणाज्जन्मान्तरे—

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावितः॥'

इति वचनान्तं प्राप्स्यसीति भावः। यतः अद्य=अस्मिन्समये, दारुणः, भीषणः, कृतान्तः=यमः, त्वां=भवतीं, त्वरयति=त्वरां करोति, स्वां नगरीं प्रापयितुमिति शेषः। अस्य पद्यस्योत्तरार्द्धभागस्त्वघोरघण्टेन पूर्यते। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

भेड़ियोंके सामने मृगीकी तरह पापजनक कर्मका आरम्भ करनेवाले वेदधर्मखण्डक चण्डालोंके सदृश क्रूरोंके पंजेमें पड़कर मृत्यु ( मौत ) के मुखमें वर्तमान है। हाय! धिक्कार, कष्ट है, अनिष्ट है। भाग्यका दयाशून्य यह कौन-सा आरम्भ है ? ॥२४॥

कपालकुण्डला—हे कल्याणि! तुम्हारा जो प्रिय था इस समय उसकी याद ( स्मरण ) करो। क्योंकि आज भीषण मृत्यु तुम्हें त्वरा कर रहा है।

मालती—हा देव माधव, परलोकगतोऽपि युष्माभिः स्मर्तव्योऽयं जनः। न खलु स उपरतो यस्य वल्लभः स्मरति। ( हा देव्व माहव, परलोअगदो वि तुम्हेहिं सुमरिदव्वो अअं जणो। ण हु सो उवरदो जस्स वल्लहो सुमरेदि )

कपालकुण्डला—हन्त, माधवानुरक्तेयं तपस्विनी।

अघोरघण्टः—( शस्त्रमुद्यम्य )

चामुण्डे ! भगवति ! मन्त्रसाधनादा-
वुद्दिष्टामुपनिहितां भजस्व पूजाम् ॥ २५ ॥

मालतीति। देव=मम इष्टदेवतास्वरूप !, पुस्तकान्तरे तु 'दइअ णाह ( दयित नाथ )' इति पाठः। अयं जनः=अहमिति भावः। किमर्थं स्मर्तव्य इत्यत आह—न खल्विति। सः=जनः, न उपरतः=न मृतः, वल्लभः=प्रियः, यस्य=यं जनमिति भावः, 'स्मरती'ति पदेन योगे 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति कर्मणि षष्ठी। कान्तस्मरणभाजनस्य जनस्य निरन्तरं तन्मनसि स्थितेर्नोपरतिरिति भावः।

कपालकुण्डलेति। हन्त=खेदद्योतकमव्ययमिदम्। तपस्विनी=शोचनीया। मालत्या वल्लभो माधवो महामांसविक्रयाऽर्थं श्मशाने पर्यटति स दैवयोगादापत्येनां मोचयेद्यदि तर्हि मन्त्रसाधनप्रत्यूहः संभवेदिति हेतुनाऽयं खेदो बोध्यः।

अघोरघण्ट इति। शस्त्रं=खड्गम्, 'शक्तिम्' इति पाठान्तरम्, उद्यम्य=उद्गूर्य, अतः परं 'यदस्तु व्यापादयामी'त्यधिकं पाठान्तरम्। व्यापादयामि=हन्मि।

चामुण्डे इति। हे चामुण्डे ! हे भगवति ! मन्त्रसाधनादौ उद्दिष्टाम् उपनिहितां पूजां भजस्वेत्यन्वयः। हे चामुण्डे=हे चण्डमुण्डनाशिनि, हे भगवति=हे ऐश्वर्यसम्पन्ने देवि !, मन्त्रसाधनादौ=मन्त्रसाधनस्य ( पुरश्चरणस्य ) आदौ ( आरम्भसमये ) उद्दिष्टां='स्त्रीरत्नं समर्पयिष्ये' इति संकल्पिताम्, उपनिहितां=समर्पितां, पूजां=सपर्यां, स्त्रीरत्नोपहाररूपां, भजस्व=स्वीकुर्विति भावः। अस्य श्लोकस्य पूर्वार्द्धभागः कपालकुण्डलयोक्तः ॥ २५ ॥

मालती—हा देव माधव ! इस व्यक्तिके ( मेरे ) परलोकमें जानेपर भी आपको स्मरण करना चाहिए। प्रिय जिसकी याद करता है वह मृत नहीं है।

कपालकुण्डला—खेद है कि शोचनीय यह ( मालती ) माधवमें अनुरक्त है।

अघोरघण्ट—( शस्त्र उठाकर )

हे चामुण्डे ! हे भगवति ! पुरश्चरणके आरम्भसमयमें संकल्पित और समर्पित पूजाको स्वीकार कीजिए ॥ २५ ॥

माधवः—( सहसोपसृत्य खड्गं प्रकोष्ठेन निक्षिप्य ) आः कापालिकापसद दुरात्मन्, अपेहि । प्रतिहतोऽसि ।

मालती—(सहसावलोक्य) परित्रायतां महाभागः । (इति माधवमालिङ्गति) ( परित्ताअदु महाभाओ )

माधवः—महाभागे, न भेतव्यम् ।

मरणसमये त्यक्ताशङ्कं प्रलापनिरर्गल-

---

'इति हन्तुमुपक्रान्त' इति पुस्तकान्तरस्याधिकः पाठः ।

माधव इति । उपसृत्य = उपसरणं कृत्वा, प्रकोष्ठेन = मणिबन्धकूर्पराऽन्तरभागेन । खड्गम् = उद्यतमघोरघण्टस्य करवालं, निक्षिप्य = अपसार्य । 'प्रकोष्ठे मालतीं निक्षिप्ये'ति पुस्तकान्तरपाठः । तत्र निक्षिप्येत्यस्य गृहीत्वेत्यर्थः । आः = कोपद्योतकोऽयं निपातः । कापालिकाऽपसद = कापालिकेषु अपसद = नीच, 'निहीनोऽपसदो जाल्मः क्षुल्लकश्चेतरश्च सः ।' इत्यमरः । दुरात्मन् = दुष्टस्वभाव, दुष्ट आत्मा यस्य सः तत्सम्बुद्धौ । 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च ।' इत्यमरः । अपेहि= अपसर, प्रतिहतोऽसि=वैपरीत्येन त्वमेव हतोऽसीति भावः । पुस्तकान्तरे तु 'दुरात्मन् ! एष प्रतिहतोऽसि कापालिकाऽपसद ! नन्वयं न भवसी'ति पाठः ।

मालतीति । परित्रायतां = रक्ष, परिपूर्वकात् 'त्रैङ् पालने' इति धातोर्लोट् । 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' इत्यात्मनेपदम् । आलिङ्गति = आश्लिष्यति ।

माधव इति । न भेतव्यं = भयं न कर्तव्यम्, अहं रक्षामीति भावः । 'ञिभी भये' इति धातोः 'तव्यतव्याऽनीयर' इति तव्यप्रत्ययः ।

मरणसमय इति । मरणसमये त्यक्ताऽऽशङ्कं प्रलापनिरर्गलप्रकटितनिजस्नेहः सः अयं ते सखा पुर एव । हे सुतनु ! उत्कम्पं विमुञ्च । सम्प्रति इव असौ पापः प्रतीपविपाकिनः पाप्मनः उग्रं फलम् अनुभवति इत्यन्वयः । मरणसमये=मृत्युकाले, तवेति शेषः । त्यक्ताऽऽशङ्कं=त्यक्ता ( मुक्ता ) आशङ्का ( संशयः ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । प्रणयद्योतकेन 'हा देव माधव !' इत्यादिवाक्य-

---

माधव—( सहसा समीप जाकर प्रकोष्ठसे खड्गको लेकर ) ओः अधम कापालिक ! दुष्टस्वभाव ! हटो । वैपरीत्यसे तुम ही प्रतिहित हो ।

मालती—( सहसा देखकर ) महाभाग मेरी रक्षा करें । ( ऐसा कहकर माधवको आलिङ्गन करती है । )

माधव—महाभागे ! मत डरो ।

मृत्युके समयमें आशङ्का छोड़कर किये गये प्रलापके सुननेसे निष्प्रतिबन्ध-

प्रकटितनिजस्नेहः सोऽयं सखा पुर एव ते ।
सुतनु ! विसृजोत्कम्पं संप्रत्यसाविह पाप्मनः
फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः ॥ २६ ॥

अघोरघण्टः—आ ! क एष पापोऽस्माकमन्तरायः संवृत्तः ।

कपालकुण्डला—भगवान्, स एवास्याः स्नेहभूमिः कामन्दकीसुहृत्पुत्रो महामांसस्य पणयिता माधवः ।

प्रयोगेण जनाः किं संभावयिष्यन्तीत्याशङ्कां त्यक्त्वेति भावः । 'शङ्कां त्यक्त्वे'ति पुस्तकान्तरपाठः । प्रालापनिर्गलप्रकटितनिजस्नेहः=प्रलापेन '( हा देव ! माधव !!' इत्यादिनाऽनर्थकेन वचनेन ) निरर्गलं ( निष्प्रतिबन्धं यथा तथा ) प्रकटितः ( प्रकाशितः ) निजस्नेहः ( स्वप्रणयः ) येन सः । सः = पूर्वदृष्टः, मदनोद्यान इति शेषः, अयं=सन्निकृष्टस्थः, त्वद्विपत्काल इति शेषः, प्रत्यभिज्ञेयम् । ते=तव, सखा = प्रणयी, पुर एव = अग्र एव, वर्तत इति शेषः । अतः हे सुतनु = हे सुन्दरि, उत्कम्पं=वेपथुं, मरणभयजनितमिति भावः । विसृज=परित्यज । सम्प्रति=अधुना, इह = अस्मिन् स्थाने, 'इदमो ह' इति हप्रत्ययः, 'इदम इश्' इति इशादेशः । असौ= अयं, पापः=पापाचारः, अघोरघण्ट इत्यर्थः । प्रतीपविपाकिनः = विपरीतपरिणामयुक्तस्य, प्रतीपः ( प्रतिकूलः ) विपाकः ( परिणामः ) अस्याऽस्तीति तस्य, 'अत इनिठनौ' इतीनिप्रत्ययः । तादृशस्य पाप्मनः = पापाचरणस्य उग्रं = भयङ्करं, फलं= परिणामं, मरणरूपमिति शेषः । अनुभवति=अनुभविष्यति, 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् । अहमेवेमं हनिष्यतो भयं परित्यजेति भावः । अत्र वाक्याऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ॥ २६ ॥

अघोरघण्ट इति । आः=इदं कोपद्योतकमव्ययम् । पापः=दुराचारः, शास्त्रीयकर्मणि प्रतिबन्धाचरणादिति भावः । अन्तरायः = विघ्नरूपः, बलिदानरूपे कर्मणीति शेषः । 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः ।

कपालकुण्डलेति । सः = अयम् । अस्याः = मालत्याः, स्नेहभूमिः = प्रेमपात्रम् ।

रूपसे अपने प्रेमको प्रकाशित करनेवाला वह यह तुम्हारा प्रणयी सामने ही है । हे सुन्दरी ! कम्पका परित्याग करो । इस समय यहांपर यह पापी विपरीत परिणामवाले पापके भयङ्कर फलका अनुभव करेगा ॥ २६ ॥

अघोरघण्ट—ओः ! यह कौन पापी हमलोगोंके पुण्यकर्ममें विघ्नरूपसे उपस्थित हुआ है ?

कपालकुण्डला—भगवान् ! कामन्दकीके मित्र ( देवराज ) का पुत्र,

माधवः—( सास्रम् ) महाभागे किमेतत् ?

मालती—( चिरादाश्वस्य ) महाभाग, अहमपि न जानामि । एतावज्जानामि । उपर्यलिन्दमेव प्रसुप्तेह प्रतिबुद्धास्मि । यूयं पुनः क्व । ( महाभाअ, अहं वि ण जाणामि एत्तिअं जाणामि । उवरिअलिन्दं जेव्व पसुत्ता इह पडिबुद्धम्हि । तुम्हे उण कहिं )

माधवः—( सलज्जम् )

त्वत्पाणिपङ्कजपरिग्रहधन्यजन्मा

---

महामांसस्य = नरमांसस्य, 'पणयिते'ति कृदन्तपदेन योगे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी । पणयिता = व्यवहर्ता, विक्रेता इत्यर्थः । श्मशाने महामांसस्य विक्रेतृत्वादयं माधवो महाशौर्यसम्पन्नः, अतोऽनुपेक्षणीय इति भावः ।

माधव इति । सास्रं=साश्रुविसर्गमिति भावः । सास्रत्वं चाऽऽनन्दविषादाभ्यां बोद्धव्यम् । किं = जातमिति शेषः । कथं त्वमेतयोर्वशवर्तिनी संजातेति भावः ।

मालतीति । उपर्यलिन्दम् = अलिन्दस्य ( प्रघाणस्य, बहिर्द्वारप्रकोष्ठकस्येत्यर्थः ) उपरि ( ऊर्ध्वदेशे ) । 'प्रघाणप्रघणाऽलिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके ।' इत्यमरः । प्रसुप्ता-निद्राणा, अभूवमिति शेषः । साम्प्रतं च, इह = श्मशाने । प्रतिबुद्धा = जागरिता । कथमत्राऽहमागतेति नो जानामीति भावः । यूयं = त्वमित्यर्थः, आदरार्थं बहुत्वम् । क्व = कस्मिन्, निमित्ते, समायता इति शेषः ।

माधव इति । सलज्जं=सव्रीडं, लज्जा च महामांसविक्रेतृत्वाद्बोध्या ।

त्वत्पाणीति । हे भीरु ! त्वत्पाणिपङ्कजपरिग्रहधन्यजन्मा भूयासम् इत्यभिनिवेशकदर्थ्यमानः नृमांसपणनाय परेतभूमौ भ्राम्यन् तव रुदितानि आकर्ण्य समागतः अस्मि इत्यन्वयः । हे भीरु=हे भयशीले !, भीरुपदेन रोदनोपपत्तिरुक्ता॥ भीरुपद-प्रयोगो व्याकरणाऽनुशासनविरुद्धत्वात्कविनैरङ्कुश्यद्योतक इति पूर्वमेवाऽस्माभिः

---

महामांसको बेचनेवाला यही माधव इस ( मालती ) का प्रेमपात्र है ।

माधव—( आँखोंमें आँसू भरकर ) महाभागे ! यह क्या है ?

मालती—( बहुत समयके अनन्तर आश्वस्त होकर ) महाभाग ! मैं भी नहीं जानती हूँ । इतना ही जानती हूँ कि, बाहरके द्वारकी कोठरीके ऊपर मैं सोई हुई थी, अभी इस श्मशानमें जगी हुई हूँ । आप यहाँ किसलिए आये हुए हैं ?

माधव—( लज्जाके साथ )

हे भयशीले ! 'तुम्हारे करकमलके ग्रहणसे धन्य जन्मवाला हो जाऊँ' ऐसे

भूयासमित्यभिनिवेशकदर्थ्यमानः ।
भ्राम्यन्नृमांसपणनाय परेतभूमा-
वाकर्ण्य भीरु ! रुदितानि तवागतोऽस्मि ॥ २७ ॥

मालती—( अपवार्य ) कथं मम कारणादेवैत आत्मनिरपेक्षं परिभ्रमन्ति । ( कहं मम कालणादो एव्व एद अप्पणिरपेक्खं परिब्भमन्दि )

---

प्रतिपादितम् । त्वत्पाणिपङ्कजपरिग्रहधन्यजन्मा = त्वत्करकमलग्रहणपुण्यवज्जननः, पाणिः पङ्कजमिव पाणिपङ्कजम्, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः। परिग्रहणं परिग्रहः 'ग्रहवृदनिश्चिगमश्चे'त्यप्। त्वत्पाणिपङ्कजस्य परिग्रहेण धन्यं जन्म यस्य सः, 'सुकृती पुण्यवान्' धन्य' इत्यमरः। पुस्तकान्तरे तु पाणिस्थाने 'पाद' पदस्य पाठः। भूयासं = भवानि, इति = एवम्, अभिनिवेशकदर्थ्यमानः=अभिनिवेशेन ( आग्रहेण ) कदर्थ्यमानः=कुत्सितोऽर्थः कदर्थः, 'कुगतिप्रादय' इति समासः। 'कोः कत्तत्पुरुषेऽचि' इति कदादेशः। कदर्थ्यत इति कर्मणि लटः शानच्। ( पीड्यमानः, अहमिति शेषः ), नृमांसपणनाय=महामांसविक्रयाय, परेतभूमौ=प्रेतभुवि, श्मशान इत्यर्थः। परस्मिन् ( परलोके ) इताः ( गताः ) इति परेताः ( प्रेताः ), तेषां भूमौ। भ्राम्यन् = भ्रमन्, 'वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः' इति वैकल्पिकः श्यन्। तव = भवत्याः, रुदितानि = रोदनानि, 'हा तात ! निष्करुणे'त्यादिपदप्रयोगरूपाणीति भावः। आकर्ण्य = श्रुत्वा, आगतः = आयातः, त्वत्परित्राणायेति शेषः। अस्मि = भवामि, अत्र पाणिपङ्कजेत्यत्र उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

मालतीति। अपवार्य=अपवारितं कृत्वा। अपवारितलक्षणं यथा—'तद्भवेदपवारितम्। रहस्यन्तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।' इति पुस्तकान्तरे तु 'स्वगतम्' इति पाठस्तल्लक्षणं यथा—'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।' इति। 'हद्धी ! ( हा धिक् )' इत्यपि पुस्तकाऽन्तरस्थोऽधिकः पाठः। एते = माधवाः, आदराऽर्थकं बहुवचनम्। मम कारणात् = मम हेतोः, स्त्रीमात्रस्यैव कृते इति भावः। आत्मनिरपेक्षम् = आत्मनि ( स्वस्मिन् विषये ) निरपेक्षम् ( अपेक्षारहितं यथा स्यात्तथा ), स्वरक्षणे औदासीन्यमवलम्ब्येति भावः। परिभ्रमन्ति = परिभ्रमणं कुर्वन्ति, श्मशान इति शेषः, 'परिक्रामन्ति' इति पुस्तकान्तरपाठः।

---

आग्रहसे पीडित किया जाकर मैं नरमांस बेचनेके लिए श्मशानमें घूम रहा था, इसी बीचमें तुम्हारे रोदनको सुनकर यहाँ आ गया हूं ॥ २५ ॥

मालती—( केवल माधवको सुनाकर ) कैसे मेरे कारणसे ही ये अपने विषयमें निरपेक्ष होकर ( परवाह न कर ) घूम रहे हैं।

माधवः—अहो नु खलु भोः, तदेतत्काकतालीयं नाम। संप्रति हि—

राहोश्चन्द्रकलामिवाननचरीं दैवात्समासाद्य मे
दस्योरस्य कृपाणपातविषयादाच्छिन्दतः प्रेयसीम्।
आतङ्काद्विकलं द्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात्

माधव इति। अहो नु खलु भोः=विस्मयद्योतकोऽयं निपातसमुदायः। तदेतत्=प्रियाया दर्शनमिति भावः। काकतालीयम्=अचिन्तितोपनतम्, दैवयोगाज्जनितमिति भावः। काकतालीयपदस्यार्थस्तु—यथा काकतालवृक्षसमागमे दैवयोगात्तालफलपातस्तथैव प्रियासमागमो ममाऽतर्कितोपनत इति भावः। काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालमिति समासस्य विग्रहः। इह 'समासाच्च तद्विषयात्' इति छप्रत्ययः, प्रकृतसूत्रादेव ज्ञापकादिवाऽर्थे समासः, सुप्सुपेति वा। उभयथाऽपि विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः, स च छप्रत्ययविषय एव। अत्र काकशब्दः काकागमनसदृशे माधवागमने लाक्षणिकः। तालशब्दस्तु तालपतनसदृशे मालत्यागमने लाक्षणिकः।

राहोरिति। दैवात् समासाद्य राहोः आननचरीं चन्द्रकलाम् इव प्रेयसीं दस्योः अस्य कृपाणपातविषयात् आच्छिन्दतो मे चेतः आतङ्कात् विकलं करुणया द्रुतं विस्मयात् विक्षोभितं क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं कथं वर्तत इत्यन्वयः। दैवात्=भाग्यात्, समासाद्य=संप्राप्य, अस्मिन् महाश्मशान इति शेषः। राहोः=विधुन्तुदस्य, आननचरीं=मुखगतामिति भावः, आनने चरतीति आननचरी, ताम् 'चरेष्ट' इत्यधिकरण उपपदे टप्रत्ययः। चन्द्रकलाम् इव=इन्दुकलाम् इव लोकोत्तरसौन्दर्येण सकललोकाह्लादकत्वाच्चन्द्ररेखामिव स्थितामिति भावः। तादृशीं प्रेयसीं=प्रियतमां, मालतीमिति भावः। अतिशयेन प्रिया प्रेयसी, ताम्। प्रियशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इतीयसुन्प्रत्ययः, 'प्रियस्थिरे'त्यादिना प्रियशब्दस्य प्रादेशः, 'उगितश्चे'ति ङीप्। दस्योः=तस्करस्य, स्वसदनस्थितायाः प्रियाया अपहरणाच्चोररूपस्येति भावः। अस्य=सन्निकृष्टस्थितस्य, कापालिकापसदस्येत्यर्थः, कृपाणपातविषयात्=खड्गप्रहारगोचरात्, आच्छिन्दतः=प्रसह्याऽपहरतः, मे=मम, चेतः=चित्तम्, आतङ्कात्=तापशङ्कायाः, 'यद्यत्रागमने मम क्षणमपि विलम्बोऽभविष्यत्तर्हि प्रियतमायाः मालत्याः कीदृशी दशाऽभविष्यदि'त्येवंरूपाया इति भावः। विकलं=विह्वलं, करुणया=दयया, कुसुमसुकुमाराया वल्लभाया बलिदानाऽर्थं बन्धनादिति

माधव—आश्चर्य है। यह प्रियाका दर्शन काकतालीयरूपसे हुआ। इस समय—

भाग्यवश इस श्मशानमें प्राप्त होकर राहुके मुखमें प्राप्त चन्द्रकलाकी सदृश प्रियतमा ( मालती ) को दस्यु इस कापालिकके खड्गप्रहारके विषयसे छीननेवाला मेरा

क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं चेतः कथं वर्तते ॥ २८ ॥

अघोरघण्टः—अरे ब्राह्मणडिम्भ !

व्याघ्राघ्रातमृगीकृपाकुलमृगन्यायेन हिंसारुचेः

पाप ! प्राण्युपहारकेतनजुषः प्राप्तोऽसि मे गोचरम् ।

---

भावः । द्रुतं = विलीनं, विस्मयात् = आश्चर्यात्, एतादृशो विषमसमये कीदृशोऽयं मालतीसाक्षात्कारोऽतर्कितोपनत इत्येवं विचारोत्पन्नादिति भावः । विक्षोभितं = विचलितं, क्रोधेन = कोपेन, ललनाललामभूतां मालतीं प्रति निष्ठुराचारात्संजातेनेति शेषः । ज्वलितम् = उद्दीपितं, मुदा = हर्षेण, प्रियतमाया दर्शनजेन तद्रक्षणजनितेन चेति शेषः । विकसितं = प्रफुल्लं च सत्, कथं = कीदृशम्, अनिर्वचनीयमित्यर्थः, वर्तते = विद्यते, मच्चेतस ईदृशी दशाऽऽस्तीति निरूपयितुं न शक्यत इति भावः । अत्र चन्द्रकलामिवेत्यत्रोपमाऽलङ्कारः, तथा एकस्य चेतोरूपकारकस्य विकलभवना-द्यनेकक्रियासु सम्बाद्दीपकाऽलङ्कारश्चेत्येतयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ॥ २८ ॥

अघोरघण्ट इति । अरे इति अनादरार्थकं सम्बोधनम् । ब्राह्मणडिम्भ = विप्रशि-शो, विप्रत्वाच्छिशुत्वाच्च भीरुस्वभावत्वाच्छौर्यशून्येत्यर्थः । 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः ।' इत्यमरः ।

व्याघ्राघ्रातेति । हे पाप ! व्याघ्राऽऽघ्रातमृगीकृपाऽऽकुलमृगन्यायेन हिंसारुचेः प्राण्युपहारकेतनजुषो मे गोचरं प्राप्तः असि । सः अहं खड्गाहतिव्यस्तस्कन्धकबन्धर-न्ध्ररुधिरप्राग्भारनिष्यन्दिना भवता एव प्राक् भूतजननीम् ऋध्नोमीत्यन्वयः । हे पाप=हे पापाचार !, शास्त्रीये बलिदानरूपे कर्मणि प्रतिबन्धरूपत्वादियं सम्बुद्धिः । व्याघ्राघ्रातमृगीकृपाऽऽकुलमृगन्यायेन = व्याघ्रेण ( शार्दूलेन ) आघ्राता ( घ्राणगोच-रीकृता, गृहीतेत्यर्थः ), एतादृशी या मृगी ( हरिणी ), तस्यां कृपाकुलः ( दयाऽऽ-कुलः, रक्षणार्थमिति शेषः ) यो मृगः ( हरिणः ) तन्न्यायेन ( तत्सादृश्येन, व्याघ्रा-क्रष्टमृगीरक्षणे प्रवृत्तो मृग इवेति भावः ), त्वमिति शेषः । हिंसारुचेः ( अनवरत-प्राणिहत्यातत्परस्य, हिंसायां रुचिर्यस्य, तस्य ) अत एव प्राण्युपहारकेतनजुषः =

---

( माधवका ) चित्त तापशङ्कासे विह्वल, करुणासे विलीन, आश्चर्यसे विचलित, क्रोधसे उद्दीपित और हर्षसे विकसित न जाने कैसा ( अनिर्वचनीय ) हो रहा है ॥ २८ ॥

अघोरघण्ट—अरे ब्राह्मणबालक !

हे पाप ! व्याघ्रसे आक्रान्त मृगीमें दयासे आकुल मृगके सदृश तुम, हिंसामें रुचि रखने वाले अतएव बलिदान के करनेके स्थानकी सेवा करनेवाले मेरे विषयको

सोऽहं प्राग्भवतैव भूतजननीमृध्नोमि खड्गाहति-
व्यस्तस्कन्धकबन्धरन्ध्ररुधिरप्राग्भारनिष्यन्दिना ॥ २९ ॥

माधवः—आः दुरात्मन्पाखण्डचण्डाल !

असार संसार, परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं,

प्राणिनां ( जन्तूनाम् ) य उपहारः ( उपायनं, चामुण्डामुद्दिश्य बलित्वेन समर्पणमिति भावः ) तस्य केतनं ( स्थानम् ) तज्जुषते ( सेवते ) इति प्राण्युपहारकेतनजुट्, तस्य। एतादृशस्य मे = मम, गोचरं = विषयं, प्राप्तः = गतः, असि = वर्तसे, यथा मृग्यां कृपापरवशो मृगो व्याघ्रेण हन्यते तथैव मया बलिदानार्थमानीतायां मालत्यां दयालुस्त्वं मया हन्यस इति भावः। सः=तादृशः, हिंसाशील इति भावः। अहं=कापालिकः, अघोरघण्ट इत्यर्थः। खड्गाऽऽहतिव्यस्तस्कन्धकबन्धरन्ध्ररुधिरप्राग्भारनिष्यन्दिना = खड्गस्य ( करवालस्य ) आहत्या ( आघातेन ) व्यस्तस्कन्धः ( विच्छिन्नांऽसः ), 'छिन्नस्कन्ध' इति पाठे कृत्तांऽस इत्यर्थः। एतादृशो यः कवन्ध ( अपमूर्धकलेवरं, 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्द्धकलेवरम्।' इत्यमरः ) तस्य रन्ध्रात् ( छिद्रात् ) यत् रुधिरं ( रक्तम् ) तस्य प्राग्भारं ( प्रवाहम् ) निष्यन्दते ( वर्षति ) इति व्यस्तस्कन्धकबन्धरन्ध्ररुधिरप्राग्भारनिष्यन्दी, तेन। तादृशेन भवता एव = त्वया एव, प्राक् = पूर्वं मालत्या इति शेषः। भूतजननीं = भूतानां ( प्रमथानाम् ) जननीं ( मातरम् ), चण्डिकामित्यर्थः। ऋध्नोमि=प्रीणयामि, पश्चादनयेति शेषः।' 'ऋधु वृद्धौ' इति स्वादिगणस्थधातोर्लट्। अत्रोपमाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

माधव इति। आः = कोपद्योतकमव्ययमिदम्। दुरात्मन्=दुष्टस्वभाव, दुष्ट आत्मा यस्य स तत्सम्बुद्धौ। पाखण्ड = वेदधर्मखण्डक, हे चाण्डाल चाण्डालसम, क्रूर इत्यर्थः। पाखण्डपदनिरुक्तिर्यथा—

'पालनाच्च त्रयीधर्मः पाशब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना ॥ इति।

असारमिति। संसारम्, असारं, त्रिभुवनं—परिमुषितरत्नं, लोकं निरालोकं, बान्धवजनं मरणशरणं, कन्दर्पम् अदर्पं, जननयननिर्माणम् अफलं जगत् जीर्णाऽरण्यं

प्राप्त हो गये हो। वैसा मैं, तलवारके आघातसे स्कन्धरहित कवन्ध ( शिरसे रहित शरीर ) के छिद्र ( छेद ) से रक्तसमूहकी वृष्टि करनेवाले तुमसे ही मालतीके पहले प्रमथगणों की माता कराला देवीको प्रसन्न करता हूँ ॥ २९ ॥

माधव—ओः ! दुष्टस्वभाव ! पाखण्ड चण्डाल !

तुम संसारको सार ( श्रेष्ठ पदार्थसे ) से रहित करनेको प्रवृत्त हो रहे हो,

निरालोकं लोकं मरणशरणं बान्धवजनम् ।
अदर्पं कंदर्पं जननयननिर्माणमफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः ॥ ३० ॥

विधातुं कथं व्यवसितोऽसीत्यन्वयः । रे रे पाप ! संसारं = विश्वप्रपञ्चम्, असारं = श्रेष्ठपदार्थरहितं, मालतीहननादिति शेषः । विधातुं कथं व्यवसितोऽसीति चतुर्थचरणस्थैः पदैः सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि । 'सारं तु महिलारत्नं संसार इति निश्चयः ।' इत्युक्तेर्मालतीरूपसारविनाशात्संसारमसारं कर्तुं त्वं प्रवृत्तोऽसीति भावः । त्रिभुवनं = लोकत्रयं, स्वर्गमर्त्यपातालात्मक मिति भावः । त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं, तत् 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चे'ति समासस्तस्य 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगुसंज्ञा । 'पात्राद्यदन्तस्य ने'ति निषेधात् 'द्विगोः' इति ङीप् न । परिमुषितरत्नं = परिमुषितम् ( अपहृतं, मालतीवधेनेति भावः ) रत्नं ( महिलारत्नम् ) यस्य तत्, मालतीव्यापादनेन त्वं न केवलमेकलोकस्य प्रत्युत त्रिभुवनस्यैव रत्नं नाशयितुमुद्यतोऽसीति भावः । लोकं = भुवनं. 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः । निरालोकं = प्रकाशरहितं, तिमिरावृतमित्यर्थः । निर्गत आलोको यस्मात्सः, तम् । 'आलोकौ दर्शनद्योतौ' इत्यमरः । निरतिशयसौन्दर्यविभूतिधायाः लोकप्रकाशिकाया मालत्या हत्यया त्वं लोकं तिमिराच्छन्नं कर्तुमुद्यतोऽसीति भावः । बान्धवजनं = कुटुम्बगणं, मरणशरण = प्राणत्यागतत्परमिति भावः । मरणमेव शरणं यस्य सः, तम् । अस्या हननादस्मदादीनां बान्धवानां मरणादन्यच्छोकदुःखानां निस्तारकारणं न भविष्यतीति तात्पर्यम् । कन्दर्पं = कामदेवम्, अदर्पं = गर्वरहितम्, अविद्यमानो दर्पो यस्य सः, तम् 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप' इति नञ्बहुव्रीहिः । 'दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः ।' इति कोषः । भुवनत्रयजयहेतुत्वाद्दर्पहेतुभूतामेनां हत्वा कन्दर्पमपि दर्पशून्यं करिष्यसीति तात्पर्यम् । जननयननिर्माणं = जनानां ( लोकानाम् ) नयननिर्माणम् ( लोचनरचनम् ), अफलं = निष्फलं, लोकोत्तरलावण्यविलसितामेनां हत्वा द्रष्टव्यपदार्थान्तराऽभावेन लोकलोचनव्यापारं निष्फलं विधास्यसीति भावः । रे रे पाप ! एवं च निरवद्यहृद्यरूपां मालतीं हत्वा त्वं जगत् = लोकं, जीर्णाऽरण्यं = कुसुमफलविलसिततरुराहित्यात् पुराणं विपिनं, विधातुं = कर्तुं, कथं = केन प्रकारेण, व्यवसितोऽसि = उद्युक्तोऽसि, इयमेव मालती जगद्रूपस्योपवनस्य

त्रिभुवनके रत्नको छीननेके लिए उद्यत हो रहे हो; इसी तरह लोकको आलोक ( प्रकाश ) से शून्य और इस ( मालती ) के बान्धवजनको मरणका आश्रय करा रहे हो तथा कन्दर्प ( कामदेव ) को दर्पहीन, मनुष्योंको नेत्रसृष्टिको निष्फल और

अपि च रे रे पाप !

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-
र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः
पततु शिरस्यकाण्डयमदण्ड इवैष भुजः ॥ ३१ ॥

---

फलकुसुमविलसिततरुरूपाऽस्ति तां हत्वा जगज्जीर्णाऽरण्यसदृशं कर्तुं त्वं तत्परोऽसीति भावः । अत्र विच्छित्तिविशेषैर्मालत्याः संसारादीनां सारत्वादेर्गम्यमानत्वात्पर्यायोक्तमलङ्कारः, एवंविधानरूपयैकक्रिययाऽसारादीनामप्रस्तुतानां कर्मत्वेनाऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिता, जगत् जीर्णाऽरण्यमित्यत्र रूपकं चेत्येतेषामङ्गाङ्गित्वेन सङ्कराऽलङ्कारः । छेकाऽनुप्रासोऽत्र शब्दालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३० ॥

पुनरपि दोषमुद्भाव्य दण्डं चिकीर्षुराह—प्रणयिसखीति । प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाऽधिगतैः ललितशिरीषपुष्पहननैरपि यत् ताम्यति । तत्र वपुषि वधाय शस्त्रम् उपक्षिपतः तव शिरसि अकाण्डयमदण्ड इव एष भुजः । पतत्वित्यन्वयः । प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाऽधिगतैः = प्रणयिन्यः ( प्रणययुक्ताः, 'प्रणये'ति पाठे प्रणयस्येति षष्ठीसमासविग्रहः ) याः सख्यः ( वयस्याः, 'आलिः सखी वयस्या चे'त्यमरः ) तासां यः परिहासः ( क्रीडाविशेषः, कुसुमस्तवकप्रहारादिरूप इत्यर्थः ) तत्र रसेन ( रागेण, स्वेच्छयैवेत्यर्थः ) अभिगतैः (प्राप्तैः) । ललितशिरीषपुष्पहननैरपि = ललितानि ( अतिकोमलानि ) यानि शिरीषपुष्पाणि ( शिरीषकुसुमानि ) तैः हननैरपि = प्रहारैरपि, किं पुनरन्येन कठिनद्रव्येणेति शेषोऽर्थः । यत् = वपुः, मालत्या इति शेषः । ताम्यति = म्लानं भवति, तत्र = तस्मिन्, पूर्वोक्ते, वपुषि = शरीरे, वधाय=हिंसायै, शस्त्रम् = आयुधं, खड्गरूपमित्यर्थः । उपक्षिपतः = पातयतः, तव=अघोरघण्टस्य, शिरसि=मूर्ध्नि, अकाण्डयमदण्ड इव=अकाण्डे ( अनवसरे, आकस्मिकरूपेण पतनशील इति भावः ) यमदण्ड इव = कालदण्ड इव, एषः = अतिनिकटवर्ती, भुजः = बाहुः, ममेति शेषः । पततु=चलतु, अप्रतिक्रियविधानेनाऽहं निजभुजेन त्वच्छिरोमर्दनं करोमीति समुद्दीपितकोपस्य माधवस्य रौद्र-

---

जगत्को जीर्ण ( फलपुष्पसे रहित ) वन बनानेके लिए किस प्रकारसे उद्योग कर रहे हो ॥ ३० ॥

फिर भी रे रे पापिजन !

प्रणययुक्त सखीजनोंके परिहासमें रागसे प्राप्त कोमल शिरीष पुष्पोंके प्रहारोंसे भी जो ( मालती का ) शरीर म्लान हो जाता है । वैसे शरीरमें मारनेके लिए शस्त्र

अघोरघण्टः—आः दुरात्मन् ! प्रहर प्रहर । नन्वयं न भवसि ।

मालती—प्रसीद नाथ साहसिक ! दारुणः खल्वयं हताशः । तत्परित्रायस्व माम् । निवर्ततामस्मादनर्थसंकटात् । ( पसीद णाह साहसिअ ! दारुणो क्खु अअं हदासो । ता परित्ताअसु मं । णिवत्तअदु इमादो अणत्थसंकटादो )

कपालकुण्डला—भगवन्, अप्रमत्तो भूत्वा दुरात्मानं व्यापादय ।

---

रसोचितो वागारम्भः । अत्राऽर्थाऽऽपत्तिरलङ्कारः । चतुर्थचरण उपमा चेति द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । नर्दटकं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा 'यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम् ।' इति । अत्रोग्रतारूपो व्यभिचारिभावः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'शौर्याऽपराधादिभवं भवेच्चण्डत्वमुग्रता ।
तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताडनाऽऽदयः ॥'

अघोरघण्ट इति । आः=कोपद्योतकमव्ययमिदम् । प्रहर प्रहर=प्रहारं कुरु प्रहारं कुरु, संभ्रमे द्विरुक्तिः । पश्यामि तव पौरुषमिति शेषः । अयं=सन्निकृष्टस्थः, त्वमिति शेषः । न भवसि=न भविष्यसि, बलिकर्मविघ्नसम्पादनात्त्वामहं व्यापादयिष्यामीति भावः । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ।

मालतीति । साहासिक=साहसाचरणशील !, साहसेन चरतीति साहसिकस्तत्सम्बुद्धौ । 'चरति' इति ठञ् । हताशः=निराशः, दारुणः=भीषणः, बलिकर्मणि हताशत्वादयं दुष्टो नितान्तमेव भीषणो भविष्यतीति भावः । तत्=तस्मात्करणात् । परित्रायस्व=रक्ष । माधवजीवनं बहुमूल्यं मत्वा प्रार्थनान्तरं करोति—निवर्ततामिति अस्मात्=निकटस्थितात् । अनर्थसङ्कटात्=अनिष्टदुःखात्, सङ्कटस्थाने 'संशय इति पाठान्तरम् । निवर्ततां=निवृत्तो भवतु, भवानिति शेषः । मत्कृते सज्जनमूर्धन्येन धन्येन भवता स्वजीवनसंशयाऽऽस्पदं साहसं नाऽऽचरणीयमिति भावः ।

कपालकुण्डलेति । अप्रमत्तः=प्रमादरहितः, सावधान इत्यर्थः । व्यापादय=जहि । स्तोकेनाऽपि प्रमादेनाऽनर्थसंभवादिति भावः ।

---

गिरानेवाले तुम्हारे शिरपर आकस्मिक रूपसे पतनशील यमदण्डके सदृश यह मेरा बाहु चले ॥ ३१ ॥

अघोरघण्ट—ओः दुष्टस्वभाव! प्रहार करो, प्रहार करो । अब तुम नहीं रहोगे (मुझसे मारे जाओगे)।

मालती—नाथ ! सहसाचरणशील आप अनुग्रह कीजिए । निराश होनेसे यह भयङ्कर होगा । इसलिए मुझे बचाइये । इस अनिष्ट दुःखसे आप हटजाइए ।

कपालकुण्डला—भगवन् ! प्रमादरहित होकर इस दुरात्मा ( माधव ) को मार डालिए ।

माधवाघोरघण्टौ—( मालतीकपालकुण्डले प्रति ) अयि भीरु !

धैर्यं निधेहि हृदये, हत एष पापः
किं वा कदाचिदपि केनचिदन्वभावि ।
सारङ्गसंहृतिविधाविभकुम्भकूट-
कुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः ॥ ३२ ॥

माधवाऽघोरघण्टाविति । माधवो मालतीं प्रति, अघोरघण्टश्च कपालकुण्डलां प्रतीति यथासंख्यम् । भीरु=भयशीले ।

धैर्यमिति । हृदये धैर्यं विधेहि । एष पापो हतः । कदाचित् केनचिद् अपि सारङ्गसंहृतिविधौ इभकुम्भकूटकुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः किं वा अन्वभावीत्यन्वयः । हृदये=चित्ते, धैर्यं=धीरतां, निधेहि=धारय, मज्जीवनस्थितिविषये कातर्यं मा गम इति भावः । एषः=समीपतरवर्ती, पापः=दुराचारः, माधवपक्षे—ललनारत्नेन बलिदानतत्परत्वादघोरघण्ट इत्यर्थः । अघोरघण्टपक्षे—बलिदानरूपधर्मकृत्ये प्रतिबन्धकत्वान्माधव इत्यर्थः । हतः=व्यापादितः, मयेति शेषः । कथमत्र मत्प्रमादसाशङ्कस इति भावः । अत्राऽर्थं उपपादकयुक्तिमाह—किं वेति । कदाचित्=जातुचित्, केनचित् अपि=केनाऽपि जनेन, सारङ्गसंहृतिविधौ=हरिणसंहरणविधाने, 'सारङ्गः पुंसि हरिणे चातके च मतङ्गजे ।' इति मेदिनी । इभकुम्भकुट्टाकपाणिकुलिशस्य=इभकुम्भानां ( हस्तिमस्तकपिण्डानाम्, 'इभः स्तम्बेरमः पद्मी' इति, 'कुम्भौ तु पिण्डौ शिरस' इति चाऽमरः ) कूटस्य ( समूहस्य, 'पुञ्जराशी तूत्करः कूटमस्त्रियाम् ।' इत्यमरः ) कुट्टाकं, ( कुट्टनशीलं, 'कुट्ट छेदने' इति धातोः 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्' इति षाकन्प्रत्ययः, 'ष प्रत्ययस्ये'ति षकारस्येत्संज्ञा । ) पाणिकुलिशं ( हस्तवज्रं, पाणिः कुलिशमिवेति 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः ) यस्य तस्य । हरेः=सिंहस्य 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः ।' इत्यमरः । प्रमादः=अनवधानता, किं वा, अन्वभावि=अनुभूतः, न केनचिदनुभूत इति भावः । वज्रसमपाणिः हस्तिकुम्भच्छेदकः सिंहो यथा मृगसंहारविधौ न प्रमाद्यति तथैवाऽहमपि एतस्य पापस्य ( माधवपक्षे—अघोरघण्टस्य, अघोर-

माधव और अघोरघण्ट—( मालती और कपालकुण्डलाके प्रति ) अरी डरपोक !

हृदयमें धैर्य लो । यह पापी मारा जायगा । कभी भी किसी ने भी मृग के संहारकी विधिमें हाथियोंके मस्तकपिण्डोंको मर्दित करनेवाले वज्रके सदृश हाथसे युक्त सिंहके प्रमादका अनुभव किया है क्या ? ॥ ३२ ॥

( नेपथ्ये कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति )

भो भो मालत्यन्वेषिणः, इयममात्यभूरिवसुमाश्वासयन्त्यप्रतिहतप्रज्ञाचक्षुर्भगवती कामन्दकी समादिशति, पर्यवष्टभ्यतामेतत्करालायतनम् ।

नाघोरघण्टादन्यस्मात्कर्मैतद्दारुणादभूत् ।
न करालोपहाराच्च फलमन्यद्विभाव्यते ॥ ३२ ॥

घण्टपक्षे—माधवस्येत्यर्थः ) व्यापादनविधाने न प्रमाद्यामीति भावः । अत्राऽसम्भवद्वस्तुसम्बन्धा निदर्शनाऽलङ्कारः, 'पाणिकुलिशस्ये' त्यत्रोपमाऽलङ्कारश्चेत्येतयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३२ ॥

नेपथ्य इति । कलकलः = कोलाहलः । आकर्णयन्ति=शृण्वन्ति, अत उत्तरं क्वचित् 'पुनर्नेपथ्ये' इत्यधिकः पाठः । मालत्यन्वेषिणः = मालतीगवेषणाशीलाः, अत उत्तरं क्वचित् 'सैनिका' इत्यधिकः पाठः । आश्वासयन्ती = आश्वस्तं कुर्वती, 'धृतिं बधान, मालती जीवती' त्यादिवाक्यैर्दुःखं श्लथयन्तीति भावः । अप्रतिहतप्रज्ञाचक्षुः = अप्रतिहतम् ( अकुण्ठितं, सर्वत्र लब्धप्रसरमित्यर्थः ) प्रज्ञा ( ज्ञानम् ) एव चक्षुः ( लोचनम् ) यस्याः सा । समादिशति = समाज्ञापयति, अतः पूर्वं 'व' इति पुस्तकान्तरपाठः । पर्यवष्टभ्यतां = परिवेष्ट्यताम् । 'द्रुतम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः ।

किमर्थमित्यत आह = नाऽघोरघण्टादिति । दारुणात् अघोरघण्टात् अन्यस्मात् एतत् कर्म न अभूत् । करालोपहारात् अन्यत् फलं च न विभाव्यत इत्यन्वयः । दारुणात् = भीषणात् , अघोरघण्टात् = तदाख्यकापालिकात् , 'अन्यस्मात्' इति पदेन योगे 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाऽञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इति पञ्चमी । अन्यस्मात्=इतरस्मात्, तद्व्यतिरिक्तादित्यर्थः । एतत् = मालत्यपहरणरूपमित्यर्थः । कर्म = क्रिया, न अभूत्=नो समजनि । पुस्तकान्तरे तु 'नाघोरघण्टादन्यस्य कर्मैतद्भीषणाऽद्भुतम् ।'

( नेपथ्यमें कोलाहल होता है । सब लोग सुनते हैं । )

ऐ मालतीका अन्वेषण करनेवाले ! अमात्य भूरिवसुको दिलासा देती हुई अकुण्ठित बुद्धिरूप नेत्रसे युक्त ये भगवती कामन्दकी आज्ञा करती हैं कि—'इस करालामन्दिरको चारों तरफसे घेर लो' ।

भयानक अघोरघण्टको छोड़कर दूसरेसे यह ( मालतीहरणरूप ) कर्म नहीं हुआ । कराला देवीको ( बलिदानरूप ) उपहारसे भिन्न इसका फल भी नहीं जाना जाता है ॥ ३२ ॥

कपालकुण्डला—भगवन् ! पर्यवष्टब्धाः स्मः ।

अघोरघण्टः—संप्रति विशेषतः पौरुषस्यावसरः ।

मालती—हा तात ! हा भगवति ! ( हा ताद ! हा भअवदि ! )

माधवः—भवतु बान्धवसमाजसुस्थितामेनां विधाय तत्समक्षमेनं व्यापादयामि । ( मालतीमन्यतः प्रेषयन्परिक्रामति )

---

इति पाठस्तत्र भीषणाऽद्भुतं = भयङ्करम् आश्चर्यजनकं च एतत कर्म, अघोरघण्टात्, अन्यस्य = भिन्नस्य जनस्य, न = न वर्तत इत्यर्थः । एवं च—करालोपहारात् = करालायै ( चण्डिकायै ) उपहारात् ( बलिरूपेणोपायनात्, 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा ।' इत्यमरः ) अन्यत् = भिन्नम्, अन्यशब्दात्क्लीबलिङ्गे 'अद्ड्डुतरादिभ्यः पञ्चभ्य' इत्यदड् । फलं = प्रयोजनम्, अपहरणस्येति शेषः । न विभाव्यते = नो ज्ञायते । अघोरघण्टेन करालायै बलिरूपेण समर्पयितुमेवाऽपहृता मालतीति सम्भाव्यत इति भावः ॥ ३२ ॥

कपालकुण्डलेति । पर्यवष्टब्धाः = परिवृताः, राजभटैरिति शेषः । अतः परं किं कर्तव्यमिति कातर्योक्तिः ।

अघोरघण्ट इति । पौरुषस्य=पुरुषार्थस्य, 'पौरुषं पुरुषस्योक्तं भावे कर्मणि तेजसि ।' इति विश्वः । अवसरः = प्रसङ्ग, आत्मपौरुषप्रदर्शनपुरःसरं समीहितं सम्पादयिष्यामि, तस्मान्न भेतव्यं त्वयेत्याश्वासनोक्तिः ।

मालतीति । भगवति = कामन्दकि, हा = भगवतीमिति शेषः, भगवत्यास्तादृग्वात्सल्यभाजनस्याऽपि ममैतादृशी दशा सञ्जाता, अतस्तस्याः शोच्यत इत्यर्थः ।

माधव इति । एनां = मालतीं; बान्धवसमाजसुस्थितां = बान्धवानां ( पित्रादीनां कुटुम्बिवजनानाम् ) समाजे ( समूहे ) सुस्थितां ( सुखेन स्थिताम् ), विधाय = कृत्वा अनन्तरं निश्चिन्ततापूर्वकमिति शेषः । तत्समक्षं = तस्य ( बान्धवसमाजस्य ) समक्षम् ( प्रत्यक्षम् ), एनं = कापालिकाऽपसदमघोरघण्टमित्यर्थः । व्यापादयामि = हन्मि, 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वे'ति लट् । येन एते जना मालतीप्राणत्राणार्थं

---

कपालकुण्डला—भगवन् ! हमलोग घिर गये हैं ।

अघोरघण्ट—इस समय विशेषरूपसे पुरुषार्थका अवसर है ।

मालती—हा पिताजी ! हा भगवती !

माधव—हो, इस ( मालती ) को बान्धवोंके समूहमें सुखपूर्वक स्थित

( माधवाघोरघण्टावन्योन्यमुद्दिश्य )

आः ! रे रे पाप !

कठोरास्थिग्रन्थिव्यतिकरघणत्कारमुखरः
खरस्नायुच्छेदक्षणविहितवेगव्युपरमः ।
निरातङ्कः पङ्केष्वव पिशितखण्डेषु निपत-

---

समनुष्ठितं मदीयं प्रयासं विक्रमं चाऽस्मात्याथ निवेदयेयुः, मदर्थं मालतीप्रदाने तस्य रुचि चोत्पादयेयुरिति भावः । अन्यतः = अन्यत्र, बान्धवसमाज इत्यर्थः । माधवाऽघोरघण्टाविति । अन्योन्यं = परस्परम्, एक एकं प्रतीत्यर्थः । आः = कोपद्योतकोऽयं निपातः । रे रे इति अनादरव्यञ्जकोक्तिः । क्वचित् 'रे रे' इति न ।

एकमेव श्लोकमुभौ प्रयुञ्जाते—कठोराऽस्थीति । कठोराऽस्थिग्रन्थिव्यतिकरघणत्कारमुखरः खरस्नायुच्छेदक्षणविहितवेगव्युपरमः पङ्केषु इव पिशितखण्डेषु निरातङ्को निपतन् असिः सपदि ते गात्रं गात्रं लवशः विकिरत्वित्यन्वयः । कठोराऽस्थिग्रन्थिव्यतिकरघणत्कारमुखरः = कठोराः ( कठिनाः ) ये अस्थिग्रन्थयः ( कीकसपर्वाणि, 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः ), तेषु व्यतिकरेण ( सम्बन्धेन, प्रहाररूपेणेति भावः ) यो घणत्कारः ( घणदित्यनुकरणशब्दः, पुस्तकान्तरे तु 'रणत्कार' इति पाठः ) तेन मुखरः ( शब्दायमानः, मुखशब्दात् 'रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्' इति रप्रत्ययः )। एवं खरस्नायुच्छेदक्षणविहितवेगव्युपरमः = खराणां ( कठोराणाम् ) स्नायूनां ( वस्नसानाम्, अङ्गप्रत्यङ्ग सन्धिबन्धनरूपाणामित्यर्थः । 'अथ वस्नसा । स्नायुः स्त्रियाम्' इत्यमरः ) छेदेन (कर्तनेन) क्षणं (कञ्चित्कालम्) विहितः (जनितः) वेगस्य ( जवस्य ) व्युपरमः ( विश्रान्तिः, 'व्युपशम' इति पाठान्तरम् ) यस्य सः । पङ्केषु इव = कर्दमेषु इव, अस्थिस्नायुरहितत्वादिति शेषः । पिशितखण्डेषु = मांसशकलेषु क्वचित् 'खण्ड' स्थाने 'पिण्ड' पदपाठः । निरातङ्कः = प्रतिबन्धरहितः, निप-

---

कराकर इनके बन्धुओंके सम्मुख इस पापीको मारता हूँ । ( मालतीको बान्धवसमाजमें भेजता हुआ चारों ओर पादक्षेप करता है । )

( माधव और अघोरघण्ट एक दूसरेको उद्देश्य कर कहते हैं । )

ओः ! रे रे पापिजन !

कठोर अस्थिग्रन्थियोंमें सम्बन्ध होनेसे 'घणत्' ऐसे शब्दसे शब्दायमान तीक्ष्ण नसोंके काटनेसे कुछ समय तक वेगकी विश्रान्तिसे युक्त, कीचड़ोंके सदृश

न्नसिर्गात्रंगात्रं सपदि लवशस्ते विकिरतु ॥ ३४ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे पञ्चमोऽङ्कः ।



तन् = विचरन्, क्वचित् 'विलसन्' इति पाठस्तस्य यथारुचि विचरन्सन्नित्यर्थः। असिः = खड्गः, ममेति शेषः। सपदि = सत्वरं, ते = तव, माधवपक्षे = अघोरघण्टस्य, अघोरघण्टपक्षे = माधवस्य। गात्रं गात्रं=प्रत्यङ्गं, गात्रपदस्याऽङ्गे लक्षणा। लवशः= खण्डशः कृत्वा, 'बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' इति शस्प्रत्ययः। विकिरतु = दिक्षु विक्षिपतु। अत्र बीभत्सोपस्कृतो रौद्ररसः। उपमाऽलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां पञ्चमोऽङ्कः।



मांसखण्डोंमें प्रतिबन्धरहित होकर विचरण करता हुआ मेरा खड्ग ( तलवार ) तत्क्षण तुम्हारे प्रत्येक अङ्गको टुकड़ा टुकड़ा कर दिशाओंमें फेंक दे ॥ ३४ ॥

( सब लोग बाहर निकलते हैं। )

पाँचवां अङ्क समाप्त ।

# षष्ठोऽङ्कः

( ततः प्रविशति कपालकुण्डला )

कपालकुण्डला—आः पाप दुरात्मन्! मालतीनिमित्तं विनिपातिताऽस्मद्गुरो! माधवहतक! अहं त्वया तस्मिन्नवसरे निर्दयं निघ्नत्यपि स्त्रीत्यवज्ञाता। (सक्रोधम्) तदवश्यमनुभविष्यसि कपालकुण्डलाकोपस्य फलम्!

शान्तिः कुतस्तस्य भुजङ्गशत्रोर्यस्मिन्निबद्धानुशया सदैव।
जागर्ति दंशाय निशातदंष्ट्राकोटिर्विषोद्गारगुरुर्भुजङ्गी॥ १॥

---

अङ्कान्तरमारभमाणः कविः भूतभविष्यदर्थज्ञापनायैकपात्रप्रयोज्यं शुद्धविष्कम्भकाख्यमर्थोपक्षेपकं प्रस्तौति—तत इति।

कपालकुण्डलेति। पाप=पापाचार!, देवोद्देश्यकबलिकर्मप्रतिबन्धकत्वादिति भावः। मालतीनिमित्तं=मालत्यर्थं यथा तथेति क्रियाविशेषणम्। विनिपातिताऽस्मद्गुरो=विनिपातितः (व्यापादितः, क्वचित् 'व्यापादित' इति पाठः) अस्मद्गुरुः (अघोरघण्टः) येन सः, अत्र 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इतीव सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः। गमकत्वं नाम वृत्तिविग्रहयोः समानप्रकारोपस्थितिजनकत्वम्। मालतीनिमित्तमिति कथनेन यस्याः मालत्याः कृते त्वयाऽस्मद्गुरुर्हतस्तामेव मालतीमपहरिष्यामीति कपालकुण्डलाया अभिप्रायो गम्यते। तस्मिन्नवसरे=अस्मदाचार्यवधकाले। निर्दयं=निष्करुणं, क्रियाविशेषणं, चैतत्, निघ्नती अपि=प्रहरन्ती अपि, त्वामिति शेषः। अवज्ञाता=तिरस्कृता, उपेक्षितेत्यर्थः।

स्वकोपफलमाह—शान्तिरिति। तस्य भुजङ्गशत्रोः कुतः शान्तिः! यस्मिन् निबद्धाऽनुशया निशातदंष्ट्राकोटिः विषोद्गारगुरुः भुजङ्गी सदैव दंशाय जागर्तीत्यन्वयः। तस्य, भुजङ्गशत्रोः=सर्पवैरिणः, सर्पहन्तुरित्यर्थः। कुतः=कथं, शान्तिः=शमः, स्वास्थ्यमिति भावः। यस्मिन्=भुजङ्गशत्रौ, निबद्धाऽनुशया=दृढतरबद्धकोपा, पतिहननादिति भावः। निशातदंष्ट्राकोटिः=तीक्ष्णदशनाऽग्रा, विषोद्गारगुरुः=गरलोद्गमनभीषणा, भुजङ्गी=सर्पिणी, सदैव=नित्यमेव, दंशाय=दंशनाऽर्थं, स्वपतिवध-

---

( तब कपालकुण्डला प्रवेश करती है )

कपालकुण्डला—ओः पाप दुष्टस्वभाव! मालतीके लिए हमारे गुरुजीको मारनेवाले! नीच माधव! उस अवसरमें निर्दयभावसे प्रहार करने पर भी स्त्री कहकर तूं ने मेरी अवज्ञा की। ( क्रोधके साथ ) इस कारणसे तूं कपालकुण्डलाके क्रोधका फल अवश्य भोगेगा।

उस सर्पके वैरीको कैसे शान्ति होगी? जिसपर दृढतर कोप करनेवाली,

( नेपथ्ये )

भो राजानश्चरमवयसामाज्ञया संचरध्वं
कर्तव्येषु, श्रवणसुभगं भूमिदेवाः पठन्तु ।
चित्रं नानावचननिवहैश्चेष्टयतां मङ्गलेभ्यः
प्रत्यासन्नस्त्वरयतितरां जन्ययात्राप्रवेशः ॥ २ ॥

प्रतीकारायेति शेषः । जागर्ति=जागरिता वर्तते, साऽवधानाऽस्तीति भावः । स्वपति-वधप्रतीकाराय स्वपतिहन्तारं दंशनेन हन्तुं यथा सर्पिणी सचेष्टा वर्तते तथैवाऽहमपि स्वगुरुहन्तारं हन्तुमप्रमत्ता वर्ते इति सम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शनाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १ ॥

वर्तिष्यमाणं विवाहमङ्गलकृत्यं सूचयति—भो राजान इति । भो राजनः ! चरम-वयसाम् आज्ञया कर्तव्येषु सञ्चरध्वम् । हे भूमिदेवाः ! श्रवणसुभगं पठन्तु । नाना-वचननिवहैः चित्रं मङ्गलेभ्यः चेष्टयताम् । प्रत्यासन्नो जन्ययात्राप्रवेशः त्वरयतितरा-मित्यन्वयः । भो राजानः = हे सामन्तनरपतयः, पद्मावतीश्वरपरिचरणपरा इति शेषः । चरमवयसां = वृद्धानां, दृष्टकुलाचाराणामित्यर्थः । आज्ञया = आदेशेन, कर्त-व्येषु=आचरणीयेषु, विवाहकृत्येष्वित्यर्थः । सञ्चरध्वं=प्रवर्तध्वं 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदम् । एवं-हे भूमिदेवाः=भूसुराः, ब्राह्मणा इत्यर्थः, 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेव-वाडवाः ।' इत्यमरः । श्रवणसुभगं = कर्णमधुरं, वेदमन्त्रमित्यर्थः । पठन्तु = उच्चार-यन्तु भवन्त इति शेषः । तथा—नानावचननिवहैः = अनेकवाक्यसमूहैः, 'नाना-रचननिवहैः' इति पाठान्तरं तस्य अनेकमाङ्गलिकपदार्थसमूहैरित्यर्थः । चित्रम् = आश्चर्यं यथा स्यात्तथा । मङ्गलेभ्यः=मङ्गलानि कर्तुं, वधूवरयोरिति शेषः । 'क्रियार्थोपप-दस्य च कर्मणि स्थानिन' इति 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' इति वा चतुर्थी । चेष्टयतां= चेष्टा क्रियतां, जनैरिति शेषः । ईदृक्चेष्टादीनां को हेतुरित्यत आह—प्रत्यासन्न इति । प्रत्यासन्नः = समीपवर्ती, जन्ययात्राप्रवेशः = जन्यानां ( वरस्य स्निग्धानां जनानां, जनीं = वधूं वहन्ति = प्रापयन्तीति जन्यास्तेषां, 'सञ्ज्ञायां जन्या' इति निपातः । 'जन्याः स्निग्धा वरस्य ये' इत्यमरः ), यात्रायाः ( वरगृहाद्वधूगृहगमन-

तीक्ष्ण दंष्ट्राके अग्रभागसे युक्त और विषके उद्वमनसे भीषण सर्पिणी सदा ही डसनेके लिए सावधान ही रहती है ॥ १ ॥

( नेपथ्यमें )

हे राजाओ ! कुलाचार देखनेवाले वृद्धजनोंकी आज्ञासे आपलोग कर्तव्य विवाह-कृत्योंमें प्रवृत्त हों । हे ब्राह्मणो ! आपलोग कर्णमधुर वेदमन्त्रका पाठ करें । लोग

यावच्च सबन्धिनो न परापतन्ति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवता-गृहमविघ्नमङ्गलाय गन्तव्यमित्यादिशति भगवती कामन्दकी। अन्यच्च गृहीतसविशेषमण्डनः प्रतीक्ष्यतामानुयात्रिको जन इति।

कपालकुण्डला—भवतु। इतो मालतीविवाहपरिकर्मसत्वरप्रतिहारजन-

क्रियायाः) प्रवेशः (प्राप्तिः), त्वरयतितरां = साऽतिशयं त्वरां जनयति, तरबन्तात्वरयतेः 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' इत्यामुप्रत्ययः। अत्र वाक्यत्रयाऽर्थान्प्रति चतुर्थचरणस्थस्य वाक्यस्य हेतुत्वात्काव्यलिङ्गमलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'हेतोर्वाक्यपदाऽर्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।' इति। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २ ॥

यावत् = यत्कालपर्यन्तं, 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे।' इत्यमरः। सम्बन्धिनः = वरयात्रिकाः, न परापतन्ति = न समागच्छन्ति, भूरिवसुभवनमिति शेषः। तावत् = तत्कालपर्यन्तम्। अविघ्नमङ्गलाय = विघ्नरहितमङ्गलाऽर्थम्, आदिशति = आज्ञापयति। 'भगवती कामन्दकी' स्थत्र 'भगवतीनिदेशवर्तिनोऽमात्यदाराः' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र—भगवतीनिदेशवर्तिनः = कामन्दक्यादेशपालनपराः, अमात्यदाराः = भूरिवसुभार्येत्यर्थः। इत्थं च दारशब्दस्य नित्यबहुवचनान्तत्वेन 'आदिशन्ती'ति बहुवचनान्तं क्रियापदं कार्यम्। अन्यच्च = अपरं च, अत्र 'तथे'ति पुस्तकान्तरपाठः। गृहीतविशेषमण्डनः = गृहीतम् (उपात्तम्) सविशेषं (विशिष्टम्) मण्डनं (मालत्यलङ्कारवस्त्रादिकम्) येन सः। आनुयात्रिकः = मालत्या अनुचरः, यद्वा वराऽनुगामीत्यर्थः। प्रतीक्ष्यतां = परिपाल्यताम्।

कपालकुण्डलेति। मालतीविवाहपरिकर्मसत्वरप्रतिहारजनसहस्रसङ्कुलात् = मालतीविवाहस्य (मालत्युद्वाहस्य) परिकर्मणि (प्रसाधने, 'परिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः) सत्वराः (संभ्रमाऽन्विताः, व्यग्राः स्त्रीजना इति भावः), तथा च

अनेक वाक्यसमूहोंसे आश्चर्यजनकरूपसे मङ्गलोंके लिए चेष्टा करें। वरयात्रिक जनोंका प्रवेश सबको अतिशय शीघ्रता करा रहा है ॥ २ ॥

'जब तक वरयात्रिक नहीं आते हैं तब तक वात्सल्यभाजन मालती विघ्नरहित मङ्गलके लिए नगरदेवताके मन्दिरमें जायँ' भगवती कामन्दकी ऐसी आज्ञा करती हैं। और भी—विशिष्ट अलङ्कार वस्त्र आदि लिये हुए मालतीके अनुचर जनको प्रतीक्षा करनी चाहिए।

कपालकुण्डला—हो। मालतीके विवाहके प्रसाधनमें शीघ्रता करनेवाले

सहस्रसंकुलात्प्रदेशादपक्रम्य माधवापकारं प्रत्यभिनिविष्टा भवामि। ( इति निष्क्रान्ता )

इति शुद्धविष्कम्भः।

कलहंसः ( प्रविश्य ) आज्ञप्तोऽस्मि नगरदेवतागर्भगृहवर्तिना मकरन्दसनाथेन माधवेन 'जानीहि तावदितोमुखं प्रवृत्ता मालती न वे'ति तद्यावदेनमानन्दयिष्यामि। (आणत्तोम्हि णअरदेव्वदागब्भहरवट्टिणा मअरन्दसणाहेण माहवेण 'जाणीहि दाव इदोमुहं प्पउत्ता मालदी ण वे'त्ति। ता जाव णं आणन्दइस्सं )

( ततः प्रविशतो माधवमकरन्दौ )

---

प्रतिहारजनाः ( द्वारपालजनाः प्रतिहारे जनाः, 'प्रतीहारे'ति दीर्घपाठे 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घत्वम् ) तेषां सहस्रम् ( अनेकसंख्या ) तत्सङ्कुलात् ( तद्व्याप्तात्, एतेन मालत्यपहरणस्याऽशक्यत्वं द्योत्यते ) प्रदेशात् = स्थानात्, भूरिवसुद्वारदेशादिति भावः। अभिनिविष्टा = अभिनिवेशयुक्ता। एतेनाऽष्टमाऽङ्कभावी विघ्नः सूच्यते।

शुद्धविष्कम्भक इति। मध्यमपात्ररूपया कपालकुण्डलया प्रयोजितत्वादयं शुद्धविष्कम्भकः। लक्षणं पूर्वमुक्तम्।

कलहंस इति। नगरदेवतागर्भगृहवर्तिना = नगरदेवतायाः ( पुरदेवतायाः ) गर्भगृहं ( वासगृहम् ) तस्मिन्वर्तते, तच्छीलेन। 'वर्तिने'त्यत्र 'स्थितेने'ति पुस्तकान्तरपाठः। मकरन्दसनाथेन = मकरन्दसहितेन, 'समकरन्देने'ति पुस्तकान्तरपाठः। एवमेव 'माधवेने'त्यत्र 'नाथमाधवेने'ति पुस्तकान्तरपाठः। इतोमुखं = नगरदेवतामन्दिराऽभिमुखमित्यर्थः। एनं = माधवम्, आनन्दयिष्यामि = आनन्दितं करिष्यामि 'इतोमुखं प्रवृत्ता मालती'ति प्रियनिवेदनेनेति शेषः।

---

स्त्रीजन तथा बहुतेरे द्वारपालजनोंसे व्याप्त इस प्रदेशसे हटकर माधवके अपकारके लिए अभिनिवेश करती हूँ। ( ऐसा कहकर वहाँ से निकलती है )

इति शुद्धविष्कम्भक।

कलहंस—( प्रवेश कर ) नगरदेवताके गर्भगृह ( कोठरी ) में रहनेवाले मकरन्दसे युक्त माधवने मुझे आज्ञा दी है—'मालती नगरदेवताके सम्मुख प्रवृत्त हुई कि नहीं ? पता लगाओ'। इसलिए उनको आनन्दित करूंगा।

( तब माधव और मकरन्द प्रवेश करते हैं )

माधवः—

मालत्याः प्रथमावलोकनदिनादारभ्य विस्तारिणो
भूयः स्नेहविचेष्टितैर्मृगदृशो नीतस्य कोटिं पराम् ।
अद्यान्तः खलु सर्वथास्य मदनायासप्रबन्धस्य मे
कल्याणं विदधातु वा भगवतीनीतिर्विपर्येतु वा ॥ ३ ॥

मालत्या इति । मृगदृशो मालत्याः प्रथमाऽवलोकनदिनात् आरभ्य विस्तारिणो भूयः स्नेहविचेष्टितैः परां कोटिं नीतस्य अस्य मे मदनाऽऽयासप्रबन्धस्य सर्वथा अद्य खलु अन्तः । भगवतीनीतिः कल्याणं विदधातु वा, विपर्येतु इत्यन्वयः । मृगदृशः = हरिणलोचनायाः, मृगस्य इव दृशौ यस्याः सा मृगदृक्, तस्याः । मालत्याः = मत्प्रेयस्याः, प्रथमाऽवलोकदनदिनात् = प्राग्दर्शनदिवसात्, बकुलवीथ्यामिति शेषः । आरभ्य = उपक्रम्य, विस्तारिणः = विस्तारशीलस्य, 'विस्तारिभिः' इति पाठे पदमिदं 'स्नेहविचेष्टितः' इत्यस्य विशेषणं बोद्धव्यम् । भूयः = पुनरपि, स्नेहविचेष्टितैः = प्रणयसूचकचेष्टाभिः, चित्रसन्दर्शनादिरूपाभिरिति भावः । परां = निरतिशयां, कोटिम् = उत्कर्षं, नीतस्य = प्रापितस्य, अस्य = अनुभवविषयस्य, मे = मम, मदनाऽऽयासप्रबन्धस्य = मन्मथव्यथापरम्परायाः, सर्वथा = सर्वप्रकारैः, अद्य = अस्मिन्दिने, खलु = निश्चयेन, अन्तः = समाप्तिः, भविष्यतीति शेषः । कथं भविष्यतीत्यत्र प्रकारद्वयमाह—कल्याणमिति । भगवतीनीतिः भगवत्याः ( कामन्दक्याः ) नीतिः ( नयः ) कल्याणं = मङ्गलं, मालतीपाणिग्रहणरूपमिति भावः । विदधातु = करोतु, वा = अथवा, पक्षान्तरे इत्यर्थः विपर्येतु = विपरीता भवतु, मद्भाग्यविपर्ययादिति शेषः । कामन्दकीनीतिसाफल्ये सति मालतीप्राप्त्यैव मदनवेदनाया अवसानं भविष्यति, दुर्दैवविलासेन कामन्दकीनीतिनैष्फल्येऽपि मज्जीवनेन साकमेव मदनवेदनाया अपि अवसानं भविष्यतीति प्रकारद्वयेन मदनायासस्याऽन्तः संभाव्यत इति भावः । अत्र 'विदधातु' 'विपर्येतु' इत्यनेकक्रिययोर्भगवतीनीतेः कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारः । अत्र मार्गो नाम गर्भसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'तत्त्वाऽर्थकथनं मार्गः' इति । एवं चाऽत्र प्राप्त्याशा नाम तृतीया कार्याऽवस्था । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'उपायाऽपायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

माधव—मृगीके सदृश नेत्रोंसे युक्त मालतीके प्रथम दर्शनदिवससे आरम्भ कर विस्तारशील और फिर प्रणयसूचक चेष्टाओंसे निरतिशय उत्कर्षको प्रापित मेरी कामवेदनाकी परम्पराकी सब तरहसे आज समाप्ति होगी। भगवती ( कामन्दकी ) की नीति कल्याण करेगी वा विपरीत होगी ॥ ३ ॥

मकरन्दः—कथं भगवत्याः सा मेधाशक्तिर्विपर्येष्यति ।

कलहंसः—( उपसृत्य ) नाथ, दिष्ट्या वर्धसे । प्रवृत्ता खल्वितोमुखं मालती । ( णाह, दिट्ठिआ वड्ढसि । पउत्ता क्खु इदोमुहं मालदी )

माधवः—अपि सत्यम् ?

मकरन्दः—किमश्रद्दधानः पृच्छसि । न केवलं प्रवृत्ता प्रत्यासन्ना च वर्तते । तथा हि—

**अस्माकमेकपद एव मरुद्विकीर्णजीमूतजालरसितानुकृतिर्निनादः ।**

---

मकरन्द इति । सा = असकृत्पूर्वमनुभूता । मेधाशक्तिः = धारणावत्या बुद्धेः सामर्थ्यं, 'धीर्धारणावती मेधा' इत्यमरः । विपर्येष्यति = विपरीता भविष्यति, भगवतीनीतिः फलिष्यतीति भावः । अत्र 'वयस्य ! कथं हि भगवत्याः सुमेधसो नीतिर्विपर्ययमेष्यती'ति पाठान्तरम् । तत्र सुमेधसः = शोभनधारणोपेतबुद्धियुक्तायाः, शोभना मेधा यस्यास्तस्याः, 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' 'नञ्दुःसुभ्य इत्येव' इति समासान्तोऽसिच्प्रत्ययः । विपर्यं = वैपरीत्यम् । एष्यति = प्राप्स्यति ।

कलहंस इति । दिष्ट्या = भाग्येन ।

माधव इति । अपि सत्यं = किं सत्यमेव मालती इतोमुखं प्रवृत्ता !, अपिः प्रश्नार्थकः ।

मकरन्द इति । 'सखे' इत्यधिकः पाठः । अश्रद्दधानः = विश्वासरहितः, कलहंसवाक्य इति शेषः । इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । प्रत्यासन्ना = निकटवर्तिनी ।

अस्माकमिति । मरुद्विकीर्णजीमूतजालरसिताऽनुकृतिः गम्भीरमङ्गलमृदङ्गसहस्रजन्मा निनादः एकपद एव अस्माकं शब्दान्तरश्रवणशक्तिम् अपाकरोतीत्यन्वयः । मरुद्विकीर्णजीमूतजालरसिताऽनुकृतिः = मरुता ( वायुना ) विकीर्णं ( विक्षिप्तम् ) यत् जीमूजालं ( मेघसमूहः ) तस्य यत् रसितं ( गर्जितम्, 'स्तनितं गर्जितं

---

मकरन्द—भगवतीकी वह मेधाशक्ति ( धारणावती बुद्धिका सामर्थ्य ) कैसे विपरीत होगी ?

कलहंस—( समीप जाकर ) स्वामिन् ! भाग्यसे आपको वृद्धि हो रही है । नगरदेवताके सम्मुख मालती प्रवृत्त हो रही है ।

माधव—क्या यह सच है ?

मकरन्द—क्यों विश्वासरहित होकर पूछ रहे हो ? मालती केवल प्रवृत्त ही नहीं निकटवर्तिनी हो रही है । जैसे कि—

वायुसे प्रेरित मेघसमूहके गर्जनका अनुकरणवाला, गम्भीर माङ्गलिक अनेकों

गम्भीरमङ्गलमृदङ्गसहस्रजन्मा शब्दान्तरश्रवणशक्तिमपाकरोति ॥ ४ ॥
तदेहि। जालमार्गेण पश्यामः।

(तथा कुर्वन्ति)

कलहंसः—नाथ, पश्य। इमे तावदुत्पतितराजहंसविभ्रमाभिरामचामरसमीरणोद्वेलकदलिकावलीतरङ्गितोत्तानगगनाङ्गणसरोनिरन्तरोद्दण्डपुण्डरीकविभ्रमं वहन्तो मङ्गलधवलातपत्रनिवहा दृश्यन्ते। इमाः सविलासक-

मेघनिर्घोषे रसितादि चे'त्यमरः) तस्य अनुकृतिः (अनुकरणम्) यस्मिन् सः, मेघगर्जितध्वनिसदृश इति भावः। तथा गम्भीरमङ्गलमृदङ्गसहस्रजन्मा=गम्भीरं (गम्भीरशब्दयुक्तम्) मङ्गलं (मङ्गलप्रयोजनम्) यत् मृदङ्गसहस्रम् (बहवो मुरजाः) ततः जन्म (उत्पत्तिः) यस्य सः, अनेकमृदङ्गगम्भीरशब्दतुल्य इति भावः। एतादृशो निनादः=शब्दः, एकपद एव=अकस्मात् एव, अस्माकं, शब्दान्तरश्रवणशक्तिम्=अन्यशब्दाऽऽकर्णनसामर्थ्यम्, अपाकरोति=निरस्यति, वाद्यरवेण शब्दान्तरं न श्रूयते, तथा च मालती प्रत्यासन्ना वर्तत इति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

तदेहीति। तत्=तस्मात्कारणात्। एहि=आगच्छ। जालमार्गेण=गवाक्षपथेन। तथा कुर्वन्ति। जालमार्गेण पश्यन्ति, माधवमकरन्दकलहंसा इति शेषः।

कलहंस इति। मालत्यागमनं प्रतिपादयति—नाथेति। उत्पतितेत्यादि=उत्पतितानाम् (उड्डीनानाम्) राजहंसानाम् ('राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः।' इत्युक्तलक्षणानां हंसविशेषाणाम्) इव विभ्रमाः (विलासाः, विशिष्टभ्रमणानि वा) येषां तानि, तेषाम् अभिरामाणां (सुन्दराणाम्) चामराणां (प्रकीर्णकानां 'चामरं तु प्रकीर्णकम्' इत्यमरः) समीरणेन (वायुना) उद्वेला (ऊर्ध्वं चरन्ती, 'उद्वेल्लन्ती'ति पाठे कम्पमाना 'उद्वेलिते'ति पाठे सञ्चालितेत्यर्थः) तादृशी या कदलिकाऽऽवली (पताकापङ्क्तिः, 'रम्भावृक्षेऽथ कदली पताकामृगभेदयोः।' इति मेदिनी) तया तरङ्गितं (सञ्जाततरङ्गम्) यत् उत्तानम् (उन्नतम्, अगभीरं

मृदङ्गों (पखावजों) से उत्पन्न शब्द, आकस्मिक रूपसे ही हमलोगोंकी अन्य शब्द सुननेकी शक्तिको हटा रहा है ॥ ४ ॥

इस कारणसे आओ। झरोखेके मार्गसे देखें।

(वैसा ही करते हैं।)

कलहंस—स्वामिन्! देखिए। उड़े हुए राजहंसोंके विलास वा विशिष्ट भ्रमणोंसे युक्त सुन्दर चामरोंके वायुसे ऊपर हिलनेवाली पताकाओंकी पंक्तिसे तरङ्गित

वालतताम्बूलाभिपूरितकपोलमण्डलाभोगव्यतिकरस्खलितमधुरमङ्गलोद्गीतबद्धकोलाहलैर्विविधरत्नालंकारकिरणावलीविडम्बितमहेन्द्रचापविच्छेदविच्छुरितनभःस्थलैर्वारसुन्दरीकदम्बकैरध्यासिताः क्वणत्कनककिंकिणीरणितझणझणत्कारिण्यः कारण्यः। ( णाह, पेक्ख। इमे दाव उप्पडिअराअहंसविब्भमाहिरामचामरसमीरणुव्वेल्लिअकदलिआवलीतरङ्गिदुत्ताणगअणङ्गणसरोणिरन्तरुद्दण्डपुण्डरीअविब्भमं वहन्दो मङ्गलधवलातपत्तणिवहा दीसन्ति। इमाओ सविलासकवलिदतम्बूलाहिपूरिदकवोलमण्डलाभोअव्वइअरक्खलिदमहुरमङ्गलुग्गीअबद्धकोलाहलेहिं विविहरअणालंकारकिरणावलीविडम्बिदमहिन्दचावविच्छेअविच्छुरिदणहत्थलेहिं

वा, 'उत्तालम्' इति पाठे स्याद्दमित्यर्थः ) गगनाङ्गणं ( नभोऽजिरम् ) तदेव सरः ( कासारः, 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः )। तत्र निरन्तराणाम् सान्द्राणां, (निर्गतमन्तरं येषां, तेषाम् ) उद्दण्डानाम् ( उन्नतनालानाम्, उन्नतो दण्डो येषां, तेषाम् ) पुण्डरीकाणां ( श्वेतकमलानाम् ) विभ्रमं ( विलासम् ), वहन्तः = धारयन्तः। मङ्गलधवलाऽऽतपत्रनिवहाः = माङ्गलिकशुक्लच्छत्रसमूहाः। दृश्यन्ते = विलोक्यन्ते। सविलासेत्यादि = सविलासं ( सलीलम् ) कवलितं ( चवितमित्यर्थः ) यत् ताम्बूलं ( नागवल्लीदलम् ) तेनाऽभिपूरितस्य ( अभिपूर्णस्य ) कपोलमण्डलस्य ( गण्डफलकस्य ) आभोगेन ( विस्तारेण ) यो व्यतिकरः ( सम्पर्कः ) तेन स्खलितं ( निःसृतम् ) मधुरं ( मनोहरम् ) यत् मङ्गलोद्गीतं ( मङ्गलरूपमुच्चैर्गानम् ) तेन बद्धः ( विहितः ) कोलाहलः ( कलकलः ) यैस्तैः। विविधरत्नाऽलङ्कारकिरणावलीविडम्बितमहेन्द्रचाप-विच्छेदविच्छुरितनभःस्थलैः=विविधानाम् ( अनेकप्रकाराणाम् ) रत्नाऽलङ्काराणां ( मणिभूषणानाम् ) किरणावलीभिः ( मयूखपङ्क्तिभिः ) विडम्बिताः ( अनुकृताः ) ये महेन्द्रचापाः ( इन्द्रायुधानि ) तेषां विच्छेदैः ( खण्डैः ) विच्छुरितं ( व्याप्तम् ) नभःस्थलं ( गगनतलम् ) यैस्तैः। एतादृशैर्वारसुन्दरीकदम्बकैः = वेश्यासमूहैः, "स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्" इत्यमरः। उक्तताऽवयवभेदमाश्रित्य बहुवचनमुपपन्नम्। अध्यासिताः = आरूढाः, क्वणत्कनककिङ्किणीरणितझणझणत्कारिण्यः = क्वणन्त्यः ( शब्दायमानाः )

उन्नत आकाशाङ्गनरूप सरोवरमें सान्द्र उत्पन्न नाल ( दण्ड ) वाले श्वेतकमलोंके विलासको धारण करते हुए ये माङ्गलिक सफेद छात्रोंके समूह दिखाई दे रहे हैं। लीलाके साथ चवाये गये पानसे अभिपूर्ण कपोलमण्डलके विस्तारसे होनेवाले सम्पर्कसे निकले गये माङ्गलिक उन्नत गानसे कोलाहल करनेवाली अनेक रत्न और अलङ्कारोंकी किरणोंकी पङ्क्तियोंसे अनुकृत इन्द्र-धनुषोंके खण्डोंसे आकाशतलको-

वारसुन्दरीकदम्बेहिं अज्झासिआओ क्कणन्तकणअकिंकिणीरणिअझणझणक्कारिणीओ करिणीओ )

( माधवमकरन्दौ सकौतुकं पश्यतः )

मकरन्दः—स्पृहणीयाः खल्वमात्यभूरिवसोर्विभूतयः । तथा हि—

प्रेङ्खद्भूरिमयूरमेचकचयैरुन्मेषिचाषच्छद-
च्छायासंवलितैर्विवर्तिभिरिव प्रान्तेषु पर्यावृताः ।

---

याः कनककिङ्किण्यः ( सुवर्णक्षुद्रघण्टिकाः, 'किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका ।' इत्यमरः ) तासां रणितैः ( शब्दैः ) झणझणत्कारिण्यः ( झणझणदित्याकारकशब्दकरणशीलाः ) करिण्यः ( हस्तिन्यः ) दृश्यन्त इति पूर्ववाक्यादध्याहार्यम् ।

मकरन्द इति । विभूतयः = ऐश्वर्याणि । स्पृहणीयाः = अभिलषणीयाः ।

प्रेङ्खदिति । दिश उन्मुखमणिज्योतिर्वितानैः उन्मेषिचापच्छदच्छायासंवलितैः विवर्तिभिः प्रेङ्खद्भूरिमयूरमेचकचयैः प्रान्तेषु पर्यावृताः इव व्यक्ताऽऽखण्डलकार्मुका इव उच्चित्रचीनांऽशुकप्रस्तारस्थगिता इव भवन्ति इत्यन्वयः । दिशः = आशाः, उन्मुखमणिज्योतिर्वितानैः = उन्मुखानाम् ( ऊर्ध्वप्रसृतानाम् ) मणिज्योतिषाम् ( अनेकवर्णानां रत्नकिरणानाम् ) वितानैः ( विस्तारैः ), उन्मेषिचापच्छदच्छाया-संवलितैः=उन्मेषिणाम् ( ऊर्ध्वप्रसरणशीलानाम्, उड्डीनानामिति भावः ) चाषाणां ( किकीदिवीनाम् 'अथ चाषः किकीदिविः' इत्यमरः ) छदाः ( पक्षाः, वातेनाऽऽकुला इति शेषः ) तेषां छायाभिः ( कान्तिभिः ) संवलितैः ( मिश्रितैः )। विवर्तिभिः = प्रसरणशीलैः। प्रेङ्खद्भूरिमयूरमेचकचयैः = प्रेङ्खन्तः ( प्रचलन्तः ) भूरयः (प्रचुराः) ये मयूराः (बर्हिणः) तेषां मेचकचयैः (चन्द्रकसमूहैः,'समौ चन्द्रकमेचकौ' इत्यमरः) । प्रान्तेषु=पर्यन्तप्रदेशेषु । पर्यावृता इव=परितः (सर्वतः) आवृताः व्याप्ताः

---

व्याप्त करनेवाली वेश्याओंके समूहोंसे आरूढ ( चढ़ी गई ) शब्द करनेवाला सुवर्ण किङ्किणियों ( घुंघरुओं ) के शब्दोंसे 'झणझणत्' शब्द करनेवाली ये हथिनियाँ दिखाई दे रही हैं ।

( माधव और मकरन्द कौतुकके साथ देखते हैं । )

मकरन्द—मन्त्री भूरिवसुजीके ऐश्वर्य स्पृहणीय हैं । जैसे कि—

दिशायें ऊपर फैले हुए अनेक वर्णवाले रत्नकिरणोंके विस्तारोंसे उड़े हुए चाषपक्षियोंके वायुसे आकुल पक्षोंकी छायाओंसे मिश्रित प्रसरणशील चलते हुए प्रचुर

व्यक्ताखण्डलकार्मुका इव भवन्त्युच्चित्रचीनांशुक-
प्रस्तारस्थगिता इवोन्मुखमणिज्योतिर्वितानैर्दिशः ॥ ५ ॥

कलहंसः—कथं ससंभ्रमानेकप्रतीहारमण्डलावर्जितोज्ज्वलकनककल॰धौतपङ्कलिप्तचित्रवेत्रलतापरिक्षिप्तरेखारचितमण्डलो दूरसंस्थितः परिजनः। एषा च बहुलसिन्दूरनिकरसंध्यारागोपरक्तमुखमधुरघूर्णमाननक्षत्रमालाभर॰

---

इवेति भावः। भवन्तीति शेषः। व्यक्ताऽऽखण्डलकार्मुका इव=व्यक्तानि (स्फुट॰दृश्यमानानि) आखण्डलकार्मुकाणि (शक्रधनूंषि) यासु ता इव भवन्ति। एवं च उच्चित्रचीनांऽशुकप्रस्तारस्थगिता इव=उच्चित्राणि (उत्खचितानि=उल्लिखितानि चित्राणि=आलेख्यानि येषु तानि) यानि चीनांऽशुकानि (चीनदेशभववस्त्राणि) तेषां प्रस्तारेण (प्रसारेण) स्थगिता इव (आच्छादिता इव) भवन्ति। अनेन सूचि॰तेन गणिकागणरत्नाऽलङ्कारबाहुल्येनाऽमात्यभूरिवसोर्विभूतेः स्पृहणीयत्वं द्योत्यते। अत्र तिसृणामुत्प्रेक्षाणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

कलहंस इति। ससम्भ्रमेत्यादि—ससम्भ्रमाणाम् (त्वरायुक्तानाम्) अनेकेषां (बहूनाम्) प्रतीहाराणाम् (द्वारपालानां), प्रतिहरणं प्रतीहारः भावे घञ् 'उपस॰र्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति वा दीर्घः। प्रतीहारः (जनवारणम्) अस्ति अस्य सः तेषाम्, ('अर्शआदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः) मण्डलेन (समूहेन) आवर्जिताभिः (अवनमिताभिः) उज्ज्वलेन (अवदातेन) कनकस्य (सुवर्णस्य) कलधौतस्य (रजतस्य च 'कलधौतं रूप्यहेम्नोः' इत्यमरः, अन्तराऽन्तरा घटितेनेति शेषः) पङ्केन (लेपेन) लिप्ताभिः (कृतसंसर्गाभिः) चित्राभिः (अनेकवर्णाभिः) वेत्रलताभिः (वेत्रदण्डिकाभिः) परिक्षिप्ता (भूमौ लिखिता) या रेखा (न लङ्घनीयेति सीमात्वेन परिकल्पिता लेखा) तया रचितं (निर्मितम्) मण्डलं (चक्रवालम्) येन सः। परिजनः=सेवकजनः, मालत्या इति शेषः। दूरसंस्थितः=विप्रकृष्टस्थानस्थः। बहु॰लसिन्दूरेत्यादिः=बहुलानां (बहूनाम्) सिन्दूराणां (नागसम्भवानां), नागं=

---

मयूरोंके चन्द्रकसमूहोंके पर्यन्तप्रदेशोंमें चारो ओर व्याप्तकी सदृश स्फुट दृश्य॰मान इन्द्रधनुषोंसे युक्तकी सदृश, एवम् उत्खचित चित्रोंवाले चीनदेशके वस्त्रोंके प्रसारसे आच्छादितकी सदृश होती हैं ॥ ५ ॥

कलहंस—किस तरह त्वरायुक्त अनेक द्वारपालोंके समूहसे झुकाई गई उज्ज्वल सुवर्ण और चांदीके बीच बीचमें किये गये मुलम्मेसे युक्त अनेक वर्णोंकी वेत्रलताओंसे भूमिमें लिखी गई रेखासे मण्डलकी रचना करनेवाला मालतीका

णधारिणीं करेणुरजनीमलंकुर्वतीत एव कौतूहलोत्फुल्लमुखसमस्तलोकदृश्यमानमनोहरापाण्डुरपरिक्षामदेहशोभाविभावितानङ्गवेदना प्रथमचन्द्रलेखाविभ्रमं वहन्ती किंचिदन्तरं प्रसृता मालती। ( कहं ससंभामाणेअपडिहारमण्डलावज्जिदुज्जलकणअकलस्रोपक्कलित्तचित्तवेत्तलदापरिक्खित्तरेहारइदमण्डलो दूरसंठिदो परिअणो। एसा अ बहुलसिन्दूरणिअरसंज्झारओवरत्तमुहमहुरघोरलन्तणक्खत्तमालाभरणधारिणि करेणुरअणि अलंकरन्ती इदो जेव्व कोदहलुप्फुल्लमुहसमत्थलोअदिस्सन्तमणहरप्पण्डुरपरिक्खामदेहसोहाविभाविआणङ्गवेअणा पढमचन्दलेहाविब्भमं वहन्दी किंचिअन्दरं पसरिदा मालदी )

---

सीसं, सम्भवः=उत्पत्तिस्थानं येषां तेषाम्। 'सिन्दूरं नागसंभवम्।' इत्यमरः। निकरः ( समूहः ) सन्ध्याराग इव ( सन्ध्यालौहित्यम् इव ) तेन उपरक्तं ( लोहितवर्णम् ) यत् मुखम् ( आननम्, प्रथमभागः ) तस्मिन् मधुरं ( मनोहरं यथा स्यात्तथा ) घूर्णमाना ( दीप्तिप्रसाराद् भ्रमन्ती ) या नक्षत्रमाला ( हारावली एव तारापङ्क्तिः, 'सैव नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिकैः।' इत्यमरः )। सैव=एकावल्येव, आभरणं ( भूषणम् ) तद् धारयतीति तच्छीला ताम्। करेणुरजनीम् ( करेणुः=हस्तिनी एव रजनी=रात्रिस्ताम् ) अलङ्कुर्वती=भूषयन्ती, आरोहणात्तिमिरनिकरनिरसनाच्चेति शेषः। कौतूहलोत्फुल्लेत्यादिः=कौतूहलेन ( कौतुकेन ) उत्फुल्लमुखाः ( विकसिताऽऽननाः, 'उन्मुखा' इति पाठे उन्नताऽऽनना इत्यर्थः ) ये समस्तलोकाः ( सकलमानवाः ) तैः दृश्यमाना (अवलोक्यमाना) मनोहरा ( हृदयहारिणी ) आपाण्डुरा ( ईषत्सितवर्णा विरहादिति शेषः ) परिक्षामा ( अतिशयकृशा ) या देहशोभा ( शरीरकान्तिः ) तया विभाविता ( प्रतीता ) अनङ्गवेदना ( कामव्यथा ) यस्याः सा। प्रथमचन्द्रलेखाविभ्रमं=प्रथमचन्द्रलेखायाः ( प्रतिपच्चन्द्रकलायाः ) विभ्रमं ( विलासम्, ) वहन्ती=धारयन्ती। किञ्चित्=ईषत्, अन्तरम्=अन्यदेशं, परिजनमण्डलादपसृत्येति शेषः। प्रसृता=समागता। 'बहुलसिन्दूरे' त्यत्र श्लिष्टरूपकं, 'प्रथमचन्द्रलेखाविभ्रमम्' इत्यत्राऽसम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शनाऽलङ्कारः। तथा च द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

---

परिचारक जन दूर पर बैठा हुआ है। सन्ध्याकालके लौहित्यके सदृश सिन्दूरोंके समूहसे उपरक्त मुखमें मनोहरताके साथ दीप्तिप्रसारसे घूमती हुई हारावलीरूप तारापङ्क्ति भूषणको धारण करती हुई, हस्तिनीरूप रात्रिको (आरोहणसे) अलङ्कृत करती हुई इधर ही कौतुकसे विकसित मुखवाले सकल मनुष्योंसे देखी जाती हुई हृदयहारिणी विरहके कारण कुछ सफेद वर्णवाली और अतिशय कृश शरीर-

मकरन्दः—वयस्य, पश्य ।

इयमवयवैः पाण्डुक्षामैरलंकृतमण्डना
कलितकुसुमा बालेवान्तर्लता परिशोषिणी ।
वहति च वरारोहा रम्यां विवाहमहोत्सव-
श्रियमुदयिनीमुद्भूतां च व्यनक्ति मनोरुजम् ॥ ६ ॥

इयमिति । पाण्डुक्षामैः अवयवैः अलङ्कृतमण्डना कलितकुसुमा अन्तः परिशोषिणी बाला लता इव इयं वराऽऽरोहा रम्याम् उदयिनीं विवाहमहोत्सवश्रियं वहति उद्भूतां मनोरुजं च व्यनक्तीत्यन्वयः । पाण्डुक्षामैः=ईषच्छुक्लकृशैः, वियोगेनेति शेषः। अवयवैः=अङ्गैः, सहजलावण्यमयैरिति शेषः। अलङ्कृतमण्डना=अलङ्कृतानि (भूषितानि) मण्डनानि (अलङ्काराः) यया सा, स्वेदहलावण्येन भूषणान्यपि भूषयन्तीति भावः। कलितकुसुमा=धृतप्रसूना, मालतीपक्षे शृङ्गारप्रियत्वाल्लतापक्षे सामयिकत्वादिति भावः। अन्तः=अभ्यन्तरे, परिशोषिणी=परिशुष्काऽवस्थां गता, कीटवेधादिदोषवशादिति भावः। बाला=नूतना, लता इव=वल्ली इव, विद्यमानेति शेषः। इयं=सन्निकृष्टस्थिता, वरारोहा=उत्तमाऽङ्गना, मालतीति भावः। वरः (सुन्दरः) आरोहः (नितम्बः) यस्याः सा। रम्यां=मनोहराम्, उदयिनीम्=अभ्युदययुक्तां, विवाहमहोत्सवश्रियम्=उद्वाहमहोत्सवशोभां, वहति=धारयति, उद्भूतां=तत्कालोत्पन्नाम्, 'उद्गाढाम्' इति पाठे उत्कटामित्यर्थः। तादृशीं मनोरुजं च=चित्तव्यथां च, मदनजनितामिति भावः। व्यनक्ति=द्योतयति, निरुक्तैः पाण्डुक्षामाऽवयवादिभिरित्यर्थः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। 'वहन' 'व्यञ्जने'त्यनेकक्रिययोः वरारोहारूपाया एकस्याः मालत्याः कर्तृकारकत्वाद्दीपकाऽलङ्कारश्चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। हरिणी वृत्तम् ॥ ६ ॥

---

शोभासे प्रतीत कामव्यथासे युक्त प्रतिपदाकी चन्द्रकलाके विलासको धारण करती हुई ये मालती परिजनोंसे कुछ दूर प्रदेशपर आ गई हैं।

मकरन्द—मित्र ! देखो ।

कुछ सफेद और कृश अवयवोंसे अलङ्कारोंको अलंकृत करनेवाली, फूलोंको धारण करनेवाली, भीतर परिशुष्क अवस्थाको प्राप्त नूतन लताकी सदृश ये मालती, मनोहर और अभ्युदयसम्पन्न विवाहमहोत्सवकी शोभाको धारण करती हैं और तत्कालमें उत्पन्न चित्तवेदनाको भी व्यक्त कर रही है ॥ ६ ॥

कथं निषादिता गजवधूः ।

माधवः—( सानन्दम् ) कथमवतीर्य भगवतीलवङ्गिकाभ्यां प्रवृत्तैव ।

( ततः प्रविशति कामन्दकी, मालती लवङ्गिका च )

कामन्दकी—( सहर्षमपवार्य )

विधाता भद्रं नो वितरतु मनोज्ञाय विधये,
विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम् ।
कृतार्था भूयासं प्रियसुहृदपत्योपनयतः,

कथमिति । निषादिता = उपवेशिता, मालत्यादीनामवतारणाऽर्थमिति भावः ।

माधव इति । भगवतीलवङ्गिकाभ्यां=कामन्दकीलवङ्गिकाभ्यां, पुस्तकान्तरे 'समम् इत' इत्यधिकः पाठस्तस्य सहाऽस्मिन्स्थान इत्यर्थः । प्रवृत्ता = गन्तुमुद्यता इत्यर्थः । कामन्दकीति । स्वप्रयासस्य सफलप्रायत्वात्सहर्षत्वमवधेयम् ।

विधातेति । विधाता मनोज्ञाय विधये नो भद्रं वितरतु । देवाः परमरमणीयां परिणतिं विधेयासुः । प्रियसुहृदपत्योपनयतः कृताऽर्था भूयासम् । अयं कृत्स्नः प्रयत्नः फलतु, शिवतातिश्च भवत्वित्यन्वयः । विधाता = ब्रह्मा, मनोज्ञाय = मनोहराय, परस्पराऽनुगुणयोगादिति शेषः । विधये = विधानाय, मालतीमाधवविवाहरूपस्येति भावः ।'तादर्थ्ये' यद्वा 'क्रियार्थोपपदस्य चे'त्यादिना चतुर्थी । नः=अस्मभ्यं, वितरणकर्मणा भद्रेण सम्बन्धात् 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इति सम्प्रदानत्वात् 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इति चतुर्थी । यद्वा अस्माकं 'भद्र' पदेन योगे 'चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः' इति षष्ठी चतुर्थी वा । भद्रं = कल्याणं, समीहितफलप्रतिबन्धनिरसनरूपमिति भावः । वितरतु = ददातु । देवाः = सुराः, परमरमणीयाम् = अतिशयशोभनां, परिणतिं = परिणामं, राजाऽनुमोदनेन च समुचितवधूवरसमागमरूपमिति शेषः । विधेयासुः = क्रियासुः, 'एलिँङि' इत्येत्वम् । आत्मनोऽपि फलमाशास्ते—कृताऽर्थेति । प्रियसुहृदपत्योपनयतः = प्रियसुहृदोः ( अभीष्टमित्रयोः, भूरिवसुदेवरातयोरित्यर्थः ) अपत्ययोः ( सन्तानयोः, मालती-

किस तरह हथिनी बैठाई गई ।

माधव—( आनन्दके साथ ) किस प्रकारसे ( मालती ) हथिनीसे उतरकर भगवती और लवङ्गिका के साथ जानेको उद्यत हो गई ।

( तब कामन्दकी, मालती और लवङ्गिका प्रवेश करती हैं । )

कामन्दकी—( हर्षके साथ अपने आप ) ब्रह्माजी मनोहर विधानके लिए हमलोगोंको कल्याण वितरण करें । देवतागण अतिशय सुन्दर परिणामको प्रकट

प्रयत्नः कृत्स्नोऽयं फलतु, शिवतातिश्च भवतु ॥ ७ ॥

मालती—( स्वगतम् ) केन पुनरुपायेन सांप्रतं मरणनिर्वाणस्यान्तरं संभावयिष्यामि। मरणमपि मे मन्दभागधेयाया अभिमतमतिदुर्लभं भवति। ( केण उण उवाएण संपदं मरणणिव्वाणस्स अन्दरं संभावइस्सं। मरणं वि मे मन्दभाअहेआए अहिमदं अदिदुल्लहं होदि )

---

माधवयोरिति भावः ) उपनयतः ( वैवाहिकसम्बन्धात्, उपनयादिति, 'अपादाने चाऽहीयरुहोः' इति तसिः, 'प्रियसुहृदपत्योपयमने' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र उपयमने विवाह इत्यर्थः )। कृताऽर्था = कृतकृत्या, अहमिति शेषः। भूयासं=भवेयम्। 'कृताऽर्थीभूयासम्' इति पाठे—अकृताऽर्था कृताऽर्था यथा सम्पद्यते तथा भूयासमिति विग्रहे 'कृभ्वस्तियोगे संपद्य कर्तरि च्विः' इति च्विप्रत्ययः। 'च्वौ चे'ति दीर्घत्वम्। एवं च—अयं = सद्योऽनुष्ठितः, कृत्स्नः = समस्तः, प्रयत्नः = प्रयासः, सुहृदपत्योद्वाहसंघटनात्मक इति भावः। फलतु = उत्तरकालशुद्ध्या फलदायी भवतु। शिवतातिश्च = क्षेमङ्करश्च, शिवं करोतीति, 'शिवशमरिष्टस्य करे' इति तातिल्प्रत्ययः, 'क्षेमङ्करोऽरिष्टतातिः शिवतातिः शिवङ्करः।' इति कोषः। 'शिवदायी' ति पुस्तकान्तरपाठः। स च 'शिवताति'रिति छान्दसपाठाऽपेक्षया लौकिकत्वात्साधीयान्। कल्याणदायीति तस्याऽर्थः। शिवं ददातीति तच्छीलः, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति ताच्छील्ये णिनिप्रत्ययः 'आतो युक्चिण्कृतोः' इति युगागमश्च। भवतु=भूयादित्याशंसा। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ७ ॥

अथ मालती मुहूर्ताऽनन्तरमात्मनो नन्दनेन सममुद्वाहं विभाव्य स्वगतरूपेण निर्वेदं प्रकाशयति-केनेति। साम्प्रतम् = अधुना। मरणनिर्वाणस्य = प्राणत्यागरूपस्य दुःखमोक्षस्य, अन्तरम् अवकाशं, संभावयिष्यामि = संभावनां करिष्यामि, अनभीप्सितसंयोगजनितदुःखाऽनुभवान्मरणमेव वरतरमिति भावः। 'संभावयिष्ये' इति पाठे प्राप्स्यामीत्यर्थः। समुपसर्गपूर्वकात् 'भू प्राप्तावात्मनेपदी' इत्यस्माद्धातोर्लृट्। अत्र वितर्कप्रतिपादनाद्रूपं नाम सन्ध्यङ्गं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'रूपं वाक्यं वितर्कवत्' इति। मन्दभागधेयायाः = दुर्भाग्यायाः, भाग एव भागधेयं 'वा भागरूपनामभ्यो धेय' इति स्वाऽर्थे ( प्रकृत्यर्थे ) धेयप्रत्ययः, 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री

---

करें। प्रियमित्रोंकी ( भूरिवसु और देवरातके), सन्तानोंके (मालती और माधवके) विवाहसे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। यह सम्पूर्ण प्रयत्न फलित और कल्याणकारी हो ॥७॥

मालती—( मन ही मन ) इस समय किस उपायसे मरणरूप दुःखमोक्षकी संभावना करूँ। मुझ मन्दभाग्यवालीको अभिमत मरण भी अत्यन्त दुर्लभ हो रहा है।

लवङ्गिका—अतिक्लेशिता खलु प्रियसख्येतेनानुकूलविप्रलम्भेन। (अदिकीलालिदा खु पिअसही एदिणा अणुऊलविप्पलम्भेण)

(प्रविश्य भूषणपटलकहस्ता)

प्रतीहारी—भगवतीममात्यो भणति। एतेन नरेन्द्रानुप्रेषितविवाहनेपथ्येन देवतायाः पुरतोऽलंकर्तव्या मालतीति। (भअवदीं अमच्चो भणादि। एदिणा णरिन्दाणुप्पेसिदविवाहणेवत्थेण देवदाए पुरदो अलंकरिदव्वा मालदि त्ति)

कामन्दकी—युक्तमाङ्गलिकं हि तत्स्थानम्। इतो दर्शय।

---

नियतिर्विधिः।' इत्यमरः। मन्दं भागधेयं यस्यास्तस्याः। 'मन्दभागधेयानाम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। अभिमतम्=अभीष्टम्, अभीष्टवियोगादनभीष्टसंयोगाच्च मरणं प्रार्थ्यते तदपि मम मन्दभागधेयायाः कृते अतिदुर्लभं जातमिति निर्वेदपूर्णोक्तिः।

लवङ्गिकेति। अतः परं 'स्वगतम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। प्रियसखी=दयितवयस्या, मालतीति भावः। अनुकूलविप्रलम्भेन=अनुकूलस्य (प्रियस्य, माधवस्येति भावः) विप्रलम्भेन (विरहेण)। अतिक्लेशिता=अतिबाधिता, 'अतिक्लामिते'ति पाठे अतिक्लमम् (अतिशयग्लानिम्) प्रापिता इत्यर्थः।

प्रविश्येति। भूषणपटलकहस्ता=भूषणपटलकम् (आभरणधारणपात्रम्) हस्ते (पाणौ) यस्याः सा। 'पेटकहस्ते'ति पाठे आभरणमञ्जूषाहस्तेत्यर्थः। 'पेटकं पुस्तकादीनां मञ्जूषायां कदम्बके।' इति मेदिनी।

नरेन्द्राऽनुप्रेषितविवाहनेपथ्येन=नरेन्द्राऽनुप्रेषितेन (राजप्रहितेन) विवाहनेपथ्येन (उद्वाहोचितवेशेन)।

कामन्दकीति। तत्स्थानं=देवतास्थानम्। युक्तमाङ्गलिकं=युक्तम् (उचितम्) माङ्गलिकं (मङ्गलप्रयोजनम्) यस्मिंस्तत्। पुस्तकान्तरे—'युक्तमहाऽमात्यः। माङ्गलिकमेतत्स्थानम्। अतो दर्शये'ति पाठान्तरम्।

---

लवङ्गिका—प्रियसखी इस प्रियवियोगसे अतिशय बाधित हुई हैं।

(आभूषणके पात्रको हाथमें लेती हुई प्रवेश कर)

प्रतिहारी—मन्त्रीजी भगवतीको कहते हैं। 'राजासे भेजे गये विवाहोचित इस अलङ्कारादिसे देवताके सम्मुख आप मालतीको अलङ्कृत करें।'

कामन्दकी—वह (देवताका) स्थान मङ्गल प्रयोजनके लिए उचित है। इधर दिखाओ।

प्रतीहारी—एतत्तावद्धवलपट्टांशुकयुगम् । एतच्चोत्तरीयरक्तवर्णांशुकम् । इमे च सर्वाङ्गिका आभरणसंयोगाः इमे च मौक्तिकहाराः । एतच्चन्दनम् । एष सितकुसुमापीड इति । ( एदं दाव धवलपट्टंसुअजुअलं । एदं अ उत्तीर-अवण्णंसुअ । इमे अ सव्वङ्गिआ आहरणसंजोआ । इमे अ मोत्तिआहारा । एदं चन्दणं । एसो सिदकुसुमापीडो त्ति )

कामन्दकी—(अपवार्य) रमणीयं वत्सं मकरन्दमवलोकयिष्यति जनः । ( प्रकाशम् । गृहीत्वा ) भवतु । एवमुच्यताममात्यः ।

( प्रतिहारी निष्क्रान्ता )

कामन्दकी—लवङ्गिके प्रविश त्वमभ्यन्तरं वत्सया मालत्या सह ।

लवङ्गिका—भगवती पुनः । ( भअवदी उण )

---

प्रतिहारीति । धवलपट्टांऽशुकयुगलं=धवलं (शुक्लम्) पट्टांऽशुकयुगलम् ( सूत्रमयवस्त्रयुग्मम् ) उत्तरीयरक्तवर्णांऽशुकम्=उत्तरीयं ( प्रावाररूपम् ) च तत् रक्तवर्णांऽशुकम् ( लोहितवर्णवस्त्रम् ) । सर्वाऽङ्गिकाः=सर्वाऽवयवसम्बन्धिनः सर्वाङ्गस्थाप्याः आभरणसंयोगाः=आभरणानि ( अलङ्काराः ) एव संयोज्यन्ते (स्थाप्यन्ते) येषु अवयवेष्विति संयोगाः, कर्मणि घञ् । मौक्तिकहाराः=मुक्तामाल्यानि, अत्र हारपदेनैव मुक्तामाल्यरूपस्याऽर्थस्य प्रतीतौ सत्यामपि मौक्तिकपदमन्यरत्नाऽमिश्रितत्वद्योतनाऽर्थमवसेयम् । सितकुसुमाऽऽपीडः=शुक्लपुष्पशेखरः ।

कामन्दकीति । जनः=लोकः । रमणीयं=सुन्दरं, मालतीरूपधारणेनेति शेषः । मालतीरूपधारणं च पश्चाद्भविष्यति ।

लवङ्गिकेति । भगवती=भवती, क्व यास्यतीति शेषः ।

---

प्रतीहारी—यह एक जोड़ा सफेद रेशमी वस्त्र है । यह उत्तरीयके लिए लाल कपड़ा है । ये सब अङ्गोंमें पहनाये जाने वाले अलङ्कार हैं । ये मोतियोंकी मालायें हैं । यह चन्दन है और यह सफेद फूलोंका शिरोभूषण है ।

कामन्दकी—( अपने आप ) नगरवासी जन वात्सल्यभाजन मकरन्दको ( मालतीके रूपका धारण करनेसे ) सुन्दर देखेंगे । ( सुनाकर और ग्रहणकर ) हो । मन्त्रीजीको ऐसा कह देना ।

( प्रतिहारी जाती है । )

कामन्दकी—लवङ्गिके ! तुम वात्सल्यभाजन मालती के साथ भीतर प्रवेश करो

लवङ्गिका—भगवती कहाँ जायँगी ?

कामन्दकी—अहमपि विविक्ते तावदलंकरणरत्नानां प्राशस्त्यं शास्त्रतः परीक्ष्ये। ( इति निष्क्रान्ता )

मालती—( आत्मगतम् )लवङ्गिकामात्रपरिवारा तावत्संवृत्ता।(प्रकाशम्) इदं देवतामन्दिरद्वारम्। तत्प्रविशतु प्रियसखी। ( लवङ्गिआमेत्तपरिवारा दाव संउत्ता। एदं देवदामन्दिरदुवारं। ता पविसदु पिअसही। )

( प्रविशतः )

मकरन्दः—इतः स्तम्भान्तरितौ पश्यावः।

( तथा कुरुतः )

लवङ्गिका—सखि, अयमङ्गरागः। इमाः कुसुममालाः। ( सहि, अअं अङ्गराओ। इमाओ कुसुममालाओ। )

---

कामन्दकीति। विविक्ते=विजनस्थाने, प्राशस्त्यं=प्रशस्तत्वं, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्।

मालतीति। लवङ्गिकामात्रपरिवारा=लवङ्गिकामात्रं ( लवङ्गिका एव ) परिवारः ( परिजनः ) यस्याः सा। तत्कथञ्चिदेनामनुनीय प्राणांस्त्यक्तुं शक्यमिति भावः।

मकरन्द इति। इतः=अस्मात्, स्थानादिति शेषः। इदंशब्दात् 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्प्रत्ययः, 'इदम इश्' इति इशादेशः। स्तम्भान्तरितौ=स्तम्भव्यवहितौ सन्तौ।

लवङ्गिकेति। अङ्गरागः—देहरञ्जनपदार्थः, कुङ्कुमादिरिति भावः।

---

कामन्दकी—मैं भी एकान्त स्थानमें शास्त्रके अनुसार अलङ्कार और रत्नोंकी प्रशस्तताकी परीक्षा करती हूं। ( ऐसा कहकर बाहर निकलती हैं। )

मालती—( अपने आप ) मेरे पास अब केवल लवङ्गिका मात्र बाकी रह गई है। ( सुनाकर ) यह देवताके मन्दिरका द्वार ( दरवाजा ) है। इसलिए प्रियसखी प्रवेश करें।

( दोनों प्रवेश करती हैं। )

मकरन्द—इस ओरसे स्तभमें व्यवहित होकर हमलोग देखें।

( वैसा ही करते हैं। )

लवङ्गिका—सखि! यह अङ्गराग ( शरीररञ्जन पदार्थ ) है और ये फूलोंकी मालायें हैं।

मालती—ततः किम् । ( तदो किं )

लवङ्गिका—सखि, अस्मिन्पाणिग्रहणमङ्गलारम्भे कल्याणसंपत्तिनिमित्तं देवता पूजयेत्यम्बयानुप्रेषिता । ( सहि, इमस्सि पाणिग्गहणमङ्गलारम्भे कल्लाणसंवत्तिणिमित्तं देवदां पूजेहि त्ति अम्बाए अणुप्पेसिदासि )

मालती—( स्वगतम् ) कस्मादिदानीं दारुणसमारम्भदैवदुर्विलासपरिणामदुःखनिर्दलितमानसां पुनरपि मर्मच्छेददुःसहां मन्दभागिनीमुपतापयसि । ( कुदो दाणिं दारुणसमारम्भदेव्वदुव्विलासपरिणामदुक्खणिद्दलिअमाणसं पुणो वि मम्मच्छेददूसहं मन्दभाइणीं दूमिज्जसि )

लवङ्गिका—आर्ये, किं वक्तुकामासि । ( अइ, किं वत्तुकामासि )

मालतीति । ततः=तस्मात्, किं, मर्तुकामाया ममैभिः किमिति शेषः ।

लवङ्गिकेति । पाणिग्रहणमङ्गलाऽऽरम्भे=पाणिग्रहणमङ्गलस्य ( उद्वाहमङ्गलस्य ), आरम्भे ( उपक्रमे ) । कल्याणसम्पत्तिनिमित्तं=कल्याणस्य ( विवाहमङ्गलस्य ) सम्पत्तिः ( अविघ्नेन निष्पत्तिः ) तन्निमित्तं ( तदर्थम् ) यथा तथा । तद्देतैर्देवतामर्चयेति शेषः ।

मालतीति । दारुणसमारम्भदैवदुर्विलासपरिणामदुःखनिर्दलितमानसां=दारुणः ( भीषणः, अनीप्सितत्वादिति भावः ) यः समारम्भः ( नन्दनेन समं पाणिग्रहण कर्मण उपक्रमः ) यस्य तत्, तादृशं यत् दैवं ( भाग्यं ) तस्य यो दुर्विलासः ( दुर्व्यापारः ) तत्परिणामरूपेण ( तत्परिपाकरूपेण ) यद् दुःखं (व्यथा) तन्निर्दलितं ( तेन निःशेषेण दलितम् विदारितम् ) मानसं यस्यास्ताम् । 'निदग्धमानसाम्' इति पाठे सन्तापितचित्तामित्यर्थः । पुनरपि=भूयोऽपि । मर्मच्छेददुःसहां=मर्मच्छेदः ( मर्मस्थलविदारणम् ) दुःसहः ( सोढुमशक्यः ) यस्यास्ताम् । एतादृशीं मन्दभागिनीं=मन्दभाग्यां, मामिति शेषः । उपतापयसि=दुनोषि ।

लवङ्गिकेति वक्तुकामा=भाषितुकामा, तद्वदेति शेषः । उपांशुभाषणमाशङ्कय

मालती—उससे क्या ?

लवङ्गिका—सखि ! 'इस विवाहमङ्गलके आरम्भमें कल्याणसम्पत्तिके लिए देवताकी पूजा करो' ऐसा कहकर माताजीने आपको भेजा है ।

मालती—( मन ही मन ) इस समय भयङ्कर कर्मको आरम्भ करनेवाले भाग्यके दुर्विलासके परिणामरूप दुःखसे विदारित चित्तवाली और दुःसह मर्मस्थलविदारणसे पीडित इस मन्दभागिनीको किस कारणसे फिर भी पीडित कर रही हो ?

लवङ्गिका—सखि ! आप क्या कहना चाहती हैं ?

मालती—किमिदानीं दुर्लभाभिनिवेशमनोरथविसंवदद्भागधेयो जनो मन्त्रयते। (किं दाणिं दुल्लहाभिणिवेसमणोरहविसंवदन्तभाअहेओ जणो मन्तेदि)

मकरन्दः—सखे, श्रुतम्।

माधवः—असंतोषस्तु हृदयस्य।

मालती—(लवङ्गिकां परिष्वज्य) परमार्थभगिनि! प्रियसखि! लवङ्गिके! एषेदानीं ते प्रियसख्यनाथा मरणे वर्तमानाऽऽगर्भनिर्गमनिरन्तरोपारूढविस्रम्भसदृशं परिष्वङ्गाभ्यर्थयते। यदि तेऽहमनुवर्तनीया ततो

---

पृच्छति। वक्तुं कामः यस्याः साः। 'तुं काममनसोरपि' इति मलोपः।

मालतीति। दुर्लभाऽभिनिवेशमनोरथविसंवदद्भागधेयः = दुर्लभः (दुष्प्राप्यः) अभिनिवेशः (आग्रहः) यस्य स एतादृशो यो मनोरथः (अभिलाषः) तस्मिन् विसंवदत् (विसंवादं प्राप्नुवत्, विपरीतीभवदित्यर्थः) भागधेयं (भाग्यम्) यस्य सः। एतादृशः, जनः = अहमिति भावः। किं, मन्त्रयते = परिभाषते। प्रियतमसमागमात्मकमनोरथविसंवादे यन्मरणं मयाऽपेक्षितं तदपीदानीं भाग्याऽभावाद्दुर्लभं जातमतो मया किं वक्तव्यमिति भावः।

मकरन्द इति। श्रुतम् = आकर्णितम्, काक्वा आकर्णितं किमिति प्रश्नः। काकुलक्षणं यथा—'भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।' इति।

माधव इति। तु = परन्तु, हृदयस्य = चित्तस्य, असन्तोषः=सन्तोषविरहः, स्वनिमित्तत्वस्याऽस्फुटत्वात् इति भावः।

मालतीति। परिष्वज्य=आलिङ्ग्य। परमार्थभगिनि=वास्तविकस्वसः, भगिनीवत्स्नेहपूर्णाचरणादिति भावः। अनाथा = रक्षकरहिता। मरणे=प्राणत्यागाऽवस्थायां, वर्तमाना = विद्यमाना। आगर्भनिर्गमनिरन्तरोपारूढविस्रम्भसदृशम् = आगर्भनिर्गमात् (गर्भनिःसरणकालादारभ्य) निरन्तरम् (अव्यवहितं यथा स्यात्तथा) उपारूढः (उत्पन्नः) यो विस्रम्भः (विश्वासः) तत्सदृशं (तत्तुल्यं यथा स्यात्तथा)

---

मालती—इस समय दुष्प्राप्य आग्रहवाले अभिलाषसे विपरीत भाग्यवाला व्यक्ति क्या कहेगा?

मकरन्द—मित्र! सुना?

माधव—परन्तु हृदयको असन्तोष है।

मालती—(लवङ्गिकाको आलिङ्गन कर) वास्तविक भगिनी! प्रियसखि लवङ्गिके! इस समय यह तुम्हारी प्रियसखी अनाथ और प्राणत्यागकी अवस्थामें रहती हुई, गर्भसे निकलनेके समयसे आरम्भ कर अव्यवहित रूपसे उत्पन्न

मां हृदयेन धारयन्ती समग्रसौभाग्यलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं माधवस्य श्रीमुखारविन्दमानन्दमसृणं प्रलोकय।(इति रोदिति)( परमत्थभइणि पिअसहि लवङ्गिए, एसा दाणिं दे पिअसही अणाहा मरणे वट्टमाणा आगब्भणिग्गमणिरन्तरोवाहृढविस्सम्भसरिसं परिस्सञ्जिअ अब्भत्थेदि। जइ दे अहं अणुवट्टणीआ तदो मं हिअएण धारयन्ती समग्गसोहग्गलच्छीपरिग्गहेक्कमङ्गलं माहवस्स सिरिमुहारविन्दं आणन्दमसिणं पलोएहि।

माधवः—वयस्य मकरन्द,

ग्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।

---

परिष्वज्य = आलिङ्ग्य। अभ्यर्थयते = प्रार्थयते। ते = तव, 'अनुवर्तनीये'ति कृत्यप्रत्ययान्तपदेन योगे 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति वैकल्पिकी षष्ठी। अनुवर्तनीया = अनुसरणीया। यदि त्वया मदिच्छा पूरणीयेति भावः। तत् = तर्हि। समग्रसौभाग्यलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं = समग्रायाः ( संपूर्णायाः ) सौभाग्यलक्ष्म्याः ( सौभाग्यकान्तेः ) परिग्रहः ( स्वीकारः ) एव एकम् ( अद्वितीयम् ) मङ्गलं ( कल्याणम् ) यस्य तत्। आनन्दमसृणम् = आनन्देन ( सुखेन ) मसृणम् ( कोमलम् )। प्रलोकय=प्रदर्शय।

ग्लानस्येति। मया अपि दिष्ट्या ग्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि वचोऽमृतानि अधिगतानीत्यन्वयः। मया अपि = तादृशसौभाग्याऽनर्हेण अपि, दिष्ट्या = भाग्येन, अव्ययमेतत्। ग्लानस्य = ग्लानस्य, प्रियाप्राप्तेरसंभावनयेति शेषः। 'ग्लै हर्षक्षये' इति धातोः क्तप्रत्ययः, 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वत' इति तस्य नत्वम्। जीवकुसुमस्य= जीवनपुष्पस्य, जीव एव कुसुमं, सौकुमार्यादिति भावः। तस्य 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति समासः। विकासनानि = विकासजनकानि, सन्तर्पणानि = सम्यक्तृप्तिजनकानि, सकलेन्द्रियमोहनानि = सकलेन्द्रियमोहजनकानि, मोहात्सर्वेन्द्रियव्य-

---

विश्वासके सदृश तुमको आलिङ्गन कर प्रार्थना करती है। तुम्हें मेरा अनुसरण करना है तो मुझको हृदयसे धारण करती हुई सम्पूर्ण सौभाग्यलक्ष्मीके स्वीकाररूप अद्वितीय मङ्गलमय आनन्दसे कोमल माधवजीका सम्पूर्ण मुखकमल मुझे दिखाओ। ( ऐसा कहकर रोती है। )

माधव—मित्र मकरन्द!

मैंने भी भाग्यसे ग्लानियुक्त जीवनीरूप पुष्पके विकासजनक, उत्तम तृप्तिके

आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि
दिष्ट्या मयाप्यधिगतानि वचोमृतानि ॥ ८ ॥

मालती—यथा तस्य जीवितप्रदायिनोऽवसितां मां श्रुत्वा संतप्यमानस्य तथाविधं शरीररत्नं न परिहीयते, यथा च लोकान्तरगतामपि मामुद्दिश्य स जनः स्मरणकथामात्रपरिशेषां कालान्तरेणापि लोकयात्रां न शिथिली-

पारोधकानीति भावः। आनन्दनानि = आनन्दजनकानि, हृदयैकरसाऽयनानि = हृदयस्य ( विरहदुःखशोषितसर्वरसादिधातुकस्य ) एकरसायनानि ( अद्वितीयरस-जनकानि )। वचोऽमृतानि = अमृतरूपाणि वचांसि, मालत्या इति शेषः। वचांस्ये-वाऽमृतानि। अधिगतानि = प्राप्तानि, अतोऽहमस्मि सुतरां सुकृतीति भावः। श्लो-कोऽयमुत्तररामचरिते स्तोकपरिवर्तनेन श्रीरामचन्द्रेणाऽभिहितोऽस्ति। स यथा—पूर्वार्द्धं एकरूप एव। उत्तराऽर्द्धे तु—

'एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाऽक्षि !
कर्णाऽमृतानि मनसश्च रसाऽयनानि ॥' इति।

अत्र रूपकाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

मालतीति। अवसितां = समाप्तां मृतामित्यर्थः। जीवितप्रदायिनः = जीवनदाय-कस्य, माधवस्येति भावः। जीवितं प्रददातीति जीवितप्रदायी, तस्य। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिः। 'आतो युक्चिण्कृतोः' इति युगागमश्च। तथाविधं= तादृशं, लोकोत्तरसौन्दर्यशालीति भावः। तथा विधा ( प्रकारः ) यस्य तत्। न परिहीयते = न नश्यति। लोकान्तरगताम् = परलोकप्राप्ताम्, अन्यो लोको लोका-न्तरं 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति समासः। लोकान्तरं गता लोकान्तरगता ताम्। 'द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति द्वितीयातत्पुरुषः। स जनः = माधव इति भावः। स्मरणकथामात्रपरिशेषां = स्मरणं ( स्मृतिः, संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानमित्यर्थः ) कथा ( मद्विषया चर्चा, 'मालत्येतादृशसौन्दर्यशालिनी एवं गुणगण-वरिष्ठाऽऽसी'दित्यादिरूपेति भावः ) तन्मात्रं ( तदेव ) परिशेषः ( अवशेषः ) यस्यास्तां, मां = मालतीम्। कालान्तरेणाऽपि=अन्यसमयेनाऽपि, 'कालान्तरेऽपी'ति पुस्तकान्तरपाठः। लोकयात्रां = गार्हस्थ्यम्। न शिथिलीकरोति = न श्लथयति,

उत्पादक, समस्त इन्द्रियोंमें मोहको उत्पन्न करनेवाले, आनन्दको पैदा करनेवाले और हृदयके एकमात्र रसायन ( मालतीके ) वचनरूप अमृतोंको प्राप्त किया ॥८॥

मालती—मेरा मरणवृत्तान्त सुनकर सन्ताप करते हुए मेरे जीवनदाता माधवजीका वैसा शरीररत्न जैसे नष्ट नहीं होता है, और जिस प्रकारसे दूसरे

करोति, तथा कुरु। एवं ते प्रियसखी मालती सकामा भवति। ( जह तस्स जीविदप्पदाइणो अवसिदा मं सुणिअ संदप्पमाणस्स तहाविहं सरीररक्खणं ण परिहीअदि, जह अ लोअन्दरगअं वि मं उदूसिअ सो जणो सुमरणकहामेत्तपरिसेसं कालन्दरेण वि लोअजत्तं ण सिढिलेदि तह करेसु। एवं दे पिअसही मालदी सकामा होइ )

मकरन्दः—हन्त, अतिकरुणं प्रस्तुतम्।

माधवः—

नैराश्यकातरधियो हरिणेक्षणायाः
श्रुत्वा निकामकरुणं च मनोहरं च।

---

'न शिथिलयति' इति पुस्तकान्तरपाठः। मन्नाशमुपश्रुत्य निर्वेदमाश्रित्य माधवो यथा स्वजीवनधारण उपेक्षां न विदधातीति भावः। एवम्=इत्थम्। सकामा= साऽभिलाषा, पूर्णकामेत्यर्थः। 'एवमेव प्रियसख्याः प्रसादान्मालती कृतार्था भवती'ति पुस्तकान्तरपाठः।

मकरन्द इति। हन्त=अनुकम्पाद्योतकमव्ययमिदम्। अतिकरुणम्=अतिकरुणापूर्णम्। प्रस्तुतम्=उपन्यस्तम्।

नैराश्येति। नैराश्यकातरधियो हरिणेक्षणायाः निकामकरुणं मनोहरं च वात्सल्यमोहपरिदेवितं श्रुत्वा चिन्ताविषादविपदं महोत्सवं च उद्वहामीत्यन्वयः। नैराश्यकातरधियः=नैराश्येन ( निराशत्वेन, नन्दनेन सममुद्वाहस्य प्रस्तुतत्वादभीष्टप्राप्त्यभावजनितेनेति भावः। निर्गता आशा यस्याः सा निराशा, तस्या भावो नैराश्यं, तेन ) कातरा ( व्याकुला ) धीः ( बुद्धिः ) यस्यास्तस्याः। हरिणेक्षणायाः=मृगलोचनायाः, मालत्या इत्यर्थः। हरिणस्येव ईक्षणे यस्यास्तस्याः, 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' इत्यत्र सप्तमीतिपदज्ञापितो व्यधिकरणबहुव्रीहिः। निकामकरुणं=शोकातिशयजनकं, मरणोद्योगसूचकमिति भावः। एवं च=मनोहरं च=मनोरमं च,

---

लोकमें जानेपर भी स्मरण और कथामात्रसे अवशिष्ट मुझको उद्देश्य कर कालान्तरमें भी वे लोकयात्रा ( गार्हस्थ्य ) को शिथिल नहीं करते हैं, वैसा ही करो। इस तरहसे तुम्हारी प्रियसखी मालती पूर्ण अभिलाषवाली हो जाती है।

मकरन्द—हाय! अतिकरुणापूर्ण विषय प्रस्तुत हुआ है।

माधव—निराश होने से कातर बुद्धिवाली मृगलोचना ( मालती ) का

वात्सल्यमोहपरिदेवितमुद्वहामि
चिन्ताविषादविपदं च महोत्सवं च ॥ ९ ॥

लवङ्गिका—अयि प्रतिहतं तेऽमङ्गलम्। इतोऽप्यपरं न श्रोष्यामि। (अइ, पडिहदं दे अमङ्गलं। इदो वि अवरं ण सुणिस्सं)

मालती—सखि, प्रियं खलु युष्माकं मालतीजीवितं न पुनर्मालती। ( सहि, पिअं क्खु तुम्हाणं मालदीजीविदं ण उण मालदी )

लवङ्गिका—सखि, किमिति भणितं भवति। (सहि, किं ति भणिदं होदि)

---

स्वं प्रति प्रणयप्रकर्षद्योतनादिति भावः। तादृशं वात्सल्यमोहपरिदेवितं=वात्सल्येन ( मां प्रति प्रणयेन ) मोहेन च ( चित्तशून्यत्वेन च ) परिदेवितं ( विलापवचनम् ) श्रुत्वा = आकर्ण्य, चिन्ताविषादविपदं = चिन्तया ( कथमस्या दुःखाऽपनयः स्यादित्येवंरूपेण चिन्तनेन ) विषादेन च ( खेदेन च, मालतीस्थितिजनितेन चेति शेषः ) विपदं ( तद्रूपामापत्तिम् ) महोत्सवं च=ईदृशं ललनाललाम। मयि सातिशयप्रणयप्रवणं वर्तत इति धिया हर्षोत्कर्षं च, उद्वहामि=धारयामि। अत्र विरूपयोर्विपन्महोत्सवयोः संघटनया विषमाऽलङ्कारः, उद्वहनरूपैकक्रिययाऽप्रस्तुतयोर्विपन्महोत्सवयोः कर्मत्वेनाऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिता चेत्येतयोरेकाश्रयाऽनुप्रवेशेन सङ्करः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ९ ॥

लवङ्गिकेति। ते =तव, अमङ्गलम्=अकल्याणम्, शरीरत्यागरूपमिति शेषः। प्रतिहतं=विनष्टम्, स्यादिष्टदेवताप्रसादादिति शेषः।

मालतीति। मालतीजीवितं=मालत्याजीवितम् ( जीवनम् )। अत्र मालती नाम तच्छरीराऽवच्छिन्नात्मा, जीवनं त्वदृष्टविशेषकारितदेहात्मसंयोग इति जीवनमालत्योर्भेदः। जीवनस्य सुखहेतुतया प्रियत्वं, तदेवेह दुःखमात्रजनकत्वात्त्याज्यंभवतीतिभावः

लवङ्गिकेति। इति=पूर्वोक्तं, किं भणितं=किमुक्तं, भवति=विद्यते। मालतीजीवितस्य मालत्याश्च को भेद इत्यहं न जानामीति भावः।

---

अतिशय करुणापूर्ण और मनोहर, प्रेम और मोहसे परिपूर्ण विलाप सुनकर चिन्ता और खेदसे विपत्ति और महान् उत्सवको भी धारण करता हूँ ॥ ९ ॥

लवङ्गिका—सखि! आपका अमङ्गल नष्ट हो। इससे अधिक ( ज्यादा ) नहीं सुनूँगी।

मालती—सखि! तुमलोगोंको मालतीका जीवन प्रिय है परन्तु मालती ( प्रिय ) नहीं है।

लवङ्गिका—सखि! आप क्या कह रही हैं?

मालती—येन प्रत्याशानिबन्धनैर्वचनसंविधानैर्जीवयित्वेमं महाबीभत्सारम्भमनुभावितास्मि। सांप्रतं पुनर्मे मनोरथ एतावानेव। यत्तस्य देवस्य परकीयत्वेनापराद्धमात्मानं परित्यज्य निर्वृता भविष्यामि। अस्मिन्प्रयोजने प्रियसखी मेऽपरिपन्थिनी भवतु। (इति पादयोः पतति) (जेण पच्चासाणिबन्धणेहि वअणसंविहाणेहि जीआविअ इमं महाबीभच्छारम्भं अनुभाविदम्हि। संपदं उण मे मणोरहो एत्तिओ जेव्व। जं तस्स देवस्स परकेरअत्तणेण अवरद्धं अत्ताणं परिच्चइअ णिव्वुदा हुविस्सं। अस्सि पओअणे पिअसही मे अपरिपन्थिणी होदु)

मकरन्दः—सैषा परमा सीमा स्नेहस्य।

---

मालतीति। 'आत्मानं निदर्श्य'इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तत्राऽऽत्मानं स्वदेहं निदर्श्य=दर्शयित्वेत्यर्थः। येन=कारणेन, प्रत्याशानिबन्धनैः=आशोत्पादकैः, 'सखि! मा भैषीरवश्यमेव माधवस्य पाणिग्रहणं प्राप्स्यसी'त्याकारकैरिति भावः। वचनसंविधानैः=वाक्यविरचनैः। इमं=देहं, जीवयित्वा=जीवितं कारयित्वा। महाबीभत्साऽऽरम्भं=साऽतिशयजुगुप्सितोपक्रमं, नन्दनपाणिग्रहणोद्योगमिति भावः। अनुभावितास्मि=ज्ञापितास्मि, पित्रादिभिरिति शेषः। एवं च—'मालती जीविता भवेद्' इत्यत्रैव युष्माकमभिनिवेशः, 'मालती प्रमोदाऽनुभाविनी भवेदि'त्यत्र नेति भावः। एतावानेव=एतत्परिमाण एव। तस्य देवस्य=जीवितप्रदायिनो माधवस्येत्यर्थः। परकीयत्वेन=पराऽधीनत्वेन, अपराद्धं=कृताऽपराधं, नन्दनस्य भर्तृत्वकल्पनेनेति भावः। आत्मानं=स्वशरीरम् 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च।' इत्यमरः। निर्वृता=सुखयुक्ता। जीवनप्रदातृत्वाज्जीवनस्य माधव एव स्वामी, तस्य जीवितस्य गुरुपारतन्त्र्यात् नन्दनाऽधीनतासम्पादनरूपस्य बलात्कारस्याऽपहरणादिति भावः। प्रयोजने=अर्थे। अपरिपन्थिनी=अप्रतिकूला।

मकरन्द इति। स्नेहस्य=प्रेम्णः, परमा सीमा=पराकाष्ठा, अतः परं स्नेहस्य नाऽतिशय इति भावः।

---

मालती—जिस कारणसे आशाको उत्पन्न करनेवाली वचनोंकी रचनाओंसे इस शरीरको जीवित कराकर मुझको अतिशय निन्दित उद्योगका अनुभव कराया है। इस समय मेरा अभिलाष इतना ही है, जो कि उन महानुभवके अधीन होनेसे नन्दनके साथ विवाहका उपक्रम होनेसे अपराधी (कसूरवार) शरीरको छोड़कर सुखयुक्त हो जाऊँगी। इस प्रयोजनमें मेरी सखी प्रतिकूल न हों। (ऐसा कहकर चरणोंमें गिरती है।)

मकरन्द—प्रेमकी यह परम सीमा (हद) है।

( लवङ्गिका माधवं संज्ञयाऽऽह्वयति )

मकरन्दः—वयस्य, लवङ्गिकास्थाने तिष्ठ

माधवः—परवानस्मि साध्वसेन ।

मकरन्दः—इयमेव नेदीयसां प्रकृतिरभ्युदयानाम् ।

( माधवः स्वैरं लवङ्गिकास्थाने तिष्ठति )

मालती—सखि, अनुकूलतया प्रसादं कुरु । (सहि अणुऊलदाए पसादं करेहि )

माधवः—सरले ! साहसरागं परिहर रम्भोरु ! मुञ्च संरम्भम् ।

---

लवङ्गिकेति । अथ पूर्वमेव विहितसङ्केता लवङ्गिका स्तम्भान्तरितं माधवं समागमाऽवसरोऽयमिति संज्ञया = अर्थसूचनया, आह्वयति = आकारयति ।

माधव इति । साध्वसेन = वेपथुस्तम्भादिना सात्त्विकभावेनेति भावः । परवान् = पराऽधीनः । 'परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि' इत्यमरः । मालतीसमीपे लवङ्गिकास्थाने स्थातुमशक्तोऽस्मीति भावः ।

मकरन्द इति । नेदीयसाम् = अतिसंनिहितानाम् , अतिशयेन अन्तिकाः नेदीयांसस्तेषाम् । अन्तिकशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इतीयसुन् प्रत्ययः, 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति अन्तिकस्य नेदादेशः । अभ्युदयानां=कल्याणानां, प्रियप्राप्तिप्रभृतीनामिति भावः । प्रकृतिः = स्वभावः । यत्स्तम्भस्वेदादिसात्त्विकभावाऽऽविर्भावकृतं पारवश्यमिति भावः ।

माधव इति । स्वैरं = शनैः ।

मालतीति । अनुकूलतया = अनुगुणतया, प्रसादम्=अनुग्रहं, मन्मरणमभिजानीहीति भावः ।

अथ लवङ्गिकास्थानमापन्नो माधवस्तस्याः स्वस्य च साधारणं प्राकृतसंस्कृतयोः समानरूपं वाक्यं प्रयुङ्क्ते—सरल इति ।

हे सरले ! साहसरागं परिहर । हे रम्भोरु !संरम्भं मुञ्च । विरसं तव विरहायासं

---

( लवङ्गिका माधवको इशारेसे बुलाती है । )

मकरन्द—मित्र ! आप लवङ्गिकाके स्थानमें रहें ।

माधव—मैं कम्प और स्तम्भ आदि सात्त्विक भावके अधीन हो गया हूँ ।

मकरन्द—निकटवर्ती कल्याणोंका यही स्वभाव है ।

( माधव धीरेसे लवङ्गिकाके स्थानमें रहता है । )

मालती—सखि ! अनुकूल होकर अनुग्रह करो ।

माधव—हे सरले ! मरणके उद्योगरूप साहससे इच्छाको छोड़ो, हे कदलीस्तम्भों के

विरसं विरहायासं सोढुं तव चित्तमसहं मे ॥ २० ॥

मालती—सखि, अलङ्घनीयस्ते मालतीप्रणामः । ( सहि, अलङ्गणिज्जो दे मालदीप्पणामो )

माधवः—

किं वा भणामि विच्छेददारुणायासकारिणि ॥

---

सोढुं मे चित्तम् असहमित्यन्वयः । हे सरले = हे ऋजुबुद्धे !, साहसरागं = साहसे ( मरणोद्योगे ) रागम् ( इच्छाम् ), परिहर=परित्यज । हे रम्भोरु हे कदलीस्तम्भसदृशोरुयुक्ते, रम्भे इव ऊरू यस्याः सा रम्भोरूस्तत्सम्बुद्धौ, 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' इत्यूङ् । संरम्भं = मरणोद्योगं, मुञ्च = त्यज, 'मुच्लृ मोचणे' इति धातोर्लोट्, 'शे मुचादीनाम्' इति नुम् । तत्रोभयत्राऽपि हेतुमाह—विरसमिति । यतः—विरसं = नीरसं, तव = भवत्याः, विरहाऽऽयासं = वियोगदुःखं, सोढुं = मर्षितुं, मे = मम, चित्तं = मानसम् , असहम् = असमर्थम् । यतो मच्चित्तं त्वद्विरहदुःखं सोढुमसमर्थमतस्त्वं मरणोद्योगं परिहरेति भावः । अत्र पूर्वार्द्धस्थितवाक्यद्वये उत्तरार्द्धस्थितवाक्यस्य हेतुत्वात्काव्यलिङ्गमलङ्कारः । नाऽत्र भाषाश्लेषः, वाच्यभेदाऽभावात् । आर्या जातिः ॥ १० ॥

मालतीति । माधवोक्तं वचनं लवङ्गिकाकथितं मत्वा पुनः प्रार्थयते—सखीति ते=तव, त्वयेति भावः । 'अलङ्घनीय' इत्यकृत्यप्रत्ययान्तपदेन योगे' 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति षष्ठी । अलङ्घनीयः=अनतिक्रमणीयः, त्वया प्रियसख्या मम प्रार्थना नोपेक्षणीयेति भावः ।

माधवः पूर्वमिव तत्समैरेव शब्दैर्लवङ्गिकेवाह—किं वेति ।

हे विच्छेददारुणायासकारिणि ! किं वा भणामि । हे वराऽऽरोहे ! कामं कुरु, मे परिरम्भणं देहि इत्यन्वयः । हे विच्छेददारुणाऽऽयासकारिणि = विच्छेदेन ( अत्यन्तवियोगेन हेतुना ) दारुणः ( भीषणः ) य आयासः ( प्रयासः, मरणोद्योगात्मकं दुष्करं कर्मेति भावः ) तत्करोतीति तच्छीलात्तत्सम्बुद्धौ । तादृशीं त्वामिति शेषः । किं वा भणामि=किं वा वदामि, म्रियस्वेत्यनुज्ञां कथं ददामीति भावः । हे वरारोहे=

---

सदृश ऊरुओंसे युक्त सुन्दरि ! मरणका उद्योग छोड़ो । क्योंकि तुम्हारे नीरस विरहका दुःख सहनेके लिए मेरा चित्त असमर्थ है ॥ १० ॥

मालती—सखि ! तुम्हें मालतीकृत प्रार्थनाका लङ्घन नहीं करना चाहिये ।

माधव—प्रियवियोगके हेतुसे हे भीषण प्रयास करनेवाली ! मैं क्या कहूँ ?

कामं कुरु वरारोहे ! देहि मे परिरम्भणम् ॥ ११ ॥

मालती—( सहर्षम् ) कथमनुगृहीतास्मि । ( उत्थाय ) इयमालिङ्गामि । दर्शनं पुनर्बाष्पोत्पीडनेन प्रियसख्याः प्रत्यक्षं न लभ्यते । ( आलिङ्ग्य सानन्दम् ) सखि, कठोरकमलगर्भपक्ष्मलोऽन्यादृश एव तेऽद्य निर्वापयति मां शरीरस्पर्शः । ( सास्रम् ) किंच मौलिविनिवेशिताञ्जलिर्मम वचनेन विज्ञापय तं जनम् । यथा न मया मन्द

हे उत्तमाऽङ्गने ! कामं = निजाऽभीष्टं, कुरु = विधेहि, 'क ईप्सिताऽर्थस्थिरनिश्चयं मन' इति नयेनेति भावः । जीवनमसह्यं चेदभीष्टं प्राणत्यागात्मकं व्यापारं कुर्विति लवङ्गिकापक्षे । माधवपक्षे च—कामं = मया समं कामकेलिं, कुरु = विधेहि । साम्प्रतमुभयपक्षेऽप्याह—देहीति । हे सुन्दरि ! मे = मह्यं, परिरम्भणम् = आलिङ्गनं, देहि = वितर, मामालिङ्गयेत्यर्थः । अत्राऽधिबलं नाम गर्भसन्धेरङ्गं, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'अधिबलमभिसन्धिश्छलेन यः ।' इति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११ ॥

मालतीति । स्वमरणव्यवसाये 'कामं कुर्विति' वचनेन सख्या लवङ्गिकया स्वीकृतिर्दत्तेति मत्वा, सहर्षं = हर्षसहितं यथा तथा । अनुगृहीता = कृताऽनुग्रहा, सख्येति शेषः । दर्शनं = विलोकनम्, बाष्पोत्पीडनेन = अश्रुद्गमव्यथनेन, दृष्टिनिरोधनेनेति भावः । एतेन मालत्या माधवो न विलोकित इति ज्ञायते । इत्थं च लवङ्गिकाबुद्ध्या माधवमालिङ्ग्य सानन्दं कथयति—सखीति । कठोरकमलगर्भपक्ष्मलः=कठोरकमलगर्भ इव ( कठिनपद्मबीजकोष इव ) पक्ष्मलः ( रोमाञ्चयुक्तः ) । अन्यादृशः= अन्यः, पूर्वाऽनुभूतविलक्षण इति भावः । मां = मालतीं, 'सन्तप्यमानाम्'इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । निर्वापयति=शीतलां करोति । प्रियतमं प्रतिवाचिकं सन्दिशति—किं चेति । मौलिविनिवेशिताऽञ्जलिः=शिरोन्यस्ताऽञ्जलिः सती । तम्=असकृद् दृष्टिगोचरीकृतं, जनं=माधवमित्यर्थः । तं जनमित्यनेन—

'आत्मनाम गुरोर्नाम नामाऽतिकृपणस्य च ।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठाऽपत्यकलत्रयोः ॥'

हे सुन्दरि ! अपना अभीष्ट करो ( लवङ्गिका पक्षमें ) । मेरे साथ कामक्रीडा करो ( माधवपक्ष में ) । मुझे आलिङ्गन दे दो ॥ ११ ॥

मालती—( हर्षके साथ ) कैसे अनुगृहीत हो गई हूँ । ( उठकर ) यह मैं आलिङ्गन करती हूँ । परन्तु आँसुओंके प्रवाहसे दृष्टिनिरोध होनेसे प्रियसखीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पा रही हूँ । ( आलिङ्गन कर आनन्द के साथ ) सखि ! कठोर कमलके बीजकोषके सदृश रोमाञ्चयुक्त तुम्हारा स्पर्श आज मुझे दूसरे ही प्रकारका

भाग्यया विकसच्छतपत्रलक्ष्मीविलासहारिणो मुखचन्द्रमण्डलस्य स्वच्छन्ददर्शनेन संभावितश्चिरं लोचनमहोत्सवः। मुधा मनोरथैरविरतविजृम्भमाणदुर्वारदुःखावेगव्यतिकरोद्वर्तमानबन्धनं धारितं हृदयम्। गमिताश्च वारं वारं सविशेषदुःसहायासधूपायितसखीजनाः शरीरसंतापाः। कथम-

इति स्मृतवचनाऽनुसारेण माधवस्य पतित्वं निश्चित्य तन्नामग्रहणाऽनौचित्यं सूचयति। विज्ञापय=आवेदय। विकसच्छतपत्रलक्ष्मीविलासहारिणः=विकसत् (विकासं प्राप्नुवत्) यत् शतपत्रं (कमलं, 'सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्।' इत्यमरः। शतं पत्राणि यस्य तदिति शतपत्रं बह्वर्थवाचकमेवं सहस्रमपि), तदिव लक्ष्मीविलासेन (कान्तिलीलया) हारि (मनोहारि, सुन्दरमित्यर्थः) तस्य। मुखचन्द्रमण्डलस्य=इन्दुमण्डलसदृशस्य आह्लादकमुखस्येति भावः। मुखं चन्द्रमण्डलमिव मुखचन्द्रमण्डलं, तस्य। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः। 'सम्पूर्णचन्द्रमण्डलाऽभिरामस्ये'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र सम्पूर्णं (षोडशकलोपेतम्) यत् चन्द्रमण्डलं, तदिवाऽभिरामम् (मनोहरमित्यर्थः) तस्य। तादृशस्य मुखस्य। स्वच्छन्ददर्शनेन=यथेच्छविलोकनेन। लोचनयोः=नेत्रयोः' ममेति शेषः। महोत्सवः=महाहर्षः, नसम्भावितः=नो जनितः। मुधामनोरथैः=व्यर्थाऽभिलाषैः, असफलाऽभिलाषैरिति भावः। अविरतविजृम्भमाणदुर्वारदुःखावेगव्यतिकरोद्वर्तमानबन्धनम्=अविरतं (निरन्तरं यथा तथा) विजृम्भमाणः (वर्द्धमानः) दुर्वारः (दुर्निवारः) यो दुःखाऽऽवेगः (पीडावेगः, मन्मथजनित इति भावः। पुस्तकान्तरे दुःखपदाभाव आवेगस्थाने 'उद्वेगपदपाठः) तस्य यो व्यतिकरः (सम्पर्कः) तेन उद्वर्तमानम् (उन्मूलितम्) बन्धनं (मूलम्) यस्य तत्। धारितम्=अद्यपर्यन्तं यथा कथञ्चिदवधृतमिति। भावः। सविशेषदुःसहायासधूपायितसखीजनाः=सविशेषं (सातिशयं यथा स्यात्तथा) दुःसहः (दुःखेन सोढुं शक्यः) य आयासः (श्रान्तिः, मदनकदनजनितेति शेषः) तत्र धूपायिताः (धूपवदाचरिताः, पीडिताः, तच्छ्रमाऽपनयनार्थमिति भावः) सखीजनाः (वयस्यागणाः) येषु ते

होकर मुझे ठण्डा कर रहा है। (आँखोंमें आँसू भरकर) फिर शिरमें अञ्जलि बाँधकर मेरे वचनसे उन (माधवजी) को निवेदित करो। जो कि मन्दभाग्य होनेके कारण मैंने विकसित कमलकी कान्तिकी लीलासे मनोहर आपके मुखचन्द्रमण्डलका स्वच्छन्द दर्शनकर बहुत समय तक नेत्रोंका महोत्सव उत्पन्न नहीं किया। असफल अभिलाषोंसे लगातार बढ़नेवाले दुर्निवार दुःखावेगके सम्पर्कसे उन्मूलित मूलवाले हृदयका धारण किया। सविशेष रूपसे दुःसह आयासमें सखी-

ह्यतिवाहिताश्चन्द्रातपमलयमारुतप्रमुखा अनर्थपरम्पराः। सांप्रतं पुनर्निराशास्मि संवृत्तेति। त्वयापि प्रियसखि, सर्वदा स्मर्तव्यास्मि। एषा च माधवश्रीहस्तनिर्माणमनोहरा बकुलमाला मालतीनिर्विशेषं प्रियसख्या द्रष्टव्या सर्वदा हृदयेन धारणीया चेति। (इति स्वकण्ठादुन्मुच्य माधवस्य हृदि बकुलमालां विन्यस्यन्ती सहसापसृत्य साध्वसोत्कम्पं नाटयति) (कहं

एतादृशाः शरीरसन्तापाः=देहसन्तापाः, गमिताः=यापिताः। 'सविशेषदुःसहारम्भदुर्मनायितसखीजना' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र सविशेषं यथा तथा दुःसहो य आरम्भो मदनकदनेन हेतुना नलिनीदलशयनादिरूपो व्यापारस्तेन दुर्मनायिताः (विमनीकृताः) सखीजना येषु त इत्यर्थः। चन्द्राऽऽतपमलयमारुतप्रमुखाः=चन्द्रातपः (इन्दुप्रकाशः, मदनोद्दीपनेन दाहजनकत्वादातप इत्युक्तम्) मलयमारुतः (मलयाऽचलसमीरः) तौ प्रमुखौ (प्रधाने) येषां ते तादृशाः, कामोद्दीपनहेतुत्वात्—अनर्थपरम्पराः=अनिष्टपङ्क्तयः। कथमपि=केनाऽपि प्रकारेण, अतिकष्टेनेति भावः। अतिवाहिताः=यापिताः। सम्भोगाऽवस्थायां ये चन्द्रादयः पदार्थाः सुखोत्पादकास्त एव विरहे भृशं दुःखहेतवो भवन्ति। तदुक्तं भरताऽऽचार्येण यथा—'सम्भोगे ये सुखं कुर्युस्ते दुःखं विरहे भृशम्।' इति। चन्द्रादयोऽनर्थपरम्परा अपि भवत्प्राप्त्याशया पुरा सोढाः। साम्प्रतम्=अधुना। निराशा=आशारहिता, नन्दनेन सममुद्वाहोद्यमादिति भावः। संवृत्ता=सम्भूता, अस्मि, इति=इत्थं, 'विज्ञापये'ति पूर्वस्थपदेन सम्बन्धः। साम्प्रतं सखीं प्रार्थयति—त्वयाऽपीति। स्मर्तव्या=स्मरणीया। एषा=अतिसन्निहिता। माधवश्रीहस्तनिर्माणमनोहरा=माधवस्य (मद्वल्लभस्य, अत्र भावाऽऽवेशवशान्मालत्या माधवनामग्रहणं कृतमिति बोध्यम्) श्रीहस्तनिर्माणेन (शोभासंयुक्तपाणिरचनया) मनोहरा (चित्तहारिणी, मनोहरतीति 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' इत्यच्प्रत्ययः)। मालतीनिर्विशेषं=मालतीनिर्भेदं, मद्भेदबुद्ध्येत्यर्थः। उन्मुच्य=उत्तार्य, विन्यस्यन्ती विन्यस्तां कुर्वन्ती। साध्वसोत्कम्पं=भयजनितं वेपथुं, नाटयति=अभिनयति। मालती बकुलमालावितरणसमये कुच-

-जनोंको पीडित करनेवाले शरीरसन्तापोंको बारंबार यापित किया, (बिताया)। चन्द्रका आतप (चन्द्रिका) और मलयवायु (दक्षिण दिशाकी हवा) इत्यादि अनर्थपरम्पराओंको किसी प्रकारसे यापित किया। परन्तु इस समय निराश हो गई हूँ। प्रियसखि! तुम्हें भी सदा मेरा स्मरण (याद) करना चाहिए। माधवजीके शोभासम्पन्न हाथोंकी रचनासे मनोहर बकुलमालाको प्रियसखी मालतीके सदृश देखो और सदा ही हृदयसे धारण भी करो। (ऐसा कहकर अपने गलेसे उतारकर

अणुगहीदम्हि । इअं आलिङ्गामि । दंसणं उण वाप्फपीडणेण पिअसहिआए पच्चक्खं ण लभिअदि । सहि, कठोरकमलगब्भपम्हलो अण्णारिसो जेव्व दे अज्ज णिव्वावेदि मं सरीरप्फंसो । किअ मौलिविनिवेसिदअञ्जली मह वअणेण विण्णवेहि तं जणम् । जह ण मए मन्दभाआए विकसन्तसदपत्तलच्छीविलासहारिणो मुहचन्दमण्डलस्स सच्छन्ददंसणेण संभाविदो चिरं लोअणमहोसवो। मुहा मणोरहेहिं अविरअविअम्भमाणदुव्वारदुक्खावेअवइअरुव्वत्तमाणबन्धणं धारिअं हिअअं। गमिआ अ वारंवारं सविसेसदुसहाआसदूमाविदसहीअणासरीरसंदावा। कहं वि अदिवाहिदा चन्दादपमलअमारुअप्पमुहा अणत्थपरपराओ । संपदं उण णिरासम्हि संवुत्तेति। तुए वि पिअसहि, सव्वदा सुमरिदव्वम्हि । एसा अ माहवसिरीहत्थणिम्माणमणोहरा वउलमाला मालदीणिव्विसेसं पिअसहीए दट्ठव्वा सव्वदा हिअएण धारणिज्जा अत्ति । )

माधवः—हन्त । ( अपवार्य )

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयानया मे ।

---

शून्यत्वव्यूढोरस्कत्वादिना पुरुषं सम्भाव्य, कामन्दकीकौशलज्ञानेन माधवमेव निश्चित्य सात्त्विकभावं वेपथुमभिनयतीति भावः ।

माधव इति । हन्त = अत्र हर्षद्योतकमव्ययमिदम् ।

एकीकृत इति । निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलया अनया अवपीड्य मे त्वचि कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकान्तनिष्यन्दशैवलमृणालहिमादिवर्ग एकीकृतः ( सन् ) निषिक्त इवेत्यन्वयः । निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलया = निर्भुग्नौ ( अवमर्दितौ, गाढालिङ्गनादिति भावः, निरुपसर्गपूर्वकात् 'भुजो भङ्गे' इति धातोर्निष्ठायां क्तः, 'आदितश्चे'ति निष्ठानत्वम्, 'निर्भिन्नौ' इति पाठे निरन्तराऽवलग्नावित्यर्थः ) पीनौ ( पीवरौ ) कुचकुड्मलौ ( स्तनमुकुलौ कुचौ कुड्मलाविवेति 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः ) यस्यास्तया । अनया = मालत्या, अवपीड्य = गाढमालिङ्ग्य,

---

बकुलमालाको माधवके हृदयमें पहनाती हुई मालती सहसा हटकर भयजनित कम्पका अभिनय करती है । )

माधव—हर्षकी बात है। ( अपने आप )

गाढ़ आलिङ्गन करनेसे अवमर्दित पुष्ट कुचकुड्मलोंसे युक्त इन्होंने (मालतीने)

कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकान्त-
निष्यन्दशैवलमृणालहिमादिवर्गः ॥ १२ ॥

मालती—अहो, लवङ्गिकया मालती विप्रलब्धा। (अम्हहे, लवङ्गिआए मालदी विप्पलद्धा)

माधवः—अयि स्वचित्तवेदनामात्रवेदिनि! परव्यसनानभिज्ञे! इयमुपालभसे।

---

मे=मम, त्वचि=चर्मणि, कर्पूरेत्यादिः=कर्पूरः (घनसारः) हारः (मौक्तिकमाल्यम्) हरिचन्दनः (चन्दनविशेषः) चन्द्रकान्तः (चन्द्रकान्तमणिः, यश्चन्द्रप्रकाशेन द्रवति) तेषां निष्यन्दः (द्रवः) एवमेव—शैवलं (शैवालम्) मृणालं (विसम्) हिमम् (तुषारः) आदिः (प्रकारः) येषां तेषां शीतलपदार्थानां वर्गः (समूहः), एकीकृतः=मिश्रितः सन्, निषिक्त इव=क्षरित इव, लिप्त इवेति भावः, अनुभूयत इति शेषः। अतिशीतलेन मालतीस्पर्शेन प्रशान्तो मे मनसिजजनितस्ताप इति भावः। अत्रोत्पेक्षाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १२ ॥

मालतीति। अहो=आश्चर्यद्योतकमव्ययमिदम्। विप्रलब्धा=प्रतारिता अपसरणेनेति भावः। अनेनाऽवहित्थाऽऽख्यो व्यभिचारी भावः सूचितः। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथाऽवभाषणविलोकनादिकरी॥' इति।

माधव इति। स्वचित्तवेदनामात्रवेदिनि=केवलात्ममानसदुःखज्ञानशीले, पुस्तकान्तरे स्वपदोत्तरं चित्तपदपाठाऽभावः। परव्यसनाऽनभिज्ञे=परविपज्ज्ञानरहिते, पुस्तकान्तरे व्यसनस्थाने व्यथापदपाठः। इयं=सन्निहिता त्वम्। उपालभसे=उपालम्भं करोषि, पुस्तकान्तरे तु 'उपालभ्यस' इति पाठस्तस्य निन्द्यस इत्यर्थः।

---

गाढ़ आलिङ्गन कर मेरी त्वचा (चमड़े) में कपूर, मोतियों की माला, हरिचन्दन, चन्द्रकान्तमणि इनका द्रव और शैवाल, मृणाल (कमलकी डण्डी) और हिम (बर्फ) इत्यादि शीतल पदार्थोंको मिश्रित कर सिक्त कर दिया है क्या! ऐसा अनुभव हो रहा है ॥ १२ ॥

मालती—अहो! लवङ्गिकाने मालतीको प्रतारित किया।

माधव—अरी अपने ही चित्तकी वेदना जाननेवाली! दूसरेके दुःखको न जाननेवाली! यह तुम मुझे उलाहना देती हो।

उद्दामदेहपरिदाहमहाज्वराणि
संकल्पसंगमविनोदितवेदनानि ।
त्वत्स्नेहसंविदवलम्बितजीवितानि
किं वा मयापि न दिनान्यतिवाहितानि ॥ १२ ॥

लवङ्गिका—सखि, उपालम्भनीयमुपालब्धासि । ( सहि, उवालम्भणिज्जं उवालद्धासि )

आत्मव्यसनं प्रकाशयति—उद्दामेति । मया अपि उद्दामदेहपरिदाहमहाज्वराणि संकल्पसंगमविनोदितवेदनानि त्वत्स्नेहसंविदवलम्बितजीवितानि दिनानि किं वा न अतिवाहितानि ? इत्यन्वयः । मया अपि=माधवेन अपि, उद्दामदेहपरिदाहमहाज्वराणि=उद्दामः ( प्रौढः ) देहपरिदाहः ( शरीरसन्तापः, मदनकदनजनित इति शेषः ) एव महाज्वरो येषु तानि । तथा संकल्पसंगमविनोदितवेदनानि=संकल्पसंगमेन ( मनोरथकल्पितत्वत्समागमेन ) विनोदिता ( अपनीता ) वेदना ( व्यथा, त्वद्विरहजन्येति शेषः ) येषु तानि । तथा त्वत्स्नेहसंविदवलम्बितजीवितानि=त्वत्स्नेहसंविदा ( त्वत्प्रेमज्ञानेन, 'अस्ति मयि प्रणयवती मालती'त्याकारकेण ज्ञानेनेति भावः ) अवलम्बितं ( धृतम् ) जीवितं ( जीवनम् ) येषु तानि । त्वत्प्रणयज्ञानाऽभावे सति मज्जीवनमेव विनश्येदिति भावः । 'प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः ।' इत्यमरः । तादृशानि दिनानि=दिवसाः, किंवा न अतिवाहितानि= त्वयेव मया न अतिवाहितानि ?, अपि तु अतिवाहितान्येव । एवं सत्यपि त्वं केवलमात्मवेदनामेव वेत्सि न मद्वेदनामिति भावः । अत्र प्रथमचरणे रूपकाऽलङ्कारश्चतुर्थचरणेऽर्थापत्तिश्चेतिद्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥१२॥

लवङ्गिकेति । उपालम्भनीयम्=उपालम्भयोग्यविषयम्, उद्दिश्येति शेषः । 'उपालम्भनीया' इति पाठे निन्दनीया इत्यर्थः । उपालब्धा=कृतोपालम्भा । माधवेन कृतं त्वदुपालम्भनं युक्तमेवेति भावः ।

मैंने भी प्रौढ़ शरीरसन्तापरूप महाज्वरवाले, जिनमें मनोरथसे कल्पित तुम्हारे समागमसे वेदना हटाई गई है ऐसे एवं जिनमें तुम्हारे प्रेमज्ञानसे जीवनका अवलम्बन किया गया है ऐसे दिनोंको क्या नहीं बिताया है ? ॥ १२ ॥

लवङ्गिका—सखि ! उपालम्भ ( उलाहना ) के योग्य विषयको उद्देश्य करके इन्होंने तुम्हारा उपालम्भ किया ।

कलहंसः—अहो सरसरमणीयता संविधानस्य। ( अहो सरसरमणिज्जदा संविहाणस्स )

मकरन्दः—महाभागे, एवमेतत्।

त्वं वत्सलेति कथमप्यवलम्बितात्मा
सत्यं जनोऽयमियतो दिवसाननैषीत्।
आबद्धकंकणकरप्रणयप्रसाद-
मासाद्य नन्दतु, चिराय फलन्तु कामाः॥ १४॥

कलहंस इति। संविधानस्य = नायिकासंघट्टनप्रकारस्य, सरसरमणीयता = सरसता ( शृङ्गाररसोपेतता ) रमणीयता ( मनोहरता ) च।

मकरन्द इति। महाभागे = महाभाग्यवति! हे मालतीति भावः। एतत्=माधवोक्तम्, एवम् = इत्थमेव, सत्यमित्यर्थः।

त्वमिति। त्वं वत्सला इति कथमपि अवलम्बितात्मा अयं जनः इयतो दिवसान् अनैषीत्, सत्यम्। आबद्धकङ्कणप्रकरणयप्रसादम् आसाद्य नन्दतु। कामाः चिरायफलन्त्वित्यन्वयः। त्वं = मालती, वत्सला = प्रणयवती, स्वस्मिन्निति शेषः। इति = अनेन कारणेन, कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण, अतिक्लेशेनेति भावः। अवलम्बिताऽऽत्मा = अवलम्बितः ( धृतः ) आत्मा (जीवनम्) येन सः, तादृशः अयं=निकटवर्ती, जनः = माधवः, इयतः = एतावतः, दिवसान् = दिनानि,अनैषीत् = अतिवाहितवान्, एतत्, सत्यं = तथ्यम्। त्वयि मत्त्वाऽनुरागसत्तां विभाव्यैव विप्रयोगस्याऽतिदुःसहत्वेऽपि माधवोऽयमेतावन्तं कालं यापितवानिति भावः। अतः आबद्धकङ्कणकरप्रणयप्रसादम् = आबद्धं ( धृतम् ) कङ्कणं ( विवाहसूत्रं भूषणं वा ) येन सः, तादृशो यः करः ( पाणिस्तवेति शेषः ) तस्य प्रणयः ( अनुरागो विवाहकाले ग्रहणात्मक इति भावः ) स एव प्रसादः ( अनुग्रहः ), तम्। आसाद्य = प्राप्य, नन्दतु = प्रसीदतु, माधव इति शेषः। एवं च अस्माकं कामाः=अभिलाषाः, चिराय=बहुकालं, 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः।' इत्यमरः। फलन्तु = फलिता भवन्तु, इत्याशीः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ १४॥

कलहंस—अहो! विधाताके विधानकी सरलता और मनोहरता है।

मकरन्द—महाभागे! यह ऐसा है।

तुम प्रेम करनेवाली हो इस कारणसे किसी भी प्रकारसे जीवनका अवलम्बन करनेवाले इन्होंने ( माधवजीने ) इतने दिनोंको बिताया, यह सत्य है। कङ्कणको धारण करनेवाले तुम्हारे हाथका प्रणयप्रसादको पाकर ये आनन्दित हों। इस प्रकारसे हमलोगोंके अभिलाष फलित हों॥ १४॥

लवङ्गिका—महानुभाव, हृदयेऽप्यप्रतिहतस्वयंग्राहसाहसोऽयं जनः किमिदानीं करग्रहणे विचारयति । ( महाणुहाव, हिअए वि अप्पडिहदसअंगाहसाहसो अअं जणो किं दाणि करग्गहणे विआरेदि । )

मालती—हा धिक्, कन्यकाजनविरुद्धं किमप्युपन्यस्यति । ( हद्धि, कण्णआजणविरुद्धं किं वि उवण्णस्सदि )

कामन्दकी—( प्रविश्य ) पुत्रि कातरे, किमेतत् ।

( मालती कम्पमाना कामन्दकीमालिङ्गति )

कामन्दकी—( तस्याश्चिबुकमुन्नमय्य ) वत्से,

---

लवङ्गिकेति । हृदयेऽपि = वक्षःस्थलेऽपि, स्वकीय इति शेषः । अप्रतिहतस्वयंग्राहसाहसः = अप्रतिहतम् ( अनिवारितम् ) स्वयंग्राहः ( स्वयंग्रहणम् ) एव साहसं ( धाष्टर्यम् ) येन सः, "साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि । अविमृश्य कृतौ धाष्टर्ये" इति हैमः । तादृशः, अयं = सन्निकृष्टस्थः, जनः = मालतीरूपा व्यक्तिः । करग्रहणे = पाणिग्रहणे, माधवस्येति शेषः । किं विचारयति = किं विमृशति । येन माधवेन हृदये स्वयमेव गृह्यमाणेऽपीयं मालती न निवारितवती सा माधवेन स्वकरेण निजकरे गृह्यमाणेऽपि न निवारयिष्यति, तस्मान्माधवः स्वयमेवाऽस्याः करं गृह्णात्विति भावः ।

मालतीति । धिक् = लवङ्गिकामिति शेषः । कन्यकाजनविरुद्धं = कुमारीजनप्रतिकूलम्, ऋते पित्रादेशात्पुरुषस्पर्शरूपमिति भावः । मया यन्नामाऽऽलिङ्गनं कृतं तत्तु लवङ्गिकाभ्रमेणेति हार्दम् ।

कामन्दकीति । पुत्रि = तनये !, पुत्रीतिपदेन रक्षकत्वेन मातृत्वात्त्वद्दानेममाऽप्यधिकार इति व्यज्यते । कातरे = मातापित्रोरनुमतिमन्तरेण कथं पाणिग्रहणं कुर्यामिति धिया—हे भीरो !, एतत् = पाणिग्रहणविलम्बनं, किं = किमर्थम् । अविचार्यैव सत्वरं माधवपाणिग्रहणं कुर्विति भावः ।

---

लवङ्गिका—महानुभाव ! अपने वक्षःस्थलमें स्वयम् ग्रहणरूप साहसका निवारण नहीं करनेवाली ये ( मालती ) इस समय माधवके पाणिग्रहणमें क्या विचार कर रही हैं ?

मालती—हाय ! धिक्कार है । कन्याजनके विरुद्ध यह किसी विषयका उपन्यास करती है ।

कामन्दकी—( प्रवेश कर ) पुत्रि ! कातरे ! यह क्या है ?

( मालती काँपती हुई कामन्दकीको आलिङ्गन करती है । )

कामन्दकी—( उसकी ठुड्ढीको ऊँचा कर ) वत्से !

पुरश्चक्षूरागस्तदनु मनसोऽनन्यपरता,
तनुग्लानिर्यस्य त्वयि समभवद्यत्र च तव ।
युवा सोऽयं प्रेयानिह, सुवदने ! मुञ्च जडतां
विधातुर्वैदग्ध्यं विलसतु, सकामोऽस्तु मदनः ॥ १५ ॥

लवङ्गिका—भगवति, कृष्णचतुर्दशीरजनीश्मशानसंचारनिर्व्यूढविषमव्यवसायनिष्ठापितप्रचण्डपापण्डशौण्डसाहसः साहसिकः खल्वेषः ।

पुर इति । यस्य त्वयि यत्र च तव पुरः चक्षूरागः तदनु मनसः अनन्यपरता तनुग्लानिः समभवत् । प्रेयान् सोऽयं युवा इह हे सुवदने ! जडतां मुञ्च, विधातुः वैदग्ध्यं विलसतु । मदनः सकामः अस्तु इत्यन्वयः । यस्य = माधवस्य, त्वयि = भवत्यां विषये, यत्र च = यस्मिंश्च माधवे विषये, तव = भवत्याः, पुरः = पूर्वं, चक्षूरागः = नयनप्रीतिः, तदनु = तदनन्तरं, मनसः = चित्तस्य, अनन्यपरता = अनितरपरत्वम्, एकाग्रत्वम्, चित्तासङ्ग इति भावः । ततः तनुग्लानिः = शरीरग्लानिः, सङ्कल्पादिक्रमेणेति शेषः । समभवत् = प्रादुरासीत् । प्रेयान्=प्रियतमः, सः = असकृत् सप्रणयं पूर्वाऽलोकितः, अयं = संनिकृष्टस्थः, युवा = तरुणः, माधव इत्यर्थः । इह= अत्र स्थाने, विद्यत इति शेषः । हे सुवदने = हे सुमुखि, सुन्दरीति भावः । जडताम्= अप्रतिपत्तिं, कर्तव्यमूढतामिति भावः, मुञ्च = त्यज, जडतां नियम्य गान्धर्वविवाहपरा भवेति भावः । एवं विधातुः = ब्रह्मणः, वैदग्ध्यं = युवयोर्निर्माणनैपुण्यं, विलसतु= प्रकाशतां, मणिकाञ्चनसंयोगवद्युवां मेलयित्वा चतुराननसृष्टिचातुरी सफला भवत्विति भावः । निगमयति—मदनः = कामः, सकामः = सफलाऽभिलाषः, अस्तु= भवतु, उन्मादाद्यवस्थान्तराणामुल्लासात्प्रागेवाऽन्तिकस्थं कान्तं माधवमात्मधवत्वेन वृणीष्वेति भावः । अत्राऽप्रस्तुतानां चक्षूरागादीनां संभवनरूपक्रियाणां कर्तृत्वेनाऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १५ ॥

लवङ्गिकेति । कृष्णचतुर्दशीरजनीत्यादिः = कृष्णचतुर्दशीरजन्याम् ( अपरपक्षचतुर्दशीरात्रौ, तन्त्रोक्ते साहसकर्माऽनुष्ठानकाल इति भावः ) श्मशानसंचारेण ( पितृवनसंचरणेन ) निर्व्यूढः ( निर्वर्तितः ) विषमः ( कठोरः, आर्यजनाऽनुचित

जिस माधवकी तुममें और जिस ( माधव ) में तुम्हारी पहले नयनप्रीति उसके बाद मनकी अनन्यपरता ( एकाग्रता ) तदनन्तर शरीरकी ग्लानि हुई थी । प्रियतम वह यह जवान यहाँ मौजूद है । हे सुन्दरि ! जड़ताको छोड़ो । ब्रह्माजीका नैपुण्य प्रकाशित हो और कामदेव सफल अभिलाषावाले हों १५ ॥

लवङ्गिका—भगवति ! कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातमें श्मशानमें जाकर कठोर

कामन्दकी--( चीराञ्चलेन नेत्रे परिमृज्य ) वत्स, किमपि कल्याणं वक्तुकामास्मि ।

माधवः--तत्किम् ।

कामन्दकी--विज्ञापयामि ।

माधवः--आज्ञापय ।

कामन्दकी--

परिणतिरमणीयाः प्रीतयस्त्वद्विधाना-
मह्मपि तव मान्या हेतुभिस्तैश्च तैश्च ।

---

कामन्दकीति । परिमृज्य=परिमार्जिते कृत्वा, परिपूर्वकात् 'मृजू शुद्धौ' इति धातोः 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इति क्त्वा, तस्य 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति ल्यबादेशः । कल्याणं = मङ्गलं, 'कल्याणिनम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य कल्याणास्पदमित्यर्थः । त्वमिति शेषः । वक्तुकामा = परिभाषितुकामा, वक्तुं कामः ( अभिलाषः ) यस्याः सा, 'तुं काममनसोरपि' इति मकारलोपः । 'वक्तुकामाऽस्मी' त्यत्र 'विज्ञापयामी'ति पुस्तकान्तरपाठः । तत्र 'विज्ञापयामी'त्युक्तिः कामन्दक्याः कन्याप्रदानादेव नीत्या विनयद्योतनाऽर्थम् ।

माधव इति । आज्ञापय=आदिश, शिष्यस्थानीयोऽहं विज्ञापनस्य का कथा, निर्विशङ्कमादिशेति माधव औचित्यं प्रदर्शयति ।

परिणतीति । हे तात ! त्वद्विधानां प्रीतयः परिणतिरमणीयाः । अहमपि तैश्च तैश्च हेतुभिः तव मान्या । तव मत्तः परस्तात् इह सुवदनायां परिचयकरुणायाः सर्वथा मा विरंसीरित्यन्वयः । हे तात=हे वत्स !, 'पुत्रे पितरि पूज्ये च तातशब्दः प्रयुज्यते ।' इति शब्दार्णवः । त्वद्विधानां = त्वादृशानां, महाकुलप्रसूतानां गुणगणविलसितानामिति भावः । तवेव विधा ( प्रकारः ) येषां, तेषाम् । प्रीतयः = स्नेहाः, परिणतिरमणीयाः = परिणाममनोहराः, न तु क्षुद्रजनस्नेहसमाः परिणतिविरसा इति भावः । अहमपि = कामन्दक्यपि, तैस्तैर्हेतुभिः = अनेकप्रकारैः कारणैः, पितृबन्धुत्वोपदेशक-

---

कामन्दकी--( चीरवस्त्रके अञ्चलसे नेत्रोंका परिमार्जन कर ) वत्स ! कुछ कल्याणका विषय कहनेकी इच्छा करती हूँ ।

माधव--वह क्या है ?

कामन्दकी--विज्ञापन करती हूँ ।

माधव--आज्ञा कीजिए ।

कामन्दकी--

हे वत्स ! तुम्हारे सखी जनके प्रेम परिणाममें मनोहर होते हैं । मैं भी अनेक

तदिह सुवदनायां तात ! मत्तः परस्मात्
परिचयकरुणायाः सर्वथा मा विरंसीः ॥ १६ ॥
( इति पादयोः पतितुमिच्छति )

माधवः—( निवारयन् ) अहो, वात्सल्यादतिक्रामति प्रसङ्गः ।

मकरन्दः—भगवति,

---

स्नेहमुक्तःवादिभिरिति भावः । तव = भवतः, भवता वा 'मान्ये'ति कृत्यप्रत्ययान्तपदेन योगे 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति वैकल्पिकी षष्ठी । मान्या = माननीया, 'अनुलङ्घनीयवचना' इति भावः, अस्मीति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात्, मत्तः = मत्, 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल् 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति मदादेशः । परस्तात् = परत्र, मत्परोक्ष इति भावः । इह = अस्यां, सुवदनायां = सुमुख्यां, मालत्यामिति भावः । परिचयकरुणायाः=परिचयः ( संस्तवः, गाढस्नेह इति भावः ) एव करुणा ( दया ), तस्याः, 'विरंसी'रिति पदेन योगे 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति पञ्चमी । सर्वथा = सर्वतो भावेनैव, मा विरंसीः = विरतो मा भूः, मालत्यां स्थिरप्रणयाऽनुबन्धेनैव त्वया मयि कृपा कर्तव्येति भावः । 'व्याङ्परिभ्यो रम' इति परस्मैपदम् । माङ्युपपदे 'माङि लुङ्' इति लुङ् 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः । अत्र करुणाविरामाऽभावे परिणतिरमणीयप्रीतिरूप एकस्मिन्हेतौ विद्यमानेऽपि मान्यत्वरूपहेत्वन्तरोपस्थापनात्समुच्चयाऽलङ्कारः । माला नाम नाट्यालङ्कारश्च, तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'माला स्याद्यदभीष्टाऽर्थं नैकाऽर्थप्रतिपादनम् ।' इति । मालिनी वृत्तम् ॥ १६ ॥

माधव इति । वात्सल्यात् = अपत्यस्नेहात् । प्रसङ्गः = प्रस्तावः, अतिक्रामति = उल्लङ्घयति औचित्यमिति शेषः । सकललोकवन्दनीया भगवती स्वयं प्रणामं कर्तुमिच्छति, अतोऽनुचितकर्मणि प्रवर्तत इति भावः । अतिपूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेपे' इति धातोः शपि 'क्रमः परस्मैपदेषु' इति दीर्घत्वम् ।

---

कारणोंसे तुम्हारी माननीय हूँ । इसकारणसे मेरे परोक्षमें इससुन्दरी ( मालती )में तुम गाढ़स्नेहरूप करुणासे विरत मत हो ॥ १६ ॥

( ऐसा कहकर माधवके चरणोंमें गिरनेकी इच्छा करती हैं । )

माधव—( निवारण करता हुआ ) आश्चर्य है, वत्सलतासे प्रसङ्ग औचित्यका उल्लङ्घन करता है ।

मकरन्द—भगवति !

श्लाघ्यान्वयेति नयनोत्सवकारिणीति
निर्व्यूढसौहृदरसेति गुणोज्ज्वलेति ।
एकैकमेव हि वशीकरणं गरीयो
युष्माकमेवमियमित्यथ किं ब्रवीमि ॥ १७ ॥

कामन्दकी--वत्स ! माधव !

---

श्लाघ्याऽन्वयेति । इयं श्लाघ्याऽन्वया इति नयनोत्सवकारिणी इति निर्व्यूढसौहृदरसा इति गुणोज्ज्वला इति हि एकैकम् एव गरीयो वशीकरणं युष्माकम् एवम् इति अथ किं ब्रवीमीत्यन्वयः । इयं = मालती, श्लाघ्याऽन्वया = प्रशंसनीयकुला, महाकुलप्रसूतेति भावः, इति = हेतोः, नयनोत्सवकारिणी = नेत्रानन्दविधायिनी, निरतिशयसौन्दर्यशालिनीति भावः । इति = हेतोः, निर्व्यूढसौहृदरसा = निर्व्यूढः ( निर्वाहं गमितः ) सौहृदरसः ( प्रणयरसः, 'सौहृदभर' इति पाठे प्रणयाऽतिशयः ) यस्यां सा, इति = हेतोः, गुणोज्ज्वला = गुणैः ( सौशील्यादिभिः ) उज्ज्वला ( निर्मला ), इति = हेतोश्च, हि = यतः, एकैकम् एव = उक्तेष्वेतेषु व्यस्तं श्लाघ्याऽन्वयत्वादिकं प्रत्येकमेवेत्यर्थः । गरीयः = गुरुतरम्, अनतिक्रमणीयमिति भावः । वशीकरणं = वश्यताऽऽनयनोपायः, परं चेयम् एवम् = पूर्वोक्तश्लाघ्याऽन्वयत्वादियुक्ता, युष्माकं = भवत्या इति भावः, एतादृशस्नेहपात्रमिति शेषः । इति = हेतोः, अथ = अनन्तरं, किं ब्रवीमि = किं वदामि, श्लाघ्याऽन्वयत्वादिषु व्यस्तम् एकैकमपि वशीकरणसाधनं मालत्यां तु साकल्येन वर्तते, तत्राऽपि भवत्या एतादृशस्नेहसाधनत्वेन वशीकरणविषये पुनः किं वक्तव्यमिति भावः । तस्मान्मयाऽस्यां गाढाऽनुरागो विधेय इति तात्पर्यम् । अत्र वशीकरणरूपं कार्यं प्रति श्लाघ्याऽन्वयत्वाद्यनेकहेतूपस्थापनात्समुच्चयाऽलङ्कारः । एवं च प्रसिद्धिर्नाम नाट्याऽलङ्कारस्तल्लक्षणं यथा दर्पणे—'प्रसिद्धिर्लोकसिद्धाऽर्थैरुत्कृष्टैरर्थसाधनम् ।' इति । पुस्तकान्तरे तु माधववक्तृत्वेनेदं पद्यमुपन्यस्तम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १७ ॥

---

यह ( मालती ) महाकुलप्रसूत है, नेत्रोंको उत्सव देनेवाली है, प्रेमरसका निर्वाह करनेवाली है और सुशीलता आदि गुणोंसे उज्ज्वल है इस प्रकारसे इनका एक-एक ही गुण गुरुतर वशमें करनेका साधन है उसपर भी ये आपकी स्नेहपात्र हैं अतएव आपके प्रस्तावमें मैं क्या कहूँ ॥ १७ ॥

कामन्दकी—वत्स माधव !

माधवः--आज्ञापय।

कामन्दकी--स्वीक्रियतामियम्।

माधवः--स्वीकरोमि।

कामन्दकी --वत्स ! माधव ! वत्से ! मालति !

माधवः--आज्ञापय।

मालती--आज्ञापयतु भगवती। ( आणवेदु भअवदी )

कामन्दकी--

**प्रेयो मित्रं, बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः, शेवधिर्जीवितं वा।**
**स्त्रीणां भर्ता, धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥१८॥**

अथ मालतीमाधवयोः साधारणं धर्म्यमुपदेशमाह—प्रेय इति। स्त्रीणां भर्ता पुंसां धर्मदाराश्च प्रेयो मित्रं वा समग्रा बन्धुता, सर्वे कामाः शेवधिः जीवितं वा इति अन्योन्यं वत्सयोः ज्ञातमस्त्वित्यन्वयः। स्त्रीणां = नारीणां, भर्ता = पतिः, एवं पुंसां = पुरुषाणां, धर्मदाराश्च = धर्मपत्नी च, प्रेयः = प्रियतमं, मित्रं = सुहृत्, वा = अथवा, समग्रा = सकला बन्धुता = बन्धुसमूहः, 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्ययः, 'तलन्तं स्त्रियाम्' इति स्त्रीत्वाट्टाप्। सर्वे = अखिलाः, कामाः = काम्यन्त इति विषया इत्यर्थः। शेवधिः = निधिः, 'निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः।' इत्यमरः। किं बहुना—जीवितं वा = जीवनं वा, इति = इदम्, अन्योन्यं = परस्परं, वत्सयोः = वात्सल्यभाजनयोः, युवयोर्मालतीमाधवयोरिति भावः। वत्सा च वत्सश्चेति वत्सौ, तयोः। 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः। ज्ञातं = विदितम्, अस्तु = भवतु। अतः परं युवाभ्यां दाम्पत्यधर्मनिर्वाहाऽर्थं मिथः सख्यादिकं व्यवहर्तव्यमिति भावः। अत्रोभयो-

माधव--आज्ञा दें।

कामन्दकी--इसे ( मालतीको ) स्वीकार करो।

माधव--स्वीकार करता हूँ।

कामन्दकी--वत्स माधव! वत्से मालति!

माधव--आज्ञा करें।

मालती--भगवती आज्ञा दें।

कामन्दकी--स्त्रियोंका पति और पुरुषकी धर्मपत्नी, प्रियतम मित्र अथवा सम्पूर्ण बन्धुसमूह, सम्पूर्ण अभिलाषके विषय और निधि अथवा जीवन ही है यह परस्परमें वात्सल्यभाजन तुम दोनोंको ज्ञात हो ॥ १८ ॥

कामन्दकी—वत्सौ मालतीमाधवौ, इतो निर्गत्य वृक्षगहनेन गम्यतामुद्वाहमङ्गलार्थम्। अस्ति तत्र दीर्घिकायाः पश्चादुद्यानवाटः। सुविहितं तत्रैव वैवाहिकद्रव्यजातमवलोकितया भूयश्च।

गाढोत्कण्ठकठोरकेरलवधूगण्डाच्छपाण्डुच्छदै-
स्ताम्बूलीपटलैः पिनद्धफलितव्यानम्रपूगद्रुमाः।

कामन्दकीति। वृक्षगहनेन = तरुप्रचुरवनेन, तरुविषमेण स्थानेन वा, 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं वनम्।' इत्यमरः। 'गहनं विषमे त्रिषु' इति विश्वः। उद्वाहमङ्गलाऽर्थं = विवाहकल्याणाऽर्थं, क्रियाविशेषणं चैतत्। दीर्घिकायाः=वाप्याः। 'अस्मद्विहारिकाया' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र विहारो नाम बौद्धाश्रमः, अल्पो विहारो विहारी, अवयवाऽपचयविवक्षायां 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीप्। विहारी एव विहारिका, तस्याः। स्वार्थे कः, टाप् 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप' इतीत्वम्। उद्यानवाटः = आरामप्रदेशः। वैवाहिकद्रव्यजातम्=औद्वाहिकपदाऽर्थसमूहः। सुविहितं = संयोजितम्।

गाढोत्कण्ठेति। गाढोत्कण्ठकठोरकेरलवधूगण्डाऽच्छपाण्डुच्छदैः ताम्बूलीपटलैः पिनद्धफलितव्यानम्रपूगद्रुमाः कक्कोलीफलजग्धमुग्धविकिरव्याहारिणः प्रेङ्खितमातुलुङ्गवृतयः तद्भुवो भागाः वां प्रेयो विधास्यन्तीत्यन्वयः। गाढोत्कण्ठकठोरकेरलवधूगण्डाऽच्छपाण्डुच्छदैः = गाढा ( दृढा ) उत्कण्ठा ( औत्सुक्यं, कान्ताऽनवाप्तिजनितमिति शेषः ) यासां ताः, कठोराः ( प्रौढाः ) याः केरलवध्वः ( केरलदेशीया नार्यः ) तासां गण्डाः ( कपोलाः ) इव अच्छाः ( निर्मलाः ) पाण्डवः ( पाण्डुवर्णाः ) छदाः ( पत्राणि ) येषां तानि, तैः। ताम्बूलीपटलैः = नागवल्लीसमूहैः, पिनद्धफलितव्यानम्रपूगद्रुमाः = पिनद्धाः (वेष्टिताः, भागुरिमतेनाऽल्लोपः) फलिताः (सञ्जातफलाः, 'फलिना' इति पाठे फलवन्त इत्यर्थः 'फलबर्हाभ्यामिनच्' इतीनच्प्रत्ययः ) अत एव व्यानम्राः विशेषेण समन्तान्नमनशीलाः, फलभाराऽवनता इत्यर्थः, व्याङ्पूर्वकान्नमधातोः 'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो र' इति रप्रत्ययः ) पूगद्रुमाः ( क्रमुक-

कामन्दकी—वत्स मालती और माधव! तुम दोनों यहांसे निकलकर वृक्षप्रचुर वनसे विवाहमङ्गलके लिए जाओ। वहाँपर वापी ( बावली ) के पीछे उद्यान ( बगीचा ) का प्रदेश है। वहींपर अवलोकिताने विवाहके प्रचुर पदार्थोंको इकट्ठा किया है।

गाढ उत्कण्ठावाली प्रौढ केरलदेशीय स्त्रियोंके कपोलोंके सदृश निर्मल पाण्डुवर्णवाले पत्रोंसे युक्त, नागवल्ली ( पान ) के लतासमूहोंसे वेष्टित, फलवाले और झुके

ककोलीफलजग्धमुग्धविकिरव्याहारिणस्तद्भुवो
भागाः प्रेङ्खितमातुलुङ्गवृतयः प्रेयो विधास्यन्ति वाम् ॥ १९ ॥

अतस्तत्रैव मदयन्तिकामकरन्दयोर्यावदागमनं स्थातव्यम् ।

माधवः—( सहर्षम् ) कल्याणान्तरावतंसा कल्याणसंपदुपरिष्टाद्भवतु ।

---

वृत्ताः ) येषु ते, सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । वृत्तिविग्रहयोः समानप्रकारोपस्थितिजनकत्वं गमकत्वम् । कक्कोलीफलजग्धमुग्धविकिरव्याहारिणः = कक्कोलीफलानि ( कोलकफलानि ,'अथ कोलकम् । कक्कोलकं कोशफलम्' इत्यमरः ) जग्धानि ( भक्षितानि ) यैस्ते कक्कोलीफलजग्धाः, 'जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या' इति 'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति' इत्यनेनाऽदो निष्ठाऽन्तस्य जग्धस्य परनिपातः । 'जग्धी'ति क्तिन्नन्तस्य पाठे कक्कोलीफलानां जग्ध्या ('भक्षणेन ) इत्यर्थः । तादृशाः मुग्धाः (मनोहराः) ये विकिराः ( पक्षिणः, 'नगौकोवाजिविकिरविविष्किरपतत्रयः ।' इत्यमरः ), तेषां व्याहाराः ( रवाः ) सन्ति येषां ते 'अत इनिठनौ' इतीनिः । प्रेङ्खितमातुलुङ्गवृतयः=प्रेङ्खिता ( सञ्चलिता वायुनेति शेषः ) मातुलुङ्गानां ( बीजपूराणाम् ) वृतिः ( वेष्टनम् ) येषु ते । तादृशास्तद्भुवः = उद्यानप्रदेशभूमेः, भागाः अंशाः, वां = युवयोः मालतीमाधवयोरित्यर्थः । प्रेयः = अतिप्रीतिं, विधास्यन्ति= करिष्यन्ति । तथा चैतादृशनानागुणोपवनगमनेनाऽन्येषामप्रवेशयोग्यत्वाद् दृश्यत्वाच्च युवयोः सकलसमीहितसिद्धिर्भविष्यतीति भावः । अत्र प्रथमचरण उपमाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १९ ॥

अत इति । आगमनं यावत् = आगमनपर्यन्तं, 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे ।' इत्यमरः । 'ततोऽन्यत्राऽपि दृश्यते ।' इति वचनसामर्थ्याद्यावत्पदेन योगे द्वितीया । एवं च तत्रैव स्थाने युवयोर्मालतीमाधवयोर्मदयन्तिकामकरन्दयोश्च युगपदेव विवाहो भविष्यतीति व्यज्यते ।

माधव इति । कल्याणसम्पत् = मालतीप्राप्तिरूपमङ्गलसमृद्धिः, ममेति शेषः । उपरिष्टात् = परसमये, कल्याणान्तराऽवतंसा = कल्याणाऽन्तरम् ( मङ्गलान्तरं, मक-

---

हुए सुपारीके वृक्षोंसे युक्त, कक्कोलीफल खानेवाले सुन्दर पक्षियोंके शब्दसे सम्बद्ध और वायुसे सञ्चलित बीजपूरोंके वेष्टनसे युक्त उद्यानप्रदेशकी भूमिके भाग तुम दोनोंको अतिशय प्रीतिको उत्पन्न करेंगे ॥ १९ ॥

इसलिए वहींपर मदयन्तिका और मकरन्दका जब तक आगमन न हो तब तक तुम दोनोंको रहना चाहिए ।

माधव—( हर्षके साथ ) कल्याणसम्पत्ति दूसरे समयमें दूसरे कल्याणरूप भूषणसे सम्पन्न हो ।

कलहंसः—दिष्ट्या इदमपि प्रियं नो भविष्यति । (दिट्ठिआ इदं वि पिअं णो हविस्सदि )

कामन्दकी—कथं संदेहो भवतः ।

लवङ्गिका—श्रुतं प्रियसख्या । ( सुदं पिअसहीए )

कामन्दकी—वत्स मकरन्द, भद्रे लवङ्गिके, इतः प्रतिष्ठामहे ।

मालती—सखि, त्वयापि गन्तव्यम् । ( सहि, तुए वि गन्दव्वं )

लवङ्गिका—( विहस्य ) सांप्रतं खलु वयमत्रापसरामः । ( इति निष्क्रान्ताः कामन्दकीलवङ्गिकामकरन्दाः ) ( संपदं क्खु अम्हे एत्थ ओसरम्ह )

माधवः—अयमिदानीमहम् ।

---

रन्दकर्तृकमदयन्तिकाप्राप्तिरूपमिति भावः ) अवतंसः ( अलङ्कारः ) यस्याः सा, तादृशी, भवतु ।

कलहंस इति । दिष्ट्या=भाग्येन । इदमपि=मदयन्तिकामकरन्दविवाहरूपं कल्याणमपि । नः=अस्माकं, प्रियम्=अभीष्टम् ।

कामन्दकीति । सन्देहः=आशङ्का मदुपायवैशिष्ट्यात्सर्वमिदं मङ्गलं निष्प्रत्यूहं सेत्स्यतीति भावः ।

लवङ्गिकेति । श्रुतम्=आकर्णितम् । किमर्थं भवत्या अत्राऽवस्थानं, भगवत्यादेशपालनेन स्वजीवनं सफलं कर्तव्यमिति भावः ।

कामन्दकीति । भद्रे=कल्याणि !, इतः=अस्मात्स्थानात्, प्रतिष्ठामहे=गच्छामः ।

मालतीति । सखि=वयस्ये, लवङ्गिके !, गन्तव्यं=यातव्यमिति काकुः, मां परित्यज्य भगवत्या सहेति शेषः ।

लवङ्गिकेति । अपसरामः=गच्छामः । मालती भर्त्रा सह ससुखमास्तामिति भावः ।

---

कलहंस—भाग्यसे यह ( मदयन्तिका और मकरन्दका विवाह ) भी हम लोगोंको प्रिय होगा ।

कामन्दकी—आपको कैसे सन्देह हुआ ?

लवङ्गिका—प्रियसखीने सुना ?

कामन्दकी—वत्स मकरन्द ! भद्रे लवङ्गिके ! यहाँसे प्रस्थान करें ।

मालती – सखि ! क्या तुम्हें भी जाना होगा ?

लवङ्गिका—( हँसकर ) इस अवसरपर हमलोग जायँ । ( इसके बाद कामन्दकी, लवङ्गिका और मकरन्द बाहर निकलते हैं )

माधव—इस समय यह मैं—

आमूलकण्टकितकोमलबाहुनालमार्द्राङ्गुलीदलमनङ्गनिदाघतप्तः ।
अस्याः करेण करमाकलयामि कान्तमारक्तपङ्कजमिव द्विरदः सरस्याः ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्कः ।



आमूलेति । अनङ्गनिदाघतप्तः ( अहम् ) करेण आमूलकण्टकितकोमलबाहुनालम् आर्द्राऽङ्गुलीदलं कान्तम् अस्याः करं सरस्या आरक्तपङ्कजं द्विरद इव आकलयामीत्यन्वयः । अनङ्गनिदाघतप्तः = अनङ्गः ( कामः ) निदाघः ( ग्रीष्मः ) इवाऽनङ्गनिदाघः, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः । अनङ्गनिदाघेन तप्तः ( तापयुक्तः ), अहमिति पूर्ववाक्यादनुषङ्गः द्विरदपक्षे अनङ्ग इव निदाघस्तेन तप्त इति विग्रहः । करेण=पाणिना, द्विरदपक्षे शुण्डादण्डेनेत्यर्थः । आमूलकण्टकितकोमलबाहुनालम् = आमूलं ( मूलपर्यन्तम् ) कण्टकितः ( रोमाञ्चितः, मन्मथावेशादिति शेषः, पक्षान्तरे कण्टकयुक्तश्च ) कोमलः ( मृदुलः ) बाहुः ( भुजः ) नालः ( नालदण्ड इव ) यस्य, तम् आरक्तपङ्कजपक्षे बाहुरिव नालो यस्य तम् । आर्द्राऽङ्गुलीदलम् आर्द्राः = स्वेदजलक्लिन्नाः, पक्षान्तरे तरङ्गजलेन क्लिन्नाः अङ्गुलयः ( करशाखाः ) दलानि ( पर्णानि ) इव यस्य, तम् आरक्तकमलपक्षे अङ्गुल्य इव दलानि यस्य तम् । कान्तं = सुन्दरम्, अस्याः = मालत्याः, करं = पाणिं, सरस्याः= कासारस्य, आरक्तपङ्कजम् = ईषल्लोहितकमलम्, ईषद्रक्तमारक्तं, 'कुगतिप्रादय' इति समासः, आरक्तं च तत्पङ्कजम् । द्विरद इव = हस्ती इव, आकलयामि = गृह्णामि । अत्रोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २० ॥

इतीति । सर्वे = मालतीमाधवकलहंसाः ।

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां षष्ठोऽङ्कः ।



ग्रीष्मके सदृश कामदेवसे सन्तप्त मैं हाथसे मूलपर्यन्त रोमाञ्चयुक्त कोमल नालदण्डके सदृश बाहु (बाँह) वाले, पत्तोंके सदृश स्वेदजलसे क्लिन्न अङ्गुलियोंसे सम्पन्न, सुन्दर मालतीके हाथको ग्रीष्मसन्तप्त हाथी जैसे सूँड़से मूल तक कण्टकयुक्त नालवाले आर्द्र पत्तोंसे युक्त सुन्दर रक्तकमलको ग्रहण करता है उसी तरह ग्रहण करता हूँ ॥२०॥

( तब सब बाहर निकलते हैं । )

षष्ठ अङ्क समाप्त ।



# सप्तमोऽङ्कः

( ततः प्रविशति बुद्धरक्षिता )

बुद्धरक्षिता—अहो, सुश्लिष्टमालतीनेपथ्यलक्ष्मीविप्रलब्धनन्दनकरग्रहोऽमात्यभूरिवसुमन्दिरे भगवत्याः संविधानेन क्षेमेण गोपायितोऽद्य मकरन्दः। अद्य वयं नन्दनावासमुपगताः। अतो भगवती नन्दनमापृच्छ्य निजावसथं गता। अयं च नववधूगृहप्रवेशविरिचिताकालकौमुदीमहोत्सव-

---

अथाऽऽसादितप्रतिभाविभूतिर्महाकविर्भवभूतिः सप्तममङ्कमारब्धुमुपक्रमते—तत इति। प्रथमाऽङ्क एव कामन्दक्या अवलोकितां प्रति प्रतिपादितेन 'नियुक्तैव तत्र मया प्रियसखी बुद्धरक्षिता' इति वचनेन पूर्वमेव बुद्धरक्षितायाः प्रवेशः सूचितः।

बुद्धरक्षितेति। अहो = हर्षाऽऽश्चर्यद्योतकोऽयं शब्दः। सुश्लिष्टमालतीनेपथ्यलक्ष्मीविप्रलब्धनन्दनकरग्रहः = सुश्लिष्टं (सुसम्बद्धं, मकरन्दस्य गौरत्वेन श्मश्रुरहितत्वादिना चेति मालतीसाम्यादिति शेषः) यत् मालतीनेपथ्यं (मालतीवेशः) तस्य लक्ष्म्या (शोभया) विप्रलब्धः (वञ्चितः) यो नन्दनः, तेन कृतः (विहितः, मालतीज्ञानेनेति शेषः) करग्रहः (पाणिग्रहणम्) यस्य सः। तादृशो मकरन्दः भगवत्याः = कामन्दक्याः, संविधानेन = कार्येण, 'समागतेयं मालती समभ्यर्च्य नगरदेवताम्' इत्यादिवचनरूपेणेति भावः। 'भगवतीवचनसंविधानैः' इति पाठान्तरम्। क्षेमेण = कुशलेन, गोपायितः = रक्षितः, राजाऽनुचरेभ्य इति शेषः। अनेन मालतीनन्दनयोः कृत्रिमपरिणयनिष्पत्तिः सूचिता। वयं=मदयन्तिकासखीत्वेन स्वस्या, वरसम्बन्धाद्विद्वद्वरवर्गाणां च बहुत्वाद्बहुवचनम्। विवाहाऽर्थं वरमनुसृत्य वयं जन्याश्च विवाहं निर्वर्त्य वरगृहमेव प्रत्यागता इत्यर्थः। आपृच्छ्य = आमन्त्र्य, निजाऽऽवसथं = स्वावासम्। नववधूगृहप्रवेशविरचिताऽकालकौमुदीमहोत्सवप्रमत्तपर्याकुलाऽशेषपरिजनः = नववधूगृहप्रवेशाय (नूतनवधूगेहप्रवेशाय) विरचितः (संपादितः) अकालकौमुदीमहोत्सवः (अकाले = नियतकालव्यतिरिक्ते काले, यः कौमुदीमहोत्सवः = कार्तिकपूर्णिमामहोत्सवः) तेन प्रमत्ताः (अनव-

---

( तब बुद्धरक्षिता प्रवेश करती है। )

बुद्धरक्षिता—अहो! सुसम्बद्ध मालतीवेशकी शोभासे ठगे गये नन्दनने जिसका पाणि ग्रहण किया है ऐसे मकरन्दजी मन्त्री भूरिवसुजीके भवनमें भगवतीके कार्यसे कुशलपूर्वक रक्षित हो गये हैं। आज हमलोग नन्दन के भवनमें प्राप्त हुए हैं। इस कारणसे भगवती ( कामन्दकी )नन्दनसे पूछकर अपने वासस्थानको चली गई हैं। नववधूके गृहमें प्रवेशके लिए किये गये अकाल कौमुदीमहोत्सवसे सबों

प्रमत्तपर्याकुलाशेषपरिजनः । प्रदोषोऽनुकूलयिष्यत्यद्य नो व्यवसितम् । सांप्रतं च त्वरमाणकामः कामयितुं सपादपतनमभ्यर्थ्य पुनर्बलात्कारेणाभिद्रवन्मकरन्देन निष्ठुरं प्रतिहतो जामाता ! स च वैलक्ष्यरोषावेशस्खलदक्षरोऽवरुदितनयनप्रस्फुरद्वदनो 'न मे सांप्रतमनया कौमारवर्धक्या प्रयो-

हिताः) पर्याकुलाः (विक्षिप्तचेतस्काः, कार्यान्तरव्यासङ्गादिति शेषः) अशेषाः (सकलाः) परिजनाः (सेवकजनाः) यस्मिन् सः । एतादृशः प्रदोषः = रजनीमुखम् । नः = अस्माकं, व्यवसितम् = उद्योगं, मदयन्तिकाविवाहरूपमिति भावः । अनुकूलयिष्यति = सिद्ध्युन्मुखं करिष्यति । कौमुदीमहोत्सवे परिजनानां व्यापृतत्वान्मदयन्तिकां गृहीत्वा निर्गन्तुं कालोऽप्येषोऽनुकूलः प्रतीयत इति भावः । अनेन च वर्तमानोऽर्थः सूचितः । त्वरमाणकामः=विलम्बाऽसहमदनाऽऽवेशः, नववधूसंभोगेऽत्युत्कण्ठित इति भावः । कामयितुं = कामं कर्तुं, सपादपतनं = चरणपातं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । अभ्यर्थ्य = प्रार्थयित्वा, सुरतप्रार्थनां कृत्वेति भावः । बलात्कारेण = बलाचरणेन, अस्वीकाराऽनन्तरमिति शेषः । अभिद्रवन् = सम्मुखं गच्छन्, अभिपूर्वकात् 'द्रु गतौ' इति धातोर्लटः शतृप्रत्ययः । जामाता = वरः, नन्दनी इत्यर्थः, मकरन्देन = कपटमालतीवेशेन, निष्ठुरं = कठोरं यथा स्यात्तथा । प्रतिहतः = निराकृतः । स च = नन्दनश्च । वैलक्ष्यरोषावेशस्खलदक्षरः वैलक्ष्येण (लक्ष्यहीनत्वेन (विगतं लक्ष्यं यस्मात्स विलक्षस्तस्य भावो वैलक्ष्यं, तेन) यो रोषाऽऽवेशः (कोपावेशः) तेन स्खलदक्षरः (अस्फुटवचनः)। 'अधिकवैलक्ष्यस्खलदक्षरः' इति पुस्तकान्तरपाठः । अवरुदितनयनप्रस्फुरद्वदनः = अवरुदितनयनः (मुक्ताश्रुलोचनः, अवरुदिते नयने यस्य सः) स चाऽसौ प्रस्फुरद्वदनः=संचलन्मुखः, (प्रचलदोष्ठ इति इति भावः । प्रस्फुरद्वदनं यस्य सः)। 'सरोषनिर्भरदुःखितो मदनप्रस्फुरन्नयनः' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य सरोषः (सकोपः) स चाऽसौ निर्भरदुःखितः (अतिशयव्यथितः), एवं च मदप्रस्फुरन्नयनः = मदेन (मत्तत्वेन, कोपेनेति शेषः) प्रस्फुरत (अत्यर्थं संचलती) नयने (नेत्रे) यस्य स इत्यर्थः । अनया=एतया, 'त्वये'ति पुस्तकान्तरपाठः । कौमारवर्धक्या = कौमारे (कुमारीभाव एव) वर्धकी (चलितचारित्रा, पुंश्चलीति भावः), तया । माधवे भृशाऽनुरक्तेयं मालतीति पूर्वमेव नन्दनोऽपि श्रुतवानित्येवमुपालम्भः । 'कौमारबन्धक्ये'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य कौमारे

भृत्य असावधान और व्यग्रचित्तवाले हो गये हैं इस कारणसे यह प्रदोष (रात्रिका प्रारम्भ) आज हमारे मदयन्तिका विवाहरूप उद्योगको अनुकूल करेगा । इस समय कामके आवेशसे विलम्बको न सहनेवाले जामाता (नन्दन) को समागमके लिए

जनमि'ति सशपथं प्रतिज्ञां कृत्वा वासभवनान्निर्गतः। तस्मादनेन प्रसङ्गेन मदयन्तिकामानीय मकरन्देन संयोजयिष्यामि। (इति निष्क्रान्ता) ( अम्हहे, सुसिलिट्ठमालदीणेवच्छलच्छीविप्पलद्धणन्दणकरग्गहो अमच्चभूरिवसुमन्दिरे भअवदीए संविहाणेण क्खेमेण गोवाइदो अज्ज मअरन्दो। अज्ज अम्हे णन्दणावासं उवगदा अदो भअवदी णन्दणं आपुच्छिअ णिआवसहं गआ। अअं अ णववहूघरप्पवेसविरइदकालकोमुदीमहूसवप्पमत्तपज्जाउलासेसपरिअणो पदोसः अणुऊलइस्सदि अज्ज णो व्ववसिदं। संपदं अ तुवरन्तकामो कामेदुं सपादपडणं अब्भत्थिअ पुणो बलामोडिअ अभिद्दवन्तो मअरन्देण णिट्ठुरं परिहदो जामादा। सो अ वेल्लक्खरोसावेसक्खलन्तअक्खरो ओरुइदणअणपप्फुरन्तवअणो ण मे संपदं इमाए कौमारवड्ढईए

---

चन्धक्या = असत्येत्यर्थः। वासभवनात् = गर्भाऽगारात्। तदत्र नन्दनस्य विवाहदिन एव बलादभिद्रवणेन 'त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयातां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्तत' इति गृह्यसूत्रप्रतिकूलवर्तित्वादधार्मिकत्वं कामशास्त्राऽनभिज्ञत्वं च द्योत्यते। यदाह—

'सुकुमाराः पुरुषाणामाराध्या योषितः सदा।
अनिच्छया प्रवृत्तश्चेच्छृङ्गारं नाशयेद्रसम् ॥' इति।

'कौमारवर्धक्ये'ति पुरुषवाक्येन दुराचारत्वमप्यस्य। यदाह—

'ताडनं बन्धनं वा यो न विमृश्य समाचरेत्।
ब्रूते परुषवाक्यं च दुराचारः स उच्यते ॥' इति।

प्रसङ्गेन = अवसरेण। इति = वृत्तं वर्तिष्यमाणं च सूचयित्वा निष्क्रान्ता बुद्धरक्षिता।

अयं च ग्रन्थकाण्डः प्रवेशको वृत्तवर्तिष्यमाणोदितलक्षणयोगात्। प्रवेशकलक्षणं च पूर्वमेवोक्तम्।

---

चरणोंमें गिरनेके साथ प्रार्थना कर फिर बलात्कार करनेके लिए जानेपर मकरन्दने कठोरतासे हटा दिया। वे ( नन्दन ) भी लक्ष्यके हीन होनेसे क्रोधके आवेशसे अस्फुट वचनवाले होकर आँसू गिराकर ओष्ठको प्रस्फुरित कर 'अभी मुझे कुमारी अवस्थामें ही चरित्रहीन इस ( मालती ) से प्रयोजन ( मतलब ) नहीं है।' ऐसा कहकर शपथके साथ प्रतिज्ञा कर वासभवनसे निकल गये। इस कारणसे इसी

पओअणं त्ति ससवहं पडण्णं काद्ण वासभवणादो णिग्गदो। ता एदेण पसङ्गेण मद-अन्तिअं आणीअ मअरन्देण संओजइस्सं।

इति प्रवेशकः।

( ततः प्रविशति शय्यागतो मकरन्दो लवङ्गिका च )

मकरन्दः—लवङ्गिके, अपि नाम बुद्धरक्षितासंक्रान्ता भगवतीनीति-विजेष्यते।

लवङ्गिका—कः संदेहो महाभागस्य ? किं बहुना ? यथैष मञ्जीरशब्द-स्तथा जानामि तेन व्यपदेशेनानीता बुद्धरक्षितया मदयन्तिकेति। तदु-त्तरीयापवारितः सुप्तलक्षणस्तिष्ठ। ( को संदेहो महाभाअस्स। किं बहुणा। जह

---

तत इति। शय्यागतः=पल्यङ्कस्थः, सुप्तस्य प्रवेशो भरतनिषिद्ध इति शय्यागत इत्युक्तम्। 'मालतीवेश' इत्यधिकः पाठः।

मकरन्द इति। अपि नाम=संभावनाद्योतकमव्ययद्वयम्। बुद्धरक्षितासंक्रान्ता= बुद्धरक्षितायां ( कामन्दकीसख्याम् ) संक्रान्ता ( निवेशिता )। भगवतीनीतिः= भगवत्याः ( कामन्दक्याः ), नीतिः=नयः, विजेष्यते=सर्वोत्कर्षेण स्थास्यति किमिति काकुः।

लवङ्गिकेति। महाभागस्य=महाभागधेयस्य, 'महानुभावस्ये'ति पुस्तकान्तर-पाठः। मञ्जीरशब्दः=नूपुरध्वनिः, 'पादाऽङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्।' इत्यमरः। 'श्रूयत' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। व्यपदेशेन=मालतीप्रबोधच्छलेन, तत्=तस्मात्, उत्तरीयाऽपवारितः=उत्तरीयेण ( उत्तरासङ्गेन ) अपवारितः

---

प्रसङ्गसे मदयन्तिकाको लेकर मकरन्दके साथ संयोग कराऊँगी ( ऐसा कहकर निकलती है। )

इति प्रवेशक।

( तब शय्यामें रहे हुए मकरन्दके साथ लवङ्गिका प्रवेश करती है। )

मकरन्द—लवङ्गिके ! बुद्धरक्षितामें संक्रान्त ( रक्खी गई ) भगवतीनीतिकी क्या विजय होगी ?

लवङ्गिका—महाभागको क्या सन्देह है ? अधिकसे क्या ? जिस तरह यह मञ्जीर ( पाजेब ) का शब्द सुनाई दे रहा है उस तरह जानती हूँ कि उस ( मालती

एस्रो मञ्जीरसद्दो तह जाणामि देणववदेसेण आणीदा बुद्धरक्खिदाए मदअन्तिएत्ति। ता उत्तरीआवमारिदो सुत्तलक्खणो चिट्ठ )

( मकरन्दस्तथा करोति )

( ततः प्रविशति मदयन्तिका बुद्धरक्षिता च )

मदयन्तिका—सखि, सत्यमेव परिकोपितो मम भ्राता मालत्या? ( सहि सच्चं जेव्व परिकोविदो मे भादा मालदीए ? )

बुद्धरक्षिता—अथ किम्। ( अह इं )

मदयन्तिका—अहो अत्याहितम्। तदेहि, वामशीलां मालतीं निर्भर्त्सयावः। ( अहो अच्चाहिदं। ता एहि, वामसीलं मालदीं णिब्भच्छेम्ह )

( इति परिक्रामतः )

---

( आच्छादितः सन् ) सुप्तलक्षणः=सुप्तस्य ( निद्राणस्य ) इव लक्षणं ( चिह्नम् ) यस्य सः, सुप्त इवेति भावः।

मदयन्तिकेति। परिकोपितः=परिकुपितः कृतः। काक्वा प्रश्नो व्यज्यते।

बुद्धरक्षितेति अथ किं=सत्यमेवेति भावः।

मदयन्तिकेति। अत्याहितं=महाभीतिः, 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवाऽनपेक्षि चे'त्यमरः। वामशीलां=वक्रस्वभावां, वामं शीलं यस्यास्ताम्। निर्भर्त्सयावः=निर्भर्त्सितां कुर्वः।

---

प्रबोधके ) बहानेसे बुद्धरक्षिता मदयन्तिकाको ले आई। इस कारणसे दुपट्टेसे शरीरको आवृत्त कर सोये हुएके सदृश होकर आप रहें।

( मकरन्द वैसा ही करता है )

( तब मदयन्तिका और बुद्धरक्षिता प्रवेश करती हैं। )

मदयन्तिका—सखि! क्या सचमुच मालतीने मेरे भाई ( नन्दनजी ) को कुपित किया ?

बुद्धरक्षिता—और क्या ?

मदयन्तिका—अहो! बड़े भयकी बात है। इस कारणसे आओ, कुटिल स्वभाववाली मालतीको भर्त्सित करें।

( दोनों पदक्षेप करती हैं। )

बुद्धरक्षिता—इदं वासभवनम् । ( इदं वासभवणं )

( उभे प्रविशतः )

मदयन्तिका—सखि लवङ्गिके, ज्ञायते प्रसुप्ता ते प्रियसखीति । ( सहि लवङ्गिए, जाणीअदि पसुत्ता दे पिअसही त्ति )

लवङ्गिका—सखि, मैनां प्रतिबोधय । एषा चिरं दुर्मनायमानेदानीमेवे" षन्मन्ये प्रसुप्तेति । अतः शनैरिहैव शयनार्धं उपविश । ( सहि, मा णं पडिबोधेहि । एसा चिरं दुम्मणाअन्दी दाणिं जेव्व ईस मण्णे पसुत्तेति । अदो सणिअं इध जेव्व सअणद्धम्मि उवविस )

मदयन्तिका—( तथा कृत्वा ) दुर्मनायते कथमियं वामशीला । ( दुम्मणाअदि कहं इयं वामसीला )

लवङ्गिका—कथं नाम नववधूविस्रम्भणोपायाभिज्ञं लडहं विदग्धं मधुर-

बुद्धरक्षितेति । वासभवनं = गर्भागारं, 'वासभवनद्वारम्' इति पुस्तकान्तरपाठः ।

मदयन्तिकेति । प्रियसखी = दयितवयस्या, मालतीति भावः । प्रसुप्ता = निद्रिता, काका प्रश्नो व्यज्यते ।

लवङ्गिकेति । मा एनां प्रतिबोधय = उच्चस्वरेण एतां जागरितां मा कार्षीरिति भावः । दुर्मनायमाना = दुःखितमनस्का भवन्ती, अदुर्मना दुर्मना भवतीति 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः' इति क्यङ् हलश्च लोपः । ईषत् = स्तोकम् । शयनार्द्धे = शय्यैकदेशे ।

लवङ्गिकेति । कथं = केन प्रकारेण, नामेति संभावनायाम् । मे = मम, प्रियसखी =

बुद्धरक्षिता—यह वासभवन ( कोठरी ) है ।

( दोनों प्रवेश करती हैं । )

मदयन्तिका—सखि लवङ्गिके ! जानती हो, तुम्हारी प्रियसखी ( मालती ) सोई हुई है क्या ।

लवङ्गिका—सखि ! इनको मत जगाओ । ये बहुत समय तक दुःखित चित्तवाली होती हुई अभी कुछ सो रही हैं, मैं ऐसा विचार करती हूँ । इसलिए धीरे धीरे इसी बिछौने के एक ओर बैठो ।

मदयन्तिका—( वैसा कर ) यह कुटिल स्वभाववाली क्यों दुःखित-चित्त हो रही है ?

लवङ्गिका—नववधूके विश्वासकी उत्पत्तिके उपायोंके जानकर, सुन्दर, निपुण,

भाषिणमरोषणं ते भ्रातरं भर्तारमासाद्य न दुर्मनायिष्यते मे प्रियसखी। ( कहं णाम णववहूविस्सम्भणोवाअजाणुअं लडहं विअद्धं महुरभासिणं अरोसणं दे भादरं भत्तारं आसादिअ ण दुम्मणाइस्सदि मे पिअसही )

मदयन्तिका—पश्य बुद्धरक्षिते, विप्रतीपमुपालब्धाः स्मः। ( पेक्ख बुद्धरक्खिदे, विप्पदीवं उवालद्धा म्ह )

बुद्धरक्षिता—विप्रतीपं न वा विप्रतीपम्। ( विप्पदीवं ण वा विप्पदीवं )

मदयन्तिका—कथमिव। ( कहं विअ )

---

मालतीत्यर्थः। नववधूविस्रम्भणोपायाऽभिज्ञं=नववध्वाः ( नूतनपरिणीतायाः ) विस्रम्भणे ( विश्वासजनने ) य उपायाः ( कामशास्त्रोक्ताश्चित्तवृत्त्यनुरोधाद्याः ) तेषाम् अभिज्ञं ( ज्ञातारम् ), ( विपरीतलक्षणया नववधूविस्रम्भणोपायाऽनभिज्ञमित्यर्थः। यतोऽत्यन्ताऽपरिचयात्सर्पादिवोद्विजमानां बलादेनां बालां शास्त्राऽनुरोधमकृत्वैव प्रसभान्निर्दयं पीडयितुमारब्धवानतोऽयं हालिकजनवन्न कामतन्त्रवार्तामपि जानातीति भावः। लडहं=सुन्दरं, विपरीतलक्षणया कुरूपमिति भावः। विदग्धं=सुरतकलानिपुणं, विपरीतलक्षणया बलीवर्दसमं कामकलाऽनभिज्ञमिति भावः। मधुरभाषिणं=मनोहरभाषणशीलं विपरीतलक्षणया कर्कशभाषणस्वभावमिति भावः। 'सस्नेहम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। अरोषणम्=अकोपनम्, विपरीतलक्षणया चण्डस्वभावमिति भावः। आसाद्य=प्राप्य। न दुर्मनायिष्यते=दुःखितचित्ता न भविष्यति। एतादृशभर्तृसमागमे क्लेशाऽतिशयान्मत्सख्या दुर्मनस्कत्वं युक्तमेवेति भावः।

मदयन्तिकेति। विप्रतीपं=विपरीतं यथा तथा, उपालब्धाः=तिरस्कृताः, स्मः। लवङ्गिकेयमस्माभिरुपालब्धव्ये प्रत्युताऽस्मानेवोपालभत इत्यर्थः।

बुद्धरक्षितेति। विप्रतीपं=विपरीतं, वा=अथवा न विप्रतीपं=न विपरीतम्, आपाततो विपरीतत्वेन प्रतिभासमानमपि तत्त्वनिरूपणेन वयमेवोपालब्धा इति भावः।

---

मधुरभाषी और कोप न करनेवाले आपके भाईको पति पाकर मेरी प्रियसखी क्या दुःखितचित्त न होगी?

मदयन्तिका—देखो बुद्धरक्षिते! इन्होंने हमें विपरीतरूपसे उलाहना दिया है।

बुद्धरक्षिता—विपरीतरूपसे वा अविपरीतरूपसे।

मदयन्तिका—कैसे?

बुद्धरक्षिता—यत्तावच्चरणपतितो भर्ता न बहुमानितः। अत्र लज्जा-दोषेणैष जनो नोपालम्भनीयः। यद्यपि प्रियसखि, अभिनववधूविरुद्धर-भसोपक्रमस्खलनवैलक्ष्यविच्छर्दितमहानुभावत्वस्य भ्रातुस्ते वाचागतं किमप्यप्रतिष्ठानम्। तेन ज्ञायते कृतापराधा उपालम्भनीया वयमिति।

---

बुद्धरक्षितेति। चरणपतितः = पादपतितः, समागमसम्मत्यधिगमार्थमनुनीत इति भावः। भर्ता = स्वामी, नन्दन। इत्यर्थः न बहुमानितः = तदिच्छापूरणाऽऽनुकूल्येन न सत्कृतः। अत्र = अस्मिन्विषये, पत्युरिच्छाऽनुसरणे इति भावः, एष जनः मालती। न उपालम्भनीयः = न निन्दनीयः। पुस्तकाऽन्तरे 'ने'ति पाठो नाऽस्ति। नवपरिणीतायाः पतीच्छापूरणाऽशक्तौ स्त्रीसुलभलज्जाया एव दोषत्वं न तस्या इति भावः। अभिनववधूविरुद्धरभसोपक्रमस्खलनवैलक्ष्यविच्छर्दितमहानुभावत्वस्य = अभिनववधूविरुद्धः (नवपरिणीताविपरीतः) यो रभसोपक्रमः (नन्दनकृतो बलात्काराऽऽरम्भः) तस्मिन्यत् स्खलनं (मालतीकृतो निराकरणरूपो व्यतिक्रमः), तस्माद्वैलक्ष्येण (विगतलक्ष्यत्वेन) विच्छर्दितं (विवर्जितम्) महाऽनुभावत्वं (धैर्यम्) येन, तस्य। ते = तव, मदयन्तिकाया इत्यर्थः। भ्रातुः = नन्दनस्य, वाचागतं=वाणीगतं, वाचां गतं, 'द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति द्वितीयातत्पुरुषः। भागुरिमतेन वाक्शब्दादाप्प्रत्ययः। किमपि = अनिर्वाच्यरूपम्, अप्रतिष्ठानम् = अप्रतिष्ठा, गर्हितवचनरूपा 'न मे त्वया कौमारवर्धक्या प्रयोजनम्' इत्याकारकेति भावः। तेन = नन्दनकृतेन विरुद्धाचरणेनेति भावः। कृताऽपराधाः = विहिताऽऽगसः। उपालम्भनीयाः = निन्दनीयाः। अत्राऽर्थं संस्कृतमाश्रित्य प्रमाणत्वेन शिष्टवचनमवतारयति–कुसुमलघर्माण इति। शिल्पकारित्वात्संस्कृताऽऽश्रयणं यदाह—

'दिव्याया गणिकायाश्च शिल्पकार्यास्तथैव च।
विदग्धायाः स्त्रिया भाषां संस्कृतेनाऽपि योजयेत्॥' इति।

यद्वा कामसूत्राऽनुकरणात्संस्कृतभाषा। हि = यतः। योषितः = स्त्रियः, नववध्व

---

बुद्धरक्षिता—पाँवमें पड़े हुए पतिका जो सम्मान नहीं किया, इस विषयमें लज्जादोषके कारण ही इनको उलाहना नहीं देना चाहिए। यद्यपि प्रियसखि! नई वधूके विरुद्ध बलात्कारके आरम्भमें उन (मालती) से किये गये व्यतिक्रमसे लक्ष्यहीना होनेसे धैर्य छोड़नेवाले आपके भाई (नन्दन) ने जो वचनसे अनिर्वाच्य अप्रतिष्ठा की उससे जाना जाता है कि—अपराध करनेवाले हमलोग उलाहना

( संस्कृतमाश्रित्य ) किंच । 'कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः । तास्त्वनधिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः संप्रयोगविद्वेषिण्यो भवन्ति ।' एवं किल कामसूत्रकारा मन्त्रयन्ते । ( जं दाव चलणपडिदो भत्ता ण बहुमाणिदो । एत्थ लज्जादोसेण एसो जणो ण उवालम्भणिज्जो । जं वि पिअसहि, अहिणववहूविरुद्धरहसोपक्कमक्खलणवेलक्खविच्छड्डिदमहाणुहावत्तणस्स भादुणो दे वाआगअं किं वि अप्पडिट्ठाणं । तेण जाणीअदि किआवराहा उवालम्भणिज्ज अह्मेत्ति एवं किल कामसुत्तआरा मन्तेन्ति )

लवङ्गिका—गृहे गृहे पुरुषाः कुलकन्यका उद्वहन्ति । न च कोऽपि

---

इति भावः । कुसुमसधर्माणः=पुष्पसमधर्मयुक्ता, समानो धर्मो यासां ताः सधर्माणः 'समानस्यच्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' इति 'समानस्ये'ति योगविभागात्समानस्य साऽऽदेशः, इति काशिका । 'धर्मादनिच्केवलात्' इति समासाऽन्तोऽनिच् । कुसुमैः सधर्माणः । यथा कुसुमं न म्लायते तथा कोमलरीत्या सुकुमारक्रमेणोपभुक्तं सत्सौरभमशेषमुद्भिरति न तु प्रसभमेव निष्पीड्यमानम् । एवं तत्समानधर्माणो नवपरिणीता अपि सुकुमारसम्भोगक्रमेणैव उपभुज्यमानाः सत्योऽनुरक्ताः सुखहेतवो भवन्तीति भावः । सुकुमारोपक्रमाः=सुकुमारः ( कोमलव्यवहाररूपः ) उपक्रमः ( सम्भोगारम्भः ) यासां ताः । तास्तु=तादृश्यो योषितस्तु, अनधिगतविश्वासैः= अनधिगतः (अप्राप्तः, पुरातनपरिचयाऽभावादिति भावः) विश्वासः ( नवपरिणीताविस्रम्भः यैस्तैः, प्रसभं=बलात्कारेण, उपक्रम्यमाणाः=क्रियमाणोपक्रमाः सत्यः, सम्भोगाऽर्थमिति शेषः । सम्प्रयोगविद्वेषिण्यः=सम्भोगविद्वेषवत्यः, न केवलं तादृशपुरुषेणाऽनुरज्यते प्रत्युत शत्रुसमागमवद्विद्विषन्तीति भावः । यदाहुः—

'रभसेन ह्युपक्रान्ता कन्याभावमविन्दता ।
भयं चिन्तामुद्वेगं सद्योद्वेषं च गच्छति ॥' इति ।

किल=प्रसिद्धिद्योतकमव्ययमिदम् ।

लवङ्गिकेति । अतः=परं 'साऽस्रम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तस्य अश्रुपात-

---

देनेके योग्य हैं । ( संस्कृतका आश्रय कर ) और—'कुसुमके सदृश धर्मवाली स्त्रियाँ कोमल व्यवहाररूप संभोगारम्भके योग्य होती हैं । विश्वास प्राप्त नहीं करनेवाले पुरुषोंसे बलात्कारका उपक्रम करनेसे वे (स्त्रियाँ) समागममें विद्वेष करनेवाली होती हैं' कामसूत्रके रचयिता ऐसा कहते हैं ।

लवङ्गिका—घर-घरमें पुरुष कुलकन्याओंसे विवाह करते हैं । परन्तु कोई

लज्जाप्रसाधनमनपराधमुग्धस्वभावं कुलकुमारीजनं प्रभवामीति वागनलेन प्रज्वलयति। एते खलु ते आमरणसंभ्रियमाणदुःसहपरगृहनिवासवैराग्यकारिणो हृदयशल्यनिक्षेपा महापरिभवाः। येषां कृते स्त्रीजन्मलाभं जुगुप्सन्ते बान्धवाः। ( घरे घरे पुरिसा कुलक्खणकाओ उव्वहन्दि। ण अ को वि लज्जापसाहणं अणवरद्धमुद्धसहावं कुलकुमारोजणं पहवामि त्ति वाआणलेण पज्जालेदि। एदे क्खु दे आमलणसंभरिज्जन्तदूसहपरघरणिवासवेरग्गकारिणो हिअअसल्लणिक्खेवा महापरिहवा। जाणं किदे इत्थिआजम्मलाहं जुउच्छन्दि बान्धवा )

मदयन्तिका—बुद्धरक्षिते, अतिम्लाना प्रियसखी लवङ्गिका। अति-

---

म्हितं यथा तथेत्यर्थः। कोऽपि = पुरुषः, लज्जाप्रसाधनं = व्रीडाऽलङ्करणं, 'लज्जापराधीनम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य व्रीडाऽधीनमित्यर्थः। अनपराधमुग्धस्वभावम्= अपराधरहितं मनोहरशीलम्, 'अनपराद्धं मुग्धलडहस्वभावम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य अपराधरहितं सरलसुन्दरशीलमित्यर्थः। प्रभवामीति = समर्थोऽस्मीति, स्वपत्नीविषये यथेच्छाचरणे शक्तोऽस्मीति भावः। वागनलेन = वचनाऽग्निना, अवाच्यवचनेनेति भावः। 'वाचानलेने'ति पुस्तकान्तरपाठः। न प्रज्वलयति = न सन्तापयति। हृदयशल्यनिक्षेपाः = उरःस्थलकीलकाऽऽरोपणसदृशाः। आमरणसंभ्रियमाणदुःसहपरगृहनिवासवैराग्यकारिणः = आमरणं ( मृत्युकालपर्यन्तम् ) संभ्रियमाणाः ( विस्मर्तुमशक्यत्वेन मनसि सततं संधार्यमाणा इति भावः ) अत एव दुःसहपरगृहनिवासवैराग्यकारिणः ( दुःसहाः = दुर्मर्षणाः, परगृहनिवासवैराग्यकारिणः = अन्यगेहवासनिर्वेदविधायिनः ) 'पतिगृहनिवासवैराग्यकारिण' इति पुस्तकान्तरपाठः। महापरिभवाः = अत्यर्थतिरस्काराः, 'अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया।' इत्यमरः। येषां = महापरिभवाणां, कृते = निमित्ते, बान्धवाः=स्त्रीणां पित्रादयो बन्धवः। जुगुप्सन्ते=निन्दन्ति, गुपधातोः 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' इति 'गुपेर्निन्दायाम्' इति सन्प्रत्ययः।

मदयन्तिकेति। वागपराधः = वाण्यपराधः, अवाच्यवचनरूप इति भावः।

---

भी लज्जारूप भूषणसे युक्त, निरपराध ( बेगुनाह ) और सुन्दर स्वभाववाली कुलकन्याको 'मैं समर्थ हूँ' ऐसा मानकर वचनरूप अग्निसे सन्तापित नहीं करता है। मरणपर्यन्त धारण किये जानेवाले अतएव दुःसह परगृहवास और वैराग्यका विधान करनेवाले, हृदयमें कीलकारोपणके सदृश ये दुःसह तिरस्कार हैं। जिनके कारण स्त्रीके पिता आदि बान्धव स्त्रीजन्मलाभकी निन्दा करते हैं।

मदयन्तिका—बुद्धरक्षिते। प्रियसखी लवङ्गिका अतिशय म्लान हो रही है।

महान्कोऽपि मे भ्रात्रा वागपराधः कृतः । ( बुद्धरक्खिदे, अदिदुम्मिदा पिअसही लवङ्गिआ । अतिमहान्तो को वि मे भादुणा वाअवराहो किदो )

बुद्धरक्षिता--अथ किम् । श्रुतमेवास्माभि'र्न मे सांप्रतमनया कौमारवर्धकया प्रयोजनमि'ति सशपथं कृत्वा वासभवनान्निर्गतः । ( अह ईं । सुदं जेव्व अम्हेहिं ण मे संपदं इमाए कोमारवड्ढईए पओअणं ति ससपहं पइण्णं काऊण वासभवणादो णिग्गदो )

मदयन्तिका--( कर्णौ पिधाय ) अहो ! अतिक्रमः । अहो ! प्रमादः । सखि लवङ्गिके, असमर्थास्मि ते मुखं सांप्रतं द्रष्टुम् । तथापि प्रभवामीति किंचिन्मन्त्रयिष्ये । ( अम्हहे अदिक्कमो । अहो पमादो । सहि लवङ्गिए, असमत्थम्हि दे मुहं संपदं दट्ठुं । तह वि पहवामि त्ति किं वि मन्तइस्सं )

लवङ्गिका--स्वाधीनस्तेऽयं जनः । ( साहीणो दे अअं जणो )

---

'वाचाऽपराध' इति पुस्तकान्तरपाठः । 'अस्याः' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । येनेयमीदृशी ग्लानाऽस्तीति भावः ।

बुद्धरक्षितेति । अथ किं=कृत एव वागपराध इति भावः । वागपराधस्वरूपमाह—'न मे' इत्यादि ।

मदयन्तिकेति । अतिक्रमः=अतिक्रमणं, मद्भ्रातृकर्तृकं मालतीप्रतिष्ठोल्लङ्घनमिति भावः । प्रमादः=अनवधानता, मद्भ्रातुरिति शेषः । द्रष्टुं=विलोकितुं, 'दर्शयितुम्' इति पुस्तकान्तरपाठः । प्रभवामि=समर्थाऽस्मि, अतिस्निग्धायां सख्यां त्वयि मे प्रभुत्वमस्ति, इति=अस्माद्धेतोः, मन्त्रयिष्ये=भाषिष्ये ।

लवङ्गिकेति । अयं जनः=अहमिति भावः । ते=तव, स्वाऽधीनः=आत्मायत्तः,

---

मेरे भाईने कोई बड़ा भारी वचनका अपराध किया है ?

बुद्धरक्षिता—और क्या ! हमने सुना ही है कि—'इस समय मुझे कुमारी अवस्थामें ही चरित्रहीन इस ( मालती ) से प्रयोजन नहीं है' कसम खानेके साथ ऐसा कहकर आपके भाई वासभवन से निकल गये हैं ।

मदयन्तिका—(कर्णयुग्मको आवृत कर) अहो ! मर्यादाका उल्लङ्घन किया । अहो ! प्रमाद है । सखि लवङ्गिके ! इस समय मैं तुम्हें मुंह भी नहीं दिखा सकती हूँ । तो भी तुम्हारे विषयमें 'समर्थ हूँ' ऐसा विचार कर कुछ मन्त्रणा ( सलाह ) करती हूँ ।

लवङ्गिका—मैं तुम्हारी अधीन हूँ ।

मदयन्तिका—तिष्ठतु तावन्मम भ्रातुर्दुःशीलताप्रतिष्ठानं च । युष्माभिरपीदृशोऽप्येष सांप्रतं यथाचित्तमनुवर्तनीयो येन भर्तैष इति । यूयमस्यानभिजाताक्षराधिक्षेपोपालम्भस्य यन्मूलं तन्न जानीथ । (चिट्ठदु दाव मह भादुणो दुःसीलदा अप्पडिट्ठाणं अ । तुम्हेहिं वि ईदिसो वि एसो संपदं जहचित्तं अणुवट्टणीओ जेण भत्ता एसो त्ति । तुम्हे इमस्स अणहिआअक्खराहिक्खेवोवालम्भस्स जं मूलं तं ण जाणह )

लवङ्गिका—कथं वयमसज्जानीमः । ( कहं अम्हे असन्तं जाणीमो )

मदयन्तिका—यदिदानीं तस्मिन्महानुभावे माधवे किमपि किल

अहं सर्वतोभावेन त्वदधीनाऽस्मीति यथेष्टं भाषस्वेति भावः ।

मदयन्तिकेति । भ्रातुः = नन्दनस्येति भावः । दुःशीलता = दुष्टस्वभावता । अप्रतिष्ठानं च = अप्रतिष्ठा च । युष्माभिरपि = मालतीपक्षस्थिताभिरपीति भावः । ईदृशोऽपि=एतादृशोऽपि, दुःशीलो मालत्यप्रतिष्ठाकारकोऽपि इति भावः । एषः=अयं, मद्भ्राता नन्दन इति भावः । यथाचित्तं = चित्तवृत्त्यनुसारं यथा तथा । अनुवर्तनीयः = अनुसरणीयः, भर्तुरिच्छाप्रतिकूलं नाचरणीयमिति भावः ।

'विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥'

इत्यादिस्मृतिवाक्यमनुसृत्य पतिपरिचरणं कर्तव्यमिति भावः । अस्य = नन्दनस्य । अनभिजाताऽक्षराऽधिक्षेपोपालम्भस्य = अनभिजातैः ( असुन्दरैः अभद्रैरिति भावः ) अक्षरैः ( वर्णैः ) 'न मे साम्प्रतमनये'त्याकारकैरिति भावः । योऽधिक्षेपः ( आक्षेपः ) तद्रूपस्य उपालम्भस्य ( तिरस्कारस्य ) । मूलं = कारणम् ।

लवङ्गिकेति । असत्=अविद्यमानम्, एतस्योपालम्भस्य बीजं मालतीगतं किञ्चिदनुचितमस्ति चेत्कथं वयं न जानीमो नाऽस्त्येवैतत् । कारणान्तरं तु असंभावितमेवेत्याशयः ।

मदयन्तिकेति । वाङ्मात्रं = वचनमात्रं, 'माधवाऽनुरक्तेयं मालती'ति प्रवादमा-

मदयन्तिका—मेरे भाईकी दुःशीलता और अप्रतिष्ठाको रहने दो । ऐसे होते हुए भी इनकी चित्तवृत्तिका अभी तुमलोगोंको अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि ये स्वामी हैं । इनके असुन्दर अक्षरोंसे आक्षेपरूप उपालम्भका जो कारण है वह तुमलोग नहीं जानती हो ।

लवङ्गिका—हमलोग अविद्यमान विषयको कैसे जानें ।

मदयन्तिका—इस समय उन महानुभाव माधवमें मालतीका जो वचनमात्र

मालत्या वाङ्मात्रमासीत्स एष सर्वलोकस्यातिभूमिं गतः प्रवादः। तत्खल्वेतद्विजृम्भते। तत्प्रियसखि, यथैव भर्तुरुपेक्षाभिनिवेशो निरवशेषो हृदयादुद्भ्रियते तथा कुरु। अन्यथा महान्प्रमाद इति ज्ञातं भवतु। निष्कम्पदारुणासु कुलकन्यकासु दूनयति हृदयं मनुष्याणामीदृशाद्दुरभिषङ्गादिति जानीथ। मा भण मदयन्तिकया कथितमिति। ( जं दाणिं तस्सिं महाणुहावे माहवे किं वि किल मालदीए वाआमेत्तं आसी सो एसो सव्वलोअस्स अदिभूमिं गदो पवादो। तं क्खु एदं विअम्भदि। ता पिअसहि, जह एस भत्तुणो उवेक्खाहिणिवेसो णिरवसेसो हिअआदो उद्धरिअदि तह करेहि। अण्णहा महान्तो पमादो त्ति जाणीदं होदु। णिक्कम्पदारुणासु कुलकण्णकासु दूसावेदि हिअअं माणुसाणं ईरिसादो दुरहिसंगादो त्ति जाणह। मा भण मदअन्तिआए कहिदं त्ति )

---

त्रमिति भावः। 'तारामैत्रकम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य। दर्शनमात्रस्नेहः। अतिभूमिं गतः = परां कोटिमारूढः। तत् = वाङ्मात्रं, विजृम्भते = प्रकाशते, उपालम्भमूलत्वेनेति शेषः। भर्तुः = पत्युः, नन्दनस्येत्यर्थः। उपेक्षाऽभिनिवेशः = मालत्यां विषये अनपेक्षाग्रह इत्यर्थः। 'अपेक्षाऽभिनिवेशः' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य अपक्षे ( 'मालतीमाधवपरे'त्यसत्पक्षे इत्यर्थः ) अभिनिवेशः ( रोषः ) इत्यर्थः। निरवशेषः = अवशेषरहितः सन्, 'निरवशेषम्' इति पाठे क्रियाविशेषणम्। कुरु = विधेहि, 'कुरुते'ति पुस्तकान्तरपाठः। अन्यथा = एतद्वैपरीत्ये, एतदकरण इति भावः। प्रमादः = अनवधानता, 'महादोष' इति पुस्तकान्तरपाठः। ज्ञातं = विदितं, युष्माकमिति शेषः। निष्कम्पदारुणासु = निष्कम्पासु ( आनुकूल्यमप्राप्य केवलं निश्चेष्टीभूतासु ) अत एव—दारुणासु ( कठोरासु ), अनीप्सित आचार इति शेषः। पुस्तकान्तरे तु प्रथमान्तः पाठः। दुरभिषङ्गात् = दुष्टाऽनुरागबन्धात्। हृदयं = चित्तं, दूनयति = पीडयति, 'प्रथमाऽन्तपाठपक्षे 'दावयन्ती'ति क्रियापदम्। तस्य सन्तापयन्तीत्यर्थः। मा भण = न कथय, उपपदत्वेन माङोऽभावात् 'माङि लुङ्' इति लुङोऽ-

---

था वही प्रवाद होकर सब लोगोंमें पराकाष्ठाको आरूढ़ हो गया है। वह प्रकाशित हो रहा है इस कारणसे हे प्रियसखि! जैसे पतिका यह उपेक्षाका क्रोध निःशेष होकर हृदयसे निकल जाता है वैसा करो अन्यथा ( नहीं तो ) महान् प्रमाद होगा यह बात जान लो। पतिकी अनुकम्पा न पाकर निश्चेष्ट और कठोर कुलकन्याओंमें अनीप्सित आचार, ऐसे दुष्ट अनुरागबन्धसे मनुष्योंके हृदयको पीड़ित करता है यह भी जानो। मदयन्तिकाने ऐसा कहा है यह मत कहो।

लवङ्गिका—अयि असंबद्धलोकप्रवादमोहिते, अपेहि। न त्वया सह मन्त्रयिष्ये। ( अइ असंबद्धलोअप्पवादमोहिदे, अवेहि। ण तुए सह मन्तइस्सं )

मदयन्तिका—सखि, प्रसीद। अथवा न यूयं स्फुटं भणितास्ति प्रथ। किंच वयं सत्यमेव माधवैकमजीवितां मालतीं जानीमः। केन वा कठोरकेतकीगर्भविभ्रमावयवदौर्बल्यनिर्वर्तितसुन्दरत्वविशेषं माधवस्वहस्तनिर्मितबकुलावलीविरचितकण्ठावलम्बनमात्रसंजीवनं मालत्या माधवस्य

---

भावः। 'मा एनां भणिष्यथे'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र एनां=मालतीमित्यर्थः। वचनमेतन्मया कथितमिति मालत्यज्ञास्यच्चेन्मयि विरक्ताऽभविष्यदिति भावः। अत एतद्वचनं न प्रकाशनीयमिति तात्पर्यम्।

लवङ्गिकेति। अतः परमः 'असावधाने' इत्यधिकः पाठः। असम्बद्धलोकप्रवादमोहिते=असम्बद्धः (वास्तविकतासम्बन्धशून्यः) यो लोकप्रवादः (जनोक्तिः) ततो मोहिते (मुग्धे), अलीकलोकोक्तिमूढे इति भावः। अपेहि=दूरं गच्छ।

मदयन्तिकेति। प्रसीद=प्रसन्ना भव, कोपं मा कार्षीरिति भावः। अथवेति पक्षान्तरे। स्फुटं=व्यक्तम्। कठोरकेतकीगर्भविभ्रमाऽवयदौर्बल्यनिर्वर्तितसुन्दरत्वविशेषं=कठोरस्य (कठिनस्य, पूरिताऽवयवस्य) केतकीगर्भस्य (केतकीपुष्पमध्यभागस्य) इव विभ्रमः (विलासः, शौक्ल्यमिति भावः) येषां ते, तादृशा ये अवयवाः हस्तपादादयः) तेषां यद्दौर्बल्यं कार्श्यम्, विरहजनितमिति शेषः) तेन निर्वर्तितः (संजनितः) सुन्दरत्वविशेषः (लावण्यप्रचुरता) यस्मिंस्तत्। 'माधवस्वहस्तनिर्मितबकुलाऽऽवलीविरचितकण्ठाऽवलम्बनमात्रसंजीवनं= माधवस्वहस्तनिर्मितया (माधवात्मकररचितया) बकुलावल्या (बकुलपुष्पमालया) विरचितं (निर्मितम्) यत् कण्ठाऽवलम्बनं (गलाश्रयणम्) तन्मात्रं (तदेव, 'सन्धारिते'त्यपपाठपक्षे तन्मात्रेण संधारितमिति विग्रहः कार्यः (संजीवनं (प्राणधारणसाधनम्) यस्य

---

लवङ्गिका—अरी असम्बद्ध लोकप्रवादसे मोह प्राप्त करनेवाली! तुम हट जाओ। तुम्हारे साथ बातचीत नहीं करूँगी।

मदयन्तिका—सखि! प्रसन्न हो। अथवा मैंने तुम्हें स्पष्ट नहीं कहा है, ठहरो! किन्तु हमलोग सत्य ही मालतीको एकमात्र माधवमय जीवनवाली जानती हैं। पूर्ण अवयवोंसे युक्त केतकीपुष्पके मध्यभागके सदृश शुक्ल वर्णवाले हस्तपादादि अवयवोंकी दुर्बलताके कारण प्रचुर लावण्यसे सम्पन्न, माधवके अपने हाथोंसे बनी हुई बकुलपुष्पमालाको कण्ठका अवलम्बन बनानेवाला मालतीशरीर और प्रातःकालके

च प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डुरपरिक्षामरमणीयदर्शनं न विभावितं शरीरम्। किंच तस्मिन्दिवसे कुसुमाकरोद्यानपर्यन्तरथ्यामुखसमागमे सविभ्रमोल्लसितकौतूहलोत्फुल्लपरिसरोद्वेल्लमानसविलासमसृणस्निग्धसंचरणचारुतारकाविजृम्भमाणानङ्गशृङ्गाराचार्यसर्वागमोपदेशनिमितवैदग्ध्यमुग्धमनोहरा

तत्। एतादृशं मालत्याः शरीरं=देहः। एवं प्रभातचन्द्रमण्डलाऽऽपाण्डुरपरिक्षामरमणीयदर्शनं=प्रभाते (प्रातःकाले) यच्चन्द्रमण्डलम् (इन्दुमण्डलम्) तदिव आपाण्डुरम् (ईषच्छुक्लं, विरहेणेति शेषः) परिक्षामं (कृशम्) तथाऽपि रमणीयदर्शनं (मनोहरविलोकनम्), तादृशं माधवस्य च शरीरं=देहः, केन वा न विभावितं=केन वा न ज्ञातम्, अपि तु सर्वैरेव ज्ञातमिति भावः। तत्किमर्थमपह्नवं करोषीति तात्पर्यम्। कुसुमाकरोद्यानपर्यन्तरथ्यामुखसमागमे=कुसुमाकरोद्यानस्य (कुसुमाकरोपवनस्य) पर्यन्ते (प्रान्तदेशे) यत् रथ्यामुखं (प्रतोल्यग्रभागः) तस्मिन् समागमे (सम्मेलने) सति। सविभ्रमोल्लसितेत्यादिः=सविभ्रमं (सविलासं) यथा तथा उल्लसितयोः (शोभितयोः) कौतूहलेन (कौतुकेन) उत्फुल्लः (विकसितः) परिसरः (नेत्रप्रान्तः) ययोस्तयोः, उद्वेल्लः (चञ्चलः, उद्वेल्लतीति उद्वेल्लः उत्पूर्वकात् 'वेल्ल चलने' इति धातोः पचाद्यच) मानसविलासः (चित्तविलासः) याभ्यां ते, तयोः एवं च मसृणं (कोमलम्) (स्निग्धं स्नेहयुक्तम्) संचरणं (सञ्चारः) ययोस्ते, तयोः। तादृशयोः चारुतारकयोः (मनोहरकनीनिकयोः, 'तारकाऽक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः) विजृम्भमाणाः (वर्द्धमानाः), अनङ्गः (कामदेवः) एव शृङ्गाराचार्यः (आदिरसाऽऽचार्यः) तस्य ये सर्वागमोपदेशाः (सकलशास्त्रोपदेशाः) तैर्निर्मितं (रचितम्) यद् वैदग्ध्यं (नैपुण्यं, नागरिकप्रवीणत्वमिति भावः)। तेन मुग्धाः (सुन्दराः) अत एव मनोहराः (चेतोहराः) चित्ताकर्षका इति भावः) पुस्तकान्तरे तु 'सविभ्रमोल्लसितकौतूहलोत्फुल्लप्रचलनयनोत्पलयुगलविलासमसृणसञ्चारचारुतारकाविराजमानविभ्रमाः अनङ्गनाट्याचार्यसर्वाकारोपदेशनिर्मितविदग्ध-

चन्द्रमण्डलके सदृश कुछ सफेद, कृश और सुन्दर दर्शनवाला माधवका शरीर किसने नहीं देखा है? और भी—उस दिनमें कुसुमाकर उद्यानके प्रान्तभागमें सड़कके अग्रभागमें सम्मेलन होनेपर विलासके साथ शोभित होनेवाले, कौतुकसे विकसित, नेत्रप्रान्त होनेवाले, जिनके चित्तविलास चञ्चल होता है, ऐसे एवम् कोमल और स्निग्ध सञ्चारवाले, सुन्दर तारकाओं (आंखोंकी पुतलियों) में बढ़नेवाले कामदेवरूप शृङ्गाराचार्यके सब शास्त्रोंके उपदेशोंसे रचे गये नैपुण्यसे सुन्दर अतएव मनोहर इन दोनोंके (मालती और माधवके दृष्टिसंभेदों को क्या

मया न निरूपिता एतयोर्दृष्टिसंभेदाः। किंच मम भ्रातुर्दानवृत्तान्तं श्रुत्वा तत्क्षणोद्वृत्तगम्भीरोद्वेगव्यतिकरान्धकारितम्लायमानदेहशोभयोरुद्वर्तमानमूलबन्धनमिव न लक्षितं हृदयम्। किंच मयैतदपरं विस्मृतम्। ( सहि, पसीद। अहवा ण तुम्हे फुडं भणिदावो चिट्ठह। किंअ अम्हे सच्चं जेव्व माहवेक्कमअजीविदं मालदिं जाणीमो। केण वा कठोरकेअईगब्भविब्भमावअवदोव्वल्लणिव्वट्टिदसुन्दरत्तणविसेसं माहवसहत्थणिम्माविदवउलावलीविरइदकण्ठावलम्बणमेत्तसंजोवणं मालदीए माहवस्स अ पहादचन्दमण्डलापाण्डुरपरिक्खामरमणिज्जदंसणं ण विभाविदं सरीरं। किअ तस्स दिअसे कुसुमाउरुज्जाणपेरन्तरच्छामुहसमाअमे सविब्भमुल्लसिदकोदूहलुप्फुल्लपरिसरुव्वेल्लमाणसविलासमसिणसिणिद्धसंचरणचारुतारआविअम्भमाणाणङ्गासङ्गाराआरिअसव्वाअमोपदेसणिम्माविदविअद्धमुद्धमणहारा मए ण णिरुविदा इमाणं दिट्ठिसंभेदा। किअ मह भादुणो दाणवुत्तन्दं सुणिअ तक्खणु-

मुग्धमधुरा' इति पाठान्तरम्। एतयोः = मालतीमाधवयोः, दृष्टिसंभेदाः = अन्योन्यदर्शनसमागमाः। मया = मदयन्तिकया, न निरूपिताः ? न दृष्टाः ?, काक्वा दृष्टा एवेति भावः। किं च = एवं च, भ्रातुः = नन्दनस्य, तत्क्षणोद्वृत्तगम्भीरोद्वेगव्यतिकराऽन्धकारितम्लायमानदेहशोभयोः = तत्क्षणं ( नन्दनाय मालतीदानस्य श्रवणकाल एवेति भावः ) उद्वृत्तः ( निष्पन्नः 'उच्छ्वलित' इति पाठे उद्गत इत्यर्थः ) यो गम्भीरः ( गभीरः ) उद्वेगः ( अप्राप्तिदुःखम्, 'आवेग' इति पाठान्तरेऽप्ययमेवाऽर्थः ) तस्य यो व्यतिकरः ( संपर्कः ) तेन 'अन्धकारिता ( सञ्जाताऽन्धकारा ) म्लायमाना ( ग्लायमाना ) देहशोभा ( शरीरकान्तिः ) ययोस्तयोः। उद्वर्तमानमूलबन्धनम् = उद्वर्तमानं ( जायमानोद्वर्तनम्, उत्पतदिति भावः, 'उत्खण्ड्यमानम्' इति पाठे क्रियमाणोत्खण्डनमित्यर्थः ( मूलबन्धनं ( शरीरधारणे हेतुभूतं बन्धनमित्यर्थः ) यस्य तद्, तादृशं हृदयम् = उरःस्थलं, किं न लक्षितं = किं न ज्ञातं, काक्वा ज्ञातमेवेत्यर्थः। किमर्थमपलप्यते, अहं सर्वं वेद्मीति भावः। किं च = अन्यच्च, अपरम् = उदन्तान्तरम्। विस्मृतं=विस्मरणविषयीकृतं, काक्वा प्रश्नेन स्मृतमिति भावः। पुस्तकान्तरे 'स्मृतमि'ति पाठः।

मैंने नहीं देखा ? इसी तरह मेरे भाईके दानका वृत्तान्त सुनकर उसी क्षण उत्पन्न गम्भीर उद्वेग ( अप्राप्तिदुःख ) सम्पर्कसे अन्धकारपूर्ण और म्लान होनेवाली शरीरशोभासे युक्त उन दोनोंका शरीरधारणमें हेतुभूत बन्धनसे रहितके सदृश हृदयको क्या मैंने नहीं भाँप लिया है ? फिर मैं यह दूसरी बात भूल गई हूँ ?

व्वत्तगम्भीरुव्वेअव्वइअरन्धआरिअमिलाअन्तदेहसोहाणं उक्खण्डिअमाणमूलवन्धणं विअ ण लक्खिअं हिअअं। किं अ मए एदं अवरं विसुमरिदं )

लवङ्गिका—किमिदानीमपरम्। ( किं दाणिं अवरं )

मदयन्तिका—यत्खलु मम जीवितप्रदायिनो महानुभावस्य चेतनाप्रतिलम्भप्रियनिवेदिकाया मालत्या भगवतीविदग्धवचनोपन्यासचोदितेन हृदयं जीवितं च माधवेन पारितोषिकत्वेन स्वयंग्राहे नियुक्तम्। अथ लवङ्गिके, त्वया खल्वेवं भणितं 'प्रतीष्टः खलु नः प्रियसख्या अयं प्रसाद' इति। ( जं क्खु मह जीविदप्पदाइणो महाणुहावस्स चेदणापडिलम्भपिअणिवेदिआए मालदीए भअवदीविअद्धवअणोवण्णासचोदिदेण हिअअं जीविदं अ माहवेण पारिदोसिअत्तणेण सअंगाहे णिउत्तं। अह लवङ्गिए, तुए क्खु एव्वं भणिदं 'पिडिच्छिदो क्खु णो पिअसहीए अअं पसादो' त्ति )

---

लवङ्गिकेति। अपरम् = अन्यत्।

मदयन्तिकेति। मम=मदयन्तिकायाः, अतः परं 'तस्ये'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः महाऽनुभावस्य=महासामर्थ्यस्य, मकरन्दस्येत्यर्थः, अत्र मकरन्दनामाऽग्रहणेन कुलस्त्रीसदाचारो व्यज्यते। चेतनाप्रतिलम्भप्रियनिवेदिकायाः = शार्दूलप्रहारमूर्च्छितस्य कान्तस्य चेतनायाः ( चैतन्यस्य ) प्रतिलम्भः ( लाभः ) स एव प्रियः ( अभीष्टवृत्तान्तः ) तन्निवेदिकायाः ( तज्ज्ञापिकायाः ), भगवतीविदग्धवचनोपन्यासचोदितेन = भगवत्याः ( कामन्दकयाः ) विदग्धवचनोपन्यासेन ( 'वत्स ! माधव दिष्ट्या वर्धितोऽसि मालत्या। सोऽयमवसरः प्रीतिदानस्ये'ति चतुर्थाङ्कस्थितेन निपुणभाषितोपस्थापनेन ) चोदितेन ( प्रेरितेन, 'बोधितेने'ति पाठे ज्ञापितेनेत्यर्थः ) माधवेन, पारितोषिकत्वेन=परितोषजनितोपहारत्वेन। स्वयंग्राहे=स्वयंग्रहणे। नियुक्तं= 'यद्वयाले'त्यादिवाक्येन (४।१) दत्तमिति भावः। अथ=तदनन्तरं, प्रतीष्टः=स्वीकृतः

---

लवङ्गिका—इस समय फिर और क्या ?

मदयन्तिका—जो कि मुझे जीवन देनेवाले महानुभाव ( मकरन्द ) का चैतन्यप्राप्तिरूप प्रिय निवेदन करनेवाली मालतीको भगवतीके निपुण वचनके उपस्थापनसे प्रेरित होकर माधवने पारितोषिक ( इनाम ) की तौरपर हृदय और जीवनको ग्रहण करनेके लिए नियुक्त किया। और लवङ्गिके ! तुमने ऐसा कहा—'हमारी प्रियसखीने इस अनुग्रहको स्वीकार कर लिया'।

लवङ्गिका—सखि, कतमः पुनः स महानुभाव इति विस्मृतमिव मया। ( सहि कदमो उण सो महाणुहावो त्ति विसुमरिदं विअ मए )

मदयन्तिका—सखि, स्मर। येन तस्मिन्दिवसे विकटदुष्टश्वापदविनिपातगोचरं गताऽशरणा सुलग्नसंनिहितेन पीवरभुजस्तम्भेन संभाविता निष्कारणबान्धवेन सकलभुवनैकसारनिजदेहोपहारसाहसं कृत्वा परिरक्षितास्मि। येन च दृढविकटमांसलोत्तानपरिणाहिवक्षःस्थललाञ्छन-

लवङ्गिकेति। कतमः = बहुषु क इति भावः। 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' इति डतमच्प्रत्ययः। 'जातिपरिप्रश्न' इति प्रत्याख्यातमाकरे।

मदयन्तिकेति। विकटदुष्टश्वापदविनिपातगोचरं = विकटः (भयङ्करः) दुष्टः (दोषयुक्तः) यः श्वापदः (हिंस्रजन्तुः, शार्दूल इति भावः) तस्य विनिपातगोचरम् = (आक्रमणग्राह्यताम्) गता = प्राप्ता। अशरणा = रक्षकरहिता, अविद्यमानं शरणं यस्याः सा 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप' इति नञ्बहुव्रीहिः, 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। सुलग्नसंनिहितेन = सुलग्नेन (सुमुहूर्तेन 'तत्काले'ति पाठान्तरम्) संनिहितेन (निकटस्थितेन)। पीवरभुजस्तम्भेन = पीवरौ (पुष्टौ) भुजस्तम्भौ (बाहुस्तम्भौ, भुजौ स्तम्भौ इव, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोग' इति समासः) यस्य सः, तेन। निष्कारणबान्धवेन=अकारणबन्धुभावयुक्तेन। सकलभुवनैकसारनिजदेहोपहारसाहसं = सकलेषु (समग्रेषु) भुवनेषु (लोकेषु) एकः (अद्वितीयः) सारः (श्रेष्ठः) यो निजदेहः (स्वशरीरम्) तस्य उपहारः (शार्दूलाय उपायनीकरणं, मत्परित्राणाऽर्थमिति भावः) तस्य साहसं (दुष्करकर्म, 'साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि। अविमृश्य कृतौ धाष्ट्र्ये' इति हैमः) कृत्वा=विधाय। संभाविता = प्रतिष्ठिता, परिरक्षिता = परित्राता च। दृढविकटमांसलोत्तानपरिणाहिवक्षःस्थललाञ्छनजर्जरितजपाऽऽपीडधारिणा = दृढं (कठोरम्) विकटं (भयङ्करं, प्रहारेणेति शेषः) मांसलम् (बलवत्) उत्तानम् (उन्नतम्) परिणाहि (विशालम्) यत् वक्षःस्थलम् (उरःस्थलम्) तस्मिन्, लाञ्छनं (चिह्नं, शार्दूलप्रहारजनित-

लवङ्गिका—सखि! वे महानुभाव कौन हैं! यह बात जैसे मैं भूल गई हूँ।

मदयन्तिका—सखि! याद! करो। उस दिनमें भयङ्कर और दुष्ट व्याघ्रके आक्रमणविषयको प्राप्त, रक्षकसे रहित मुझको उत्तम लग्नमें निकटवर्ती, पुष्ट बाहुस्तम्भोंसे युक्त अकारण बन्धु जिस (मकरन्द) ने सब लोकोंमें अद्वितीय सारस्वरुप अपने शरीरका उपहार देनेका साहस कर प्रतिष्ठित किया और बचाया है। कठोर, भयङ्कर, बलसम्पन्न, उन्नत और विशाल वक्षःस्थल (छाती) में

जर्जरितजपापीडधारिणा करुणाधनेन मत्कृतेऽपि निमज्जत्सकलनखनिकायवज्रपञ्जरप्रहारो मारितश्च स दुष्टश्वापदमहाराक्षस इति । ( सहि सुमर । जेण तहिंस दिअसे विअडदुट्ठसावदविणिवादगोअरं गदा असरणा सुलग्गसण्णिहिदेण पीअरभुअत्थम्भेण संभाविदा णिक्कारणबन्धवेण सअलभुवणेक्कसारणिअदेहोवहारसाहसं कदुअ परिरक्खिदम्हि । जेण अ दिढविअडमंसुलुत्ताणपरिणाहिवच्छत्थललञ्छणजज्झरिदजवापीडधारिणा करुणाघणेण मम किदे वि णिमज्जन्तसअलणहणिआअवज्जपञ्जरप्पहारो मारिदो अ सो दुट्ठसावदमहारक्खसो त्ति )

लवङ्गिका—हुं मकरन्दः। ( हुं, मअरन्दो )

---

मित्यर्थः ) जर्जरितः ( जर्जरीकृतः ) जपाऽऽपीडः ( जपाकुसुमशेखर इव रुधिरार्द्रतया वक्षःस्थलनिहितहारलतैव जपाकुसुमवर्णत्वाज्जपापीडत्वेनोक्ता ) तं धारयतीति, तेन। करुणाधनेन = करुणा ( दया ) एव धनं ( द्रव्यम् ) यस्य स तेन, कृपालुनेत्यर्थः। येन = मकरन्देन। मत्कृतेऽपि = मादृश्या अबलायाः निमित्तेऽपि निमज्जत्सकलनखनिकायवज्रपञ्जरप्रहारः = निमज्जन् ( प्रविशन्, मकरन्ददेहे इति शेषः ) सकलनखनिकायः ( समग्रनखसमूहः ) एव वज्रपञ्जरः ( कुलिशपञ्जरः ) तस्य प्रहारः ( प्रहरणम् ) यस्य सः। सः = पूर्वदृष्टः। दुष्टश्वापदमहाराक्षसः = दुष्टः ( दोषयुक्तः ) श्वापदः (हिंस्रः, शार्दूल इति भावः) एव महाराक्षसः (महायातुधानः) मारितः = हतः, णिजन्ताद् 'मृङ् प्राणत्यागे' इति धातोः क्तप्रत्ययः। पुस्तकान्तरे तु 'मम कृते' इत्यनन्तरं 'विसहिता अतिदुष्टशार्दूलनखशिखावज्रप्रहाराः' इति पाठस्तत्र अतिदुष्टशार्दूलस्य नखशिखाः ( नखराऽग्राणि ) एव वज्रप्रहाराः, विसहिताः=सोढाः इत्यर्थः। तत्र 'विसहिता' इति अपपाठः।

लवङ्गिकेति। हुम् = अङ्गीकारद्योतकमव्ययमिदं मालतीमदयन्तिकयोः तुल्यताऽधिकारविषयाऽनुरागं व्यनक्ति। यथा त्वं स्वजीवितमनपेक्ष्य मकरन्देन शार्दूलात्परित्राता, एवमेव महामांसविक्रयसाहसिकेन माधवेन कापालिकपाशान्मालत्यपि परिरक्षितेति भावः। अतः कथं त्वं तामुपालभसे इति निगूढाऽभिप्रायः।

---

जर्जरित जपापुष्पशेखरके सदृश चिह्नके धारण करनेवाले, करुणाधनवाले जिन्होंने मेरे लिए भी सम्पूर्ण नखसमूहरूप वज्रपञ्जरसे प्रहार करनेवाले उस दुष्ट हिंस्ररूप महाराक्षस ( व्याघ्र ) को मार डाला।

लवङ्गिका—हाँ मकरन्द।

मदयन्तिका—( आनन्दम् ) सखि, किं भणसि । ( सहि, किं भणासि )

लवङ्गिका—ननु भणामि मकरन्द इति । ( सस्मितं शरीरमस्याः स्पृशन्ती संस्कृतमाश्रित्य ) ( णं भणामि मअरन्दो त्ति । )

वयं तथा नाम यदात्थ किं वदाम्ययं तु कस्माद्विकलः कथान्तरे ।
कदम्बगोलाकृतिमाश्रितः कथं विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजनः ॥ १ ॥

---

मदयन्तिकेति । प्रियतमनामधेयश्रवणादादरातिशयेन पृच्छति—सखीति ।

लवङ्गिकेति । मदयन्तिकाऽनुरागं ज्ञात्वा पुनरपि तत्प्रियतमनामधेयं समुच्चारयति—नन्विति ।

वयमिति । यत् आत्थ, वयं तथा नाम । तु किं वदामि ? विशुद्धमुग्धः अयं कुलकन्यकाजनः कस्मात् कथान्तरे विकलः ( सन् ) कदम्बगोलाकृतिम् आश्रितः कथम् ? इत्यन्वयः । यत्, आत्थ = 'कुमार्येव सती मालती माधवेऽनुरक्ताऽस्ती'ति ब्रवीषि' वयं = मालतीतत्पक्षाश्रिताः वयं, तथा नाम = तादृश्यः ( माधवाऽनुरक्ताः ) एव भवामः । नामेति प्रसिद्धौ । तु = परन्तु, किं, वदामि = ब्रवीमि, आत्मदोषाऽनभिज्ञां परदोषमात्राऽभिज्ञां त्वामिति शेषः । विशुद्धमुग्धः = विशुद्धः ( अतिशयपवित्रः, परपुरुषप्रणयकलङ्करहित इति भावः, विपरीतलक्षणया परपुरुषे साऽतिशयप्रणयशालीति द्योत्यते ) अत एव मुग्धः ( मूढः, मदनव्यापारवार्ताऽनभिज्ञः 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः । विपरीतलक्षणया मदनव्यापारवार्ताप्रवीण इति द्योत्यते) । अयं = निकटस्थः, कुलकन्यकाजनः = सद्वंशकुमारीजनः, त्वं मदयन्तिकेति भावः । कस्मात् = हेतोः, कथाऽन्तरे पुरुषविषयकवार्ताऽऽलापमध्य एव, न तु तद्दर्शनादाविति भावः । विकलः = विह्वलः, आत्मभावगोपनाऽसमर्थः सन्निति भावः । कदम्बगोलाकृति = नीपकुसुमगोलाकारम्, आश्रितः = आलम्बितवान्, रोमाञ्चयुक्तो जात इति भावः । कथं = किम्, अत्र किमुत्तरं वितरसीति भावः । त्वमेव मकरन्दनामग्रहणमात्रप्रकाशितमदनविकारा प्रसिद्धकौमारवर्द्धकी भूत्वा कथं मालत्युपालम्भे प्रवर्तस इति तात्पर्यम् । सोल्लुण्ठनोक्तिरियम् । अत एव वैदग्ध्येन शिल्पकारिणीत्वेन च

---

मदयन्तिका—( आनन्दके साथ ) सखि ! क्या कहती हो ?

लवङ्गिका—अरी ! 'मकरन्द' यह कहती हूँ । ( मुसकुराकर उसके शरीरको छूती हुई संस्कृतको आश्रय कर )

आप जैसा कहती हैं, हम वैसा ही हैं । परन्तु क्या कहूँ ? विशुद्ध और मूढ इस कुलकुमारीने किस कारणसे पुरुषविषयक वार्तालापके बीचमें ही विह्वल होकर कदम्बपुष्पके सदृश आकारका आश्रय किया ? ॥ १ ॥

मदयन्तिका—( सलज्जम् ) सखि, किं मामुपहससि । ननु भणामि । निर्वापयति तादृशस्यात्मनिरपेक्षव्यवसायिनः कृतान्तकवलीक्रियमाणजीवितबलात्कारप्रत्यानयनगुरूपकारिणो जनस्य संकथामात्रस्य नामग्रहणं स्मरणं च । तथा च त्वयापि गाढगुरुनखप्रहारवेदनारम्भविह्वलितशरीरसंगलितस्वेदसलिलोद्गमो मोहमुकुलीक्रियमाणनेत्रनीलोत्पलयुगलो भूमि-

संस्कृताश्रयणम् । तदुक्तं पूर्वमपि—

'दिव्याया गणिकायाश्च शिल्पकार्यास्तथैव च ।
विदग्धायाः स्त्रिया भाषां संस्कृतेनाऽपि योजयेत् ॥ इति ॥

अथवा लवङ्गिकायाः सखीत्वाद्वैदग्ध्याऽर्थं संस्कृताश्रयणं, तद्यथा साहित्यदर्पणे—

'योषित्सखीबालवेश्याकितवाऽप्सरसां तथा ।
वैदग्ध्याऽर्थं प्रदातव्यं संस्कृतं चान्तराऽन्तरा ॥' इति ।

उपमाऽलङ्कारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ १ ॥

मदयन्तिकेति । लवङ्गिकायां स्वाऽभिप्रायस्य प्रकाशनात् सलज्जं यथा स्यात्तथाऽऽह—सखीति । आत्मनिरपेक्षव्यवसायिनः = आत्मनिरपेक्षं ( स्वजीवनमनपेक्ष्येति भावः । आत्मनि विषये निर्गताऽपेक्षा यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा ) व्यवसायिनः ( मद्रक्षणप्रयासिनः ) कृतान्तकवलीक्रियमाणजीवितबलात्कारप्रत्यानयनगुरूपकारिणः = कृताऽन्तेन ( यमराजेन ) कवलीक्रियमाणं ( ग्रासीक्रियमाणं, 'कवल्यमानम्' इति पाठे ग्रस्यमानमित्यर्थः, शार्दूलाक्रमणसमय इति शेषः ) यज्जीवितं ( जीवनम् ) तस्य बलात्कारेण ( प्रसभाऽऽचरणेन ) यत् प्रत्यानयनं ( प्रत्यावर्तनम् ) तेन गुरूपकारिणः ( महोपकारशीलस्य ) । जनस्य = पुंसः, मकरन्दस्येति भावः । नामग्रहणम् = अभिधानोच्चारणम् । संकथामात्रस्य = सङ्कीर्तनमात्रस्य, विषय इति शेषः । 'सङ्कथासु' इति पुस्तकान्तरपाठः । स्मरणं च=चिन्तनं च, निर्वापयति = तापरहितां करोति, 'सुखयति' इति पुस्तकान्तरपाठः । गाढगुरुनखप्रहारवेदनाऽऽरम्भविह्वलितशरीरसंगलितस्वेदसलिलोद्गमः = गाढः ( दृढः ) गुरुः

मदयन्तिका—( लज्जाके साथ ) सखि ! क्यों मेरा उपहास करती हो ? मैं कहती हूँ । अपने जीवनकी अपेक्षा (परवाह) न कर मेरी रक्षाका प्रयास करनेवाले तथा यमराजसे ग्रास किये जानेवाले जीवनको बलात्कारपूर्वक लौटानेसे महान् उपकार करनेवाले वैसे व्यक्तिके वार्तालापमात्रके विषयमें भी नामका ग्रहण और स्मरण भी तापरहित बनता है । उसी प्रकारसे दृढ़, दुःसह नखप्रहारसे पीड़ाके अनुभवके आरम्भसे विह्वल शरीरसे जिनका स्वेदजल गिर रहा था, मूर्च्छासे मुँदे

विगलितासियष्टिविष्टम्भधैर्यप्रतिधारितशरीरभारः प्रत्यक्षीकृत एव मदयन्तिकामात्रविच्छर्दितमहार्घजीवितो महानुभाव इति। (स्वेदादीन्विकारान्नाटयति ) ( सहि, किं मं उवहससि । णं भणामि । णिव्वावेदि तारिसस्स अप्पणिरवेक्खव्ववसाइणो किदन्तकवलिज्जन्तजीविदबलामोडिअपचाणअणगुरुओवआरिणो जणस्स संकहामेत्तस्स णामग्गहणं सुमरणं अ। तह अ तुए वि गाढगुरुणहप्पहारवेअणारम्भविह्मलाविअसरीरसंगलिदसेअसलिलुग्गमो मोहमउलाअन्तणेत्तकन्दोट्टजुअलो भूमिविगलिदासिअट्ठिविट्ठम्भधीरपडिधारिअसरीरभारो पच्चक्खीकिदो जेव्व मदअन्तिआमेत्तविच्छड्डिअमहग्घजीविदो महाणुहावो त्ति । )

---

( महान् ) यो नखप्रहारः ( कररुहाघातः ) तेन या वेदना ( पीडाऽनुभवः ) तदारम्भेण ( तत्प्रक्रमेण ) विह्वलितं ( विक्लवयुक्तम् ) यच्छरीरं ( देहः ) तस्मात्संगलितः ( प्रस्नुतः ) स्वेदसलिलोद्गमः ( घर्मजलाऽविर्भावः, 'उद्गम' स्थाने 'उत्पीड' पदपाठस्तस्य समूह इत्यर्थः ) यस्य सः । मोहमुकुलीक्रियमाणनेत्रनीलोत्पलयुगलः= मोहेन ( मूर्च्छया ) मुकुलीक्रियमाणं ( कुड्मलीक्रियमाणं, मुद्र्यमाणमित्यर्थः। 'मुकुलायमानम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य कुड्मलायमानमित्यर्थः ) नेत्रनीलोत्पलयुगलं (नयननीलकमलयुग्मं नेत्रे एव नीलकमले नेत्रनीलकमले, तयोर्युगलम्) यस्य सः । 'मोहमुकुलायमाननेत्रकन्दोटगल' इति पुस्तकान्तरपाठः । 'नेत्रनीलोत्पलयुगलम्' इत्यत्र 'नेत्रकन्दोटयुगलम्' इति पाठान्तरं तस्य नयननीलोत्पलद्वयमित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् । भूमिविगलिताऽसियष्टिविष्टम्भधैर्यप्रतिधारितशरीरभारः= भूमौ ( पृथिव्याम् ) विगलिता ( पतिता, 'विलग्ने'ति पाठे स्थितेत्यर्थः ) या असिलता ( करवालवल्ली, ) तस्या विष्टम्भेन ( आलम्बनेन ) धैर्यं ( धीरत्वं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणं, 'धीरम्' इति पाठे स्थिरमित्यर्थः ) धारितः ( धृतः ) शरीरभारः ( देहभारः ) येन सः । एवं च—मदयन्तिकामात्रविच्छर्दितमहार्घजीवितः— मदयन्तिकामात्रे ( मय्येव, 'मदयन्तिकानिमित्तमात्रे' इति पाठे केवलमदयन्तिकाहेतावित्यर्थः ), विच्छर्दितं ( परित्यक्तम्, शार्दूलेन समं संग्राम इति शेषः ) महाऽर्घं ( बहुमूल्यं, महान् अर्घो यस्य तत् ) जीवितं ( जीवनम् ) येन सः, 'विच्छर्दितमहामहाऽर्घजीवलोक' इति पाठान्तरे विच्छर्दितः ( परित्यक्तः ) महान् ( महत्त्वसम्पन्नः ) महाऽर्घः ( बहुमूल्यः, नैकविधसुखाऽऽसादनहेतुभूत इति भावः ) जीवलोकः ( मनुष्यलोकः ) येन स इत्यर्थः । महाऽनुभावः= महाप्रभावः, 'महाभाग'

---

गये नीलकमल के सदृश नेत्रोंवाले भूमिमें विगलित तलवारके अवलम्बनसे धैर्यपूर्वक शरीरभारको धारण करनेवाले केवल मदयन्तिकाके लिए बहुमूल्य जीवनका परित्याग

बुद्धरक्षिता—(शरीरमस्याः स्पृशन्ती) अस्वस्थशरीरे, किं वाचा। दर्शितं शरीरेण मकरन्दसमागमौत्सुक्यम्। ( अस्सत्थसरीरे, किं वाआ। दंसिदं सरीरेण मअरन्दसमाअमोच्छुक्कं )

मदयन्तिका—( सलज्जम् ) सखि, अपेह्यपेहि। उद्भिन्नास्मि सहवासिन्या मालत्या। ( सहि, अवेहि अवेहि। उब्भिण्णम्हि सहवासिणीए मालदीए )

---

इति पाठान्तरे महाभाग्यसम्पन्न इत्यर्थः, मकरन्द इति भावः। तस्य पतित्वं निश्चित्य मदयन्तिकया नामाऽग्रहणं कृतमिति बोध्यम्। त्वयाऽपि=लवङ्गिकयाऽपि, प्रत्यक्षीकृत एव=साक्षात्कृत एव। तादृशस्योपकारिणः कथाप्रसङ्गे कृतज्ञताज्ञापने न मे स्तोकमप्यनौचित्यमिति भावः। स्वेदादीनिति। विकारान्=विकृतीः, सात्त्विकविकारा यथा—

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥' इति।

बुद्धरक्षितेति। अस्वस्थशरीरे=मन्मथव्यथाऽऽयत्तदेहे!, वाचा=गिरा, किं=किमपलपसीति भावः। शरीरेण=देहेन, मकरन्दकीर्तनसमनन्तरमेव रोमाञ्चितेनेति भावः। दर्शितं=प्रकाशितम्।

मदयन्तिकेति। सलज्जं=सव्रीडं, कन्याजनाऽनुचितमनोभावव्यक्तिर्लज्जाहेतुर्बोध्यः। उद्भिन्ना=उद्भेदयुक्ता, रोमाञ्चितेति भावः। सहवासिन्या संकीर्तितया मालत्यैवाहं रोमाञ्चिता, न तु मकरन्दस्य स्मरणाऽऽनन्देनेति भावः। अत्र मदयन्तिकयाऽवहित्था प्रदर्शिता। तल्लक्षणं यथा—

'भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथावभाषणविलोकनादिकरी॥' इति।

'अवहित्थाऽऽकारगुप्तिः' इत्यमरः।

---

करनेवाले महानुभाव ( मकरन्द ) का तुमने भी प्रत्यक्ष किया। ( स्वेद आदि विकारोंका अभिनय करती है। )

बुद्धरक्षिता—( मदयन्तिकाके शरीरका स्पर्श करती हुई ) अस्वस्थ शरीरवाली! वचनसे क्या? तुमने अपने शरीरसे मकरन्दके समागममें उत्कण्ठा दिखलाई।

मदयन्तिका—( लज्जाके साथ ) सखि! तुम दूर हो, दूर हो। सहवासिनी मालतीसे रोमाञ्चित हो गई हूँ।

लवङ्गिका—सखि मदयन्तिके, वयमपि ज्ञातव्यं जानीमः। तत्प्रसीद। विरम व्यपदेशात्। एहि। विस्रम्भगर्भकथाप्रबन्धसरसं सुखं तिष्ठामः। (सहि मदअन्तिए, अम्हे वि जाणिदव्वं जाणीमो। ता पसीद। विरम व्ववदेसादो। एहि। विस्सम्भगब्भकहाप्पबन्धसरसं सुहं चिट्ठम्ह)

बुद्धरक्षिता—सखि, शोभनं लवङ्गिकया भणितम्। (सहि, सोहणं लवङ्गिआए भणिदं)

मदयन्तिका—विधेयास्मि सांप्रतं सखीनाम्। (विधेअम्हि संपदं सहीणं)

लवङ्गिका—यद्येवं तत्कथय कथं नु ते कालो गच्छतीति। (जइ एव्वं ता कहेहि कहं णु दे कालो गच्छदि त्ति)

---

लवङ्गिकेति। ज्ञातव्यं=ज्ञेयं, विषयमिति शेषः। जानीमः=अवगच्छामः, किमतः परं तदाच्छादनेनेति भावः। व्यपदेशात्=व्याजवाक्यात्, 'विरमे'ति पदेन योगे 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति पञ्चमी। विरम=विरता भव, 'व्याङ्परिभ्यो रम' इति परस्मैपदम्। अतः परं कपटवचनपाटवेनाऽपि नाऽऽकृतिगोपनं शक्यमिति भावः। विस्रम्भगर्भकथाप्रबन्धसरसं=विस्रम्भः (विश्वासः) गर्भे (अभ्यन्तरे) यस्य सः, तादृशो यः कथाप्रबन्धः (वार्तालापरचनम्) तेन सरसं (साऽनुरागम्) यथा स्यात्तथा। अस्मासु विश्वस्य निःशङ्कं स्वाऽभिप्रायं निवेदय, वयं त्वदभिलाषसिद्ध्युपायमुपदेक्ष्याम इति भावः।

बुद्धरक्षितेति। शोभनं=मनोहरं, सोपपत्तिकमिति भावः। अतस्तदनुष्ठेयमिति शेषः।

मदयन्तिकेति। विधेया=वचने स्थिता। स्नेहायत्तत्वादिति भावः। 'विधेयो विनयग्राही वचने स्थित आश्रवः।' इत्यमरः।

लवङ्गिकेति। यद्येवं=यदि विधेयाऽसि। कथं=केन प्रकारेण। तादृशप्रणयशालिनं वल्लभमलभमाना कथं दिवसानतिवाहयसीति भावः।

---

लवङ्गिका—सखि मदयन्तिके! हमलोग भी ज्ञेय विषयको जानती हैं। इसलिए प्रसन्न हो। छलके वाक्यसे विरत हो जाओ। आओ। अभ्यन्तरमें विश्वासयुक्त वार्तालापकी रचनासे हमलोग अनुरागके साथ सुखपूर्वक अवस्थित हों।

बुद्धरक्षिता—सखि! लवङ्गिकाने ठीक कहा।

मदयन्तिका—मैं इस समय सखियोंकी आज्ञाकारिणी हूँ।

लवङ्गिका—ऐसा है तो बतलाओ किस प्रकारसे तुम्हारा समय बीत रहा है?

मदयन्तिका—निशामय प्रियसखि, मम बुद्धरक्षितापक्षपातप्रत्ययेन प्रथममेव तस्मिञ्जनेऽविरलकौतूहलोत्कण्ठामनोहरं हृदयमासीत् । ततो विधिनियोजितचिरनिवृत्तदर्शना भूत्वा दुर्वारदारुणायासदुःखसंतापदह्यमानचित्तविघटमानजीविताशा दूरविजृम्भितापूर्वसर्वाङ्गप्रज्वलनमदनहुतवहोद्दामदाहदुःसहायासदुर्मनायमानपरिजना प्रत्याशाविमोक्षमात्रसुल-

मदयन्तिकेति । प्रियसखि = दयितवयस्ये, हे लवङ्गिके !, निशामय=शृणु । बुद्धरक्षितापक्षपातप्रत्ययेन = बुद्धरक्षितायाः ( तन्नामधेयायाः सख्याः ) पक्षपातः ( गुणकीर्तनादिना मकरन्दपक्षसमाश्रयणम् ) तस्मिन् प्रत्ययेन ( विश्वासेन ), 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु ।' इत्यमरः । तस्मिन् जने = मकरन्दे, अविरलकौतूहलोत्कण्ठामनोहरम् = अविरलं ( निरन्तरम् ) यत्कौतूहलं ( कुतुकम् ) उत्कण्ठा ( उत्सुकता ) च, ताभ्यां मनोहरं ( मनोरमम् ) । हृदयं = चित्तम्, 'अतिभूमिं गतोऽनुराग' इति पाठान्तरे, तस्मिञ्जने अनुरागः = प्रणयः, अतिभूमिं = परां काष्ठामिति भावः । गतः । ततः = अनन्तरं, विधिनियोजितचिरनिर्वृत्तदर्शना = विधिनियोजितं ( दैवप्रेरितम् ) चिरात् ( बहुकालाऽनन्तरम् ) निर्वृत्तं ( निष्पन्नम् ) दर्शनं ( विलोकनम् ) यस्याः सा । 'नियोग' इति पाठे प्रेरणेत्यर्थः । दुर्वारदारुणाऽऽयासदुःखसन्तापदह्यमानचित्तविघटमानजीविताशा = दुर्वारः ( दुरपनेयः ) दारुणः ( कठोरः ) च आयासः ( मदनवेदना ) तेन यौ दुःखसन्तापौ ( पीडाशरीरतापौ ) ताभ्यां दह्यमानं ( क्रियमाणदाहम् ) यच्चित्तं ( चेतः ) तस्माद्विघटमाना ( अपगच्छन्ती ) जीविताऽऽशा ( प्राणधारणाऽऽशा ) यस्याः सा । दूरविजृम्भिताऽपूर्वसर्वाऽङ्गप्रज्वलनमदनहुतवहोद्दामदुःसहाऽऽयासदुर्मनायमानपरिजना=दूरविजृम्भितः ( अतिशयोपचितः ) अपूर्वः ( अननुभूतपूर्वः ) सर्वाऽङ्गप्रज्वलनः ( सकलदेहाऽवयवतापकः ) यो मदनहुतवहः ( कामाऽग्निः ) तस्य उद्दामः ( काष्ठामधिरूढः ) यो दुःसहः ( दुर्मर्षणः ) आयासः ( दुःखम् ) तेन दुर्मनायमानाः ( दुर्मनस इव आचरन्तः, पीडितचित्ता इति भावः ) । 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' ति क्यङन्ताल्लटः शानच् । परिजनाः ( परिचारिकागणाः ) यस्याः सा । एवं—प्रत्याशाविमोक्षमात्रसुलभ-

मदयन्तिका—प्रियसखि ! सुनो । बुद्धरक्षिताके पक्षपातमें विश्वास करनेसे मेरा हृदय पहले ही उन व्यक्ति ( मकरन्द ) में निरन्तर कौतूहल और उत्कण्ठासे मनोहर था । अनन्तर भाग्यसे प्रेरित बहुत समयके बाद उनका दर्शन पाकर दुःखसे अपनेय कठोर मदनवेदनासे उत्पन्न पीड़ा और शरीरतापसे दह्यमान चित्तसे जीवनकी आशासे रहित, अतिशय बढ़े हुए अपूर्व सब अङ्गोंको सन्तप्त करनेवाले

भमृत्युनिर्वाणप्रतिकूलबुद्धरक्षितावचनविवर्धितावेगव्यतिकरविसंस्थुलेमं जीवलोकपरिवर्तमनुभवामि। संकल्पचिन्तायां स्वप्नान्तरेषु च मनोरथोन्मादमोहिता पश्यामि तं जनम्। तथा च प्रियसखि, मुहूर्तमुदूढविस्मयविसंस्थुलोद्वेल्लविस्तारिप्रान्तनालरक्तनेत्रपुण्डरीकताण्डवोद्भटप्ररूढमैरेयमदघूर्णनशीलं

मृत्युनिर्वाणप्रतिकूलबुद्धरक्षितावचनविवर्धितावेगव्यतिकरविसंस्थुला=प्रत्याशायाः (प्रियतमस्य मकरन्दस्य प्राप्त्याशायाः) विमोक्षमात्रेण (निवृत्तिमात्रेण) सुलभं (सुप्राप्यम्) यत् मृत्युनिर्वाणं (मृत्युः=मरणम्, एव निर्वाणं=सुखम्, 'सुखनाशौ तु निर्वृती' इत्यमरः)। तस्मिन्प्रतिकूलं (निवारकम्) यत् बुद्धरक्षितावचनं (बुद्धरक्षितावाक्यं, सन्निहितप्रियतमप्राप्तिप्रतिपादकमिति भावः) तेन विवर्धितः (संवर्द्धितः) य आवेगः (उद्वेगः) तस्य यो व्यतिकरः (सम्पर्कः) तेन विसंस्थुला (विह्वला) सती, इमम्=एतं, जीवलोकपरिवर्तं=नैकविधं मनुष्यलोकस्य परिवर्तनचक्रम्। अनुभवामि=अनुभूतिविषयं करोमीत्यर्थः। परमेतावत्कालपर्यन्तं मन्मनोरथः साफल्यरथं नाऽरूढ इति भावः। सङ्कल्पचिन्तायां=सङ्कल्पस्य (कान्तसमागमादिविषयकस्य मानसव्यापारस्य) चिन्तायाम् (ध्याने)। स्वप्नान्तरेषु=स्वप्नानाम् (प्रदेशविशेषाऽवस्थितमनःसंयोगानाम्) अन्तराणि (मध्यानि) तेषु। मनोरथोन्मादमोहिता=मनोरथेन (अभिलाषेण) य उन्मादः (चित्तविभ्रमः, मदनजनित इति शेषः) तेन मोहिता (संजातमोहा) सती। तं जनं=मकरन्दमित्यर्थः। पश्यामि=प्रेक्षे। तथा च=तेन प्रकारेण च, पुस्तकान्तरे तु 'सोऽपी'ति पाठः, मकरन्दोऽपीत्यर्थः मुहूर्तं=कञ्चित्कालं यावत्। उदूढविस्मयविसंस्थुलोद्वेल्लविस्तारिप्रान्तनालरक्तनेत्रपुण्डरीकताण्डवोद्भटप्ररूढमैरेयमदघूर्णनशीलम्=उदूढः (धृतः, 'निर्व्यूढ' इति पाठे संपन्न इत्यर्थः) यो विस्मयः (आश्चर्यम्) तेन विसंस्थुलं (विह्वलम्) यथा तथा उद्वेल्लयोः (उच्चलयोः) विस्तारिप्रान्तनालरक्तयोः (विस्तारशीलैकदेशरूपनालाभ्यां, रक्तयोः अरुणवर्णयोः) नेत्रपुण्डरीकयोः (नयन-

कामाग्निके काष्ठारूढ दुःसह दुःखसे जिसकी परिचारिकायें पीड़ित चित्तवाली हो रही हैं, ऐसी प्रियतमकी प्राप्तिकी आशानिवृत्तिसे ही सुलभ मृत्युरूप सुखमें प्रतिकूल बुद्धरक्षिताके वचनसे संवर्द्धित उद्वेगके सम्पर्कसे विह्वल होती हुई मैं इस जीवलोकके परिवर्तनचक्रका अनुभव कर रही हूँ। संकल्प (मनोव्यापार) की चिन्तामें और स्वप्नोंके मध्योंमें भी मनोरथसे होनेवाले उन्माद (पागलपन) से मोहित होती हुई उनको देखती हूँ। उसी तरहसे हे प्रियसखि! कुछ समय तक धारण किये गये आश्चर्य से विह्वलतापूर्वक चलनेवाले विस्तारशील एकदेशरूप नालोंसे लालवर्णवाले

निर्वर्णयतिकिंच कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसघोषघर्घरस्खलित-गम्भीरभारतीभरितकर्णविवरं प्रिये मदयन्तिके, इति मां व्याहरति। अथ प्रभवन्निवोत्तरीयाञ्चलावलम्बनपराभवेन ससंभ्रमोत्तरङ्गधमधमायमानहृ-

सिताऽम्भोजयोः) यत्ताण्डवं (नृत्यम्) तस्मिन् उद्भटः (श्रेष्ठः) प्ररूढः (संजातः) मैरेयमदः (मद्यविशेषमत्तत्वम्) तेनेव घूर्णनशीलं (भ्रमणशीलम्) यथा स्यात्तथा। 'मैरेयं धातकीपुष्पगुडधानाऽम्लसंहितम्।' इति माधवः। निर्वर्णयति = पश्यति, साऽभिलाषं मामेव विलोकयतीति भावः। 'निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्।' इत्यमरः। किं च = अपरं च। कवलिताऽरविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसघोषघर्घरस्खलितगम्भीरभारतीभरितकर्णविवरं = कवलिताः (भक्षिताः) ये अरविन्दकेसराः (कमलकिञ्जल्काः) तैः कषायः (मनोहरः) कण्ठः (लक्षणया—कण्ठस्वरः) यस्य सः, एतादृशो यः कलहंसः (राजहंसः, 'कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे।' इति मेदिनी) तस्य घोषः (शब्दः) स इव घर्घरा (अव्यक्तशब्दयुक्ता, घर्घरोऽस्ति यस्यां सा, 'अर्शआदिभ्योऽच्' इत्यच्) स्खलितगम्भीरा (गद्गदशब्दगभीरा, घर्घरत्वं स्खलितत्वं चैतद्द्वयं साध्वसवशादिति जगद्धरः) एतादृशी या भारती (वाणी) तया भरिते (पूरिते) कर्णविवरे (श्रोत्रच्छिद्रे) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा। व्याहरति = उच्चारयति। स्वप्नादाविति यावत्। अथ = अनन्तरम्। प्रभवन् इव = समर्थो भवन्निव, स्वामीवेति भावः। उत्तरीयाऽञ्चलाऽवलम्बनपराभवेन = उत्तरीयस्य (संव्यानस्य, उपरिवस्त्रस्येति भावः) यः अञ्चलः (प्रान्तभागः ममेति शेषः) तस्याऽवलम्बनम् (ग्रहणम्) तदेव पराभवः (तिरस्कारः) तेन। 'प्रस्फुरत्पयोधरोच्छलदुत्तरीयाऽञ्चलाऽवलम्बनपरिभवेने'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र प्रस्फुरन्तौ (संचलन्तौ, स्पर्शादिति शेषः) य उत्तरीयाऽञ्चलः (संव्यानप्रान्तभागः) तस्याऽवलम्बनं (ग्रहणम्) तदेव परिभवः (तिरस्कारः), तेन। 'अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया।' इत्यमरः। ससंभ्रमोत्तरङ्गधमधमायमानहृदयां =

नेत्रपुण्डरीकोंके नृत्यमें श्रेष्ठ और उत्पन्न मद्यमद के सदृश भ्रमणशील प्रकारसे अभिलाषपूर्वक वे मुझे ही देखते हैं। और भी—खाये गये कमलकेसरोंसे मनोहर कण्ठस्वरवाले राजहंसके स्वरके सदृश 'घर्घर' शब्दसे युक्त और गद्गदध्वनिसे गम्भीर वाणीसे कर्णच्छिद्रोंको पूर्ण कर वे (स्वप्न आदिमें) 'प्रिये मदयन्तिके!' इस तरहसे मेरा नाम लेते हैं। अनन्तर स्वामीके सदृश होते हुए (मकरन्दजी) मेरे उत्तरीयाञ्चलके ग्रहणरूप तिरस्कारसे आवेगपूर्वक कम्पयुक्त और 'धमधम' ऐसे

दयां समुत्त्रासयति । सहसा विसर्जितापसृततत्क्षणकठोरकमलदण्डायमानबाहुबन्धनापवारितपयोधरोद्गमां विघटमानविह्वलमेखलावलयसंधार्यमाणपीवरोरुप्रतिषिद्धविप्रतीपगमनां प्रतिकूलवादिनीमपि सर्वादरप्रयत्ननिर्व-

ससंभ्रमं (सावेगम्, 'आदराऽतिशयाच्चेतस्यावेगः संभ्रमो मतः ।' इति संभ्रमलक्षणम्) उत्तरङ्गं ( कम्पयुक्तम् ) धमधमायमानं ( धमधमेत्याकारकसूक्ष्मध्वनिकारकं, संभ्रमादिति भावः ) हृदयं ( वक्षःस्थलम् ) यस्यास्ताम् । तादृशीं मामिति शेषः । समुत्त्रासयति = संत्रासयुक्तां करोति, मकरन्द इति शेषः । कुमारीसुलभशालीनत्वेन स्ववचनमनङ्गीकृत्याऽन्यतो व्रजन्तीं मामुत्तरीयाञ्चले गृहीत्वा शिक्षक इव त्रासयतीति भावः । विर्जिताऽपसृततत्क्षणकठोरकमलदण्डायमानबाहुबन्धनाऽपवारितपयोधरोद्गमां = विसर्जितम् ( त्याजितम्, आलिङ्गनाऽनन्तरमिति शेषः ) अत एव अपसृतम् ( अपगतम् ) तत्क्षणं ( तत्समयम् ) कठोरकमलदण्डायमानाभ्यां ( कठोरौ = पूर्णविकसितौ, यौ कमलदण्डौ = पद्मदण्डौ, ताविवाऽऽचरन्तौ कठोरकमलदण्डायमानौ, पुलकितत्वेन पूर्णाऽवयवपद्मदण्डसदृशाविति भावः) ताभ्यां बाहुभ्यां ( भुजाभ्याम् ) यद्बन्धनम् (आलिङ्गनम्) तेन अपवारितः (अनाच्छादितः) पयोधरयोः ( स्तनयोः ) उद्गमः ( विस्तारः ) यस्यास्तामिति स्वविशेषणम् । आलिङ्गनविघटनं कृत्वाऽपसरणे कुचालोकनादिकं नायकस्य जायते। नायिका च तदा संवरणाय न प्रभवतीति भावः । तथाऽपि पलायनाऽभावं प्रतिपादयति—विघटमानविह्वलमेखलावलयसन्धार्यमाणपीवरोरुप्रतिषिद्धविप्रतीपगमनां = विघटमानं ( विस्रंसमानं, गाढालिङ्गनसौख्याच्चितत्वाद्विश्लिष्यदिति भावः ) विह्वलं ( विचलितं ) 'विकटम्' इति पाठे विशालमित्यर्थः, एतादृशं यन्मेखलावलयं ( रशनामण्डलम् ) तेन सन्धार्यमाणाभ्याम् ( क्रियमाणधारणाभ्याम् ) 'सन्दान्यमानाभ्याम्' इति पाठे बद्ध्यमानाभ्यामित्यर्थः, एतादृशाभ्यां पीवरोरुभ्यां ( पुष्टसक्थिभ्याम्, आत्मन इति शेषः ) प्रतिषिद्धं ( निवारितम् ) विप्रतीपगमनं ( विप्रतीपं गमनं = स्वाऽभिलाषप्रतिकूला या गतिरिति भावः ) यस्यास्ताम् । प्रतिकूलवादिनीमपि = 'नेदृशमाचारमनुतिष्ठे'ति अनीप्सितभाषिणीमपि । सर्वादरप्रयत्ननिर्वर्तितमुहूर्तकोपोपरागदुःखपरुषीकृतहृदयां=सर्वे

सूक्ष्म ध्वनियुक्त हृदयवाली मुझको त्रासयुक्त कर देते हैं । सहसा कठोर कमलदण्डोंके सदृश आचरण करनेवाले बाहुओंसे विसर्जित अतएव अपगत आलिङ्गनसे खुले हुए पयोधर विस्तारवाली, विश्लिष्ट होते हुए विचलित मेखलामण्डलसे धारण किये गये पुष्ट ऊरुओंसे जिसकी अपने अभिलाषकी प्रतिकूल गति रोकी गई है ऐसी, प्रतिकूल बोलनेपर भी उनके सम्पूर्ण आदरके प्रयत्नोंसे उत्पादित कुछ समय तक

र्तितमुहूर्तकोपोपरागदुःखपरुषीकृतहृदयां स्निग्धपुनरुक्तपर्यस्तलोचनविभावितशेषचित्तसारामुपहस्य द्विगुणबाहुदण्डावेष्टननिश्चेष्टनियमितां प्रियसखि, प्ररूढशार्दूलकठोरकररुहप्रहारविकटपत्रावलीप्रसाधनोत्तानवक्षः-स्थलनिष्ठुरनिवेशननिःसहां कृत्वा सावेगविधूतमस्तकापविद्धकबरीनि-

( सकलाः ) ये आदरप्रयत्नाः ( आदृतिप्रयासाः ) तैः निर्वर्तिते ( निष्पादिते ) मुहूर्तं ( कंचित्कालं यावत्, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोग' इति द्वितीया, तत उत्तरपदेन 'अत्यन्तसंयोगे चे'ति 'द्वितीयातत्पुरुषः) कोपोपरागदुःखे ( क्रोधसम्बन्धपीडे ) ताभ्यां परुषीकृतं ( कठोरीकृतम् ) हृदयं ( चित्तम् ) यस्यास्ताम् । स्निग्धपुनरुक्तपर्यस्तलोचनविभाविताऽशेषचित्तसारां=स्निग्धपुनरुक्ते (पुनःपुनः स्नेहयुक्ते) पर्यस्ते ( निपातिते, मच्छरीर इति शेषः ) ये लोचने ( नेत्रे ) ताभ्यां विभावितः ( ज्ञातः ) अशेषः ( समग्रः ) चित्तसारः ( मानसस्थिरांऽशः, संभोगेच्छापरता इति भावः ) यस्यास्ताम् । तादृशीं मामिति शेषः । उपहस्य=उपहासं कृत्वा, 'उपहसती'ति पुस्तकान्तरपाठः । द्विगुणबाहुदण्डावेष्टननिश्चेष्टनियमितां=द्विगुणाभ्यां ( द्विगुणीकृताभ्याम् ) बाहुदण्डाभ्याम् ( भुजदण्डाभ्याम् ) आवेष्टनेन (आवटनेन) निश्चेष्टं ( चेष्टारहितम् ) यथा स्यात्तथा नियमिताम् ( नियन्त्रिताम् ), गाढालिङ्गननियन्त्रितामिति भावः। प्ररूढशार्दूलकठोरकररुहप्रहारविकटपत्रावलीप्रसाधनोत्तानवक्षःस्थलनिष्ठुरनिवेशननिःसहां=प्ररूढं (निर्वृत्तम्) शार्दूलस्य (व्याघ्रस्य) कठोराः ( निष्ठुराः ) ये कररुहप्रहाराः ( नखराघाताः ) त एव विकटपत्रावली ( विस्तृतपत्त्ररचनापङ्क्तिः) सैव प्रसाधानम् (आभूषणम्) यस्मिंस्तत्, एतादृशम्, उत्तानम् ( उन्नतम् ) यत् वक्षःस्थलम् ( उरःस्थलम् ) तस्मिन् यत् निष्ठुरनिवेशनं ( दृढप्रवेशनम् ) तेन निःसहाम् ( असमर्थां, वचनरचनाद्यक्षमामिति भावः ) । कृत्वा= विधाय । साऽऽवेगविधूतमस्तकाऽपविद्धकबरीनिहितकरपरिग्रहपुञ्जीकृतोन्नमितनिश्चलमुखाऽवयवस्वच्छन्दविलसितविदग्धवदनकमलः=साऽऽवेगं ( शीघ्रम् ) विधूतः ( कम्पितः, चुम्बननिवारणायेति शेषः ) यो मस्तकः ( शिरः, मदीयमिति शेषः ) तेनाऽपविद्धा ( विस्रस्ता, 'आविद्धे'ति पुस्तकान्तरपाठः ) या कबरी ( केशवेशः,

क्रोधसम्बन्ध और दुःखसे कठोर बनाये गये चित्तवाली, बारम्बार स्नेहयुक्त और मेरे शरीरमें प्रेरित नेत्रोंमे जिसका सम्पूर्ण चित्तका स्तर जाना गया है ऐसी मुझको हँसकर हे प्रियसखि ! द्विगुणीकृत बाहुदण्डोंसे लपेटकर चेष्टारहितरूपसे नियन्त्रित कर व्याघ्रके कठोर नखप्रहाररूप विस्तृत पत्ररचनापङ्क्तिरूप आभूषणसे उक्त उन्नत वक्षःस्थलमें दृढतासे प्रवेशनसे मुझे असमर्थ बनाकर शीघ्रताके साथ कम्पित

हितकरपरिग्रहपुञ्जीकृतोन्नमितनिश्चलमुखावयवस्वच्छन्दविलसितविदग्धवदनकमलो वामगण्डमूलचिरविनिहितप्रस्फुरत्पुञ्जिताधरसमुद्गममनोहरसहजसारस्वतमनोहरोत्कर्षितशरीरशोभामुल्लसितसाध्वसानन्दविषमसंभ्रममनोहरसंवलनमन्थरभ्रमच्चेतनां किमपि किमपि दुर्विनयसाहसानुरूपव्यव-

केशरबन्धरचनेति भावः ) तस्यां निहितः ( स्थापितः ) यः करः ( हस्तः ) तेन यः परिग्रहः ( ग्रहणम्, मत्केशानामिति शेषः ) तेन पुञ्जीकृतैः ( राशीकृतैः, केशैरिति यावत् ) उन्नमिताः ( उन्नतीकृताः ) निश्चलाः ( चाञ्चल्यरहिताः स्थिरत्वात् स्पष्टं विभाव्यमाना इति भावः ) ये मुखाऽवयवाः ( ललाटादयो मदाननभागाः ) तेषु स्वच्छन्दविलसितं ( स्वेच्छानुगुणविलासयुक्तम् ) विदग्धं ( चतुरम् ) वदनकमलं ( मुखपद्मम् ) यस्य सः। दुर्विनयसाहसाऽनुरूपव्यवसायः = दुर्विनयस्य ( हठकामुकस्य, 'दुर्विनीतस्ये'ति पाठान्तरम् ) साहसस्य ( अध्यवसायस्य ) अनुरूपः ( सदृशः ) व्यवसायः ( उद्योगः ) यस्य सः तादृशः। वामगण्डमूलचिरविनिहितप्रस्फुरत्पुञ्जिताऽधरसमुद्गममनोहरसहजसारस्वतमनोहरोत्कर्षितशरीरशोभां= वामगण्डमूले ( दक्षिणेतरकपोलमूले'''मूलोपरी'ति पुस्तकान्तरपाठः ) चिरविनिहितः (बहुकालस्थापितः चुम्बनाऽर्थमिति शेषः) अत एव = प्रस्फुरन् ( स्पन्दमानः ) पुञ्जितः ( योजितः ) योऽधरः ( ओष्ठः ) तस्य समुद्गमः ( उद्रेकः ) तेन मनोहरः ( मनोरमम् ) सहजं (स्वाभाविकम्) यत् सारस्वतं (वचनकदम्बकम्) तेन मनोहरं ( मनोरमं यथा तथा ) उत्कर्षिता ( संजातोत्कर्षा ) शरीरशोभा ( देहकान्तिः ) यस्यास्ताम्। एवम्=उल्लसितसाध्वसाऽऽनन्दविषमसंभ्रममनोहरसंवलनमन्थरभ्रमच्चेतनाम् = उल्लसिताभ्यां ( संजाताभ्याम् ) साध्वसाऽऽनन्दाभ्यां ( भयहर्षाभ्याम् ) विषमः ( साऽतिशयः ) यः संभ्रमः ( संवेगः ) तस्य मनोहरं ( मनोरमम्, आविर्भाव इति भावः ) तेन मन्थरं ( मन्दम् यथा ) स्यात्तथा भ्रमन्ती ( स्थैर्याऽभावं व्रजन्ती ) चेतना ( बुद्धिः, 'लोचने'पदपाठे भ्रमन्ती = घूर्णमाने, लोचने = नेत्रे इत्यर्थः ) यस्यास्ताम्। एतादृशीं मां, किमपि किमपि = निर्वचनाऽननुरूपं, लज्ज-

मेरे मस्तकसे विस्रस्त कबरी ( केशवेश ) में स्थापित हाथसे ग्रहण करनेसे पुञ्जीकृत केशोंसे ऊँचे किये गये निश्चल मुखके अवयवोंमें अपनी इच्छाके अनुकूल विलाससे युक्त चतुर मुखकमलवाले और हठकामुकके साहसके अनुरूप उद्योगवाले होकर ( मकरन्दजी ) बायें कपोलके मूलमें बहुत समय तक स्थापित अतएव स्पन्दमान ( कुछ हिलते हुए ) योजित ओष्ठके उद्रेकसे मनोहर स्वभाविक वचनसमुदायसे मनोहरताके साथ उत्कर्षयुक्त शरीरशोभावाली, उत्पन्न हुए भय और हर्षके कारण

साथो मामभ्यर्थयते। एवं नाम प्रियसखि ! समक्षं सर्वमनुभूय ततो झटिति प्रतिबुद्धा शून्यारण्यसंनिभं पुनरपि मन्दभागिनी विभावयामि जीवलोकमिति। ( णिसामेहि पिअसहि, मम बुद्धरक्खिदापक्खवादप्पच्चएण पढमं जेव्व तस्सिं जणे अविरलकोदूहलुक्कण्ठामनोहरं हिअअं आसी। तदो विहिणिओइअचिरणिउत्तदंसणाभावअ बुव्वारदारुणाआसदुक्खसंदावडज्झन्तचित्तविहडन्तजीविदासा दूरविअम्भिअअपुव्वसव्वङ्गप्पज्जलणमअणहुदवहुद्दामदाहदूसहाआसदुम्मणाअन्तपरिअणा पच्चासाविमोक्खमेत्तसुलहमित्तुणिव्वाणपडिऊलबुद्धरक्खिदावअणधिवड्ढिआवेअवइअरविसंठुला इमं जीवलोअपरिवत्तं अणुहोमि। संकप्पचिन्ताए सिविणन्तरेसु अ मणोरहुम्मदमोहिहा पेक्खामि जं जणं। तह अ पिअसहि, मुहुरं उदुढविब्भअविसंठुलुव्वेल्लवित्थारिपेरन्तणालरत्तणोत्तपुण्डरीअताण्डवउब्भटपरुढमैरेअमदघुम्मन्तसीलं णिव्वण्णेदि। किं अ कवलिआरविन्दकेसरकसाअकण्ठकलहंसघोसघग्घरक्खलिअगम्भीरभारदीभारिदकण्णविवरं पिए मदअन्तिए त्ति मं वाहरदि। अहपहावन्तो विअ उत्तरीअञ्चलावलम्बणपराहवेण ससंभमुत्तरङ्गधमधमाअन्तहिअअं समुत्तासेदि। सहसा विसज्जिअओसरिअतक्खणकठोरकमलदण्डाअन्तवाहुबन्धणावबारिदपओहरुग्गमं विहडन्तविह्मलमेहलावलअसंधाणिज्जन्तपीवरोरुप्पडिसिद्धविप्पडीवगमणं पडिऊलवादिणीं वि सव्वादरपअत्तणिव्वत्तिदमुहुत्तकोवोवराअदुक्खपरुसोकिदहिअअं सिणिद्धपुणरु-

---

येति शेषः। संभ्रमे द्विरुक्तिः। इतः परं पुस्तकान्तरे 'अनभ्यर्थनीयम्' इत्यधिकः पाठस्तस्य अभ्यर्थनाऽनर्हमित्यर्थः। सुरताऽऽदिकमिति भावः। अभ्यर्थयते = प्रार्थयते। स्वप्नाऽवस्थावर्णनमेतत्। अतः परं जागराऽवस्थां वर्णयति—एवं नामेति। एवम् = इत्थम्। नामेति प्रसिद्धौ। समक्षं = प्रत्यक्षम्। झटिति = शीघ्रम् प्रतिबुद्धा = प्रतिबुद्ध्य, जागरां प्राप्येत्यर्थः। 'प्रतिबुद्ध्वे'ति अपपाठः, 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति क्त्वो ल्यबादेशेन 'प्रतिबुद्ध्ये'ति प्रयोगेण भाव्यम्। जीवलोकं = मनुष्यलोकम्। शून्याऽरण्यसन्निभं = निर्जनकाननसदृशं, तादृशवल्लभजनाऽभावादिति भावः। मन्दभागिनी = अल्पभागधेया, जागराऽवस्थायां तथाविधकान्तसमागमाऽभावादिति भावः। विभावयामि विचारयामि।

---

सातिशय संवेगके मनोहर आविर्भावसे मन्दतापूर्वक स्थैर्यके अभावको प्राप्त होती हुई चेतनायुक्त ऐसी मुझसे कहनेके अयोग्य विषयकी प्रार्थना करते हैं। हे सखि! इस तरहसे प्रत्यक्षमें सब अनुभव करके तब झटपट जागकर मैं मन्दभागिनी जीवलोकमें फिर भी निर्जन जङ्गलके सदृश विचार कर रही हूँ।

त्तपल्हत्थलोअणविहाविदासेसचित्तसारं उवहसिअ दुउणबाहुदण्डावेट्ठणणिच्चेट्ठणि-अमिपिअसहि, प्परूढसद्दूलकठोरकररुहप्पहारविअडपत्तावलीपसाहणुत्ताणवच्छत्थ-लणिट्ठुरणिवेसणणीसअं कदुअ सावेअविह्णअमत्थआवविद्धकबरीगिहिदकरपरिग्गहपु-ञ्जोकिट्ठुण्णमिअणिच्छलमुहावअवसच्छन्दविलसिदविअड्ढअणकमलो वामगण्डमूल-चिरविणिहिदप्पप्फुरन्तपुञ्जिआहरसमुग्गममणहरसहअसारस्सदमणहरुक्ककस्सिदसरी-रसोहं उल्लसिदसद्धसाणन्दविसमसंभममणहरसंवलणमन्थरभमन्तच्चेअणं किं वि किं वि दुव्विणअसाहसाणुबन्धववसाओ मं अब्भत्थेदि । एव्वं णाम पिअसहि, समक्खं सव्वं अणुभविअ तदो झत्ति पडिबुद्धा सुण्णारण्णसंणिभं पुण वि मन्दभाइणी विभावेमि जीवलोअं त्ति )

लवङ्गिका—सखि मदयन्तिके, स्फुटमाख्याहि । अपि तस्मिन्नवसरे स्नेहविभ्रमोर्जितहासविकसद्बुद्धरक्षितालोचननिरूपितमासनमयूरकं परि-जनाद्गोपनीयं भवति वा किं न वेति । ( सहि मदअन्तिए, फुडं आचक्खेहि । अवि तस्सिं अवसरे सिणेहविब्भमुज्जिअहासविअसन्तबुद्धरक्खिदालोअणणिरूविदं आसणमऊरअं परिअणादो गोवणिज्जं होदि वा किं ण वेत्ति )

---

लवङ्गिकेति । स्फुटं=व्यक्तम् । आख्याहि=आचक्ष्व । तस्मिन् अवसरे=स्वप्नस-मागमकाले स्नेहविभ्रमोर्जितहासविकसद्बुद्धरक्षितालोचननिरूपितं=स्नेहविभ्रमेण ( प्रणयविलासेन ) ऊर्जितः ( बलयुक्तः, 'उन्मिश्र' इति पाठे युक्त इत्यर्थः ) यो हासः ( हास्यम् ) तेन विकसन्ती ( विकासं भजती, आयते भवती इति भावः ) बुद्धरक्षितायाः ( तन्नामधेयायाः सहचारिण्याः ) ये लोचने ( नेत्रे ) ताभ्यां निरू-पितम् ( अवलोकितम् ) । ते =तव, आसनमयूरकं=मयूराकारमासनम् । परिज-नात्=परिचारिकाजनात्, गोपनीयम्=आच्छादनीयं, स्वप्नसमागमे रजःक्षरणा-दार्द्रीभूतत्वादिति भावः । अत्र मालत्यपेक्षया मदयन्तिकाया निकृष्टत्वद्योतनाय चेटी-जनोचितजुगुप्सितपरिहासवचनप्रवृत्तेरश्लीलत्वं न दोषः । तदुक्तं साहित्यदर्पणे—'सुरताऽऽरम्भगोष्ठ्यादावश्लीलत्वं तथा पुनः ।' इति । तथा पुनरिति गुण एव । गुण-शब्दोऽत्र भाक्तः ।

---

लवङ्गिका—सखि मदयन्तिके ! स्पष्ट कहो । उस अवसरपर प्रणयके विलाससे जोरदार हास्यसे विकासको प्राप्त करनेवाले बुद्धरक्षिताके नेत्रोंसे देखा गया तुम्हारा मयूरके सदृश आकारवाला आसन ( स्वप्नसमागममें रजके गिरनेसे आर्द्र होनेके कारण ) परिचारिकासे गोपनीय ( छिपाने लायक ) होता है कि नहीं ?

मदयन्तिका—अयि असंबद्धपरिहासशीले, अपेहि। ( अइ असंवद्धपरिहाससीले अवेहि )

बुद्धरक्षिता—सखि मदयन्तिके, मालतीप्रियसख्येवेयमीदृशानि जानाति। ( वहि मदअन्तिए, मालदीपिअसहि जेव्व इअं ईरिसाइं जाणादि )

मदयन्तिका—मा खल्वेवं मालतीमुपहस। ( मा क्खु एव्वं मालदिं उवहस )

बुद्धरक्षिता—सखि मदयन्तिके, प्रक्ष्यामीदानीं किमपि। यदि न मे विश्वासभङ्गं करोषि। ( सहि मदअन्तिए, पुच्छिस्सं दाणिं किं वि। जइ ण मे विस्सासभङ्गं करेसि )

मदयन्तिका—किं पुनरपि प्रणयभङ्गेन कृतापराधोऽयं जनो येनैवं मन्त्र-

---

मदयन्तिकेति। असम्बद्धपरिहासशीले=असम्बद्धः ( सम्बन्धशून्यः,स्वप्नसमागमस्य चुम्बनान्तत्वादिति भावः ) यः परिहासः ( नर्मवचनम् ) तच्छीला ( तत्स्वभावा ) तत्सम्बुद्धौ। अपेहि=अपसर।

बुद्धरक्षितेति। मालतीप्रियसखी एव=मालतीप्रियवयस्या एव, लवङ्गिका एवेति भावः। ईदृशानि=एतादृशानि, अश्लीलवचनानीति भावः, मन्त्रयितुमिति शेषः। न खलु मादृशी त्वत्सखीति शिष्टं तात्पर्यम्। मालत्यां तादृशं व्यतिकरं दृष्ट्वेवेयं त्वय्यपि तादृशं धर्ममारोपयतीति हार्दोऽभिप्रायः। मदयन्तिकेति। मदयन्तिका स्वसख्यां मालत्यां तादृशमारोपमसहमाना बुद्धरक्षितां निषेधति—मा खल्विति। एवम्=इत्थं, मालती सर्वथाऽप्यनवद्येति भावः।

बुद्धरक्षितेति। प्रक्ष्यामि=प्रश्नं करिष्यामि, 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' इति धातोर्लृट्।

मदयन्तिकेति। प्रणयभङ्गेन=विश्वासभङ्गेन। अयं जनः=अहमिति भावः। कृताऽ-

---

मदयन्तिका—अरी असम्बद्ध परिहास करनेके स्वभाववाली! दूर हो।

बुद्धरक्षिता—सखि मदयन्तिके! यह मालतीकी प्रियसखी ( लवङ्गिका ) ही ऐसे अश्लील वचनोंका प्रतिपादन करना जानती है।

मदयन्तिका—इस प्रकारसे मालतीका उपहास मत करो।

बुद्धरक्षिता—सखि मदयन्तिके! मेरे विश्वासभङ्ग नहीं करोगी तो इस समय मैं कुछ पूछूँगी।

मदयन्तिका—इसने ( मैंने ) फिर भी क्या कभी विश्वासभङ्ग से अपराध

यसे। प्रियसखि, त्वं लवङ्गिका च सांप्रतं मे हृदयम्। ( किं पुणो वि पणअभङ्गेण किंआवराहो अअं जणो जेण एव्वं मन्तेसि। पिअसहि, तुमं लवङ्गिआ अ संपदं मे हिअअं )

बुद्धरक्षिता—यदि ते कथमपि मकरन्दः पुनरपि दर्शनपथमवतरति तदा किं त्वया कर्तव्यम्। (जइ दे कहं वि मअरन्दो पुणो वि दंसणपहं ओदरदि तदो किं तुए कादव्वं )

मदयन्तिका—एकैकावयवनिसर्गलग्ननिश्चले चिरं लोचने निर्वापयिष्ये। ( एक्केक्कावअवनिसग्गलग्गणिच्चले चिरं लोअणे णिव्वावइस्सं )

बुद्धरक्षिता—अथ स मन्मथबलात्कारितो यदि कंदर्पजननीं त्वां

---

पराधः=विहिताऽऽगाः, अत्र काकुः। न कृताऽपराधः इति भावः। पुनरेतेन पूर्वं मदयन्तिकया बुद्धरक्षितायाः प्रणयभङ्गो विहित इति द्योत्यते। हृदयं=हृदयसमेति भावः।

बुद्धरक्षितेति। दर्शनपथं=दृष्टिमार्गं, दर्शनस्य पन्था दर्शनपथस्तम्, 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इति समासान्तः अप्रत्ययः। अत्राऽऽत्मसमर्पणमेव त्वया कार्यमिति भावः।

मदयन्तिकेति। एकैकाऽवयवनिसर्गलग्ननिश्चले=एकैकाऽवयवे (प्रत्येकाऽङ्गे, मुखादिरूप इति भावः) निसर्गेण ( स्वभावेन मनोहरतरत्वादिति शेषः )। लग्ने ( संगते ) अत एव निश्चले ( चाञ्चल्यरहिते, स्थिरे इति भावः )। एतादृशे लोचने नेत्रे, मदीये इति शेषः। निर्वापयिष्ये=शीतले करिष्यामीत्यर्थः। मकरन्ददर्शनाऽमृतसेकेन शीतला भविष्यामीति भावः।

बुद्धरक्षितेति। अथ=यदि। सः=मकरन्दः। मन्मथबलात्कारितः=मन्मथेन

---

( कसूर ) किया है ? जो ऐसा कह रही हो। प्रियसखि! इस समय तुम और लवङ्गिका मेरे हृदय हो।

बुद्धरक्षिता—फिर भी मकरन्दजी तुम्हारे दृष्टिमार्गमें आ जायँ तो उस समय तुम्हें क्या करना चाहिए ?

मदयन्तिका—एक-एक ( मुखादिरूप ) अवयवमें सक्त होनेसे स्थिर होनेवाले नेत्रोंको बहुत समय तक शीतल बनाऊँगी।

बुद्धरक्षिता—जिस प्रकारसे पुरुषोत्तम ( श्रीकृष्णजी ) ने कन्दर्पजननी

रुक्मिणीमिव पुरुषोत्तमः स्वयंग्राहसाहसेन सहधर्मचारिणीं करोति तदा कीदृशी प्रतिपत्तिः । ( अह सो मम्महबलक्कारिओ जइ कंदप्पजणणिं तुमं रुक्मिणिं विअ पुरुसोत्तमो सअंगाहसाहसेण सहधम्मआरिणिं करेदि तदो कीरिसी पडिवत्ती )

मदयन्तिका—( निःश्वस्य ) कस्मादेतावदाश्वासितास्मि । ( किं एत्तिअं आसासिदम्हि )

बुद्धरक्षिता—सखि, कथय । ( सहि, कहेहि । )

लवङ्गिका—सखि कथितमेव हृदयावेगसूचकैर्दीर्घनिःश्वासैः । ( सहि, कहिदं जेव्व हिअआवेअसूअएहिं दीहणीसासेहिं )

---

( मदनेन ) बलात्कारितः ( बलात्कारेण प्रवर्तितः ) । पुरुषोत्तमः=कृष्णः, यद्वा—पुरुषेषु उत्तमः मकरन्द इत्यर्थः । 'न निर्धारण' इति षष्ठीसमासनिषेधात्सप्तमी-तत्पुरुषः । कन्दर्पजननीं = प्रद्युम्नमातरं, मदयन्तिकापक्षे—कामाऽवस्थोत्पादिकाम् । स्वयंग्राहसाहसेन = गान्धर्वविवाहरूपसाहसाचरणेन । सहधर्मचारिणीं='स्वधर्मचा-रिणीम्' इति पाठान्तरम्, उभयत्राऽपि पत्नीमित्यर्थः । अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः । तदा = ततः । प्रतिपत्तिः =बुद्धिः, तदा किं करिष्यसि ? स्वीकरोषि नो वेति भावः ।

मदयन्तिकेति । निःश्वस्य = निःश्वासं कृत्वा, मकरन्दस्याऽङ्कशायिनीभावस्याऽसं-भावनया निःश्वसनं बोध्यम् । कस्मात् = हेतोः, एतावत् = एतत्परिमाणं यावत्, आश्वासिता=कारिताश्वासा । 'आश्वासयसी'ति पुस्तकान्तरपाठः, तस्य आश्वस्तां करोषीत्यर्थः । मनोरथमात्रमिदं न संभाव्यत इति भावः ।

बुद्धरक्षितेति । कथय=ब्रूहि, व्यक्तीकृत्येति शेषः ।

लवङ्गिकेति । कथितमेव = उक्तमेव । हृदयावेगसूचकैः=चित्तोद्वेगद्योतकैः ।

---

(प्रद्युम्नकी माता) रुक्मिणीको सहधर्मचारिणी बनाया था उसी प्रकारसे कामदेवसे बलात्कारित पुरुषोत्तम ( पुरुषोंमें उत्तम ) वे स्वयंग्रहणरूप साहससे कन्दर्प-जननी ( कामावस्थाको उत्पन्न करनेवाली ) तुम्हें सहधर्मचारिणी बनायेंगे तो तुम क्या करोगी ?

मदयन्तिका—( लम्बी साँस लेकर ) कैसे यहाँ तक आश्वासन देती हो ?

बुद्धरक्षिता—सखि ! कहो !

लवङ्गिका—सखि ! चित्तके उद्वेगका द्योतक करनेवाले दीर्घनिःश्वासोंसे बतलाया ही तो है ।

मदयन्तिका—सखि, काहमेतस्य तेनैवात्मानं पणीकृत्य मृत्युकवलनादाकृष्टस्य तस्यैव परकीयस्य कृत्यकिंकरस्यात्मनः शरीरस्य। (सहि, काहं इमस्स देण जेव्व अत्ताणं पणीकदुअ मिच्चुकवलणादो आकड्ढिअस्स तस्स जेव्व परईअस्स किच्चकिंकरस्स अत्तणो सरीरस्स)

लवङ्गिका—सदृशं खलु महानुभावतायाः। (सरिसं क्खु महाणुभावदाए)

बुद्धरक्षिता—स्मरिष्यस्येतद्वचनम्। (सुमरेसि एदं वअणं)

मदयन्तिका—कथं द्वितीययामविच्छेदपटहस्ताड्यते। तद्यावन्नन्दनं

---

अभीष्टमेवैतद्यदि सिध्येदिति कथितमेवेत्यर्थः। तस्मान्मकरन्दानयनोपायश्चिन्त्यमति भावः।

मदयन्तिकेति। आत्मशरीरस्य, न काऽपि। मकरन्दस्यैव मच्छरीरमिति प्रतिपादयति—सखीति। तेनैव = मकरन्देनैव। आत्मानं = स्वशरीरम्। पणीकृत्य = मूल्यीकृत्य, मृत्युकवलनात् = कालग्रसनात्, 'दुष्टशार्दूलकवलात्' इति पाठान्तरम्। आकृष्टस्य = कृताकर्षणस्य। तस्यैव = मकरन्दस्यैव। अत एव—परकीयस्य = परसम्बन्धयुक्तस्य, अपगतात्मसम्बन्धस्येति भावः। पुस्तकान्तरेतु 'स्वकीयस्ये'ति पाठस्तस्य आत्मीयस्येत्यर्थः। कृत्यकिङ्करस्य = कार्यदासस्य। आत्मनः = स्वस्य। एतस्य = अस्य। शरीरस्य = देहस्य। का अहं = काका न काऽपीत्यर्थः। शार्दूलान्मच्छरीरं मकरन्देन रक्षितं ततः प्रभृति तदायत्तत्वादात्मशरीरे किमपि कर्तुं न प्रभवाम्यहमिति भावः। एतयोक्त्या मदयन्तिकया मकरन्दाय शरीरार्पणमभ्युपगतमिति द्योत्यते।

लवङ्गिकेति। महाऽनुभावतायाः=कृतज्ञतायाः, परकृतोपकारस्याऽविस्मरणरूपाया इति भावः। सदृशम् = अनुरूपं, त्वदुक्तमिति शेषः।

बुद्धरक्षितेति। स्मरिष्यसि = स्मरणं करिष्यसि। मदयन्तिकयात्मनो मकरन्दाऽऽयत्तत्वे या स्वसम्मतिः प्रदर्शिता, कार्यकाले तस्याः सम्मतेः स्मरेति भावः।

मदयन्तिकेति। द्वितीययामविच्छेदपटहः=द्वितीययामः (द्वितीयप्रहरः, रात्रेरिति

---

मदयन्तिका—सखि! उन (मकरन्द) से ही अपने शरीरको पण कर कालके ग्रसनसे खींचे गये अतएव उन्हींके अधीन, कार्यदास अपने इस शरीरके (प्रभुत्वके) लिए मैं कौन हूँ?

लवङ्गिका—यह वचन कृतज्ञताके सदृश है।

बुद्धरक्षिता—इस वचनका स्मरण करोगी।

मदयन्तिका—रात्रिका द्वितीय प्रहर बीतनेका संकेत करनेवाला नगाड़ा

निर्भर्त्स्ये सपादपतनं वाभ्यर्थ्य मालत्या उपर्यनुकूलयिष्यामि। (इत्युत्थातुमिच्छति) (कहं दुदिअआमविच्छेदपडहो ताडिअदि। ता जाव णन्दणं णिब्भच्छिअ सापादपडणं वा अब्भत्थिअ मालदीए उवरि अणुऊलइस्सं)

( मकरन्दो मुखमुद्घाट्य तां हस्ते गृह्णाति )

मदयन्तिका--सखि मालति, प्रतिबुद्धासि। (विलोक्य सहर्षं ससाध्वसं च) अहो इदमन्यदेव वर्तते। ( सहि मालदि, पडिबुद्धासि।। अम्हहे एदं अण्णं जेव्व वट्टदि )

मकरन्दः--

रम्भोरु ! संहर भयं, क्षमते विकार-

---

शेषः ) तस्य विच्छेदः ( अपगमः) तद्द्योतकः पटहः ( आनकः, 'आनकः पटहोऽस्त्री स्यात्' इत्यमरः )। ताड्यते = वाद्यते। तत् = तस्मात्। नन्दनं = स्वभ्रातरं, निर्भर्त्स्यं='एतादृश्यामृजुस्वभावायां मालत्यां तवेदृशो व्यवहारोऽन्याय्य' इति तिरस्कृत्य। 'ज्येष्ठभ्राता पितुः सम' इति न्यायात्पूजनीये ज्येष्ठभ्रातरि निर्भर्त्सनस्याऽनुचितत्वात्, वा = पक्षान्तरे। सपादपतनं = चरणपातसहितं यथा तथा, तस्य चरणयोः पतित्वेति भावः। अभ्यर्थ्यं=अभ्यर्थनां कृत्वा। अनुकूलयिष्यामि = अनुकूलं करिष्यामि, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्ताल्लृट्।

मकरन्द इति। तां=मदयन्तिकाम्।

मदयन्तिकेति। प्रतिबुद्धा=जागरितेत्यर्थः। दयितदर्शनात्सहर्षम्। कुलकन्यकाजनाऽनुचितपुरुषस्पर्शाच्च ससाध्वसं=सभयं च। अहो = आश्चर्यम्। अन्यदेव= प्रस्तुतमालतीनन्दनसंघटनाद्भिन्नमेव, मदयन्तिकामकरन्दसंघटनसंधानं वर्तत इति भावः।

मकरन्द इति। अथ मकरन्दो लज्जाभयपराभूतां दयितां मदयन्तिकां प्रसादयति-रम्भोर्विति। हे रम्भोरु ! भयं संहर, मध्यभाग उत्कम्पिनः स्तनतटस्य विकारं न

---

कैसे बजाया जा रहा है ? इसलिए नन्दनको भर्त्सन कर अथवा चरणोंपर गिरकर प्रार्थना करके मालतीके ऊपर अनुकूल करूँगी।

( मकरन्द मुँह खोलकर उसको हाथसे पकड़ता है। )

मदयन्तिका—सखि मालति ! तुम जग गई हो। ( देखकर हर्ष और भयके साथ ) अहो ! यह दूसरी ही बात हो रही है।

मकरन्द--

हे कदलीस्तम्भोंके सदृश ऊरुओंसे युक्त सुन्दरि ! भयको छोड़ो। तुम्हारी

मुत्कम्पिनः स्तनतटस्य न मध्यभागः।
इत्थं त्वयैव कथितप्रणयप्रसादः
संकल्पनिर्वृतिषु संस्तुत एष दासः ॥ २ ॥

बुद्धरक्षिता—( मदयन्तिकामुखमुन्नमय्य संस्कृतमाश्रित्य )
प्रेयान्मनोरथसहस्रवृतः स एष

---

क्षमते। इत्थं त्वया एव कथितप्रणयप्रसादः सङ्कल्पनिर्वृतिषु संस्तुत एष दास इत्यन्वयः। हे रम्भोरु = हे कदलीस्तम्भसमसक्थे !, रम्भे इव ऊरू यस्याः सा, तस्सम्बुद्धौ। 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' इत्यूङ्। भयं = साध्वसं, संहर = त्यज, यतः—मध्यभागः = त्वद्देहमध्यभागः, उत्कम्पिनः = उत्कम्पयुक्तस्य, 'स्तनभरस्ये'ति पुस्तकान्तरपाठः। साध्वसेनेति शेषः। 'उत्कम्पितम्' इति पाठान्तरम्। स्तनतटस्य=पयोधरतटस्य, विकारं = विकृतिं, विक्षोभस्वरूपामिति भावः 'विसोढुम्' इति पाठान्तरम्। न क्षमते=न सहते, अतिशयकृशत्वात्तवाऽवलग्नभागो विशालस्य कुचयुगलस्य साध्वसजनितं विक्षोभं सोढुं न समर्थ इति भावः। भयस्याऽयुक्तत्वं प्रतिपादयति—इत्थमिति। इत्थम् = अनेन प्रकारेण, साम्प्रतमेव त्वदुक्त्येनेति शेषः। त्वया एव = भवत्या एव, कथितप्रणयप्रसादः = कथितः (अभिहितः) प्रणयः (प्रेमा) एव प्रसादः (अनुग्रहः) यस्मिन् सः। सङ्कल्पनिर्वृतिषु = सङ्कल्पजनितसुखेषु, समागमरूपेष्विति भावः। संस्तुतः = परिचितः। एषः = अतिसमीपस्थितः। दासः=भृत्यः। अपरिचितादेव भयं भवति, अहं तु साम्प्रतमेव त्वत्प्रतिपादितसङ्कल्पसमागमभाजनमतो मत्तो भयं न करणीयमिति भावः। अत्र भयसंहरणरूपं कार्यं प्रति द्वितीयतृतीयवाक्यार्थयोर्हेतुरूपत्वाद्वाक्याऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २ ॥

बुद्धरक्षितेति। उन्नमय्य = उन्नतं कृत्वा।

प्रेयानिति। मनोरथसहस्रवृतः स एष प्रेयान्। एतद् अमात्यवेश्म सुप्तप्रमत्तजनम् प्रौढं तमः। कृतज्ञतया एव भद्रं कुरु। उत्क्षिप्तमूकमणिनूपुरम् एहि यामः। इत्यन्वयः। यः पूर्वं त्वयैव—मनोरथसहस्रवृतः = मानसोपनीताऽभिलापसहस्रप्रार्थितः। सः = तादृशः। एषः = साम्प्रतमतिसन्निहितः। प्रेयान् = प्रियतमः, मकरन्द इत्यर्थः,

---

कमर कम्पयुक्त स्तनतटके विकारको नहीं सहती है। इस प्रकारसे ( अभी-अभी ) तुमने ही जिसके प्रति अपना प्रेमरूप अनुग्रह बतलाया है और सङ्कल्पजनित ( समागमरूप ) सुखोंमें परिचित यह दास विद्यमान है ॥ २ ॥

बुद्धरक्षिता—( मदयन्तिकाका मुख ऊँचाकर संस्कृतका आश्रय लेकर )
सहस्र अभिलाषोंसे प्रार्थित वे यही प्रियतम ( मकरन्दजी ) हैं। मन्त्रीजीके

सुप्तप्रमत्तजनमेतदमात्यवेश्म ।
प्रौढं तमः कुरु कृतज्ञतयैव भद्र-
मुत्क्षिप्तमूकमणिनूपुरमेहि यामः ॥ ३ ॥

मदयन्तिका—सखि बुद्धरक्षिते, क्व पुनरिदानीमस्माभिर्गन्तव्यम् । ( सहि बुद्धरक्खिदे, कहिं पुणो दाणिं अम्हेहिं गन्दव्वं )

बुद्धरक्षिता—यत्रैव मालती गता । ( जहिं जेव्व मालदी गआ )

मदयन्तिका—किं निर्वृत्तसाहसा मालती । ( किं णिव्वुत्तसाहसा मालदी )

---

वर्तत इति शेषः । नन्वेतेन परिणयनेऽनुकूलस्थानं न वर्तत इत्यत्राह—सुप्तेत्यादि । एतत् = इदम्, अमात्यवेश्म = अमात्यस्य ( मन्त्रिणः, नन्दनस्येत्यर्थः ) वेश्म (भवनम् ) । सुप्तप्रमत्तजनं = सुप्ताः ( केचिन्निद्राणाः ) प्रमत्ताः (केचिद्वुद्वाहोत्सवप्रमत्ताः) जनाः ( नराः ) यस्मिंस्तत्, एतादृशं वर्तते, तेनाऽत्र कश्चित्पश्येदित्याशङ्का नाऽस्तीति भावः । ननु पर्यटनशीला नगरपालका गृह्णीयुरित्याह—प्रौढमिति । प्रौढं = गाढं, तमः = अन्धकारः, अस्तीति शेषः । तेन नगरपालकेभ्योऽपि शङ्का निरस्ता । तर्हि किं कर्तव्यमित्यत आह—कुर्विति । कृतज्ञतया एव = शार्दूलप्रासादच्चणेन उपकारज्ञतया एव । भद्रं = कल्याणं, मकरन्दपाणिग्रहणरूपमिति भावः । कुरु = विधेहि । इत्थं प्रत्युपकारसम्पादनं स्यादिति भावः । अतः—उत्क्षिप्तमूकमणिनूपुरम् = उत्क्षिप्तौ ( उत्तोलितौ ) अत एव मूकौ ( शब्दशून्यौ ) मणिनूपुरौ ( रत्नखचितौ मञ्जीरौ ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । एहि = आगच्छ । यामः = गच्छामः, नूपुरध्वनिरन्यैर्यथा न श्रूयते तथोर्ध्वमुत्क्षिप्य कैश्चिदप्यलक्षिता वयं याम इति भावः । अत्र यानरूपे कार्ये बहूना हेतूनां सद्भावात् समुच्चयाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३ ॥

बुद्धरक्षितेति । यत्रैव = यस्मिन्स्थान एव, तत्रैवेति भावः ।

मदयन्तिकेति । निर्वृत्तसाहसा = निर्वृत्तं ( निष्पन्नम् ) साहसं ( माधवेन समं प्रस्थानरूपमनुष्ठानम् ) यस्याः सा ।

---

भवनमें कई मनुष्य सोये हुए और कई विवाहोत्सवसे प्रमत्त होकर पड़े हुए हैं । गाढ़ अन्धकार है । अतएव कृतज्ञतासे ही अपना मङ्गल करो । मणिखचित नूपुरोंको ऊपर उठाकर निःशब्द कर आओ, हमलोग जायँ ॥ ३ ॥

मदयन्तिका—सखि ! बुद्धरक्षिते ! इस समय हमलोगोंको कहाँ जाना चाहिए ?

बुद्धरक्षिता—जहाँ पर मालती गई है, वहीं पर जाना चाहिए ।

मदयन्तिका—क्या मालती ऐसा साहस कर चुकी है ?

बुद्धरक्षिता—अथ किम्। अन्यच्च त्वं भणसि। ('का हं इमस्स' इत्यादि पठति) (अह इं। अण्णं अ तुमं भणासि)

(मदयन्तिकाश्रूणि पातयति)

बुद्धरक्षिता-महाभाग, दत्तः खलु स्वयमात्मा प्रियसख्या। (महाभाअ, दिण्णो क्खु सअं अप्पा पिअसहीए)

मकरन्दः—

अद्योर्जितं विजितमेव मया, किमन्य-
द्द्योत्सवः फलवतो मम यौवनस्य।

---

बुद्धरक्षितेति। अथ किं=निर्वृत्तसाहसैवेति भावः। अन्यच्च=अपरं च। भणसि= कथयसि ('का अहम् एतस्य' इत्यादि पठति)। भणसीत्यत्र 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति अतीतसामीप्ये लट्। त्वया यदुक्तं तत्परिपालयेति भावः।

मदयन्तिकेति। अश्रूणि=नयनाम्बूनि। गुरुजनविधीयमानसम्प्रदान इव स्वयमश्रूणि पातयतीति भावः।

बुद्धरक्षितेति। प्रियसख्या=मदयन्तिकयेति भावः। आत्मा=स्वशरीरम्। स्वयम्= आत्मना। एतेन गुरुजननिरपेक्षप्रदानेन गान्धर्वविवाहो द्योत्यते। अत्र 'दत्त' खल्वात्मानं प्रियसख्या प्रतिपद्यस्वे' ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र प्रतिपद्यस्व=स्वीकुर्विति भावः।

अद्येति। अद्य मया ऊर्जितं विजितम् एव। अन्यत् किम्। अद्य फलवतो मम यौवनस्य उत्सवः। यत् प्रसादसुमुखेन देवेन मकरध्वजेन इयं मे बान्धवधुरा समुद्यतेत्यन्वयः। अद्य=अस्मिन्दिने, मया=मकरन्देन, ऊर्जितं=बलयुक्तं यथा स्यात्तथा, 'ऊर्ज-बलप्राणनयोः' इति धातोः क्तप्रत्ययः। विजितम् एव=विजयः कृत एव, प्राणप्रियाया मदयन्तिकाया लाभात् सर्वाऽतिशाय्युत्कर्षो लब्ध एवेति भावः। अन्यत्= अपरं, किं, किमप्यन्यत्साध्यं नाऽस्तीतिः। अद्य=अस्मिन्दिने, फलवतः=सफ-

---

बुद्धरक्षिता—और क्या ? और भी जो तुम कहती हो ('का हं इमस्स' में इस शरीरके लिए कौन हूँ' इत्यादि पढ़ती है।)

(मदयन्तिका आँसू गिराती है।)

बुद्धिरक्षिता—महाभाग ! प्रियसखीने अपने शरीरको स्वयं आपको दे दिया है।

मकरन्द—

आज मैंने बलके साथ विजय प्राप्त ही किया है। और क्या है ? आज सफल

यन्मे प्रसादसुमुखेन समुद्यतेयं
देवेन बान्धवधुरा मकरध्वजेन ॥ ४ ॥

तदनेन पक्षद्वारेण साधयामः ।

( निभृतं परिक्रामन्ति )

मकरन्दः-अहो निशीथनिःसंचाररमणीयता राजमार्गस्य । संप्रति हि-

प्रासादानामुपरि वलभीतुङ्गवातायनेषु
प्राप्तामोदः परिणतसुरागन्धसंस्कारगर्भः ।

---

लस्य, प्रियतमाप्त्या इति शेषः । मम = मकरन्दस्य । यौवनस्य=तारुण्यस्य, उत्सवः = मङ्गलदिनम् । तत्र हेतुं प्रदर्शयति—यन्म इति । यत्=यस्मात् । प्रसादसुमुखेन= प्रसादेन ( प्रसन्नतया ) सुमुखेन ( शोभनाऽऽननेन ) । देवेन=द्योतमानेन । मकरध्वजेन=कामेन । इयम्=एषा, मे=मम । बान्धवधुरा=बन्धुकार्यभारः, 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इति समासाऽन्तः अप्रत्ययः । समुद्यता=सम्यग्धृता । इयं कामदेवेनैव मह्यं समर्पितेति भावः । पूर्वार्द्धं प्रत्युत्तरार्द्धस्य हेतुत्वाद्वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

तदिति । पक्षद्वारेण=पार्श्वद्वारेण, 'पक्षद्वारं तु पक्षकम् ।' इत्यमरः । साधयामः = गच्छामः । 'प्रायेण ण्यन्तकः साधिर्गमेः स्थाने प्रयुज्यते ।' इति साहित्यदर्पणकारो विश्वनाथकविराजः । निभृतं = मन्दं मन्दम् । परिक्रामन्ति=पादविक्षेपं कुर्वन्ति । परिपूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेप'इति धातोः श्यनभावे 'क्रमः परस्मैपदेषु' दीर्घत्वम् ।

मकरन्द इति । निशीथनिःसञ्चाररमणीयता=निशीथे ( अर्धरात्रे ) निःसञ्चारेण (सञ्चाराऽभावेन) रमणीयता (मनोहरता)। कालोऽयमस्मत्प्रयाणाऽनुगुण इति भावः

प्रासादानामिति । प्रासादानाम् उपरि वलभीतुङ्गवातायनेषु प्राप्ताऽऽमोदः परिणतसुरागन्धसंस्कारगर्भः माल्यामोदी मुहुरुपचितस्फीतकर्पूरवासो वातो यूनाम् अभिमतवधूसन्निधानं व्यनक्तीत्यन्वयः । प्रासादानां=सौधानाम्, उपरि=ऊर्ध्वभागेषु, वलभीतुङ्गवाताऽयनेषु वलभीनां ( सौधोर्ध्वभागानाम् ) तुङ्गवाताऽयनेषु ( उन्नत-

---

मेरे यौवन (जवानी) का उत्सव है । जो कि प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाले कामदेवने मेरे इस बन्धुकार्यभारको धारण किया है ॥ ४ ॥

इस कारणसे इस पार्श्वद्वारसे हमलोग जायँ ।

( सब लोग मन्दभावसे पादविक्षेप करते हैं । )

मकरन्द—अहो, अर्धरात्रमें जनसञ्चार न होनेसे राजमार्गकी मनोहरता है ।

माल्यामोदी मुहुरुपचितस्फीतकर्पूरवासो
वातो यूनामभिमतवधूसंनिधानं व्यनक्ति ॥ ५ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे सप्तमोऽङ्कः ।



गवाक्षेषु ) प्रविश्येति शेषः । प्राप्ताऽऽमोदः = आसादितसौरभः । 'भ्रान्त्वाऽऽवृत्त' इति पाठान्तरे-भ्रान्त्वा = गवाक्षमार्गेण हर्म्यतलेषु परिभ्रम्य, आवृत्तः = पुनरायात इत्यर्थः । परिणतसुरागन्धसंस्कारगर्भः=परिणतसुरायाः ( परिपक्वमद्यस्य ) यो गन्धः ( घ्राणग्राह्यो गुणविशेषः ) तेन संस्कारः ( वासना ) गर्भे ( मध्ये ) यस्य सः । माल्याऽऽमोदी=माल्यानाम् ( नानाविधानां पुष्पमालानाम् ) आमोदः ( सौरभम् ) अस्याऽस्तीति, मालासौरभयुक्त इत्यर्थः । 'अत इनिठनौ' इतीनिप्रत्ययः । मुहुरुपचितस्फीतकर्पूरवासः = मुहुः ( पुनःपुनः ) उपचितः ( गृहीतः ) स्फीतः ( वृद्धिं गतः, 'स्फायी वृद्धौ' इति धातोः क्तप्रत्ययः । 'स्फायः स्फी निष्ठायाम्' इति स्फीभावः ) कर्पूरवासः ( घनसारसौरभम् ) येन सः । तादृशो वातः=वायुः, यूनां = तरुणानाम्, अभिमतवधूसन्निधानम्=अभिमतवधूनाम् ( अभीष्टललनानाम् ) सन्निधानं ( सामीप्यम् ), समुपभोगाऽर्थमिति शेषः । व्यनक्ति = सूचयति । एतेन मद्यपानमाल्यादिभिः सुरतादिभोगो व्यज्यते । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ५ ॥

इति श्रीशेषराजशर्मप्रणीतायां टीकायां सप्तमोऽङ्कः ।



क्योंकि इस समय प्रासादोंके ऊपर अट्टालिकाओंके उन्नत गवाक्षोंमें सुगन्धको प्राप्त करनेवाला, जिसके भीतर परिपक्व मद्यका गन्ध विद्यमान है, फूलोंकी मालाओंकी सुगन्धसे सम्पन्न और बारम्बार गृहीत और वृद्धिको प्राप्त कर्पूरके सौरभसे समन्वित वायु तरुण पुरुषोंके अभीष्ट स्त्रीके सामीप्यको सूचित कर रहा है ॥ ५ ॥

( अनन्तर सब बाहर निकलते हैं । )

सप्तम अङ्क समाप्त ।



# अष्टमोऽङ्कः

( ततः प्रविशत्यवलोकिता )

अवलोकिता—वन्दिता मया नन्दनावसथप्रतिनिवृत्ता भगवती। तद्यावन्मालतीमाधवसकाशं गच्छामि। ( परिक्रम्य ) एतौ तौ परिनिर्वर्तितग्रीष्मदिवसावसानमज्जनौ दीर्घिकातीरशिलातलमलंकुरुतः। तदुपसर्पामि। ( इति निष्क्रान्ता ) ( वन्दिदा मए णन्दणावसथपडिणिउत्ता भअवदी। ता जाव मालदीमाहवसआसं गच्छम्हि। एदे दे परिणिव्वुत्तिदगिह्मदिअहावसाणमज्जणा दीहिआतीरसिलातलं अलंकरन्ति। ता उपसप्पामि। )

प्रवेशकः।

( ततः प्रविशतो मालतीमाधवौ उपविष्टावलोकिता च )

माधवः—( सानन्दम् ) वर्धते हि मन्मथप्रौढसुहृदो निशीथस्य यौवनश्रीः। तथा हि—

---

अवलोकितेति। नन्दनाऽवसथप्रतिनिवृत्ता=नन्दनाऽवसथात् ( नन्दनभवनात् ) प्रतिनिवृत्ता ( प्रत्यायाता )। भगवती=कामन्दकी। परिनिर्वर्तितग्रीष्मदिवसाऽवसानमज्जनौ=परिनिर्वर्तितं ( परिनिष्पादितम् ) ग्रीष्मदिवसाऽवसानस्य ( निदाघदिनसमाप्तेः ) मज्जनं ( स्नानम् ) याभ्यां तौ। दीर्घिकातीरशिलातलं=दीर्घिकातीरे ( वापीतटे ) यत् शिलातलं ( प्रस्तरतलम् ), तत्। अलङ्कुरुतः=भूषयतः।

प्रवेशक इति। अत्र 'वन्दिते'त्यनेन वृत्तकथांऽशनिदर्शनं, 'तद्यावत्' इत्यादिना वर्तिष्यमाणकथांऽशनिदर्शनम्, अतोऽयं प्रवेशकः। तल्लक्षणं तु पूर्वमेव प्रतिपादितम्।

माधव इति। मन्मथप्रौढसुहृदः=मन्मथस्य ( कामस्य ) प्रौढसुहृदः ( प्रधान-

---

( तब अवलोकिता प्रवेश करती है। )

अवलोकिता—नन्दनके भवनसे लौटी हुई भगवतीको मैंने अभिवादन किया। इस कारणसे अब मालती और माधवके समीप जाती हूँ ( पादविक्षेप कर ) ग्रीष्म ऋतुके सायङ्कालमें स्नान किये हुये ये दोनों वापीतटके शिलातलको अलङ्कृत कर रहे हैं। अतएव इनके समीप जाती हूँ। ( ऐसा कहकर निकलती है। )

प्रवेशक।

( तब मालती, माधव और बैठी हुई अवलोकिता ये सब प्रवेश करते हैं। )

माधव—( आनन्दके साथ ) कामदेवके प्रधान मित्र अर्धरात्रकी यौवनशोभा बढ़ रही है। जैसे कि—

दलयति परिशुष्यत्प्रौढतालीविपाण्डु-
स्तिमिरनिकरमुद्यन्नैन्दवः प्राक्प्रकाशः।
वियति पवनवेगादुन्मुखः केतकीनां
प्रचलित इव सान्द्रो मन्दमन्दं परागः ॥ १ ॥

(स्वगतम्) तत्कथं वामशीलां मालतीमुपावर्तये। भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) प्रिये मालति, प्रत्यग्रसायंतनस्नानसविशेषशीतलां भवतीं

मित्रस्य,) मन्मथसुहृत्ता च मन्मथसाध्याऽनुकूलकरणादवसेया। वर्धते = एधते, 'वर्तते' इति पुस्तकान्तरपाठः। निशीथे 'साऽनन्दसाध्वसाः सुरव्यवसायिन्यो भवन्ती'ति वात्स्यायनेन वैशिष्ट्यं प्रदर्शितम्।

दलयतीति। परिशुष्यत्प्रौढतालीविपाण्डुः उद्यन् ऐन्दवः प्राक्प्रकाशः तिमिरनिकरं दलयति। पवनवेगात् वियति उन्मुखः सान्द्रः मन्दमन्दं प्रचलितः केतकीनां पराग इवेत्यन्वयः। परिशुष्यत्प्रौढतालीविपाण्डुः=परिशुष्यन्ती (परिशोषं गच्छन्ती, ऊष्मवशादिति भावः) प्रौढा (प्राप्तपरिपाका) या ताली (तालीपत्रम्) सा इव विपाण्डुः (पाण्डुरः), क्वचित् '……तालीव पाण्डुः' इति व्यस्तः पाठः। उद्यन् = उद्गच्छन्, ऐन्दवः = इन्दुसम्बन्धी, इन्दोरयम् ऐन्दवः 'तस्येदम्' इत्यण्, 'ओर्गुणः' इति उवर्णस्य गुणः। प्राक्प्रकाशः = प्राचि (प्राचीभागे) प्रकाशः (द्योतः) यद्वा पूर्वस्फुरणं, तिमिरनिकरं = तमःसमूहं, दलयति = नाशयति। एवं च पवनवेगात् = वायुजवात्, वियति = आकाशे, उन्मुखः = ऊर्ध्वमुखः। सान्द्रः=घनः सन्, मन्दमन्दं = शनैः शनैः 'स्फारस्फारम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य अतिप्रचुरं यथा स्यात्तथेत्यर्थः। प्रचलितः = कृतप्रचलनः, केतकीनां=केतकीपुष्पाणां, पराग इव = रज इव, प्रतीयत इति शेषः। अत्र प्रथमचरणे उपमा, चतुर्थचरणे तु उत्प्रेक्षा तयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। मालिनी वृत्तम् ॥ १ ॥

तत्कथमिति। वामशीलां = प्रतिकूलस्वभावाम्, लज्जयाऽऽलापादिव्यापारेऽप्यानुकूल्यरहितामिति भावः। उपावर्तये = स्वाऽऽयत्तचित्तां करोमि। प्रत्यग्रसायन्तनस्नानसविशेषशीतलां = प्रत्यग्रं (सद्योनिर्वृत्तम्) सायन्तनं (सायङ्कालिकं पर्व निशीथ-

सूखते हुए परिपक्व तालीपत्रके सदृश पाण्डुर वर्णवाला उगता हुआ पूर्व दिशामें चन्द्रमाका प्रकाश अन्धकारसमूहको नष्ट कर रहा है। एवं वायुके वेगसे आकाशमें उन्मुख, घना और मन्द-मन्द प्रचलित केतकीपुष्पोंके परागके सदृश चन्द्रमाका प्रकाश प्रतीत हो रहा है ॥ १ ॥

(मन ही मन) तब कैसे लज्जाके कारण प्रतिकूल स्वभाववाली मालतीको

निदाघसंतापशान्तये किंचिद्विज्ञापयामि। तत्किमित्यन्यथैव मां संभावयसि।

निश्च्योतन्ते सुतनु! कबरीबिन्दवो यावदेते।
यावन्मध्यः स्तनमुकुलयोर्नार्द्रभावं जहाति।
यावत्सान्द्रप्रतनुपुलकोद्भेदवत्यङ्गयष्टि-
स्तावद् गाढं वितर सकृदप्यङ्कपालीं प्रसीद॥ २॥

पदसत्वात्सायङ्कालोत्तरकालिकं रात्रिभवमिति भावः) यत् स्नानं (मज्जनं, ग्रीष्मतापाऽपनोदनायेति शेषः), तेन सविशेषं (साऽधिकम्) यथा स्यात्तथा=शीतलाम् (शीताम्)। भवतीं=त्वां, निदाघसन्तापशान्तये=ग्रीष्मतापनिवारणाय, स्वस्येति शेषः। मज्जनशीतलैरङ्गैर्मामालिङ्ग्य निदाघतापतप्तं मदीयमङ्गं निर्वापयेति भावः। तत्=तस्मात्, किमिति=केन कारणेन, अन्यथैव=प्रकारान्तरेणैव। सम्भावयसि=विचारयसि।

निश्च्योतन्त इति। हे सुतनु! एते कबरीबिन्दवो यावत् निश्च्योतन्ते, यावत् स्तनमुकुलयोः मध्यः आर्द्रभावं न जहाति, यावत् अङ्गयष्टिः सान्द्रप्रतनुपुलकोद्भेदवती, तावत् गाढम् अङ्कपालीं सकृत् अपि वितर। प्रसीदेत्यन्वयः। हे सुतनु=हे सुन्दरि!, एते=अतिसमीपत्वेन दृश्यमानाः, कबरीबिन्दवः=स्नानाऽनन्तरं केशपाशस्थजलपृषताः, यावत्=यत्कालपर्यन्तं, निश्च्योतन्ते=निपतन्ति, 'श्च्युतिर् क्षरण' इति धातोः परस्मैपदित्वादत्राऽत्मनेपदत्वञ्चिन्त्यम्। यावत् स्तनमुकुलयोः=कुचकुड्मलयोः, स्तनौ मुकुलाविव स्तनमुकुलौ, तयोः। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोग' इति समासः। मध्यः=मध्यभागः, आर्द्रभावं=क्लिन्नत्वम् 'आर्द्रं सार्द्रं क्लिन्नं तिमितं स्तिमितं समुन्नमुत्तं च।' इत्यमरः। न जहाति=न त्यजति, 'ओहाक् त्यागे' इति जौहोत्यादिकधातोर्लट्। यावत्कुचयुगलान्तर्भागः स्नानजलार्द्रो वर्तत इति भावः। यावत् अङ्गयष्टिः=शरीरयष्टिः, तवेति शेषः। अङ्गमेव यष्टिरिति आभासरूपकाऽलङ्कारः। तदुक्तं चन्द्रालोके—'स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम्।' इति। सान्द्रप्रतनुपुलकोद्भेदवती=सान्द्राणां (घनानाम्) प्रतनूनां (सूक्ष्माणाम्) पुलकानाम् (रोमाञ्चानां स्नानवशाज्जातानामिति भावः) उद्भेदः (प्राकट्यम्) तद्वती (तद्युक्ता), वर्तत इति शेषः। तावत्=तत्कालपर्यन्तम्।

प्रसन्न करूँ? ऐसा हो कि (सुनाकर) प्रिये मालति! नवीन सायङ्कालके उत्तरकालिक स्नानसे अतिशय शीतल तुमको ग्रीष्मसन्तापकी शान्तिके लिए कुछ विज्ञापन करता हूँ। तब क्यों तुम मनमें दूसरी ही बातकी सम्भावना कर रही हो?

हे सुन्दरि! ये कबरीस्थित जलबिन्दु जब तक गिरते हैं, जब तक स्तनमुकुलोंका मध्यभाग आर्द्रभावका परित्याग नहीं करता है, जब तक तुम्हारी

अयि मालति निरनुक्रोशे,

जीवयन्निव समूढसाध्वसस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।

बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥ ३ ॥

---

गाढं = दृढं यथा स्यात्तथा । अङ्कपालीम् = आलिङ्गनं, सकृत् अपि = एकवारम् अपि, वितर = देहि, प्रसीद = प्रसन्ना भव । निदाघतापशान्त्यर्थमेव स्वकीयैः सद्योमज्जनशीतलाङ्गैराश्लिष्य मदङ्गस्थितनिदाघमन्मथतापं निवारयेति भावः । अत्र स्तनमुकुलयोरित्यत्रोपमा, अङ्गयष्टिरित्यत्र चाभासरूपकमिति द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २ ॥

अयीति । निरनुक्रोशे = हे दयारहिते, मदभीष्टाऽसंपादनादिति भावः ।

जीवयन्निवेति । समूढसाध्वसस्वेदबिन्दुः ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः जीवयन् इव बाहुः अधिकण्ठम् अर्प्यतामित्यन्वयः । समूढसाध्वसस्वेदबिन्दुः = समूढाः ( सद्योजाताः, 'समूढः पुञ्जिते भुग्ने सद्योजाते सुनिश्चिते ।' इति विश्वः ) साध्वसात् ( भयात् ) स्वेदबिन्दवः ( घर्मपृषन्ति ) यस्मिन् सः ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः = ऐन्दवाः ( चन्द्रसम्बन्धिनः, इन्दोरिमे इति अण् ) ये मयूखाः ( किरणाः ) तैश्चुम्बितः (स्पृष्टः) अत एव—स्यन्दी ( जलस्रावयुक्तः, चन्द्रकिरणसम्पर्केण चन्द्रकान्तमणिः स्रवतीति लोकप्रसिद्धः ) तादृशो यश्चन्द्रमणिहारः ( चन्द्रकान्तमणिमाला ) तस्येव विभ्रमः ( विलासः ) यस्य सः । अतः जीवयन्निव = जीवनं वितरन्निव, मदनवेदनया हतप्रायमिव मां जीवितं कुर्वन्निव स्थित इति भावः । बाहुः = स्वभुजः, अधिकण्ठं = कण्ठे, मदीयकण्ठ इत्यर्थः । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । अर्प्यतां = निधीयतां, त्वयेति शेषः । एवं कृते मय्यनुक्रोशः प्रदर्शितः स्यादिति भावः । अत्र लुप्तोपमा, 'जीवयन्निवे'त्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा चेति द्वयोः सङ्करः । रथोद्धता वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा–'रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।' इति । 'समूढसाध्वसस्वेदबिन्दु'रित्यत्र 'ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दु'रिति परिवर्तनेन श्लोकोऽयं श्रीरामचन्द्रेण जनकनन्दिनीं प्रत्युद्दिश्योत्तररामचरिते प्रथमाऽङ्के प्रतिपादितः ॥ ३ ॥

---

शरीरयष्टि गाढ़ और सूक्ष्म रोमाञ्चोंसे युक्त है; तब तक गाढ़ आलिङ्गनको एकवार भी दे दो, प्रसन्न हो जाओ ॥ २ ॥

अरी निर्दये ! मालति !

भयसे तत्क्षण उत्पन्न स्वेदबिन्दुओंसे युक्त, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे पिघलनेवाली चन्द्रकान्त-मणिमालाकी तरह विलासवाला और मुझे जीवित करते हुए के सदृश अपनी बाहुको मेरे गलेमें अर्पण करो ॥ ३ ॥

अथवा दूरे तावदेतत् । कथमालापसंविभागस्याप्यभाजनमयं जनो भवत्याः ।

दग्धं चिराय मलयानिलचन्द्रपादै-
निर्वापितं तु परिरभ्य वपुर्न नाम ।
आमत्तकोकिलरुतव्यथिता तु हृद्या-
मद्य श्रुतिः पिबतु किंनरकण्ठि ! वाचम् ॥ ४ ॥

अथवेति । एतद् = मत्कण्ठे त्वद्बाहर्पणं, दूरे = विप्रकृष्टे, तस्य का वार्तेति भावः । आलापसंविभागस्याऽपि = आभाषणभागस्याऽपि, अभाजनम् = अपात्रम् । भाजनशब्दोऽयमजहल्लिङ्गः । यस्त्वदाभाषणाऽमृतस्याऽप्यभाजनं सोऽहं मन्दपुण्यः क तवाऽऽलिङ्गनपात्रं भवेयमिति भावः ।

दग्धमिति । मलयाऽनिलचन्द्रपादैः चिराय दग्धं वपुः परिरभ्य न निर्वापितं नाम । तु हे किन्नरकण्ठि ! आमत्तकोकिलरुतव्यथिता श्रुतिः अद्य हृद्यां वाचं पिबत्वित्यन्वयः । मलयाऽनिलचन्द्रपादैः = दक्षिणसमीरणेन्दुकिरणैः, कामोद्दीपकैरिति भावः । चिराय = बहुकालपर्यन्तं, 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिराऽर्थकाः ।' इत्यमरः । दग्धं = संतप्तं, वपुः = शरीरं, ममेति शेषः । परिरभ्य=परिरम्भणं कृत्वा, आलिङ्ग्येत्यर्थः । न निर्वापितं तु = निवृत्तिं न नीतमेव, नोपशमितमेवेति भावः । नामेति सत्ये । तु = परन्तु, हे किन्नरकण्ठि=हे किंपुरुषसमस्वरशालिनि कण्ठस्य कण्ठस्वरे लक्षणा । किन्नरस्येव कण्ठो यस्याः सा किन्नरकण्ठी, तत्सम्बुद्धौ । 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' इति ङीप् । आमत्तकोकिलरुतव्यथिता = आ ( समन्तात् ) मत्ताः ( मदयुक्ताः ) ये कोकिलाः (पिकाः) तेषां रुतेन (शब्देन, कुहूरवेणेति भावः) व्यथिता ( पीडिता, मदनोद्दीपनेनेति भावः ) । श्रुतिः = कर्णः, मदीय इति शेषः । अद्य = अस्मिन्समये । हृद्यां = हृदयप्रियां, 'हृदयस्य प्रिय' इति यत् 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदयस्य हृदादेशः । 'अभीष्टेऽभीप्सितं हृद्यं दयितं वल्लभं प्रियम् ।' इत्यमरः । वाचं=वाणीं, त्वदीयामिति शेषः । पिबतु=पानं करोतु लक्षणया–मदीयः कर्णः परमाऽऽनन्दपूर्वकं त्वद्वाचं शृणोत्विति भावः । त्वयाऽऽलिङ्गनं न प्रदेयं यदि, तदा मधुराभाषणेन जनोऽयं कृतार्थनीय इति निगूढाशयः । अत्र मलयाऽनिलचन्द्रपादानां दाहरूपकार्यं प्रति आमत्तकोकिलरुतस्य व्यथां प्रति विरुद्धत्वप्रतीत्या कान्तावियोगेन समाधानाद्विरोधाभासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

अथवा यह बात दूर रहे। कैसे यह जन तुम्हारे आभाषणका भी पात्र नहीं हुआ?

मलयवायु और चन्द्रकिरणोंसे बहुत समय तक जले हुए मेरे शरीरको तुमने भले ही शीतल नहीं बनाया। परन्तु हे किन्नरकण्ठि ! मदमत्त कोकिलोंके

अवलोकिता—अयि अनिर्वहणशीले, यदिदानीं मुहूर्तमात्रान्तरितमाधवा दुर्मनायमाना मम पुरतो भणसि 'चिरायत आर्यपुत्रः। अपि नाम कियच्चिरेण प्रेक्षिष्ये, येन पुनर्विवर्धिताशेषसाध्वसा विस्मृतनिमेषविघ्नमवलोकयन्त्येवं भणिष्यामि। द्विगुणितावेष्टनपरिरम्भेण संभावयिष्य' इति। स एवायं परिणामः? (अइ अणिव्वहणसीले, जं दाणिं मुहुत्तमेत्तन्दरिदमाहवा दुम्मणाअन्ती मह पुरदो भणासि। 'चिराअदि अज्जउत्तो। अवि णाम किअच्चिरेण पेक्खिस्सं, जेण पुणो विवड्ढिआसेससज्झसा विसुमरिअणिमेसविग्घं ओलोअन्ती एव्वं भणिस्सं। दुउणिआवेट्ठणपरिरम्भणेण संभावइस्सं' त्ति। स जेव्व अअं परिणामो?)

---

अवलोकितेति। हे अनिर्वहणशीले=अनिर्वाहस्वभावे!, अविद्यमानं निर्वहणम् (अभीष्टप्रतिपादनम्) यस्य तत्। तादृशं शीलं (स्वभावः) यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ। अभीष्टं माधवं प्राप्याऽपि वामस्वभावे इति भावः। मुहूर्तमात्राऽन्तरितमाधवा=मुहूर्तमात्रं (कंचित्क्षणमेव) अन्तरितः (व्यवहितः) माधवः यस्याः सा। अत एव—दुर्मनायमाना=दुर्मना इवाऽऽचरन्ती, खेदमनुभवन्तीति भावः। 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इति क्यङन्ताल्लटः शानजादेशः। आर्यपुत्रः=मत्कान्तः। चिरायते=चिरमिवाचरति, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इति क्यङन्ताल्लट्। 'चिरयती'ति पाठे चिरं करोति विलम्बं करोतीति भावः। 'तत्करोति तदाचष्ट' इति णिजन्ताल्लट्। कियच्चिरेण=कियता चिरेण (चिरकालेन), विलम्बेनेति भावः। विवर्धिताऽशेषसाध्वसा=विवर्धितं (वृद्धिं प्राप्तम्), 'विच्छर्दितम्' इति पाठे त्यक्तमित्यर्थः, अशेषं (समस्तम्) साध्वसं (भयम्) यस्याः सा। विस्मृतनिमेषविघ्नं=विस्मृतः (विस्मृतिविषयीकृतः) निमेषः (अक्षिस्पन्दकालः) एव विघ्नः (अन्तरायः) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। अवलोकयन्ती=पश्यन्ती, निर्निमेषं वल्लभाऽऽवलोकनं कुर्वतीति भावः। एवम्=इत्थम्। द्विगुणिताऽऽवेष्टनपरिरम्भेण=द्विगुणितं (द्विगुणीकृतम्) यत् आवेष्टनम् (आवटनम्) तदेव परिरम्भः (आलिङ्गनम्), तेन। सम्भावयिष्ये=सम्भावितं (समादृतम्) करिष्ये, कान्तमिति शेषः। अयम्=

---

शब्दोंसे पीड़ित मेरा कान आज तुम्हारी हृदयप्रिय वाणीका पान करे॥ ४॥

अवलोकिता—मालति! तुम्हारा स्वभाव आरब्ध कर्मको समाप्त करनेवाला नहीं है। जो अभी कुछ समय तक माधवजी व्यवधान होनेपर भी मेरे सामने कहती हो—'आर्यपुत्र विलम्ब कर रहे हैं। कितने देरके बाद मैं उन्हें देखूंगी, जिससे कि फिर समस्त भयके विवर्धित होनेसे निमेषरूप विघ्नको भी भूलकर

( मालती सासूयमिव तां पश्यति )

माधवः—( स्वगतम् ) अहो ! भगवत्याः प्रथमान्तेवासिन्याः सर्वतोमुखं वैदग्ध्यमक्षय्यसुभाषितरत्नसंचारसंस्करणम् । (प्रकाशम्) प्रिये, सत्यमवलोकिता वदति ।

( मालती मूर्धानं चालयति )

---

ष्पः, परिणामः=परिपाकः, आलापमात्रेणाऽपि कान्तस्याऽप्रतिष्ठा । स एव=प्रागुक्तप्रकार एव ?, काक्का प्रश्नरूपोऽर्थो व्यज्यते । मत्पुरतः प्रागेवमङ्गीकृतस्य स एवाऽयमाश्लेषाऽवसरस्य परिणामो यदधुना आलापमात्रेऽपि कार्पण्यम् ? इति उपालम्भद्योतकः प्रश्नो व्यज्यते ।

मालतीति । साऽसूयमिव = असूयासहितमिव, गुणोऽपि दोषारोपसहितमिवेति भावः । स्वसमंप्रकाशनादिति शेषः । इवपदेनाऽसूयाप्रकाशनं कृत्रिममेवोन्नीयते कान्ताऽन्तिके कान्तविषयकप्रणयप्रकाशनस्येष्टत्वादिति बोध्यम् ।

माधव इति । पुस्तकान्तरे 'स्वगतमि'त्यस्य स्थाने 'अपवार्ये'ति पाठान्तरम् । भगवत्याः = कामन्दक्याः । प्रथमाऽन्तेवासिन्या = प्रधानशिष्याः, सर्वतोमुखं= सर्वतोगामि, वैदग्ध्यं=नैपुण्यम् । अक्षय्यसुभाषितरत्नसंचारसंस्करणम्=अक्षय्यः (क्षेतुमशक्यः, 'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे'इति याऽन्तादेशनिपातः ) सुभाषितरत्नानां ( नवनवस्फूर्तिशोभनभाषितानामेव मणीनाम् ) यः सञ्चारः (सञ्चारणं, यत्र तत्र कार्याऽनुकूलत्वेन निवेशनमित्यर्थः ) तस्य संस्करणं ( संस्कारः, अग्राम्यतापादनमित्यर्थः ) । 'अक्षयश्च सुभाषितरत्नकोषः' इति पुस्तकान्तरपाठः ।

मालतीति । मालती—न मयैवमुक्तमिति निषेधद्योतनाऽर्थं शिरश्चालयति । 'तिर्यक्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । 'निर्बध्यमाना तु शिरःकंपेन प्रतिवचनं दद्याती'ति वात्स्यायनः ।

---

ऐसा कहूँगी और द्विगुणित आवेष्टनवाले आलिङ्गनसे उनका आदर करूँगी'। उनपर यह वही परिणाम है ?

( मालती जैसे असूयाके साथ उसे देखती है )

माधव--( मन ही मन ) अहो ! भगवतीकी प्रधान शिष्याकी सब विषयोंमें रहनेवाली चातुरी और अक्षय्य सुभाषित रत्नोंके निवेशनका संस्कार है । (सुनाकर) प्रिये ! अवलोकिता सच्ची बात कह रही है ।

( मालती शिर हिलाती है । )

माधवः—शापितासि मम लवङ्गिकावलोकितयोश्च जीवितेन यदि मे न कथयसि।

मालती—नाहं किमपि जानामि। ( इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति ) ( णाहं किं वि जाणामि )

माधवः—अहो! अनवसितार्थरम्यवचसश्चारुता। ( सहसा निरूप्य ) अवलोकिते, किमेतत्।

वाष्पाम्भसा मृगदृशो विमलः कपोलः
प्रक्षाल्यते सपदि, राजत एव यस्मिन्।

---

माधव इति। शापिता=शपथीकृताऽसि। मे=मह्यं, 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी। पुस्तकान्तरे तु 'वाचे'ति पाठः।

मालतीति। लज्जां नाटयति=कुमारीभावसुलभां त्रपामभिनयति।

माधव इति। अनवसिताऽर्थरम्यवचसः=अनवसितः ( असमाप्तः ) अर्थः ( अभिधेयः) यस्य तत् तस्य रम्यवचसः (सुन्दरवचनस्य)। पुस्तकान्तरे तु-'अनवसिताऽर्थमन्थरस्य वचस' इति पाठान्तरं तत्र—अनवसिताऽर्थम् ( असमाप्ताऽर्थम् ) अत एव मन्थरस्य वचस इति पाठान्तरं तत्र—अनवसिताऽर्थम् ( असमाप्ताऽर्थम् ) अत एव मन्थरं ( मन्दम् ) तस्येत्यर्थः। 'नाऽहं'मित्यादिवाक्यस्येति भावः। चारुता= मनोहरता।

वाष्पाऽम्भसेति। मृगदृशो विमलः कपोलो वाष्पाऽम्भसा सपदि प्रक्षाल्यते। यस्मिन् गण्डूषपेयं कान्त्यमृतं पिपासुरिव निवेशितमयूखमृणालदण्ड एव इन्दू राजत इत्यन्वयः। मृगदृशः=हरिणलोचनायाः, मालत्या इत्यर्थः। विमलः=निर्मलः, स्वभावत एवेति शेषः। विगतं मलं यस्मात्सः। कपोलः=गण्डः, एक इति शेषः। वाष्पाऽम्भसा=नयनजलेन, सपदि=सद्यः, 'नाऽहं'मित्यादिवचनोच्चारणाऽनन्तरमेवेति भावः। प्रक्षाल्यते=प्रक्षालितः क्रियते, अस्य को हेतुरिति शेषः। यस्मिन्=

---

माधव—मुझे नहीं कहोगी तो तुम्हें मेरे, लवङ्गिका और अवलोकिताके जीवनकी कसम है।

मालती—मैं कुछ भी नहीं जानती हूं ( ऐसा आधा कहनेपर लज्जाका अभिनय करती है। )

माधव—अहो! असमाप्त अर्थवाले सुन्दर वचनकी मनोहरता। ( सहसा देखकर ) अवलोकिते! यह क्या है?

मृगलोचना मालतीका निर्मल, कपोल, आँसूके जलसे तत्क्षण प्रक्षालित हो रहा

गण्डूषपेयमिव कान्त्यमृतं पिपासु-
रिन्दुर्निवेशितमयूखमृणालदण्डः ॥ ५ ॥

अवलोकिता—सखि, किमिदानीमुच्चलितबाष्पोत्पीडं रुद्यते ? ( सहि, किं दाणिं उच्चलिअबाहुप्पीडं रोदिअदि ? )

मालती—सखि, कियच्चिरं लवङ्गिकाया असंनिधानदुःखमनुभविष्यामि । प्रवृत्तिलाभोऽपि तस्या दुर्लभः । (सहि, केच्चिरं लवङ्गिआए असण्णिहाणदुक्खं अनुहविस्सं । पउत्तिलाहो वि से दुल्लहो )

---

कपोले । गण्डूषपेयं=गण्डूषेण ( मुखपूरणेन, 'गण्डूषो मुखपूर्तौभपुष्करप्रसृताऽञ्जलिः ।' इति रुद्रः) पेयं (पातव्यं पानयोग्यमिति भावः), कान्त्यमृतं=(कान्तिः=कपोलशोभा एव, अमृतं=पीयूषं, तत् ) पिपासुरिव=पातुमिच्छुः सन्निव, सन्नन्तात् 'पा पाने' इति धातोः 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युप्रत्ययः । निवेशितमयूखमृणालदण्डः= निवेशितः ( स्थापितः कपोल इति शेषः ) मयूखः ( स्वकिरण एव ) मृणालदण्डः ( बिसकाण्डः ) येन सः । एषः=अयम्, इन्दुः=चन्द्रः, राजते=शोभते । मालत्या नयनजलप्रक्षालिते कपोले प्रतिबिम्बितश्चन्द्रस्तस्याः कपोलशोभायाः पानाऽभिलाषीव प्रतीयत इति भावः । अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५ ॥

अवलोकितेति । उच्चलितबाष्पोत्पीडम्=उच्चलितः ( तद्गतः 'उच्छुलित' इति पाठान्तरेऽप्ययमेवार्थः, तत्र उत्पूर्वकात् 'शल गतौ' इति धातोः क्तप्रत्ययः ) बाष्पोत्पीडः ( अश्रुसमूहः ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा । किं=किमर्थम् ।

मालतीति । अतः परं 'जनान्तिकम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । असन्निधानदुःखम्=असामीप्यजनिता पीडा । तस्याः=लवङ्गिकायाः । प्रवृत्तिलाभोऽपि=उदन्तप्राप्तिरपि, अपिपदेन तस्या लाभस्य का कथा, इत्यर्थः प्रतीयते ।

---

है । जिस ( कपोल ) में गण्डूषद्वारा कान्तिरूप अमृतको पान करनेकी इच्छा कर जैसे चन्द्रमा अपने किरणरूप मृणालदण्डको स्थापन कर शोभित हो रहे हैं ॥५॥

अवलोकिता—सखि ! इस समय अश्रुधारा गिराकर क्यों रो रही हो ?

मालती—सखि ! मैं कितने अधिक समय तक लवङ्गिकाके समीप न रहनेसे होनेवाले दुःखका अनुभव करती रहूंगी ? उसका समाचार मिलना भी दुर्लभ हो रहा है ।

माधवः—अवलोकिते, किं नामैतत्।

अवलोकिता—तवैव वचनोपन्यासेनैषा लवङ्गिकां स्मृत्वा तस्याः प्रवृत्तिलाभनिमित्तमुत्ताम्यति। ( तुह जेव्व वअणोवण्णासेण एसा लवङ्गिअं सुमरिअ ताए पउत्तिलाहणिमित्तं उत्तम्मिअदि )

माधवः—नन्विदानीमेव हि मया कलहंसः प्रेषितः। गच्छ त्वं प्रच्छन्नमुपगम्य नन्दनावसथप्रवृत्तिमुपलभस्वेति। ( साशङ्कम् ) अवलोकिते, अपि नाम बुद्धरक्षिताप्रयत्नः फलोदर्क एव मदयन्तिकां प्रति स्यात्।

अवलोकिता—महाभाग, प्रथममेव शार्दूलनखरालंकृतस्य मकरन्दस्य मोहविच्छेदं निवेदयन्त्या भगवत्या नियुक्तेन भवता मालत्या समं जीवि-

---

माधव इति। किं नाम = इयं किं कथयतीति भावः।

अवलोकितेति। वचनोपन्यासेन = वागुपस्थापनेन 'शापिताऽसी'त्याकारकवाक्योच्चारणेनेति भावः। तस्याः = लवङ्गिकायाः। प्रवृत्तिलाभनिमित्तं = वृत्तान्तप्राप्त्यर्थम्। उत्ताम्यति = खिद्यते। माधव इति। प्रेषितः = प्रहितः। प्रच्छन्नं = गूढरूपं यथा तथा। नन्दनाऽऽवसथप्रवृत्तिं = नन्दनभवनवृत्तान्तम्। अपि नामेति सम्भावनायाम्। फलोदर्कः = फलम् ( मदयन्तिकामन्दसमागमरूपमस्मदभीष्टम् ) उदर्कः ( उत्तरफलम् ) यस्य सः।

अवलोकितेति। क्वचित् ( कुदो सन्देहो महाणुभावस्स ) 'कुतः सन्देहो महानुभावस्ये'त्यधिकः पाठः। महानुभावस्य = महाप्रभावस्य, भवत इति भावः। मोहविच्छेदं = मूर्च्छाऽपगमं, 'मोहविराममहोत्सवम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र मोहविरामः ( मूर्च्छाऽपगमः ) एव महोत्सवस्तम् इत्यर्थः। भगवत्या = कामन्दक्या।

---

माधव—अवलोकिते! यह बात क्या है?

अवलोकिता—आपके ही शपथ वाक्यके उपस्थापनसे यह लवङ्गिकाको याद कर उसकी खबर पानेके लिए उत्कण्ठित हो रही है।

माधव—'जाओ। तुम गुप्तरूपसे जाकर नन्दनके भवनका वृत्तान्त जान लो' ऐसा कहकर मैंने अभी-अभी कलहंसको भेजा है। (आशङ्काके साथ) अवलोकिते! मदयन्तिकाके प्रति बुद्धरक्षिता का प्रयत्न क्या सफल होगा?

अवलोकिता—महाभाग! पहले ही व्याघ्रके नखोंसे अलङ्कृत मकरन्द जीकी मूर्च्छा हटनेके वृत्तान्तको कहनेवाली मालतीको आपने भगवती ( कामन्दकी )

तेन हृदयं प्रसादीकृतम् । कोऽपि सांप्रतं मदयन्तिकालाभो वर्धयिष्यति । तस्य किमिदानीं पारितोषिकं भविष्यति । ( महाभाअ, पढमं जेव्व सद्दूलणहरालंकिदस्स मअरन्दस्स मोहविच्छेअं णिवेदअन्तीए भअवदीए णिउत्तेण भवदा मालदीए समं जीविदेण हिअअं पसादीकिदं । को वि संपदं मदअन्तिआलाहो वड्ढावेदि । तस्स किं दाणिं पारितोसिअं हविस्सदि )

माधवः—अनुयोक्तव्यमेवानुयुक्तोऽस्मि ( हृदयमवलोक्य ) इयमस्ति मालतीप्रथमदर्शनाभिषङ्गसाक्षिणी कामकाननालंकारस्य लक्ष्मीवतः केसरतरोः प्रसवमाला ।

---

नियुक्तेन = प्रेरितेन । समं = सह । प्रसादीकृतम् = उपायनीकृतम् । मदयन्तिकालाभः = मदयन्तिकाप्राप्तिः, मकरन्दकृतेति शेषः । 'मदयन्तिकालाभेने'ति पुस्तकान्तरपाठः । वर्द्धयिष्यति=वृद्धिभाजं करिष्यति, त्वामिति शेषः । तस्य = मदयन्तिकालाभज्ञापकस्य । पारितोषिकं = परितोषहेतुकमुपायनम् ।

माधव इति । अनुयोक्तव्यमेव=प्रष्टव्यमेव, अनुयुक्तोऽस्मि=पृष्टोऽस्मि । अनुपूर्वको युज्धातुः प्रच्छधातोः समानाऽर्थकः, 'अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा' इति वचनात्तस्याऽपि द्विकर्मकत्वम् । अथ माधवो हृदयजीवितयोः प्रागेव पारितोषिकत्वेन दत्तत्वात्तयोरप्यधिका मद्धृदये केसरस्रगवशिष्यते इति विचार्य—हृदयमवलोक्य = केसरस्रगाधारं वक्षःस्थमालोक्येत्यर्थः । मालतीप्रथमदर्शनाऽभिषङ्गसाक्षिणी = मालत्याः ( मत्प्रियतमायाः ) प्रथमदर्शनेन ( पूर्वविलोकनेन ) योऽभिषङ्गः ( सर्वतोभावेन सङ्गः, अनुरागाऽतिशय इत्यर्थः ) तत्साक्षिणी ( तत्साक्षात्कर्त्री, 'तत्साक्षिण' इति पाठान्तरे केसरतरोर्विशेषणं बोद्धव्यम् ) । कामकाननाऽलङ्कारस्य=मदनोद्यानभूषणस्य । लक्ष्मीवतः=प्रचुरशोभासम्पन्नस्य । प्रशस्ता लक्ष्मीरस्ति यस्य स लक्ष्मीवान्, तस्य । 'तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति मतुप्' इति मतुप्, मोपधत्वात् 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य' इति मस्य वः । केसरतरोः = वकुलवृक्षस्य । प्रसवमाला = कुसुममाल्यम् ।

---

की आज्ञासे अपने जीवनके साथ हृदयको उपहारकी तौरपर दे दिया । इस समय भी किसी प्रकारसे मदयन्तिका का लाभ भी आपको संवर्धित करेगा । इस समय उसका पारितोषिक ( इनाम ) क्या होगा ?

माधव—अवलोकिताने मुझसे पूछनेके योग्य बात ही पूछी है । ( हृदय को देखकर ) मालतीके प्रथम दर्शनसे अतिशय अनुरागकी साक्षिणी कामोद्यानके अलङ्काररूप शोभासम्पन्न वकुलवृक्षकी यह पुष्पमाला है ।

प्रेम्णा मद्ग्रथितेति वा प्रियसखीहस्तोपनीतेति वा
विस्तारिस्तनकुम्भकुड्मलभरोत्सङ्गेन संभाविता।
संप्राप्तेऽप्यथ पाणिपीडनविधौ मां प्रत्यपेताशया
या मय्येव लवङ्गिकेत्यवगते सर्वस्वदायः कृता ॥ ६ ॥

केसरतरोः प्रसवमालाया वैशिष्ट्यं विवृणोति—प्रेम्णेति। या मद्ग्रथिता इति वा प्रियसखीहस्तोपनीता इति वा प्रेम्णा विस्तारिस्तनकुम्भकुड्मलभरोत्सङ्गेन संभाविता। अथ पाणिपीडनविधौ संप्राप्तेऽपि मां प्रति अपेताऽऽशया लवङ्गिका इति अवगते मयि एव या सर्वस्वदायः कृतेत्यन्वयः। या = केसरतरोः प्रसवमाला, मद्ग्रथिता = मद्गुम्फिता, इति वा = अस्माद्धेतोः, प्रियसखीहस्तोपनीता = प्रियसख्याः (अभीष्टवयस्यायाः, लवङ्गिकाया इत्यर्थः) हस्तेन (करेण) उपनीता (आनीता सती) इति वा = अस्माद्धेतोश्च। प्रेम्णा = प्रणयेन। विस्तारिस्तनकुम्भकुड्मलभरोत्सङ्गेन = विस्तारी (विस्तारयुक्तः) स्तनकुम्भकुड्मलयोः (कुचकलशमुकुलयोः, स्तनौ कुम्भाविवेति स्तनकुम्भौ, अत्र कुम्भशब्देन स्तनयोः स्थूलत्वं कुड्मलशब्देन वर्धिष्णुता च द्योत्यते। स्तनकुम्भौ कुड्मलाविवेति स्तनकुम्भकुड्मलौ, तयोः। उभयत्राऽपि 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः) भरः (भारः) यस्मिन्सः, एतादृशो य उत्सङ्गः (क्रोडम्), तेन। संभाविता = गौरवं नीता, स्वाऽभीष्टाऽर्थसाधकत्वेनेति भावः। अनया (मालत्या) इति शेषः। अथ = अनन्तरं, पाणिपीडनविधौ = विवाहविधाने, नन्दनेन सहेति शेषः। संप्राप्तेऽपि = उपस्थितप्रायेऽपि, मां प्रति = वल्लभस्य मम प्राप्तिं प्रतीति भावः। अपेताऽऽशया = निराशया, अपगता आशा यस्याः सा, तया। लवङ्गिका इति = इयं मम सखी लवङ्गिका इति। अवगते = ज्ञाते, मयि एव = माधवे एव मयि एव, लवङ्गिकारूपेण ज्ञाते सति, अत्र षष्ठाऽङ्कस्थिता कथाऽनुसन्धेया। या=केसरतरोः प्रसवमाला, बकुलमालेत्यर्थः। सर्वस्वदायः कृता = सर्वस्वदानस्थानीया विहितेति भावः। अत्रोद्देश्यरूपायाः केसरतरुप्रसवमालायाः अनुरोधेन कृतेति स्त्रीत्वनिर्देशः। पुस्तकान्तरे तु 'सर्वस्वदायीकृता' इति पाठः। मम जीवनं हृदयं चेति द्वयमपि मालत्यै सम-

जो बकुलमाला मैंने गुम्फन की है इस कारणसे और प्रियसखी लवङ्गिकाके हाथसे यह लायी गयी है इस कारणसे भी प्रियतमा मालतीने जिसे प्रेमसे कुचकलशरूप कुड्मलोंके भारवाले क्रोडमें रखकर गौरवान्वित किया। अनन्तर मालतीने नन्दनके साथ विवाहके उपस्थितप्राय होनेपर भी मेरी प्राप्ति में निराश होकर मुझे 'यह लवङ्गिका है' ऐसा जानकर ही उसे सर्वस्वदायके स्थानपर रक्खा ॥ ६ ॥

अवलोकिता—सखि मालति, वल्लभा खलु त इयं बकुलमाला। एषेदानीं परस्य हस्तं गमिष्यति। (सहि मालदि, वल्लहा क्खु दे इअं बउलमाला। एसा दाणि परस्स हत्थं गमिस्सदि)

मालती—प्रियं प्रियसख्युपदिशति। अवलोकिते, उभयमपि त्वमेवोपदिश। (पिअं पिअसही उवदिसदि। अवलोइदे, उभअं वि तुमं जेव्व उवदिस)

अवलोकिता—कथं पदशब्द इव। (कहं पदसद्दो विअ)

माधवः—(नेपथ्यादिमुखमवलोक्य) अये, कलहंसः संप्राप्तः!

मालती—दिष्ट्या वर्धसे मदयन्तिकालाभेन। (दिट्ठिआ वड्ढसि मदअन्तिआलाहेण)

---

र्पितम्। अथाऽवशिष्टा वकुलमालेयं मद्हृदयेश्वर्या मालत्याः सर्वस्वरूपाऽस्ति सैव मदयन्तिकालाभज्ञापकाय पारितोषिकत्वेन प्रदेया भविष्यतीति भावः। अत्र 'विस्तारिस्तनकुम्भकुड्मलभरोत्सङ्गेने'त्यत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥६॥

अवलोकितेति। वकुलमाला = केसरमाल्यम्, इतः परं 'ततोऽवहिता भवे'ति पुस्तकान्तरपाठः। अवहिता = साऽवधानेत्यर्थः। परहस्तगता = परस्य (त्वदन्यस्य, प्रियनिवेदकस्येति भावः) हस्तं (करम्) गता (प्राप्ता), तदद्य त्वमेव प्रियनिवेदिका भवेत्यभिप्रायः।

मालतीति। प्रियम्=अभीष्टम्। त्वदुक्तं मयाऽनुष्ठेयमिति भावः। उभयमपि = द्वयमपि, कः प्रियं निवेदयिष्यति, किमहं ब्रूयामिति भावः।

अवलोकितीति। पदशब्द इव = चरणसंचारध्वनिरिव, श्रूयत इति शेषः।

माधव इति। अये = आश्चर्यद्योतकमव्ययमिदम्।

मालतीति। दिष्ट्या = भाग्येन। मदयन्तिकालाभेन = मकरन्दस्य मदयन्तिकाविवाहेनेति भावः। पुनर्वकुलमालालाभाशया मालत्या माधवं प्रति उक्तिरियम्।

---

अवलोकिता—सखि मालति! यह वकुलमाला तुम्हारी प्यारी है। यह इस समय दूसरेके हाथमें जायगी।

मालती—प्रियसखी प्रियवचनका उपदेश करती है। दोनों बातोंका (कौन प्रियवचनका निवेदन करेगा? और मैं क्या बोलूं?) तुम ही उपदेश करो।

अवलोकिता—कैसे पदध्वनिके सदृश शब्द सुनाई दे रहा है?

माधव—(नेपथ्यके सम्मुख देखकर) अहो! कलहंस आ गया है।

मालती—भाग्यसे मदयन्तिकाके लाभसे आपकी समृद्धि हो रही है।

माधवः—( सहर्षं परिष्वज्य ) प्रियं नः। इति बकुलमालां कण्ठे ददाति )

अवलोकिता—निर्व्यूढो भगवत्याः संभावनाभारो बुद्धरक्षितया। ( णिव्वूढो भअवदीए संभावणाभारो बुद्धरक्खिदाए )

मालती—( सहर्षम्) अहो ! अस्माभिरपि प्रियसखी लवङ्गिका दृश्यते। ( इत्युत्तिष्ठति ) ( अम्महे ! अम्हेहिं पि पिअसही लवङ्गिआ दीसइ। )

( ततः प्रविशति संभ्रान्तः कलहंसो बुद्धरक्षिता लवङ्गिका मदयन्तिका च )

सर्वाः—परित्रायतां महाभागः। अर्धमार्गे खलु नगररक्षिपुरुषाभियोगो मकरन्दस्य जातः। ततस्तत्कालमिलितेन कलहंसकेन समं वयमनुप्रषिताः। ( परित्ताअदु महाभाओ। अद्धमग्गे क्खु णअररक्खिपुरिसाभिओओ मअ-

---

माधव इति। परिष्वज्य = आलिङ्ग्य, प्रियनिवेदिकां मालतीमिति शेषः। प्रियम् = अभीष्टं, मदयन्तिकामकरन्दोद्वाहनिवेदनमिति शेषः। कण्ठे = गले, मालत्या इति शेषः। मालतीकण्ठे बकुलमालापरिधापनमेव माधवस्य प्रियनिवेदने पारितोषिकप्रदानं बोध्यम्।

अवलोकितेति। भगवत्याः = कामन्दक्याः, संभावनाभारः = प्रतिष्ठाभरः, विवाहार्थं मदयन्तिकामकरन्दयोर्दूत्यव्यापार इति भावः। निर्व्यूढः = निर्वाहं नीतः, साफल्यं प्रापित इति भावः।

मालतीति। अम्महे ( अहो ) = हर्षविस्मयद्योतकमव्ययमिदम्। अपिः = संभावनायाम्। इदमपि संभाव्यत इति शेषः।

तत इति। संभ्रान्तः = संभ्रमयुक्तः, संत्रस्त इति भावः।

सर्वा इति। पुस्तकान्तरे 'लवङ्गिके'ति पाठः। नगररक्षिपुरुषाऽभियोगः = नगररक्षिपुरुषैः ( पुररक्षकजनैः ) अभियोगः ( प्रतिरोधः )। तत्कालमिलितेन = तत्कालं ( तत्समयम् ) मिलितेन ( सङ्गतेन ), 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया,

---

माधव—(हर्षके साथ मालतीको आलिङ्गन कर) यह संवाद हमें अभीष्ट है। ( ऐसा कहकर बकुलमालाको मालतीके कण्ठमें देता है। )

अवलोकिता—बुद्धरक्षिताने भगवतीके दौत्यभावका निर्वाह किया।

मालती—( हर्षके साथ ) अहो ! हमलोग भी प्रियसखी लवङ्गिकाको देखेंगी। ( ऐसा कहकर उठती है। )

(तब संत्रस्त कलहंस, बुद्धरक्षिता, लवङ्गिका और मदयन्तिका ये सब प्रवेश करते हैं।)

सब स्त्रियाँ—महाभाग रक्षा करें। आधे मार्गमें नगरकी रक्षा करनेवाले

रन्दस्स जादो । तदो तक्कालमिलिदेण कलहंसएण समं अम्हे अणुप्पेसिदाओ )

कलहंसः—यथेतोमुखागतैरस्माभिः कलकलः श्रुतः, तथा तर्कयाम्यन्यदपि पारक्यं बलमुपागतमिति । ( जह इदोमुहागदेहिं अम्हेहि कलअलो सुदो, तह तक्केमि अण्णं वि पारक्कअं बलं उवागदं त्ति )

मालत्यवलोकिते—हा धिक् ! सममेव हर्षोद्वेगसंभेद उपनतः । ( हद्धि ! समं जेव्व हरिसुव्वेअसंभेदो उवणदो )

माधवः—सखि मदयन्तिके, स्वागतम् । अनुगृहीतमस्मद्गृहं भवत्या । ननु स्वस्था भवन्तु भवत्यः । एकाकिनोऽपि बहुभिरभियोग इति यत्किंचिदेतद्वयस्यस्य ।

---

'अत्यन्तसंयोगे चे'ति द्वितीयातत्पुरुषः । समं=सह । अनुप्रेषिताः=अनुप्रेरिताः, मकरन्देन भवदन्तिके वृत्तान्तज्ञापनायेति शेषः ।

कलहंस इति । पारक्यं=परकीयं, सैन्यमित्यर्थः । देशीशब्दोऽयम् ।

मालत्यवलोकिते इति । सममेव=युगपदेव । हर्षोद्वेगसंभेदः=आनन्दभयसंमिश्रणम् । उपनतः=उपागतः । मदयन्तिकाप्राप्त्या हर्षः, मकरन्दस्य पुररक्षकपुरुषैरभियोगेन उद्वेग इति भावः ।

माधव इति । स्वागतं=शोभनमागतम् ( आगमनम् ), भवत्या इति शेषः । नन्विति सम्बोधने । स्वस्थाः=प्रकृतिस्थाः, उद्वेगरहिता इति भावः । एकाकिनोऽपि=एककस्याऽपि, सहायरहितस्य, वयस्यस्य=मित्रस्य, मकरन्दस्याऽपीति भावः । यत्किञ्चिदेतत्=उपेक्षणीयमिति भावः । बाहुबलशालिनि तत्र न किमपि भेतव्यमिति भावः ।

---

पुरुषोंने मकरन्दको रोक लिया । तब उन्होंने उसी समय मिले हुए कलहंसके साथ हमलोगोंको भेजा है ।

कलहंस—इस ओर आनेवाले हमलोगोंने जैसा कोलाहलका शब्द सुना है उस प्रकारसे मैं तर्कना करता हूं कि और भी परकीय सैन्य आ गये हैं ।

मालती और अवलोकिता—हाय ! धिक्कार है । एक ही बार हर्ष और उद्वेगका संमिश्रण आ पड़ा है ।

माधव—सखि मदयन्तिके ! स्वागत है । आपने हमारे गृहको अनुगृहीत किया आप लोग स्वस्थ हों । अकेले होनेपर बहुत लोगोंके साथ मित्रका जो यह संघर्ष हो रहा है, यह उनके लिए सामान्य बात है ।

हरेरतुलविक्रमप्रणयलालसः साहसे
स एव भवति क्वणत्कररुहप्रचण्डः सखा ।
स्फुटत्करटकोटरस्खलितदानसिक्तानन-
द्विपेश्वरशिरःस्थिरास्थिदलनैकवीरः करः ॥ ७ ॥

तदहमपि विक्रान्तिपूतं विलसतः प्रियसुहृदः प्रत्यनन्तरीभवामि ।
विकटं परिक्रम्य कलहंसकेन सह निष्क्रान्तः )

भयाऽभावमेव प्रतिपादयति—हरेरिति । हरेः साहसे अतुलविक्रमप्रणयलालसः क्वणत्कररुहप्रचण्डः स्फुटत्करटकोटरस्खलितदानसिक्ताऽऽननद्विपेश्वरशिरःस्थिराऽस्थिदलनैकवीरः स एव करः सखा भवतीत्यन्वयः । हरेः=सिंहस्य, साहसे=दुष्करकर्मणि विधेये, क्वचित् 'आहव' इति पाठान्तरं, तस्य संग्राम इत्यर्थः । अतुलविक्रम प्रणयलालसः=अतुलः ( अनुपमः, असाधारण इति भावः ) एतादृशो यो विक्रमः ( पराक्रमः ) तस्मिन्प्रणयः ( प्रीतिः ) तत्र लालसा ( अत्यर्थाऽभिलाषः ) यस्य सः । क्वचित्'………'लालसस्ये'ति हरिविशेषणरूपः पाठः । तथा क्वणत्कररुहप्रचण्डः=क्वणन्तः ( शब्दायमानाः गजाऽस्थिग्रन्थ्यादिषु संघर्षणेति शेषः ) ये कररुहाः ( नखाः ) तैः प्रचण्डः ( भीषणः ) । एवं—स्फुटत्करटकोटरस्खलितदानसिक्ताऽऽननद्विपेश्वरशिरःस्थिराऽस्थिदलनैकवीरः=स्फुटन् ( विकसन् ) यः करटः ( इभगण्डः, 'काकेभगण्डौ करटौ' इत्यमरः ) तस्मिन्यत् कोटरं ( छिद्रम् ) तस्मात्स्खलितं ( च्युतम् ) यद्दानं ( मदजलम् ) तेन सिक्तम् ( उक्षितम् ) आननं ( मुखम् ) यस्य सः, एतादृशो यो द्विपेश्वरः ( गजेन्द्रः ) तस्य शिरसि ( मूर्ध्नि ) स्थिरं ( दृढम् ) यदस्थि ( कीकसम् ) तस्य दलने ( विदारणे ) एकवीरः ( एकः=अद्वितीयः, वीरः=विक्रान्तः ) । स एव=प्रसिद्ध एव, पुराऽसकृदनुभवविषयीकृत इति भाव । करः=हस्तः, सखा=सहायकः, भवति=वर्तते । गजेन्द्रविदलने सिंहस्य यथा शत्रुविमर्दने महापराक्रमस्य मकरन्दस्य आत्मकर एव सहायको भवति न तत्र सहायकाऽन्तराऽपेक्षेति मदयन्तिकात्रासनिरासार्थेयं माधवोक्तिः । अत्र दृष्टान्ताऽलङ्कारो गम्यः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ ७ ॥

तदहमिति । विक्रान्तिपूतं=विक्रान्त्या ( विक्रमेण ) पूतं ( पवित्रम् ) यथा

सिंहके साहसमें अनुपम पराक्रमविषयक प्रीतिमें अतिशय अभिलाषवाला, शब्द करनेवाले नखोंसे भीषण, विकसित होनेवाले हाथीके कपोलमें रहे हुए छिद्रसे गिरे हुए मदजलसे सिक्तमुखवाले गजेन्द्रके शिरमें विद्यमान कठोर हड्डीके विदारणमें अद्वितीय वीर प्रसिद्ध हाथ ही सहायक होता है ॥ ७ ॥

इस कारणसे मैं भी पराक्रमसे पवित्र होनेके प्रकारसे शोभित होनेवाले

अवलोकितादयः—अपि नामाप्रतिहतौ प्रतिनिवर्तिष्येते महानुभावौ। ( अवि णाम अप्पडिहदा पडिणिव्वट्टिस्सन्दि महाणुहावा )

मालती—सख्यौ बुद्धरक्षितावलोकिते, त्वरितं गत्वा भगवत्या इमं वृत्तान्तं निवेदयतम्। त्वमपि सखि लवङ्गिके, त्वरितं विज्ञापयार्यपुत्रम्। यदि तावद्युष्माकं वयमनुकम्पनीयास्ततोऽप्रमत्तं परिक्रामतेति। ( सहिओ बुद्धरक्खिदावलोइदाओ, तुरिअं गदुअ भअवदीए वुत्तन्दं णिवेदेहो। तुमं वि सहि लवङ्गिए, तुरिअं विण्णावेहि अज्जउत्तं। जइ दाव तुम्हाणं अम्हे अणुकम्पणीआओ तदो अप्पमत्तं परिक्कमेद्धति )

( मालतीमदयन्तिकावर्जं सर्वास्तथेति निष्क्रान्ताः )

---

स्यात्तथा, 'विक्रमाऽनुरूपम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र आत्मपराक्रमयोग्यं यथा तथेत्यर्थः। विलसतः = शोभमानस्य। प्रत्यनन्तरीभवामि = द्वितीयो भवामीत्यर्थः।

अवलोकितादय इति। 'अवलोकितालवङ्गिकाबुद्धरक्षिता' इति पाठान्तरम्। अपिः = प्रश्नाऽर्थकः, अप्रतिहतौ = प्रतिघातरहितौ, अविनष्टौ इत्यर्थः 'अनाहतौ' इति पुस्तकान्तरपाठः। महाऽनुभावौ = महाप्रभावौ, माधवमकरन्दाविति भावः। प्रतिनिवर्तिष्येते = प्रत्यागमिष्यतः।

मालतीति। भगवत्यै = कामन्दक्यै, 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी। निवेदयतं = ज्ञापयतम्। युष्माकम् = आदराऽर्थकं बहुवचनम्। 'अनुकम्पनीया' इति कृत्यप्रत्ययान्तपदयोगे 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति षष्ठी। अप्रमत्ताः=प्रमादरहिताः, 'अप्रमत्तम्' इति क्रियाविशेषणरूपं पाठान्तरम्।

---

प्रियमित्रका निकटवर्ती होता हूं। ( विकटरूपसे पादक्षेप कर कलहंसके साथ निकलता है। )

अवलोकिता आदि—ये दोनों महानुभाव क्या आहत न होकर लौटेंगे ?

मालती—सखि बुद्धरक्षिते ! सखि अवलोकिते ! शीघ्र जाकर भगवतीको इस वृत्तान्तका निवेदन करो। सखि लवङ्गिके ! तुम भी शीघ्र आर्यपुत्रको निवेदन करो कि—'आपको हमपर दया करनी है तो सावधान ( होशियार ) होकर विचरण कीजिए'।

(मालती और मदयन्तिकाको छोड़कर सब लोग 'ऐसा ही करेंगी' कहकर निकलती हैं।)

मालती--हा धिक् ! न ज्ञायते कथमियती वेलातिक्रम्यताम् । भवतु । प्रियसख्या लवङ्गिकायाः प्रतिनिवृत्तिमार्गमवलोकयन्ती स्थास्यामि ( परिक्रामति । साशङ्कम् ) । स्फुरितं मे वाममवामनयनेन ( उपविशति ) । (हद्धि ! ण जाणीअदि कहं इयदी वेला अतिक्कमेम । होदु । पिअसहीए लवङ्गिआए पडिणिउत्तिमग्गं आलोअन्ती चिट्ठिस्सम् । फुरिदं मे वामं अवामणअणेन ।

( ततः प्रविशति कपालकुण्डला )

कपालकुण्डला—आः पापे, तिष्ठ ।

मालती—( सत्रासम् ) हा आर्यपुत्र ! ( इति वाक्स्तम्भं नाटयति ) ( हा अज्जउत्त ! )

कपालकुण्डला—( सक्रोधहासम् ) नन्वाक्रन्द, आक्रन्द ।

---

मालतीति । इयती = इदंपरिमाणा, वेला = कालः, कथं = केन प्रकारेण । अतिक्रम्यताम् = अतिवाह्यताम् । 'लवङ्गिका किं चिरयती'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र किमर्थं विलम्बं करोतीत्यर्थः । प्रतिनिवृत्तिमार्गं = प्रत्यावर्तनपथम् । सखीप्रत्यावर्तनवर्त्माऽवलोकनमेव समययापनोपाय इत्याशयः । अवामनयनेन = दक्षिणचक्षुषा, वामं = कुटिलं यथा स्यात्तथा । स्फुरितं = स्पन्दितम् । स्त्रीणां दक्षिणलोचनस्फुरणस्याऽशकुनत्वादेतेन भाविविपत्तिः सूच्यते ।

अथ समस्तपरिजनरहितायां मालत्यां हरणार्थं बद्धवैरायाः कपालकुण्डलायाः प्रवेशः सूच्यते—तत इति ।

कपालकुण्डलेति । नन्विति सम्बोधने । आक्रन्द = आह्वय, स्वरक्षाऽर्थं रक्षकजनमिति शेषः ।

---

मालती—हा ! धिक्कार है । कैसे इतना समय बिताऊँ ? मैं नहीं जानती हूँ । हो । प्रियसखी लवङ्गिकाके लौटनेके मार्गको देखती हुई रहूंगी । ( पादक्षेप करती है । आशङ्काके साथ ) मेरी दाहनी आँख कुटिलरूपसे फड़क उठी । ( बैठती है । )

( तब कपालकुण्डला प्रवेश करती है । )

कपालकुण्डला--ओह ! पापिनी ! ठहर ।

मालती—( त्रासके साथ ) हा आर्यपुत्र ! ( ऐसा कहकर वाक्य रुकनेका अभिनय करती है । )

कपालकुण्डला--( क्रोध और हास्यके साथ ) अरी ! बुला बुला ।

त्वद्वल्लभः क्व नु तपस्विजनस्य हन्ता
कन्याविटः पतिरसौ परिरक्षतु त्वाम्।
श्येनावपातचकितानवर्तिकेव
किं नेक्षसे? ननु मया कवलीकृतासि ॥ ८॥

यावच्छ्रीपर्वतमुपनीय प्रतिपर्व तिलश एनां निकृत्य दुःखमारिणीं करोमि। ( इति मालतीमादाय निष्क्रान्ता )

त्वद्वल्लभ इति। तपस्विजनस्य हन्ता त्वद्वल्लभः क्व नु? कन्याविटः असौ पतिः त्वां परिरक्षतु। ननु श्येनाऽवपातचकिताऽऽननवर्तिका इव मया कवलीकृता असि! किं न ईक्षस इत्यन्वयः। तपस्विजनस्य=तापसजनस्य, अस्मद्गुरोरघोरघण्टस्येति भावः। न कस्यचिद्वीरजनस्येति शेषः। 'हन्ते'ति कृदन्तपदेन योगे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी। हन्ता=घातकः। त्वद्वल्लभः=त्वत्प्रियः, माधव इत्यर्थः। 'त्वद्वत्सल' इति पाठान्तरं तस्य त्वां प्रति स्नेहवानित्यर्थः। क्व नु=कुत्र वर्तते? कन्याविटः=कुमारीषिङ्गः, कामुकत्वेन कुमारीदूषक इत्यर्थः। असौ=विप्रकृष्टस्थः, पतिः=रक्षकः, माधवः। त्वां=मालतीं, परिरक्षतु=परित्रायताम्, आगत्येति शेषः। ननु=हे मालति!, श्येनाऽवपातचकिताऽऽननवर्तिका=श्येनस्य ( पक्षिणः ) अवपातेन ( आक्रमणेन ) चकितम् ( भीतम् ) आननं ( मुखम् ) यस्याः सा, तादृशी वर्तिका ( क्षुद्रपक्षिणीविशेषः ) इव, 'श्येनाऽवपातचकिता चनवर्तिकेवे'ति व्यस्तः पुस्तकान्तरपाठः। मया=कपालकुण्डलया, क्वचित् 'चिरात्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य बहुदिनाऽनन्तरमित्यर्थः। कवलीकृता असि=ग्रासीकृता असि। किं=किमर्थं, न ईक्षसे=न अवलोकयसि, आत्मानं परित्रातुमिति शेषः। श्येनपाशपतिताया वर्तिकाया इव मत्करगतायास्तव निस्तारो नाऽस्तीति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८॥

यावदिति। प्रतिपर्व=प्रतिसन्धि, पर्व पर्व प्रति। तिलशः=तिलं तिलमिति, शस्प्रत्ययः। 'लवशो लवश' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र लवं लवं कृत्वा इत्यर्थः। एनां=मालतीं, निकृत्य=छित्वा। दुःखमारिणीं=दुःखेन म्रियते तच्छीलेति दुःखमारिणी,

तपस्वी ( अघोरघण्ट ) का हत्यारा तेरा प्यारा ( माधव ) कहाँ है? कुमारी-दूषक वह पति आकर तेरी रक्षा करे। हे मालति! बाजके आक्रमणसे भीत मुखवाली मादाबटेरकी तरह तुझे मैंने ग्रसकर लिया है। तू क्या नहीं देख रही है?॥

इसे श्रीपर्वतमें पहुँचाकर प्रतिपर्व तिलतिलके बराबर काटकर दुःखसे प्राण छोड़नेवाली बनाती हूँ। ( ऐसा कहकर मालतीको लेकर निकलती है। )

मदयन्तिका—अहमपि मालतीमेवानुवर्तिष्ये। (परिक्रम्य) सखि मालति! ( अहं वि मालदीं जेव्व अणुवट्टिस्सं। सहि मालदि! )

लवङ्गिका - ( प्रविश्य ) सखि मदयन्तिके, लवङ्गिका खल्वहम्। ( सहि मदअन्तिए, लवङ्गिआ वखु अहं )

मदयन्तिका—अयि, संभावितस्त्वया महानुभावः? (अइ, संभाविदो तुए महाणुहाओ ? )

लवङ्गिका—नहि नहि। स खलूद्यानवाटनिर्गमादेव कलकलंश्रुत्वा साक्षेपापविद्धविकटनिजोरुदण्डनिष्ठुरं प्रधाव्य परानीकं प्रविष्टः। ततः प्रतिनिवृ-

---

तां, दुःखमरणशीलामित्यर्थः। ताच्छील्ये णिनिप्रत्ययः। 'दुःखमरणाम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। तिलमात्रान्मांसखण्डान्कृत्वा चित्रवधेनैनां दुःखमरणशीलां करोमीति भावः। आदाय = गृहीत्वा, 'आक्षिप्ये'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र बलाद् गृहीत्वेत्यर्थः।

मदयन्तिकेति। अनुवर्तिष्ये = अनुवर्तनं करिष्यामि, 'अनुगमिष्यामी'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य अनुगमनं करिष्यामीत्यर्थः। अथ मदयन्तिका मालतीभ्रमेण लवङ्गिकामाह्वयति—सखि मालतीति।

लवङ्गिकेति। लवङ्गिका खल्वहं = न मालतीति भावः।

मदयन्तिकेति। अयीति सुकुमारसम्बोधने। 'अपी'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य प्रश्नरूपाऽर्थः। महानुभावः = महाप्रभावः, माधव इत्यर्थः। सम्भावितः = प्रतिष्ठितः। मालतीवचननिवेदनेनेति शेषः। काका प्रश्न उन्नीयते।

लवङ्गिकेति। नहि नहि = सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। न सम्भावितो न सम्भावितः। तत्र कारणमुपन्यस्यति—स इति। सः=माधवः। खलु = निश्चयेन। उद्यानवाटनिर्गमात्= उपवनप्राकारनिष्क्रमणात्। साऽऽक्षेपाऽपविद्धविकटनिजोरुदण्डनिष्ठुरं = साक्षेपम् ( कोपवचनसहितं यथा तथा ) अपविद्धः ( ताडितः ) विकटः ( विशालः ) निजः

---

मदयन्तिका—मैं भी मालतीका ही अनुवर्तन करूँगी। ( पादक्षेप कर ) सखि मालति!

लवङ्गिका—( प्रवेशकर ) सखि मदयन्तिके! मैं लवङ्गिका हूँ।

मदयन्तिका—लवङ्गिके! मालतीका सन्देश कहकर महानुभाव ( माधव ) को सम्भावित किया?

लवङ्गिका—नहीं नहीं। उन्होंने उद्यानके प्राकारसे निकलकर ही कोलाहल सुननेके अनन्तर कोपवाक्यके साथ विशाल अपने ऊरुदण्डको ताडन करनेसे

त्तास्मि मन्दभागिनी शृणोमि च गृहे गृहे गुणानुरागनिर्भरस्य पौरलोकस्य हा माधव ! महाभाग हा मकरन्द ! साहसिकेति परिदेवनानि । महाराजः किल मन्त्रिदुहित्रोर्विप्रलम्भवृत्तान्तं श्रुत्वा संजातमत्सरावेगस्तत्क्षणविसर्जितानेकप्रौढपदातिनिवहश्चन्द्रातपशोभितसौधशिखरस्थितः प्रेक्षत इति मन्त्र्यते । ( णहि णहि । सो क्खु उज्जाणवाडणिग्गमादो जेव्व कलअलं सुणिअ साक्खेवाववद्धविअडणिओरुदण्डणिट्ठुरं पधाविअ पराणीअं पविट्ठो । तदो पडिणिउत्तम्हि मन्दभाइणी । सुणोमि अ घरे घरे गुणाणुराअणिब्भरस्स पोरलोअस्स हा माहव महाभाअ हा मअरन्द साहसिअ त्ति परिदेवणाओ । महाराओ किल मन्तिधीआणं विप्पलम्भवुत्तन्दं सुणिअ संजादमच्छरावेओ तक्खणविसज्जिदाणेअप्पोढपदाइणिवहो चन्दादवसोहिदसोहसिहरट्ठिदो पेक्खदि त्ति मन्तिअदि )

---

( स्वीयः ) ऊरुदण्डः ( सक्थिदण्डः ) तेन निष्ठुरं ( कठोरम् ) यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् । निष्ठुरस्थाने 'निर्भरे'ति पाठान्तरे निर्भरम् = अत्यर्थं यथा स्यात्तथेत्यर्थः । प्रधाव्य = अतिशीघ्रं गत्वा । पराऽनीकं = शत्रुसैन्यम् । मन्दभागिनी=अल्पभाग्या, माधवाऽन्तिकं मालतीसंवादप्रतिपादनाऽसामर्थ्यान्मन्दभागिनीत्युक्तिः संगच्छते । गुणाऽनुरागनिर्भरस्य = गुणेषु ( दयादाक्षिण्यादिषु ) माधवमकरन्दयोरिति शेषः । योऽनुरागः ( प्रणयः ) तेन निर्भरस्य ( साऽतिशयस्य ), पुस्तकान्तरे तु 'कातरस्ये'ति पाठस्तस्य भीरोरित्यर्थः' अनिष्टाऽऽशङ्कयेति शेषः । परिदेवनानि=विलापान् । विप्रलम्भवृत्तान्तं=प्रतारणोदन्तम् । सञ्जातमत्सराऽऽवेगः=संजातः ( उत्पन्नः ) मत्सरस्य ( द्वेषस्य ) आवेगः ( उद्वेगः ) यस्य सः । तत्क्षणविसर्जिताऽनेकप्रौढपदातिनिवहः = तत्क्षणं ( तत्कालम् ) विसर्जितः ( प्रेषितः ) अनेकेषां ( बहूनाम् ) प्रौढानां ( परिपक्ववयसाम् ) पदातीनां ( पादचारिभटानाम् ) निवहः ( समूहः ) येन सः । चन्द्राऽऽतपशोभितसौधशिखरस्थितः = चन्द्राऽऽतपेन ( इन्दुप्रकाशेन ) शोभितं ( सञ्जातशोभम् ) यत्सौधशिखरं ( राजसदनाऽग्रभागः ) तस्मिन् स्थितः ( अवस्थितः सन् ) । प्रेक्षते=अवलोकयति, स्वसैन्यैः समं माधवमकरन्दयोः संग्राममिति शेषः । इति=इत्थं, मन्त्र्यते=परिभाषणं क्रियते । इति शृणोमीति पूर्वेण सम्बन्धः ।

---

कठोरताके साथ अतिशीघ्र जाकर शत्रुसेनामें प्रवेश किया । तब मन्दभागिनी मैं लौट आयी हूं । माधव और मकरन्दके गुणोंमें निर्भर नागरिकवर्गके 'हा माधव ! महाभाग साहसिक हा मकरन्द ।' ऐसे विलाप घर घरमें सुन रही हूँ । महाराज दोनों मन्त्रिकन्याओंकी प्रतारणाका वृत्तान्त सुनकर द्वेष और उद्वेगके उत्पन्न होनेसे

मदयन्तिका—हा, हतास्मि मन्दभागिनी। ( हा, हदम्हि मन्दभाइणी )

लवङ्गिका—सखि, मालती पुनः क। ( सहि, मालदी उणा कहिं )

मदयन्तिका—सखि, सा खलु प्रथममेव ते मार्गमवलोकयितुं प्रसृता। पश्चादहं तां न पश्यामि। सा नामोद्यानगहनं प्रविष्टा भवेत्। ( सहि, सा क्खु पढमं जेव्व दे मग्गं ओलोइदुं पसरिदा। पच्चादो अहं तं ण पेक्खामि। सा णाम उज्जाणगहणं पविट्ठा हवे )

लवङ्गिका—सखि, त्वरितमन्विष्यावः। अतिकातरा मे प्रियसख्युपवनस्थितास्मिन्नवसरे न धारयत्यात्मानम्। (सहि, तुरिअं अण्णेसम्ह। अदिकातरा मे पिअसही उववणट्ठिदा इअस्सिं अवसरे न धारेदि अत्ताणं )

लवङ्गिकामदयन्तिके—( त्वरितं परिक्रामन्त्यौ ) सखि मालति, ननु भणामि सखि मालतीति। ( इतस्ततः परिक्रामतः ) ( सहि मालदि, णं भणमि सहि मालदि त्ति )

---

मदयन्तिकेति। मन्दभागिनी = अल्पभाग्या, राज्ञः प्रतिकूलवर्तित्वादिति भावः।

लवङ्गिकेति। कस्मिन् = कुत्र, स्थाने वर्तत इति शेषः।

मदयन्तिकेति। मार्गं = प्रत्यावर्तनवर्त्म। प्रसृता = निर्गता। न पश्यामि = न प्रेक्षे। नामेति सम्भावनायाम्। उद्यानगहनम् = उद्यानस्य ( उपवनस्य ) गहनम् ( तरुलताभिराकीर्णत्वाद्वनप्रायं प्रदेशमित्यर्थः )।

लवङ्गिकेति। अस्मिन्नवसरे=माधवस्य विपत्काल इत्यर्थः। आत्मानं=स्वशरीरम्।

लवङ्गिकामदयन्तिके .ति। ननु=अनुनयाऽर्थकोऽयमत्र कलहंस इति।

---

उसी क्षण प्रौढ पदातिसमूहको भेजकर चन्द्रप्रकाशसे शोभित अट्टालिकासे रहकर उनका युद्ध देख रहे हैं यह बात भी नागरिक लोग कह रहे हैं।

मदयन्तिका—हाय! मैं मन्दभागिनो हतप्राय हो गई हूँ।

लवङ्गिका—सखि! मालती कहाँ है?

मदयन्तिका—सखि! वह पहले ही तुम्हारा मार्ग देखनेके लिए गयी है। पीछे मैं उनको नहीं देख रही हूं। वह उद्यानके गहन प्रदेशमें प्रविष्ट होंगी।

लवङ्गिका—सखि! शीघ्र ढूँढें। अतिशय कातर मेरी सखी ( मालती ) उपवनमें रहती हुई इस विपत्तिके अवसरमें अपनेको नहीं संभाल सकेंगी।

लवङ्गिका और मदयन्तिका—( शीघ्र पादक्षेप करती हुई ) सखि मालति! मैं कहती हूं, सखि मालति! ( इधर-उधर पादविक्षेप करती हैं। )

कलहंसः--(हृष्टः प्रविश्य) दिष्ट्या कुशलेनास्मि निर्गतः संघट्टमार्गात्। हिमाणहे! पश्यामीव निर्मलनिरन्तरोद्वृत्ततरवारिधाराप्रतिफलितचन्द्रकिरणोज्ज्वलत्पिञ्जरितभीषणदर्शनंमदलीलाकलितकामपालविकटभुजदंडापविद्धहलहेलाविस्तारितोर्ध्वक्षुभितकलिन्दतनयास्रोतःसंनिभं विश्रृङ्खलोत्पतितनिर्दयानन्दमकरन्दक्षोभविकलप्रतिरोधप्रतिनिवर्तनोद्धतभ्रमस्तगगनाङ्ग-

कलहंस इति। दिष्ट्या=भाग्येन। कुशलेन=कल्याणेन, संघट्टमार्गात्=संघर्षपथात्, युद्धस्येति शेषः। हिमाणहे=भयहर्षद्योतकोऽयं देशीशब्दः। निर्मलनिरन्तोद्वृत्ततरवारिधाराप्रतिफलितचन्द्रकिरणोज्ज्वलत्पिञ्जरितभीषणदर्शनं=निर्मला (विमला) निरन्तोद्वृत्ता (सततविद्यमाना) या तरवारिधारा (करवालपङ्क्तिः) तस्यां प्रतिफलिताः (प्रतिबिम्बिताः) ये चन्द्रकिरणाः (इन्दुकराः) तै उज्ज्वलत् (दीप्यमानम्) पिञ्जरितं (नैकवर्णपरिपूर्णम्) भीषणं (भयङ्करम्) दर्शनं (विलोकनम्) यस्य, तम्, विशेषणं चैतत् 'पारक्यसमूहम्' इत्यस्य, एवं परत्राऽपि। मदलीलाकलितकामपालविकटभुजदण्डाऽपविद्धहलहेलाविस्तारितोर्द्ध्वक्षुभितकलिन्दतनयास्रोतःसन्निभं=मदलीला (मद्यपानजनितमत्तताविलासः) तत्कलितः (तद्युक्तः) यः कामपालः (बलरामः) तस्य विकटौ (विशालौ) यौ भुजदण्डौ (बाहुदण्डौ) ताभ्याम् अपविद्धं (प्रयुक्तम्) यत् हलं (लाङ्गलायुधम्) तेन हेलया (अनादरेण, क्रीडया अनायासेन वा) विस्तारिता (जातविस्तारा) ऊर्ध्वम् (उपरि) क्षुभिता (सञ्चलिता, हलाऽऽयुधाऽऽकर्षणादिति भावः) पुस्तकान्तरे तु 'विह्वलितोद्वेल्लदुत्तरङ्गे'ति पाठस्तत्र विह्वलिताः=(विक्लवीकृताः), अत एव उद्वेल्लन्तः (उच्चलन्तः, तटोच्छलन्त इति भावः) उत्तरङ्गाः (उन्नतोर्मयः) यस्याः सेत्यर्थः। एतादृशी या कलिन्दतनया (कालिन्दी, यमुनेत्यर्थः) तस्याः स्रोतःसन्निभम् (प्रवाहसदृशम्)। यथा बलरामेण हलाकृष्टा यमुना प्रतीपमागता तथैव नाथमाधवेनाऽपि पारक्यबलं प्रतीपमायातमिति भावः। विश्रृङ्खलोत्पतितनिर्दयानन्दमकरन्दक्षोभविकल-

कलहंस--(प्रसन्न होते हुए प्रवेशकर) भाग्यसे संघर्षमार्गसे कुशलपूर्वक निकल गया हूँ। कैसा आश्चर्य है। निर्मल और निरन्तर विद्यमान तलवारोंकी पङ्क्तिमें प्रतिबिम्बित चन्द्रकिरणोंसे दीप्यमान और अनेक वर्णोंसे परिपूर्ण भयङ्कर दर्शनवाले, मदकी लीलासे युक्त बलरामके विशाल बाहुदण्डोंसे छोड़े गये हल नामके आयुधसे अनायासके साथ विस्तारवाली, ऊपर सञ्चलित यमुनाके प्रवाहके सदृश, स्वच्छन्दतापूर्वक कूदनेवाले और दया तथा आनन्दसे रहित मकरन्दजीके युद्धके निमित्त स्खलन करनेसे विकल होनेवाले प्रतिरोध और पलायनसे आकाशरूप

णावकाशविकसत्कोलाहलं पारक्यसमूहमिदानीमपि पश्यामीव। स्मरामि च भीषणभुजवज्रखचितपञ्जरपर्यस्तसमरविमुखसुभटहस्तावलुप्तविविधायुधोपरुद्धाशेषरिपुसैन्यविकटापसारव्यतिरिक्तमार्गसंचारनिर्वर्तितविषमसाहसं नाथं माधवम्। अहो! गुणानुरागो नरेन्द्रस्य- यदिदानीं सौधशिखरावतीर्ण-

प्रतिरोधप्रतिनिवर्तनोद्धूतसमस्तगगनाऽङ्गणाऽवकाशविकसत्कोलाहलं = विशृङ्खलम् (स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा) उत्पतितः (कृतोत्पतनः, शत्रुसैन्यं प्रतीति शेषः, 'आपतित' इति पाठे संमुखागत इत्यर्थः) निर्दयाऽऽनन्दः (दयाहर्षरहितः, अतिशयकोपाक्रान्तत्वादिति भावः। निर्गतौ दयाऽऽनन्दौ यस्मात्सः) 'निर्दयाऽमन्दे'ति पाठे निर्दयः (करुणारहितः, निष्ठुर इत्यर्थः) अमन्दः (मान्द्यरहितः, युद्धकुशल इति भावः), एतादृशो यो मकरन्दः, तस्य क्षोभेण (युद्धाऽर्थं सञ्चलनेन) विकले (वैकल्ययुक्ते) ये प्रतिरोधप्रतिनिवर्तने (प्रत्यावरणपलायने) ताभ्याम् उद्धतः (उद्गतः) समस्ते (संपूर्णे) गगनाऽङ्गणाऽवकाशे (आकाशाऽजिरप्रदेशे) विकसन् (विकासं प्राप्नुवन्) कोलाहलः (कलकलशब्दः) यस्य तम्। एतादृशं पारक्यसमूहं = परसैनिकव्यूहम्। भीषणभुजवज्रखचितपञ्जरपर्यस्तसमरविमुखसुभटहस्ताऽवलुप्तविविधायुधोपरुद्धाऽशेषरिपुसैन्यविकटाऽपसारव्यतिरिक्तमार्गसंचारनिर्वर्तितविषमसाहसं = भीषणे (भयानके) ये भुजवज्रे (बाहुकुलिशे, वज्रसमौ बाहू इति भावः) ताभ्यां खचितं (संयुक्तम्) यत् पञ्जरं (कायाऽस्थिवृन्दम्) तेन हेतुना पर्यस्ताः (प्रेरिताः) समरविमुखाः (युद्धपराङ्मुखाः) ये सुभटाः (निपुणयोधाः) तेषां हस्तेभ्यः करेभ्यः) अवलुप्तानि (आकृष्य गृहीतानि) विविधानि (अनेकप्रकाराणि) यानि आयुधानि (शस्त्राऽस्त्राणि) तैः उपरुद्धम् (पातितम्) अशेषं (समस्तम्) यत् रिपुसैन्यम् (शत्रुबलम्) तस्य यो विकटः (भीषणः) अपसारः (पलायनम्) तेन व्यतिरिक्तः (शून्यः) यो मार्गः (पन्थाः) तस्मिन् संचारेण (संचरणेन) निर्वर्तितं (निष्पादितम्) विषमं (भयानकम्) साहसं (समरदुष्करकर्म येन तम्। नाथं = प्रभुं, माधवं, स्मरामि = चिन्तयामि। गुणाऽनुरागः = शौर्यादिगुणप्रणयः, गुणग्राहकत्वमिति भावः। सौधशिखराऽवतीर्णप्रति-

अङ्गण के अवकाशमें उत्पन्न और विकासको प्राप्त होनेवाले कोलाहलसे युक्त, परकीयसैन्यसमूहको अभी देख रहा हूँ ऐसा लग रहा है। भयानक वज्रतुल्य बाहुओंसे शरीरके अस्थिसमूहका संयोग होनेसे प्रेरित अतएव युद्धमें पराङ्मुख निपुण योद्धाओंके हाथोंसे छीनकर लिये गये अनेक प्रकारके आयुधोंसे गिराये गये सम्पूर्ण शत्रुसैन्यके भीषण पलायनसेशून्य मार्गमें संचरणसे भयानक साहस करने-

प्रतिहारविनयोपन्यासप्रशमितविरोधः सौम्यैकरसोपनीतमाधवमकरन्दमुखचन्द्रावबलोक्य वारवारं प्रसारितस्निग्धलोचनः कलहंसकादभिजनं श्रुत्वा निर्वर्तितमहार्घगुरुबहुमानः स्फुरन्मत्सरेर्ष्यावैलक्ष्यमषीमलिनितमुखौ भूरिवसुनन्दनौ मधुरोपन्यासैः 'किमिदानीं युवयोर्भुवनाभोगभूषणाभ्यां महानु-

---

द्वारविनयोपन्यासप्रशमितविरोधः = सौधशिखरात् (राजसदनाऽग्रभागात्, चन्द्रशालाया इति भावः) अवतीर्णः (कृताऽवरोहणः, राजादेशादिति शेषः) यः प्रतिहारः (द्वारपालः, प्रतिहारः = द्वारदेशः रचयत्वेनाऽस्याऽस्तीति, 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्) तस्य यो विनयोपन्यासः (नम्रतापरिपूर्णं वाङ्मुखम्, 'महाराज ! वीरवरावेतौ मन्त्रिपुत्रौ माधवमकरन्दावनुग्राह्यौ' इत्याकारकमिति भावः), तेन प्रशमितः (निवारितः) विरोधः (विग्रहः, स्वसैन्यैः सह माधवमकरन्दयोरिति शेषः) येन सः। सौम्यैकरसोपनीतमाधवमकरन्दमुखचन्द्रौ = सौम्येन (शान्तभावेन) एकरसेन (परमाऽनुरागेण च, वाहुवीर्यदर्शनादिति भावः) उपनीतौ (समीपप्रापितौ) यौ माधवमकरन्दौ, तयोः मुखचन्द्रौ (वदनेन्दू, मुखे चन्द्राविवेति मुखचन्द्रौ, तौ) प्रसारितस्निग्धलोचनः = प्रसारिते (विस्तारिते) स्निग्धे (स्नेहपूर्णे) लोचने (नेत्रे) येन सः। कलहंसकात् = एतन्नामधेयान्मदित्यर्थः। अभिजनं = कलं, माधवमकरन्दयोरिति शेषः। निर्वर्तितमहार्घगुरुबहुमानः = निर्वर्तितः (निष्पादितः) महार्घः (महामूल्यः, महान् अर्घो यस्य सः) गुरुः (गौरवविशिष्टः) बहुमानः (प्रचुरसम्मानः, माधवमकरन्दयोरिति शेषः) येन सः। स्फुरन्मत्सरेर्ष्यावैलक्ष्यमषीमलिनितमुखौ = स्फुरन्ति (आविर्भवन्ति) मत्सरेर्ष्यावैलक्ष्याणि (अन्यशुभद्वेषाऽक्षान्तिलक्ष्यहीनत्वानि) एव मष्यः (मस्यः, 'मलिनाऽम्बु मषी मसी' इति हैमः) ताभिर्मलिनितं (संजातमलिनं, 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्प्रत्ययः) मुखं (वदनम्) ययोस्तौ। मधुरोपन्यासैः = मनोहरवचनोपस्थापनैः। भुवनाऽऽभोगभूषणाभ्यां = भुवनाऽऽभोगस्य (लोकपरि-

---

वाले प्रभु माधवजीका भी स्मरण (याद) कर रहा हूँ। महाराजका गुणानुराग आश्चर्यजनक है, जो कि अभी अटारीसे उतरे हुए द्वारपालके नम्रतापरिपूर्ण वचनोंके उपस्थापनसे अपनी सेनाके साथ माधव और मकरन्दका विरोध हटाकर शान्तभाव और परम अनुरागसे समीप लाये गये माधव और मकरन्दके चन्द्रतुल्य मुखोंको देखकर वारंवार स्नेहपूर्ण नेत्रोंको विस्तीर्णकर कलहंसक (मुझ) से उनका वंश सुनकर तथा उनका बहुमूल्य गौरवविशिष्ट प्रचुर सम्मानकर, प्रकट होनेवाले अन्य शुभद्वेष, ईर्ष्या और लक्ष्यरहितत्व एतद्रूप मसी (रोशनाई) से मालिन्यपूर्ण

भावाभ्यां नवयौवनगुणाभिरामाभ्यां जामातृभ्यां परितोष' इति प्रतिबोध्य गतोऽभ्यन्तरं राजा । एतावपि माधवमकरन्दावागच्छत इत्यहमप्येतं भगवत्यै वृत्तान्त निवेदयामि । (इति निष्क्रान्तः) ( दिट्ठिआ कुसलेण म्हि णिग्गदो संघट्टमग्गादो । हिमाणहे ! पेक्खामि विअ णिम्मलणिरन्तरव्वुत्ततरवारिधारापडिफलिदचन्दकिरणुज्जुलन्तपिञ्जरिअभीसणदंसणं मदलीलाकलिदकामवालविअडभुअदण्डावबिद्धहलद्देलावित्थारिदुद्धक्खुभिदकलिन्दतणआसोत्तस्संणिहं विसङ्खलुप्पडिदणिद्दआणन्दमअरन्दक्खोभविअलपडिरोवपडिणिउत्तणुद्धअसमत्थगअणङ्गणावआसविअसन्दकोलाहलं पारक्कसमूहं दाणिं वि पेक्खामि विअ । सुमरामि अ भीसणभुअवज्जखचितपञ्जरपज्जत्थसमरविमुहसुभटहत्थावलुत्तविविहाउहोवरुद्धअसेसरिपुसेण्णविअडापसारवइरिक्कमग्गसंचारणिव्वत्तिदविममसाहसं णाहं माहवम् । अहो गुणाणुराओ णरिन्दस्स, जं दाणिं सोधपिहरावदिण्णपडिहारविणओवण्णासपसमिदविरोहो सोम्मे क्करसोवणीदमाहवमअरन्दमुहचन्दे ओलोइअ वारंवारं पसारिदसिणिद्धलोअणो कलहंसआदो अहिजणं सुणिअ णिव्वत्तिअमहग्घगुरुबहुमाणो फुरन्तमच्छरेस्सावेल्लक्खमसीमलिणिदमुहे भूरिवसुणन्दणे महुरोवण्णासेहिं किं दाणिं तुम्हाणं भुवणाभोअभूसणेहिं महाणुहावेहिं णवजोव्वणगुणाभिरामेहिं जामाउएहिं परितोसे त्ति पडिवोधिअ गओ अब्भन्दरं राआ । इमे वि माहवमअरन्दा आअच्छन्दि इति अहं वि एदं भअवदीए वुत्तन्दं णिवेदेमि )

---

पूर्णतायाः, 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः ) भूषणाभ्याम् ( अलङ्काररूपाभ्याम् ) । महाऽनुभावाभ्यां = प्रचुरसामर्थ्याभ्यां, विद्याबलादिभिरिति शेषः । नवयौवनगुणाऽभिरामाभ्यां = नवयौवनेन ( नूतनतारुण्येन ) गुणैः ( दयादाक्षिण्यादिभिश्च ) अभिरामाभ्याम् ( मनोहराभ्याम् ) जामातृभ्यां=माधवमकरन्दाभ्यामित्यर्थः । नन्दनपक्षे भगिनीपतित्वेन मकरन्दस्य जामातृत्वमवसेयम् । परितोषः = सन्तोषः, किम् । इति = एवं, प्रतिबोध्य = प्रतिबोधं कृत्वा । अतो राज्ञो गुणग्राहकत्वं द्योत्यत इति भावः । भगवत्यै = कामन्दक्यै ।

---

मुखवाले भूरिवसु और नन्दनको मनोहर वाक्योंके उपस्थापनोंसे 'इस समय लोकपरिपूर्णताके अलङ्काररूप, नूतन तारुण्य और गुणोंसे सुन्दर महानुभाव इन दामादोंसे आप दोनोंको क्या सन्तोष है ?' इस प्रकारसे प्रबोध देकर महाराज भीतर चले गये । ये दोनों प्रभु माधव और मकरन्दजी भी आरहे हैं, इस कारणसे मैं भी भगवतीको यह वृत्तान्त जनाता हूँ । ( ऐसा कहकर निकलता है । )

( ततः प्रविशतो माधवमकरन्दौ )

माधवः—अहो, प्रेयसः सर्वपुरुषातिशायि निर्व्याजमूर्जितं तेजः। तथा हि—

दोर्निष्पेषविशीर्णसंचयदलत्कङ्कालमुन्मथ्नतः
प्राग्वीराननुपात्य तत्प्रहरणान्याच्छिद्य विक्रामतः।
उद्वेल्लद्घनरुण्डखण्डनिकराकीर्णस्य संख्योदधे-

---

माधव इति। क्वचित् 'मकरन्द' इति पाठान्तरम्। अहो=आश्चर्यम्। प्रेयसः=प्रियतमस्य, मकरन्दस्येति भावः। सर्वपुरुषाऽतिशायि=सकललोकाऽभिभावि, 'सर्वपुरुषानतिशेते तच्छीलं, ताच्छील्ये णिनिप्रत्ययः 'आतो युक्चिण्कृतोः' इति युगागमश्च। निर्व्याजं=निश्छलं, वास्तवमित्यर्थः। ऊर्जितं=बलसम्पन्नं, तेजः=विक्रमः। तदेव प्रकाशयितुमुपक्रमते—तथा हीति।

दोर्निष्पेषेति। प्राक् वीरान् अनुपात्य दोर्निष्पेषविशीर्णसंचयदलत्कङ्कालम् उन्मथ्नतः तत्प्रहरणानि आच्छिद्य विक्रामतः (प्रेयसः) पुरस्तात् उद्वेल्लद्घनरुण्डखण्डनिकराऽऽकीर्णस्य संख्योदधेः द्वेधास्तम्भितपत्तिपङ्क्तिविकटः पन्था अभूदित्यन्वयः। प्राक्=प्रथमं, वीरान्=शूरान्, प्रतिपक्षभटानिति भावः। अनुपात्य=क्रमेणैकैकशो भूतले विनिपात्य, दोर्निष्पेषविशीर्णसंचयदलत्कङ्कालं=दोर्भ्यां (बाहुभ्याम्) निष्पेषेण (संचूर्णनेन) विशीर्णाः (प्राप्तविशरणाः) संचयाः (सन्धिबन्धाः) येषां ते, ततश्च दलन्तः (दलनं प्राप्नुवन्तः) कङ्कालाः (शरीराऽस्थीनि) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा। उन्मथ्नतः=उन्मथनं कुर्वतः, प्रतिभटवीरानिति भावः। तत्प्रहरणानि=तेषां (प्रतिभटवीराणाम्) प्रहरणानि (आयुधानि)। आच्छिद्य=गृहीत्वा। विक्रामतः=विक्रमं (पराक्रमम्) कुर्वतः। प्रेयसः=मकरन्दस्येत्यर्थः। पुरस्तात्=पुरतः। उद्वेल्लद्घनरुण्डखण्डनिकराऽऽकीर्णस्य=उद्वेल्लन्तः (उच्चलन्तः) घनाः (निविडाः) ये रुण्डखण्डाः (अपमूर्धकलेवरशकलानि) तेषां निकरः (समूहः) तेन आकीर्णस्य (व्याप्तस्य)। संख्योदधेः=संग्रामसमु-

---

( तब माधव और मकरन्द प्रवेश करते हैं। )

माधव—अहो! प्रियवर मकरन्दजीका सब पुरुषोंका अतिक्रमण करनेवाला, निश्छल और बलसम्पन्न पराक्रम है। जैसे कि—

पहले वीरोंको एक-एककर जमीनपर गिराकर बाहुओंसे चूर करनेसे विशीर्ण सन्धिबन्ध होनेसे शरीरकी अस्थियोंको आमर्दित कराकर शत्रुवीरोंका मथन करनेवाले और उनके हथियारोंको छीनकर पराक्रम करनेवाले प्रियवर मकरन्दके

द्वैधास्तम्भितपत्तिपङ्क्तिविकटः पन्थाः पुरस्तादभूत् ॥९॥

वयस्य, नन्वनुशयस्थानमेतत् । पश्य—

अद्यैवेन्दुमयूखखण्डनिचितं पीतं निशीथोत्सवे
यैर्लीलापरिरम्भदायिदयितागण्डूषशेषं मधु ।
संप्रत्येव भवद्भुजार्गलगुरुव्यापारभग्नास्थिभि-

द्रस्य, संख्यमुदधिरिव तस्य, 'मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं संपरायकम् ।' इत्यमरः द्वैधास्तम्भितपत्तिपङ्क्तिविकटः=द्वेधा(प्रकारद्वयेन, पार्श्वद्वयेनेत्यर्थः, द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम् 'एधाच्चे'ति एधात् ) स्तम्भिता (संजातस्तम्भा, निश्चेष्टेति भावः) या पत्तिपङ्क्तिः ( पदातिश्रेणी ), तथा विकटः ( भयङ्करः ) । पन्थाः = मार्गः, अभूत् = संजातः । अतः प्रियतमस्य वीर्यमसाधारणमिति भावः । अत्र 'संख्योदधे'रित्यत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ९ ॥

वयस्येति । एतत् = जगत् , समरकर्म वा । अनुशयस्थानं = पश्चात्तापस्थानम् । तदेव प्रतिपादयितुमुपक्रमते —पश्येति ।

अद्यैवेति । अद्य एव यैः निशीथोत्सवे इन्दुमयूखखण्डनिचितं लीलापरिरम्भदायिदयितागण्डूषशेषं मधु पीतम् । ते सम्प्रति एव भवद्भुजाऽर्गलगुरुव्यापारभग्नाऽस्थिभिः गात्रैः संसारिणः प्रायेण असारभिदुरान् कथयन्तीत्यन्वयः । अद्य एव = अस्मिन्समय एव, यैः = भटैः, निशीथोत्सवे = अर्धरात्रोत्सवे, इन्दुमयूखखण्डनिचितम्=इन्दुमयूखखण्डैः (चन्द्रकिरणभागैः, वातायनप्रविष्टैरिति शेषः) निचितं (व्याप्तं, खचितमिति भावः ), लीलापरिरम्भदायिदयितागण्डूषशेषं = लीलया ( विलासेन ) परिरम्भदायिन्यः ( आलिङ्गनदायिन्यः, परिरम्भं ददतीति तच्छीलाः । ताच्छील्ये णिनिः ) तादृश्यो या दयिताः ( प्रियतमाः ) तासां गण्डूषशेषं ( मुखपूरणावशिष्टं, पीताऽवशिष्टमिति भावः ) तादृशं मधु = मद्यं, पीतम् = आस्वादितम् । ते= तादृशा अद्यैव दयितापीताऽवशिष्टसुरापायिनो वीरा इति भावः । सम्प्रति एव= अधुना एव, भवद्भुजाऽर्गलगुरुव्यापारभग्नाऽस्थिभिः = भवतः ( तव, वीरवरस्य

सामने चलते हुए घने रुण्डखण्डोंके समूहसे व्याप्त युद्धरूप समुद्रका दो पार्श्वोंसे निश्चेष्ट पैदल सेनाकी पङ्क्तिसे भयङ्कर मार्ग हो गया था ॥ ९ ॥

मित्र ! यह पश्चात्तापका स्थान है । देखो—

आज ही जिन योद्धाओंने आधीरातके उत्सवमें चन्द्रकिरणोंसे खचित, विलाससे आलिङ्गन देनेवाली प्रियाओंके पीकर अवशिष्ट मदिराका पान किया था। वे अभी अभी आपके अर्गलसदृश बाहुओंके प्रहारसे टूटी हुई हड्डियोंसे युक्त अपने

गात्रैस्ते कथयन्त्यसारभिदुरान्प्रायेण संसारिणः १० ॥

स्मर्तव्यं तु नरपतेरस्य सौजन्यम् यदपराद्धयोरप्यनपराद्धयोरिव नौ कृतोपसदनं चेष्टितवान् । तदेहि, मालतीसमक्षमधुना मदयन्तिकाहरण-वृत्तान्तं विस्तरतः कथ्यमानमनुभवामः । ( पुरोऽवलोक्य ) कथं शून्या इवामी प्रदेशाः ?

---

मकरन्दस्येति भावः ) भुजाऽर्गलयाः ( बाहुविष्कम्भयोः, भुजौ अर्गले इव तयोः ) गुरुव्यापारेण ( दुःसहक्रियया, प्रहाररूपयेति भावः ) भग्नानि ( आमर्दितानि, त्रुटितानीति भावः ) अस्थीनि (कीकसानि) येषां, तैः । तादृशैः गात्रैः=संसारप्रपञ्च-पतिताञ्जनानित्यर्थः । प्रायेण = बाहुल्येन, असारभिदुरान् = असारान् ( स्थिरांश-रहितान् ) अत एव भिदुरान् ( नाशशीलान्, 'भञ्जभासभिदो घुरच्' इति घुरच्प्र-त्यर्थः ) । कथयन्ति = सूचयन्ति । ये वीराः पूर्वं निशीथसमये मदनोत्सवाऽनुभव-प्रवृत्ताः सन्तो दयितापीताऽवशिष्टां सुराम् अन्वभूवन् त एव साम्प्रतं भवद्भुजार्गला-घाताहताः सन्तो लौकिकसुखप्रसक्ता जनाः प्रायः साररहिताः क्षणभङ्गुराश्च भवन्तीति सूचयन्तीति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

स्मर्तव्यमिति । सौजन्यं=सुजनत्वम् । अपराद्धयोः = कृताऽपराधयोः, मालती-मदयन्तिकाहरणेनेति भावः । नौ = आवयोः । कृतोपसदनं = कृतम् ( विहितम् ) उपसदनम् ( स्वसमीपस्थितिः, यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम्, प्रसादेनाऽऽवयोरिति शेषः, 'कृतप्रसादम्' अधिष्ठितवान् इति पुस्तकान्तरपाठः, तत्र विहिताऽनुग्रहं यथा तथा स्थापितवानित्यर्थः । अनुभवामः = अनुभूतिविषयं कुर्मः, 'श्रोतुमिच्छामी'ति पुस्तकान्तरपाठः । शून्या इव = मालतीरहिता इवेत्यर्थः ।

---

शरीरोंसे संसारी जनोंको प्रायः ( अकसर ) असार और नाशशील सूचित कर रहे हैं ॥ १० ॥

इस महाराजका सौजन्य तो स्मरण करनेके योग्य है । अपराध करनेवाले हमारे ऊपर निरपराध जनोंके सदृश अपने समीप रखकर भाषण आदि चेष्टा की । इस कारणसे आओ, अभी मालतीके समक्षमें विस्तारसे कहे जानेवाले मदयन्तिका-हरण वृत्तान्तका अनुभव करें । ( आगे देखकर ) कैसे ये स्थान शून्यके सदृश प्रतीत हो रहे हैं ?

मकरन्दः—नूनं शङ्के आवयोः समरसंकटोद्वेगेन व्याकुलत्वादितस्ततो भ्रमन्त्यस्ता अत्रैवात्मानं विनोदयन्ति।

माधवः—

कथयति त्वयि सस्मितमालतीचलितलोलकटाक्षपराहतम्।
वदनपङ्कजमुल्लसितत्रपं स्तिमितदृष्टि सखी नमयिष्यति ॥११॥

अयमसावुद्यानवाटः।

---

मकरन्द इति। ताः=मालत्यादयः।

कथयतीति। त्वयि कथयति सखी सस्मितमालतीचलितलोलकटाक्षपराहतम् उल्लसितत्रपं स्तिमितदृष्टि वदनपङ्कजं नमयिष्यतीत्यन्वयः (वयस्य मकरन्द!) त्वयि=भवति मकरन्दे, कथयति=आवयोः समरवृत्तान्तं ब्रुवाणे सति, सखी=वयस्या, मालत्या इति शेषः, मदयन्तिकेति भावः। सस्मितमालतीचलितलोलकटाक्षपराहतं=सस्मिता (संजातमन्दहास्या) मालती (मद्वल्लभा) तस्याश्चलिताः (उद्गताः, 'वलिता' इति पाठे प्रवर्तिता इत्यर्थः) लोलाः (चञ्चलाः) ये कटाक्षाः (अपाङ्गदर्शनानि, 'कटाक्षोऽपाङ्गदर्शनं' इत्यमरः। तैः पराहतम् (ताडितं, सम्बद्धमिति भावः)। उल्लसितम्=उल्लसिता (उद्गता) त्रपा (लज्जा, मदर्थमेतौ महानुभावावेतादृशमायासमनुभूतवन्ताविस्याकारकेण विचारेणेति शेषः) यस्मिंस्तत्। तथा स्तिमितदृष्टि=स्तिमिते (निश्चले) दृष्टी (नयने) (यस्मिंस्तत्। एतादृशं वदनपङ्कजं (मुखकमलं, स्वकीयमिति भावः। वदनं पङ्कजमिव, तत् नमयिष्यति=नतं करिष्यति। अत्र 'वदनपङ्कज'मित्यत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः, नमनं प्रति उल्लसितत्रपत्वस्य हेतुत्वात्पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारस्तथा चैतयोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्करः द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

क्वचिदस्माच्छ्लोकादनन्तरम् 'इति परिक्रामत' इत्यधिकः पाठः। उद्यानवाटः=उपवनवृतिः।

---

मकरन्द—मैं विचार करता हूँ कि निश्चय हम दोनोंके युद्धसङ्कटके उद्वेगसे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमती हुई मालती आदि स्त्रियाँ यहीं पर दिलबहलाव कर रही हैं।

माधव—तुम्हारे युद्धका वृत्तान्त कहते रहनेपर सखी (मदयन्तिका) मुसकुरानेवाली मालतीके चले हुए चञ्चल कटाक्षोंसे ताडित अतएव लज्जासे युक्त और निश्चल नेत्रोंवाले मुखकमलको अवनत करेगी ११ ॥

यह वही उद्यानका प्राचीर है।

( प्रवेशं नाटयतः )

लवङ्गिका-मदयन्तिके—सखि मालति, (सहसा विलोक्य सहर्षम्) दिष्ट्या पुनरपि च तौ महानुभावौ दृश्येते। ( सहि मालदि, दिट्ठिआ पुणो वि अ ते महाणुहावा दिस्सन्दि )

माधवमकरन्दौ—भवत्यौ, क सा मालती।

उभे—कुतो मालती। पदशब्देनावां विप्रलब्धे मन्दभागिन्यौ। ( कुदो मालती। पदसद्देन अम्हे विप्पलद्धाओ मन्दभाइणीओ )

माधवः—भवत्यौ, कथं कथमपि सहस्रधैव ध्वंसते मे हृदयम्। ततः स्फुटमभिधीयताम्।

मम हि कुवलयाक्षीं प्रत्यनिष्टैकबुद्धे-
रविरतनुबद्धोत्कम्प एवान्तरात्मा।

---

लवङ्गिकामदयन्तिके इति। माधवमकरन्दयोः पदध्वनिं श्रुत्वा मालतीशङ्कयाऽऽकारयतः—सखीति।

माधवमकरन्दाविति। मालतीति सम्बोधनं श्रुत्वा पृच्छतः—भवत्याविति।

उभे इति। पदशब्देन=चरणनिक्षेपध्वनिना, युवयोरिति भावः। विप्रलब्धे=वञ्चिते।

माधव इति। कथं कथमपि=केनाऽपि प्रकारेण वक्तुमप्यशक्येनेति भावः। ध्वंसते=ध्वस्तं भवति।

ममेति। हि कुवलयाक्षीं प्रति अनिष्टैकबुद्धेः मम अन्तरात्मा अविरतम् अनुबद्धोत्कम्प एव, वामं चक्षुश्च स्फुरति। भवत्योः अपि एतत् वचनं कष्टम्। सर्वथा हतोऽस्मि हा! इत्यन्वयः। हि=यतः कुवलयाऽक्षीं प्रति=नीलकमललोचनां प्रति,

---

( दोनों प्रवेशका अभिनय करते हैं। )

लवङ्गिका और मदयन्तिका—सखि मालति! ( सहसा देखकर हर्षके साथ ) भाग्यसे फिर भी वे दोनों महानुभाव दिखाई दे रहे हैं।

माधव और मकरन्द—आप दोनों कहें कि वे मालती कहांपर हैं?

दोनों ( लवङ्गिका और मदयन्तिका )—मालती कहाँ हैं? पदशब्दसे हम दोनों मन्दभागिनी वञ्चित हुई हैं।

माधव—भद्रमहिलाओ! अनिर्वचनीयरूपसे सहस्र प्रकारोंसे ही मेरा हृदय ध्वस्त हो रहा है। इस कारणसे स्पष्ट ( साफ ) कहिए।

क्योंकि कमललोचना मालतीके अनिष्टमात्रकी आशङ्का करनेवाला मेरा

स्फुरति च खलु चक्षुर्वाममेतच्च कष्टं
वचनमपि भवत्योः सर्वथा हा ! हतोऽस्मि ॥ १२ ॥

मदयन्तिका—तथा खल्वितो विनिर्गते महानुभावे बुद्धरक्षितामवलोकितां च भगवतीसकाशं विसृज्य 'अप्रमादनिमित्तं विज्ञापयार्यपुत्रम्' इति लवङ्गिकानुप्रेषिता। तत उत्ताम्यमाना चैतस्या मार्गमवलोकयितुमग्रतः प्रसृता मालती। पश्चादहम्। ततो न पश्यामि। ततोऽस्माभिर्मार्गितात्र विटपान्तराणि यावद्युवां दृष्टाविति। (तह क्खु इदो विणिग्गदे महाणुहावे बुद्ध-

---

मालतीं प्रतीत्यर्थः। कुवलये इव अक्षिणी यस्याः सा कुवलयाक्षी, ताम्। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाऽङ्गात्षच्' इति समासाऽन्तः षच्। षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीष्। प्रतियोगे 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया। अनिष्टैकबुद्धेः=अनिष्टमात्राऽऽशङ्किनः, 'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपी'ति न्यायादिति भावः। अनिष्टे एका बुद्धिर्यस्य तस्य। मम=माधवस्य, अन्तरात्मा=अन्तःकरणम्, अविरतं=निरन्तरम्, अनुबद्धोत्कम्प एव=सम्बद्धवेपथुरेव, अनिष्टाऽऽशङ्कयेति भावः। तथा च—वामं दक्षिणेतरत्, चक्षुश्च=नेत्रं च स्फुरति=स्पन्दते एतदप्यपशकुनद्योतकमिति,भावः। भवत्योरपि=युवयोरपि, लवङ्गिकामदयन्तिकयोरपीत्यर्थः। एतत्=इदं, वचनं=वाक्यं, 'कुतो मालती'त्याकारकमिति भावः। कष्टं=दुःखजनकं, दुःखसूचकत्वादिति भावः। अतः सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, हतोऽस्मि=हिंसितोऽस्मि, दुर्दैवेनेति शेषः। हा=मामिति शेषः। मम शोच्यत इति भावः। अत्राऽनिष्टसूचनं प्रति वामचक्षुःस्फुरणरूप एकस्मिन् हेतौ विद्यमानेऽपि तथाविधवचनरूपहेत्वन्तरोपन्यासात्समुच्चयाऽलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ १२ ॥

मदयन्तिकेति। महानुभावे=माधवे। विसृज्य=प्रेष्य। अनुप्रेषिता=भवत्सकाशमिति शेषः। उत्ताम्यमाना=उत्कण्ठमाना समरोदन्तं ज्ञातुमिति शेषः। एतस्याः लवङ्गिकायाः। मार्गं=प्रत्यावर्तनवर्त्म। प्रसृता=निर्गता। विटपाऽन्त-

---

अन्तःकरण लगातार कम्पयुक्त ही हो रहा है और बाँयी आँख भी फड़क रही है। आप दोनोंका भी ( मालती कहाँ है ? ) यह वचन दुःखजनक है। सब प्रकारसे मैं हतप्राय हो गया हूँ। हाय ! ॥ १२ ॥ )

मदयन्तिका—उस प्रकारसे यहाँसे महानुभाव ( आप) के जानेपर मालतीने बुद्धरक्षिता और अवलोकिताको भगवतीके समीप भेजकर पीछे 'सावधानता ( होशियारी ) के लिए आर्यपुत्रको विज्ञापन करो !' ऐसा कहकर लवङ्गिकाको भेजा। अनन्तर उत्कण्ठित होती हुई मालती इस (लवङ्गिका) का मार्ग देखनेके लिए

रक्खिदं अवलोइदं अ भअवदीसआसं विसज्जिअ अप्पमादणिमित्तं विण्णवेहि अज्जउत्तं त्ति लवङ्गिआ अनुप्पेसिदा। तदो उत्तम्ममाणा अ एदाए मग्गं ओलोइदुं अग्गदो पसरिदा मालदी। पच्चादो अहं। तदो ण पेक्खामि। तदो अम्हेहिं मग्गिदा एत्थ विडवन्दराइं जाव तुम्हे दिट्ठत्ति )

माधवः—हा प्रिये मालति !

किमपि किमपि शङ्के मङ्गलेभ्यो यदन्य-
द्विरमतु परिहासश्चण्डि ! पर्युत्सुकोऽस्मि।
कलयसि ? कलितोऽहं वल्लभे ! देहि वाचं
भ्रमति हृदयमन्तर्विह्वलं निर्दयासि ॥ १२ ॥

राणि = तरुशाखाऽवकाशान्। मार्गिता = अन्विष्टा, मालतीति भावः। इति = वृत्तावसानद्योतकोऽयं शब्दः।

किमपीति— हे चण्डि ! किमपि किमपि यत् मङ्गलेभ्यः अन्यत् शङ्के। परिहासो विरमतु। पर्युत्सुकोऽस्मि। हे वल्लभे ! कलयसि ? अहं कलितः। वाचं देहि। विह्वलं हृदयम् अन्तः भ्रमति। निर्दया असीत्यन्वयः। हे चण्डि = हे अत्यन्तकोपने !, किमपि किमपि = यद्वक्तुमपि नितान्तमेवाऽशक्यं, यत्, मङ्गलेभ्यः = कल्याणेभ्यः, अन्यत् = भिन्नम्, अमङ्गलमित्यर्थः। तत् शङ्के = शङ्कां करोमि, कोपाक्रान्तायाः कपालकुण्डलाया विद्यमानत्वादिति भावः। परिहासाऽर्थं तवेदमात्मगोपनं चेत्तर्हि— तादृशः परिहासः = आत्मप्रच्छादनरूपं परिहसनं, विरमतु = विरतो भवतु, 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्। यतोऽहं = पर्युत्सुकोऽस्मि = अतीवोत्कण्ठितोऽस्मि, त्वद्दर्शनाऽर्थमिति शेषः। हे वल्लभे = हे प्रिये !, कलयसि = ज्ञातुमिच्छसि, 'माधवोऽयं मयि कीदृशाऽनुराग' इति जिज्ञाससे चेदिति भावः। अहं = माधवः, कलितः = ज्ञातः, त्वत्प्राप्त्यर्थमनुष्ठितमहामांसविक्रयाऽऽरम्भेष्विति भावः। अतः— वाचं = वचनं, प्रतिवाक्यरूपमिति भावः। देहि = वितर। यतः विह्वलं = विक्लवं, हृदयं = मदीयं हृत्। अन्तः = मध्ये, भ्रमति = भ्रमणं करोति, एकत्राऽवस्थानं न लभत इति भावः। त्वं च निर्दया = निष्करुणा, कठोरहृदयेति भावः। असि = वर्तसे।

आगे चली और मैं पीछे चली। इस कारणसे उन्हें नहीं देखती हूं। तब हमलोगोंने वृक्षशाखाओं के अवकाशपर्यन्त भागोंमें मालतीको ढूढा, तब आपलोग दिखाई पड़े।

माधव—हा प्रिये मालति !

हे चण्डि ! कहनेको अयोग्य जो मङ्गलोंसे भिन्न ( अमङ्गल ) है मैं उसीकी शङ्का कर रहा हूँ। परिहास दूर हो, मैं अतिशय उत्कण्ठित हूँ। हे प्रिये ! क्या

उभे—हा प्रियसखि, कुत्र गतासि ? ( हा पिअसहि, कहिं गआसि ? )

मकरन्दः—वयस्य, किमित्यविज्ञाय वैक्लव्यमवलम्ब्यते ।

माधवः—सखे, त्वमपि किं न जानासि मत्स्नेहदुःखितायास्तस्याः कातर्यचेष्टितानि ?

मकरन्दः—अस्त्येतत् । किंतु भगवतीपादमूलगमनमप्याशङ्क्यते । तदेहि । तत्र तावद् गच्छावः ।

उभे—एतदपि संभाव्यते । ( एदं वि संभावीअदि )

माधवः—एवमस्तु नाम । ( इति परिक्रामति )

मकरन्दः—( स्वगतम् )

---

मामेतादृशं कातरं दृष्ट्वापि त्वं यत्न दर्शनदानेन प्रसादं दर्शयसि, अतस्त्वं निर्दयाऽसीति भावः । मालिनी वृत्तम् ॥ १३ ॥

मकरन्द इति । अविज्ञाय = अनिर्णीयेत्यर्थः । वैक्लव्यं = विह्वलत्वम् ।

माधव इति । तस्याः = मालत्याः । कातर्यचेष्टितानि = कातरतापूर्णचेष्टाः, नन्दनेन समं स्वविवाहप्रस्तावे स्वदेहत्यागचेष्टितानीति भावः । अत एव तदर्थं मद्वैक्लव्यं संगच्छत इति तात्पर्यम् ।

उभे इति । एतदपि = भगवतीपादमूलगमनमपि ।

माधव इति । एवम् = इत्थं, भगवत्याः कामन्दक्याः सकाशे गमनमित्यर्थः ।

---

तुम मुझे जानना चाहती हो ? मैं तुमसे जाना गया हूँ । वचन दो । मेरा विह्वल हृदय बीचमें घूम रहा है । तुम निर्दय हो ॥ १३ ॥

दोनों ( लवङ्गिका और मदयन्तिका )—हा प्रियसखि ! तुम कहाँ गयी हो ?

मकरन्द—मित्र ! तुम क्यों निश्चय किये बिना विह्वलताका अवलम्बन कर रहे हो ?

माधव—सखे ! मेरे अनुरागके कारण दुःखिता मालतीकी कातरतापूर्ण चेष्टाओंको तुम भी क्या नहीं जानते हो ?

मकरन्द—यह बात है । परन्तु मालतीका भगवतीके समीप जाना भी आशङ्कित हो सकता है । इसलिए आओ । हम दोनों भगवतीके समीप जायँ ।

दोनों—( लवङ्गिका और मदयन्तिका ) यह भी सम्भव है ।

माधव—ऐसा ही हो । ( ऐसा कहकर पादक्षेप करता है । )

मकरन्द—( मन ही मन )

याता भवेद्भगवतीभवनं सखी सा
जीवन्त्यथैष्यति न वेत्यभिशङ्कितोऽस्मि ।
प्रायेण बान्धवसुहृत्प्रियसंगमादि
सौदामिनीस्फुरणचञ्चलमेव सौख्यम् ॥ १४ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवेऽष्टमोऽङ्कः ।



यातेति । सा सखी भगवतीभवनं याता भवेत्, अथ जीवन्ती एष्यति न वेति अभिशङ्कितः अस्मि । बान्धवसुहृत्प्रियसंगमादिसौख्यं प्रायेण सौदामिनीस्फुरणचञ्चलमेवेत्यन्वयः । साऽपूर्वाऽवलोकिता, सखी = मालती, माधवकलत्रत्वादस्माकमपि सखीति भावः । भगवतीभवनं = कामन्दकीगृहं, याता = गता, भवेत् = स्यात् । अथ = अनन्तरं, जीवन्ती = प्राणान्धारयन्ती सती, एष्यति न वा = आगमिष्यति न वा, इति = इत्थम् । अभिशङ्कितः अस्मि = संजातशङ्कः अस्मि । कपालकुण्डलायाः सततमप्यनिष्टाचरणे जागरूकत्वादिति भावः । अथ मालतीविपदं निश्चित्य वैषयिकसुखस्याऽस्थैर्यं प्रतिपादयति—प्रायेणेति बान्धवसुहृत्प्रियसंगमादि = बान्धवाः ( बन्धवः ) सुहृदः ( मित्राणि ) प्रियाः ( अभीष्टजनाः ) तेषां संगमः ( समागमः ) स आदिः यस्य तत् । तादृशं सौख्यं = सुखं, प्रायेण = बाहुल्येन, सौदामिनीस्फुरणचञ्चलम् एव = सौदामिन्याः ( विद्युतः स्फुरणं ( प्रकाशनम् ) तदिव चञ्चलम् ( अस्थिरम् ) एव । अथ च प्रथमाऽङ्कमुखसन्धिसूचितायाः सौदामिन्याः स्फूर्त्याः ( व्यापारविशेषात् ) माधवस्य बान्धवादिसमागमादिजनितं सौख्यं सततं प्रवर्तमानं भवेदिति ज्ञाप्यते । अत्रोत्तरार्धगतसामान्यार्थेन पूर्वार्द्धगतविशेषाऽर्थसमर्थनादर्थान्तरन्यासोऽलङ्कार उपमा चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥१४॥

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायामष्टमोऽङ्कः ।



वह सखी ( मालती ) भगवतीभवनको गयी हुई होगी, अनन्तर जीती जागती आयेगी या नहीं, इस विषयमें मैं आशङ्कायुक्त हूँ । बान्धव, मित्र और अभीष्टजन इनका समागम आदि सुख प्रायः सौदामनी (बिजली) के चमकनेसदृश ही होता है ॥१४॥

( तब सब लोग बाहर निकलते हैं । )

अष्टम अङ्क समाप्त ।



## नवमोऽङ्कः

( ततः प्रविशति सौदामिनी )

सौदामिनी—एषाऽस्मि सौदामिनी । भगवतः श्रीपर्वतादुपेत्य पद्मावतीं तत्र मालतीविरहिणो माधवस्य संस्तुतप्रदेशदर्शनासहिष्णोः संस्त्यायं परित्यज्य सह सुहृद्वर्गेण बृहद्द्रोणीशैलकान्तारप्रदेशमुपश्रुत्याधुना तदन्तिकं प्रयामि । भोः ! तथाहमुत्पतिता यथा सकल एव गिरिनगरग्रामसरिदरण्यव्यतिकरश्चक्षुषा परिपिच्यते । ( पश्चाद्विलोक्य ) साधु साधु ।

श्रीपर्वते कपालकुण्डलाऽपहृतां मालतीमाच्छिद्य सङ्कटरहिते प्रदेशे तामवस्थाप्य मालतीविनाशशङ्किनो माधवस्याऽपि देहत्यागमाशङ्क्य तद्विश्वासोत्पादनाय प्रथमाऽङ्कसूचितायाः सौदामिन्याः प्रवेशमवतारयति—तत इति । एषा सौदामिन्यस्मि= या भगवत्या कामन्दक्या योगाऽभ्यासाद्युपदेशेनाऽलौकिकसिद्धिपदं प्रापितेति भावः । भगवतः=ऐश्वर्यसम्पन्नस्य, सिद्धिस्थानत्वेनेति भावः । उपेत्य=समीपं प्राप्य, 'उत्पत्ये'ति पाठे उत्पतनं कृत्वा, योगाऽभ्यासेनोड्डीयेति भावः । पद्मावतीं=तन्नामधेयां राजधानीम्, 'उपाश्रिते'त्यधिकं पाठान्तरम् । संस्तुतप्रदेशदर्शनाऽसहिष्णोः= संस्तुतः ( परिचितः, मालत्या समं विहरणकाल इति शेषः ) यः प्रदेशः ( स्थानम् ) तस्य दर्शनं ( विलोकनम् ) तदसहिष्णोः (तदक्षमस्य) । संस्त्यायं-गृहं, 'ष्टयै स्त्यै शब्दसंघातयोः' इति धातोर्भावे घञ् । 'आतो युक् चिण्कृतोः' इति युगागमश्च । संस्त्यायः संनिवेशे च संघाते विस्तृतावपि ।' इति मेदिनी । 'स्थानम्' इति पाठान्तरम् । सुहृद्वर्गेण=मित्रसमूहेन, मकरन्दाऽऽदिनेति भावः । बृहद्द्रोणीशैलकान्तारप्रदेशं=बृहती ( महती ) द्रोणी ( नद्या मध्यम् ), शैलः ( पर्वतः ) कान्तारः ( दुर्गमं वर्त्म ) तत्प्रचुरं प्रदेशम् ( स्थानम् ) तदन्तिकं=माधवसमीपम् । उत्पतिता=उड्डीना । गिरिनगरग्रामसरिदण्यव्यतिकरः=गिरिनगरग्रामसरिदरण्यानां ( पर्वतपुरसंवसथनदीवनानाम् ) व्यतिकरः ( विशेषः, समूहो वा ) । चक्षुषा=

( तब सौदामिनी प्रवेश करती है । )

सौदामिनी—यह मैं सौदामिनी हूँ । ऐश्वर्यसम्पन्न श्रीपर्वतसे पद्मावती राजधानीको प्राप्त कर वहाँपर मालतीके विरही होनेसे पूर्वपरिचित देशको देखनेमें असमर्थ होकर माधवजी गृह छोड़कर मकरन्द आदि मित्रोंके समुदायके साथ बड़ी द्रोणी ( दून=नदीका मध्यस्थान ), पर्वत दुर्गम मार्ग इनसे परिपूर्ण स्थानको गये हैं ऐसा सुनकर मैं इस समय उनके समीप जा रही हूँ । मैं उस तरहसे

पद्मावती विमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति ।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट-
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरिक्षम् ॥ १ ॥

अपि च—

सैषा विभाति लवणा वलितोर्मिपङ्क्ति-

नेत्रेन्द्रियेण, परिपिष्यते, अभिव्याप्य गृह्यते, स्पष्टरूपेणाऽवलोक्यते । साधु साधु = समीचीनं समीचीनम् । कल्याणमासन्नमिति साधुपदाऽभ्यासहेतुः ।

पद्मावतीति । पद्मावती विमलवारिविशालसिन्धुपारासरित्परिकरच्छलत उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराऽट्टसंघट्टपाटितविमुक्तम् अन्तरिक्षम् इव बिभर्ति इत्यन्वयः । पद्मावती = एतन्नाम्नी नगरी, विमलवारिविशालसिन्धुपारासरित्परिकरच्छलतः = विमलानि ( निर्मलानि ) वारीणि ( जलानि ) ययोस्ते, एतादृश्यौ विशाले (महत्यौ ये सिन्धुपारासरितौ ( सिन्धुपारानामिके नद्यौ ) तयोः परिकरच्छलतः ( उपकरणव्याजात् ) । उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराऽट्टसंघट्टपाटितविमुक्तम् = उत्तुङ्गाः (उन्नताः) ये सौधसुरमन्दिरगोपुराऽट्टाः ( राजसदन-देवमन्दिरपुरद्वाराट्टालिकाः ) तेषां संघट्टेन ( घर्षणेन ) प्राक्पाटितं ( विदारितम् ) पश्चाद्विमुक्तम् ( त्यक्तम् ) । अन्तरिक्षम् इव = आकाशम् इव, बिभर्ति = धारयति । अन्तरिक्षं चाऽत्र यन्नीलाकारेणोर्ध्वदेशे प्रतिभाति तज्ज्ञेयम्, अन्यथा विभुत्वेनाऽन्तरिक्षस्य पतनादिवार्ताऽनुपपत्तेरिति त्रिपुरारिः । अत्र कैतवापह्नुतिरुत्प्रेक्षाऽलङ्कारश्चेति तयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १ ॥

सैषेति।वलितोर्मिपङ्क्तिः सा एषा लवणा विभाति । अभ्राऽऽगमे जनपदप्रमदाय यस्याः गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारिसेव्योपकण्ठविपिनाऽऽवलयो विभान्तीत्यन्वयः। वलितोर्मिपङ्क्तिः = वलिता (चलिता, 'ललिता' इति पाठे मनोहरेत्यर्थः) ऊर्मिपङ्क्ति

खड़ी हूँ जैसे कि सम्पूर्ण ही पर्वत, नगर, ग्राम, नदी और पर्वत इनका समूह नेत्रोंसे साफ-साफ देख रही हूँ ( पीछे देखकर ) वाह-वाह ।

पद्मावती नगरी निर्मल जलवाली और विशाल सिन्धु तथा पारा नदीके उपकरणके बहानेसे उन्नत राजप्रासाद, देवमन्दिर, नगरका द्वार और अट्टालिका इनके घर्षणसे पहले विदारित और पीछे त्यक्त आकाशको जैसे धारण कर रही है ॥१॥

फिर भी—

जिसकी तरङ्ग-परम्परा चल रही है वह प्रसिद्ध लवणा नदी परिशोभित हो रही

रभ्रागमे जनपदप्रमदाय यस्याः ।
गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि-
सेव्योपकण्ठविपिनावलयो विभान्ति ॥ २ ॥

( अन्यतो विलोक्य ) स एष भगवत्याः सिन्धोर्दारितरसालस्तटप्रपातः ।

यत्रत्य एष तुमुलध्वनिरम्बुगर्भ-
गम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्डः ।

( तरङ्गावली ) यस्यां सा । एतादृशी—सा = प्रसिद्धा, एषा = समीपतरवर्तिनी, लवणा = लवणानामधेया नदी । विभाति = परिशोभते । अभ्रागमे = मेघागमे, वर्षासमय इति भावः । जनपदप्रमदाय = देशवासिजनहर्षाय, कन्दमूलफलच्छायाऽऽदिप्रदानादिति शेषः । यस्याः = लवणायाः । गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारिसेव्योपकण्ठविपिनाऽऽवलयः = गोगर्भिणीनां ( गर्भिणीनां गवाम्, 'चतुष्पादो गर्भिण्या' इति समासः ) प्रियाः ( अभीष्टाः ) नवाः ( नूतनाः ) ये उलपाः ( तृणविशेषाः ) तेषां मालभारिण्यः, (श्रेणिधारिण्यः, मालां बिभ्रतीति 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिः । 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' इति पूर्वपदस्य ह्रस्वत्वम् ।) अत एव सेव्योपकण्ठाः ( सेवनीयसमीपस्थानाः, सेव्य उपकण्ठो यासां ताः ) एतादृश्यो विपिनाऽऽवलयः ( वनपङ्क्तयः ) विभान्ति = शोभन्ते । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २ ॥

अन्यत इति । सः पूर्वपरिचितः । एषः समीपतरवर्ती । भगवत्याः = ऐश्वर्यशालिन्याः । सिन्धोः = तदाख्यनद्याः, 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना, सरिति स्त्रियाम् ।' इत्यमरः । दारितरसातलः = दारितं ( विदारितम् ) रसातलं ( पातालं, रसायाः = पृथिव्याः, तलम् = स्वरूपं 'रसा विश्वम्भरा स्थिरा' 'अधःस्वरूपयोरस्त्री तलम्' इति चामरः ) येन सः । तादृशः तटप्रपातः = तटात्, ( तीरात्, उच्चप्रदेशात् ) प्रपातः ( प्रपतनम् ) ।

यत्रत्य इति । यत्रत्यः अम्बुगर्भगम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्डः एष तुमुलध्वनिः

है । वर्षाके समयमें देशवासिजनके हर्षके लिए जिसकी—गर्भिणी गौओंके प्रिय और नये तृणविशेषोंकी पङ्क्तिको धारण करनेवाली और सेवनीय स्थानवाली वनपङ्क्ति विशेष शोभित हो रही हैं ॥ २ ॥

( दूसरी ओर देखकर ) यह वही भगवती सिन्धु नदीका पातालको विदारित करनेवाला तट प्रपात है ।

जलपूर्ण गम्भीर शब्दवाले नये मेघके गर्जनके सदृश प्रचण्ड जिस तटप्रपातमें

जय रुचिरचन्द्रशेखर जय मदनान्तक जयादिगुरो ॥ ४ ॥

( गमनमभिनीय )

अयमभिनवमेघश्यामलोत्तुङ्गसानु-
र्मदमुखरमयूरीमुक्तसंसक्तकेकः ।
शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा
वितरति बृहदश्मा पर्वतः प्रीतिमक्ष्णोः ॥ ५ ॥

---

सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । हे रुचिरचन्द्रशेखर=हे सुन्दरेन्दुशिरोभूषण, रुचिरश्चन्द्रः शेखरो यस्य स तत्सम्बुद्धौ । जय=सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । हे मदनाऽन्तक=हे मन्मथनाशक ! जय=सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । हे आदिगुरो=प्राचीनाऽऽचार्य, आदिगुरुत्वं चाऽस्य 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये' इति वचनाद् ब्रह्मणोऽप्युपदेशकत्वाद्बोध्यम् । जय=सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । अत्र विशेषणानां साऽभिप्रायत्वात् परिकरालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'उक्तैर्विशेषणैः साऽभिप्रायः परिकरो मतः ।' इति । आर्या जातिः ॥ ४ ॥

अयमिति । अभिनवमेघश्यामलोत्तुङ्गसानुः मदमुखरमयूरीमुक्तकेकः शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा बृहदश्मा अयं पर्वतः अक्ष्णोः प्रीतिं वितरतीत्यन्वयः । अभिनवमेघश्यामलोत्तुङ्गसानुः=अभिनवाः ( नूतनाः, जलपरिपूरिता इति भावः ) ये मेघाः ( अभ्राणि ) तैः श्यामलाः ( श्यामवर्णाः ) उत्तुङ्गाः ( अत्युन्नताः ) सानवः ( प्रस्थाः समप्रदेशा इति भावः ) यस्य सः । मदमुखरमयूरीमुक्तसंसक्तकेकः= मदेन ( मत्ततया ) मुखराः ( शब्दायमानाः ) या मयूर्यः (शिखिन्यः) ताभिर्मुक्ताः ( त्यक्ताः, कृता इति भावः ) संसक्ताः ( अविच्छिन्नाः ) केकाः ( स्वशब्दाः ) यस्मिन्सः । शकुनिशबलनीडाऽनोकहस्निग्धवर्ष्मा=शकुनिभिः ( पक्षिभिः ) शबलाः ( कर्बुराः ) ये नीडाऽनोकहाः ( कुलायवृक्षाः ) तैः स्निग्धं ( चिक्कणम् ) वर्ष्म ( शरीर, 'शरीरं वर्ष्म विग्रह' इत्यमरः ) यस्य सः । एवं च—बृहदश्मा=बृहन्तः (महान्तः) अश्मानः (प्रस्तराः) यस्मिन्सः । अयं=दृश्यमानः, पर्वतः=शैलः, अक्ष्णोः= नेत्रयोः, प्रीतिंहर्षं, वितरति=ददाति, दर्शकायेति शेषः । मालिनी वृत्तम् ॥ ५ ॥

---

हे देव ! आपकी जय हो । कामदेवका संहार करनेवाले हे देव ! आपकी जय हो । हे आदिगुरो ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

( गमनका अभिनय कर )

नये मेघोंसे श्यामवर्णवाले अत्युन्नत प्रस्थोंसे युक्त, मदसे शब्द करनेवाली मोरनियोंसे किये गये शब्दोंसे सम्पन्न, पक्षियोंसे रङ्ग विरङ्ग घोंसलोंके पेड़ोंसे चिकना

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः ॥ ६ ॥

दधतीति । अत्र कुहरभाजां भल्लूकयूनाम् अनुरसितगुरूणि अम्बूकृतानि स्त्यानं दधति, सल्लकीनां शिशिरकटुकषायः इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः स्त्यायते इत्यन्वयः । अत्र=अस्मिन्, पर्वत इत्यर्थः । कुहरभाजां=गिरिगुहावर्तिनां, कुहरं भजन्तीति कुहरभाजस्तेषां 'भजो ण्विः' इति ण्विप्रत्ययः । यद्यपि 'अथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम् ।' इत्यमराऽनुरोधेन कुहरशब्दस्य बिलवाचकत्वं, तथाऽपि लक्षणयाऽत्र गुहावाचकत्वमवसेयम् । भल्लूकयूनां=तरुणभल्लानां, भल्लूकाश्च ते युवानस्तेषाम्, विशेषणविशेष्यत्वे कामचारादेव प्रयोगः । शब्दगुरुत्वद्योतनाऽर्थोऽयं युवशब्दः । अनुरसितगुरूणि = अनुरसितेन ( प्रतिध्वनिना ) गुरूणि ( महान्ति ) । अम्बूकृतानि = सनिष्ठीवाः शब्दाः, थुत्कारात्मका इत्यर्थः । 'अम्बूकृतं सनिष्ठीवम्' इत्यमरः । स्त्यानं=वृद्धिं, 'स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः' इति धातोः क्तप्रत्ययः 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' इति तस्य नत्वम् । दधति = धारयन्ति । सल्लकीनां = गजभक्ष्याणां लताविशेषाणां, क्वचित् 'शल्लकीनाम्' इति पाठान्तरम् । शिशिरकटुकषायः= शिशिरः ( शीतलः ) कटुः ( तीक्ष्णः ) कषायः ( सुरभिः ) । इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः=इभैः ( हस्तिभिः ) दलिताः ( मर्दिताः ) अत एव विकीर्णाः ( इतस्ततः पर्यस्ताः ) ये ग्रन्थयः ( पर्वाणि, 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः ) तेषां यो निष्यन्दः ( रसः ) तस्य गन्धः ( आमोदः, 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः ।' इति विश्वः ) । स्त्यायते = वर्द्धते । श्लोकोऽयमुत्तररामचरितेऽपि द्वितीयाङ्के शम्बूकवक्तृकत्वेन उपन्यस्तः । अत्राऽम्बूकृतानां वृद्धौ अनुरसितगुरुत्वस्य हेतुत्वात्पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ६ ॥

शरीरवाला और बड़े-बड़े पत्थरोंसे युक्त यह पर्वत नेत्रोंमें प्रीतिका वितरण कर रहा है ॥ ५ ॥

इस पर्वतपर गुफाओंमें रहनेवाले जवान भालुओंके प्रतिध्वनिसे फैले हुए निष्ठीवन ( थुत्कृत ) से युक्त शब्द वृद्धिको प्राप्त करते हैं । सल्लकी ( हाथीसे खायी जानेवाली ) लताओंका ठण्डा, तीक्ष्ण और सुगन्धित, हाथियोंसे मर्दित और बिखरे हुए पर्वों ( गाँठों ) के रसका गन्ध बढ़ रहा है ॥ ६ ॥

( ऊर्ध्वमवलोक्य ) अये, कथं मध्याह्नः । तथा हि संप्रति—

काश्मर्याः कृतमालमुद्गतदलं कोयष्टिकष्टीकते
तीराश्मन्तकशिम्बिचुम्बितमुखा धावन्त्यपः पूर्णिकाः ।
दात्यूहैस्तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थितं
वीरुन्नीडकपोतकूजितमनुक्रन्दन्त्यधः कुक्कुभाः ॥ ७ ॥

काश्मर्या इति । कोयष्टिकः काश्मर्याः उद्गतदलं कृतमालं टीकते । तीराऽश्मन्तकशिम्बिचुम्बितमुखाः पूर्णिकाः अपो धावन्ति । दात्यूहैः तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थितम् । कुक्कुभाः अधः वीरुन्नीडकपोतकूजितम् अनुक्रन्दन्तीत्यन्वयः । कोयष्टिकः = टिट्टिभकः, पक्षिविशेषः । काश्मर्याः = मधुपर्णीवृक्षात् , 'गम्भारी सर्वतोभद्रा काश्मरी मधुपर्णिका ।' इत्यमरः । उद्गतदलम् = उद्गतानि ( उत्पन्नानि ) दलानि ( पत्राणि ) यस्य तम् । तादृशं कृतमालम् = आरग्वधवृक्षम् , 'आरग्वधे राजवृक्षशम्याकचतुरङ्गुलाः । आरेवतव्याधिघातकृतमालसुवर्णकाः ॥' इत्यमरः । टीकते = गच्छति, काश्मर्या अल्पपत्रत्वाच्छायाऽर्थं बहुपत्रमारेवतं गच्छतीति भावः । यद्वा—कृतमालं = कृता ( सम्पन्ना ) माला (वृक्षपङ्क्तिः) यस्मिंस्तम् । तादृशं प्रदेशं गच्छतीति भावः । तीराऽश्मन्तकशिम्बिचुम्बितमुखाः = तीरे ( नदीतटे ) ये अश्मन्तकाः ( तृणविशेषाः ) तेषां शिम्बयः ( अग्रभागाः ) तत्र चुम्बितं ( संयुक्तं, भोजनायेति शेषः ) मुखम् ( आननम् ) येषां ते । तथाविधाः पूर्णिकाः = पक्षिविशेषाः, 'अपः पूर्णिकाः=कुम्भीरमक्षिकाः' इति जगद्धरः । अपः=जलम् , पातुमिति शेषः । धावन्ति=शीघ्रं गच्छन्ति । दात्यूहैः=कालकण्ठकैः, पक्षिविशेषैः । 'दात्यूहः कालकण्टक' इत्यमरः । तिनिशस्य=स्यन्दनस्य, वृक्षविशेषस्य । 'तिनिशे स्यन्दनो नेमी रथद्रुरतिमुक्तकः ।' इत्यमरः । कोटरवति=छिद्रयुक्ते, स्कन्धे=प्रकाण्डे, 'अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाकाऽवधिस्तरोः ।' इत्यमरः । निलीय=निलीनैर्भूत्वा, स्थितम्= अवस्थानं कृतं, भावे क्तप्रत्ययः । कुक्कुभाः= ग्रामचटकाकृतयः पक्षिविशेषाः, यदाह शारचन्द्रिकाकारः—'सितपुच्छो नीलगलः स्याद्ग्रामचटकाकृतिः । कुक्कुभः कुक्कुटाराव स्थलजो रक्तवर्णकः ॥' इति । अधः = अधोदेशे, वीरुन्नीडकपोतकूजितं = वीरुत्सु ( प्रतानिनीषु लतासु ) यानि नीडानि ( कुलायाः ) तेषु स्थिता ये कपोताः

(ऊपर देखकर) अरे ! कैसा मध्याह्न (दुपहर) हो गया है । जैसा कि अभी—

टिटिहरी गम्भरी वृक्षसे लगे हुए पत्तोंसे युक्त आरग्वध वृक्षके ऊपर जाती है। किनारेमें विद्यमान अश्मन्तक नामके तृणोंके अग्रभागोंमें खानेके लिए मुँह लगानेवाली पूर्णिका नामकी पक्षिणी जलके समीप दौड़ रही है । कालकण्ठक नामके पक्षी स्यन्दन वृक्षके छिद्रयुक्त प्रकाण्डमें छिपकर बैठा है । गाँवके गौरैयाके सदृश

तद्भवतु। माधवमकरन्दावन्विष्य यथाप्रस्तुतं साधयामि। (इति निष्क्रान्तः)

शुद्धविष्कम्भः।

(ततः प्रविशति माधवो मकरन्दश्च)

मकरन्दः—(सकरुणं निःश्वस्य)

न यत्र प्रत्याशामनुपतति नो वा रहयति
प्रतिक्षिप्तं चेतः प्रविशति च मोहान्धतमसम्।

---

(पारावताः) तेषां कूजितं=शब्दम्, अनुक्रन्दन्ति=अनुकृत्य शब्दायन्ते। अत्र मध्याह्नप्रतिपादनरूपं कार्यं प्रतिबहुकारणोपन्यासात्समुच्चयाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

तदिति। यथाप्रस्तुतं=प्रस्तुतकार्यमनुसृत्येत्यर्थः। प्रस्तुतमनतिक्रम्येति पदार्थाऽनतिवृत्तिरूपे यथाऽर्थेऽव्ययीभावः।

शुद्धविष्कम्भ इति। अत्र वृत्तानां वर्तिष्यमाणानां च कथांऽशानां निदर्शनाद्विष्कम्भत्वमवसेयम्। तत्राऽपि मध्यमपात्रेण प्रयोजितत्वाच्छुद्धत्वं ज्ञेयम्।

न यत्रेति। चेतो यत्र प्रत्याशां न अनुपतति, वा प्रतिक्षिप्तं नो रहयति। मोहाऽन्धतमसं प्रविशति च। इमे वयं विधातुः वामत्वात् अकिञ्चित्कुर्वाणाः पशव इव तस्यां विपदि परिवर्तामहे। अहो! इत्यन्वयः। चेतः=मनः, अस्मदीयमिति शेषः। यत्र=यस्यां, विपदि, प्रत्याशां='मालतीं भूयो लप्स्यामहे' एतत्स्वरूपामाशां, न अनुपतति=न अनुगच्छति, वा=अथवा, प्रतिक्षिप्तं=निराशं सत्, नो रहयति=न त्यजति, मालतीप्राप्तिविषयामाशामिति शेषः। मालती जीवति न वेति ज्ञानाऽभावादिति भावः। एवं च मोहान्धतमसम्=अज्ञानाऽन्धकारम्, अन्धं च तत् तमोऽन्धतमसम्, 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इति समासाऽन्तोऽच्प्रत्ययः। 'ध्वान्ते

---

आकारवाले कुक्कुभ नामवाले पक्षी नीचे, फैलनेवाली लताओंमें बैठे हुए घोसलोंके कबूतरोंकी आवाजकी नकल कर रहे हैं ॥ ७ ॥

वह हो। माधव और मकरन्दको ढूंढकर प्रस्तुत कार्यके अनुसार अभीष्टको सिद्ध करती हूँ। (ऐसा कहकर निकलती है।)

शुद्धविष्कम्भ।

(तब माधव और मकरन्द प्रवेश करते हैं।)

मकरन्द— (करुणाके साथ निःश्वास लेकर)

हमलोगोंका चित्त, जिस विपत्तिमें मालतीको पानेकी आशा नहीं करता है और

अकिंचित्कुर्वाणाः पशव इव तस्यां वयमहो
विधातुर्वामत्वाद्विपदि परिवर्तामह इमे ॥ ८ ॥

माधवः—हा प्रिये, मालति, क्वासि। कथमविज्ञाततत्त्वमद्भुततमं झटिति पर्यवसितासि। नन्वकरुणे, प्रसीद। संभावय माम्।

प्रियमाधवे ! किमसि मय्यवत्सला
ननु सोऽहमेव यमनन्दयत्पुरा।

गाढेऽन्धतमसम्' इत्यमरः। मोह एवाऽन्धतमसं, तत्। प्रविशति च = प्रवेशं करोति च अस्मदीयं मनः किंकर्तव्यताविमूढतास्थितिमापद्यत इति भावः। इमे = एते वयं = मकरन्दादयः, विधातुः = भाग्यस्य, वामत्वात् = प्रतिकूलत्वात्, अकिञ्चित्कुर्वाणाः = किमपि कर्म अकुर्वन्तः, विपत्प्रतिकाराऽनुरूपमिति शेषः। पशव इव = चतुष्पदा इव, केवलाऽऽहारनिद्राव्यापारा इति भावः। तस्यां = तथाविधायाम्, अकृतप्रतीकारायामिति भावः। विपदि = आपत्तौ, मालत्यप्राप्तिरूपायामिति भावः। परिवर्तामहे = तिष्ठामः, अहो = आश्चर्यम्। उद्भटैर्विकटराजभटैः समं विग्रहेणाऽसाधारणं रणनैपुण्यं प्रदर्शयन्तः समासादितराजप्रसादा अपि वयं नियतिगतेर्वामत्वात्प्रत्युपस्थितविपत्प्रतीकारेऽशक्ताः सन्तः पशुसमाः संजाता इति भावः। अत्राऽनुपतनाद्यनेकक्रियासु चेतोरूपस्यैकस्य पदार्थस्य कर्तृकारकत्वाद्दीपकालङ्कारः। पशव इवेत्यत्रोपमा च। एवं चाऽनयोर्मिथोऽपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ८ ॥

माधव इति। अविज्ञाततत्त्वम् = अविज्ञातम् ( अविदितम् ) तत्त्वं ( यथार्थस्वरूपम् ) यस्य तत्। तादृशम् अद्भुततमम् = साऽतिशयमाश्चर्यम्। झटिति=द्रुतमेव। पर्यवसिता = समाप्तिं गता। अकरुणे = निर्दये !।

प्रियमाधव इति। हे प्रियमाधवे ! मयि किम् अवत्सला असि। ननु अहं स एव। पुरा आगृहीतकमनीयकङ्कणो मूर्तिमान् महोत्सव इव तव करो यं स्वयम् अनन्दय-

न उस आशाका परित्याग ही करता है केवल अज्ञानरूप गाढ़ अन्धकारमें प्रवेश करता है। ये हमलोग भाग्यकी प्रतिकूलतासे कुछ भी नहीं करते हुए पशुओंके सदृश होकर उस विपत्तिमें पड़े हुए हैं। आश्चर्य है ॥ ८ ॥

माधव—हा प्रिये मालति ! तुम कहाँ हो ? जिसका तत्त्व नहीं जाना गया है ऐसे अतिशय आश्चर्यमें तुम कैसे झटपट पर्यवसित हो गयी हो ? अरी निर्दये ! प्रसन्न हो। मुझे सँभालो।

हे माधवसे प्रेम करनेवाली ! मेरे ऊपर क्यों प्रणयशून्य हो गयी हो ? अरी !

स्वयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥ ९ ॥

वयस्य मकरन्द, दुर्लभः खलु जगति तावतः स्नेहस्य संभवः ।

सरसकुसुमक्षामैरङ्गैरनङ्गमहाज्वर-
श्चिरमविरतोन्माथी सोढः प्रतिक्षणदारुणः ।

दित्यन्वयः । हे प्रियमाधवे = प्रियः ( वल्लभः ) माधवो यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । अथवा—प्रियश्चाऽसौ माधवस्तस्मिन् अभीष्टे माधवे इत्यर्थः । मयि = विषये, किं = कथम्, अवत्सला = वात्सल्यरहिता, प्रणयरहितेति भावः । असि = वर्तसे । ननु = हे मालति !, अहं = माधवः, स एव = प्रणयसंलापव्यापारादिभिरनुभूत एव, मम न किमपि परिवर्तनं जातमिति भावः । पुरा=प्राक्, आगृहीतकमनीयकङ्कणः = आगृहीतं ( धृतम् ) कमनीयं ( सुन्दरम् ) कङ्कणं ( करभूषणम् ) येन सः । मूर्तिमान् = शरीरी, महोत्सव इव = महोत्सव इव, तव = भवत्याः, करः = पाणिः, यं = मां माधवं, स्वयम् = आत्मनैव, न तु जनान्तरेणेति भावः । अनन्दयत् = आनन्दितमकरोत् । अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धमुत्तररामचरिते रामवक्तृकत्वेनेषत्परिवर्तनेन समुपन्यस्तम् । अत्र 'मूर्तिमान् महोत्सव इवे'त्यत्र गुणोत्प्रेक्षा । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥

वयस्येति । वयस्य = हे सवयः, वयसा तुल्यो वयस्यस्तत्सम्बुद्धौ, 'नौवयोधर्म'—त्यादिना यत् । तावतः = तत्परिमाणस्य, अपरिमितस्येति भावः । 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' इति वतुप् ।

आत्मनि मालत्याः स्नेहोत्कर्षं प्रतिपादयति—सरसेति । तया सरसकुसुमक्षामैः अङ्गैः अविरतोन्माथी प्रतिक्षणदारुणः अनङ्गमहाज्वरः चिरं सोढः । ततः तृणमिव प्राणान् मोक्तुं मनो विधृतम् । यत् कराऽर्पणसाहसं निर्व्यूढम्, अतः अपरं किम् ? इत्यन्वयः । तया = मालत्या, सरसकुसुमक्षामैः = सरसानि ( मधुपूर्णानि, प्रत्यग्रत्वादिति भावः ) यानि कुसुमानि ( पुष्पाणि ) तानीव क्षामाणि ( कृशानि, 'क्षायो मः' इति निष्ठातस्य मत्वम् ), तैः । तादृशैः अङ्गैः = शरीराऽवयवैः, अविरतोन्माथी = अविरतं ( निरन्तरम् ) यथा तथा उन्मथनशीलः, प्रतिक्षणदारुणः = प्रतिसमयमुन्मूलनोद्यतः, तादृशः अनङ्गमहाज्वरः = मदनमहाज्वरः, चिरं = बहुकालं

मैं वही हूँ, पहले सुन्दर कङ्कणको धारण करनेवाला मूर्तिमान् महोत्सवके सदृश तुम्हारे हाथने जिस ( माधव ) को स्वयं आनन्दित किया था ॥ ९ ॥

सखे मकरन्द ! जगतमें वैसे प्रेम की उत्पत्ति दुर्लभ है ।

उन्होंने ( मालतीने ) सरस फूलोंके सदृश कृश अङ्गोंसे निरन्तर उन्मथनशील अतएव प्रतिक्षण उन्मूलनके लिए उद्यत कामरूप महाज्वरका बहुत समय तक

तृणमिव ततः प्राणान्मोक्तुं मनो विधृतं तया
किमपरमतो निर्व्यूढं यत्करार्पणसाहसम् ॥ १० ॥

अपि च—

मयि विगलितप्रत्याशत्वाद्विवाहविधेः पुरा
विकलकरणैर्मर्मच्छेदव्यथाविधुरैरिव ।

यावत्, सोढः = मर्षितः, अन्यो ज्वरस्तु कंचित्कालं यावदेव उन्मूलनोद्यतः, अयं मदनज्वरस्तु निरन्तरमुन्मूलनोद्यतः, अतो ज्वरान्तराऽपेक्षया मदनज्वरस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते। यस्य मन्मथज्वरस्य दशमीमवस्थां प्राप्य ज्वरितो जनस्तनुमपि विजहाति तादृशोऽपि ज्वरोऽनया चिरकालं सोढ इति भावः। ततः = अनन्तरं, नन्दनेन सममात्मनः परिणये निश्चिते सतीति भावः। तृणमिव = अर्जनमिव, 'तृणमर्जनम्' इत्यमरः। प्राणान् = असून्, मोक्तुं = त्यक्तुं, मनः=चित्तं, विधृतं = व्यवस्थापितम्। किं बहुना—कुलकन्यकाजनविरुद्धं, यत् करार्पणसाहसं = पाणिसमर्पणाऽध्यवसायः, मातापित्रादिगुरुजनाऽनुमतिमन्तरेणेति शेषः। निर्व्यूढं = निर्वाहं नीतम्। अतः = अस्मात्, अपरं=भिन्नं, किं=किं ब्रूमः, मयि मालत्याः प्रणयोत्कर्षविषय इति भावः। मयि मालत्याः स्नेहो लोकाऽतिशायीति तात्पर्यम्। अत्र 'सरसकुसुमच्छामै'रित्यत्र लुप्तोपमा तृणमिवेत्यत्रोपमा चेति द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। हरिणी वृत्तम्॥

मयीति। (हे सखे!) असौ विवाहविधेः पुरा मयि विगलितप्रत्याशत्वात् मर्मच्छेदव्यथाविधुरैरिव विकलकरणैः हृदितैः तथाऽपि स्नेहाऽऽकूतम् अतनोत्, यथा अहमपि पीडातरङ्गितमानसः अभूवं, स्मरसि? इत्यन्वयः। (हे सखे = हे मित्र! मकरन्द!!) असौ = मालती, विवाहविधेः = उद्वाहविधानात्, नन्दनेन सममिति शेषः। पुरा = पूर्वं, मयि = वल्लभे, माधवे। विगलितप्रत्याशत्वात् = मत्प्राप्त्याशाराहित्यादिति भावः। मर्मच्छेदव्यथाविधुरैरिव = मर्मच्छेदे (हृदयादिमर्मस्थानद्वैधीकरणे) या व्यथा (पीडा) तया विधुरैरिव = (दीनैरिव)। विकलकरणैः=स्वरव-

सहन किया। तदनन्तर तृणके सदृश प्राणोंको छोड़नेके लिए मनको व्यवस्थापित किया। उन्होंने पाणिग्रहणके साहसका जो निर्वाह किया इससे भिन्न (उनके प्रेमके उत्कर्षके लिए) और क्या कहूँ? ॥ १० ॥

और भी—

हे मित्र! उस (मालती) ने नन्दनके साथ विवाह विधानके पहले मेरी प्राप्तिमें आशा न होनेसे हृदय आदि मर्मस्थानमें छेद होनेपर होनेवाली पीड़ासे

स्मरसि रुदितैः स्नेहाकूतं तथाप्यतनोदसा-
वहमपि यथाऽभूवं पीडातरङ्गितमानसः ॥ ११ ॥

( सावेगम् ) अहो नु खलु भोः !

दलति हृदयं गाढोद्वेगं, द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं, न मुञ्चति चेतनाम् ।

व्यापाराऽसमर्थेन्द्रियैः, रुदितैः = रोदनैः, तथाऽपि = तस्यां दशायामपि, स्नेहाकूतं = प्रणयपूर्णाऽभिप्रायम्, अतनोत् = विस्तारितवती ममेति शेषः । यथा = येन स्नेहाकूतेन, अहमपि=माधवोऽपि, पीडातरङ्गितमानसः=पीडया ( तदीयवेदनया ) तरङ्गितं ( सञ्जाततरङ्गं, चञ्चलमिति भावः ) मानसं ( चित्तम् ) यस्य सः । तादृशः अभूवम्=अभवम्, स्मरसि = किं त्वं स्मरणं करोषीति काकुः, वाक्याऽर्थः कर्म । तथा च मयि मालत्याः स्नेहप्रकर्षो वागगोचर आसीदिति भावः । अत्र मर्मच्छेदव्यथाविधुरैरिवेति उत्प्रेक्षालङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ॥ ११ ॥

साऽऽवेगमिति । साऽऽवेगं = ससम्भ्रमम् । अहोशब्द आश्चर्ये । नु=वितर्के । भोः=सम्बुद्धौ ।

दलतीति । गाढोद्वेगं हृदयं दलति, तु द्विधा न भिद्यते । विकलः कायो मोहं वहति, चेतनां न मुञ्चति । अन्तर्दाहः तनूं ज्वलयति, भस्मसात् न करोति । मर्मच्छेदी विधिः प्रहरति जीवितं न कृन्ततीत्यन्वयः । गाढोद्वेगं=गाढः ( दृढः ) उद्वेगः व्याकुलत्वं, मालतीविप्रयोगजमिति भावः ) यस्य तत्, एतादृशं हृदयं = वक्षःस्थलं, दलति = स्वयमेव विदलितं भवति, तु = परन्तु, द्विधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां, न भिद्यन्ते=भिन्नं न भवति, पृथक्कारेण खण्डद्वयं न भवतीति भावः । श्लोकोऽयमुत्तररामचरिते तृतीयाऽङ्के रामवक्तृकत्वेनोपन्यस्तः परं तत्र 'दलति हृदयं शोकोद्वेगा'दिति पाठभेदः । शोकोद्वेगाद्विदीर्णत्वेऽपि हृदयस्य शकलद्वयं न भवति, भवेच्चेदेतादृशं दुःखं न भवेदिति भावः । विकलः = विह्वलः, शोकेनेति शेषः । कायः=शरीरं, मोहं= मूर्च्छां, वहति = आश्रयति, परन्तु चेतनां = चैतन्यं, न मुञ्चति = न त्यजति, चैतन्य-

दीन होनेके सदृश विकल इन्द्रियोंवाले रोदनोंसे वैसी अवस्थामें भी मेरे ऊपर प्रणयपूर्ण अभिप्रायका प्रकाश किया जिससे मैं भी पीड़ामें चञ्चल चित्तवाला हो गया था, तुम्हें स्मरण है ? ॥ ११ ॥

( संभ्रमके साथ ) आश्चर्य है । अरे !

दृढ़ व्याकुलतासे युक्त हृदय विदीर्ण होता है, लेकिन दो टुकड़ोंमें विभक्त नहीं होता है । शोकसे विह्वल शरीर मोहको धारण करता है, लेकिन चैतन्यको नहीं

ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः, करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी, न कृन्तति जीवितम् ॥ १२ ॥

मकरन्दः—निरवग्रहो दहति दैवमिव दारुणो विवस्वान् । इयं च ते शरीरावस्था । तदस्य पद्मसरसः परिसरे मुहूर्तमास्यताम् । अत्र हि—

---

त्यागरूपे मरणे सति एतादृग्दुःखं नाऽनुभवेयमिति भावः । अत्र कायाऽवच्छिन्न आत्मा कायपदेनोक्तः, अन्यथा मोहस्याऽऽत्मधर्मतया कार्येऽसम्भव इति बोध्यम् । तदिहाऽऽध्यात्मिकं विपद्द्वयमुक्तम् । अन्तर्दाहः=अन्तःकरणसन्तापः, तनूं=शरीरं, ज्वलयति=सन्तापयति, परन्तु भस्मसात् न करोति=भस्मीभूतां न विदधाति 'विभाषा साति कार्त्स्न्ये' इति सातिप्रत्ययः । मनस्तापो यदि शरीरं भस्मसात्करिष्यत्तर्ह्येतादृशो विरहसन्तापो नाऽभविष्यदिति भावः । अनेनाऽऽधिभौतिकी विपत्तिरुक्ता । एवं च—मर्मच्छेदी=हृदयादिमर्मस्थानच्छेदनशीलः, मर्माणि ( हृदयादिजीवितस्थानानि ) छिनत्ति ( विदारयति ) इति मर्मच्छेदी, ताच्छील्ये णिनिः । विधिः=भाग्यं, प्रहरति=प्रहारं करोति, परं जीवितं=जीवनं, न कृन्तति=न छिनत्ति, विधिना जीवनच्छेदे कृते त्वसकृदेवं मालतीविप्रयोगवेदनाऽनुभावी न भवेयमिति भावः । अत्र दलनादौ कारणे सत्यपि द्विधाभेदनाऽऽदिरूपफलाऽभावाच्चतुर्ष्वपि चरणेषु विशेषोक्त्यलङ्काराणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । हरिणी वृत्तम् ॥ १२ ॥

मकरन्द इति । अत उत्तरं 'वयस्य ! माधव !!' इत्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे । निरवग्रहः=निरङ्कुशो निर्मोहो वा, निर्गतोऽवग्रहो यस्मात्सः । 'निरवग्रहम्' इति पाठान्तरे 'दहती'ति क्रियया विशेषणं बोध्यम् । दैवमिव=भाग्यमिव, अस्मदीयं प्राक्तनकर्मेव । इयम्=ईदृशी दुरतिक्रमदशा प्राप्तेति भावः । पद्मसरसः=पद्मप्रचुरकासारस्य, परिसरे=पर्यन्तभुवि तट इति भावः । मुहूर्तं=कञ्चित्कालं, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । आस्यताम्=उपविश्यतां, भाववाच्यः प्रयोगः ।

---

छोड़ता है । अन्तःकरणका सन्ताप शरीरको जलाता है, लेकिन भस्म नहीं करता है; इसी तरह हृदय आदि मर्मस्थलका छेदन करनेवाला भाग्य प्रहार करता है, लेकिन जीवनको नष्ट नहीं करता है ॥ १२ ॥

मकरन्द—निरङ्कुश अथवा मोहरहित कठोर सूर्य, भाग्यके सदृश ताप कर रहे हैं और यह तुम्हारी शरीरकी अवस्था है । इस कारणसे इस प्रचुर कमलोंसे युक्त तालाबके किनारेमें कुछ समय तक बैठ जाओ । क्योंकि यहाँ पर—

उन्नालबालकमलाकरमाकरन्द-
निष्यन्दसंवलितमांसलगन्धबन्धुः ।
त्वां प्राणयिष्यति पुरः परिवर्तमान-
कल्लोलशीकरतुषारजडः समीरः ॥ १३ ॥

( परिक्रम्योपविशतः )

मकरन्दः—( स्वगतम् ) भवतु । एवं तावदाक्षिपामि । ( प्रकाशम् ) वयस्य माधव !

---

उन्नालेति । उन्नालबालकमलाकरमाकरन्दनिष्यन्दसंवलितमांसलगन्धबन्धुः पुरः परिवर्तमानकल्लोलशीकरतुषारजडः समीरः त्वां प्राणयिष्यतीत्यन्वयः । उन्नालबाले॰त्यादिः=उद्गतानि ( उत्पन्नानि ) नालानि (नालाः ) येषां तानि उन्नालानि, एता॰दृशानि बालानि ( नवीनानि ) यानि कमलानि ( पद्मानि ) तेषामाकरः ( उत्पत्ति॰स्थानम् ) तस्मिन् यो माकरन्दः ( मकरन्दसम्बन्धी, 'तस्येदम्' इत्यण् ) निष्यन्दः ( क्षरणम् ) तेन संवलितः ( मिश्रीभूतः ) यो मांसलः ( पुष्टः ) गन्धः ( सौरभम् ) तद्बन्धुः ( तत्सहचरः ) । तथा पुरः=अग्रे, परिवर्तमानकल्लोलशीकरतुषारजडः=परिवर्तमानाः ( परिवर्तनं कुर्वन्तः ) ये कल्लोलाः ( महातरङ्गाः ) तेषां शीकराः ( अम्बुकणाः ) एव तुषाराः ( हिमानि ) तैः जडः ( शीतलः ) । एतादृशः समीरः=वायुः, त्वां=भवन्तं, प्रियाविरहेण प्रचण्डसूर्यकिरणेन च सन्तप्तं माधवमिति भावः । प्राणयिष्यति=प्रत्यागतप्राणं विधास्यति, 'प्रीणयिष्यती'ति पाठान्तरे प्रीतं करिष्यति, तापाऽपनोदनेन स्वक्लान्तिमपनेष्यतीति भावः । अत्र......'तुषारजड' इत्यत्र आपाततस्तुषारजडयोः पौनरुक्त्याऽवभासात्पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्याऽवभासनम् । पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाऽऽकारशब्दगः ॥' इति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १३ ॥

मकरन्द इति । आक्षिपामि=आक्षेपं करोमि, अस्य चेतो विषयान्तरसंलग्नं करोमीति भावः । 'अन्यतः प्रक्षिपामी'ति पाठान्तरे अन्यतः=विषयान्तरे, प्रक्षिपामि=प्रेरयामीत्यर्थः ।

---

उत्पन्न हुए नालोंसे युक्त कमलोंके उत्पत्तिस्थानमें पुष्परसके क्षरणसे मिश्रीभूत प्रचुर सौरभका सहचर एवं सम्मुखमें चलनेवाले महातरङ्गोंके तुषारके तुल्य कणोंसे ठण्डा वायु तुम्हें प्रत्यागत प्राणवाला करेगा ॥ १३ ॥

( दोनों पादक्षेप कर बैठ जाते हैं । )

मकरन्द—( मन ही मन ) हो । मैं इस तरह इनके चित्तको विषयान्तरमें लगाता हूँ । ( सुनाकर ) मित्र माधव !

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः ।
बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले
दृश्यन्तामविरहितश्रियो विभागाः ॥ १४ ॥

( माधवः सोद्वेगमुत्तिष्ठति )

मकरन्दः—कथं निष्प्रतिपत्तिशून्यमुत्थायान्यतः प्रवृत्तः। (निःश्वस्योत्थाय) सखे, प्रसीद । पश्य—

एतस्मिन्निति । एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः अविरहितश्रियो विभागाः बाष्पाऽम्भःपरिपतनोद्गमाऽन्तराले दृश्यन्तामित्यन्वयः । एतस्मिन् = अस्मिन् , सरसीति भावः । मदकलेत्यादिः = मदेन ( मत्ततया ) कलः ( अस्फुटमधुरशब्दः ) येषां ते, तादृशा ये मल्लिकाक्षाः (मलिनचञ्चुचरणयुक्ता हंसविशेषाः, 'मल्लिकाख्या' इति पाठे मल्लिकः आख्या = नाम येषां ते, 'मल्लिको हंसभिद्यपि' इति मेदिनी ) तेषां पक्षैः ( पतत्रैः ) व्याधूतानि ( कम्पितानि ) स्फुरन्ति ( शोभमानानि ) उरुदण्डानि ( बृहन्नालानि ) पुण्डरीकाणि ( श्वेतकमलानि ) येषु ते । अत एव अविरहितश्रियः = अविरहिता ( अपरित्यक्ता, संयुक्ता इत्यर्थः ) श्रीः ( शोभा ) येषां ते । एतादृशो विभागाः=सरःप्रदेशाः, बाष्पाऽम्भःपरिपतनोद्गमाऽन्तराले = बाष्पाऽम्भसाम् ( अश्रुजलानाम् ) परिपतनम् ( क्षरणम् ) उद्गमश्च ( नेत्रयोर्मध्ये प्रादुर्भावश्च ) तयोरन्तराले ( मध्ये ) दृश्यन्तां = विलोक्यन्तां, कर्मवाच्यप्रयोगः, युष्माभिरिति शेषः । अश्रुपाताऽऽविर्भावयोर्नेत्रपिधानाद्दर्शनाऽभावः, अतस्तन्मध्यकाले प्रतिबन्धाऽभावात्तादृशा रमणीयाः सरःप्रदेशाः प्रत्यक्षीक्रियन्तामिति भावः । उत्तररामचरितेऽपीषत्परिवर्तनेन प्रथमाङ्के रामवक्तृकत्वेनाऽयं श्लोकोऽवतारितः । तच्च परिवर्तनं चतुर्थचरणे, तद्यथा-'संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः ।' इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ १४ ॥

मकरन्द इति । निष्प्रतिपत्तिशून्यं=निष्प्रतिपत्त्या (अनवबोधेन, मद्वाक्याऽर्थस्येति शेषः ) शून्यं ( शून्यहृदयत्वम् ) यथा स्यात्तथा । 'प्रतिपत्तिशून्यम्' इति पाठान्त-

इस तालाबमें मदसे मधुर शब्दवाले मल्लिकाक्ष नामक हंसविशेषोंके पङ्खोंसे कम्पित और शोभित बड़े-बड़े नालदण्डोंवाले श्वेतकमलोंसे युक्त अतएव शोभासंपन्न प्रदेशोंको आँसुओंके गिरने और निकलनेके मध्य समयमें देखो ॥ १४ ॥

( माधव उद्वेगके साथ उठता है । )

मकरन्द—कैसे मेरे वाक्यार्थके ज्ञानसे शून्य होकर उठकर दूसरी ओर

वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः
पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकैः ।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूनितः
प्राग्भागेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्वितानाय्यते ॥ १५ ॥

रम् । अन्यतः = अन्यस्मिन्स्थाने । प्रसीद = प्रसन्नो भव, प्रकृतिस्थो भूत्वाऽनुगृहाणेति भावः ।

वानीरप्रसवैरिति । निकुञ्जसरितां पयो वानीरप्रसवैः आसक्तवासम् । पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसां जालकैः उज्जृम्भितम् । इतः उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेः प्राग्भागेषु सानून् आलम्ब्य शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैः वितानाय्यत इत्यन्वयः । निकुञ्जसरितां = लतागृहनिकटनदीनां, पयः = जलं, वानीरप्रसवैः = वेतसकुसुमैः, आसक्तवासं = लग्नसौरभम् , अस्तीति शेषः । अत्र मनो विनोदयेति भावः । पर्यन्तेषु च = नदीतटेषु च । यूथिकासुमनसाम् = अम्बष्ठापुष्पाणां, भाषायां 'जूही'तिप्रसिद्धकुसुमानाम्, 'अथ मागधी । गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा' इत्यमरः । यद्वा अम्बष्ठाजातीनां, 'जाति'रिति भाषायां 'चमेली'ति नाम्ना प्रसिद्धं पुष्पम् । 'सुमना मालती जातिः' इत्यमरः । तासां जालकैः = क्षारकैः, नवकलिकावृन्दैरिति भावः । 'क्षारको जालकं क्लीबे' इत्यमरः । उज्जृम्भितं=विकसितं, भावे क्तः । तदपि पश्येति शेषः । इतः = अत्र । उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु = उन्मीलन्ति ( विकसन्ति ) यानि कुटजानि ( गिरिमल्लिकापुष्पाणि, 'अथ कुटजः शक्रो वत्सको गिरिमल्लिका' इत्यमरः । कुटजस्य विकाराः कुटजानि, 'तस्य विकारः' इत्यण् , 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' इति तस्य लुक् ) तैः उन्मीलत्कुटजैः प्रहासिषु (प्रकृष्टहासयुक्तेषु, शोभासम्पन्नेष्विति भावः), गिरेः= पर्वतस्य, प्राग्भागेषु = शिखरेष्विति भावः । सानून् = प्रस्थान् , समप्रदेशानित्यर्थः । आलम्ब्य = आधारीकृत्य, शिखण्डिताण्डवविधौ = मयूरनृत्यविधाने, मेघैः=अभ्रैः, वितानाय्यते = वितानाचारः क्रियते, मयूरोद्धतनृत्यनिमित्तमिति शेषः । वितानमाचरतीत्यर्थे क्यङन्तात्यक् । एवं चाऽत्र कुटजवृक्षा द्रष्टारो मयूरा नर्तका मेघो वितानमिति नृत्यसामग्री बोद्धया । अत्रोपमाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १५ ॥

जाने के लिए प्रस्तुत हुए। ( निःश्वास लेकर उठकर ) सखे ! प्रसन्न हो। देखो—

लतागृहके निकटकी नदियोंका जल वेतसपुष्पोंसे सौरभयुक्त है। नदीतटोंमें जूहीके फूलोंकी नयी कलियाँ विकसित हो गयी हैं। यहाँपर विकसित गिरिमल्लिका पुष्पोंसे शोभासम्पन्न पर्वतके शिखरोंपर समतल देशोंको आश्रय कर मयूरोंके ताण्डवविधानमें मेघ वितान ( चँदवा ) का आचार कर रहे हैं ॥ १५ ॥

अपि च—

जृम्भाजर्जरडिम्बडम्बरघनश्रीमत्कदम्बद्रुमाः
शैलाभोगभुवो भवन्ति ककुभः कादम्बिनीश्यामलाः ।
उद्यत्कन्दलकान्तकेतकभृतः कच्छाः सरित्स्रोतसा-
माविर्गन्धशिलीन्ध्रलोध्रकुसुमस्मेरा वनानां ततिः ॥ १६ ॥

जृम्भेति । शैलाऽऽभोगभुवो जृम्भाजर्जरडिम्बडम्बरघनश्रीमत्कम्बद्रुमा भवन्ति। ककुभः कादम्बिनीश्यामला भवन्ति। सरित्स्रोतसां कच्छा उद्यत्कन्दलकान्तकेतकभृतो भवन्ति। वनानां ततिः आविर्गन्धशिलीन्ध्रलोध्रकुसुमस्मेरा ( भवति ) इत्यन्वयः। शैलाभोगभुवः = पर्वतविस्तृतप्रदेशाः, 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः। जृम्भाजर्जरडिम्बडम्बरघनश्रीमत्कदम्बद्रुमाः = जृम्भया ( विकासेन ) जर्जरः (शिथिलसङ्घातः ) यो डिम्बडम्बरः ( कुसुमगोलकसमूहः, 'डिम्बोऽण्डेऽपि च गोलके' इति धरणिः ) तेन घनाः ( निविडाः ) श्रीमन्तः ( शोभासंपन्नाः ) कदम्बद्रुमाः ( नीपतरवः ) यासु ताः, तादृश्यो भवन्ति = वर्तन्ते। ककुभः = दिशः, कादम्बिनीश्यामलाः = कादम्बिन्या ( मेघमालया ) श्यामलाः ( श्यामवर्णाः ) भवन्ति। एवं सरित्स्रोतसां=नदीप्रवाहाणां, कच्छाः=अनूपप्रदेशाः, जलप्रायदेशा इति भावः। 'जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः।' इत्यमरः। उद्यत्कन्दलकान्तकेतकभृतः = उद्यद्भिः (उत्पद्यमानैः) कन्दलैः (नूतनाङ्कुरैः) कान्तानि ( सुन्दराणि ) यानि केतकानि ( केतकीपुष्पाणि ) तानि बिभ्रतीति तादृशा भवन्ति। तथा वनानां = विपिनानां, ततिः = पङ्क्तिः, आविर्गन्धशिलिन्ध्रलोध्रकुसुमस्मेरा = आविर्गन्धानि ( आविर्भूतगन्धानि, आविर्भूतो गन्धो येषां तानि, 'आविर्भूतानि' इति पाठे प्रादुर्भूतानीत्यर्थः ) यानि शिलीन्ध्रलोध्रकुसुमानि (कन्दलीशाबरपुष्पाणि ) तैः स्मेरा= मन्दहास्युक्ता इव भवतीति एकवचनान्तत्वेन विभक्तिविपरिणामः। एतेषामवलोकनेन विरहशोकसन्तप्तं मनो विनोद्यतामिति भावः। अत्र 'स्मेरे'त्यत्र इवपदाऽभावेन प्रतीयमानोत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १६ ॥

फिर भी—

पर्वतके विस्तृत प्रदेश, विकाससे शिथिलसङ्घात पुष्पगोलकोंके समूहसे घने शोभासम्पन्न कदम्बवृक्षोंसे युक्त होते हैं। दिशायें मेघपङ्क्तिसे श्यामवर्णवाली होती हैं। नदी प्रवाहों के जलप्रायप्रदेश, उत्पन्नहोनेवाले नये अङ्कुरोंसे सुन्दर केतकीपुष्पों को धारण कर रहे हैं। वनोंकी पङ्क्ति सौरभवाले कन्दल और लोध्रके पुष्पोंसे मन्दहास्य संपन्नकी सदृश प्रतीयमान हो रही है ॥ १६ ॥

माधवः—सखे, पश्यामि। किंतु दुरालोकरमणीयाः संप्रत्यरण्यगिरितटभूमयः। तत्किमेतत्। (सास्रम्) अथवा किमन्यत्।

उत्फुल्लार्जुनसर्जवासितवहत्पौरस्त्यझञ्झामरुत्-
प्रेङ्खोलस्खलितेन्द्रनीलशकलस्निग्धाम्बुदश्रेणयः।
धारासिक्तवसुंधरासुरभयः प्राप्तास्त एवाधुना
घर्माम्भोविगमागमव्यतिकरश्रीवाहिनो वासराः ॥१७॥

माधव इति। पश्यामि=विलोकयामि, भवद्वचनगौरवेणेति शेषः। सम्प्रति=अधुना, मालतीवियोगसमय इति भावः। दुरालोकरमणीयाः=दुष्टः (दोषयुक्तः, विरहिणां शोकोद्दीपनेनेति भावः) आलोकः (दर्शनम्) यासां ताः, ताश्च ताः रमणीयाः (मनोहराः, प्रिययाऽवियुक्तानामिति भावः)। तत्=तस्मात्।

उत्फुल्लाऽर्जुनेति। अधुना उत्फुल्लाऽर्जुनसर्जवासितवहत्पौरस्त्यझञ्झामरुत्प्रेङ्खोलस्खलितेन्द्रनीलशकलस्निग्धाऽम्बुदश्रेणयो धारासिक्तवसुन्धरासुरभयो। घर्माऽम्भोविगमाऽऽगमव्यतिकरश्रीवाहिनः त एव वासराः प्राप्ता इत्यन्वयः। अधुना=सम्प्रति, उत्फुल्लाऽर्जुनेत्यादिः=उत्फुल्लानि (विकसितानि) यानि अर्जुनसर्जानि (ककुभसालकुसुमानि, 'इन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुन' इत्यमरः) तैर्वासितः (सुरभीकृतः) वहन् (गच्छन्) यः पौरस्त्यः (पूर्वदिग्भवः, 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' इति त्यक्प्रत्ययः, 'किति चे'त्यादिवृद्धिश्च) झञ्झामरुत् (प्रचण्डवातः, मरुत्स्थाने 'अनिल' इति पुस्तकान्तरपाठः) तस्य प्रेङ्खोलेन (आन्दोलनेन) स्खलिता· (स्वस्थानाच्चलिताः) इन्द्रनीलशकलानीव (गारुत्मतमणिखण्डा इव) स्निग्धाः (चिक्कणाः) अम्बुदश्रेणयः (मेघपङ्क्तयः) येषु ते। तथा धारासिक्तवसुन्धरासुरभयः=धारया (वृष्टिजलधारया) सिक्ता (उक्षिता) या वसुन्धरा (भूमिः) तया सुरभयः (सौरभसंपन्नाः)। एवं घर्माऽम्भोविगमाऽऽगमव्यतिकरश्रीवाहिनः=घर्माऽम्भसोः (ग्रीष्मवर्षाजलयोः, यद्वा घर्माऽम्भसः=प्रस्वेदजलस्य) यौ विगमाऽऽगमौ (गमनागमने, ग्रीष्मस्य गमनं वर्षाजलस्य आगमनं, यथासंख्येन बोध्यं, यद्वा प्रस्वेदजलस्य आसारपवन-

माधव—मित्र! देख रहा हूँ। परन्तु इस समय वन और पर्वतके तटप्रदेश दुष्ट दर्शनवाले और मनोहर हैं। इस कारणसे यह क्या है? (आँखोंमें आँसू भरकर) अथवा और क्या?

इस समय विकसित अर्जुन और साल वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित बहते हुए पूर्व दिशामें होनेवाले प्रचण्ड वायुके आन्दोलनसे अपने स्थानसे चलित, इन्द्रनील मणिके टुकड़ोंके सदृश चिकनी मेघपङ्क्तियोंसे युक्त, वृष्टिकी जलधारासे सिक्त पृथ्वीसे

हा प्रिये मालति,

तरुणतमालनीलबहुलोन्नमदम्बुधराः
शिशिरसमीरणावधुतनूतनवारिकणाः ।
कथमवलोकयेयमधुना हरिहेतिमती-
र्मदकलनीलकण्ठकलहैर्मुखराः ककुभः ॥ १८ ॥

शैत्याद्विनाशः प्रचण्डाऽर्कतापाच्चाऽऽविर्भावः) तयोर्व्यतिकरः (व्यामिश्रणम्) तेन या श्रीः ( शोभा ) तां वहन्ति ( धारयन्ति ) तच्छीलाः, तादृशाः, त एव=पूर्वाऽनुभूता एव, वासराः=दिवसाः, वर्षाकालसम्बन्धिन इति शेषः। प्राप्ताः=समागता इत्यर्थः। वर्षाकालदिवसाप्रियाविप्रयुक्तानामतीवदुःसहा इति भावः। अत्र द्वितीयचरणे: लुप्तोपमाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १७ ॥

तरुणेति । तरुणतमालनीलबहुलोन्नमदम्बुधराः शिशिरसमीरणाऽवधुतनूतनवारिकणाः हरिहेतिमतीः मदकलनीलकण्ठकलहैः मुखराः ककुभः अधुना कथम् अवलोकयेयमित्यन्वयः। तरुणतमालनीलबहुलोन्नमदम्बुधराः = तरुणतमालाः ( नूतनतापिच्छवृक्षाः ) इव नीलाः (असिताः) बहुलाः ( बहवः ) उन्नमन्तः ( उन्नता भवन्तः ) अम्बुधराः ( मेघाः ) यासु ताः, 'ककुभ' इत्यस्य विशेषणं चैतत्, एवं परत्राऽपि। शिशिरसमीरणाऽवधुतनूतनवारिकणाः = शिशिरसमीरणेन ( शीतलवातेन ) अवधुताः ( प्रक्षिप्ताः ) नूतनाः ( नवीनाः ) वारिकणाः ( वर्षजललेशाः ) यासु ताः। हरिहेतिमतीः = हरेः ( इन्द्रस्य ) हेतिः ( आयुधं, धनुरिति भावः ) तद्वत्यः ( तद्युक्ताः ), ताः, ( इन्द्रा युध युक्ता इति भावः )। यद्वा हरेः ( विष्णोः ) हेतिः ( आयुधं, चक्रमिति भावः, नामैकदेशे नामग्रहणमिति न्यायेन चक्रवाकपक्षी, तद्युक्ता इत्यर्थः )। मदकलनीलकण्ठकलहैः = मदेन ( मत्ततया ) कलाः ( अव्यक्तमधुरशब्दयुक्ताः ) ये नीलकण्ठाः ( मयूराः ) तेषां कलहैः ( कोलाहलैः ), मुखराः= शब्दायमानाः, 'रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्' इति रप्रत्ययः। तादृशीः,

सौरभसम्पन्न, ग्रीष्मके गमन और वर्षाऋतुके आगमनकेसंमिश्रणसे शोभाको धारण करनेवाले वे ही दिन आगये हैं ॥ १७ ॥

हा प्रिये मालति !

नये तापिच्छवृक्षोंके सदृश नीलवर्णवाले अनेक और उन्नत होनेवाले मेघोंसे युक्त, ठण्डी हवासे प्रक्षिप्त नये जलकणोंवाली, इन्द्रधनुसे संपन्न, मदसे अव्यक्त मधुर शब्दसे युक्त मयूरोंके कोलाहलोंसे शब्दायमान दिशाओंको इस समय में कैसे देख सकूंगा ? ॥ १८ ॥

( निःश्वस्य शोकार्तिं नाटयति )

मकरन्दः—कोऽप्यतिदारुणो दशाविपाको वयस्यस्य संप्रति वर्तते। ( सास्रम् ) मया पुनरज्ञानेन वज्रमयेन किल विनोदः प्रारब्धः। (निःश्वस्य) एवं च पर्यवसितप्रायेव नो माधवप्रत्याशा । (सभयं विलोक्य) कथं प्रमुग्ध एव । हा सखि मालति, किमपरम् । निरनुक्रोशासि ।

अपहस्तितबान्धवे ! त्वया विहितं साहसमस्य तृष्णया ।

---

ककुभः = दिशः, अधुना = इदानीं, प्रियाविरहे, कथं = केन प्रकारेण, अवलोकये = पश्येयं, मनोविनोदनस्य कथा दूर आस्तां, प्रत्युत एतादृश्यो दिशो मदनोद्दीपकत्वाद्- द्रष्टुमशक्या इति भावः। अत्र प्रथमचरणे लुप्तोपमाऽलङ्कारः। नर्दटकं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'यदि भवति नजौ भजजला गुरु नर्दटकम्' इति ॥ १८ ॥

निःश्वस्येति । शोकार्तिं=शोकजनितां पीडाम् । 'अर्तिः पीडाधनुष्कोटयोः' इत्यमरः ।

मकरन्द इति । कोऽपि = वक्तुमशक्यः । दशाविपाकः = अवस्थापरिणामः, मरण- फलरूप इति शेषः । अज्ञानेन = ज्ञानरहितेन, अविद्यमानं ज्ञानं यस्य तेन । 'नञोऽ- स्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप' इति नञ्बहुव्रीहिः । वज्रमयेन = कुलिशरूपेण, स्वरूपाऽर्थे मयट् । सुहृद्विनाशदर्शनदशायामपि जीवनं वज्रमयत्वहेतुः । विनोदः = दुःखनिवारणोपायः । नः = अस्माकम् । पर्यवसितप्राया=समाप्तप्राया । प्रमुग्ध एव= मूर्च्छित एव । अपरम्=अन्यत् कथयामीति शेषः।निरनुक्रोशा=निष्करुणा, निर्गतोऽनु- क्रोशो यस्याः सा । 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपी'त्यमरः। यस्त्वदर्थं महामांस- विक्रयप्रसङ्गेन स्वजीवितं रक्षितवान्, तस्मिन्नित्थमुपेक्षणमेव निरनुक्रोशत्वं बोद्धव्यम् ।

तदेव निरनुक्रोशत्वं प्रतिपादयति-अपहस्तितबान्धव इति । हे अपहस्तितबान्धवे ! हे सखि ! त्वया अस्य तृष्णया साहसं विहितम् । तत् अनपराधिनि इह प्रिये करुणोज्झितः कोऽयं क्रम ? इत्यन्वयः । हे अपहस्तितबान्धवे=अपहस्तिताः ( अग- णिताः ) बान्धवाः ( मातापित्रादिबन्धवः ) यया सा, तत्सम्बुद्धौ । हे सखि =

---

( निःश्वास लेकर शोकसे उत्पन्न पीड़ाका अभिनय करता है । )

मकरन्द—मित्रका इस समय कोई अतिकठोर दशाका परिणाम हो रहा है । ( आँखोंमें आँसू भरकर ) ज्ञानशून्य वज्रमय मैंने विनोदका आरम्भ किया । (निःश्वास लेकर)हमलोगोंको माधवके जीनेकी आशा इस तरह समाप्तप्राय हो गयी । ( भयके साथ देखकर ) ये कैसे मूर्च्छित ही हो गये हैं ? हा सखि मालति । और क्या कहूँ ? तुम निर्दय हो ।

माधवके प्रेममें बान्धवोंकी परवाह न करनेवाली हे सखि ! तुमने उनकी प्राप्तिमें

तदिहानपराधिनि प्रिये सखि कोऽयं करुणोज्झितः क्रमः ॥ १९ ॥

कथमद्यापि नोच्छ्वसिति । हन्त, मुषितोऽस्मि ।

मातर्मातर्दलति हृदयं, ध्वंसते देहबन्धः,

शून्यं मन्ये जगदविकलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।

सख्युर्माधवस्य पत्नीत्वेन सखीति सम्बोधनम् । त्वया=भवत्या, अस्य=माधवस्य, तृष्णया = प्राप्तिलालसया, साहसं = दुष्करकर्म, विहितम् = अनुष्ठितम् । मातापित्राद्यनुमतिमन्तरेण त्वया स्वयं माधवे स्वकरार्पणसाहसमनुष्ठितमिति भावः । तत् = तस्मात् कारणात् । अनपराधिनि = अपराधरहिते, न अपराधः अनपराधः । सोऽस्याऽस्तीति अनपराधी, तस्मिन् । अत्र 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेतदर्थप्रतिपत्तिकर' इति नियमात् नञ्बहुव्रीहिमाश्रित्य अनपराध इति प्रयोगस्यौचित्येऽपि माधवेऽपराधराहित्यस्य नित्यत्वद्योतनार्थमिनिप्रत्ययः । इह = अस्मिन् सन्निकृष्टस्थ इति भावः । प्रिये = वल्लभे, माधव इति भावः । करुणोज्झितः = दयापरित्यक्तः, निर्दय इत्यर्थः । कोऽयं, क्रमः=व्यापारः, कथमेतादृशसङ्कटसमयेऽपि स्ववल्लभं माधवमुपेक्षस इति भावः । सुन्दरी वृत्तं, तल्लक्षणं यथा छन्दोमञ्जर्याम्—'अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः, सभरा गौ यदि सुन्दरी तदा ।' इति ॥ १९ ॥

कथमिति । न उच्छ्वसिति = संज्ञां न लभते । मुषितोऽस्मि = अपहृतोऽस्मि, अतः परं 'देवेने'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः ।

मातरिति । मातः ! मातः !! हृदयं दलति । देहबन्धो ध्वंसते, जगत् शून्यं मन्ये । अन्तः अविकलज्वालं ज्वलामि । सीदन् विधुरः अन्तरात्मा अन्धे तमसि मज्जति इव । मोहः विष्वक् स्थगयति । मन्दभाग्यः कथं करामीत्यन्वयः । श्लोकोऽयमुत्तररामचरितेऽपि तृतीयाऽङ्के रामवक्तृकत्वेन किञ्चित्परिवर्तनेनाऽवतारितः । परिवर्तनं चाऽऽदौ 'हा हा देवि ! स्फुटति' इति । द्वितीयचरणे च 'जगदविकलज्वालमि'त्यत्र 'जगदविरलज्वालम्' इति दृश्यते । मातः ! मातः !! अम्ब ! अम्ब !!, कामन्दकीमुद्दिश्य संभ्रमे द्विरुक्तिरियम् । हृदयं = वक्षःस्थलं, दलति = स्फुटति अनेन पीडा द्योत्यते । देहबन्धः=शरीरबन्धः, शरीराऽवयवानां सन्धिरिति भावः । 'जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्' इति जातावेकवचनम् । ध्वंसते = शिथिलो भवति, अनेनाऽस्वस्थता गम्यते । जगत् = लोकं, शून्यं = सकलप्राणिरहितं, मन्ये =

लालसासे साहस किया है । इस कारणसे निरपराध प्रिय इन माधवजीमें करुणासे शून्य यह कौनसा क्रम है ? ॥ १९ ॥

ये कैसे अभी तक होशमें नहीं आरहे हैं ? हाय । मैं ठगा गया हूँ ।

माताजी ! माताजी ! हृदय विदीर्ण हो रहा है । शरीरके अवयवोंको सन्धि

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति, कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥२०॥

कष्टं भोः, कष्टम् ।

बन्धुताहृदयकौमुदीमहो मालतीनयनमुग्धचन्द्रमाः ।
सोऽयमद्य मकरन्दनन्दनो जीवलोकतिलकः प्रलीयते ॥ २१ ॥

---

जानामि, एतेन वाह्यसंवेदनानिर्वेदो वेद्यते । अन्तः=शरीराऽभ्यन्तरे, अविकलज्वालम् = अविच्छिन्नतापं यथा स्यात्तथा, 'अविरतज्वालम्' इति पुस्तकान्तरपाठः । 'अविरलज्वालम्' इति उत्तररामचरितपाठः । ज्वलामि=दग्धो भवामि, एतेन चिन्ताजनितो दाहो ज्ञाप्यते । सीदन्=अवसन्नो भवन्, विधुरः=प्रियरहितः, अन्तरात्मा = शरीराऽभ्यन्तरस्थः पुरुषः, अन्धे तमसि=गाढाऽन्धकारे, मज्जति इव= मग्नो भवति इव, एतेन ग्लानिः सूच्यते । मोहः=मूर्च्छा, विष्वक्=परितः, स्थगयति छादयति, सर्वेन्द्रियवृत्तीरावृणोतीत्यर्थः । मन्दभाग्यः=अल्पभाग्यः, अहं मकरन्द इति शेषः । कथं=किं, करोमि=आचरामि, माधवं कथं रक्षामीति भावः । एतेन दैन्याऽतिशयोद्योत्यते । अत्र मज्जतीवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २० ॥

बन्धुतेति । बन्धुताहृदयकौमुदीमहो मालतीनयनमुग्धचन्द्रमाः मकरन्दनन्दनो जीवलोकतिलकः सोऽयम् अद्य प्रलीयत इत्यन्वयः । बन्धुताहृदयकौमुदीमहः = बन्धुतायाः (बन्धुसमूहस्य, 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्ययः) हृदये (चित्ते) कौमुदीमहः ( चन्द्रिकोत्सवस्वरूपः ), 'क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः ।' इत्यमरः । मालतीनयनमुग्धचन्द्रमाः=मालत्या नयनयोः (नेत्रयोः) मुग्धचन्द्रमाः (सुन्दरेन्दुः), आह्लादजनकत्वादिति भावः । 'मुग्ध' स्थाने 'पूर्ण' पदपाठे पूर्णः = षोडशकलापूरित इत्यर्थः । मकरन्दनन्दनः = मकरन्दस्य ( मम ) नन्दनः ( आनन्दजनकः ), नन्दयतीति विग्रहे णिजन्तात् 'टुनदि समृद्धौ' इति धातोः 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्य-

---

शिथिल हो रही है । मैं जगत्को शून्य देख रहा हूँ । शरीरके भीतर अविच्छिन्न ताप होकर जल रहा हूं । अवसन्न होता हुआ प्रियरहित अन्तरात्मा, गाढ अन्धकारमें जैसे डूब रहा है । मूर्च्छा चारों तरफ आच्छादन कर रही है । मन्द भाग्य-वाला मैं क्या करूँ? ॥ २० ॥

अरे ! कष्ट है, कष्ट है ।

बन्धुसमूहके चित्तमें कौमुदीमहोत्सव, मालतीके नेत्रोंमें सुन्दर चन्द्रमा, मकरन्दके आनन्दजनक और मनुष्यलोकके तिलकस्वरूप वैसे ये ( माधवजी ) आज लयको प्राप्त हो रहे हैं ॥ २१ ॥

हा वयस्य माधव,

गात्रेषु चन्दनरसो दृशि शारदेन्दु-
रानन्द एव हृदये मम यस्त्वमासीः ।
तं त्वां निकामकमनीयमकाण्ड एव
कालेन जीवितमिवोद्धरता हतोऽस्मि ॥ २२ ॥

( स्पृशन् )

---

च' इति ल्युप्रत्ययः । 'युवोरनाकौ' इत्यनादेशः । जीवलोकतिलकः जीवलोकस्य ( मर्त्यलोकस्य ) तिलकः ( मण्डनविशेषस्वरूपः ), सः = तादृक्, अयं = निकटस्थः, माधव इत्यर्थः । अद्य = अस्मिन्दिने, प्रलीयते=नश्यति, प्रियाविरहशोकेनेति शेषः । अत्र रूपकाऽलङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् ॥ २१ ॥

गात्रेष्विति । यः त्वं मम गात्रेषु चन्दनरसः आसीः, दृशि शारदेन्दुः आसीः, हृदि आनन्द एव आसीः । जीवितम् इव निकामकमनीयं तं त्वाम् अकाण्ड एव उद्धरता कालेन हतोऽस्मीत्यन्वयः । ( हा वयस्य ! माधव !! ) यः, त्वं=माधवः, मम= सुहृदः, मकरन्दस्येत्यर्थः । गात्रेषु=शरीराऽवयवेषु, गात्रपदस्य गात्राऽवयवेषु लक्षणा, आलिङ्ग्यमानः सन्निति शेषः । चन्दनरसः = मलयजलेपः, आसीः=अभूः, सन्ताप-नाशकत्वादिति भावः । दृशि=नयनेन्द्रिये, दृश्यमानः सन्निति शेषः । शारदेन्दुः= शरच्चन्द्रः, आह्लादजनकत्वादिति भावः । हृदि=चित्ते, विभाव्यमानः सन्निति शेषः । आनन्द एव=हर्षरूप एव, आसीः=अभूः । जीवितम् इव=जीवनम् इव, ममेति शेषः । निकामकमनीयम् = अतिसुन्दरं, तं=तथाविधं, त्वां=भवन्तं, माधवमित्यर्थः । अकाण्ड एव = अनवसर एव, उद्धरता=उन्मूलयता, कालेन = समयेन, अन्तकेन वा, हतः=व्यापादितः, अस्मि=भवामि, जीवनरूपस्य सुहृदो माधवस्य हननादह-मपि हतोऽस्मीति भावः । अत्र रूपकमुपमा चेति द्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टि-रलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

स्पृशन्निति । स्पृशन् = आमृशन्, माधवशरीरमिति शेषः ।

---

हा वयस्य माधव !

जो तुम मेरे शरीरके अवयवोंमें चन्दनरस, नेत्रोंमें शरत्कालके चन्द्र और हृदयमें आनन्दरूप थे । मेरे जीवनके सदृश अतिशय सुन्दर वैसे तुमको अनवसरमें ही उन्मूलित करनेवाले कालसे मैं हतप्राय हो गया हूँ ॥ २२ ॥

( माधवके शरीरको छूता हुआ )

अकरुण ! वितर स्मितोज्ज्वलां दृशमतिदारुण ! देहि मे गिरम् ।
सहचरमनुरक्तचेतसं प्रियमकरन्द ! कथं न मन्यसे ॥ २३ ॥

( माधवः संज्ञां लभते )

मकरन्दः—(सोच्छ्वासम्) अयमचिरधौतराजपट्टरुचिरमांसलच्छविर्नव-जलधरस्तोयशीकरासारेण संजीवयति मे प्रियवयस्यम् । दिष्ट्या समुच्छ्वसितस्तावत् ।

---

अकरुणेति । हे अकरुण ! स्मितोज्ज्वलां दृशं वितर । हे अतिदारुण ! स्मितोज्ज्वलां गिरं मे देहि । हे प्रियमकरन्द ! सहचरम् अनुरक्तचेतसं कथं न मन्यस इत्यन्वयः । हे अकरुण = हे निर्दय !, स्मितोज्ज्वलां = मन्दहास्यमनोज्ञां, परमिदं देहलीदीपन्यायेन दृशो गिरश्च विशेषणम् । दृशं = दृष्टिं, वितर = देहि, मयीषद्धास्यपूर्वकं दृष्टिपात कुर्विति भावः । हे अतिदारुण = हे अतिकठोर !, वाङ्मात्रेण संभावनेऽप्यनुद्यतत्वादतिदारुणेति सम्बुद्धिः सङ्गच्छते । स्मितोज्ज्वलां = मन्दहास्यमनोज्ञां, गिरं=वाणीं, मे = मह्यं, देहि = वितर, ईषद्धास्यपूर्वकं संलपनेन मां कृतार्थयेति भावः । हे प्रियमकरन्द = हे वल्लभमकरन्द !, प्रियो मकरन्दो यस्य स तत्सम्बुद्धौ । सहचरं = सखायं, मामिति शेषः, सह चरतीति सहचरस्तम्, अनुरक्तचेतसं=साऽनुरागमानसं, न तु बाह्याऽनुरागं, कथं = किमर्थं, न मन्यसे = जानासि किमहं त्वयि जातुचिदपि विरक्तचेताः ? इति भावः । अपरवक्त्रं नामाऽर्धसमं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा छन्दोमञ्जर्याम्—'अयुजि ननरला गुरुः समे, तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ' इति ॥ २३ ॥

मकरन्द इति । सोच्छ्वासम्=उच्छ्वासेन ( अन्तर्मुखश्वासेन ) सहितं यथा तथा, सोच्छ्वासत्वं च माधवसंज्ञालाभेन बोद्धव्यम् । अचिरधौतराजपट्टरुचिरमांसलच्छविः= अचिरधौतः ( सद्यो निर्मलीकृतः ) यो राजपट्टः ( श्यामः पाषाणविशेषः ) स इव रुचिरा ( रम्या ) मांसला ( पुष्टा ) छविः ( कान्तिः ) यस्य सः । एतादृशो नवजलधरः = नवीनाम्बुदः । तोयशीकराऽऽसारेण = जलकणधारासम्पातेन । संजीवयति =

---

हे निर्दय ! मन्दहास्य ( मुसकुराहट ) से उज्ज्वल दृष्टिका वितरण करो । हे अतिशय कठोर ! मुझे मन्दहास्यसे उज्ज्वल वाणीका वितरण करो । हे मकरन्दको प्यार करनेवाले सहचर ! मुझको अनुरागपूर्ण चित्तवाला क्यों नहीं जानते हो ? ॥ २३ ॥

( माधव चैतन्यका लाभ करता है । )

मकरन्द—( अन्तर्मुख श्वास लेकर ) तत्क्षण निर्मल किये गये श्यामवर्णवाले पाषाणविशेषके सदृश सुन्दर और पुष्ट कान्तिवाला यह नया मेघ, जलबिन्दुओंके धारासंपातसे मेरे प्रियवयस्यको संजीवित कर रहा है । भाग्यसे ये होशमें आगये हैं ।

माधवः—तत्किमिवात्र प्रियावार्ताहरं करोमि ?

**फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-**
**स्खलनतनुतरङ्गामुत्तरेण स्रवन्तीम् ।**
**उपचितघनमालप्रौढतापिच्छनीलः**
**श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवातः ॥ २४ ॥**

संजीवितं करोति । दिष्ट्या=भाग्येन । समुच्छ्वासितः=अन्तर्मुखश्वासयुक्तः, माधवो जात इति शेषः । 'दिष्ट्या जगदुच्छ्वसितं ताव'दिति पाठान्तरम् ।

माधव इति । किमिव = किं वस्तु, 'सामान्ये नपुंसकम्' इति नपुंसकम्' । प्रियावार्ताहरं = प्रियायाः ( वल्लभायाः मालत्या इति भावः ) वार्ताहरं ( सन्देशवाहकं, दूतमिति भावः ), वार्ता हरतीति वार्ताहरः, 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' इत्यच्प्रत्ययः । मालत्या अन्तिके कं मत्सन्देशवाहकं प्रेषयामीति भावः । अतः परं '( विलोक्य ) साधु साधु' इति पुस्तकान्तरपाठः । विलोक्य = दृष्ट्वा, मेघमिति शेषः ।

फलेति । फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनतनुतरङ्गां स्रवन्तीम् उत्तरेण उपचितघनमालप्रौढतापिच्छनीलो नूतनः तोयवाहः अद्रेः शिखरं श्रयतीत्यन्वयः । फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनतनुतरङ्गां = फलभराणां ( जम्बूफलसमूहानाम् ) यः परिणामः ( परिपाकः ) तेन श्यामानां ( श्यामवर्णनाम् ) जम्बूनां ( जम्बूतरूणाम् ) यो निकुञ्जः ( लताऽऽदिपिहितोदरप्रदेशः ) तस्मिन् स्खलनेन ( पतनेन ) तनुतरङ्गां ( तनवः = अल्पाः, तरङ्गा = ऊर्मयः ) यस्यास्ताम् । तादृशीं स्रवन्तीं=नदीम्, 'स्रवन्ती निम्नगाऽऽपगा । इत्यमरः । 'उत्तरेणे'ति एनवन्तपदप्रयोगे 'एनपा द्वितीया' इति द्वितीया । उत्तरेण = उत्तरस्यां दिशि अदूरे । उपचितघनमालप्रौढतापिच्छनीलः = उपचिता ( वृद्धिंगता, वृष्टेरिति शेषः ) घना ( निविडा ) माला ( पङ्क्तिः ) यस्य सः, तादृशः प्रौढः ( परिपक्वः ) यस्तापिच्छः (तमालवृक्षः), स इव नीलः ( कृष्णवर्णः ) । 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासः । एतादृशो नूतनः = नवीनः, तोयवाहः = मेघः, अद्रेः = पर्वतस्य, शिखरं = शृङ्गं, श्रयति = अवलम्बते, तदेनमेव दूतत्वेन प्रियोपकण्ठं प्रेषयामीति भावः । अस्य प्रथमपाद उत्तररामचरितेऽपि वर्तते । अत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ २४ ॥

माधव—इस कारणसे इस वनमें किसको प्रियतमाके निकट सन्देशवाहक ( दूत ) बनाऊँ ?

फलोंके परिपाकसे श्यामवर्णवाले जम्बूवृक्षोंके निकुञ्जोंमें गिरनेसे छोटी छोटी तरङ्गोंसे युक्त नदीकी उत्तर दिशामें चढ़ी हुई गाढ पङ्क्तिसे सम्पन्न परिपक्व तमालवृक्षके सदृश कृष्णवर्णवाला नया मेघ, पहाड़की चोटीका आश्रय लेता है ॥ २४ ॥

( सरभसमुत्थायोन्मुखः कृताञ्जलिः )

कच्चित्सौम्य ! प्रियसहचरी विद्युदालिङ्गति त्वा-
माविर्भूतप्रणयसुमुखाश्चातका वा भजन्ते ? ।
पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत्साधु संवाहनाभि-
र्विष्वग्बिभ्रत्सुरपतिधनुर्लक्ष्म लक्ष्मीवदेतत् ॥ २५ ॥

सरभसमिति । सरभसं = सहर्षम् ।

कच्चिदिति । हे सौम्य ! प्रियसहचरी विद्युत् त्वाम् आलिङ्गति कच्चित् ? वा आविर्भूतप्रणयसुमुखाः चातकाः त्वां भजन्ते ? वा पौरस्त्यो मरुत् संवाहनाभिः साधु सुखयति ? विष्वक् एतत् लक्ष्मीवत् सुरपतिधनुः, लक्ष्म बिभ्रत् ( असि किम् इति शेषः ) इत्यन्वयः । हे सौम्य = हे सुन्दर ! मेघ ! इति भावः । प्रियसहचरी=प्रिया ( वल्लभा ) सहचरी ( सततानुगता ) विद्युत्=तडित्, त्वां=भवन्तम्, आलिङ्गति कच्चित् = आश्लिष्यति किम् ?, 'कच्चित्कामप्रवेदन' इत्यमरः । मालती मामिव त्वां विहाय त्वदीयसहचारिणी विद्युत्कुत्रचिन्न गता किम् ? इति भावः । वा = अथवा, आविर्भूतप्रणयसुमुखाः = आविर्भूतः ( प्रकाशिता ) याः प्रणयः ( अनुरागः ) तेन सुमुखाः ( प्रसन्नमुखाः ), चातकाः = सारङ्गाः, त्वत्सुहृद इति शेषः । त्वां = भवन्तं, भजन्ते=सेवन्ते किं, काक्वा प्रश्न उन्नीयते । मकरन्दादिवन्मां परित्यज्य त्वत्सुहृदः सारङ्गा न गताः किमित्युन्मादवशान्मकरन्दं पश्यतोऽपि माधवस्याऽपश्यत इवोक्तिः । वा = अथवा, पौरस्त्यः = पूर्वदिग्भवः, 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' इति त्यक्प्रत्ययः । मरुत् = वायुः, संवाहनाभिः = अङ्गमर्दनक्रियाभिः, साधु = समीचीनं यथा तथा, सुखयति ? = सुखमुत्पादयति किं ?, काक्वा प्रश्नः । अन्योऽपि सहायः शरीरमर्दनक्रियाभिः सुखमुत्पादयति ध्वनिः । विष्वक् = सर्वतः, एतत् = पुरोवर्ति, लक्ष्मीवत्= विशिष्टशोभासम्पन्नं, सुरपतिधनुः = इन्द्रायुधं, तदेव लक्ष्म=चिह्न, बिभ्रत्=धारयन्, असि किमिति शेषः । पुस्तकान्तरे तु चतुर्थचरणे 'लक्ष्मीवदेतत्' इत्यत्र 'लक्ष्मीं तनोती'ति पाठस्तत्र—सुरपतिधनुः = इन्द्रायुधं, कर्तृ, लक्ष्म = चिह्नं, तवेति शेषः ।

( हर्षके साथ उठकर और ऊपर मुँहकर हाथ जोड़ता हुआ )

हे सुन्दर (मेघ ! प्यारी सहचरी बिजली क्या तुम्हें आलिङ्गन करती है ? अथवा प्रकाशित अनुरागसे प्रसन्न मुखवाले चातक क्या तुम्हारी सेवा करते हैं ? अथवा पूर्व दिशामें होनेवाला वायु अङ्गमर्दन क्रियाओंसे क्या अच्छी तरहसे सुख देता है ? सब ओर यह विशिष्ट शोभासे सम्पन्न इन्द्रके धनुषरूप चिह्नको क्या धारण कर रहे हो ? ॥ २५ ॥

( आकर्ण्य ) अये, अयं प्रतिरवभरितकन्दरानन्दितोत्कण्ठनीलकण्ठकलकेकानुबन्धिना मन्द्रहुंकृतेन मामनुमन्यते यावदभ्यर्थये। भगवन् जीमूत,

दैवात्पश्येर्जगति विचरन्मत्प्रियां मालतीं चे-
दाश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम्।

तनोति = विस्तारयति ?, काका प्रश्न उन्नीयते। हे मेघ ! तदिह जगदुपकारकतया ममाऽप्युपकारं करिष्यसीति भावः। अत्र समासोक्तिरलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्॥

आकर्ण्येति। प्रतिरवभरितकन्दरानन्दितोत्कण्ठनीलकण्ठकलकेकाऽनुबन्धिना = प्रतिरवेण ( प्रतिध्वनिना ) भरिताः ( पूरिताः ) याः कन्दराः ( गुहाः ) तासु आनन्दिताः ( सहर्षाः ) उत्कण्ठाः ( उन्नमद्गलाः, उन्नतः कण्ठो येषां ते ) ये नीलकण्ठाः ( मयूराः ) तेषां कलाः ( मधुराऽस्फुटाः ) याः केकाः ( वाण्यः ) ता अनुबध्नाति ( अनुसरति ) इति, तेन। केकाध्वन्यनन्तरं संजातेनेति भावः। एतादृशेन मन्द्रहुङ्कृतेन = गम्भीरहुङ्कारेण। अनुमन्यते = स्वीकरोति। अभ्यर्थये = अभ्यर्थनां करोमि, दौत्यनिर्वहणार्थमिति शेषः। आर्तिवशाद्देवत्वमारोप्य सम्बोधयति-भगवन्निति। जीमूत = मेघ !

दैवादिति। ( हे जीमूत ! ) जगति विचरन् दैवात् मत्प्रियां मालतीं पश्येः चेत् आदौ आश्वास्य तदनु माधवीयाम् अवस्थां कथयेः। कथयता आशातन्तुः अत्यन्तं न उच्छेदनीयः। आयताचया एक स कथमपि प्राणत्राणं करोतीत्यन्वयः। ( हे जीमूत ! ) जगति = लोके, विचरन् = विचरणं कुर्वन्, दैवात् = भाग्ययोगात्, मत्प्रियां = मद्वल्लभाम्, 'इच्छे'ति पुस्तकान्तरपाठः। मालतीं = 'मत्प्रियाम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। पश्येः = विलोकयेः, चेति = यदि, तदा आदौ = प्रथमम्, आश्वास्य = आश्वासनं दत्त्वा, 'त्वद्वल्लभो जीवती'त्यादिवचनैरिति शेषः। तदनु = तदनन्तरम्, आश्वासनाऽनन्तरमिति भावः। माधवीयां = माधवसम्बन्धिनीं, माधवस्येयमिति माधवीया, ताम्। 'वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या' इति वृद्धसंज्ञा 'वृद्धाच्छ' इति छप्रत्ययः। अवस्थां = दशां, कथयेः = सूचयेः, एतेन माधवोऽहमिति प्रसङ्गास्वना-

( सुनकर ) अरे ! यह ( मेघ ) प्रतिध्वनि से पूर्ण गुफाओंमें आनन्दित, उन्नत कण्ठवाले मयूरोंके मधुर और अस्फुट शब्दोंका अनुसरण करनेवाले गम्भीर हुङ्कारसे मेरे वाक्यको स्वीकार कर रहा है, मैं प्रार्थना करता हूँ। भगवन् मेघ !

( हे मेघ ! ) जगतमें विचरण करते हुए तुम भाग्यवश मेरी प्रिया मालतीको देखोगे तो पहले उसको आश्वासन (दिलासा) देकर उसके बाद माधवकी अवस्थाको

आशातन्तुर्न च कथयता त्यन्तमुच्छेदनीयः,
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः ॥ २६ ॥

( सहर्षम् ) अये, प्रचलितः । तदन्यतः संभावयामि । ( इति परिक्रामति )

मकरन्दः— ( सोद्वेगम् ) कथमिदानीमुन्मादोपराग एव माधवेन्दुमा-

माऽपि कथितम् । एवं च कथयता=भाषमाणेन त्वयेति भावः । मद्दशामिति शेषः। आशातन्तुः=मत्प्राप्तिप्रत्याशारूपं सूत्रं, मालत्या इति शेषः । अत्यन्तम्=अत्यर्थम्, न उच्छेदनीयः=न उच्छेद्यः, 'त्वद्विरहे त्वद्दयितो न जीविष्यती'त्यादिवचनैरिति शेषः । यतः आयताक्ष्याः=विशाललोचनायाः, मालत्या इति भावः । आयते अक्षिणी यस्याः सा आयताक्षी तस्याः । 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति समासाऽन्तः षच्, षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीष् । एकः=केवलः, सः=आशातन्तुः, कथमपि=केनाऽपि प्रकारेण, प्राणत्राणम्=असुरक्षणं, करोति=विदधाति । एतदनुरूपं कालिदासवचनं यथा मेघदूते—

'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।' इति

अत्र चतुर्थचरणस्थकारणेन तृतीयचरणस्थकार्यस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २६ ॥

सहर्षमिति । सहर्षं=हर्षसहितं यथा तथा । उक्त्यनन्तरमेव मेघप्रचलनात्सहर्षत्वं बोद्धव्यम् । अहो=आश्चर्यम् । प्रचलितः=प्रगतः, मेघ इति शेषः ।'अन्यतः=अन्यस्थाने । संभावयामि=संभावितं करोमि, मेघमिति शेषः । 'तदन्यत्र संचरामी'ति पुस्तकान्तरपाठः ।

मकरन्द इति । उन्मादोपरागः=उन्मादः (चित्तविभ्रमः) एव उपरागः (राहुग्रहः) । माधवेन्दुं=माधव एव इन्दुः ( चन्द्रः ), तम् । आस्कन्दति=अभिभवति । नोचेद्-

कहो । कहनेवाले तुम्हें उसके आशासूत्रका बिलकुल ही उच्छेद नहीं करना चाहिए । क्योंकि विशाललोचना (मालती) का केवल वह ( आशासूत्र) प्राणोंकी रक्षा कर रहा है ॥ २६ ॥

( हर्षके साथ ) अरे ! मेघ चला गया । इस कारणसे उसको दूसरे स्थानमें संभावित करता हूँ । ( ऐसा कहकर पादक्षेप करता है ।

मकरन्द—(उद्वेगके साथ ) कैसे इस समय उन्मादरूप राहुग्रह माधवरूप

स्कन्दति। हा तात, हा अम्ब, हा भगवति, परित्रायस्व माम्। पश्य माधवस्यवावस्थाम्।

माधवः—धिक्प्रमादः।

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्ति-
दृशः कुरङ्गेषु, गतं गजेषु।
लताषु नम्रत्वमिति प्रमथ्य
व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे॥ २७॥

---

कथमयमचेतनं मेघं प्रार्थयेदिति भावः। हा तातेत्यादि पितामातृनामोच्चारणं मकरन्दस्य वाल्यात्प्रथमयौवनं द्योततयति। हा भगवति = हा योगैश्वर्यसंपन्ने, कामन्दकीति भावः। परित्रायस्व=रक्ष, प्राणसममित्रस्य माधवस्य रक्षणेनेति भावः।

माधव इति। धिक् = मामिति शेषः। प्रमादः = अनवधानता।

नवेष्विति। नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिः, कुरङ्गेषु दृशः, गजेषु गतं, लतासु नम्रत्वम् इति विपिने प्रमथ्य मे प्रिया व्यक्तं विभक्तेत्यन्वयः। नवेषु = नूतनेषु, लोध्रप्रसवेषु= लोध्रकुसुमेषु, कान्तिः = शोभा, मालत्या इति भावः, अस्तीति शेषः, एवं परत्राऽपि। कुरङ्गेषु = मृगेषु, 'कुरङ्गीषु' इति पुस्तकान्तरपाठः। दृशः = विलोकितानि, वर्तन्ते इति शेषः। गजेषु = हस्तिषु, गतं = गमनं, विद्यते इति शेषः। गतमित्यत्र 'नपुंसके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययः। लतासु = व्रततिषु, नम्रत्वं = नमनशीलत्वं, वर्तते, इति= अस्माद्धेतोः, विपिने = वने सूनासन्निभे अस्मिन्निति शेषः। प्रमथ्य=प्रमथनं कृत्वा, मे=मम, प्रिया=वल्लभा, मालतीति भावः। व्यक्तं=स्फुटं यथा स्यात्तथा, विभक्ता= विभागीकृता, लोध्रप्रसवादिभिरिति शेषः। तथा च मत्प्रियां मालतीं प्रमथ्य लोध्रप्रसवाः शुभ्रकान्तिं, मृगा अधीरविप्रेक्षितानि गजाः॥ गमनं,, लता नमनशीलत्वं विभज्याऽऽचकर्षुरिति भावः। अत्रोत्प्रेक्षाङ्काराः। उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोः संमिश्रणादुपजातिवृत्तम्॥ १७॥

---

चन्द्रको अभिभूत कर रहा है। हा पिताजी! माताजी! हा भगवति! मेरी रक्षा कीजिए। माधवकी अवस्था देखिए।

माधव—मुझे धिक्कार है, प्रमाद हुआ है।

नये लोध्रपुष्पोंमें मालतीकी कान्ति, मृगोंमें निरीक्षण, हाथियोंमें गति और लताओंमें नम्रता इस प्रकारसे वनमें मथन कर मेरी प्रिया (मालती) को स्पष्टरूपसे विभक्त कर डाला है॥ २७॥

हा प्रिये मालति !

मकरन्दः—

सुहृदि गुणनिवासे प्रेयसि प्राणनाथे
कथमिव सहपांसुक्रीडनप्रौढसख्ये ।
प्रियजनविरहाधिव्याधिखेदं दधाने
हतहृदय ! विदीर्य त्वं द्विधा न प्रयासि ॥ २८ ॥

माधवः—सुलभानुकारः खलु जगति वेधसो निर्माणसंनिवेशः । भन-

---

इत्थं मालत्याः प्रमथनमुत्प्रेक्ष्य परिदेवयते—हा प्रिये ! मालतीति ।

सुहृदीति । गुणनिवासे प्रेयसि प्राणनाथे सहपांसुक्रीडनप्रौढसख्ये सुहृदि प्रियजनविरहाधिव्याधिखेदं दधाने ( सति ) हे हतहृदय ! त्वं द्विधा विदीर्य कथमिव न प्रयासीत्यन्वयः । गुणनिवासे = दयादाक्षिण्यादिगुणाधारभूते, निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः, 'हलश्चे'त्यधिकरणे घञ् । गुणानां निवासे । प्रेयसि = प्रियतमे, प्राणनाथे = असुस्वामिनि, येन विना प्राणान्धर्तुं न शक्यत इति भावः । सहपांसुक्रीडनप्रौढसख्ये = सहपांसुक्रीडनात् ( सहधूलिखेलायाः ) आरभ्य प्रौढं ( परिपक्वम् ) सख्यं ( मैत्री ) यस्य सः, तस्मिन् । एतादृशे सुहृदि = मित्रे, माधव इति भावः । प्रियजनविरहाधिव्याधिखेदं = प्रियजनस्य ( अभीष्टजनस्य, मालत्या इति भावः ) विरहेण ( वियोगेन ) य आधिः (मानसी व्यथा) स एव व्याधिः (रोगः) तस्य खेदं(पीडाम्) दधाने ( बिभ्राणे सति ), हे हतहृदय = निन्दितचित्त !, त्वं, द्विधा विदीर्य = खण्डद्वयेन विदीर्णं भूत्वा, कथमिव = केन प्रकारेण, न प्रयासि = न गच्छसि । मालिनीवृत्तम् ॥

माधव इति । अतः परम् 'आश्वस्योत्थाये'ति पुस्तकान्तरपाठोऽधिकः । वेधसः = ब्रह्मणः, निर्माणसन्निवेशः = रचनाप्रकारः, सुलभाऽनुकारः = सुलभः ( सुप्राप्यः ) अनुकारः ( सादृश्यम् ) यस्य सः । यत्र नत्रैकस्य सादृश्यं परत्र दृश्यत इति भावः ।

---

हा प्रिये मालति !

मकरन्दः—

दया-दाक्षिण्य आदि गुणोंके आधारभूत, प्रियतम, प्राणनाथ और साथ-साथ धूल खेलनेसे आरम्भ कर परिपक्व मैत्रीवाले मित्र माधवजीके मालतीके विरहसे चित्तव्यथारूप रोगको धारण करनेपर हे निन्दितचित्त ! तू दो टुकड़ोंमें विदीर्ण होकर क्यों नहीं जाता है ? ॥ २८ ॥

माधव—जगत्में ब्रह्माजीकी रचनामें एकका दूसरेके साथ सादृश्य सुलभ है ।

त्वेवं तावत्। (उच्चैः) अयमहं भोः (प्रणिपत्य) भूधरारण्यवासिनः सत्त्वान्विज्ञापयामि। मुहूर्तमवधानदानेन मामनुगृह्णन्तु भवन्तः।

भवद्भिः सर्वाङ्गप्रकृतिरमणीया कुलवधू-
रिहस्थैर्दृष्टा वा विदितमथवास्याः किमभवत्।
वयोऽवस्थां तस्याः शृणुत, सुहृदो यत्र मदनः
प्रगल्भव्यापारश्चरति हृदि मुग्धश्च वपुषि॥ २९॥

---

तेन मालतीकान्त्यादीनां सादृश्यमात्रं लोध्रप्रसवादिषु, तेन मया मालती प्रमथितेति भ्रान्तिर्न कर्तव्येति भावः। भूधराऽरण्यवासिनः = पर्वतवनवासिनः, 'भूधराऽरण्यचारिण' इति पाठान्तरे पर्वतवनसंचरणशीलानित्यर्थः। एतादृशान् सत्त्वान् = जन्तून्। मुहूर्तं = कंचित्कालं यावत्, अवधानदानेन = एकाग्रताऽवलम्बनेन, मद्वचनाऽकर्णन- इति शेषः।

भवद्भिरिति। इहस्थैः भवद्भिः सर्वाऽङ्गप्रकृतिरमणीया कुलवधूः दृष्टा वा? अथवा अस्याः किम् अभवत्? विदितम्? हे सुहृदः! तस्या वयोऽवस्था शृणुत—यत्र मदनः प्रगल्भव्यापारः (सन्) हृदि चरति, वपुषि च मुग्धः चरतीत्यन्वयः। इहस्थैः = अत्रस्थितैः, भूधराऽरण्यवासिभिरिति भावः। भवद्भिः = युष्माभिः, सर्वाऽङ्गप्रकृतिरमणीया = सर्वाऽङ्गेषु (सकलाऽवयवेषु, मुखादिष्विति भावः) प्रकृत्या (स्वभावेन, 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया, ततः समासः) रमणीया (मनोहरा, न तु कृत्रिमवेशभूषादिरचनयेति भावः)। कुलवधूः = कुलललना, कुलवधूत्वेन चाञ्चल्याऽभावो द्योत्यते। दृष्टा वा = अवलोकिता किं, काक्वा प्रश्न उन्नीयते। अथवा = दर्शनाऽभावपक्षे, अस्याः पूर्वोक्तायाः कुलवध्वाः, किम्, अभवत् = अभूत्, सा जीवितोपरता वेति, विदितं = ज्ञातं, तद्विषये काऽपि वार्ताऽऽकर्णिता किमिति भावः। कीदृशी वयोऽवस्था तस्या इति ज्ञातुमिच्छाऽस्ति चेच्छृणुत—वयोऽवस्थामिति। हे सुहृदः = हे मित्राणि, तस्याः = पूर्वोक्तायाः, कुलवध्वा इति भावः। वयोऽवस्थां = वयोदशां, शृणुत = आकर्णयत। यत्र = यस्यां, वयोऽवस्थायां, मदनः = मन्मथः, प्रगल्भव्यापारः = प्रौढक्रियः सन्, हृदि = मानसे,

---

ऐसा हो। (ऊँचे स्वरसे) अरे! यह मैं (प्रणाम कर) पर्वत और वनमें रहनेवाले प्राणियोंको विदित करता हूं। आपलोग कुछ समय तक एकाग्रताका अवलम्बन कर मुझे अनुगृहीत करें।

यहाँ रहनेवाले आपलोगोंने शरीरके सम्पूर्ण अवयवोंमें स्वभावसे सुन्दरी कुलवधू (मालती) को देखा है क्या? अथवा उसका क्या हुआ! जाना है!

कष्टं भोः ।

केकाभिर्नीलकण्ठस्तिरयति वचनं ताण्डवादुच्छिखण्डः,

कान्तामन्तःप्रमोदादभिसरति मदभ्रान्ततारश्चकोरः ।

गोलाङ्गूलः कपोलं छुरयति रजसा कौसुमेन प्रियायाः,

---

चरति=चलति, वपुषि च=शरीरे च, मुग्धः=बालः सन्, अप्रौढ इति भावः । चरति एतेन कैशोरयौवनयोः सन्धिस्थाने सा ललना स्थिताऽस्तीति सूच्यते । शिखरिणी वृत्तम् ॥ २९ ॥

कष्टमिति । कष्टं=दुःखम् । प्रियाप्राप्त्युपायाऽभावेन नैराश्यात्कष्टपदं संगच्छते ।

केकाभिरिति । ताण्डवात् उच्छिखण्डो नीलकण्ठः केकाभिः वचनं तिरयति । मदभ्रान्ततारः चकोरः अन्तः प्रमोदात् कान्ताम् अभिसरति । गोलाङ्गूलः कौसुमेन रजसा प्रियायः कपोलं छुरयति । कं याचे ? अर्थिभावो यत्र तत्र ध्रुवम् अनवसरग्रस्त एवेत्यन्वयः । ताण्डवात्=उद्धतनृत्यात्, उच्छिखण्डः=उन्नतबर्हभारः, नीलकण्ठः=मयूरः, केकाभिः=आत्मवाणीभिः, वचनं=वचः, मदीयप्रश्नरूपमिति शेषः । तिरयति=छादयति, तथा च मयूरः स्वकीयतारस्वरेण मदीयप्रश्नरूपं वचनमस्फुटं विधाय नाऽऽकर्णयतीति भावः । मदभ्रान्ततारः=मदेन ( मदनमदेन ) भ्रान्ते ( घूर्णिते ) तारे ( कनीनिके ) यस्य सः । तादृशः चकोरः=चन्द्रिकापायी पक्षिविशेषः, अन्तः=अन्तःकरणे, प्रमोदात्=हर्षात्' 'अन्तःप्रमोदाम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र अन्तः, ( अन्तर्गतः ) प्रमोदः ( हर्षः ) यस्यास्तामिति कान्ताया विशेषणत्वेन योज्यम् । कान्तां=प्रियां, चकोरीमिति भावः । अभिसरति=अभिसारं करोति, रमणाऽर्थमिति शेषः । तथा च चकोरोऽपि कान्ताऽभिसरणेन मद्वच उपेक्षत इति भावः । गोलाङ्गूलः=कृष्णमुखो वानरः, 'प्लवङ्गकीशप्लवगगोलाङ्गूलवलीमुखाः' इत्यमरमाला । कौसुमेन=कुसुमसम्बन्धिना, कुसुमस्येदं कौसुमं, तेन । 'तस्येदम्' इत्यण् । रजसा=परागेण, प्रियायाः=वल्लभायाः, गोलाङ्गूल्या इति भावः । कपोलं=गण्डं, छुरयति=चर्चयति, गोलाङ्गूलोऽपि पुष्पपरागेण प्रिया-

---

हे मित्रों ! आपलोग उसकी वयकी अवस्था पूर्ने-जिप (वय) में कामदेव हृदयमें प्रौढ़ क्रियावाले होकर शरीरमें अप्रौढ़ होकर विचरण करते हैं ॥ २९ ॥

अरे ! कष्ट है ।

ताण्डवनृत्यके कारण पिच्छभारको उन्नत करनेवाला मयूर अपनी वाणियोंसे मेरे वचनको तिरोहित कर रहा है । मदनमदसे जिसकी आँखोंकी पुतलियाँ घूम रही हैं ऐसा चकोर पक्षी अन्तःकरणमें उत्पन्न हर्षसे प्रिया ( चकोरी ) का

कं याचे ! यत्र तत्र ध्रुवमनवसरग्रस्त एवार्थिभावः ॥३०॥

अयं च—

दन्तच्छदारुणिमरञ्जितदन्तमाल-
मुन्नम्य चुम्बति वलीवदनः प्रियायाः ।
काम्पिल्यकप्रसवपाटलगण्डपालि-
पाकारुणस्फुटितदाडिमकान्ति वक्त्रम् ॥ ३१ ॥

कपोलचित्रणे व्यापृतः, अतो मद्वचोऽवधीरयतीति भावः । अतः कं=जनं 'कि'मिति पुस्तकान्तरपाठः । याचेप्रियाप्रवृत्तिं ब्रूहीति प्रार्थये । अर्थिभावः=याचकत्वम्, असन्निहितः अर्थः अस्याऽस्तीति अर्थी, तस्य भावः । 'अर्थाच्चाऽसन्निहिते' इतीनि, प्रत्ययः । यत्र तत्र=यस्मिंस्तस्मिन् सर्वत्राऽपीति भावः । ध्रुवं=निश्चितं यथा स्यात्तथा अनवसरग्रस्त एव=अप्रसङ्गाक्रान्त एव, अस्तीति शेषः । सर्वोऽपि जनः स्वाऽर्थाऽनुसन्धान एव प्रसक्तः, अतो मत्प्रार्थनाया अवसर एव नाऽस्तीति भावः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासाऽलङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ३० ॥

दन्तेति । वलीवदनो दन्तच्छदाऽरुणिमरञ्जितदन्तमालं काम्पिल्यकप्रसवपाटलगण्डपालिपाकाऽरुणस्फुटितदाडिमकान्ति प्रियाया वक्त्रम् उन्नम्य चुम्बतीत्यन्वयः । वलीवदनः=वलीमुखः, वानर इत्यर्थः । वल्यो वदने यस्य सः । दन्तच्छदाऽरुणिमरञ्जितदन्तमालं=दन्तच्छदयोः ( ओष्ठयोः ) अरुणिम्ना ( अरुणत्वेन, रक्तत्वेनेति भावः) रञ्जिता ( रक्तीकृता ) दन्तमाला (दशनपङ्क्तिः) यस्मिंस्तत् । 'दन्तमालम्' इत्यत्र 'कान्तदन्तम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र कान्ताः सुन्दरा इत्यर्थः । काम्पिल्यकप्रसवपाटलगण्डपालिपाकाऽरुणस्फुटितदाडिमकान्ति=काम्पिल्यकस्य ( रोचनीवृक्षस्य ) प्रसवौ ( फले ) तौ इव पाटले ( श्वेतरक्ते ) गण्डपाली ( कपोलप्रान्तौ ) यस्य तत्, एवं च पाकेन ( परिपक्वत्वेन ) अरुणं ( रक्तवर्णम् ) स्फुटितं ( बीजोच्छ्वासेन विदीर्णम् ) यत् दाडिमं ( दाडिमफलं, भाषायाम् 'अनार' इति ख्यातं फलम् ) तस्येव कान्तिः ( शोभा ) यस्य तत् । एतादृशं, प्रियायाः=वल्लभायाः, वानर्या इत्यर्थः । वक्त्रं=मुखम्, उन्नम्य=उन्नतं कृत्वा, कराभ्यामिति शेषः ।

अभिसरण कर रहा है । काला मुँहवाला वानर ( बन्दर ) फलके परागसे प्रिया ( वानरी ) के कपोलको चर्चित कर रहा है । अतः मैं किससे प्रार्थना करूँ ? मेरी याचकता जहाँ तहाँ अप्रसङ्गसे ग्रस्त है ॥ ३० ॥

यह भी—

वानर, ओष्ठोंके लौहित्यसे रञ्जित दन्तपङ्क्तियोंसे युक्त, रोचनी वृक्षके फलोंके श्वेतरक्त कपोलप्रान्तोंसे सम्बद्ध एवं परिपक्व होनेसे लाल वर्णवाले और

अयं च रोहिणानोकहस्कन्धविश्रान्तकण्ठः करी। कथमत्राप्यनवसरः।

कण्डूकुड्मलितेक्षणां सहचरीं दन्तस्य कोटया लिखन्
पर्यायव्यतिकीर्णकर्णपवनैराह्लादिभिर्वीजयन्।
जग्धार्द्धैर्नवसल्लकीकिसलयैरस्याः स्थितिं कल्पय-

चुम्बति=चुम्बनं करोति तथा चाऽस्याऽपि मत्प्रार्थनाऽऽकर्णनेऽनवकाश इति भावः। अत्र 'दाडिमकान्ति' इत्यत्र लुप्तोपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २१ ॥

अयमिति। 'अयं चे'त्यत्र 'एष' इति पुस्तकान्तरपाठस्तदनु 'प्रियतमास्कन्धविश्रान्तकर' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तत्र एषः='अयं, करी=गजः। प्रियतमायाः (करिण्याः) स्कन्धे (अंसे) विश्रान्तः (कृतविश्रमः, स्थित इत्यर्थः) करः (शुण्डादण्डः) यस्य स इत्यर्थः। रोहिणाऽनोकहस्कन्धविश्रान्तकण्ठः=रोहिणाऽनोकहस्य (वटवृक्षस्य) स्कन्धे (प्रकाण्डे) विश्रान्तः (विद्यमानः) कण्ठः (गलः-कण्ठस्थाने 'कन्धरा' इति पुस्तकान्तरपाठः) यस्य सः। अस्तीति शेषः।

कण्ड्विति। अन्यो वन्यमतङ्गजो दन्तस्य कोट्या कण्डूकुड्मलितेक्षणां सहचरीं लिखन् आह्लादिभिः पर्यायव्यतिकीर्णकर्णपवनैः वीजयन् जग्धार्द्धैः नवसल्लकीकिसलयैः अस्याः स्थितिं कल्पयन् परिचयप्रागल्भ्यम् अभ्यस्यतीत्यन्वयः। अन्यः=अपरः, 'धन्य' इति पाठान्तरे, धन्यः=पुण्यवान्, अन्यथा कथं कान्ताऽनुवृत्तिं कुर्यादिति भावः। 'धनगणं लब्धा' इति यत्, 'सुकृती पुण्यवान् धन्य' इत्यमरः। वन्यमतङ्गजः=आरण्यकः करी, दन्तस्य=दशनस्य, कोट्या=अग्रभागेन, कण्डूकुड्मलितेक्षणां=कण्ड्वा=(कण्डूयनेन) कुड्मलिते (मुकुलिते, मुद्रिते इति भावः) ईक्षणे (नेत्रे) यया सा ताम्। तादृशीं सहचरीं=सहचारिणीं, स्ववल्लभां करिणीमित्यर्थः। लिखन्=कण्डूयन्निति भावः, एवं च आह्लादिभिः=आह्लादकारकैः, सुखजनकैरित्यर्थः। पर्यायव्यतिकीर्णकर्णपवनैः=पर्यायेण (क्रमेण) व्यतिकीर्णौ (विक्षिप्तौ) यौ कर्णौ (श्रोत्रे) तयोः पवनः (वातैः)। वीजयन्=वीजितां कुर्वन्, प्रियामिति शेषः। जग्धार्द्धैः=जग्धम् (स्वयंभुक्तम्) अर्द्धं (समांऽशः) येषां तानि, तैः।

स्फुटित दाडिम (अनार) फलकी सदृश कान्तिवाले प्रिया (वानरी) के मुखको ऊँचाकर चूम रहा है ॥ २१ ॥

इस हाथीने वटवृक्षके प्रकाण्डमें अपने गलेको रक्खा है। कैसे इसमें भी अवसर नहीं है।

दूसरा जङ्गली हाथी दाँतके अग्रभागसे खुजलानेसे मुँदे हुए नेत्रोंवाली सहचरी (हाथिनी) को खुजलता हुआ, आह्लाद करनेवाली क्रमसे सञ्चालित कर्णोंकी हवाओंसे

न्नन्यो वन्यमतङ्गजः परिचयप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥ ३२ ॥

( अन्यतो विलोक्य )

अयं तु—

नान्तर्वर्धयति ध्वनत्सु जलदेष्वामन्द्रमुद्गर्जितं
नासन्नात्सरसः करोति कवलानावर्जितैः शैवलैः ।
दानज्यानिविषादमूकमधुपव्यासङ्गदीनाननो

---

तादृशैः नवसल्लकीकिसलयैः = नवैः ( नूतनैः ) सल्लकीकिसलयैः ( गजभक्ष्यलतापल्लवैः । 'शल्लकी'ति पाठान्तरम् ) अस्याः = करिण्याः स्थितिं = वृत्तिं, कल्पयन् = कुर्वन्, परिचयप्रागल्भ्यं = संस्तवप्रौढिं, सुरतनिःसाध्वसतामिति भावः । अभ्यस्यति = वारं वारमनुतिष्ठति, तथा च नायं करी मद्याचनां श्रोष्यतीति भावः । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

नान्तरिति । दानज्यानिविषादमूकमधुपव्यासङ्गदीनाननः स्तम्बेरमो जलदेषु ध्वनत्सु अन्तः आमन्द्रम् उद्गर्जितं न वर्धयति, आसन्नात् सरसः आवर्जितैः शैवलैः कवलान् न करोति; नूनं प्राणसमावियोगविधुरः ( सन् ) ताम्यतीत्यन्वयः । दानज्यानिविषादमूकमधुपव्यासङ्गदीनाऽऽननः=दानस्य ( मदजलस्य ) या ज्यानिः ( हानिः, अभाव इति भावः ) तया यो विषादः ( खेदः ) तेन मूकाः ( निःशब्दाः ) ये मधुपाः ( भ्रमराः ) तेषां व्यासङ्गेन (विशिष्टासक्त्या, कालान्तरे मदवारिप्राप्त्याशयेति शेषः ) दीनम् ( अप्रसन्नम् ) आननं ( मुखम् ) यस्य सः । एतादृशः स्तम्बेरमः=हस्ती, अपर इति शेषः । जलदेषु=मेघेषु, ध्वनत्सु=गर्जत्सु सत्सु, अन्तः=गर्जनमध्यसमये, आमन्द्रम् = अतिगम्भीरम् , उद्गर्जितम्=उच्चगर्जनं, न वर्धयति=न विस्तारयति, 'न वर्तयति' इति पाठान्तरे न करोतीत्यर्थः एवं । च आसन्नात् = निकटवर्तिनः, सरसः=कासारात् , आवर्जितैः=आनीतैः, शैवलैः =

---

प्रियाको वीजित करता हुआ अर्द्धभुक्त नवीन सल्लकी लताओंके पल्लवोंसे हथिनीकी वृत्तिको करता हुआ परिचयकी प्रौढताका अभ्यास कर रहा है ॥ ३२ ॥

( दूसरी ओर देखकर

यह तो—

मदजलके अभावसे उत्पन्न खेदसे शब्दहीन भ्रमरोंकी विशिष्ट आसक्तिसे अप्रसन्न मुखवाला हाथी, मेघोंके गर्जन करनेपर गर्जनके मध्यकालमें अतिगम्भीर उच्चगर्जनको नहीं बढ़ा रहा है और निकटस्थित तालाबसे लाये गये शैवलोंको नहीं खा रहा है;

नूनं प्राणसमावियोगविधुरः स्तम्बेरमस्ताम्यति ॥ ३२ ॥

अलमनेनाप्यायासितेन । ( सानन्दम् ) एष सानन्दसहचरीसमाकर्ण्यमानमधुरगम्भीरकण्ठगर्जितध्वनिरपरोऽपि मत्तमातङ्गवर्गपालकः प्रत्यग्रविकसितकदम्बसंवादिसुरभिशीतलामोदबहुलसंवलितमांसलकपोलनिष्य-

---

शैवालैः, कवलान्=ग्रासान्, न करोति=नो विदधाति । अतो नूनं=निश्चितं, प्राणसमावियोगविधुरः=प्राणसमायाः ( असुतदृश्याः प्रियतमायाः करिण्याः इति भावः वियोगेन ( विरहेण ( विधुरः ( विह्वलः ) सन् , ताम्यति=ग्लानो भवति. यतोऽयं मेघस्तनितं स्वर्जितेन न विस्तारयति, एवं च निकटसरस्याः शैवालजालं न भक्षयति अतः नूनं प्रियतमा विप्रयोगीति संभाव्यत इति भावः । अत्राऽनुमानाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अलमिति । आयासितेन = श्रान्तीकरणेन, मालतीविषयकप्रश्नेनेति शेषः । यतोऽयं मत्समानः कान्ताविरहीति भावः । सानन्दसहचरीसमाकर्ण्यमानमधुरगम्भीरकण्ठगर्जितध्वनि—सानन्दा ( सहर्षा ) या सहचरी, (सहचारिणी, करिणीत्यर्थः) तया समाकर्ण्यमानः ( संश्रूयमाणः ) मधुरः ( मनोहरः ) गम्भीरः ( गभीरः ) कण्ठगर्जितध्वनिः ( गलबृंहितशब्दः ) यस्य सः । प्रत्यग्रविकसितकदम्बसंवादिसुरभिशीतलाऽऽमोदबहुलसंवलितमांसलकपोलनिष्यन्दकर्दमिततीरं=प्रत्यग्रविकसितानि ( नूतनविकसितानि ) यानि कदम्बानि ( कदम्बपुष्पाणि, 'सङ्घात' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः) तैः संवादी (सदृशः) सुरभिः ( मनोहरः ) शीतलः ( शिशिरः ) य आमोदः ( सुरभिगन्धः ) तेन बहुकः ( प्रभूतः ) संवलितः ( पुञ्जीभूय स्थितः ) अतः मांसलः ( पुष्टः ) यः कपोलनिष्यन्दः ( गण्डजातो मदजलस्रावः ) तेन कर्दमितं ( संघातपङ्कम् ) तीरं ( तटम् ) यस्य तदिति सरसो विशेषणम् । 'कर्दमितकषायकरट' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र कर्दमितौ ( सञ्जातपङ्कौ ) अतः कषायौ ( सौरभसंपन्नौ ) करटौ ( गण्डौ, यस्य स इति मत्तमातङ्गवर्गपालकस्य विशेषणं-

---

इस कारणसे यह निश्चय प्राणतुल्य प्रियतमाके वियोगसे पीडित होकर ग्लानियुक्त हो रहा है ॥ ३२ ॥

अतएव इसको आयास देनेकी आवश्यकता नहीं है। ( आनन्दके साथ ) आनन्दसे युक्त सहचरी ( हथिनी ) ने जिसका मधुर ( मनोहर ) और गम्भीर कण्ठकी गर्जनध्वनि सुन ली है ऐसा, यह दूसरा मत्त हाथियोंके समूहका रक्षक, नये और खिले हुए कदम्बपुष्पोंके सदृश मनोहर और शीतल सुगन्धसे व्याप्त तथा पुष्ट कपोलोंमें उत्पन्न मदजलसे पङ्कयुक्त तटवाले निकाले गये कमलिनीसमूहोंसे बिखरे

न्दकर्दमिततीरं समुद्धृतकमलिनीखण्डप्रकीर्णकेसरमृणालकन्दाङ्कुरनिकरमनवरतप्रवृत्तकमनीयकर्णतालताण्डवप्रचलकर्णजर्जरिततरलतरङ्गविततनीहारवित्रस्तकुररसारसं सरोऽवगाह्य क्रीडति। भवतु। एनमाभाषे। महाभाग नागपते, श्लाघ्ययौवनः खल्वसि। कान्तानुवृत्तिचातुर्यमप्यस्ति भवतः। ( सापवादम् )

---

बोद्धव्यम्। समुद्धृतकमलिनीखण्डप्रकीर्णकेसरमृणालकन्दाऽङ्कुरनिकरं = समुद्धृतानि ( कृतसमुद्धाराणि, 'समुद्दलितानि' इति पाठे परिमर्दितानीत्यर्थः ) यानि कमलिनीखण्डानि ( पद्मिनीकदम्बानि ) तेभ्यः प्रकीर्णः ( विक्षिप्तः ) केसरमृणालकन्दाऽङ्कुरनिकरः ( किञ्जल्कबिसमूलाऽभिनवोद्भिदसमूहः ) यस्य तत्। प्रकीर्णपदाऽनन्तरं—"'पर्णकमलकेसरमृणालकन्दकोमलाऽङ्कुरमाहरन्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र विप्रकीर्णानि पर्णानि ( दलानि ) यस्य तत् तादृशं यत्कमलं (पद्मम्) तस्य यत् केसरमृणालकन्दकोमलाऽङ्कुरम् ( किञ्जल्कबिसमूलमृदुलाऽभिनवोद्भिदम् समाहारद्वन्द्वः ) तत् आहरन् = आनयन्, भक्षणाऽर्थमिति शेषः, इत्यर्थः। अनवरतप्रवृत्तकमनीयकर्णतालताण्डवप्रचलकर्णजर्जरिततरलतरङ्गविततनीहारवित्रस्तकुररसारसम् = अनवरतम् ( अविच्छिन्नं यथा तथा ) प्रवृत्तं ( समुत्पन्नम् ) कमनीयं सुन्दरम् ) यत् कर्णतालयोः ( दीर्घश्रोत्रयोः ) ताण्डवम् ( उद्धतनृत्यम् ) तेन प्रचलौ ( चञ्चलौ यौ कर्णौ ( श्रोत्रे ) ताभ्यां जर्जरितः ( चूर्णीकृताः ) तरलाः ( चञ्चलाः ) ये (तरङ्गाः) (भङ्गाः) तेभ्यो वितताः (विस्तृतः) ये नीहाराः (शीकराः) तेभ्यो वित्रस्ताः ( विशेषभीताः ) कुररसारसाः ( उत्क्रोशपुष्कराह्वा पक्षिविशेषाः ) यस्मिंस्तत्। एतादृशं सरः = कासारम्, अवगाह्य = प्रविश्य, क्रीडति = विहरति। एवं = नागपतिम्, 'आभाषे' आलपामीत्यर्थः। महाभाग = महाभाग्यसम्पन्न !, महान् भागः ( भाग्यम् ) यस्य स तत्सम्बुद्धौ। महाभागत्वं च कान्ताऽनुवृत्तिचातुर्येण बोध्यम्। नागपते गजाधीश !, 'मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी।' इत्यमरः श्लाघ्ययौवनः = प्रशंसनीयतारुण्यः, कान्तावियोगाऽभावादिति भावः। कान्ताऽ-

---

गये केसर, कमलकी डण्डी-कन्द और अङ्कुरसमूहसे युक्त, लगातार उत्पन्न दीर्घ कर्णोंके सुन्दर ताण्डवसे चञ्चल होनेवाले कर्णों चूर्णीकृत और चलनेवाली तरङ्गोंके विस्तृत जलकणोंसे विशेष डरे हुए कुरर और सारस पक्षियों युक्त तालामें प्रवेश कर क्रीडा कर रहा है ! हो। इससे आभाषण करता हूं। महाभाग्यसम्पन्न गजराज ! तुम प्रशंसनीय यौवन ( जवानी ) से युक्त हो। प्रियाका अनुसरण करनेकी चतुराई भी तुम्हारी है। ( दोषप्रकाशनके साथ )।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्न स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥ ३४ ॥

नुवृत्तिचातुर्यं = भार्याऽनुसरणनैपुण्यम् । साऽपवादं = सदोषम्, सापवादत्वं च कान्ताऽनुवृत्तिचातुर्यस्य न्यूनत्वाद्बोद्धव्यम् ।

तदेव प्रतिपादयति—*लीलोत्खातेति । लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु* पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः सम्पादिताः । शीकरिणा करेण कामं सेको विहितः । पुनः विरामे स्नेहात् अनरालनालनलिनीपत्राऽऽतपत्रं न धृतमित्यन्वयः । लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु = लीलया (अनायासेन) उत्खाताः ( उद्धृताः) ये मृणालकाण्डाः ( बिसस्तम्बाः ) त एव कवलाः ( ग्रासाः ) तेषां छेदेषु ( समाप्तिषु )। पुष्यत्पुष्करवासितस्य=पुष्यन्ति (विकसन्ति) यानि पुष्कराणि (कमलानि) तैः वासितस्य ( सुरभितस्य ) । पयसः=जलस्य, गण्डूषसंक्रान्तयः=मुखपूरितजलांऽशसंचाराः, सम्पादिताः=निर्व्यूढाः, कृता इति भावः । अनेन रतारम्भकं नायककृत्यमुक्तम् । पूर्वं भक्षणाऽर्थं मृणालग्रासेषु दत्तेषु मध्ये पानाऽर्थं गण्डूषा अपि दत्ता इति भावः। एवं च शीकरिणा=जलबिन्दुयुक्तेन, 'शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः ।' इत्यमरः करेण=शुण्डादण्डेन, कामं' = यथेष्टं 'कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम् ।' इत्यमरः। सेकः = सेचनं, करिणीदेह इति शेषः। विहितः = कृतः। सम्प्रति कान्ताऽनुवृत्तिचातुर्ये न्यूनतां प्रतिपादयति—पुनः=भूयः, विरामे=सेचनाऽवसाने, स्नेहात् = प्रणयात्, अनरालनालनलिनीपत्राऽऽतपत्रम् = अनरालम् ( अवक्रं, सरलमिति भावः) नालं ( कमलदण्डः ) यस्य तत्, एतादृशं यत् नलिनीपत्रं ( कमलदलं, 'नलिनी पद्मिनी पद्मम्' इत्यमरमाला ) तदेव आतपत्र (छत्रम्, आतपात्त्रायत इति, 'आतोऽनुपसर्गे क' इति कप्रत्ययः ) न धृतं=न आच्छादितं, करिणीशरीरे इति शेषः, अत एव कान्ताऽनुवृत्तिचातुर्ये साऽपवादत्वं बोद्धव्यमिति भावः। श्लोकोऽयमुत्तररामचरितेऽपि तृतीयऽङ्के रामवक्तृकत्वेनोपन्यस्तः परं तत्र न स्नेहादित्यत्र यत्स्नेहादित्युपन्यासाद्विधिगर्भत्वं वर्तते । अत्र नलिनीपत्र आतपत्रत्वारोपणेन रूपकाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

तुमने अनायास उखाड़े गये कमलदण्डरूप ग्रासोंके अन्तमें खिले हुए कमलोंसे सुगन्धित अपने मुखके जलको हाथिनीके मुखमें संक्रान्त किया ( छोड़ा )। जलकी बूँदे छोड़नेवाली सूँड़से अत्यन्त सेचन भी कर दिया। फिर सेचनकी समाप्तिमें स्नेहसे सीधा दण्डवाले कमलपत्ररूप छत्रको धूप हटानेके लिए धारण नहीं किया ॥३४॥

कष्टम् । कथमाविर्भूतमत्परिष्वङ्गोत्कण्ठ एव निश्चेतनः संवृत्तः । तत्कृतमिदानीं जीविताशाव्यसनेन । सर्वथा नास्ति मे प्रियवयस्य इति युक्तः परिच्छेदः । हा वयस्य !

यत्स्नेहसंज्वरवता हृदयेन नित्य-
मावद्धवेपथु विनापि निमित्तयोगात् ।
त्वय्यापदो गणयता भयमन्वभावि
तत्सर्वमेकपद एव मम प्रनष्टम् ॥ ३६ ॥

परिष्वञ्जनेनेति शेषः । आविर्भूतमत्परिष्वङ्गोत्कण्ठः=आविर्भूता ( संजाता ) मत्परिष्वङ्गे (मदालिङ्गने) उत्कण्ठा (औत्सुक्यम्) यस्य सः । निश्चेतनः=मूर्च्छितः, निर्गता चेतना ( ज्ञानम् ) यस्मात्सः । तत् = तस्मात् । जीविताऽऽशाव्यसनेन = जीवनाऽऽशाऽऽसक्त्या । कृतं=पर्याप्तं, 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' जीविताशाव्यसनेन साध्यं नाऽस्तीत्यर्थः । परिच्छेदः = निश्चयः ।

यत्स्नेहेति । स्नेहसंज्वरवता हृदयेन निमित्तयोगात् विना अपि नित्यं त्वयि आपदो गणयता आवद्धवेपथु यत् भयम् अन्वभावि, मम तत् सर्वम् एकपद एव प्रनष्टमित्यन्वयः । स्नेहसंज्वरवता = प्रेमजनितसंतापयुक्तेन, हृदयेन = मनसा, ममेति शेषः । निमित्तयोगात् = कारणसम्बन्धात् , विनापदेन योगे 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्तरस्याम्' इति पञ्चमी, पक्षे तृतीया द्वितीया वा । विना अपि = ऋते अपि नित्यम्=अनवरतं, त्वयि=भवद्विषये, आपदः=विपत्तीः, गणयता=सम्भावयताम येति शेषः । 'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपी'ति न्यायादिति भावः । आवद्धवेपथु = आवद्धः ( धृतः ) वेपथुः ( कम्पः ) यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा, यत् , भयं = भीतिः, अन्वभावि = अनुभूतं, भूधातोरकर्मकत्वेऽपि अनुपसर्गवशात्सकर्मकत्वं, कर्मणि लुङ् । 'स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् चे'ति चिण् 'चिणो लुक्' इति तकारस्य लुक् । मम = सुहृदः, मकरन्दस्य । तत् = तादृशं, सर्वं =

---

साथ ) कष्ट है । किस तरह मेरे आलिङ्गन में उत्कण्ठा उत्पन्न होनेके अनन्तर ही ये मूर्च्छित हो गये हैं । इस कारणसे इस समय जीनेकी आशामें आसक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं है । 'मेरे प्रियमित्र नहीं हैं' ऐसा निश्चय करना ही सर्वप्रकार से युक्तिसंगत है । हा वयस्य !

प्रेमजनित संतापसे युक्त मेरे हृदयने कारणसम्बन्धके न होनेपर भी निरन्तर तुम्हारे विषयमें विपत्तियोंकी संभावना कर कम्पयुक्त होकर जिस भयका अनुभव किया था, मेरा वह सब भय एकबार ही विनष्ट हो गया है ॥ ३६ ॥

अथवा वरं त एवातिक्रान्ता मुहूर्ताः, येषु तथाविधमपि भवन्तं चेतयमानमनुभूतवानस्मि । इदानीं तु मम—

**भारः कायो जीवितं वज्रकीलं काष्ठाः शून्या निष्फलानीन्द्रियाणि ।**
**कष्टः कालो मां प्रति त्वत्प्रयाणे शान्तालोकः सर्वतो जीवलोकः ॥३७॥**

सकलं, भयमिति शेषः । एकपद एव = एकस्मिन्क्षण एव, प्रनष्टं = विनष्टं, दैवप्रातिकूल्यादिति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अथवेति । 'सखे' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः । त एव=अनुभूता एव, 'तावन्त' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र तत्परिमाणा इत्यर्थः । अतिक्रान्ताः=व्यतीताः, वरं=किञ्चित्प्रिया इति भावः, एतन्मुहूर्ताऽपेक्षयेति शेषः । 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक्प्रिये ।' इत्यमरः । येषु = अतिक्रान्तेषु मुहूर्तेषु तथाविधम् अपि=तादृशम् अपि मालतीविरहेण विक्षिप्तप्रायमपीति भावः । चेतयमानं = चेतनावन्तम्, अनुभूतवान् अस्मि = साक्षात्कृतवान् अस्मि ।

भार इति । त्वत्प्रयाणे मां प्रति कायो भारः, जीवितं वज्रकीलं, काष्ठाः शून्याः, इन्द्रियाणि निष्फलानि, कालः कष्टः जीवलोकः सर्वतः शान्तलोक इत्यन्वयः । हे मित्र माधव ! त्वत्प्रयाणे = तव ( भवतः ) प्रयाणे ( प्रस्थाने, मनुष्यलोकादिति शेषः ) त्वयि दिवं गत इति भावः । मां प्रति=प्रियसुहृदं मकरन्दं प्रति, 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपी'ति द्वितीया । मत्कृत इति भावः । कायः= शरीरं भारः = भारप्रायः, धर्तुमशक्य इति भावः, त्वद्दते कायोऽपि रोगप्रायत्वेन अपनेय इति तात्पर्यम् । जीवितं = जीवनं, 'नपुंसके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययः । वज्रकीलं=वज्रमयशङ्कुसदृशं, जीवितस्य कीलवद्दुःसहत्वेन निष्कास्यत्वादिति भावः । एतेन मर्मच्छेदः प्रतीयते । काष्ठाः = दिशः, शून्याः = प्रयोजनीयपदार्थरहिता इव, अनुभूयन्त इति शेषः, एतेन जडता प्रतीयते । इन्द्रियाणि=हृषीकाणि, श्रोत्रादीनीति भावः, 'हृषीकं विषयीन्द्रियम्' इत्यमरः । निष्फलानि = प्रयोजनशून्यानि, स्वस्वव्यापाराऽक्षमत्वादिति भावः, एतेन बाह्यविषयाऽग्रहाद्दैन्यमवसीयते । कालः= समयः, कष्टः = दुःखदः, सर्वव्यापाराणां निवृत्तत्वादिति भावः । जीवलोकः=संसारः, सर्वतः = सर्वत्र, शान्ताऽऽलोकः प्रकाशरहितः, आलोकमयस्य सुहृद उपरतेरिति

अथवा बीते हुए वे मुहूर्त ही मेरे लिए कुछ अच्छे थे, जिनमें वैसे (शोकाकुल) होनेपर भी तुमको मैंने चैतन्ययुक्त जाना था । इस समय तो मुझे—

मनुष्यलोकसे तुम्हारा प्रस्थान होनेपर शरीर भारप्राय, जीवन वज्रमय कीलके सदृश, दिशायें शून्य, इन्द्रिय निष्फल, समय दुःखद और मनुष्यलोक सर्वत्र प्रकाशरहित प्रतीत हो रहा है ॥ ३७ ॥

( विचिन्त्य ) तत्किं नु माधवास्तमयसाक्षिणा भवितव्यमित्यतो जीवामि । तदस्माद् गिरिशिखरात्पाटलावत्यां निपत्य माधवस्य मरणाग्रेसरो भवामि । ( सकरुणं परिवृत्यावलोक्य च ) कष्टम् ।

तदेतदसितोत्पलद्युति शरीरमस्मिन्नभू-
न्ममापि दृढपीडनैरपि न तृप्तिरालिङ्गनैः ।

---

भावः । अत्रोत्प्रेक्षाद्योतकशब्दविरहात्पूर्णानां प्रतीयमानोत्प्रेक्षाणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शालिनी वृत्तम् ॥ ३७ ॥

विचिन्त्येति । माधवाऽस्तमयसाक्षिणा = माधवस्य ( मत्प्रियसुहृदः ) यत् अस्तमयं ( मरणम् ) तत्साक्षिणा ( तत्साक्षद्द्रष्ट्रा ), मयेति शेषः । भवितव्यं = भाव्यम्, इत्यतः = इत्यस्मात्कारणात् , जीवामि = प्राणान्धारयामि ? काक्वा प्रश्न उन्नीयते । माधवमरणवेदित्वमेव मज्जीवनफलं ? तर्हि प्रागेवाहमपि प्राणांस्त्यजामीत्याशयः । तमेव प्रतिपादयति—तदिति—तत् = तस्मात् , गिरिशिखरात् = पर्वतशृङ्गात् , पाटलावत्यां = तदाख्यायां नद्यामिति भावः । निपत्य = निपतनं कृत्वा, मरणाऽग्रेसरः = मरणे ( मृत्यौ ) अग्रेसरः ( पुरःसरः ) । अग्रे सरतीति, 'पुरःसरोऽग्रेषु सर्तेः' इति टप्रत्ययः । माधवे जीवत्येवाऽहं स्वजीवनं त्यक्ष्यामीति भावः ।

तदिति । तत् एतत् असितोत्पलद्युति शरीरम्, अस्मिन् दृढपीडनैरपि आलिङ्गनैः मम अपि तृप्तिः न अभूत् । पुरा उल्लसितविभ्रमाः नवप्रणयविभ्रमाऽऽकुलितमालतीदृष्टयो यत् निपीतवत्य इत्यन्वयः । बत ! तत् = पूर्वाऽवलोकितम्, एतत्=पुरोवर्ति, असितोत्पलद्युति = असितोत्पलस्य ( नीलकमलस्य ) इव द्युतिः ( कान्तिः ) यस्य तत् , तादृशं शरीरं = देहः, माधवीय इति भावः, विद्यत इति शेषः अस्मिन् = माधवशरीरे, दृढपीडनैरपि=गाढासञ्जनैरपि, 'अतिदृढपीडनैरपी'ति पुस्तकान्तरपाठः । आलिङ्गनैः = आश्लेषैः, मम अपि = सुहृदो मकरन्दस्य अपि, अपिपदेन किमुत मालत्या इत्यर्थ उन्नीयते । तृप्तिः = पूर्णप्रीतिः, न अभूत् । पुरा = पूर्वकाले, उल्लसित-

---

(विचारकर) तब मैं माधवकी मृत्युका साक्षी होनेके लिए क्यों जीवन धारण करूँ ? इस कारणसे इस पहाड़की चोटीसे पाटलावती-नदीमें कूदकर माधवकी मृत्युमें अग्रसर हो जाता हूँ । ( शोकके साथ लौटकर और माधवका शरीर भी देखकर ) कष्ट है ।

वह यही माधवजीका नीलकमलके सदृश कान्तिवाला शरीर है, जिसमें दृढपीडन-वाले आलिङ्गनों से भी मेरी भी तृप्ति नहीं हुई थी । पूर्वकालमें विशिष्ट भ्रमणसे

यदुल्लसितविभ्रमा बत निपीतवत्यः पुरा
नवप्रणयविभ्रमाकुलितमालतीदृष्टयः ॥ ३८ ॥

हन्त भोः ! एकस्यां तनावेतावतो गुणसमाहारस्य संनिवेशः कथमिवाभूत्। सखे माधव !

आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः, शीर्णश्च वायोर्जवात् ।

विभ्रमाः = उल्लसितः ( आविर्भूतः, लोकाऽतिशायिसौन्दर्यनिरीक्षणादिति शेषः ) विभ्रमः ( विशिष्टभ्रमणानि 'विस्मय' इति पाठे आश्चर्यमित्यर्थः ) यासु ताः। नवप्रणयविभ्रमाऽऽकुलितमालतीदृष्टयः = नवप्रणयेन ( नूतनाऽनुरागेण ) ये विभ्रमाः ( विलासाः ) तैः आकुलिताः ( व्याकुलिताः ) मालतीदृष्टयः = ( मालतीदृक्पाताः, कर्तृरूपाः ) यत् = माधवशरीरं, निपीतवत्यः = प्रणयाऽतिशयेन दृष्टवत्या इति लक्षयाऽर्थः। बतेति खेदे। अत्र 'असितात्पलद्युति' इत्यस्मिन्नुपमाऽलङ्कारः। पृथ्वी वृत्तम् ॥ ३८ ॥

हन्तेति। अतः पूर्वम् 'आश्चर्यम्' इति पाठः। एकस्याम् = एकसंख्यकायाम्, 'एतस्यामि'ति पाठे पुरोवर्तिन्यामित्यर्थः। तनौ = माधवशरीरे। एतावतः = एतत्परिमाणस्य, प्रभूतस्येत्यर्थः, 'तावत' इति पुस्तकान्तरपाठः। गुणसमाहारस्य = गुणानां ( सौन्दर्यादीनाम् ) समाहारस्य ( समूहस्य )।

आपूर्ण इति। कलाभिः आपूर्णः अमल इन्दुः राहोः मुखं यातश्च। घनाघनो जलधरः सञ्जातः वायोः जवात् शीर्णश्च। फलेग्रहिः द्रुमवरो निर्वृत्तो दवाऽग्निना दग्धश्च। त्वं जगतः चूडामणितां गतः मृत्योः वशं प्राप्तश्चेत्यन्वयः। कलाभिः=षोडशभिर्भागैः, आपूर्णः = आपूरितः, सन्नेव, लोकलोचनानन्दनात्प्रागेवेति शेषः। अमलः=निर्मलः, इन्दुः=चन्द्रः, राहोः=विधुन्तुदस्य, मुखम् = आननं, यातः=प्राप्तः, भवतीति शेषः। घनाघनः = वर्षुकः, न तु केवलं गर्जनशील इति भावः। 'घनाघनो मत्तगजे वर्षुकाऽ-

सम्पन्न और नूतन प्रणयसे उत्पन्न विलासोंसे आकुल किये गये मालतीके दृष्टिपातोंने जिस माधव शरीरको अतिशय प्रेमसे साक्षात्कार किया था ॥ ३८ ॥

हाय ! अरे ! एक शरीरमें इतने गुणोंके समुदायकी स्थिति कैसे हुई ? मित्र माधव !

सोलह कलाओंसे परिपूर्ण होनेके अनन्तर ही निर्मल चन्द्र राहुके मुखमें पड़ गये। वृष्टि करनेवाला मेघ उत्पन्न होनेके साथ ही वायुके वेगसे विलीन हुआ।

निर्वृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
एवं चूडामणितां गतश्च जगतः, प्राप्तश्च मृत्योर्वशम् ॥३९॥

तत्परिष्वजे तावदेवं गतमपि प्रियवयस्यम्। अर्थितश्चानेन संप्रत्ययमेवार्थः ( परिष्वज्य ) हा वयस्य, विमलकलानिधे गुणगुरो, हा मालतीस्वयंग्राहजीवितेश्वर, हा कामन्दकीमकरन्दानन्दजनक माधव, अयमत्र ते

---

ब्दमहेन्द्रयोः।' इत्यमरमाला। जलधरः=मेघः, संजातः=उत्पन्नमात्र एव, लोकसन्तापाऽपनोदनादातपतापितधराप्लावनात्प्रागेवेति शेषः। वायोः=वातस्य, जवात्=वेगात्, शीर्णः=विलीनो भवति। एवं च फलेग्रहिः=फलपरिपूर्णः, फलानि गृह्णाति, 'फलेग्रहिरात्मम्भरिश्चे'ति उपपदस्यैदन्तत्वं ग्रहेरिन्प्रत्ययश्च निपात्यते, 'स्यादवन्ध्यः फलेग्रहिः' इत्यमरः। द्रुमवरः=उत्तमवृक्षः, निर्वृत्तः=निष्पन्नमात्रः, स्वफलैरतर्पितपान्थादिवर्ग एव, दावाऽग्निना=दवाऽनलेन, दग्धः=भस्मीकृतो भवति। हे सखे माधव! एवमेव त्वं, जगतः=लोकस्य, चूडामणितां=शिरोरत्नतां, गतः=प्राप्तः, अप्राप्तगुणगणोपयोग एवेति भावः। मृत्योः=मरणस्य, वशम्=आधीन्यं प्राप्तः=आसादितः। अतः परं किं विधुरमिति भावः। अत्र दृष्टान्ताऽलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।' इति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३९ ॥

तदिति। एवं गतमपि=मूर्च्छां प्राप्तमपि। परिष्वजे=आलिङ्गामि। अनेन=माधवेन, अयमेवाऽर्थः=ममाऽऽलिङ्गनमेव प्रयोजनम्। अर्थितः='परिष्वजस्व माम्' इति कथयित्वा प्रार्थितः। विमलकलानिधे=विमलाः ( निर्मलाः ) कलाः ( नृत्यगीतवदित्रादयः, 'विद्या' इति पाठे वेदादय इत्यर्थः ), तासां निधिः ( आकरः ) तत्सम्बुद्धौ। गुणगुरो=गुणैः ( दयादाक्षिण्यादिभिः, न तु शरीरोपचयेनैव ) गुरुः ( श्रेष्ठः ) तत्सम्बुद्धौ। मालतीस्वयंग्राहजीवितेश्वर=मालत्याः स्वयंग्राहेण ( स्वतोग्रहणेन; मातापित्राद्यनुमतिं विनेति शेषः ) जीवितेश्वरः ( जीवननाथः ) तत्सम्बुद्धौ। 'हा सौन्दर्यविनिर्जितरतिरमणच्छाय! हा कामिनीहृदयमन्मथ! हा

---

फलोंसे परिपूर्ण उत्तम वृक्ष उत्पन्न होते ही दावाग्निसे जल गया; हे मित्र माधव! इसी तरह तुम संसारकी चूडामणिके भावको प्राप्त होनेके अनन्तर ही—मृत्युके वशमें प्राप्त हो गये हो ॥ ३९ ॥

इस कारणसे ऐसी अवस्था ( मूर्च्छा ) को प्राप्त होने पर भी प्रिय मित्रको आलिङ्गन करता हूँ। इन्होंने इस समय इसीके लिए प्रार्थना भी की थी। (आलिङ्गन कर ) हा मित्र! निर्मल कलाओंके निधे! दया-दाक्षिण्य आदि गुणोंसे श्रेष्ठ! हा!

जन्मन्यपश्चिमः पश्चिमावस्थाप्रार्थितो मकरन्दबाहुपरिष्वङ्गः। सखे, संप्रति मुहूर्तमपि मकरन्दो जीवतीति मैव मंस्थाः। कुतः—

आ जन्मनः सहनिवासितया मयैव
मातुः पयोधरपयोऽपि समं निपीय।

बान्धवपयोनिधिशरच्चन्द्रे' त्यधिकाः पुस्तकान्तरपाठास्तत्र सौन्दर्येण (सुन्दरत्वेन) विनिर्जिता (विशेषेण निर्जिता) रतिरमणस्य (कामदेवस्य) छाया (कान्तिः) येन स तत्सम्बुद्धौ। हा=तव शोच्यते ति भावः। कामिनीहृदयमन्मथ=कामिनीहृदये (विलासिनीचित्ते) मन्मथः (मदनरूपः) तत्सम्बुद्धौ। बान्धवपयोनिधिशरच्चन्द्र=बान्धवाः (पित्रादिबन्धुजनाः) एव पयोनिधयः (समुद्राः) तेषां शरच्चन्द्रः (शारदेन्दुः, तेषामाह्लादवर्द्धनादिति भावः) तत्सम्बुद्धौ। हा कामन्दकीमकरन्दाऽऽनन्दजनक=कामन्दकीमकरन्दयोः आनन्दजनकः (हर्षोत्पादकः) तत्सम्बुद्धौ। पुस्तकान्तरे तु'''आनन्दनमुखचन्द्रे'ति पाठान्तरम्। अपश्चिमः=आद्यः, पुनर्ममालिङ्गनाऽभावाद्यमेवाऽपश्चिमः, दुर्लभ इति भावः। पश्चिमाऽवस्थाप्रार्थितः=पश्चिमाऽवस्थायाम् (अन्त्याऽवस्थायाम्) प्रार्थितः (अभ्यर्थितः)। 'पश्चिमाऽवस्थां प्रापित' इति पुस्तकान्तरपाठः। मकरन्दबाहुपरिष्वङ्गः=मकरन्दबाह्वोः (मकरन्दभुजयोः) परिष्वङ्गः (आलिङ्गनम्)। मुहूर्तमपि=कञ्चित्कालमपि, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। मैव मंस्थाः=नैव जानीहि, अहमपि त्वदनुगमनं करिष्यामीति भावः।

आ जन्मन इति। हे पुण्डरीकमुख! आ जन्मनः सहनिवासितया मया एव समं मातुः पयोधरपयः अपि निपीय त्वम् एकः बन्धुतया निरस्तं निवापसलिलं पिबसि इति अयुक्तमित्यन्वयः। हे पुण्डरीकमुख=हे श्वेतकमलसदृशाऽऽनन!, आ जन्मनः=जन्मत आरभ्य, 'आङ् मर्यादावचने' इति आङः कर्मप्रवचनीयत्वेन तद्योगे 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' इति पञ्चमी। सहनिवासितया=सहचरत्वेन, मया एव=मकरन्देन एव, 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति तृतीया। समं=सह, मातुः=जनन्याः, पयोधरः अपि=कुच-

मालतीके स्वयंग्रहणसे जीवनेश्वर! हा! कामन्दकी और मकरन्दके आनन्दोत्पादक! माधव! इस जन्ममें तुम्हारा पहला और अन्त्यावस्थामें प्रार्थित यह मकरन्दके बाहुओंका आलिङ्गन है। सखे! इस समय कुछ कालतक भी मकरन्द जीता है ऐसा मत जानो। क्योंकि—

हे श्वेतकमलके सदृश मुखवाले! जन्मसे लेकर सहचर होनेसे मेरे ही साथ

त्वं पुण्डरीकमुख बन्धुतया निरस्त-
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम् ॥ ४० ॥

( सकरुणं विमुच्य । परिक्रम्य ) इयमधस्तात्पाटलावती ।

प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव संभवः ।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसंचरः ॥ ४१ ॥

( इति पतितुमिच्छति )

---

दुग्धम् अपि, निपीय=पीत्वा, त्वं=माधवः, एकः=एकाकी, अधुनेति शेषः। बन्धुतया=बान्धवसमूहेन, 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्ययः। निरस्तं=दत्तं, निवापसलिलं=पितृतर्पणजलं, 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः। पिबसि=पास्यसि 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट्। इति=इदम्, आजन्मसहचरं मां विहायैकाकित्वेन निवापसलिलपानम्, अयुक्तम्=अनुचितम्, एतेन सहपानाऽर्थमहमप्यागमिष्यामीति व्यज्यते। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४० ॥

सकरुणमिति। विमुच्य=परित्यज्य, माधवशरीरमिति शेषः। आपगे=हे नदि !, 'स्रवन्ती निम्नगाऽऽपगा' इत्यमरः।'

प्रियस्येति। प्रियस्य सुहृदो यत्र संभवो मम तत्रैव संभवो भूयात्। भूयोऽपि अमुष्य अनुसंचरो भूयासमित्यन्वयः। प्रियस्य=वल्लभस्य, सुहृदः=सख्युः, माधवस्येति भावः। यत्र=यस्मिन्स्थाने, संभवः=उत्पत्तिः, स्यादिति शेषः। मम=मकरन्दस्य, तत्रैव=तस्मिन्स्थान एव, संभवः=उत्पत्तिः, भूयात्=भवतात्। भूयोऽपि=पुनरपि, अमुष्य=स्थानान्तरवर्तिनः, सुहृद इति भावः। 'अमुत्रे'ति पाठे परलोक इत्यर्थः। अनुसंचरः=अनुचरः, भूयासं=भवेयम्, इति प्रार्थनाद्वयं क्रियत इति भावः ॥ ४१ ॥

---

माताके स्तन्यदुग्धको भी पीकर तुम अकेले ही, बान्धवोंसे दिये गये तर्पण जलको पीओगे यह अनुचित है ॥ ४० ॥

(शोकके साथ माधवके शरीरको छोड़कर। पादविक्षेपकर) नीचे ये पाटलावती नदी हैं। भगवति नदि !

प्रियमित्र ( माधव ) की जहाँ उत्पत्ति हो मेरा भी वहीं जन्म हो। मैं फिर भी उनका अनुचर हो जाऊँ ॥ ४१ ॥

( ऐसा कहकर गिरनेकी इच्छा करता है। )

सौदामिनी—( प्रविश्य सहसा वारयित्वा ) वत्स, कृतं साहसेन ।

मकरन्दः—( विलोक्य ) अम्ब, कासि ? किमर्थं त्वयाहं प्रतिषिद्धः ?

सौदामिनी—आयुष्मन्, किं त्वं मकरन्दः ?

मकरन्दः—मुञ्च । स एवास्मि मन्दभाग्यः ।

सौदामिनी—वत्स, योगिन्यस्मि । मालतीप्रत्यभिज्ञानं च धारयामि । ( बकुलमालां दर्शयति )

मकरन्दः—( सोच्छ्वासं सकरुणम् ) अपि जीवति मालती ?

सौदामिनी—अथ किम् । वत्स, किमत्याहितं माधवस्य ? यदनिष्टं व्यवसितोऽसीत्याकम्पितास्मि ।

---

सौदामिनीति । साहसेन = दुष्करकर्मणा, आत्महत्याऽर्थं पाटलावत्यां निपातरूपेणेति भावः । कृतं = अलम्, आत्महत्यारूपसाहसेन साध्यं नाऽस्तीत्यर्थः ।

मकरन्द इति । अम्ब = मातः !, 'अम्बाऽर्थनद्योर्ह्रस्व' इति सम्बुद्धौ ह्रस्वत्वम् । कामन्दकीसदृशवेषादिदर्शनादम्बेत्युक्तिः । प्रतिषिद्धः = निवारित इति भावः ।

सौदामिनीति । मालतीप्रत्यभिज्ञानं = मालतीचिह्नम् ।

मकरन्द इति । अपि जीवति = प्राणान्धारयति किम्, अपिः प्रश्ने ।

सौदामिनीति । अत्याहितं=महाभीतिः जीवनाऽनपेक्षि कर्म वा 'अत्याहितं महाभीतिः कर्मजीवाऽनपेक्षि च ।' इत्यमरः । अनिष्टं = पाटलावतीनिपातेन स्वदेहत्यागरूपमिति भावः । व्यवसितः = प्रवृत्तः ।

---

सौदामिनी—( प्रवेशकर सहसा रोककर ) वत्स ! साहस मत करो ।

मकरन्द—(देखकर) माताजी ! आप कौन हैं ? किस लिए आपने मुझे रोका ?

सौदामिनी—चिरञ्जीव ! क्या तुम मकरन्द हो ?

मकरन्द—मुझे छोड़िए । मैं वही मन्दभाग्यवाला हूँ ।

सौदामिनी—वत्स ! मैं योगिनी हूँ और मालतीके चिह्नको भी धारण करती हूँ । ( बकुलमाला दिखाती है । )

मकरन्द—( उच्छ्वास और शोकके साथ ) क्या मालती जीती है ?

सौदामिनी—और क्या ? वत्स ! माधवका क्या अत्याहित ( महाभय ) हुआ है ? जो कि अनिष्ट कर्म करनेके लिए प्रवृत्त हो गये हो; इस कारण से मैं कम्पित हो गयी हूँ ।

मकरन्दः-आर्ये, तमहं प्रमुग्धमेव वैराग्यात्परित्यज्यागतः। तदेहि। तूर्णं संभावयावः।

(त्वरितं परिक्रामतः)

मकरन्दः—(विलोक्य) दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो वयस्यः।

सौदामिनी—संवदत्युभयोर्मालतीनिवेदितः शरीराकारः।

माधवः—(आश्वस्य) अये, प्रतिबोधितवानस्मि केनापि। (विचिन्त्य) नूनमस्यायं नवजलधरप्रभञ्जनस्यानवेक्षितास्मदवस्थो व्यापारः। भगवन् पौरस्त्य वायो!

---

मकरन्द इति। प्रमुग्धं=मूर्च्छितप्रायं, वैराग्यात=निर्वेदात्। संभावयावः= माधवं प्रकृतिस्थं विधातुं समुद्योगं कुर्व इति भावः।

मकरन्द इति। दिष्ट्या=भाग्येन। वयस्यः=सखा, माधवः। प्रत्यापन्नचेतनः= प्रादुर्भूतसंज्ञः। अस्तीति शेषः।

सौदामिनीति। उभयोः=माधवमकरन्दयोः संवदति=उक्तानुरूपं संगतो भवतीति भावः।

माधव इति। आश्वस्य=प्रत्यापन्नचेतनो भूत्वेति भावः। नूनं=निश्चितम्। नव-जलधरप्रभञ्जनस्य=नूतनमेघवायोः, 'अभिनवजीमूतजलवाहिनः प्रभञ्जनस्ये'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र नवीनमेघजलवहनशीलस्य वायोरित्यर्थः। 'अनवेक्षिताऽस्मद-वस्थः=न अवेक्षिता (विलोकिता) अस्माकम् अवस्था (दशा मालतीवियोग-जनितेति भावः) यस्मिन् सः। पौरस्त्य=पूर्वदिग्भव!' पुरो भवः पौरस्त्यस्तत्स-म्बुद्धौ। 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' इति त्यक्, 'कित चे'त्यादिवृद्धिः।

---

मकरन्दः—मैं वैराग्यसे उनको मूर्च्छित ही छोड़कर आया हूँ। इस कारणसे आइए ! शीघ्र उनको हमलोग प्रकृतिस्थ बनावें।

(दोनों शीघ्रतापूर्वक चलते हैं।)

मकरन्दः—(देखकर) भाग्यसे मित्र होशमें आगये हैं।

सौदामिनी—दोनोंके शरीरका आकार मालतीके कहनेके अनुसार मिलता है।

माधव—(चैतन्यका लाभकर) अरे ! मैं किसी से होशमें लाया गया हूँ। (विचारकर) निश्चय मेरी अवस्था न देखकर इस नवीन मेघके वायुका यह किया गया व्यापार है। भगवन् पूर्वदिशामें होनेवाले वायुदेव !

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातका-
न्कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान्।
विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथा-
मकरुण ! पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ? ॥ ४२ ॥

मकरन्दः—सुविहितमनेनाखिलजन्तुजीवनेन मातरिश्वना। अपि च—

भ्रमयेति। (हे पौरस्त्यवायो !) अम्भोगर्भान् जलदान् भ्रमय, चातकान् प्रमोदय, केकोत्कण्ठान् शिखिनः कलय, केतकान् कठोरय; हे अकरुण ! मूर्च्छां लब्ध्वा व्यथां विनोदयति विरहिणि जने पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किम् ईहसे ? इत्यन्वयः। (हे पौरस्त्यवायो !) अम्भोगर्भान् = अभ्यन्तरजलयुक्तान्, अम्भो गर्भे येषां, तान्। तादृशान् जलदान् = मेघान्, भ्रमय = चालय, यतो जलदानां भ्रमणेन लोकसन्तापशान्तिर्भविष्यतीति भावः। चातकान् = सारङ्गान्, प्रमोदय = सन्तोषय, मेघजलदानेनेति शेषः। केकोत्कण्ठान् = केकायाम् ( स्ववाण्याम् ) उत्कण्ठा (औत्सुक्यम् ) येषां, तान्। तादृशान् शिखिनः = मयूरान्, कलय = नर्तय, 'मेघध्वानेन नृत्यं भवति शिखिनाम्' इत्युक्तेर्मेघध्वानेनेति शेषः। अनेकाऽर्थत्वादत्र कलिर्नृत्याऽर्थकः। एवमेव केतकान् = केतकीवृक्षान्, कठोरय = प्रौढान्कुरु, जलवर्षणेनेति शेषः। हे अकरुण = हे निर्दय !, मूर्च्छां = प्रमोहं, लब्ध्वा = प्राप्य, व्यथां = विरहजनितां पीडां, विनोदयति = निवारयति विरहिणि जने = वियोगिनि जने, पुनः = भूयः, संज्ञाव्याधिं = चेतनारूपं रोगं, विधाय = कृत्वा, किं = किं फलम्, ईहसे = इच्छसि, महता दुःखितानां दुःखशान्तिः क्रियते, त्वं तु प्रबोध्य दुःखयसीत्येतत्सर्वथाऽप्ययुक्तमिति भावः। अत्राऽप्रस्तुताजनात्प्रस्तुतस्य माधवस्य प्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। 'संज्ञाव्याधिम्' इत्यत्र रूपकं चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। हरिणी वृत्तम् ॥ ४२ ॥

मकरन्द इति। अखिलजन्तुजीवनेन = अखिलानां (समस्तानाम्) जन्तूनां (प्राणिनाम्) जीवनेन (प्राणधारणसाधनेन)। मातरश्विना = वायुना, सुविहितं = शोभनमनुष्ठितम्।

आप जलपूर्ण मेघोंको भ्रमण कराइए, चातकोंको सन्तुष्ट कराइए, केका शब्द करनेमें उत्कण्ठित मयूरोंको नचाइए और केतकी वृक्षोंको प्रौढ बनाइए। परन्तु हे निर्दय ! मूर्च्छा पा कर दुःखका निवारण करते हुए विरही जनमें फिर चैतन्यरूप रोगको पैदाकर आप किस फलकी इच्छा करते हैं ? ॥ ४२ ॥

मकरन्द—समस्त प्राणियोंके प्रणधारणका साधन इस वायुने अच्छा किया है। फिर भी—

एते केतकसूनसौरभजुषः पौरप्रगल्भाङ्गना-
व्यालोलालकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्ताननाः ।
किंचोन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पद-
व्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिणः कर्षन्ति वर्षानिलाः ॥ ४३ ॥

माधवः—देव वायो, तथापि भवन्तमेवं प्रार्थये ।

विकसत्कदम्बनिकुरम्बपांसुना सह जीवितं घटय मे प्रिया यतः ।

---

एत इति । केतकसूनसौरभजुषः पौरप्रगल्भाऽङ्गनाव्यालोलाऽलकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्ताऽऽननाः किं च उन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पदव्यूहव्याहृतिहारिण एते वर्षाऽनिला विरहिणः कर्षन्तीत्यन्वयः । केतकसूनसौरभजुषः = केतकसूनानां ( केतकीपुष्पाणाम् ) सौरभं ( परिमलम् ) जुषन्ति ( सेवन्ते ) इति, तादृशाः । पौरप्रगल्भाऽङ्गनाव्यालोलाऽलकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्ताऽऽननाः = पौराणां ( नागरिकाणाम् ) प्रगल्भाः ( वयस्थाः ) या अङ्गनाः ( सुन्दर्यः ) तासां व्यालोलाः ( अतिशयचञ्चलाः ) या अलकवल्लर्यः ( चूर्णकुन्तलतलताः ) तासां विलुठनं ( चालनम् ) तदेव व्याजः ( छलम् ) तेन उपभुक्तम् ( परिभुक्तम् ) आननम् ( प्रगल्भपुरस्त्रीमुखम् ) यैस्ते । किंच = एवं च, उन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पदव्यूहव्याहृतिहारिणः = उन्निद्राः ( विकसिताः ) ये कदम्बकुड्मलाः ( कदम्बमुकुलाः ) तेषां पुटयः ( कोशाः ) तत्र या धूलिः ( परागः ) तत्र लुठन्तः ( चलन्तः ) ये षट्पदाः ( भ्रमराः ) तेषां व्यूहः ( समूहः ) तस्य व्याहृतिः ( व्याहरणं, झङ्कार इत्यर्थः ) तेन हारिणः ( मनोहराः ) । तादृशाः, एते = सम्प्रत्यनुभूयमानाः, वर्षानिलाः = वर्षाकालिकवाताः, विरहिणः = वियोगिनः, कर्षन्ति = आकर्षन्ति । श्लोकोऽयं बहुषु पुस्तकेषु न वर्तते । अत्र रूपकाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४३ ॥

माधव इति । तथाऽपि = यत्संज्ञाव्याधिजनकत्वेऽपीति भावः ।

विकसदिति । यतो मे प्रिया ( तत्र ) विकसत्कदम्बनिकुरम्बपांसुना सह मे जीवितं घटय । अथवा तदङ्गपरिवाससंशीतलं किंचित् मयि अर्पय । भवांस्तु मे गति-

---

केतकीपुष्पोंके सौरभकी सेवा करनेवाले, नागरिकोंकी प्रगल्भ सुन्दरियोंकी अतिशय चञ्चल अलकरूप लताओंके चालनरूप बहानेसे उनके मुखका उपभोग करनेवाले, फिर विकसित कदम्बमुकुलोंके कोशोंके परागमें चलते हुए भौंरोंके समूहके झङ्कारसे मन हरनेवाले ये वर्षा ऋतुके वायु विरही जनोंको आकृष्टकर रहे हैं ॥ ४३ ॥

माधव—देव वायो ? तो भी आपसे इस प्रकारसे प्रार्थना करता हूँ ।

जहाँपर मेरी प्रिया है वहांपर विकसित कदम्बपुष्पोंके परागके साथ मेरे

अथवा तदङ्गपरिवासशीतलं मयि किञ्चिदर्पय भवांस्तु मे गतिः ॥४४॥

( कृताञ्जलिः प्रणमति )

सौदामिनी—सुसमाहितः खल्वभिज्ञानाऽर्पणस्यावसरः ( अञ्जलौ बकुलमालामर्पयति )

माधवः—( साकूतं सहर्षं सविस्मयं च ) कथमियमस्मद्विरचिता प्रियास्त-

---

'रित्यन्वयः। ( देववायो ! ) यतः = यस्मिन् स्थाने, 'आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति सप्तम्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिः। मे = मम, प्रिया = वल्लभा, मालतीत्यर्थः, अस्तीति शेषः। तत्र विकसत्कदम्बनिकुरम्बपांसुना = विकसत् ( विकासं प्राप्नुवत् ) यत् कदम्बनिकुरम्बं ( कदम्बपुष्पसमूहः ) तस्य पांसुना ( परागेण ), 'स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्।' इत्यमरः। 'पांशुना' इति पुस्तकान्तरपाठः। सह = समं, मे = मम, जीवितं = जीवनं, 'नपुंसके भावे' इति क्तः। घटय=संघटितं ( संलग्नम् ) कुरु, नयेति भावः। पुस्तकान्तरे तु 'वह ममे'ति पाठस्तत्र 'वहे'त्यस्य प्रापयेरयर्थः। विरहादिना सा जीवनं मुञ्चेदतस्तज्जीवनाय मज्जीवितं नयेति भावः। अथवा = पक्षान्तरे तदङ्गपरिवासशीतलं = तस्या ( मालत्या ) अङ्गेषु ( शरीराऽवयवेषु ) परिवासेन ( सतताऽवस्थानेन ) शीतलं ( शिशिरम् ), किञ्चित् = किमपि वस्तु मयि = मद्विषये, 'निमित्तात्कर्मयोगे' इति सप्तमी। अर्पय = देहि, तेनाऽपि कथञ्चिज्जीव रयेयमिति भावः। एतादृशोपकारे हेतुमाह—भवांस्त्विति। भवांस्तु=त्वं तु, 'तु' इत्यत्र 'ही'ति पुस्तकान्तरपाठः। मे=मम, प्रियावियुक्तस्येति भावः। गतिः = आश्रयः, आश्रितस्य मे आश्रयं त्वां विना कथमवलम्बनं स्यादिति भावः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ४४ ॥

सौदामिनीति। अभिज्ञानाऽर्पणस्य=मालतीचिह्नरूपबकुलमाल्यवितरणस्येत्यर्थः। सुसमाहितः=समुचितः, अवसरः=प्रसङ्गः। अञ्जलौ=वायुप्रार्थनायां विहित इति भावः।

माधव इति। साकूतं = साऽभिप्रायम्। सहर्षं = साऽऽनन्दं, सहर्षं च प्रियाऽङ्गसङ्गिमालाऽऽलोकाद्बोध्यम्। प्रियास्तनोन्माहदुर्ललितमूर्तिः=प्रियायाः ( वल्लभायाः

---

जीवनी पहुँचाओ। अथवा उस ( मालती ) के अङ्गोंमें निरन्तर रहनेसे शीतल कोई वस्तु मुझे दे दो। क्योंकि तुम मेरे आश्रय हो ॥ ४४ ॥

( हाथ जोड़कर प्रणाम करता है। )

सौदामिनी—मालतीका चिह्न (बकुलमाला) देनेका यह समुचित अवसर है।

( माधवकी अञ्जलिमें बकुलमाला देती है। )

माधव—(अभिप्राय, हर्ष और आश्चर्यके साथ ही साथ)यह मुझसे बनायी गयी

नोन्नाहदुर्ललितमूर्तिरनङ्गमन्दिराङ्गणबकुलपादपकुसुममाला। ( सम्यङ्‌निरूप्य ) कः संदेहः। तथा हि स एवायमस्याः—

मुग्धेन्दुसुन्दरतदीयमुखावलोकहेलाविशृङ्खलकुतूहलनिह्नवाय।
दुर्न्यस्तपुष्परचितोऽपि लवङ्गिकायास्तोषं ततान विषमग्रथितो विभागः॥

मालत्या इत्यर्थः ) स्तनयोः ( कुचयोः ) उन्नाहः ( उपरिवर्तनम्, उत्सेध इत्यन्ये, 'उद्भेद' इति पुस्तकान्तरपाठस्योन्नतिरित्यर्थः ) तेन दुर्ललिता ( अतिप्रिया ) मूर्तिः ( कायः, स्वरूपमिति भावः ) यस्याः सा। अनङ्गमन्दिराऽङ्गणवकुलपादपकुसुममाला = अनङ्गमन्दिरस्य ( मदनभवनस्य ) यदङ्गणं (चत्वरम्, 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' इति णत्वम्। पुस्तकान्तरे 'अङ्गनम्' इति पाठः) तस्मिन् यो बकुलपादपः ( बकुलवृक्षः ) तस्य कुसुममाला (पुष्पमाल्यम्, 'प्रसवमाले'ति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः) आगतेति शेषः। निरूप्य = दृष्ट्वा। कः सन्देहः = कः संशयः सैवेयं मालेति भावः।

मुग्धेन्द्विति। मुग्धेन्दुसुन्दरतदीयमुखाऽवलोकहेलाविशृङ्खलकुतूहलनिह्नवाय दुर्न्यस्तपुष्परचितोऽपि विषमग्रथितो विभागो लवङ्गिकायाः तोषं ततानेत्यन्वयः। मुग्धेन्दुसुन्दरतदीयमुखाऽवलोकहेलाविशृङ्खलकुतूहलनिह्नवाय = मुग्धेन्दुः ( सुन्दरचन्द्रः ) स इव सुन्दरं ( मनोहरम् ) तदीयं ( मालतीसम्बन्धि ) यत् मुखं ( वदनम् ), तस्य अवलोकने या हेला ( शृङ्गारचेष्टा ) तया विशृङ्खलम् ( अनिवारितम् ) यत् कुतूहलं ( कौतुकम् ) तस्य निह्नवाय ( गोपनाय, मालतीपरिजनेभ्य इति शेषः )। दुर्न्यस्तपुष्परचितोऽपि = दुर्न्यस्तानि ( पूर्वग्रन्थितादन्यथा स्थापितानि, मालतीविलोकनौत्सुक्येनेति शेषः) यानि पुष्पाणि (कुसुमानि) तैः रचितोऽपि (निर्मितोऽपि)। विषमग्रथितः = विषमं ( पूर्वाऽननुरूपम् ) यथा स्यात्तथा ग्रथितः ( गुम्फितः ) सन्नपि, विभागः = एकदेशः, मालाया इति शेषः। लवङ्गिकायाः = मालतीसख्याः, तोषं=हर्षं, मालतीविलोकनौत्सुक्येनैवेदं वैषम्यं जातमिति भावनयेति शेषः। ततान=

और प्रियाके पयोधरोंके ऊपर रहनेसे अतिप्रिय स्वरूपवाली काममन्दिरके आङ्गनमें उत्पन्न बकुलवृक्षके फूलोंकी माला कैसे आगयी? ( अच्छी तरह देखकर ) क्या सन्देह है। जैसे कि—

सुन्दरचन्द्रके सदृश मनोहर मालतीके मुखके दर्शनमें शृङ्गारचेष्टासे अनिवारित कौतुकको छिपानेके लिए पूर्व गुम्फितरूपसे भिन्न प्रकारसे स्थापित फूलोंसे रचित होनेसे असमान भावसे ग्रथित होकर भी इसी अंशने लवङ्गिका का आनन्द बढ़ाया था॥ ४५॥

( सहर्षोन्मादमुत्थाय ) चाण्ड मालति, इयं विलोक्यसे । ( सकोपमिव ) अयि मदवस्थानभिज्ञे !

प्रयान्तीव प्राणाः, सुतनु ! हृदयं ध्वंसत इव,
ज्वलन्तीवाङ्गानि, प्रसरति समन्तादिव तमः ।
त्वराप्रस्तावोऽयं न खलु परिहासस्य विषय-
स्तदक्ष्णोरानन्दं वितर, मयि मा भूरकरुणा ॥ ४६ ॥

---

विस्तारयामास । अत्र प्रथमचरण उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४५ ॥

सहर्षोन्मादं । मालत्यभिज्ञानदर्शनेन हर्षोन्मादसहितं यथा स्यात्तथा । विलोक्यसे= दृश्यसे, अन्वेषणोत्तरमिति शेषः । मदवस्थाऽनभिज्ञे = मद्दशाज्ञानरहिते !

प्रयान्तीति । हे सुतनु ! प्राणाः प्रयान्ति इव, हृदयं ध्वंसत इव, अङ्गानि ज्वलन्ति इव, तमः समन्तात् प्रसरति इव, अयं त्वराप्रस्तावः, परिहासस्य न विषयः खलु, तत् अक्ष्णोः, आनन्दं वितर, मयि अकरुणा मा भूरित्यन्वयः । हे सुतनु = हे सुन्दरि मालति, शोभना तनूर्यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, 'अम्बाऽर्थनद्योर्ह्रस्व' इति सम्बुद्धौ ह्रस्वत्वम् । प्राणाः = असवः, मदीया इति शेषः । प्रयान्ति इव = गच्छन्ति इव, त्वद्वियोगेनेति भावः, एवं परत्राऽपि । हृदयं = मनः, ध्वंसत इव=अवस्रंसत इव, मोहादिति, भावः । अङ्गानि = शरीराऽवयवाः, हस्तपादादय इति भावः । ज्वलन्ति इव=दीप्यन्त इव, एतेन व्याधिरुक्तः । तमः = मोहः, समन्तात् = परितः, प्रसरति इव = व्याप्तं भवति इव, अनेन जडता उक्ता, सकलेन्द्रियाणामप्रहात् । जडताऽनन्तरं मरणशङ्कायामाश्वास एव युक्त इत्याह—त्वरेति । अयम् = एषः, त्वराप्रस्तावः = त्वरायाः ( संभ्रमस्य ) प्रस्तावः ( अवसरः ), एतादृशेऽवसरे त्वरया दर्शनाऽदाने दशमी कामदशा ( मृतिः ) आपतेदिति भावः । अतः परिहासस्य = परिहसनस्य, आत्मशरीरप्रच्छादनरूपस्येति भावः । न विषयः = न प्रसङ्गः । खलु = निश्चयेन । तर्हि किमनुष्ठेयमित्यत आह—तदिति । तत् = तस्मात् कारणात् , अक्ष्णोः = नेत्रयोः, आनन्दं = प्रमोदं, दर्शनमिति भावः । वितर=देहि, मयि=विषये, अकरुणा = निर्दया,

---

( हर्ष और उन्मादके साथ उठकर)चण्डि मालति ! यह तुम देखी जाती हो । ( क्रोधके तरह ) अरी मेरी अवस्था न जाननेवाली !

हे सुन्दरि ! ( तुम्हारे वियोगसे ) मेरे प्राण जैसे जारहे हैं, हृदय जैसे ध्वस्त हो रहा है, अङ्ग जल रहे जैसे प्रतीत हो रहे हैं और मोह सब ओर जैसे व्याप्त हो रहा है । यह शीघ्रता करनेका अवसर है, परिहास करनेका विषय नहीं । इस कारणसे मेरे नेत्रोंको आनन्दित करो (दर्शन दो) और मुझपर निर्दय मत हो॥४६॥

( सर्वतो दृष्ट्वा सनिर्वेदम् ) कुतोऽत्र मालती । ( बकुलमालां प्रति ) अये प्रियाप्रणयिनि, परमोपकारिण्यसि ।

निष्प्रत्यूहाः प्रियसखि ! यदा दुःसहा संबभूवु-
मोहोद्दामव्यसनगुरवो मन्मथोन्मादवेगाः ।
तस्मिन्काले कुवलयदृशस्त्वत्समाश्लेष एव
प्राणत्राणं प्रगुणमभवन्मत्परिष्वङ्गकल्पः ॥ ४७ ॥

स्वशरीरप्रच्छादनेनेति भावः । मा भूः = नो भव, बकुलमालासमर्पणोत्तरं मालती प्रच्छन्ना जाता इति भावनया माधवस्योक्तिरियम् । 'माङि लुङ्' इति लुङ्, 'न माङ्योगे' इत्यडभावः । अत्र पूर्वार्द्धे चतस्रः क्रियोत्प्रेक्षाः । शिखरिणी वृत्तम् ॥४६॥

निष्प्रत्यूहा इति । हे प्रियसखि ! यदा कुवलयदृशो निष्प्रत्यूहाः मोहोद्दामव्यसनगुरवो दुःसहा मन्मथोन्मादवेगाः संबभूवुः, तस्मिन् काले मत्परिष्वङ्गकल्पः त्वत्समाश्लेष एव प्रगुणं प्राणत्राणम् अभवदित्यन्वयः । हे प्रियसखि = हे दयितवयस्ये ! बकुलमाले इति भावः । यदा = यस्मिन्काले, कुवलयदृशः=नीलकमललोचनायाः, मालत्या इत्यर्थः । कुवलये इव दृशौ यस्यास्तस्याः, 'स्यादुत्पलं कुवलयमि'त्यमरः । निष्प्रत्यूहाः = निर्विघ्नाः, अनिवारिता इति भावः । मोहोद्दामव्यसनगुरवः = मोहः ( वैचित्त्यम् ) एव यत् उद्दामम् ( उत्कटम् ) व्यसनं ( विपत्तिः ), तेन गुरवः ( दुर्वहाः ) 'देहोद्दाहे'ति पाठे देहोद्दाहः ( शरीरसन्तापः ) एव यद्व्यसनं, तेन गुरवः इत्यर्थः । अत एव=दुःसहाः=दुर्मर्षणाः, मन्मथोन्मादवेगाः=मदनजनिताश्चित्तविभ्रमजवाः, 'मन्मथोन्माथवेगाः' इति पाठान्तरे 'मदनपीडावेगाः, इत्यर्थः । संबभूवुः = संजाताः । तस्मिन् = तत्र, काले = समये, मत्परिष्वङ्गकल्पः = मदालिङ्गनतुल्यः, ईषदसमाप्तो मत्परिष्वङ्गः, 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर' इति कल्पप्प्रत्ययः । त्वत्समाश्लेषः = तव ( बकुलमालायाः ) समाश्लेषः ( आलिङ्गनम् ) एव, प्रगुणं = प्रकृष्टगुणं, 'प्रगुणनमभू'दिति पाठान्तरे प्रगुणनम्=आनुकूल्यकृदित्यर्थः । प्राणत्राणं= प्राणरक्षकम्, अभवत्=अभूत्, मालत्या इति शेषः । अधुना मालां विना कथं मालत्या जीवनं भविष्यतीति भावः । अत्र 'मत्परिष्वङ्गकल्प' इत्यत्रोपमाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४७ ॥

( सब ओर देखकर वैराग्यके साथ ) मालती यहाँ कहाँ है ? ( बकुलमालाको उद्देश्यकर ) अरी प्रियासे प्रणय करनेवाली ! तूँ परम उपकारिणी है ।

हे प्रियसखि ! जब कुवलयलोचना ( मालती ) के अनिवारित, मोहरूप उत्कट विपत्तिसे दुर्वह कामोन्मादवेग हुए थे, उस समय मेरे आलिङ्गनके सदृश तुम्हारा आलिङ्गन ही उत्कृष्ट गुणवाला प्राणरक्षक हुआ था ॥ ४७ ॥

( सकरुणं निःश्वस्य )

आनन्दनानि मदनज्वरदीपनानि
गाढानुरागरसवन्ति तदा तदा च ।
स्नेहाकराणि मम मुग्धदृशश्च कण्ठे
कष्टं स्मरामि तव तानि गतागतानि ॥ ४८ ॥

( हृदये निधाय मूर्च्छति )

मकरन्दः—( उपसृत्य ) सखे, समाश्वसिहि ।

माधवः—( समाश्वस्य ) मकरन्द, किं न पश्यसि, कुतोऽपि सहसैव मालतीस्नेहस्वहस्तस्य लाभः । तत्कथं मन्यसे किमेतदिति ।

---

आनन्दनानि । ( हे बकुलमाले ! ) आनन्दनानि मदनज्वरदीपनानि गाढाऽनुरागरसवन्ति स्नेहाऽऽकराणि तानि तदा तदा च मम मुग्धदृशश्च कण्ठे तव गताऽऽगतानि कष्टं स्मरामीत्यन्वयः । ( हे बकुलमाले ! ) आनन्दनानि=आनन्दकारकाणि, मम मालत्याश्चेति द्वयोरिति भावः । मदनज्वरदीपनानि = कामसन्तापप्रकाशनानि, गाढाऽनुरागरसवन्ति = दृढप्रणयरसयुक्तानि । स्नेहाकराणि = स्नेहम् ( मिथः प्रेमाणम् ) आकुर्वन्ति ( जनयन्ति ) इति, 'कृञो हेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु' इति टप्रत्ययः । तानि = पर्वं सञ्जातानि, तदा तदा च = तस्मिंस्तस्मिन्काले, च मम= माधवस्य, मुग्धदृशश्च=मनोहरलोचनायाश्च, मालत्याश्चेति भावः । मुग्धे दृशौ यस्यास्तस्याः, 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः । कण्ठे = गले, तव=बकुलमालायाः, गताऽऽगतानि = याताऽऽयातानि, कष्टं=दुःखं यथा स्यात्तथा । स्मरामि=चिन्तयामि । अत्र राघवानन्दमते स्मरणाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४८ ॥

माधव इति । मालतीस्नेहस्वहस्तस्य = मालतीस्नेहज्ञापकस्याऽसाधारणचिह्नस्य ।

---

( शोकके साथ निःश्वास लेकर )

हे बकुलमाले, आनन्दकारक, कामज्वरको दीप्त करनेवाले, गाढ अनुरागके रससे युक्त और प्रेमको पैदा करनेवाले वे उस उस समयमें भी मेरे और सुन्दरी (मालती) के कण्ठमें तुम्हारे वारंबार जाने-आनेके कष्टको स्मरण करता हूँ ॥४८॥

( हृदयमें रखकर मूर्च्छित होता है । )

मकरन्द—( समीप जाकर ) मित्र ! समाश्वस्त हो ।

माधवः—( समाश्वस्त होकर ) मकरन्द ! क्या नहीं देखते हो ? कहींसे अतर्कित भावसे ही मालतीके स्नेहज्ञापक असाधारण अभिज्ञान ( चिह्न ) का लाभ

मकरन्दः—इयमार्या योगीश्वर्यस्य मालत्यभिज्ञानस्योपनेत्री ?

माधवः—( सकरुणं कृताञ्जलिः ) आर्ये, प्रसीद । कथय, जीवति मे प्रिया सा ?

सौदामिनी—वत्स, समाश्वसिहि । जीवति सा कल्याणी ।

माधवमकरन्दौ—(समुच्छ्वस्य) आर्ये, यद्येवं कथय क एष वृत्तान्त इति ।

सौदामिनी—अस्ति पुरा करालायतनेऽघोरघण्टः कृपाणपाणिर्व्यापादितः।

माधवः—( सावेगम् ) आर्ये, विरम । ज्ञातो वृत्तान्तः ।

मकरन्दः—सखे, क इव ?

---

मकरन्द इति । आर्या = पूज्या । मालत्यभिज्ञानस्य = मालत्याः अभिज्ञानस्य ( चिह्नस्य, बकुलमालारूपस्येति भावः ) । उपनेत्री = आनेत्री ।

माधव इति । मे=मम, प्रिया=वल्लभा, मालतीति भावः । जीवति=प्राणान्धारयति किं, काका प्रश्नरूपोऽर्थः ।

सौदामिनीति । कल्याणी=मङ्गलसंपन्ना, अनामयसंपन्नैव मालतीति भावः ।

माधवमकरन्दाविति । एवं यदि = इत्थं चेत् मालती जीवति यदीति भावः ।

माधव इति । विरम = विरता भव, तूष्णीं भवेति भावः । 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम् ।

अथ मकरन्दोऽश्रुतकपालकुण्डलाप्रतिज्ञः, पृच्छति—सखे । इति ।

---

हुआ है । अतएव क्या विचार करते हो ? यह क्या है ?

मकरन्द:—मालतीके चिह्न (वकुलमाला) को लानेवाली ये आर्या योगेश्वरी हैं?

माधव—( करुणाके साथ हाथ जोड़कर ) आर्ये ! आप प्रसन्न हों । कहिए, वह मेरी प्रिया जीती है क्या ?

सौदामिनी—वत्स ! समाश्वस्त हो । वह कल्याणी जीती है ।

माधव और मकरन्द—(उच्छ्वास लेकर) आर्ये ! ऐसा हो तो कहिए क्या यह वृत्तान्त है ?

सौदामिनी—कराला देवीके मन्दिरमें हाथमें तलवार लेनेवाला अघोरघण्ट मारा गया था ।

माधव—( आवेगके साथ ) आर्ये ! आप रहिए वृत्तान्त जाना गया है ।

मकरन्द—मित्र ! वह कैसा वृत्तान्त है ?

माधवः—किमन्यत् । सकामा कपालकुण्डला ।

मकरन्दः—आर्ये, अप्येवम् ?

सौदामिनी—एवं यथा निवदितं वत्सेन ।

मकरन्दः—भोः, कष्टम् ।

**कुमुदाकरेण शरदिन्दुचन्द्रिका यदि रामणीयकगुणाय संगता ।**
**सुकृतं तदस्तु, कतमस्त्व विधिर्यदकालमेघविततिर्व्ययूयुजत् ॥ ४९ ॥**

माधव इति । सकामा = सफलमनोरथा । व्यापादनाऽर्थं कपालकुण्डलया मालत्यपहृतेति भावः । पञ्चमाऽङ्के स्थितं 'तदवश्यमनुभविष्यसि कपालकुण्डलाकोपस्य फलम्' इति वाक्यं स्मृत्वा माधवो वाक्यमेतज्जगादेति मन्तव्यम् ।

मकरन्द इति । एवम् अपि = इत्थं जातं किं ? किं कपालकुण्डला पूर्णमनोरथा सम्पन्नेति प्रश्नोऽपिना द्योत्यते ।

सौदामिनीति । वत्सेन=वात्सल्यभाजनेन, माधवेनेति भावः । यथा, निवेदितं = ज्ञापितम् ।

मकरन्द इति । अथ मकरन्दः, कपालकुण्डलायाः पूर्णकामत्वेन मालतीवधं संभाव्य खेदाऽतिशयं द्योतयति—भोः कष्टमिति ।

कुमुदाकरेणेति । शरदिन्दुचन्द्रिका रामणीयकगुणाय कुमुदाकरेण संगता यदि । तत् सुकृतम् अस्तु । तु अयं कतमो विधिः ? यत् अकालमेघविततिः व्ययूयुजदित्यन्वयः । शरदिन्दुचन्द्रिका=शारदचन्द्रज्योत्स्ना, रामणीयकगुणाय=सौन्दर्यगुणार्थं, रमणीयस्य भावो रामणीयकं, तद्गुणाय । 'योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्' इति वुञ्प्रत्ययः 'युवोरनाकौ' इति तस्याऽकादेशः । कुमुदाकरेण = कैरवसमूहेन सह, 'सिते कुमुदकैरवे' इत्यमरः । संगता यदि = मिलिता यदि । तत्=शरदिन्दुचन्द्रिका-कुमुदाकरसंगमनमिति भावः । सुकृतं = शोभनं विहितम्, अस्तु = भवतु । अत्र विषये कस्याऽपि नाऽसम्मतिरिति भावः । तु=परन्तु, अयं=साम्प्रतमुपनतः, कतमः=

माधव—और क्या ? कपालकुण्डलाका अभिलाष सफल हुआ ।

मकरन्द—आर्ये ! क्या ऐसा है ?

सौदामिनी—वात्सल्यभाजन माधवने जैसा कहा वैसा ही है ।

मकरन्द—अरे ! कष्ट है ।

शरद् ऋतुके चन्द्रकी ज्योत्स्ना ( चाँदनी ) सौन्दर्य गुणके लिए चन्द्रके साथ संगत हो तो वह सुविहित हो । परन्तु यह कौन-सा विधान है जो कि असमयमें प्राप्त मेघपङ्क्तिने उन दोनोंका विच्छेद कर दिया ॥ ४९ ॥

माधवः—हा प्रिये मालति, कष्टमतिबीभत्समापन्नासि ।

कथमपि तदाऽभवस्त्वं कमलमुखि ! कपालकुण्डलाग्रस्ता ।
उत्पातधूमरेखाक्रान्तेव कला शशधरस्य ॥ ५० ॥

भगवति कपालकुण्डले !

---

कः, विधिः = विधानं यत्, अकालमेघवितति: = असमयप्राप्ता बलाहकपङ्क्तिः, व्ययूयुजयत्=वियुक्तौ अकार्षीत्, आकस्मिकाऽऽवरणेन शरदिन्दुचन्द्रिका-कुमुदाकरयोर्विच्छेदं कृतवतीति भावः । कुमुदाकरेण शरच्चन्द्रज्योत्स्नाया इव माधवेन मालत्याः यः संगमः सः शोभनः संजातः परन्तु असमयोत्पन्ना मेघपङ्क्तिः शरच्चन्द्र-ज्योत्स्ना-कुमुदाकरयोरिव कपालकुण्डला मालतीमाधवयोर्यं विच्छेदं कृतवती स सुतरामशोभन इत्ययमर्थो ध्वनिना द्योत्यते । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ४९ ॥

माधव इति । अतिबीभत्सम् = अतिगर्हितम्, यथा स्यात्तथा असह्यशहिंसनेनेति शेषः । आपन्ना = आपत्प्राप्ता, 'आपन्न आपत्प्राप्तः स्या'दित्यमरः । शोकावेगाऽतिशयात् 'जीवति सा कल्याणी'ति सौदामिनीवाणीविस्मरणेन माधवस्योक्तिरियम् ।

कथमपीति । हे कमलमुखि ! तदा कपालकुण्डलाग्रस्ता त्वम् उत्पातधूमरेखाऽऽक्रान्ता शशधरस्य कला इव कथमपि अभवः इत्यन्वयः । हे कमलमुखि = हे पद्मसमाऽऽनने !, तदा = तस्मिन्काले, कपालकुण्डलाग्रस्ता = कपालकुण्डलया ( अघोरघण्टशिष्यया ) ग्रस्ता ( ग्रासीकृता ), त्वं = मालती, उत्पातधूमरेखाऽऽक्रान्ता = उपसर्गद्योतकधूमकेतुरेखाग्रस्ता, अत्र 'नामैकदेशे नामग्रहणम्' इति नयेन 'विनाऽपि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्य' इति वार्तिकेन च धूमपदेन धूमकेतोर्ग्रहणम् । शशधरस्य = चन्द्रमसः, कला इव = षोडशो भाग इव, कथमपि=कीदृशी, अत्र अपिरिवाऽर्थकः, अभवः = आसीः । त्वया तदाऽनिर्वचनीयं कष्टमनुभूतं स्यादिति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । आर्या जातिः ॥ ५० ॥

भगवतीति । भगवति = हे प्रकृष्टज्ञानवति !

---

माधव—हा प्रिये मालति ! कष्ट है । तुम अतिशय गर्हित प्रकारसे आपत्तिको प्राप्त हो गयी हो ।

हे कमलसदृशमुखवाली ! उस समय कपालकुण्डलासे ग्रस्त होकर तुम उत्पात-सूचक धूमकेतु-रेखासे आक्रान्त चन्द्रकलाकी सदृश कैसी हुई होगी ? ॥ ५० ॥

भगवति कपालकुण्डले !

निर्माणमेव हि तदा तव लालनीयं,
मा पूतनात्वमुपगाः, शिवतातिरेव ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न मुसलैर्बत कुट्टनानि ॥ ५१ ॥

सौदामिनी—वत्स, अलमावेगेन ।

---

निर्माणमिति । तदा निर्माणम् एव तव लालनीयं हि । पूतनात्वं मा उपगाः, शिवतातिः एव । सुरभिः कुसुमस्य मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, मुसलैः कुट्टनानि न, बत ! इत्यन्वयः । ( हे भगवति कपालकुण्डले ! ) तदा—तस्मिन्समये, मालतीव्यापादनकाल इति भावः । निर्माणम् एव = मालतीरूपा निर्मितिः एव, तव=त्वया कपालकुण्डलया इति भावः, 'लालनीयमि'ति कृत्यप्रत्ययान्तेन योगे 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति षष्ठी । लालनीयं=रक्षणीयं हीति निश्चये । 'तदादरलालनीय'मिति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र आदरेण आहत्येत्यर्थः । लोकाऽतिशायि मञ्जुलमृदुलत्वयोगादिति भावः । पूतनात्वं=राक्षसीत्वं, मालतीविनाशेनेति भावः । 'पूतना राक्षसीभेदे हरीतक्यां च पूतना ।' इति विश्वः । मा उपगाः=नोपगच्छ, किन्तु शिवतातिः । एव= कल्याणकरी एव, मालत्या इति शेषः । 'शिवशमरिष्टस्य करे' इति तातिलप्रत्ययः । अस्य प्रत्ययस्य वेद एव प्रयुज्यमानत्वाल्लोकेन न प्रयोज्यत्वं, परं महाकविनाऽत्र 'निरङ्कुशाः कवय' इत्युक्तिः समर्थिता । 'इव' स्थाने 'एधी'ति पुस्तकान्तरपाठस्तस्य भवेत्यर्थः । असधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपम् । उक्तमर्थं दृष्टान्तेन द्रढयति—नैसर्गिकीति । सुरभिणः = सुगन्धसम्पन्नस्य, कुसुमस्य = पुष्पस्य, मूर्ध्नि = शिरसि, स्थितिः = प्रस्थानं, नैसर्गिकी = स्वाभाविकी, निसर्गादागता, 'तत आगत' इति ठञ् । सिद्धा = प्रसिद्धा, किन्तु—मुसलैः=अयोऽग्रैः, 'अयोऽग्रो मुसलोऽस्त्री स्यात्' इत्यमरः । पुस्तकान्तरे तु 'चरणै'रिति पाठस्तस्य पादैरित्यर्थः । कुट्टनानि = संचूर्णनानि, 'अव ताडनानी'ति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र पीडनानीत्यर्थः । न = न नैसर्गिकाणि सिद्धानीति भावः । बतेति खेदद्योतकमव्ययम् । अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धमुत्तररामचरिते रामवक्तृकत्वेन प्रथमेऽङ्के उपन्यस्तं परं तत्र 'बत कुट्टनानी'त्यत्र 'अवताडनानी'ति पाठान्तरम् । अत्र दृष्टान्ताऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५१ ॥

---

उस समय मालतीरूप रचना ही तुम्हें रक्षणीय थी, राक्षसी भावको मत प्राप्त हो, तुम मालती की कल्याणकारिणी ही हो । सुगन्धवाले फूलकी शिरमें स्थिति स्वाभाविक प्रसिद्ध है परन्तु मूसलोंसे कुट्टन प्रसिद्ध नहीं है । हाय ! ॥ ५१ ॥

सौदामिनी—वत्स ! आवेग मत करो ।

अकरिष्यदसौ पापमतिदुष्करुणैव सा।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत्परिपन्थिनी ॥ ५२ ॥

उभौ—(प्रणम्य) अतिप्रसन्नमार्यापादैः। तत्कथय का पुनस्त्वमस्माकमेवंविधो बन्धुः।

सौदामिनी—ज्ञास्यथ खल्वेतत्। (उत्थाय) इयमिदानीमहं।

गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्।

---

अकरिष्यदिति। तत्र तत्परिपन्थिनी अहं न अभविष्यं यदि (तर्हि) अतिदुष्करुणा एव सा असौ पापम् अकरिष्यदित्यन्वयः। तत्र = तस्मिन्स्थाने, तत्परिपन्थिनी = तस्याः (कपालकुण्डलायाः) परिपन्थिनी (विरोधिनी), अहं = सौदामिनी, न अभविष्यं यदि = न अस्थास्यं चेत्, तर्हि, अतिदुष्करुणा एव = अतिशयनिर्दया एव, सा असौ = साम्प्रतं विदूरवर्तिनी, कपालकुण्डलेति भावः। पापं = कल्मषाऽऽचारं, मालतीवधरूपमिति भावः। अकरिष्यत् = आचरिष्यत्। अत्राऽकरिष्यदभविष्यमित्यत्र 'लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियाऽतिपत्तौ' इति क्रियाऽतिपत्तौ लृङ्। एतेन कपालकुण्डला मालतीं केवलं हृतवती परं मत्प्रतिरोधनात्तां व्यापादयितुं नाऽपारयदतः सा जीवतीति सौदामिन्या आश्वास्यते। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५२ ॥

उभाविति। उभौ = माधवमकरन्दौ। आर्यापादैः=आर्यायाः (पूज्यायाः, भवत्या इति भावः) पादैः (चरणैः) अतिप्रसन्नम् = अतिप्रसादः कृतः, भावे क्तप्रत्ययः। एवंविधः = एतादृशः, एवं विधा (प्रकारः) यस्य सः।

सौदामिनीति। ज्ञास्यथ = वेत्स्यथ, फलेनैवेति शेषः।

गुरुचर्येति। गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाऽभियोगजाम् इमाम् आकर्षिणीं सिद्धिं वः शिवाय आतनोमीत्यन्वयः। गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाऽभियोगजां=गुरुचर्या (गुरुसेवा, विशिष्टमनुष्ठानं वा) तपः (शास्त्रोक्तोपायेनेह कायक्लेशः, चान्द्रायणादिरूपः) तन्त्रं (मण्डलवर्तनादिः, आगमोक्ताचारविशेषः) मन्त्रः (देवीदेवानां निगमस्य

---

वहाँपर उसकी विरोधिनी मैं न होती तो अतिशय निर्दय होकर ही वह (दूरवर्तिनी कपालकुण्डला) पाप (मालतीवधरूप) करती थी ॥ ५२ ॥

दोनों—(माधव और मकरन्द)—(प्रणामकर) आर्याके चरणोंने अतिशय अनुग्रह किया। इस कारणसे कहिए- हमारी ऐसी बन्धु आप कौन हैं ?

सौदामिनी—तुम लोग यह जान जाओगे। (उठकर) यह मैं अभी—

गुरुसेवा वा विशिष्ट अनुष्ठान, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र और योग इनके अभ्याससे

इमामाकर्षिणीं सिद्धिमातनोमि शिवाय वः ॥ ५२ ॥

( समाधवा निष्क्रान्ता )

मकरन्दः—आश्चर्यम् ।

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च
क्षणमुपहतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्तः ।

( विलोक्य । सभयम् )

---

आगमस्थो वा मनुः ) योगः ( चित्तवृत्तिनिरोधः, सबीजो निर्बीजो वा ), एतेषामभियोगात् ( अभ्यासात ) जाता, ताम् । तादृशीम् इमां=मत्स्थिताम्, आकर्षिणीम्=आकर्षणकरणभूतां, सिद्धिं = महिमाऽतिशयं, वः = युष्माकं, शिवाय = कल्याणाय, आतनोमि = विस्तारयामि । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५२ ॥

समाधवेति । समाधवा = माधवसहिता, योगबलेन माधवं गृहीत्वेति भावः । मकरन्देनाऽप्युपलक्षितैवेति शेषः ।

व्यतिकर इति । तामसो वैद्युतश्च भीमो व्यतिकर इव ( कश्चित्तेजोविशेषः ) क्षणम् उपहतचक्षुर्वृत्तिः उद्भूय शान्तः। इह वयस्यः कथम् न, तत् एतत् अन्यत् किम् ? हि इयं योगीश्वरी स्वेन महिम्ना प्रभवतीत्यन्वयः। तामसः = तमःसम्बन्धी, वैद्युतश्च = विद्युत्सम्बन्धी च, भीमः = भयङ्करः, व्यतिकर इव = सम्पर्क इव, कश्चित्तेजोविशेष इति शेषः।प्रथमचरणोऽयमुत्तररामचरितेऽपि पञ्चमेऽङ्के चन्द्रकेतुवक्तृकत्वेनोपन्यस्तः। क्षणं=कंचित्कालं यावत् 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। उपहतचक्षुर्वृत्तिः=उपहता (प्रतिहता, प्रतिबद्धेति भावः) चक्षुर्वृत्तिः (नयनव्यापारः, दर्शनरूप इति भावः ) येन सः, एतादृशः सन्, उद्भूय = उत्पद्य, शान्तः = अस्तमितः। अथ माधवं न दृष्ट्वा कथयति—इह = अत्र, वयस्यः = सवयाः, माधव इत्यर्थः।

---

उत्पन्न इस आकर्षिणी सिद्धिको तुमलोगोंके कल्याणके लिए प्रकाश करती हूँ ॥५२॥

( माधवको साथमें लेकर निकलती हैं । )

मकरन्द--आश्चर्य है ।

अन्धकार और बिजलीके सम्पर्ककी तरह कोई मुख्य तेज कुछ समय तक उत्पन्न होकर नेत्रव्यापार ( दर्शनक्रिया ) को हटाकर फिर अस्तमित हो गया ।

( देखकर भयके साथ )

कथमिह न वयस्यस्तत्किमेतत्किमन्यत्

( विचिन्त्य )

प्रभवति हि महिम्ना स्वेन योगेश्वरीयम् ॥ ५४ ॥

( सवितर्कम् ) किमयमनर्थ इति संप्रति मूढाऽस्मि । अपि च—

अस्तोकविस्मयमविस्मृतपूर्ववृत्तमुद्भूतनूतनभयज्वरजर्जरं नः ।

---

वयसा तुल्यः, 'नौवयोधर्मे'त्यादिना यत्प्रत्ययः । कथं = केन कारणेन, न = न वर्तते तत् = तस्मात्कारणात्, एतत् = समीपतरवर्ति अद्भुतं वृत्तम्, अन्यत् = अपरं, किं = कथं जातम्, विचिन्त्य = विशेषं चिन्तयित्वा समाधत्त इति शेषः । हि = यतः, इयम् = एषा, योगीश्वरी = योग्यधीश्वरी, स्वेन = आत्मीयेन, महिम्ना = महत्त्वेन, महतो भावो महिमा, तेन 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इतीमनिच्प्रत्ययः । प्रभवति = समर्था भवति, माधवमाहर्तुमिति शेषः । कारुण्यद्योतिनी मृदुभाषिणीयं योगीश्वरी मालत्यन्तिकं माधवं नीत्वाऽतुलं स्वकीयं योगबलं प्रकाशयतीति भावः । अत्र प्रथमचरण उपमाऽलङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ५४ ॥

कपालकुण्डलया वैरप्रतीकाराऽर्थमनुष्ठितं व्यापारं मत्वा—सवितर्कमिति । वितर्कसहितं यथा तथा ।

अस्तोकेति । अस्तोकविस्मयम् अविस्मृतपूर्ववृत्तम् उद्भूतनूतनभयज्वरजर्जरम् एकक्षणत्रुटितसंघटितप्रमोहं नः चेतः आनन्दशोकशबलत्वम् उपैतीत्यन्वयः । अस्तोकविस्मयम् = अस्तोकः ( अनल्पः, प्रचुर इत्यर्थः ) विस्मयः ( आश्चर्यम्, विद्यमानस्य माधवस्य क्षणमात्रेणाऽदर्शनमित्यस्माद्धेतोरिति भावः ) यस्मिंस्तत् । 'चेत' इत्यस्य विशेषणमेवं परत्राऽपि । अविस्मृतपूर्ववृत्तम् = अविस्मृतं ( न विस्मृतम् ) पूर्ववृत्तं ( पूर्वचरित्रं, मालतीव्यापादनतत्परत्वरूपमिति भावः । 'अपस्मृतम्' इति पाठे अपस्मृतं = विस्मृतं, पूर्ववृत्तं = मालतीहरणरूपं पूर्वचरित्रमिति भावः ) येन तत् । उद्भूतनूतनभयज्वरजर्जरम् = उद्भूतम् ( उत्पन्नम् ) नूतनं ( नवीनम् )

---

यहाँ मित्रजी किस कारणसे नहीं है ! इस कारणसे यह दूसरा आश्चर्य वृत्त क्या है !

( विचारकर )

ये योगीश्वरी अपनी महिमासे ( माधवका अपहरण करनेके लिए ) समर्थ हो रही हैं ॥ ५४ ॥

( वितर्कके साथ ) यह क्या अनर्थ है ? इस विषयमें मैं अभी मूढ हो रहा हूँ । और भी—

प्रचुर आश्चर्यसे युक्त, पहले हुए आश्चर्यको न भूलनेवाला, उत्पन्न नवीन भयरूप

एकक्षणत्रुटितसंघटितप्रमोहमानन्दशोकशबलत्वमुपैति चेतः ॥५५॥

तदत्र कान्तारावसाने सहास्मद्वर्गेण प्रविष्टां भगवतीमनुसृत्य वृत्तान्तमेनं कथयामि ।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे नवमोऽङ्कः ।



यत् भयं ( भीतिः, माधवाऽनवलोकनेनेति भावः ) तेन यो ज्वरः ( सन्तापः ) तेन जर्जरम् ( जीर्णम् ) एकक्षणत्रुटितसंघटितप्रमोहम् = एकक्षणे ( एकसमये ) त्रुटितः (नाशितः, 'जीवति सा कल्याणी'ति वचनेन मालतीजीवनप्रतिपादनेन त्रुटित इति भावः ) संघटितः ( उत्पादितः, माधवाऽदर्शनेनेति भावः ) प्रमोहः ( अतिशय वैचित्र्यम् ) यस्मिंस्तत् । तादृशं नः = अस्माकम्, 'अस्मदो द्वयोश्चे'ति बहुवचनम् । चेतः = चित्तं, कर्तृ । आनन्दशोकशबलत्वम् = आनन्दशोकाभ्याम् ( हर्षमन्युभ्यां, मालतीजीवनप्रतिपादनेनाऽऽनन्दो माधवाऽदर्शनेन च शोकस्ताभ्यामिति भावः ) शबलत्वम् ( मिश्रितत्वम् ), उपैति = प्राप्नोति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५५ ॥

तदत्रेति । तद् = तस्मात् । कान्ताराऽवसाने = वनपश्चाद्भागे, 'कान्तारगहन' इति पुस्तकान्तरपाठे दुर्गमवर्त्ममये वन इत्यर्थः । अस्मद्वर्गेण सह = लवङ्गिकादिना समं, प्रविष्टां = कृतप्रवेशां, मालत्या गवेषणाऽर्थमिति शेषः । भगवतीं=कामन्दकीम् । वृत्तान्तम् = उदन्तं, माधवविषयकमित्यर्थः । कथयामि = प्रतिपादयामि, 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ।

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां नवमोऽङ्कः ।

ज्वरसे जर्जर और जिसमें प्रमोह एकक्षणमें विनष्ट और उत्पन्न हो गया है ऐसा मेरा चित्त, आनन्द और शोकसे मिश्रित भावको प्राप्त हो रहा है ॥ ५५ ॥

इस कारणसे इस वनके पिछले भागमें हमलोगों के बन्धुवर्गके साथ प्रविष्ट भगवतीके पास जाकर यह वृत्तान्त कहता हूँ ।

( तब सब निकलते हैं । )

नवम अङ्क समाप्त



# दशमोऽङ्कः

( ततः प्रविशति कामन्दकी मदयन्तिका लवङ्गिका च )

कामन्दकी—(सकरुणं सास्रम्) हा वत्से मालति, मदङ्कालंकारिणि, क्वासि । देहि मे प्रतिवचनम् ।

आ जन्मनः प्रतिमुहूर्तविशेषरम्या-
ण्याचेष्टितानि तव संप्रति तानि तानि ।
चाटूनि चारुमधुराणि च संस्मृतानि
देहं दहन्ति हृदयं च विदारयन्ति ॥ १ ॥

---

अथाऽतः निर्वहणसन्धिरूपोऽङ्कः प्रारभ्यते ।

कामन्दकीति । मदङ्काऽलङ्कारिणि=मम अङ्कम् (उत्सङ्गम्) अलङ्करोति (भूषयति) तच्छीला मदऽङ्काऽलङ्कारिणी, तत्सम्बुद्धौ । प्रतिवचनं=प्रत्युत्तरम् ।

आ जन्मन इति । जन्मनः प्रतिमुहूर्त्तविशेषरम्याणि तानि तानि तव आचेष्टितानि चारुमधुराणि चाटूनि च संस्मृतानि ( सन्ति ) सम्प्रति देहं दहन्ति हृदयं च विदारयन्तीत्यन्वयः । (हा वत्से मालति ! ) आ जन्मनः=जन्मन आरभ्य, 'आङ् मर्यादावचने' इत्याङः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तद्योगे 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' इति पञ्चमी । प्रतिमुहूर्तविशेषरम्याणि=प्रतिमुहूर्तं ( प्रतिक्षणम् ) विशेषरम्याणि ( अतिशयमनोहराणि ), तानि तानि=असकृत्पूर्वाऽनुभूतानि, तव=भवत्याः, आचेष्टितानि=क्रीडनादीनि, चारुमधुराणि=मनोहरप्रियाणि, 'स्वादुप्रियौ च मधुरौ' इत्यमरः । चाटूनि=प्रियवाक्यानि, च, संस्मृतानि=स्मृतिविषयीकृतानि सन्ति, सम्प्रति=अधुना, देहं=शरीरं, दहन्ति=तापयन्ति हृदयं च=चित्तं च, विदारयन्ति=विदीर्णं कुर्वन्ति, एतेन संयोगकाले यानि तव चेष्टितानि प्रियवचनानि निरतिशयसुखजनकान्यासन्, तान्येव वियोगसमयेऽत्यर्थाऽसह्यानि जातानीति भावः । ततश्च शरीरमनःपीडाप्रतिपादिता । अत्राचेष्टितानां चाटूनां च पदाऽर्थानां देहदाहरूपायां

---

( तब कामन्दकी, मदयन्तिका और लवङ्गिका प्रवेश करती हैं । )

कामन्दकी—( शोकके साथ और आँखोंमें आँसू भरकर ), हा वत्से ! मालति ! मेरी गोदको अलङ्कृत करनेवाली ! तुम कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो ।

जन्मसे आरम्भ ( शुरू ) कर प्रतिक्षण अतिशय मनोहर और बारंबार पहले अनुभूत तुम्हारी क्रीडा आदि चेष्टायें तथा मनोहर और प्रिय तुम्हारे प्रिय वचन भी स्मरण किये जानेपर इस समय शरीरको जला रहे हैं एवं हृदयको भी विदीर्ण कर रहे हैं ॥ १ ॥

अपि च । पुत्रि ?

अनियतरुदितस्मितं विराजत्-
कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमञ्जसमुग्धजल्पितं ते ॥ २ ॥

इतरे—(सास्रम्) हा प्रियसखि, सुप्रसन्नमुखचन्द्रसुन्दरि, क्व गतासि ।

---

हृदयविदारणरूपायां च क्रियायां कर्तृत्वेनाऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १ ॥

अनियतमिति । अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाऽग्रं स्खलदसमञ्जसमुग्धजल्पितं शिशोः ते वदनकमलकं स्मरामीत्यन्वयः । अनियतरुदितस्मितम् = अनियते ( नियमरहिते, निर्हेतुकत्वादिति भावः ) रुदितस्मिते ( रोदनहास्ये, विषादहर्षलिङ्गे इति भावः ) यस्मिंस्तत् । विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाऽग्रं = विराजन्ति ( शोभमानानि कतिपयानि ( कियन्ति ) कोमलानि (मृदूनि) दन्तकुड्मलाऽग्राणि (दशनमुकुलाऽग्राणि, दन्ताः कुड्मलाऽग्राणीवेति उपमितसमास एवं च स्खलदसमञ्जसमुग्धजल्पितं = स्खलत् ( गद्गदीभवत् ) असमञ्जसम् (पूर्वाऽपरसंगतिरहितम् ) मुग्धं ( मनोहरं, 'मञ्जु' इति पाठेप्ययमेवाऽर्थः ) जल्पितं ( वचनं, 'नपुंसके भावे क्त' इति क्तप्रत्ययः ) यस्मिंस्तत् । शिशोः = बालिकायाः, ते = तव मालत्या इति भावः । तादृशं वदनकमलकं = मुखपद्मकं, वदनं कमलमिव वदनकमलं, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोग' इत्युपमितसमासः । अनुकम्पितं वदनकमलं वदनकमलकं, तत्, 'अनुकम्पायाम्' इत्यनुकम्पायां कन् । स्मरामि= चिन्तयामि । आरब्धस्य स्मरणस्य निरन्तरं प्रवर्तमानत्वेन समाप्त्यभावाद्वर्तमानकालनिर्देशः । श्लोकोऽयमुत्तररामचरितेऽपि चतुर्थेऽङ्के सीतोद्देशेन जनकवक्तृकत्वेनोपन्यस्तः । अत्र स्वभावोक्त्युपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २ ॥

इतरे इति । इतरे=मदयन्तिकालवङ्गिके । एकाकिन्याः = एकिकायाः । शरीरस्य=

---

और भी । बेटी !

कारणके विना भी रोने और हँसनेवाले, कलियोंके अग्रभागोंके तुल्य कुछ दाँतोंसे शोभित, अधूरे अक्षरोंवाले असम्बद्ध और मनोहर वचनोंसे युक्त शिशु तुम्हारे कमलके तुल्य मुखको याद करती हूँ ॥ २ ॥

दोनों ( मदयन्तिका और लवङ्गिका )—( आँखोंमें आँसू भरकर

कस्ते शरीरस्य दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या उपनतः। हा महाभाग माधव, उदितास्तमितमहोत्सवस्ते जीवलोकः संवृत्तः। (हा पिअसहि, सुप्पसण्णमुहचन्दसुन्दरि, कहिं गदासि। को दे सरीरस्स देव्वदुव्विलासपरिणामो एक्काकिणीए उवणदो। महाभाअ माहव, उदिअत्थमिदमहूसवो दे जीअलोओ संवुत्तो)

कामन्दकी—(सविशेषखेदम्) हा वत्सौ !

**अभिनवरागरसोऽयं भवतोः कृतकौतुकः परिष्वङ्गः।**
**लवलीलवङ्गयोरिव नियतिमहावात्ययाभिहतः॥ ३॥**

---

देहस्य, पुस्तकान्तरे शरीरविशेषणत्वेन 'शिरीषकुसुमसुकुमारस्ये'त्यधिकः पाठस्तस्य शिरीषपुष्पमृदुलस्येत्यर्थः। दैवदुर्विलासपरिणामः=दैवस्य (भाग्यस्य) यो दुर्विलासः (दुर्विलसितम्), 'दुर्विनय' इति पाठान्तरे यो दुर्व्यवहार इत्यर्थः। तस्य परिणामः (परिणतिः, परिपाक इति भावः)। उदिताऽस्तमितमहोत्सवः=प्राक् उदितः (उदयं प्राप्तः, 'उपस्थित' इति पाठान्तरम्) पश्चात् अस्तमितः (नाशं गतः) महोत्सवः (महोद्धर्षः) यस्मिन्सः।

कामन्दकीति। वत्सौ = मालतीमाधवौ।

अभिनवेति। लवलीलवङ्गयोरिव भवतोः अभिनवरागरसः कृतकौतुकः अयं परिष्वङ्गो नियतिमहावात्यया अभिहत इत्यन्वयः। लवलीलवङ्गयोरिव = सुगन्धमूलालता-देवकुसुमवृक्षयोरिव, 'लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञम्' इत्यमरः। भवतोः = युवयोः मालतीमाधवयोरित्यर्थः। भवती च भवांश्चेति भवन्तौ तयोः 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः। अभिनवरागरसः = अभिनवः (नवीनः) रागः (अनुरागः) एव रसः (गुणः) यस्मिन्सः, 'शृंगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे विषे द्रवः।' इत्यमरः। एवं च कृतकौतुकः= कृतं (विहितम्) कौतुकं (कुतूहलं, मङ्गलं वा, द्रष्टॄणामिति शेषः) यस्मिन्सः। तादृशः अयम् = एषः, अचिरनिर्वृत्त इति भावः। परिष्वङ्गः = मेलनम्, आलिङ्गनं वा। नियतिमहावात्यया नियतिः (दैवम्) महावात्या (महावातसमूहः) इव

---

हा प्रियसखि ! हे निर्मलमुखरूप चन्द्रसे सुन्दरि ! तुम कहाँ गई हो ? अकेली तुम्हारे शरीरका भाग्यदुर्विलासका परिणाम उपस्थित हुआ। हा महाभाग माधव ! जीवलोकमें तुम्हारा उत्सव पहले उदित होकर पीछे अस्तमित हो गया !

कामन्दकी—(विशेष खेदके साथ) हा वत्से मालति ! हा वत्स माधव !

सुगन्धमूला लता और लवङ्गवृक्षके सदृश तुम दोनोंका नया अनुरागरूप गुणवाला और देखनेवालोंको कौतुक उत्पन्न करनेवाला यह मिलन भाग्यरूप महावायु से विनाशित हुआ॥ ३॥

लवङ्गिका—( सोद्वेगम् ) हताश, वज्रमयहृदय, सर्वथा नृशंसमसि। ( इति हृदयमाहत्य पतति ) ( हदास, वज्जमअहिअअ; सव्वहा णिसंसेसि )

मदयन्तिका—सखि लवङ्गिके, ननु भणामि क्षणमात्रमपि तावत्समाश्वसिहि। ( सहि लवङ्गिए, णं भणामि क्खणमेत्तं वि दाव समस्सस )

लवङ्गिका—मदयन्तिके, किं करोमि। दृढवज्रलेपप्रतिबद्धनिश्चलमिव जीवितं मां न परित्यजति। (मदअन्तिए, किं करोमि। दिढवज्जलेवपडिवद्धणिच्चलं विअ जीविदं मं ण परिच्चअदि )

कामन्दकी—वत्से मालति, जन्मनः प्रभृति वल्लभतरा ते लवङ्गिका। तत्किमुज्जिहानजीवितां नानुकम्पसे। इयं हि—

तया अभिहतः=विनाशितः, 'निहत' इति पाठान्तरम्। वातानां समूहो वात्या, 'पाशादिभ्यो य' इति यप्रत्ययः। महती चाऽसौ वात्या, तया। उद्याने लवलीलता-लवङ्गवृक्षयोरिवाऽचिरजातो भवतोर्मालतीमाधवयोरयमुद्वाहमहोत्सवो नियतिवात्ययाऽभिहत इति भावः। अत्र द्वयोरुपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। आर्या जातिः॥३॥

लवङ्गिकेति। सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, 'प्रकारवचने थाल्' इति थाल्प्रत्ययः। नृशंसं=क्रूरम्। एतादृशसमयेऽपि विदीर्णत्वाऽभावादिति भावः।

मदयन्तिकेति। ननु=अनुनयद्योतकमव्ययमिदम्। 'प्रश्नाऽवधारणाऽनुज्ञाऽनुनयाऽऽमन्त्रणे ननु।' इत्यमरः।

लवङ्गिकेति। दृढवज्रलेपप्रतिबद्धनिश्चलं=दृढेन (दुरपनेयेन) वज्रलेपेन ( बन्धकद्रव्यलेपनेन ) यः प्रतिबन्धः ( विश्लेषाऽनुत्पादः ) तेन निश्चलं (स्थिरम्), पदमिदमुत्तररामचरितेऽपि चतुर्थेऽङ्के कौसल्ययाऽभिहितं, परं तत्रेवशब्दो न वर्तते।

कामन्दकीति। वल्लभतरा=अतिशयप्रिया। उज्जिहानजीविताम्=उज्जिहानम्

---

लवङ्गिका—( उद्वेगके साथ ) हताश, हे वज्रमय हृदय! तू सब प्रकारोंसे क्रूर है। ( ऐसा कहकर छाती पीटकर गिर जाती है।)

मदयन्तिका—सखि लवङ्गिके! मैं तुमको कहती हूं कि कुछ समय तक आश्वस्त हो।

लवङ्गिका—मदयन्तिके! क्या करूं। दृढ वज्रलेपसे प्रतिबन्धके कारण निश्चल जैसा होकर जीवन मुझे नहीं छोड़ रहा है।

कामन्दकी—वत्से मालति! लवङ्गिका जन्मसे ही तुम्हारी अतिशय प्रिय है। इसलिए तुम्हारे वियोगसे कण्ठगत जीवनवाली इसपर क्यों दया नहीं कर रही हो?

क्योंकि यह—

उज्ज्वलालोकया स्निग्धा त्वया त्यक्ता न राजते ।
मलीमसमुखी वर्तिः प्रदीपशिखया यथा ॥ ४ ॥

कथं त्वं कल्याणि, कामन्दकीं त्यजसि । नन्वकरुणे, मदीयचीवराञ्चलोष्मणैव ते प्रगुणितान्यङ्गानि ।

स्तन्यत्यागात्प्रभृति सुमुखी दन्तपाञ्चालिकेव

( ऊर्ध्वंगतं, कण्ठगतमित्यर्थः, स्वच्छोकेनेति भावः ) जीवितं (जीवनम्) यस्याः सा, ताम् । लवङ्गिकामिति भावः । उत्पूर्वकात् 'ओहाङ्गतौ' इत्यस्माद्धातोः लटः शानच् । 'वराकीम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तस्य दीनामित्यर्थः ।

उज्ज्वलेति । उज्ज्वलालोकया त्वया त्यक्ता स्निग्धा मलीमसमुखी सती उज्ज्वलाऽऽलोकया प्रदीपशिखया त्यक्ता मलीमसमुखी वर्तिः यथा न राजते इत्यन्वयः । उज्ज्वलाऽऽलोकया = उज्ज्वलः ( विशदः ) आलोकः ( दर्शनं, प्रदीपशिखापक्षे प्रकाशः ) यस्याः सा उज्ज्वलालोका, तया । त्वया=भवत्या, त्यक्ता=मुक्ता, स्निग्धा= स्नेहयुक्ता, प्रदीपशिखापक्षे तैलपूर्णा । मलीमसमुखी=मलिनाऽऽनना, सती । उज्ज्वलालोकया = विशदप्रकाशया, प्रदीपशिखया = दीपज्वालया त्यक्ता = मुक्ता, मलीमसमुखी = मलिनाऽग्रभागा, शिखासंयोगदग्धत्वादिति भावः । 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम् ।' इत्यमरः । वर्तिः = दशा, यथा = इव, न राजते = न शोभते । अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४ ॥

कथमिति । त्यजसि = जहासि । मदीयचीवराऽञ्चलोष्मणा=मत्प्रावरणैकदेशोष्णत्वेन, चीवरं शाक्यभिक्षुप्रावरणमिति सुभूतिः । ते = तव, अङ्गानि = शरीराऽवयवाः । प्रगुणितानि = वृद्धिं गतानि ।

स्तन्यत्यागादिति । (वत्से मालति !) मया एव स्तन्यत्यागात् प्रभृति सुमुखी त्वं दन्तपाञ्चालिका इव क्रीडायोगं, तदनु प्रापिता वर्द्धिता च; लोकश्रेष्ठे गुणवति वरे स्थापिता । तेन तव अपि मातुः समधिकः स्नेहो मयि युक्त इत्यन्वयः ( हे वत्से मालति ! ) मया एव = कामन्दक्या एव, न पितृभ्यामिति भावः । अर्थोऽयमेवपदेन-

---

उज्ज्वल दर्शनवाली तुमसे त्यक्त होकर स्नेहयुक्त यह सखी लवङ्गिका मलिन मुखवाली होती हुई, उज्ज्वल प्रकाशवाली प्रदीपज्वालासे त्यक्त तैलपूर्ण मलिन अग्रभागवाली वर्तिकी तरह शोभित नहीं हो रही है ॥ ४ ॥

हे कल्याणि ! तुम कैसे कामन्दकीको छोड़ रही हो । हे निर्दये ! मेरे चीवर ( भिक्षुवस्त्र ) के आँचलकी गर्मीसे ही अङ्ग वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ।

( वत्से मालति ! ) मैंने ही माताका दूध छोड़नेके समयसे लेकर सुन्दर

क्रीडायोगं, तदनु विनयं प्रापिता वर्धिता च ।
लोकश्रेष्ठे गुणवति वरे स्थापिता, त्वं मयैव
स्नेहो मातुर्मयि समधिकस्तेन युक्तस्तवापि ॥ ५ ॥

( सवैक्लव्यम् ) हा चन्द्रमुखि, संप्रति निराशास्मि संवृत्ता ।

अकारणस्मेरमनोहराननः
शिखाललाटार्पितगौरसर्षपः ।

द्योत्यते स्तन्यत्यागात् प्रभृति = मातृस्तनपानत्यागात् आरभ्य, सुमुखी = सुन्दरवदना, त्वं = मालती, दन्तपाञ्चालिका इव = गजदशननिर्मिता पुत्तलिका इव, क्रीडा योगं = बाल्यक्रीडनसम्बन्धं, प्रापितेत्युत्तरपदेन सम्बन्धः । तदनु = तदनन्तरं, कियत्कालाऽनन्तरमध्ययनाऽवस्थायामिति भावः । विनयं = शास्त्रशिल्पाऽऽदिशिक्षाम्, अनौद्धत्यं वा, प्रापिता = नीता, एवं वर्द्धिता च = वृद्धिं नीता च । तदनन्तरं यौवने लोकश्रेष्ठे = विद्याकर्मादिभिर्लोकोत्तरे, गुणवति = प्रशस्तगुणसम्पन्ने, वरे = जामातरि, माधव इति भावः । स्थापिता = स्थिरीकृता । तेन = कारणेन, तव अपि = भवत्या अपि, मातुः = जनन्याः, समधिकः = अतिरिक्तः, स्नेहः = प्रेम, मयि = कामन्दक्यां, युक्तः = उचितः, त्वयाऽहं नो विस्मरणीयेति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ५ ॥

सवैक्लव्यमिति । विक्लवस्य भावः कर्म वा वैक्लव्यं=विह्वलत्वं, 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्प्रत्ययः । सवैक्लव्यं = सविह्वलत्वम् ।

अकारणेति । परिवृत्तभाग्यया मया अकारणस्मेरमनोहराऽऽननः शिखाललाटाऽर्पितगौरसर्षपः स्तनन्धयः अङ्कशायी तव तनयो न दृष्ट इत्यन्वयः । परिवृत्तभाग्यया= विगतदैवया, भाग्यरहितयेति भावः । तादृश्या मया = कामन्दक्या, अकारणस्मेरमनोहराननः=अकारणं ( निर्हेतुकम् ) स्मेरम् ( मन्दहास्ययुक्तम् ) अत एव मनोहरम् ( सुन्दरम् ) आननं ( मुखम् ) यस्य सः । शिखाललाटाऽर्पितगौरसर्षपः = शिखायां ( चूडायाम् ) ललाटे च ( भाले च ) अर्पिताः ( विन्यस्ताः ) गौरसर्षपाः

सुखवाली तुमको हाथी-दाँतसे बनी हुई खिलौनेकी तरह क्रीडा कराया तदनन्तर शास्त्रशिल्पादिकी शिक्षा दी और बढ़ाया भी; किसी प्रकारसे यौवनमें लोकश्रेष्ठ गुणवान् वर (माधव) में स्थापन किया । इस कारणसे मुझपर तुम्हारा भी मातासे अधिक स्नेह उचित है ॥ ५ ॥

( विह्वलताके साथ ) हा चन्द्रमुखि ! इस समय मैं निराश हो गयी हूँ !

बिना कारणके ही मन्दहास्य युक्त और मनोहर मुखवाले, जिसकी चूडा और

तवाङ्कशायी परिवृत्तभाग्यया
मया न दृष्टस्तनयः स्तनन्धयः ॥ ६ ॥

लवङ्गिका—भगवति, प्रसीद। निःसहास्मि जीवितोद्वहने। साहमस्माद्-गिरिप्रपातादात्मानमवधूय निर्वृत्ता भविष्यामि। तथा मे भगवत्याशिषः करोतु, येन जन्मान्तरेऽपि तावत्प्रियसखीं प्रेक्षिष्ये। ( भअवदि, पसीद। णिस्सहम्मि जीविदुव्वहणे। साहं इमादो गिरिप्पपादादो अत्ताणं अवधुणिअ णिव्वुत्ता भविस्सं। तह मे भअवदी आसिसं करेदु, जेण जम्मन्तरे वि दाव पिअसहिं पेक्खिस्सं )

---

( सिद्धार्थाः, रक्षार्थमिति शेषः ) यस्य सः। स्तनन्धयः = स्तन्यपायी, स्तनौ धयतीति, 'नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः' इति खश्, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः। अङ्कशायी = उत्सङ्गशायी, अङ्के शेते तच्छीलः। ताच्छील्ये णिनिः। तव = भवत्याः, मालत्या इत्यर्थः। तनयः = पुत्रः, न दृष्टः = न अवलोकितः। हे मालति ! मम त्वत्पुत्रदर्शनाऽभिलाष आसीद् दुरदृष्टेन त्वदभावात्तत्पूरणे संशयः अस्ति इति भावः। अत्र तथाविधतनयाऽदर्शने परिवृत्तभाग्यस्य हेतुत्वात्पदाऽर्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः। वंशस्थं वृत्तम् ॥ ६ ॥

लवङ्गिकेति। प्रसीद=प्रसन्ना भव, मदभिलापेऽनुज्ञाप्रदानेनेति भावः। जीवितोद्वहने = प्राणधारण इति भावः। निःसहा = असमर्था। सा = जीवितोद्वहननिःसहा, गिरिप्रपातात् = पर्वतभृगोः, 'प्रपातस्वतटो भृगुः' इत्यमरः। 'गिरिशिखरात्' इति पाठान्तरम्। आत्मानं = स्वशरीरम्। अवधूय = पातयित्वा। निर्वृत्ता = निष्पन्ना, अनभीप्सितजीविताऽपनयने निष्पन्नाऽभिलापेति भावः। 'णिव्वुदा' ( निर्वृता ) इति पाठे देहपातेन दुःखाऽभावात्सुखयुक्तेति भावः। प्रियसखीं = वल्लभवयस्यां, मालतीमित्यर्थः।

---

ललाटमें श्वेतसर्षप रक्खे जाते हैं ऐसे और माताका दूध पीनेवाले तथा गोदमें सोनेवाले तुम्हारे पुत्रको भाग्यरहित होनेसे मैं नहीं देख पायी ॥ ६ ॥

लवङ्गिका— भगवति ! आप प्रसन्न हों । मैं जीवनको धारण करनेके लिए असमर्थ हो गयी हूँ । वैसी होनेसे मैं इस पर्वतकी चोटीसे अपने शरीरको गिराकर पूर्णाभिलाष हो जाऊंगी । भगवती मुझे वैसे आशीर्वाद दें, जिससे कि दूसरे जन्ममें भी प्रियसखीको देख पाऊँ ।

कामन्दकी—ननु लवङ्गिके, कामन्दक्यपि नातः परं वत्साविप्रयोगेन जीविष्यति। समश्चायमुत्कण्ठवेग आवयोः। किंच—

संगमः कर्मणां भेदाद्यदि न स्यान्न नाम सः।
प्राणानां तु परित्यागे संतापोपशमः फलम् ॥ ७ ॥

लवङ्गिका—यथा यूयमाज्ञापयथ। ( जह तुम्हे आणवेत्थ ) ( इत्युत्तिष्ठति )

---

कामन्दकीति। वत्सावियोगेन = मालतीविरहेण। जीविष्यति = प्राणान्धारयिष्यति। पुस्तकान्तरे—'कामन्दक्या...जीवितव्यम्' इति पाठः। आवयोः = तव मम च।

सङ्गम इति। कर्मणां भेदात् सङ्गमो न स्यात् यदि? स न नाम। प्राणानां परित्यागे सन्तापोपशमस्तु फलमित्यन्वयः। कर्मणां=स्वस्याऽनुष्ठितक्रियाणां, भेदात्= वैषम्यात्, सङ्गमः = समागमः, कृतेऽपि देहत्यागे परलोके मालत्या सहेति शेषः। न स्यात् यदि = नो भवेच्चेत्, तर्हि सः = सङ्गमः, न नाम = न भवतु इत्यर्थः। न तत्र काऽप्यापत्तिरिति भावः। तर्हि मरणेच्छा किमर्था इति चेत्तत्राह—प्राणानां त्विति। प्राणानाम् = असूनाम्, परित्यागे = परिमोचने, कृते सतीति शेषः। सन्तापोपशमस्तु=मालतीमरणरूपदुःखाऽपगमस्तु इति भावः। तुपदेन सङ्गमरूपफलव्यावृत्तिः। फलं= प्रयोजनं, मरणस्येति भावः। भविष्यतीति शेषः। कृतेऽपि प्राणत्यागे स्वस्वकर्मवैषम्यान्मा भून्मालत्या समागमः, दुःखोपशमरूपं प्रयोजनं स्वासादयिष्यत इति भावः। संगमाऽभावे मानं—'मृतोऽपि मानुषः शक्तो नाऽनुगन्तुं मृतं जनम्।
जायावर्जं च सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥' इति स्मृतिः।

अत एवैतन्मूलिकैव महाकविकालिदासोक्तिः'परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्।' इति। अत्राऽनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७ ॥

लवङ्गिकेति। उत्तिष्ठति = उत्थानं करोति, पतनायेति शेषः।

---

कामन्दकी—अरी लवङ्गिके! वत्सा मालतीके वियोगके कारण कामन्दकी भी इस समयके अनन्तर नहीं जाएगी। हम दोनोंका यह उत्कण्ठाका आवेग तुल्य है।

और भी—

अपने अपने अनुष्ठित कर्मोंके वैषम्यसे यदि मालतीके साथ संगम नहीं होगा तो नहीं हो। प्राणोंका परित्याग करनेपर मालतीकी मृत्युसे उत्पन्न सन्तापकी निवृत्ति तो फल होगा ॥ ७ ॥

लवङ्गिका—आप जैसी आज्ञा करती हैं ( वैसा ही करें ) ( ऐसा कहकर उठती है। )।

कामन्दकी—( सदयं वीक्ष्य ) वत्से मदयन्तिके !

मदयन्तिका—किमाज्ञापयथ अग्रेसरी भवेति । अवहितास्मि । ( किं आणवेध । अग्गेसरो होहि त्ति । अवहिदम्हि )

लवङ्गिका—सखि, प्रसीद । विरमैतस्मादात्मनो व्यापादनात्। मा चैनं जनं विस्मरिष्यसि । ( सहि, पसीद । विरम एत्तो अत्तणो वावादणादो । मा अ एणं जणं विसुमरेसि )

मदयन्तिका—( सकोपमिव ) अपेहि । नास्मि ते वशंवदा । ( अपेहि । णम्हि दे वसंवदा )

कामन्दकी—हन्त, निश्चितं वराक्या ।

मदयन्तिका—(स्वगतम्) नाथ मकरन्द, नमस्ते । (णाह मअरन्द, णमो दे)

---

मदयन्तिकेति । अग्रेसरी = पुरःसरी, मरण इति शेषः । अवहिता = अप्रमत्ता, लवङ्गिकाया मरणात्प्राङ्मरणे इति शेषः । लवङ्गिकाविनाशं द्रष्टुमसमर्थाया मदयन्त्या उक्तिरियम् ।

लवङ्गिकेति । आत्मनः स्वशरीरस्य, व्यापादनात् = घातात्, 'विरमे'ति पदेन योगे 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति पञ्चमी । विरम = निवृत्ता भव ।

मदयन्तिकेति । अपेहि = अपगच्छ । वशंवदा = अधीना, अवश्यं मरिष्यामीति भावः । वशं वदतीति, 'प्रियवशे वदः खच्' इति खच् मुमागमश्च ।

कामन्दकीति । 'स्वगतम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः ॥ वराक्या = दीनया, मदयन्तिकयेति भावः । 'वृङ् संभक्तौ' इति धातोः 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्' इति षाकन्प्रत्ययः, षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीष् । निश्चितं = निर्णीतं, मरणमिति शेषः ।

अथ मदयन्तिकामकरन्दपराक्रमक्रीतं तदायत्तमात्मजीवितं स्मृत्वा मनसा जीवितेश्वरं

---

कामन्दकी—( दयाके साथ देखकर ) वत्से मदयन्तिके !

मदयन्तिका—आप 'आगे बढ़ो' ऐसा आज्ञा करती हैं क्या ? मैं इसके लिए उद्यत हूं ।

लवङ्गिका—सखि ! अनुग्रह करो । इस आत्महत्यासे विरत हो । इस व्यक्तिको नहीं भूलोगी ।

मदयन्तिका—(जैसे कोपके साथ) दूर हो । मैं तुम्हारी वशवर्तिनी नहीं हूं ।

कामन्दकी—हाय ! बेचारीने मरनेका निश्चय किया ।

मदयन्तिका—( मन ही मन ) नाथ मकरन्द ! आपको प्रणाम है ।

लवङ्गिका—भगवति, अयमेव मधुमतीस्रोतःसंदानितपवित्रमेखलो महीधरविटङ्कः। ( भअवदि, अअं जेव्व महुमदीसोत्तसंदाणिदपवित्तमेहलो महीहरविटङ्को )

कामन्दकी—कृतमिदानीं प्रस्तुतान्तरायेण।

( सर्वाः पतितुमिच्छति )

( नेपथ्ये )

आश्चर्यम्?

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च
क्षणमुपहतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्तः।

मकरन्दं प्रणमति-मदयन्तिकेति। नाथ=स्वामिन्!।

लवङ्गिकेति। मधुमतीस्रोतःसन्दानितपवित्रमेखलः=मधुमत्याः ( तन्नामिकाया नद्याः ) यत् स्रोतः ( प्रवाहः ) तेन सन्दानिता ( बद्धा ) पवित्रा ( प्रयता ) मेखला ( नितम्बभागः ) यस्य सः। तादृशो महीधरविटङ्कः=महीधरस्य ( पर्वतस्य ) विटङ्कः ( कपोतपालिका, उन्नतप्रदेश इति भावः ), 'कपोतपालिकायां तु विटङ्कं पुंनपुंसकम्।' इत्यमरः।

कामन्दकीति। प्रस्तुताऽन्तरायेण=प्रस्तुतस्य ( प्रकृतस्य, मरणस्येत्यर्थः ) अन्तरायेण ( विघ्नेन, प्रतिबन्धेनेति भावः कृतम्=अलम्। साम्प्रतं कालक्षेपमकृत्वा सर्वा अपि वयं प्राणान्मुञ्चाम इति भावः।

व्यतिकर इति। स्तोकपरिवर्तितः श्लोकोऽयं व्याख्यातचरोऽपि संक्षेपेण पुनरपि व्याख्यायते। तामसो वैद्युतश्च भीमो व्यतिकर इव ( कश्चित्तेजोविशेषः ) क्षणम् उपहतचक्षुर्वृत्तिः सन् उद्भूय शान्त इत्यन्वयः। तामसः=तमःसम्बन्धी, वैद्युतश्च=विद्युत्सम्बन्धी च, भीमः=भयङ्करः, व्यतिकर इव=सम्पर्क इव, कश्चित्तेजोविशेष

लवङ्गिका—भगवति! मधुमती नदीके प्रवाहसे संबद्ध पवित्र मध्यभागवाला यह ही पर्वतका उन्नत प्रदेश है।

कामन्दकी—इस समय प्रस्तुत विषयमें विघ्नकी आवश्यकता (जरूरत) नहीं है।

( सब गिरनेकी इच्छा करते हैं। )

( नेपथ्यमें )

आश्चर्य है।

अन्धकार और बिजलीके सम्पर्ककी तरह कोई खास तेज कुछ समयतक नेत्रव्यापार ( दर्शनक्रिया ) को हटाकर उत्पन्न होकर अस्तमित हो गया।

कामन्दकी—( विलोक्य साद्भुतहर्षम् )

**कथमिह मम वत्सस्तत्किमेतत्—**

मकरन्दः—( प्रविश्य )

—किमन्यत्

**प्रभवति हि महिमा स्वेन योगीश्वरीयम् ॥ ८ ॥**

( नेपथ्ये )

कथमतिदारुणो जनावमर्दः संप्रवर्तते ।

---

इति शेषः । क्षणं=कंचित्कालं यावत् । उपहतचक्षुर्वृत्तिः = उपहता (प्रतिहता, प्रतिबद्धेति भावः ) चक्षुर्वृत्तिः ( नयनव्यापारः, दर्शनरूप इति भावः ) येन सः, एतादृशः सन् । उद्भूय = उत्पद्य, शान्तः = अस्तमितः ।

कामन्दकीति । विलोक्य = दृष्ट्वा, आयान्तं मकरन्दमिति शेषः ।

कथमिहेति । इह मम वत्सः कथम् ? तत् एतत् किमित्यन्वयः । इह = अत्र स्थाने, मम = कामन्दक्याः, वत्सः = वात्सल्यभाजनं, मकरन्द इति भावः । कथं= केन प्रकारेण, आयात इति शेषः । तत् = तदा, एतत् = समीपतरवर्ति, तेजोमण्डलमिति शेषः । किं = कथं समभूदिति भावः ।

मकरन्द इति । किमिति । अन्यत् किं हि इयं योगीश्वरी स्वेन महिम्ना प्रभवतीत्यन्वयः । अन्यत् = अपरं, किम्, हि=यतः, इयम्=एषा, साम्प्रतं सौदामिन्या असन्निहितत्वेऽपि बुद्धिस्थत्वादिदंशब्देन परामर्शः । योगीश्वरी = योग्यधीश्वरी, स्वेन = आत्मीयेन, महिम्ना = महत्त्वेन, योगजन्येनेति शेषः । प्रभवति = समर्था भवति, तत्प्रभावादयं व्यतिकर इत्यभिप्रायः । कामन्दक्यादिभिर्हर्षोऽतिशयपूर्यमाणमकरन्दनयनचेष्टाभिः कुशलिनी मालती समाधवेति निर्णीतमिति प्रतीयमानोऽर्थः । अत एव सर्वा अपि पतनाद्विरता इत्युन्नेयम् ॥ ८ ॥

नेपथ्य इति । जनाऽवमर्दः = लोकसंमर्दः, दर्शनाऽर्थमिति शेषः ।

---

कामन्दकी—(देखकर आश्चर्य और हर्षके साथ) यहाँ मेरा वत्स (मकरन्द) कैसे आगया ? तब यह तेजोमण्डल क्या है ?

मकरन्द—( प्रवेशकर ) और क्या ? क्योंकि ये योगीश्वरी अपनी महिमासे समर्थ हो रही हैं ॥ ८ ॥

( नेपथ्यमें )

अतिशय दारुण लोगोंकी भीड़ कैसे हो रही है ?

मालत्यपायमधिगम्य विरक्तचेताः
सांसारिकेषु विषयेषु च जीविते च।
निश्चित्य वह्निपतनाय सुवर्णबिन्दु-
मभ्येति भूरिवसुरित्यधुना हताः स्मः ॥ ९ ॥

मदयन्तिकालवङ्गिके—झटिति मालतीमाधवयोर्दर्शनाभ्युदयो झटित्यत्याहितं च। ( झत्ति मालदीमाहवाणं दंसणब्भुदओ झत्ति अचाहिदं अ )

कामन्दकीमकरन्दौ—दिष्ट्या। कष्टं भोः! आश्चर्यम्।

किमयमसिपत्त्रचन्दन-रसाच्छटासारयुगपदवपातः।

---

मालत्यपायमिति। भूरिवसुः मालत्यपायम् अधिगम्य सांसारिकेषु विषयेषु जीविते च विरक्तचेताः वह्निपतनाय निश्चित्य सुवर्णबिन्दुम् अभ्येति इति अधुना हताः स्म इत्यन्वयः। भूरिवसुः = मालतीपिता, मालत्यपायं = मालत्याः ( स्वदुहितुः ) अपायम् ( विनाशम् ), अधिगम्य = ज्ञात्वा, सांसारिकेषु = लौकिकेषु, विषयेषु = ऐश्वर्यादिषु जीविते च = जीवने च, विरक्तचेताः = वैराग्ययुक्तचित्तः सन्, वह्निपतनाय = अग्निप्रवेशनाय, मरणाऽर्थमिति शेषः। निश्चित्य = निर्णीय, सुवर्णबिन्दुं = शिवं। तन्नामकं = शिवालयं, विष्णुं वा, 'सुवर्णबिन्दुर्विष्णुः' इति हेमचन्द्रः। अभ्येति = अभ्यागच्छति, इति = अस्माद्धेतोः, अधुना = सम्प्रति, हताः स्मः = नष्टाः स्मः, मालत्या समं भूरिवसोरपि वियोगेनेति भावः। इदं परिजनवचोऽवधेयम्। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ९ ॥

मदयन्तिकालवङ्गिके इति। झटिति = सपदि। दर्शनाऽभ्युदयः = विलोकनमहोत्सवः। अत्याहितं = महाभीतिः, भूरिवसुविनाशशङ्कयेति भावः।

कामन्दकीमकरन्दाविति। दिष्ट्या = भाग्येन, मालतीमाधवदर्शनं संवृत्तमिति शेषः। कष्टं = कृच्छ्रं, भूरिवसोरग्निप्रवेशोद्योगादिति शेषः।

किमिति। अयम् असिपत्त्रचन्दनरसाच्छटाऽऽसारयुगपदवपातः किम्? अयम्

---

भूरिवसुजी मालतीका विनाश जानकर लौकिक विषयोंमें और जीवनमें भी विरक्तचित्त होकर अग्निमें प्रवेश करनेके लिए निश्चयकर शिवालयके सम्मुख आ रहे हैं, इस कारणसे इस समय हमलोग हतप्राय हो रहे हैं ॥ ९ ॥

मदयन्तिका और लवङ्गिका—तत्क्षण मालती और माधवका दर्शनोत्सव और उसी क्षण महाभय भी उपस्थित हो गया है।

कामन्दकी और मकरन्द—भाग्यसे। अरे! कष्ट है। आश्चर्य!

यह खड्गरूप पत्र और चन्दनरससमूह इनके धारासंपातका एक ही वार पतन

अनलस्फुलिङ्गकलितः किमयमनभ्रः सुधावर्षः ॥ १० ॥
संजीवनौषधिविषव्यतिकरमालोकतिमिरसंभेदम् ।
अद्य विधिरशनिशशधरमयूखसंवलनमनुकुरुते ॥ ११ ॥

अनलस्फुलिङ्गकलितः अनभ्रः सुधावर्षः किम् ? इत्यन्वयः । अयम् = एषः, भूरिवसुवह्निप्रवेशश्रवण-मालतीमाधवदर्शनोत्सवव्यतिकर इति भावः । असिपत्रचन्दनरसाच्छटाऽऽसारयुगपदवपातः किम् ?=असयः ( खड्गाः ) एव पत्राणि ( दलानि, दारकाणीति भावः ), एवं च—चन्दनरसच्छटा ( मलयजद्रवसमूहः ) तयोरासारः ( धारासम्पातः ) तस्य युगपत् ( एकदा ) अवपातः ( पतनम् ) । किम् ? भूरिवसुविषयकाऽनर्थश्रवणादसिपत्रपातः, मालतीमाधवजीवनाच्चन्दनरसासार इति भावः । तथा च—अयम् = एषः, अनलस्फुलिङ्गकलितः = वह्निकणयुक्तः, अनभ्रः=मेघरहितः, सुधावर्षः किम् = अमृतवृष्टिः कथं भवति । भूरिवसुविषयकाऽनिष्टश्रवणे वह्निकणयुक्तत्वम्, आकस्मिकमालतीमाधवाऽऽगमने च—मेघरहितसुधावृष्टित्वं यथायथं वोध्यम् । एवं च विषादहर्षयोर्यौगपद्येन व्यतिकरः संभूत इति भावः । अत्र 'सुधावर्ष' इत्यत्र 'वृष्टिर्वर्षम्' इत्यमराऽनुशासनेन वर्षपदस्य नपुंसकलिङ्गत्वेऽपि 'वृषु सेचने' इति धातोः 'अज्विधौ भयादीनामुपसंख्यानम्' इत्यचि 'घाजन्तश्चे'ति लिङ्गाऽनुशासनसूत्रात्पुँल्लिङ्गत्वमपि वोद्धव्यमत एव—'अथ वृष्टिर्वर्षमस्त्री केचिदिच्छन्ति वर्षणम् ।' इति शब्दाऽर्णवः । अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । आर्या जातिः ॥ १० ॥

संजीवनौषधीति । विधिः अद्य संजीवनौषधिविषव्यतिकरम् आलोकतिमिरसंभेदम् अशनिशशधरमयूखसंवलनम् अनुकुरुते इत्यन्वयः । विधिः = भाग्यम्, अस्मदीयमिति शेषः, विधाता वा । अद्य = अस्मिन्दिने, संजीवनौषधिविषव्यतिकरं = संजीवनसाधनभेषजगरलसंमिश्रणम्, आलोकतिमिरसंभेदं = प्रकाशाऽन्धकारसंगमम्, एवम् अशनिशशधरमयूखवलनं = वज्रचन्द्रकिरणसंमेलनम्, अनुकुरुते = सदृशीकरोतीत्यर्थः । अस्माकं विधिः युगपदेव भूरिवसुवह्निप्रवेशश्रवण—मालतीमाधवदर्शनव्यतिकरेण संजीवनौषधिविषव्यतिकरादिवद्धर्षविषादाऽऽविर्भावं करोतीति भावः । अत्र 'अनुकुरुत' इत्यत्र इवादिपदाभावात्प्रतीयमानोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । आर्या जातिः ॥ ११ ॥

---

हुआ क्या । यह अग्निकणयुक्त मेघरहित अमृतवृष्टि हो गयी है क्या ? ॥ १० ॥

विधाता आज संजीवन औषध और विषका संमिश्रण, एवं प्रकाश और अन्धकारका संगम और वज्र और चन्द्रकिरणका सम्मेलन, इन सबका अनुकरण कर रहे हैं ॥ ११ ॥

( नेपथ्ये )

हा तात, विरम। उत्सुकास्मि ते वदनकमलदर्शनस्य। प्रसीद। संभावय माम्। कथं मम कारणात्समस्तलोकालोकान्तरालविष्कम्भनिर्मलैकमङ्गलप्रदीपभूतमात्मानं परित्यजसि। मया पुनरलज्जया निरनुक्रोशया यूयं परित्यक्ताः। (हा ताद, विरम। ऊसुअम्हि दे वअणकमलदंसणस्स। पसीद। संभावेहि मं। कहं मम कारणादो समत्थलोआलोआन्तरालविक्खम्भणिम्मलेक्कमङ्गलप्पदीवभूदं अत्ताणं परिच्चअसि। मए उण अलज्जाए णिरणुक्कोसाए तुम्हे परिच्चत्ता)

कामन्दकी—हा वत्से मालति !

जन्मान्तरादिव पुनः कथमपि लब्धासि यावदयमपरः।

---

नेपथ्य इति। विरम = विरतो भव, वह्निप्रवेशोद्योगादिति शेषः। 'व्याङ्-परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्। सम्भावय = संभावितां कुरु। समस्तलोकालोकाऽन्तरालविष्कम्भनिर्मलैकमङ्गलप्रदीपभूतं = समस्तं (समग्रम्) लोकालोकस्य (चक्रवालपर्वतस्य, सप्तद्वीपवत्या भूमेरिति भावः) यत् अन्तरालं (मध्यभागः) तस्य विष्कम्भः (विस्तारः, 'विख्यातम्' इति पुस्तकान्तरपाठस्तत्र प्रसिद्धमित्यर्थः) तत्र निर्मलम् (निर्दोषम्) 'कुलम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। एकमङ्गलप्रदीपभूतम् (एककल्याणदीपभूतम्)। आत्मानं = स्वशरीरम्। अलज्जया = निर्लज्जया, 'अनार्यये'ति पुस्तकान्तरपाठे असभ्ययेत्यर्थः। निरनुक्रोशया = निर्दयया, 'निरनुक्रोशा' इति पुस्तकान्तरपाठे 'यूयम्' इत्यस्य विशेषणम्। परित्यक्ताः = परिमुक्ताः। अत्र 'इति संभावितमासीत्' इति पुस्तकान्तरपाठः।

जन्मान्तरादिति। (हा वत्से ! मालति !!) जन्मान्तरात् इव कथं कथमपि यावत्

---

( नेपथ्यमें )

हाय ! पिताजी ! आप विरत हों। मैं आपके मुखकमलके दर्शनके लिए उत्कण्ठित हो रही हूँ। आप प्रसन्न हों। मुझे संभावित कीजिए। कैसे मेरे कारणसे आप समस्त लोकालोक पर्वतके मध्यभागके विस्तारमें निर्मल और एक मात्र मङ्गलप्रदीपभूत अपने शरीरका परित्याग करते हैं। निर्लज्ज और निर्दय मैंने आपका परित्याग किया।

कामन्दकी—हा वत्से मालति !

जैसे दूसरे जन्मसे मैंने तुम्हें किसी तरह पा लिया है। इसी समय यह दूसरा

**उपराग इव शशिकलां कवलयितुमुपस्थितोऽनर्थः ॥ १२ ॥**

इतरे— हा प्रियसखि !

( ततः प्रविशति मुग्धां मालतीं धारयन्माधवः )

माधवः—कष्टं भोः ।

**एषा प्रवासं कथमप्यतीत्य**
**याता पुनः संशयमन्यथैव ।**

पुनः लब्धा असि । अयम् अपरः अनर्थः उपरागः शशिकलाम् इव कवलयितुम् उपस्थित इत्यन्वयः । ( वत्से ! मालति !! ) जन्माऽन्तरात् इव = अन्यस्माज्जन्मन इव, पुनरागमनस्याऽसम्भाव्यमानत्वादिति भावः । कथमपि=केनाऽपि प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः । यावत्, पुनः = भूयः, लब्धा असि = प्राप्ता असि, त्वमिति शेषः । तावत्, अयम् = एषः, अपरः = अन्यः, अनर्थः = अनिष्टं, त्वत्पितुर्भूरिवसोर्वह्निप्रवेशोद्योगरूपमिति भावः । उपरागः = राहुग्रहः, शशिकलाम् इव = चन्द्रकलाम् इव, कवलयितुं = कवलं कर्तुं, ग्रासीकर्तुमिति भावः, त्वामिति शेषः । कवलयितुमित्यत्र 'तत्करोति तदाचष्ट' इति णिजन्तात्तुमुन् । उपस्थितः = समीपस्थितः । यथा कृष्णपक्षरूपाज्जन्मान्तराच्चन्द्रस्यैका कलोपलभ्यते तां च ग्रासीकर्तुं यथा राहुरुपस्थितो भवति तथैव लोकान्तरागतमिवोपस्थितां त्वामिदं पितृशोकरूपमनिष्टं कवलीकर्तुमुपस्थित इति भावः । अत्रोत्प्रेक्षोपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । आर्या जातिः ॥१२॥

तत इति । मुग्धां = मूर्च्छितां, पितुर्वह्निप्रवेशोद्योगश्रवणादिति भावः ।

एषेति । एषा कथमपि प्रवासम् अतीत्य अन्यथा एव पुनः संशयं याता । को नाम जन्तोः पाकाऽभिमुखस्य दैवस्य द्वाराणि पिधातुम् ईष्टे इत्यन्वयः । एषा=इयं, मालतीति भावः । कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः । प्रवासं = परदेशवासं, लक्षणया एषोऽर्थः, यद्वा परहस्तं, 'प्रवासः परहस्ते च परदेशेऽपि कथ्यते ।' इति नानाऽर्थः । अतीत्य = यापयित्वा, अतिशयकष्टमनुभूयेति भावः । अन्यथा एव=प्रकारान्तरेण एव पितृवह्निप्रवेशोद्यमश्रवणेन एव, पुनः=भूयः, संशयं=

---

जैसे अनिष्ट राहु चन्द्रकला को ग्रास करता है वैसे ही तुम्हें ग्रास करनेके लिए उपस्थित हो रहा है ॥ १२ ॥

दोनों—( मदयन्तिका और लवङ्गिका )—हा प्रियसखि !

( तब मूर्च्छित मालतीको धारण करता हुआ माधव प्रवेश करता है । )

माधव—अरे ! कष्ट है ।

यह ( मालती ) किसी प्रकारसे भी परदेशवासको बिताकर फिर दूसरे प्रकारसे

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो-
द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥ १३ ॥

मकरन्दः—सखे, अथ क सा योगिनी ।

माधवः—

श्रीपर्वतादिहाहं सत्वरमपतं तयैव सह सद्यः ।
करुणवनेचरवचनादन्तरितां तां न पश्यामि ॥ १४ ॥

सन्देहं, प्राणसन्देहमिति भावः । याता = प्राप्ता । तथाहि—को नाम = जनः जन्तोः= प्राणिनः, पाकाऽभिमुखस्य = परिणामाऽभिमुखस्य, कर्मफलप्रदानतत्परस्येति भावः । दैवस्य = भाग्यस्य, द्वाराणि = अनुभवमार्गान् , बहुवचनेन निवारणेऽशक्यता प्रतीयते । पिधातुम् = अपिधातुं, रोद्धुमिति भावः, 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।' इत्यपेरकारलोपः । ईष्टे = समर्थो भवति, न कोपीति भावः । 'ईश ऐश्वर्ये इति धातोर्लट् । नियतिवशादेव मालत्यै तादृशं दुःखमनुभूतं, नियतिगतिमुल्लङ्घयितुं न कोऽपि समर्थ इति भावः । अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धभाग उत्तररामचरिते सप्तमेऽङ्के गङ्गावक्तृकत्वेनोपन्यस्तः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १३ ॥

श्रीपर्वतादिति । अयं तया एव सह श्रीपर्वतात् इह सद्यः सत्वरम् अपतम् । करुणवनेचरवचनात् अन्तरितां तां न पश्यामीत्यन्वयः । अहं = माधवः, तया = पूर्वोक्तया, योगिन्या इति भावः । एव, सह = समं, श्रीपर्वतात् = तन्नामकाच्छिवक्षेत्रात्, इह = अस्मिन् स्थाने, सद्यः = सपदि, सत्वरं=शीघ्रम्, अपतम्=आगच्छम्, आगतोऽस्मीत्यर्थः । अत्राऽद्यतनभववृत्तान्तवर्णने 'अनद्यतने लङ्' इत्यनुशासनतः प्रवर्तमानस्य लङः प्रयोगस्याऽयुक्तत्वेऽपि भूरिवसुवृत्तान्तश्रवणजनितशोकावेगेन कविनिबद्धवक्तुर्माधवस्यैतादृशं स्खलनं भूषणमेव न तु दूषणमित्यवधेयम् । अतः करुणवनेचरवचनात्=करुणं ( शोकसहितम् ) यत् वनेचरवचनम् ( अरण्यचरवाक्यं 'मालत्यपायमधिगम्ये'त्यादीति भावः ), तस्मात् । हेतौ पञ्चमी । अन्तरितां=व्यवहिताम्,

जीवनसंशय को प्राप्त हो गयी है । कौन व्यक्ति प्राणियोंका कर्मफल देनेको तत्पर भाग्यके द्वारोंको अवरुद्ध करनेके लिए समर्थ होता है ? ॥ १३ ॥

मकरन्द—मित्र ! अभी वह योगिनी कहाँ है ?

माधव—मैं उन्हीं (योगिनी ) के साथ श्रीपर्वतसे यहाँपर तत्क्षण और शीघ्र आ गया हूँ । उसी समय वनेचर के करुणापूर्ण वचनसे अन्तर्हित होनेवाली उन ( योगिनी ) को नहीं देख रहा हूँ ॥ १४ ॥

कामन्दकीमकरन्दौ—महाभागे, पुनः परित्रायस्व नः। किमर्थमन्तर्हितासि।

मदयन्तिकालवङ्गिके—सखि मालति, ननु भणामि सखि मालतीति। भगवति, परित्रायस्व। चिरनिरुद्धनिःश्वासनिश्चलमस्या हृदयम्। हा अमात्य, हा प्रियसखि, युवां द्वावपि परस्परावसानस्य कारणं जातौ। (सहि मालदि! णं भणामि सहि मालदि त्ति। (सोत्कम्पम्) भअवदि! परित्ताहि। चिरणिरुद्धणिस्सासणिच्चलं से हिअअं। हा अमच्च, हा पिअसहि, तुम्हे दुवे वि परप्परावसाणस्स कारणं जादा)

कामन्दकी—हा वत्से मालति!

माधवः—हा प्रिये मालति!

मकरन्दः—हा प्रियसखि!

---

अन्तर्हितामिति भावः। तां=योगिनीं, न पश्यामि=न विलोकयामि। आर्या जातिः॥

मदयन्तिकालवङ्गिके इति। मालती संज्ञां प्राप्तवती न वेति संशय्य आह्वयतः—सखीति। चिरनिरुद्धनिःश्वासनिश्चलं=चिरं (बहुकालं यावत्) निरुद्धः (निवारितः) यो निश्वासः (निःश्वसनम्) तेन निश्चलम् (चेष्टारहितम्)। अमात्य=मन्त्रिन्, भूरिवसो! इति भावः। परस्पराऽवसानस्य=अन्योन्यनाशस्य, मालतीशोकेन भूरिवसुवह्निप्रवेशोद्योगः, तच्छ्रवणेन मालत्या मोह इत्थमिति भावः। उद्देश्यप्राधान्याज्जातावित्यत्र द्वित्वं पुंल्लिङ्गत्वं च।

---

कामन्दकी और मकरन्द—महाभागे! फिर हमलोगोंकी रक्षा कीजिए। आप किसलिए अन्तर्हित हो गयी हैं?

मदयन्तिका और लवङ्गिका—सखि मालति! अरी! मैं पुकारती हूँ। सखि मालति! (कम्पके साथ) भगवति! रक्षा कीजिए। बहुत समयतक निःश्वास रोकनेसे इनका हृदय निश्चल हो गया है। हा अमात्य! हा प्रियसखि! तुम दोनों एक दूसरेको मृत्युके कारण हो गये।

कामन्दकी—हा वत्से मालति!

माधव—हा प्रिये मालति!

मकरन्द—हा प्रियसखि!

( सर्वे मोहमुपगम्य पुनः संज्ञां लभन्ते )

कामन्दकी—तत्किमेष झटिति पाटयमानादिवाम्बुदादम्बुनिवहः परिस्खलन्नस्मान्प्रीणयति ।

माधवः—(सोच्छ्वासम्) अये, प्रत्यापन्नचेतनेव मालती ! तथा ह्यस्याः—

भवति विततश्वासोन्नाहप्रणुन्नपयोधरं
हृदयमपि च स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौ स्थितम् ।
तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात् प्रसादि विराजते
परिगतमिव प्रारम्भेऽह्नः श्रिया सरसीरुहम् ॥ १५ ॥

---

कामन्दकीति । पाटयमानात् = विदार्यमाणात् , इव, अम्बुदात् = मेघात्, प्रीणयति = संतर्पयति, जीवयतीति भावः ।

माधव इति । प्रत्यापन्नचेतना = पुनः प्राप्तसंज्ञा ।

भवतीति । हृदयम् अपि विततश्वासोन्नाहप्रणुन्नपयोधरं, चक्षुश्च स्निग्धं निजप्रकृतौ स्थितं भवति । तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात् अह्नः प्रारम्भे श्रिया परिगतं सरसीरुहम् इव प्रसादि विराजत इत्यन्वयः । हृदयम् अपि = वक्षोऽपि, विततश्वासोन्नाहप्रणुन्नपयोधरं = विततश्वासस्य ( दीर्घश्वासस्य ) उन्नाहेन ( उद्गमेन ) प्रणुन्नौ ( कम्पितौ ) पयोधरौ ( कुचौ ) यस्मिंस्तत्, भवति = वर्तते, एवं परत्राऽपि भवतीति क्रियापदं प्रयोज्यम् । पुस्तकान्तरे तु 'भवति विततश्वासा नासे'ति पाठस्तत्र नासा= नासिका, विततश्वासा = वितताः ( दीर्घाः ) श्वासाः ( प्राणवायवः ) यस्यां सा इत्यर्थः । चक्षुश्च = नेत्रं च, इन्द्रियत्वं लक्ष्यीकृत्यैकवचनं बोध्यम् । स्निग्धं = सुन्दरं, यत् प्राङ्मोहेन निमीलितत्वादस्निग्धमभूदिति भावः । एवं च निजप्रकृतौ = आत्मस्वभावे, स्थितं = संजातं, भवति । तदनु = तदनन्तरं, वदनं = मुखं, मूर्च्छाच्छेदात् = मोहाऽपगमाद्धेतोः, अह्नः = दिवसस्य, प्रारम्भे = उपक्रमे, प्रातःकाल इति भावः । श्रिया = शोभया, परिगतं = व्याप्तं, सरसीरुहम् इव = कमलम् इव, सरस्यां रोहतीति,

---

( सब बेहोश होकर फिर होशमें आते हैं । )

कामन्दकी—विदीर्ण किये गयेके सदृश मेघसे गिरता हुआ यह जल-समूह शीघ्र हमलोगोंको सन्तुष्ट कर रहा है क्या ?

माधव—(उच्छ्वासके साथ) अरे ! मालती होशमें आ गयी ऐसा प्रतीत हो रहा है । जैसे कि इसका—

हृदय ( छाती ) भी दीर्घ श्वासके उद्गमसे कम्पित पयोधरोंसे युक्त एवं नेत्र भी सुन्दर और अपनी प्रकृतिमें विद्यमान हो रहे हैं ( खुल रहे हैं ) । उसके

( नेपथ्ये )

**अविगणय्य नृपं सहनन्दनं चरणयोर्नतमग्निचये पतन् ।**
**सपदि भूरिवसुर्विनिवर्तितो मम गिरा गुरुसंमदविस्मयः ॥ १६ ॥**

माधवमकरन्दौ—भगवति, दिष्ट्या वर्धसे ।

---

'इगुपधज्ञाप्रीकिरः क' इतीगुपधत्वात्कप्रत्ययः। प्रसादि=प्रसादगुणयुक्तं, प्रसन्नं सदित्यर्थः। विराजते=शोभते। अत इयं मालती प्रत्यापन्नचेतनेति भावः। अत्र भवनरूपैकक्रियया प्रस्तुतानां हृदयादीनां कर्तृत्वेनाऽभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। तथा प्रत्यापन्नचेतनत्वरूपं कार्यं प्रति अनेककारणोपन्यासात्समुच्चयः। एवं च 'सरसीरुहमिवे'त्यत्रोपमाऽलङ्कारश्चेत्येतेषां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः। हरिणी वृत्तम् ॥१५॥

अथ गगनमध्यस्था सौदामिनी प्राह—अविगणय्येति। भूरिवसुः चरणयोः नतं सहनन्दनं नृपम् अविगणय्य अग्निचये पतन् सपदि मम गिरा गुरुसंमदविस्मयः ( सन् ) विनिवर्तित इत्यन्वयः। भूरिवसुः = मालतीपिता मन्त्री, चरणयोः=पादयोः, नतं=कृतनमस्कारं, वह्निप्रवेशनिवृत्त्यर्थमिति भावः। सहनन्दनं=नन्दनेन (तदाख्येन नर्मसुहृदा, पुत्रेण वा ) सहितं ( युक्तम् ) 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः 'वोपसर्जनस्ये'त्येतस्य वैकल्पिकत्वात्पक्षे सादेशाऽभावः। नृपं = राजानम्, अविगणय्य = अनादृत्य 'भवान्वह्निप्रवेशं मा कार्षीत्' इत्यनुनयवचनमवधीर्येति भावः। अग्निचये = अनलसमूहे, पतन् = प्रविशन्, सपदि = तत्क्षणे, मम = सौदामिन्याः, गिरा = वाण्या 'मा साहसं कार्षीः, जीवत्येव ते तनया मालती'त्येवं रूपयेति शेषः। गुरुसंमदविस्मयः=गुरू ( महान्तौ ) संमदविस्मयौ ( हर्षाश्चर्ये ) यस्य सः, एतादृशः सन्। विनिवर्तितः = निवारितः, वह्निप्रवेशादिति शेषः। अतो युष्माभिरपि आश्वसितव्यमिति भावः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ १६ ॥

माधवमकरन्दाविति। अतः परम् 'ऊर्ध्वमवलोक्य सविस्मयम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। भगवति = माहात्म्यशालिनि !, हे कामन्दकि !

---

अनन्तर मुख, मूर्च्छा न होनेसे प्रातःकालमें शोभासे व्याप्त कमलके सदृश प्रसादगुणयुक्त होकर शोभित हो रहा है ॥ १५ ॥

( नेपथ्यमें )

भूरिवसु अपने चरणोंमें अवनत नन्दनके साथ राजा को परवाह न कर अग्निसमूहमें प्रवेशकर रहे थे उसी क्षण मेरी वाणीसे महान् हर्ष और आश्चर्यसे युक्त होकर निवारित किये गये ॥ १६ ॥

माधव और मकरन्द—भगवति ! भाग्यसे आपकी वृद्धि हो रही है ।

**सा योगिनीयमतिरयविघट्टितजलदाऽभ्युपैति नौ यस्याः ।**
**वागमृतजलासारो जलदजलासारमतिशेते ॥ १७ ॥**

कामन्दकी—प्रियं नः ।

मालती—दिष्ट्या चिरस्य प्रत्युज्जीवितास्मि । (दिट्ठिआ चिरस्स पच्चुज्जीविदम्हि )

कामन्दकी—( सहर्षबाष्पम् ) एह्येहि पुत्रि ।

मालती—हा कथं भगवती। ( हा कहं भअवदी । ) (इति पादयोर्निपतति)

कामन्दकी—( उत्थाप्यालिङ्ग्य मूर्घ्न्युपाघ्राय )

---

सेति । सा इयं योगिनी अतिरयविघटितजलदा (सती) नौ अभ्युपैति । यस्या-वागमृतजलासारो जलदजलासारम् अतिशेत इत्यन्वयः । सा = पूर्वाऽवलोकिता, इयं = निकटवर्तिनी, योगिनी = योगैश्वर्यसम्पन्ना, अतिरयविघटितजलदा = अति. रयेण ( अतिवेगेन ) विघटिताः ( विदारिताः ) जलदाः ( मेघाः ) यया सा, तादृशी सती । पुस्तकान्तरे तु 'सा योगिन्यम्बरतो विघटितजलदाऽभ्युपैत्ययं यस्याः ।' इति पाठः । नौ = आवाम्, अभ्युपैति=सम्मुखमागच्छति । यस्याः = योगिन्याः, वागमृत-जलासारः = वचनसुधासलिलवृष्टिः, अविगणय्येत्यादिरूपा इति भावः । जलद-जलाऽऽसारं = मेघसलिलधारासंपातम्, अतिशेते=अतिक्रामति, सौहित्यजननादिना तमपि जयतीति भावः । अत्रोपमानभूताज्जलदजलाऽऽसारादुपमेयादस्य वागमृत-जलाऽऽसारस्याऽऽधिक्यवर्णनाद्व्यतिरेकाऽलङ्कारः । वाचि अमृतारोपाद्रूपकालङ्कारश्चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । अङ्गं रूपकमङ्गी व्यतिरेकः । आर्या जातिः ॥ १७ ॥

कामन्दकीति । प्रियम् = अभीष्टं, भूरिवसोर्वह्निप्रवेशनिवर्तनादिति भावः ।

मालतीति । चिरस्य = बहुकालेन ।

---

पहले देखी गयी यह योगिनी, अतिशय वेगसे मेघोंका विदारण करती हुई हम दोनोंके संमुख आ रही है; जिसके वचनामृतकी धारावृष्टि मेघकी धारावृष्टिका अतिक्रमण कर रही है ॥ १७ ॥

कामन्दकी—यह हमारा अभीष्ट है ।

मालती—भाग्यसे बहुत कालके अनन्तर मैं बच गयी हूं ।

कामन्दकी—( हर्षाश्रुके साथ ) बेटी ! आओ, आओ ।

मालती—हा ! कैसे भगवती ( उपस्थित हुई ) ( ऐसा कहकर चरणोंपर गिर पड़ती है । )

कामन्दकी—( उठाकर, आलिङ्गनकर और शिर सूँघकर )

जीव, जीवितसमाय जीवितं
देहि, जीवतु सुहृज्जनश्च ते।
अङ्कैस्तुहिनसङ्गशीतलैः
पुत्रि! मां प्रियसखीं च जीवय ॥ १८ ॥

माधवः—वयस्य मकरन्द, संप्रत्युपादेयो माधवस्य जीवलोकः संवृत्तः।

मकरन्दः—( सहर्षम् ) एवमेवैतत्।

इतरे—प्रियसखि, मनोरथातिक्रान्तदर्शने, संभावयास्मान्परिष्वङ्गेण। ( पिअसहि, मणोरहातिक्कान्तदंसणे, संभावेहि अम्हे परिस्सङ्गेण )

---

जीवेति। हे पुत्रि! जीव, जीवितसमाय जीवितं देहि, ते सुहृज्जनश्च जीवतु तुहिनसङ्गशीतलैः अङ्कैः मां प्रियसखीं च जीवयेत्यन्वयः। हे पुत्रि = हे वत्से मालति!, जीव = प्राणान् धारय, त्वमिति शेषः। जीवितसमाय = जीवनसदृशाय, माधवायेति भावः। जीवितं = जीवनं, देहि = वितर, एवं च—ते = तव, सुहृज्जनश्च = सखीजनश्च, मदयन्तिकादिरिति भावः। जीवतु = प्राणान् धारयतु त्वज्जीवनेनेति भावः। तथा तुहिनसङ्गशीतलैः = हिमसम्बन्धशीतैः, अङ्कैः = अनुकम्पितैः शरीराऽवयवैः। मां = कामन्दकीं, प्रियसखीं च = दयितवयस्यां, लवङ्गिकां च, जीवय = जीवितां कुरु, आलिङ्गनदानेनेति भावः। अत्र 'जीवितसमाये'त्यत्रोपमाऽलङ्कारः। रथोद्धता वृत्तम् ॥

माधव इति। उपादेयः = ग्राह्यः।

इतरे इति। 'मदयन्तिकालवङ्गिके' इति पुस्तकान्तरपाठः। मनोरथाऽतिक्रान्तदर्शने = मनोरथम् ( अभिलाषम् ) अतिक्रान्तम् (लङ्घितम्) दर्शनं ( विलोकनम् ) यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ। असम्भाव्यदर्शने! इति भावः। परिष्वङ्गेण = आलिङ्गनेन, सम्भावय = योजय, सम्भावितान् कुर्विति वा।

---

हे पुत्रि! तुम जीओ, जीवनके समान माधवको जीवन दो और तुम्हारे सखीजन भी जीएँ; हिमके सम्पर्कसे शीतलके सदृश अपने अङ्गोंसे मुझको और प्रियसखी ( लवङ्गिका ) को भी जिलाओ ॥ १८ ॥

माधव—वयस्य मकरन्द! इस समय माधवके लिए मनुष्यलोक प्राह्य हो गया है।

मकरन्द—( हर्षके साथ ) यह ऐसा ही है।

दोनों ( मदयन्तिका और लवङ्गिका )—मनोरथको अतिक्रमण करनेवाले दर्शन वाली प्रियसखि! हमलोगोंके अपने आलिङ्गनसे संभावित करो।

मालती—हा प्रियसख्यौ । ( हा पिअसहिओ । ) इत्युभे आलिङ्गतः )

कामन्दकी—वत्सौ, किमेतत् ।

माधवमकरन्दौ—भगवति,

कपालकुण्डलाकोपदुर्जातजनितापदः ।
वयमभ्युद्धृताः कृच्छ्रान्निर्बन्धादार्ययाऽनया ॥ १९ ॥

कामन्दकी—कथमघोरघण्टवधविजृम्भितमेतत् ।

लवङ्गिकामदयन्तिके—अहो आश्चर्यम् । पुनरुक्तदारुणस्य परिणामरमणीयत्वं विधेः । ( अहो अच्चरिअं । पुणरुत्तदारुणस्स परिणामरमणिज्जत्तणं विहिणो )

---

मालतीति । उभे = मदयन्तिकालवङ्गिके इति ।

कामन्दकीति । वत्सौ = माधवमकरन्दौ !, एतत् = वृत्तं, मालत्या अदर्शनरूपं दर्शनरूपं चेति भावः । किं = कथं जातमिति भावः ।

कपालकुण्डलेति । अनया आर्यया कपालकुण्डलाकोपदुर्जातजनिताऽऽपदो वयं निर्बन्धात् कृच्छ्रात् अभ्युद्धृता इत्यन्वयः । अनया = निकटवर्तिन्या, आर्यया = पूज्यया, योगिन्या सौदामिन्येति भावः । कपालकुण्डलाकोपदुर्जातजनिताऽऽपदः = कपालकुण्डलायाः ( अघोरघण्टशिष्याया योगिन्याः ) कोपात् (क्रोधात्) यत् दुर्जातं ( व्यसनम् मालत्या इति शेषः, 'दुर्जातं व्यसनं प्रोक्तम्' इति विश्वः ) तेन जनिता ( उत्पन्ना ) आपत् ( विपत्तिः ) येषां ते । तादृशा वयं, 'निर्बन्धात् = अतिप्रयत्नात्, कृच्छ्रात् = कष्टात्, अभ्युद्धृताः = उत्तारिताः । सौदामिनीकरुणयैव वयं सर्वेऽपि सङ्कटादभ्युद्धृता इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥

कामन्दकीति । अघोरघण्टवधविजृम्भितम् = अघोरघण्टस्य ( तदाख्यस्य कापालिकस्य ) यो वधः ( व्यापादनं माधवकर्तृकमिति भावः ) तस्य = विजृम्भितम् ( व्यापारः, मालतीहरणरूप इति भावः ) ।

लवङ्गिकामदयन्तिके इति । पुस्तकान्तरे 'मदयन्तिका' इति । पुनरुक्तदारुणस्य =

---

मालती—हा प्रियसखियो ! ( तब दोनों मालतीको आलिङ्गन करती हैं । )

कामन्दकी—वत्स माधव ! वत्स मकरन्द !! यह क्या है ?

माधव और मदयन्तिका—भगवति !

इन आर्या ( योगिनी ) ने कपालकुण्डलाके क्रोधसे उत्पन्न आपत्तिसे जनित विपत्तिवाले हमलोगोंको अतिप्रयत्नकर कष्टसे उद्धार किया ॥ १९ ॥

कामन्दकी—कैसे यह अघोरघण्टके वधका परिणाम हो गया है ।

लवङ्गिका और मदयन्तिका—अहो ! आश्चर्य है । पुनरुक्तभयङ्कर भाग्यकी परिणाममें रमणीयता हो गयी ।

सौदामिनी—( प्रविश्य ) भगवति, स एष चिरंतनोऽन्तेवासी जनः प्रणमति।

कामन्दकी—अये, भद्रम्। सौदामिनी?

माधवमकरन्दौ—कथमियं सा भगवत्याः पक्षपातस्थानमाद्यशिष्या सौदामिनी। यतः सर्वमधुना संगच्छते।

कामन्दकी—

एह्येहि भूरिवसुजीवितदानपुण्य-
संभारधारिणि! चिराद्सि हन्त दृष्टा।

---

द्विवृत्तभयङ्करस्य। पुनरुक्तमिव पुनरुक्तं पुनर्मालतीहरणमिति भावः। अत एव दारुणं ( भयङ्करम् ) तस्य। विधेः=भाग्यस्य। परिणामरमणीयत्वं=परिपाकमनोहरत्वं पुनरप्यक्षतशरीराया मालत्या लाभेनेति भावः। 'परिणामरमणीयं विधेर्विलसितम्' इति पुस्तकान्तरपाठः। विलसितं=विलास इत्यर्थः।

सौदामिनीति। 'उपसृत्ये'त्यधिकः पुस्तकान्तरपाठस्तस्य समीपं गत्वेत्यर्थः, कामन्दक्या इति शेषः। चिरन्तनः=प्राचीनः। अन्तेवासी=शिष्यः। अन्ते ( गुरुसमीपे ) वसतीति तच्छीलः 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति णिनिः 'शयवासवासिष्वकालात्' इत्यलुक्समासः 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' इत्यमरः। 'वः' इत्यधिकं पाठान्तरम्।

कामन्दकीति। भद्रं=कल्याणं, 'भद्रा' इति पाठे 'कल्याणी'त्यर्थः।

माधवमकरन्दाविति। 'सविस्मयम्' इत्यधिकः पुस्तकान्तरपाठः। पक्षपातस्थानं=पक्षपातस्य ( स्नेहविशेषस्य ) स्थानम् ( आश्रयः )। सर्वं=सकलं, मालतीरक्षादिकं कार्यमिति भावः। संगच्छते=संगतं भवति, 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' इत्यात्मनेपदम्।

एह्येहीति। हे भूरिवसुजीवितदानपुण्यसम्भारधारिणि! एहि एहि, हन्त! चिराद् दृष्टा असि। दत्तप्रमोदं मे शरीरम् आलिङ्ग्य अभिनन्दय। हे सौहृदनिधे! प्रणामाद् विरमेत्यन्वयः। हे भूरिवसुजीवितदानपुण्यसंभारधारिणि=भूरिवसोः ( मालती-

---

सौदामिनी—( प्रवेशकर ) भगवति! वह यह आपकी प्राचीन शिष्या आपको प्रणाम करती है।

कामन्दकी—अरी! कल्याण हो। सौदामिनी?

माधव और मकरन्द—कैसे ये वे भगवतीकी पक्षपातस्थान प्रथम शिष्या सौदामिनी आगयी हैं। जिस कारणसे इस समय सब बात संगत प्रतीत हो रही है।

कामन्दकी—भूरिवसुको जीवनदान करनेसे धर्मसमूहको धारण करनेवाली

दत्तप्रमोदमभिनन्दय मे शरीर-
-मालिङ्ग्य सौहृदनिधे ! विरम प्रणामात् ॥ २० ॥

अपि च—

वन्द्या त्वमेव जगतः स्पृहणीयसिद्धि-
रेवंविधैर्विलसितैरतिबोधिसत्त्वैः ।

---

पितुर्मन्त्रिणः, 'भूरिजने'ति पाठे भूरिजनानाम् = बहुजनानां, मालतीमाधवभूरिवसुप्रभृतीनामिति भावः । ) जीवितस्य ( जीवनस्य ) दानेन ( वितरणेन ) यः पुण्यसम्भारः ( धर्मसमूहः ) तं धारयतीति तच्छीला, तत्सम्बुद्धौ । एहि एहि = आगच्छ आगच्छ, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । हन्तेति हर्षे । चिरात् = बहुकालाऽनन्तरं, दृष्टा = अवलोकिता, मयेति शेषः । असि = वर्तसे । दत्तप्रमोदं = दत्तः ( वितीर्णः, दर्शनेनाऽभीष्टद्वयसम्पादनेन चेति भावः ) प्रमोदः ( हर्षं ) यस्य तत्तादृशं, मे = मम, शरीरं= देहम्, आलिङ्ग्य = आश्लिष्य, अभिनन्दय=आनन्दय, पुनरपीति शेषः । हे सौहृदनिधे = हे सौहार्दाकरभूते !, प्रणामात् = नमस्कारात्, 'विरमे'ति पदेन योगे 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी ।विरम=विरता (निवृत्ता) भव, यतः सर्वाऽभीष्टसम्पादनेन 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' इत्युक्तेः, त्वमेव मम प्रणम्याऽसीति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २० ॥

पूर्वोक्तमेवोत्तरश्लोकेन व्यक्तीकरोति—वन्द्येति । एवंविधैः अतिबोधिसत्त्वैः विलसितैः स्पृहणीयसिद्धिः त्वम् एव जगतो वन्द्या । यस्याः (ते) विजृम्भितेन पुरा परिचयप्रतिबद्धबीजम् उद्भूतभूरिफलशालि इत्यन्वयः । एवंविधैः=एतादृशैः, माल्यादिपरिरक्षणरूपैः, अतिबोधिसत्त्वैः = बोधिसत्त्वं (बुद्धविशेषं जीमूतवाहनादिकम्) अतिक्रान्तानि, अतिबोधिसत्त्वानि, तैः । बुद्धविशेषजीमूतवाहनाद्यतिशायिभिरिति भावः । 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समासः । विलसितैः=विलासैः व्यापारैरिति भावः । स्पृहणीयसिद्धिः = स्पृहणीया ( अभिलाषणीया, अस्माभिरपि श्लाघनीयेति भावः ) सिद्धिः ( मन्त्रसाफल्यम् ) यस्याः सा । त्वम् एव = भवती एव, जगतः—लोकस्य, 'वन्द्ये'ति कृत्यप्रत्ययान्तपदेन योगे 'कृत्यानां कर्तरि वे'ति षष्ठी ।

---

हे सौदामिनि ! आओ, आओ । हर्षकी बात है, तुम बहुत कालके अनन्तर देखी गयी हो । हर्षयुक्त मेरे शरीरका आलिङ्गनकर आनन्दित करो । हे सौहार्दनिधे ! प्रणामसे निवृत्त हो ॥ २० ॥

और भी—

इस प्रकारके जीमूतवाहन आदि बुद्ध विशेषको अतिक्रान्त करनेवाले व्यापारोंसे

भूरिवसोः प्रत्यक्षमभिलिख्य पत्रमायुष्मतो माधवस्य प्रेषितम् । ( लेख्यमर्पयति )

कामन्दकी—( गृहीत्वा वाचयति ) 'स्वस्त्यस्तु वः । परमेश्वरः समाज्ञापयति यथा—

श्लाघ्यानां गुणिनां धुरि स्थितवति श्रेष्ठान्ववाये त्वयि
प्रत्यस्तव्यसने महीयसि परं प्रीतोऽस्मि जामातरि ।
तेनेयं मदयन्तिकापि भवतः प्रीत्यै तव प्रेयसे

---

( भूरिवसुजीवनरक्षयाऽऽनन्दितेन ) नन्दनेन ( राज्ञो नर्मसचिवेन ) अभिनन्दितेन ( प्रशंसितेन ) । माधवस्य = स्वमन्त्रिपुत्रस्य, समीप इति शेषः ।

कामन्दकीति । वः = युष्मभ्यं, स्वस्तिपदेन योगे 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्चे'ति चतुर्थी । स्वस्ति = कल्याणम् । परमेश्वरः = राजा ।

श्लाघ्यानामिति । श्लाघ्यानां गुणिनां धुरि स्थितवति श्रेष्ठाऽन्ववाये प्रत्यस्तव्यसने महीयसि त्वयि जामातरि परं प्रीतः अस्मि । तेन अस्माभिः अपि भवतः प्रीत्यै तव प्रेयसे मित्राय प्रथमाऽनुरागघटिता इयं मदयन्तिका अपि उत्सृज्यत इत्यन्वयः । श्लाघ्यानां = प्रशंसनीयानां गुणिनां = विद्याविनयादिगुणसम्पन्नानां, जनानां, धुरि= अग्रे, स्थितवति = विद्यमाने, श्रेष्ठाऽन्ववाये = श्रेष्ठः ( उत्तमः ) अन्ववायः ( अन्वयः, वंश इत्यर्थः ) यस्य स तस्मिन्, महाकुलप्रसूत इत्यर्थः । 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनाऽन्वयौ । वंशोऽन्ववायः सन्तान' इत्यमरः । प्रत्यस्तव्यसने = प्रत्यस्तं ( निरस्तम् व्यसनं विपत्तिः ) येन, तस्मिन् । महीयसि = अतिमहति, धनजनाद्यपेक्षितसर्वविषयपूर्णत्वादिति भावः । त्वयि = भवति, जामातरि = कन्यापतौ, 'जामातरि' इत्युक्तौ बीजं 'प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज' इति भूरिवसुवचनसंप्रत्ययेन माल‌त्यां महाराजस्य निजकन्यकाबुद्धिरेवाऽवगन्तव्यम् । परम्=अत्यर्थं, प्रीतः= प्रसन्नः, अस्मि = भवामि, तेन = कारणेन, अस्माभिः अपि, भवतः = तव, प्रीत्यै =

---

पद्मावतीश्वर राजाने भूरिवसुके समक्षमें पत्र लिखकर चिरञ्जीव माधवके समीप भेजा है । ( पत्र देती है । )

कामन्दकी—( लेकर बाँचती हैं । ) तुमलोगोंका कल्याण हो । राजा आज्ञा करते हैं, जैसे कि—

प्रशंसनीय गुणी जनोंके अग्रभागमें विद्यमान, श्रेष्ठ वंशवाले, विपत्तिको दूर करनेवाले और अतिशय महान् जामाता आपपर, मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । इस कारणसे

मित्राय प्रथमानुरागघटिताप्यस्माभिरुत्सृज्यते ॥ २३ ॥

( माधवमुद्दिश्य सहर्षम् ) वत्स, श्रूयताम् ।

माधवः—श्रुतम् । इदानीं सर्वथा कृतार्थोऽस्मि ।

मालती—दिष्ट्या एतदपि तावदपगतं हृदयस्य शङ्काशल्यम् । (दिट्ठिआ एदं वि दाव अवगदं हिअअस्स सङ्कासल्लं )

लवङ्गिका—सांप्रतं निरवशेषं पूरिताः श्रीमाधवस्य मनोरथाः । ( संपदं णिरवसेसं पूरिआ माहवसिरिणो मणोरहा )

मकरन्दः—( पुरोऽवलोक्य कथमवलोकिताबुद्धरक्षिते कलहंसश्च दूरतः समागतानस्मान्वीक्ष्य तत्रैव हर्षनिर्भरं नृत्यन्त इत एवागच्छन्ति ।

---

हर्षाय, तव = भवता, प्रेयसे = प्रियतराय, अतिशयेन प्रियः प्रेयान्, तस्मै । प्रियशब्दात् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इतीयसुन्प्रत्ययः, 'प्रियस्थिरे'त्यादिना प्रादेशः । मित्राय = सुहृदे, मकरन्दायेति भावः । प्रथमाऽनुरागघटिता = पूर्वप्रणयसम्बद्धा, इयम् = एषा, मदयन्तिका अपि = नन्दनस्वसा अपि, उत्सृज्यते = दीयते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम ॥ २३ ॥

माधव इति । सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, अस्मदनुष्ठितकार्ये राजनन्दनाऽनुमतिसम्मतिप्राप्त्येति भावः ।

मालतीति । दिष्ट्या = भाग्येन । शङ्काशल्यं=शङ्का (त्रासः, एतादृशे कर्मणि राजा, नन्दनश्च रुष्टः सन् किं विधास्यतीत्याकारकः ) एव शल्यम् ( कीलकम् )।

लवङ्गिकेति । निरवशेषं=निःशेषं, यथा स्यात्तथा । श्रीमाधवस्य=श्रीयुक्तस्य माधवस्य, प्राकृते पूर्वनिपातस्याऽनियमात् 'माहवसिरिणो' इत्युक्तिः । उपलक्षणं चैतत्, एवमेव मालत्याः, मदयन्तिकामकरन्दयोस्तद्धिताऽभिलाषिणामस्माकं चेति शेषः ।

मकरन्द इति । हर्षनिर्भरं=हर्षेण (आनन्देन) निर्भरम् (अत्यर्थम् यथा स्यात्तथा ।

---

मैं आपकी प्रीतिके लिए और आपके प्रियवर मित्र ( मकरन्द ) के लिए पूर्व प्रणयसे सम्बद्ध इस मदयन्तिकाको भी देता हूँ ॥ २३ ॥

( माधवको उद्देश्यकर हर्षके साथ ) वत्स ! सुनो ।

माधव—सुन लिया । इस समय सर्वथा कृतकृत्य हो गया हूँ ।

मालती—भाग्यसे हृदयका यह शङ्कारूप कीलक भी दूर हो गया ।

लवङ्गिका—इस समय श्रीमान् माधवके अभिलाष निःशेष होकर पूर्ण हो गये हैं।

मकरन्द—(संमुख देखकर ) कैसे अवलोकिता, बुद्धरक्षिता और कलहंस ये सब दूरसे आये हुए हमलोगोंको देखकर वहीं परसे आनन्दविभोर होकर नाचते हुए यहींपर आरहे हैं ।

त्यस्तशङ्काः खलु वयम् । ( प्रकाशम् )वत्सौ, न खल्वन्यथा वस्तु प्रवृत्तम्, अन्यथा वचनमस्याः । यतः श्रावकावस्थायामस्मत्सौदामिनीसमक्षं तयोः प्रवृत्तेयं प्रतिज्ञावाभ्यामपत्यसंबन्धः कर्तव्य इति । प्रधानप्रकृतिकोपस्त्वेवं परिहृतः ।

मालती—अहो संवरणम् । ( अहो संवरणम् )

मकरन्दमाधवौ—( साश्चर्यम् ) जयन्ति खलु महतां विसंवादिन्यः प्रत्यायिन्यः कल्याणा नीतयः ।

---

सम वैवाहिकसम्बन्धेनेति भावः ) । नन्दनाऽवग्रहात् = नन्दनकर्तृकप्रतिबन्धात्, प्रत्यस्तशङ्काः = निरस्तत्रासाः । वत्सौ = माधवमकरन्दौ !, श्रावकाऽवस्थायां = श्रोतृदशायां, शास्त्राऽर्थश्रवणसमय इति भावः । अनयोः = भूरिवसुदेवरातयोः । वृत्ता = संपन्ना । प्रधानप्रकृतिकोपः 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः ।' इत्यमराऽनुशासनात्सप्तसु प्रकृतिषु प्रधानप्रकृतिः ( राजा ) तत्कोपः ( तत्क्रोधः, 'नन्दनाय मालती दातव्यये'ति वचनलङ्घनतः निष्पन्न इति भावः ) । एवम् = अनेन प्रकारेण, परिहृतः = निवारितः ।

मालतीति । अहो = आश्चर्यम् । संवरणं = गोपनं, कृतायाः प्रतिज्ञाता इति शेषः ।

मकरन्दमाधवाविति । महतां = विद्यादिनैपुण्येन प्रमुखभूतानां जनानाम् विसंवादिन्यः = विसंवादयुक्ता, आपातत इति शेषः । एवं च प्रत्यायिन्यः = विश्वासकारिण्यः । परिणामे च—कल्याणाः = कल्याणपूर्णाः, कल्याणमस्ति आसु ताः,

---

विवाह होनेसे नन्दनसे प्रतिबन्ध होनेकी शङ्कासे हमलोग छूट गये हैं । (सुनाकर) वत्स माधव ! वत्स मकरन्द । विवाह चोरीसे हुआ, इसलिए इन (सौदामिनी) का वचन दूसरा है यह बात नहीं । क्योंकि छात्रावस्थामें मेरे और सौदामिनीके समक्ष उन दोनोंकी ( भूरिवसु और देवरातकी ) ऐसी प्रतिज्ञा हुई थी कि—'हम दोनोंके अपनी सन्तानोंका परस्पर सम्बन्ध करना चाहिए' । इस प्रकारसे (चोरीके विवाहसे ) प्रधानप्रकृति ( राजा) के कोपका परिहार किया गया ।

मालती—अहो ! परस्परमें की गयी प्रतिज्ञाका किस प्रकारसे संवरण ( गोपन ) किया ।

मकरन्द और माधव—( आश्चर्यके साथ ) महापुरुषोंके आपाततः विसंवाद युक्त परन्तु विश्वासजनक कल्याणपूर्ण नीतियोंकी जय होती है ।

कामन्दकी—वत्स,

यत्प्रागेव मनोरथैर्वृतमभूत्कल्याणमायुष्मतो-
स्तत्पुण्यैर्मदुपक्रमैश्च फलितं क्लेशैश्च मच्छिष्ययोः।
निष्णातश्च समागमोऽपि विहितस्त्वत्प्रेयसः कान्तया
संप्रीतौ नृपनन्दनौ यदपरं प्रेयस्तदप्युच्यताम् ॥ २४ ॥

'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः। 'कल्याणिन्य' इति पाठान्तरम्। नीतयः=नयाः। जयन्ति=सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। अत्र जिधातुरकर्मकः।

यदिति। प्राक् एव मनोरथैः आयुष्मतोः यत् कल्याणम् वृतम् अभूत्; तत् पुण्यैः मदुपक्रमैः मच्छिष्ययोः क्लेशैश्च फलितम्। त्वत्प्रेयसःकान्तया निष्णातः समागमोऽपि विहितः। नृपनन्दनौ संप्रीतौ। यत् अपरं प्रेयः तदपि उच्यतामित्यन्वयः। प्राक् एव=पूर्वम् एव, मनोरथैः=अभिलाषैः, आयुष्मतोः=जैवातृकयोः, युवयोर्मालतीमाधवयो-रित्यर्थः। यत्, कल्याणं=मङ्गलं, परस्परलाभरूपमिति भावः। वृतम्=आकाङ्क्षितम्, अभूत्=अवर्तिष्ट। तत्=युवयोर्मिथोलाभरूपं कल्याणं, पुण्यैः=पुराचरितैर्युवयोर्धर्मैः, मदुपक्रमैः=मम (कामन्दक्याः) उपक्रमैः (व्यापारैः, निसृष्टार्थदूतीकल्पकपटैरिति भावः)। मच्छिष्ययोः=मदन्तेवासिन्योः, सौदामिन्यवलोकितयोरिति भावः, भूरिवसु-देवरातयोरिति नान्यदेव। क्लेशैश्च,=कष्टैश्च कार्यसिद्ध्युपायभूतैश्चेति शेषः। फलितं=निष्पन्नम्। एवं च त्वत्प्रेयसः=त्वत्सुहृद्वरस्य, मकरन्दस्येति भावः। कान्तया=प्रियया मदयन्तिकया सहेति भावः। निष्णातः=कौशलपूर्णः, निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति षत्वम्। समागमोऽपि=वैवाहिकसम्बन्धोऽपि, विहितः=कृतः।तथैव नृपनन्दनौ=भूप-तन्नर्मसचिवौ, विरुद्धत्वेन सभावितावपीति शेषः। संप्रीतौ=प्रीतियुक्तौसंजातौ। एतेभ्यः यत्, अपरम्=अन्यत्, प्रेयः=प्रियतरं, 'श्रेय' इति पाठान्तरे कल्याणमि-त्यर्थः। अस्ति चेदिति शेषः। तदपि=तत्प्रेयोऽपि, उच्यतां=कथ्यतां, करिष्यामीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २४ ॥

कामन्दकी—वत्स!

पहले ही अभिलाषोंसे चिरञ्जीव तुम दोनों (मालती और माधव) का जो विवाहरूप कल्याण आकाङ्क्षित था, वह तुम्हारे पुण्योंसे, मेरे कर्मोंसे और मेरी शिष्याओं (सौदामिनी और अवलोकिता) के (अथवा शिष्य भूरिवसु और देवरातके) कष्टोंसे भी फलित हुआ। तुम्हारे सुहृद्वर (मकरन्द) का प्रिया (मदयन्तिका के साथ कौशलपूर्ण वैवाहिक सम्बन्ध भी विहित हुआ। राजा और नन्दन भी प्रीतियुक्त हो गये हैं। जो दूसरा प्रियतर विषय हो तो उसे भी कहो ॥२४॥

माधवः—( सहर्षम् ) अतः परं मम प्रियमस्ति ? तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

**शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।**
**दोषाः प्रयान्तु शान्तिं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ २५ ॥**

माधव इति । प्रियम् = अभीष्टम्, अस्ति?=काका नाऽस्तीति भावः । भरतवाक्यं= भरतस्य (नाट्याचार्यस्य) वाक्यम् (वचनम्) । 'भगवतीप्रसादादि'ति पाठान्तरम् ।

शिवमिति । सर्वजगतां शिवम् अस्तु । भूतगणाः परहितनिरता भवन्तु । दोषः शान्तिं प्रयान्तु । लोकः सर्वत्र सुखी भवत्वित्यन्वयः । सर्वजगतां=सकललोकानां, शिवं = कल्याणम्, अस्तु = भवतु । भूतगणाः = प्राणिसमूहः, परहितनिरताः=अन्यकल्याणतत्पराः, परेभ्यो हितं, परहितं, 'हितयोगे चे'ति चतुर्थी 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' इति चातुर्थीतत्पुरुषः परहिते निरताः । दोषाः=दूषणानि, कामक्रोधादीनि इति भावः । शान्तिं = शमं, प्रयान्तु=गच्छन्तु, कामादयो विनश्यन्त्विति भावः । लोकः = जनः, जना इत्यर्थः, 'जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्' इत्येकवचनम् । सर्वत्र=सर्वस्मिन्स्थाने विषये, सुखी = आनन्दसंपन्नः, भवतु = भवेदित्याशीः । आर्या जातिः ॥ २५ ॥

पुस्तकान्तरे त्वस्य श्लोकस्य स्थाने निम्नस्थोऽयं श्लोकः समुल्लिखितः ।

'सन्तः सन्तु निरन्तरं सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा ।
काले सन्ततवर्षिणो जलमुचः सन्तु, स्थिराः पुण्यतो
मोदन्तां घनवद्धवान्धवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः ॥' इति ।

सन्तो विध्वस्तपापोदयाः ( सन्तः ) निरन्तरं सुकृतिनः सन्तु । राजानः सर्वदा धर्मे स्थिताः सन्तो वसुधां परिपालयन्तु । जलमुचः काले सन्ततवर्षिणः सन्तु । प्रजाः पुण्यतः स्थिराः घनवद्धवान्धवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः ( सत्यः ) मोदन्तामित्यन्वयः । सन्तः = सज्जनाः, विध्वस्तपापोदयाः = विध्वस्तः ( विनष्टः ) पापोदयः (कल्मषोन्नतिः ) येषां ते तादृशाः सन्तः । निरन्तम् = अनारतं, सुकृतिनः = पुण्यवन्तः, सुकृतमस्तियेषां ते, 'इष्टादिभ्यश्चे'ति कर्तरीनिः, 'सुकृती पुण्यवान्धन्य' इत्यमरः। सन्तु=

माधव—(हर्षके साथ ) इससे भिन्न मेरा प्रिय है ? तो भी भरतजी का यह वाक्य हो—

सब लोकोंका कल्याण हो । प्राणिसमूह दूसरोंके हितमें तत्पर हों । दोष शान्ति को प्राप्त हों और लोक सर्वत्र सुखी हो ॥ २५ ॥

कामन्दकी—एवमस्तु ।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे दशमोऽङ्कः ।

भवन्तु । राजानः=नृपाः, सर्वदा=सर्वस्मिन् काले, धर्मे पुण्याचरणे, स्थिताः=वर्तमानाः सन्तः, वसुधां = पृथिवीं, परिपालयन्तु = संरक्षन्तु । जलमुचः = मेघाः, काले=नियत-समये, सन्ततवर्षिणः = निरन्तरवर्षणशीलाः, सन्तु=भवन्तु । प्रजाः=जनाः, पुण्यतःऽ स्वधर्माचरणं कृत्वा, स्थिराः = स्थायिन्यः, दीर्घायुःसंपन्नाः सन्तः, घनबद्धबान्धव-सुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः = घनबद्धः ( निरन्तरकृतः ) बान्धवसुहृदां ( बन्धुमित्राणाम् ) गोष्ठीषु ( सभासु ) प्रमोदः ( आनन्दः ) याभिस्ताः, तादृश्यः सत्यः, मोदन्तां= हर्षमनुभवन्तु । एतादृशं मदभीष्टमस्त्विति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २५ ॥

इति श्रीशेषराजशर्मकृतायां टीकायां दशमोऽङ्कः ।

श्रीकृष्णाऽर्पणमस्तु ।

कामन्दकी—ऐसा ही हो ।

( तब सब लोग प्रस्थान करते हैं । )

( दशम अङ्क समाप्त ।